अच्युतग्रन्थमालायाः (ख) विभागे द्वितीयं पुष्पम्

काशीकेदारमाहात्म्यम्

भाषानुवादयुतम्



प्रकाशनस्थानम्—
अच्युतग्रन्थमाला-कार्यालयः, काशी ।



अच्युतग्रन्थमालायाः (ख) विभागे द्वितीयं पुष्पम्

काशीकेदारमाहात्म्यम्



साहित्यरञ्जनपण्डितश्रीविजयानन्दत्रिपाठि-
विरचितभाषानुवादयुतम्

सम्पादकः
श्रीकृष्णपन्तसाहित्याचार्यः

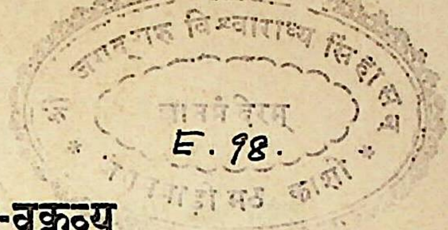
प्रकाशनस्थानम्—
अच्युतग्रन्थमाला-कार्यालय; काशी।

प्रथमावृत्ति १५००] [मूल्य २॥)

प्रकाशक—
श्रेष्ठिप्रवर गौरीशङ्करगोयनका
अच्युतग्रन्थमाला-कार्यालय, काशी।



मुद्रक—
माधव विष्णु पराड़कर,
ज्ञानमण्डल यन्त्रालय, काशी ४१६५-८८



सम्पादकीय-वक्तव्य

काशीकेदार-माहात्म्य को भक्तजनों के सम्मुख उपस्थित करते परम आनन्द हो रहा है। यह पुस्तक धार्मिक जगत् के लिए एक अपूर्व एवं उपादेय वस्तु है। इसमें श्री शिवजी की भक्तवत्सलता, दयासिन्धुता, ऐश्वर्य्यातिशय, प्रभावपराकाष्ठा का वर्णन हृदयग्राहिणी एवं सरल भाषा द्वारा किया गया है। अभी तक देवनागरी लिपि में इसका प्रकाशन कहीं नहीं हुआ था। हमारी प्रार्थना को स्वीकार कर श्रद्धेय पं० विजयानन्द त्रिपाठी जी साहित्यरञ्जन ने इसका भाषानुवाद कर इसे आबालवृद्धवनिता सभी के उपयोग की वस्तु बनाकर हमारे ऊपर बड़ा अनुग्रह किया है। इसके लिए हम साहित्यरञ्जनजी के अति आभारी हैं और उन्हें हृदय से अनेक धन्यवाद देते हैं। आशा है ऐसी उत्तम वस्तु को पाकर पाठक भी आनन्दित होंगे। इस पुस्तक का सम्पादन चार पुस्तकों के आधार पर हुआ है। उनमें से तीनों का उल्लेख भूमिका में किया जा चुका है। शेष वङ्गानुवाद सहित वङ्गलिपि में मुद्रित एक प्रति हमें पण्डितप्रवर श्री गोपीनाथ कविराज जी एम्० ए०, प्रिंसिपल संस्कृत कालिज बनारस, की कृपा से प्राप्त हुई। हमने इसका साङ्केतिक नाम 'ग' रक्खा है। इस पुस्तक में बहुधा पाठ शुद्ध किया गया है। हमको विभिन्न देश की तीन अमुद्रित पुस्तकों में कोई विशेष परिवर्तन नहीं दिखाई दिया। सभी में आर्ष प्रयोगों की भरमार दिखाई दी। पर इसमें आर्ष प्रयोंग वहीं पर दिखाई दिये जहाँ पर कि परिवर्तन होना असम्भव था। कहीं कहीं पर तो वाक्यों का पौर्वापर्य्य परिवर्तन करके भी अभीष्ट सिद्धि की गयी है। पहिले तो हमने इसके पाठ को प्रधानता देने की ठानी थी, परन्तु जब हमको यह सन्देह हुआ कि शायद इसका पाठ शुद्ध करके छापा गया हो तो हमें यह विचार छोड़ देना पड़ा। हाँ, कहीं कहीं पर जहाँ कि अमुद्रित पुस्तकों का पाठ लिपि दोष से अस्पष्ट एवं भ्रामक था, वहाँ पर हमने मूल में 'ग' पुस्तक का पाठ दे दिया है और नीचे फुटनोट में 'ग' पुस्तकीयोऽयम्पाठः, लिख दिया है।

हमने आर्ष पाठ की महत्ता अनेक वार गुरुजनों के मुख से सुनी है। आधुनिक व्याकरण से सिद्ध न हो सकनेवाले भी ऋषि प्रयुक्त पद पाठ द्वारा हम लोगों से रचित शुद्ध पदों की अपेक्षा कहीं अधिक फलदायक होते हैं। क्योंकि वे ऋषियों द्वारा अपनी तपःसिद्धि एवं पूर्व जन्म के दृढ़ाभ्यास से संस्कृत होने के हेतु इन व्याकरणों की अपेक्षा नहीं रखते हैं। इसी दृढ़ विश्वास के कारण मूल पुस्तक में जहाँ पर कि द्विवचन के स्थान में एकवचन, पद पद पर 'अट्' का अभाव, 'ङीप्' का अभाव, परस्मैपद के स्थान में आत्मनेपद और आत्मनेपद के स्थान में परस्मैपद आदि प्रयुक्त हैं, कोई परिवर्तन नहीं किया गया है। मेरे दृष्टिदोष से एवं प्रेसवालों की अनवधानता से संशोधन आदि में कहीं त्रुटि रह गई है। उदार पाठक उसे सुधार कर पढ़ने की कृपा करें। यदि कोई विशेष भूल दृष्टिगोचर हो, तो सूचित करने का कष्ट करें, ताकि अग्रिम सँस्करण में उसका निराकरण हो सके।

चैत्र कृष्ण ९ सं० १९८८ }
काशी। }

57
1931

विनीत—
श्रीकृष्ण पन्त



वक्तव्य

जो निरीश्वरवादी नहीं हैं, जो जगत् को आकस्मिक घटना का फल नहीं मानते, उनको कर्म सिद्धान्त मानना ही पड़ेगा। उनको यह स्वीकार करना पड़ेगा कि जगत् भोग और मोक्ष के लिये है, और भोग और मोक्ष का साक्षात् अथवा परम्परया कर्म कारण है। इसी लिये शास्त्रकारों ने कहा है कि 'कर्मवैचित्र्यात् सृष्टिवैचित्र्यम्'।

कर्म की विचित्रता से सृष्टिवैचित्र्य

इसी जगत् में कहीं केसर होता है, कहीं घास नहीं उगती। कहीं हाथ द्वारा मिट्टी हटाने से पानी निकलता है, तो कहीं कूएँ से पानी बाहर निकलते समय ढोल बजाई जाती है। कहीं पहाड़ ही पहाड़ है, तो कहीं जलराशि लहरें मार रही है। कहीं गरमी के मारे त्राण नहीं मिलता, तो कहीं लोग गले में अँगेठी बाँधे फिरते हैं। कहीं के लोग शूरवीर होते हैं, तो कहीं के महाभीरु। कहीं के निवासी बलवान् होते हैं, तो कहीं के बुद्धिमान्। कहीं ज्ञान का प्रकाश है, तो कहीं भक्ति का प्रवाह है। इसी भाँति कोई कर्मभूमि है, तो कोई भोगभूमि है। कोई अर्थ-काम-प्रधान देश है, तो कोई धर्म-प्रधान देश है। किसी देश में नाम-रूप की महिमा बढ़ाने की शक्ति है, तो किसी में नाम-रूप के संहार करने की शक्ति है।

प्राणियों के कर्म विचित्र हैं, इसमें बहुत बड़ा प्रमाण यह है कि किसी प्राणी का रूप, स्वर और प्रकृति दूसरे से नहीं मिलती। यदि कर्म में समानता होती, तो इसके मेल खाने में कोई बाधा न होती। अतः विचित्र कर्मों के भोग के लिये विचित्र स्थानों का होना परमावश्यक है। और विचित्र स्थानों में विचित्र शक्तियों का होना भी स्वाभाविक ही है।

तीर्थ भी उन्हीं वैचित्र्यों में से एक है

फलतः इस विचित्र जगत् में यदि धर्मक्षेत्र और मुक्तिक्षेत्र न होते,

तो इसकी विचित्रता ही पूरी नहीं होती। धर्मक्षेत्र तथा मुक्तिक्षेत्र को ही तीर्थ कहते हैं, अतः जगत् में तीर्थ की स्थिति भली भाँति युक्तिसिद्ध है।

विना तीर्थ के वैचित्र्य की पूर्ति नहीं होती

परन्तु इस विचित्रता का अनुभव सब किसी को नहीं होता। ऐसे लोग भी मौजूद हैं, जो बूढ़े हो गये और पहाड़ के नीचे नहीं उतरे, इन्हें समतल मैदानों का स्वप्न भी नहीं आता। और ऐसे धुरन्धर भी मौजूद हैं, जो मरने के किनारे पहुँच गये और कभी पहाड़ देखा ही नहीं। ऐसे भी मनुष्य कम नहीं हैं, जिन्होंने केवल समुद्र का नाम सुन रक्खा है, और ऐसे भी बहुत मिलेंगे, जिन्होंने मरुस्थल केवल नक्शे में देख पाया है। जो लोग स्थूल भेद के जानकार भी हैं, उनमें से भी सूक्ष्म भेदों को लखने की शक्ति बहुत कम लोगों में है।

तीर्थ का परिज्ञान केवल शास्त्र से सम्भव है

चक्षुष्मान् मनुष्यों से तो संसार भरा पड़ा है, पर रत्न और काँच के पारखी तो कोई विरले ही हैं। उनकी आँखें रत्न में जो विशेषता देखती हैं, वह मेरी अशिक्षित आँखें नहीं देख सकतीं। यहाँ पर बहुमत से फैसला नहीं किया जा सकता, क्योंकि बहुत से लोग तो ऐसे ही हैं, जो रत्न और काँच का भेद देखने में अन्धे हैं, अतः निरुपाय होकर रत्न की परीक्षा के लिये जौहरी की शरण ग्रहण करनी ही पड़ती है। तर्क और युक्तियाँ बैठी मुँह ताका करती हैं। तर्करत्न महाशय का कोई तर्क लौकिक रत्न के पानी का परिष्कार नहीं कर सकता। वैरिस्टर साहिब की तलावगाहिनी बुद्धि इस रत्न के पानी में प्रवेश नहीं कर पाती।

मिथ्याभिमानी मनुष्य, जो दिन-रात की देखी हुई वस्तुओं में भेद नहीं पकड़ पाता, अदृश्यार्थ के निर्णय में विना रोक-टोक अपनी मूढ़ता से बुद्धि को प्रमाण मान बैठता है।

अदृश्यार्थ के परिज्ञान का ठीक साधन

बुद्धि किसी अवस्था में भी उपेक्षा की वस्तु नहीं है, परन्तु अदृश्य तथा अज्ञात अर्थ में वह उस सीमा के भीतर-ही-भीतर काम कर सकती है, जिसका ज्ञान उसे विशेषज्ञ के द्वारा मिल चुका हो।

धर्म-अधर्म प्रत्यक्ष के विषय नहीं हैं, अतः उनको जानने के लिये ठीक साधन सर्वज्ञ वेद, शास्त्र तथा साक्षात् कृतधर्मा ऋषियों का चरण-ग्रहण छोड़कर अन्य कुछ भी नहीं है।

कहा जा सकता है कि कुरान और बाइबिल भी तो अदृश्यार्थ प्रतिपादन में उसी भाँति प्रमाण माने जा सकते हैं, जिस भाँति वेद शास्त्र माने जाते हैं। पर बात यह है कि ये आधुनिक ग्रन्थ स्वतन्त्र नहीं हैं। ये तो शास्त्रों के ही कतिपय अंशों के तोड़े मरोड़े हुए रूपान्तर मात्र हैं। यदि इनमें स्वतन्त्रता होती तो कोई अच्छी नई बात ऐसी भी कहते, जो हमारे सनातन शास्त्रों में न होती। पर वे एक बात भी ऐसी नहीं बतला सकते, और इनको बने अभी पूरे २००० वर्ष भी नहीं हुए, अतः इनमें शास्त्रों की छाया को ही विकृत रूप देकर एक नया पन्थ चलाने का प्रयत्न किया गया है। फलतः ये स्वतन्त्रता से धर्माधर्मनिरूपण में प्रमाण नहीं माने जा सकते।

कुरान बाइबिलधर्म में प्रमाण नहीं

कुछ लोगों ने अपने अन्तरात्मा के आदेश (Conscience) को ही प्रमाण मान रक्खा है। परन्तु ऐसे आदेश से धर्माधर्म का निरूपण नहीं हो सकता। कसाई का कावन्शन्स तो गोवध के लिये कहता है, तो क्या गोवध धर्म हो जायगा? अपनी रुचि के अनुसार युक्ति गढ़नेवाले स्वार्थी परिच्छिन्न अन्तःकरण का ठिकाना ही क्या? अतः कावन्शन्स भी धर्माधर्म के निरूपण में प्रमाण नहीं हो सकता। (शास्त्र में कही हुई बातों में जिसे अन्तःकरण स्वीकार करे, सो अवश्य धर्म में प्रमाण है)

कावन्शन्स प्रमाण नहीं है

अन्तरात्मा के आदेशानुसार ही धर्म्म मानना केवल अपनी मूढ़ता का ही द्योतक नहीं है, किन्तु जगत् की व्यवस्था के लिये भी महा हानिकारक है। जब कि हमारे अन्तरात्मा का आदेशकाल वेग को सहने में इतना असमर्थ है कि आज की मन में आई हुई बात, कल के किये हुए निश्चय को भङ्ग कर देती है, तब उसके सामने उस वस्तु को, जो कि सहस्रों वर्षों से अभ्रान्त प्रमाणरूप से लक्षाधिक आप्त पुरुषों द्वारा ग्राह्य होती

कान्सेन्स वालों की मूढ़ता

चली आई है, प्रमाण न मानना, केवल गहिरा अभिमान और मोह को छोड़कर अन्य कुछ भी नहीं है।

अतः अदृश्यार्थ के जौहिरी शास्त्रों ने जिस विधान को धर्म, जिस क्षेत्र को धर्मक्षेत्र और मुक्तिक्षेत्र और जिस काल को पुण्यकाल बतलाया है, उनके वैसे होने में सन्देह के लिये स्थान नहीं है। भगवान् देवकीनन्दन ने भी ऐसा ही कहा है—

सिद्धान्त

"तस्माच्छास्त्रं प्रमाणन्ते कार्य्याकार्य्यव्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि॥
यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न पराम् गतिम्॥"

(गी० १६।२४-२३)

कार्य्याकार्य्य की व्यवस्था में तुम्हें शास्त्र ही प्रमाण है, शास्त्र के विधान को जानकर तुम्हें कर्म करना चाहिये, जो शास्त्र की विधि छोड़-कर अपने मन का करता है, उसे न सिद्धि मिलती है, न सुख मिलता है और न उसकी परागति होती है।

अतः श्रेयस्काम व्यक्तियों के लिये शास्त्र ही शरण है और उसी के कथनानुसार धर्मक्षेत्र, मुक्तिक्षेत्र, और पुण्यकाल का पता लग सकता है।

यद्यपि पूर्ण ज्ञानी, और सच्चे भक्त को भौतिक तीर्थ की आवश्य-कता नहीं रह जाती। 'तनुं त्यजति वा काश्यां स्वपचस्य गृहेऽथवा।' वे चाहे काशी* में शरीर छोड़ें, चाहे चाण्डाल के घर में छोड़ें, उनके लिये सब बराबर है। वे भले ही शास्त्रमर्य्यादा की रक्षा के लिये, अथवा तीर्थों को पवित्र

तीर्थ की आवश्यकता किसे है?

* यहाँ 'काशी' शब्द से भौतिक काशी अभिप्रेत है, नहीं तो काशी बिना मुक्ति कहाँ? जो भौतिक काशी में शरीर बिना छोड़े ही मुक्त होते हैं। उनका प्राणवियोग अध्यात्म अथवा अधिदैव काशी में होता है। भ्रुकुटि के बीच का स्थान वाराणसी है, यथा—'भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक् स तं परं पुरुषमुपैति-वाचम्।' यह अध्यात्म काशी ज्ञानियों की है। सूर्य्य मण्डल के मध्य में आधि दैविक काशी है।' यह उत्तरायण मार्ग की काशी उपासकों की है। इसी लिये पञ्च-कोशात्मक होते हुए भी काशी को पाताल से लेकर वैकुण्ठ तक व्याप्त कहा है।

करने के लिये तीर्थ सेवन करें, पर तीर्थ से उनका कोई निजी उपकार नहीं होता, वे कह सकते हैं कि 'मन चङ्गा तो कठौती में गङ्गा'। परन्तु सर्वसाधारण के लिये यह बात नहीं है। मूढ़ जीवों के भवसागर पार उतरने के लिये 'तीर्थ' बड़ा भारी सेतु है।

परम कारुणिक परमेश्वर ने किसी किसी क्षेत्रविशेष को ऐसी शक्ति दे रक्खी है, जिससे पुरुषार्थहीन जीवों का भी कल्याण हो सके। करुणामय ने दीन हीन व्यक्तियों को भी उपेक्षित नहीं कर रक्खा है। जिन लोगों का उन क्षेत्रों में आजन्म निवास है, उनके लिये तो वह सहज ही सुलभ है। पर अन्यों का भी वहाँ इतना ही पुरुषार्थ अपेक्षित है, कि उस क्षेत्र में येन केन प्रकारेण चले आवें और यदि पुण्य न कर सकें, तो पाप भी न करें, इतने ही में उनका निस्तार है।

तीर्थ के अधिकारी

पुण्य क्षेत्रों में उपजाऊ शक्ति बड़ी प्रबल होती है। उनमें जिस भाँति पुण्य का सहस्रों गुण अधिक फल होता है, उसी भाँति पाप से भी अनन्त गुण अधिक दोष होता है। तीर्थ में पाप करनेवालों के लिये कहा भी गया है कि 'मगधेन समा काशी गङ्गाऽप्यङ्गारवाहिनी' काशी मगध के समान हो जाती है, गङ्गा भी उसके लिये अङ्गार बहाती हैं।

तीर्थ में किये हुए कर्मों का अनन्त गुण होता है

विना जन्मान्तर के पुण्य के तीर्थ की प्राप्ति नहीं होती, और जन्मजन्मान्तर के घोर पापी का प्रवेश भी तीर्थ में नहीं हो पाता। ऐसे उदाहरण प्रत्यक्ष देख गये हैं कि लोग तीर्थ की धारणा में से काशी आ तो गये, पर ठहर न सके, काशी छोड़ने पर ही उनकी विकलता गई।

तीर्थप्राप्ति में भी पुण्य कारण है

इतने पर भी कुछ परसुखासहिष्णु ऐसे भी हैं, जिनको अनाथनाथ की दयामयी मूर्ति में अन्याय की गन्ध आने लगती है। उनकी समझ में परमेश्वर निष्करुण न्यायकारी है, उनके विचार से करुणा करना मानो घोर अन्याय है। पुरुषार्थहीन की सद्गति का कान में पड़ना, उनको सहन शक्ति के बाहर की बात है। स्वयम् क्षमा रहित होने से वे परमेश्वर को

करुणा और न्याय दो विरुद्ध वस्तु नहीं हैं

भी अपराध क्षमा का अधिकार नहीं दिया चाहते। कौन जाने वे कहीं क्षमा का दुरुपयोग न कर बैठें। ईश्वर का इसमें क्या बिगड़ने लगा? यहाँ तो उनकी क्षमा से ढीठ होकर सारी दुनिया बरबाद हो जायगी।

परन्तु बात ऐसी नहीं है। क्षमा, करुणा, न्याय, ये तीनों गुण परस्पर विरुद्ध नहीं हैं, प्रत्युत एक दूसरे के सहायक हैं। लोक में क्षमाशील, दयालु हाकिम देखे जाते हैं, और वे दिनरात न्याय करते हैं। क्षमा और दया उनके न्याय में सहायता देती है। फिर, परमेश्वर के लिये कहना ही क्या?

दण्डविधान बदला लेने के लिये नहीं है। दोषी को सुधारने के लिये है। अन्ततः दण्ड का भी तात्पर्य्य दया से ही है। कितना भी दोषी हो, यदि उसको पूर्व पुण्य के द्वारा अपने दुष्कर्म से ऐसा सच्चा परिताप हो, कि भविष्य में उससे वैसा होना असम्भव हो जाय, तो वह बड़ा भारी दोषी होने पर भी सर्वथा क्षम्य है। इसमें न्याय को तनिक भी धक्का नहीं लग सकता। और यदि दुष्ट-चित्त व्यक्ति से तनिक-सा भी अपराध हो पड़े, तो वह सर्वथा दण्ड्य है, क्योंकि सिवा दण्ड के वह अन्य उपाय से सुधर ही नहीं सकता।

दण्ड विधान का भी कारण करुणा है

परमेश्वर करुणामय है, इसी से उसमें न्यायकर्तृत्व आदि गुण भी पाये जाते हैं। करुणावरुणालय होने से वह न्याय कर्त्ता से बहुत बड़ा है। न्यायकर्त्ता तो उचित दण्ड देकर जीव को छोड़ देता है, सुधार से निराश होकर दोषी को देशनिकाले का दण्ड दे देता है; परन्तु करुणामय की करुणा पापी से भी पापी प्राणी से कभी नहीं हटती, वह कभी न तो निराश होता है और न साथ छोड़ता है। वह उसे सुधरने के लिए अवसर देता है। वह उसके गुणस्फुलिङ्ग को धधकाकर ऐसे दावानल रूप में परिणत करने के लिये ऐसे कार्य्य कारण इकट्ठे कर देता है कि जिससे उसके पाप का अरण्य जलकर भस्म हो जाय। एक जन्म में हो, सौ जन्म में हो, लाख जन्म में हो या इससे भी अधिक में हो, उसे ऐसा ज्ञानी बनाकर ही छोड़ता है कि अपने में और उसमें भेद न रह जाय।

न्यायकारी से करुणामय बड़ा है

इसी लिये उस करुणामय आदि गुरु ने वेद, शास्त्र बनाये। स्वयम्

अवतार धारण करके उपदेश किया। और साधुरूप से, गुरु रूप से, ब्राह्मण रूप से, गो रूप से, मूर्ति रूप से, तीर्थ रूप से सदा पाप हरण किया करता है।

तीर्थ उसी करुणामय का रूप विशेष है

जीव स्वभाव से मुक्त ही है, नाम रूपात्मिका माया से वह विकृत-सा होकर बद्ध हो रहा है। अथवा यों कहिये कि स्वभाव से वह स्वस्थ है। माया के मिथ्या योग से वह रुग्ण-सा हो गया है। वैद्यक शास्त्र में तो स्पष्ट शारीरिक और मानसिक भेद से दो प्रकार का रोग बतलाया है, परन्तु चिकित्सा केवल शारीरिक की लिखी है, मानसिक रोग की चिकित्सा के लिये वेदान्त का उल्लेख कर दिया है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने तो उनका विस्तार से विवरण लिखा है। यथा—

तीर्थ की कार्य्य-कारिता

सुनहु तात अब मानस रोगा। जिन्हतें दुख पावहिं सब लोगा।
मोह सकल व्याधिन कर मूला। तेहि तें पुनि उपजहिं बहु शूला॥
काम वात कफ लोभ आपारा। क्रोध पित्त नित छाती जारा।
प्रीति करहिं जो तीनिउ भाई। उपजै सन्निपात दुखदाई॥
विषय मनोरथ दुर्गम नाना। ते सब शूल नाम को जाना।
ममता दादु कण्डु हरषाई। हरष विषाद गरह बहुताई॥
पर सुख देखि जरन सोइ छई। कुष्ट दुष्टता मन कुटिलई।
अहंकार अति दुखद डवरुआ। दंभ कपट मद मान नहरुआ॥
तृष्णा उदर वृद्धि अति भारी। त्रिविध ईषना तरुन तिजारी।
जुग विधि ज्वर मत्सर अविवेका। कहँ लगि कहौं कुरोग अनेका॥

दो०—एक व्याधि बस नर मरहिं, ए असाधि बहु व्याधि।
पीडहिं संतत जीव कहँ, सो किमि लहइ समाधि॥
नेम धर्म आचार तप, ज्ञान जज्ञ जप दान।
भेषज पुनि कोटिन्ह नहीं, रोग जाँहि हरि जान॥

एहि विधि सकल जीव जग रोगी। शोकहरष भय प्रीति वियोगी।
मानस रोग कछुक मैं गाए। हैं सब के लखि बिरलेहि पाये॥
जाने ते छीजहिं कछु पापी। नास न पावहिं जनपरितापी।
विषय कुपथ्य पाइ अंकुरे। मुनिहु हृदय का नर वापुरे॥

सो जीवके स्वस्थ करने के लिये बहुत से उपाय हैं। समर्थ जन ज्ञानोपार्जन करके स्वयम् स्वस्थ हो सकता है, और दूसरों को स्वस्थ कर सकता है, अथवा 'सद्गुरु' वैद्य का आश्रयण करके स्वास्थ्य लाभ कर सकता है। पर जिसे विद्या नहीं है, और वैद्य के लिये द्रव्य नहीं हैं, जिसे पथ्य का भी ठिकाना नहीं है, वह क्या कर सकता हैं ? क्या राजा का यही न्याय है कि अपनी दीन हीन प्रजा को यह कहकर छोड़ दे कि उसने पुरुषार्थ करके विद्या और द्रव्य क्यों नहीं कमाया, इसलिये वह दुख पावे, मरे, हम क्या करें ? अथवा यह न्याय है कि वह जहाँ तहाँ उन अनाथों के लिये चिकित्सालय (अस्पताल) खुलवादे ? जगत् में तो यही देखने में आता है कि सरकारी अस्पताल खुले हुए हैं, वहां चिकित्सा के अतिरिक्त रोगियों के पथ्य की भी व्यवस्था रहती है। वहाँ इस बात की चरचा भी नहीं होती कि रोगी ने पुरुषार्थ करके द्रव्य क्यों नहीं कमाया ? इस बात को जाने दीजिये वहाँ व्यभिचार-दोषज-रोगों के रोगियों से भी यह नहीं पूछा जाता कि तू ने ऐसा कर्म क्यों किया ? प्रत्युत उसे आश्वासन दिया जाता है, और उसको सुख देने तथा उसे स्वास्थ्य प्रदान करने में ही अस्पताल की प्रशंसा है।

ऐसा सुप्रबन्ध करने से राजा के न्याय की प्रशंसा होती है। कोई उसे पक्षपाती नहीं कहता। उसके न्यायकर्तृत्व में कलङ्क नहीं लगाता।

लोक में जिस भाँति अस्पताल की कार्य्यकारिता है, परमार्थ में उसी भाँति तीर्थ की कार्य्यकारिता है। उसमें मानसिक रोगियों को पारमार्थिक स्वास्थ्य प्रदान किया जाता है। वहाँ यह नहीं पूछा जाता कि तुमने अमुक पुरुषार्थ क्यों नहीं किया, अथवा अमुक कर्म क्यों किया ?

उक्त चिकित्सा की प्रक्रिया में यदि उसे कष्ट हो तो मूल व्याधि के विनाश की दृष्टि से उसपर ख्याल नहीं किया जाता। यथा—

जिमि शिशु तन व्रन होइ गोसाईं। मातु चिराव कठिन की नाईं ॥
जदपि प्रथम दुख पावै, रोव बाल अधीर।
व्याधि नाश हित जननी, गनै न सो शिशुपीर ॥

अस रघुपति निजदास कर, हरइ मान हितलागि।
तुलसिदास ऐसे प्रभुहिं, कस न भजइ भ्रम त्यागि ॥

अतः वेद शास्त्रों में तीर्थों का गुणगान है, वह गुणगान इसी अभिप्राय से है कि लोग तीर्थों से लाभ उठा सकें। गुण भेद तथा तारतम्य भेद से तीर्थ भी अनेक प्रकार के हैं। उनमें से

सप्तपुरी

'अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्तिका।
पुरी द्वारावती ज्ञेया सप्तैता मोक्षदायिकाः ॥'

(१) अयोध्या (२) मथुरा (३) हरिद्वार (४) काशी (५) शिवकाञ्ची विष्णुकाञ्ची (६) उज्जैन और (७) द्वारिका ये सात पुरियाँ मोक्ष देनेवाली हैं। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में परम पुरुषार्थ मोक्ष ही है। क्योंकि इनमें से मोक्ष ही नित्य है, शेष सब अनित्य हैं। मनुष्य शरीर धारण करके दुःख की अत्यन्त निवृत्ति के लिए यत्नशील होना सब का कर्तव्य है, और दुःख की अत्यन्त निवृत्ति अर्थात् मोक्ष विना ज्ञान के हो नहीं सकता। और ज्ञान सम्पादन के लिए जिन साधनों की आवश्यता है, वे सब आज कल के स्वल्पायु स्वल्प-पुरुषार्थ कलियुगी जीवों से सर्वथा असाध्य है। अत एव इस समय मुमुक्षुओं के लिये यही कर्तव्य है कि मोक्षदायिका पुरियों की शरण लें।

इन पुरियों में देह-त्याग करने से जीवों को दूसरे जन्म में काशी-लाभ होता है। +काशी में प्राणोत्क्रमण के समय करुणामय विरूपाक्ष मुमूर्षु के दक्षिण कान में तारकोपदेश करते हैं, जिससे कि उसे ज्ञान हो जाता है और उस ज्ञान से उसकी मुक्ति हो जाती है। यथा—

सप्तपुरियों में काशी की विशेषता

'अन्यानि मुक्तिक्षेत्राणि काशीप्राप्तिकराणि हि।
काशीं प्राप्य विमुच्यन्ते नान्यथा तीर्थकोटिभिः ॥' [स्कन्द पु०]

अतः यही सिद्ध हुआ कि सात पुरियों में भी साक्षात् मुक्तिदायिका काशी पुरी है, और इसी से जगत् में इसकी इतनी महिमा है।

काशी अनादि तीर्थ है, विश्वेश्वर लिङ्ग के प्रादुर्भाव से इसकी

+मुक्ति जन्म महि जानि, ज्ञान खानि अघ हानि कर।
जहँ बस शम्भु भवानि, सो काशी सेइय कस न ॥ रा० मा०

महिमा और भी बढ़ गई। विश्वेश्वर लिङ्ग कलियुग में अन्तर्हित हो जाता है, और सत्य, त्रेता, द्वापर में प्रकट रहता है। कलियुग में विश्वेश्वर की पुरी अन्नपूर्णा की पुरी हो जाती है। ऐसा ही क्रम अनादि काल से चला आता है। इस पुरी में अन्नपूर्णा विश्वनाथ का मुक्ति का सदावर्त चलता है।

काशी की महिमा

इस पुरी में सातो पुरियाँ और चारों धाम निवास करते हैं। इसकी यात्रा से सब पुरियों और यात्राओं का फल हो जाता है। यावत् लिङ्ग देवमूर्ति, पुण्य क्षेत्र और पुण्य सर नदीनद हैं, वे सब पन्द्रह कलाओं से काशी में निवास करते हैं और एक एक कला से अपने अपने स्थान में रहते हैं, अतः काशी को छोड़कर अन्य तीर्थयात्रा करने का विधान नहीं है।

काशीयात्रा के लिये किसी शुभ मुहूर्त देखने की आवश्यकता नहीं है, दिक्शूलादि दोष भी नहीं हैं, जिस समय काशी के लिये उठ पड़े वही शुभ है। यहाँ मरण में काल का दोष नहीं, उत्तरायण, दक्षिणायन, अथवा रात दिन आदि किसी बात का विचार नहीं, न यहाँ स्थल का दोष है, न दुर्मरण का दोष है, लोगों ने ठीक कहा है कि 'काशी तीन लोक से न्यारी है।'

काशी में क्षण मात्र वास का भी विशेष फल है। काशी के दर्शन का भी फल है। पूर्व जन्म के जितने पातक महापातक हैं और वर्तमान जन्म में काशी से बाहर किये हुए जितने पातक महापातक हैं। वे सब काशी में शरीर छोड़ने से भस्म हो जाते हैं, मृत जीव के ऋण का भी भार अपने ऊपर लेकर विश्वेश्वर उसे उऋण करके आवागमन से रहित कर देते हैं।

काशी में शरीर छोड़नेवाले के श्राद्धादिक की कोई आवश्यकता नहीं है, परन्तु विश्वेश्वर की आज्ञा है कि हमारे क्षेत्र में वैदिक कर्म का लोप न हो, सम्पूर्ण कर्मकाण्ड मेरी प्रीति के लिये किया जाय, इस कारण श्राद्धादि तथा प्रेतक्रिया मृत व्यक्ति के मुक्त होने पर भी अवश्य करनी चाहिये। किसी ब्राह्मण का काशीवास करा देने से भी काशीवास का फल होता है।

जहाँ काशी में जीवों के उद्धार के लिये इतना सुभीता है, वहाँ काशी में किये हुए पाप के लिये दण्ड भी बड़ा घोर है। काशी में शरीर छोड़नेवाले के शासक यमराज नहीं हो सकते, वह उनके शासनाधिकार Jurisdiction से बाहर है। उसके शासक भैरवजी हैं, पर उनकी दी हुई यातना यम यातना से भी बड़ी घोर है। यद्यपि वह यातना प्राणोत्क्रमण के समय तारकोपदेश से पहिले ही हो जाती है, पर उस समय का क्षण परमेश्वरी भाषा से युग और कल्प से भो बड़ा (दण्डनीय को) प्रतीत होता है, और 'मगधेन समा काशी गङ्गाप्यङ्गारवाहिनी' यह वचन भी चरितार्थ हो जाता है।

भैरवी यातना

काशी में मध्यमेश्वर नाम का लिङ्ग है, उसी नाम से वह मुहल्ला भी बोला जाता है। सो मध्यमेश्वर को केन्द्र मानकर सूत का एक सिरा यदि वहाँ पर स्थिर कर दिया जाय, और उसी सूत्र को लिये हुए देहलीविनायक तक चला जाय, अर्थात् मध्यमेश्वर से देहलीविनायक तक जो फासिला है, उतना ही बड़ा (पाँच कोस का) सूत्र हो। उस सूत्र को मध्यमेश्वर के चारों ओर घुमाने से जो मण्डलाकार रेखा बनेगी उसी को काशी की सीमा समझना चाहिये। गङ्गापार का काशी का अंश शाप से लुप्त हो गया है।

काशी का परिमाण

काशी के भीतर वाराणसी है, वाराणसी के भीतर अन्तर्गृह है, और अन्तर्गृह के भीतर अविमुक्त क्षेत्र है।

अन्तर्भूमिका तदनुसार मुक्ति तारतम्य

(१) **वाराणसी** उत्तर दक्खिन में वरुणा नदी से असी तक है, पूर्व की ओर उसके गङ्गा है और पश्चिम की ओर पाशपाणि विनायक तक फैली हुई है।

(२) **अन्तर्गृह** के पूर्व में मणिकर्णिकेश्वर, पश्चिम में गोकर्णेश्वर, उत्तर में भारभूतेश्वर तथा दक्षिण में ब्रह्मेश्वर हैं।

(३) **अविमुक्त** के पूर्व में अट्टहासेश्वर, पश्चिम में गोकर्णेश्वर, उत्तर में घण्टाकर्णेश्वर और दक्खिन में भूतधात्रीश्वर हैं। यह क्षेत्र विश्वेश्वर के चारों ओर दो सौ धनुष तक फैला हुआ है।

काशी में शरीर छोड़नेवाले को साक्षात् सालोक्य मुक्ति मिलती है, फिर एक कल्प के बाद सारूप्य मुक्ति, पुनः एक कल्प के बाद सामीप्य तत्पश्चात् सायुज्य मुक्ति होती है। काशी में मरा हुआ फिर संसार में नहीं आता। परा क्रम मुक्ति होती है।

वाराणसी में देह त्याग करनेवाले को सारूप्य मुक्ति मिल जाती है फिर सान्निध्य पाकर सायुज्य पाता है।

अन्तर्गृह में मरनेवाले की सान्निध्य मुक्ति होकर सायुज्य मुक्ति होती है, और अविमुक्त में सीधे २ सायुज्य मुक्ति हो जाती है।

काशी का स्वरूप

ब्रह्मवैवर्तपुराण में लिखा है कि ऋषियों ने विष्णु भगवान् से पूछा कि 'यह जल के ऊपर छाता-सा क्या प्रकाशित हो रहा है ? इस प्रलय में पृथ्वी तो डूब गई, यह क्यों बँचा है ?' विष्णु ने कहा कि जब मैंने लोक-रक्षा के लिये सदाशिव महादेव का स्मरण किया, तो वह प्रभु प्रादेशमात्र लिङ्गरूप धारण करके मेरे हृदय से बाहर निकल आये, और बढ़ते बढ़ते पाँच कोस के हो गये। यह जो छत्राकार परंज्योति आकाश में दिखलाई पड़ रही है, जो पाताल से लेकर वैकुण्ठ तक व्याप्त होकर ऊपर ठहरी हुई है, उसी परमज्योति को वेद ने काशी कहा है। कभी वह छत्राकार दिखाई पड़ती है, कभी दण्डाकार दिखाई पड़ती है। कभी लिङ्गाकार, कभी पिण्डाकार और कभी त्रिकोण दिखलाई पड़ती है। इसे मुनि लोग अपनी बुद्धि के अनुसार देखते हैं। जड़ होने से पृथ्वी पर्वत, वन तथा प्राणियों के साथ डूब गई, पर चेतन होने से यह लिङ्ग छत्राकार बना हुआ है। चैतन्य और जड़ यदि इकट्ठे रहें, तो भी एक नहीं हो जाते, यह बात महाभाग लोग जानते हैं, और कहते हैं, इसलिये ब्रह्मरूपा काशी जड़ न होने से *तीन लोक से न्यारी है।

---

* श्रीमान् रोलेण्ड ने लिखा है कि स्वामी रामकृष्ण परमहंस को बनारस पत्थर का बना हुआ नहीं दिखाई पड़ा, बल्कि चिद्घन का समूह मालूम पड़ा। जिन दूसरे योगियोंने पवित्र काशी की यात्रा की है, उनको भी ऐसी ही अनुभूति हुई है।

He visited Benares, it seemed to him not built of stones,

काशी का पृथ्वी से सम्बन्ध

शिवपुराण में उक्त है कि करुणामय शिवजी ने विचारा कि कर्म के पाश से बँधे हुए जीव मुझे नहीं देख सकेंगे, ऐसा विचार करके शिवजी ने त्रिशूल पर से उतार कर उसे मृत्युलोक में रख दिया।......यह कर्म को कर्षण करती है इसलिये इसका नाम काशी है।

काशी का अति संक्षिप्त इतिहास

अति प्राचीन काल से काशी के राजा चन्द्रवंशी होते आये हैं। कल्पभेद से उनके चरित में भेद पाया जाता है, परन्तु हमें वर्तमान श्वेतवाराह कल्प के वैवस्वत मन्वन्तर की बातें देखनी हैं।

इस मन्वन्तर में चन्द्र के पुत्र बुध और बुध के पुरूरवा हुए। पुरूरवा की पाँचवी पीढ़ी में 'काश' नाम के राजा हुए, उनके अधिकार में यह भूमि थी, इसलिये काशी कहलाई। और उनके वंशज काशिराज कहलाये। काश की छठी पीढ़ी में राजा दिवोदास हुए, जिन्होंने वाराणसी बसाई।

इस मन्वन्तर की अठारहवीं चतुर्युगी में नीललोहित रुद्र ने पार्वती से व्याह किया और कैलास में रहे। परन्तु भगवती को मैके में रहना नापसन्द हुआ, अत एव महादेवजी से कहा कि 'मुझे अपने घर ले चलो'। सो महादेवजी उन्हें अपने सनातन गृह अविमुक्त महा श्मशान (काशी) में ले आये। शङ्कर भगवान् कभी इसे नहीं छोड़ते, इसी से इसका नाम 'अविमुक्त' है। कभी लिङ्ग रूप से प्रकट होकर रहते हैं और कभी अन्तर्हित होकर रहते हैं, पर कभी इसका त्याग नहीं करते। अन्नपूर्णा को यह उजाड़ श्मशान पसन्द न आया, कहने लगीं 'मैं तो यहाँ न रहूँगी'। शङ्कर भगवान् ने कहा—'मैं तो घर में रहता नहीं, यह अविमुक्त ही मेरा घर है'। अन्त में यह निश्चय हुआ कि तीन युग में काशी श्मशान रहे और कलियुग में यह अन्नपूर्णा की पुरी होकर बसे, सो कलि में विश्वनाथ की मूर्ति अन्तर्धान हो जाती है। निदान इस मन्व-

---

but 'a condensed mass of spirituality.' This has also been the experience of other Yogis who have visited sacred Kashi. (Life of Ramkrishna by M. Romain Rolland.)

न्तर में विश्वनाथ को काशी आए यह चौदहवीं चतुर्युगी बीत रही है, क्योंकि चौदहवीं चतुर्युगी में वे काशी आये और यह अठ्ठाईसवीं चतुर्युगी है। तब से चौदह बार कलियुग आया और गया, तदनुसार चौदह बार विश्वेश्वर का ज्योतिर्लिङ्ग तिरोधान और प्रकट हो चुका। इस बार के तिरोहित होने का बाह्य कारण बादशाह औरङ्गज़ेब हुआ।

चन्द्रवंशी क्षत्रियों के अधिकार में यह राज्य महाराज जयचन्द के समय तक था और यहाँ का अन्तिम राजा बन्नार (यवनारि) ग़ाज़ीमियाँ (सालार मसऊदग़ाजी) के हाथ खेत रहा।

उसी समय से हिन्दुओं का आधिपत्य काशी पर से जाता रहा, औरङ्गजेब के बाद चिरकाल तक काशी बिना विश्वनाथ की रही, अन्ततः धर्मप्राण अहल्याबाई ने साम, दान, भय, भेद के द्वारा लखनऊ के नवाब से विश्वनाथ स्थापन की मञ्जूरी प्राप्त की और अष्टोत्तर शत उपनिषदों के टीकाकार ब्रह्मर्षिकल्प नारायणशास्त्रीजी के हाथों से विश्वनाथ का स्थापन कराया।

कालक्रम से फिर काशी का आधिपत्य हिन्दू नरपति महाराज बरिवण्ड सिंह के हाथ में आया, पर उनके पुत्र महाराज चेतसिंह राज्यभार को बहुत दिन तक नहीं चला सके और लार्ड हेस्टिङ्ग के समय में यह अङ्गरेजी राज्य में मिला लिया गया। अब भी विश्वनाथजी में नौबत सरकार की ओर से बजती है।

काशी के खण्ड

हम पहिले कह आये हैं कि काशी के भीतर और उससे परिमाण में छोटी महिमा में बड़ी वाराणसी है, यह वरुणा और असी (शुष्का नदी) इन दो नदियों के बीच में है। इसकी पूर्व की सीमा गङ्गाजी और पश्चिम की सीमा पाशपाणि विनायक हैं। इस वाराणसी के भीतर तीन खण्ड हैं, जो इससे परिमाण में छोटे और महिमा में बड़े हैं, यथा (१) केदारखण्ड, (२) विश्वेश्वरखण्ड (३) और ओङ्कारखण्ड। या यों कहिये कि तीन अन्तर्गृह वाराणसी में हैं—(१) केदार का अन्तर्गृह (२) विश्वनाथ का अन्तर्गृह (३) तथा ओंकारेश्वर का अन्तर्गृह। इनमें से विश्वेश्वर

के अन्तर्गृह का वर्णन पहिले कर आये हैं ! ओङ्कारेश्वर के अन्तर्गृह का हमें पता नहीं चला और न अब इसकी यात्रा प्रचलित है।

केदारखण्ड अथवा केदार अन्तर्गृह की यात्रा भी प्रचलित है और उसी की महिमा का अनुवाद लेकर हम आपके सामने प्रस्तुत हैं।

केदार-खण्ड

केदारखण्ड की पूर्व की सीमा आधी गङ्गा तक है, पश्चिम में वैद्यनाथजी (सेण्ट्रल हिन्दू कालिज के पश्चिम) तक, दक्षिण में लोलार्क (भदैनी) तक और उत्तर में शूलटंकेश्वर (दशाश्वमेध) तक है। ईशान और अग्निकोण में यह आध कोस तक चली गयी है। नैऋत्य कोण में शङ्खोद्धार तीर्थ (संखूधारा) तक और वायव्य में रमातीर्थ (लक्ष्मी कुण्ड) तक फैली हुई है। इसका मानचित्र मूल ग्रन्थ के आरम्भ में दिया हुआ है। इसकी सीमा काली रेखा से मर्य्यादित की गई है। काली रेखा से बाहर की भूमि केदारखण्ड से बाहर है। बाहर की भूमि को दिखा देने से ईप्सित क्षेत्र के पता लगने में सुभीता होता है, इसलिये दिखला दी गई।

परन्तु सनातन से जो अन्तर्गृह यात्रा प्रचलित है, उसमें निर्दिष्ट सीमा के बाहर की भी कुछ भूमि चली आती है। इसके लिये बहुत से यात्रा के विशेषज्ञों से तथा पण्डितों से दर्याफ्त किया, परन्तु उन लोगों से यही उत्तर मिला कि वह भूमि भी लोलार्क प्रान्त में होगी। (मैंने ऐसी भूमि को मानचित्र में काले बिन्दुओं से मर्य्यादित कर दिया है) परन्तु इस उत्तर से मुझे सन्तोष न होता था। बहुत कुछ सोचा विचारा इधर उधर की पुस्तकें भी देखीं। पर बात समझ में नहीं आती थी। सनातन से जो अन्तर्गृह की प्रथा है, उससे और शास्त्र से भेद न होना चाहिये, अमर्य्यादित रीति से प्रान्त मान लेना भी ठीक नहीं लोलार्क प्रान्त की कोई निर्दिष्ट सीमा नहीं है। इसी उधेड़ बुन में मैं एक दिन गुरु चरणों में चला गया और वहाँ मुझे हिमालय केदारखण्ड देखने को मिला और उसी से मेरे सन्देह की निवृत्ति हुई। **काशीकेदारखण्ड** का अनुवाद करते समय मुझे मालूम हो गया था कि हिमालय से केदारजी अपने सम्पूर्ण तीर्थ, सरित, सरोवर आदि के साथ आकर काशी में बसे, और अब **'हिमालयकेदारखण्ड'**

देखने से यह पता चला कि मायापुरी, केदारखण्ड के अन्तर्गत है, अतः यहाँ भी मायापुरी को केदारखण्ड के अन्तर्गत होना चाहिये। यहाँ असी संगम मायापुरी है। यथा—'असी संभेदकोणे तु गङ्गाद्वारं प्रकीर्तितम्।' मायापुरी का ही अपर नाम गङ्गाद्वार है, यथा—'इदन्तीर्थं महापुण्यमभूद्गङ्गागमे पुनः। गङ्गाद्वारमिति ख्यातं स्मरणात्पापनाशनम्॥' अतः असीसङ्गम केदारजी के अन्तर्गृह के भीतर है। महामाया की सिद्ध पीठ ठीक दुर्गाजी के पूर्व भाग में है, और शुष्केश्वरी (असी) देवी की मूर्ति दुर्गाजी के दक्षिण भाग में है। अतः इस प्रान्त को चाहे लोलार्क प्रान्त के नाम से कहिये चाहे असी सङ्गम प्रान्त कहिये, पर इसका केदारखण्ड के अन्तर्गत होना सिद्ध है।

करुणामय भगवान् भवानीपति कैलास से बदरिकाश्रम में जनों के उद्धार के लिये ज्योतिर्लिङ्ग रूप से प्रकट हुए और केदारेश्वर कहलाये।

केदारलिङ्ग

उनके दर्शन से सद्यः मुक्ति मिलती थी, अतः वहाँ बड़ी भीड़ होने लगी। ब्रह्मदेव के अपराध से वह लिङ्गमूर्ति तिरोहित हो गई, और वहाँ केवल पृष्ठ भाग का चिन्ह शेष रह गया। पद्मकल्प में भगवान् नन्दिकेश्वर की प्रार्थना से केदारेश्वर काशी आये, परन्तु वहाँ भी लिङ्गमूर्ति गुप्त रहती थी। कभी किसी भक्त को बहुत बड़ी तपस्या करने के बाद कदाचित् दर्शन हो जाता था शिवापराध से निस्तार का कोई उपाय नहीं है। वह केदारलिङ्ग के पूजन और गौरीकुण्ड के स्नान से ही मिटता है, अतः विश्वेश्वरादि लिङ्ग के होते हुए भी मर्मज्ञों को केदारलिङ्ग के दर्शन की उत्कट इच्छा थी।

स्मरण रखने की बात है कि भगवान् शिव एक होने पर भी भक्तों के अनुरोध से कभी उनके स्थापित लिङ्ग द्वारा और कभी स्वतः प्रकट

लिंग भेदानुसार व्यवहार भेद के कारण

हुआ करते हैं और उन पूर्ण काम लोकहितैकव्रत भक्त महानुभावों की प्रार्थना से उन लिङ्गों में ठहर कर उनके वरदानानुसार लोक की कामना पूर्ण किया करते हैं। इसी लिये अलग-अलग लिङ्गों के अलग-अलग माहात्म्य हैं और एक महादेव, मूर्तिभेद तथा माहात्म्यभेद से अनेक की भाँति व्यवहृत होते हैं।

जिस भाँति काशी में पुण्यात्मा राजा, महाराजा, सेठ, साहूकारों ने दीन-दुखियों के भरण-पोषण के लिये अपने कोष की बहुत बड़ी रक़म लगाकर सदावर्त खोल रक्खे हैं, पुराणेतिहास पाठ से विदित होगा कि उसी भाँति शङ्कर के कृपापात्र लोकोपकारी महातपस्वियों ने लोकोपकार के लिये अपनी सारी तपस्या लगा दी है।

धन तथा तपस्या का सदावर्त

ऐसे महात्माओं में अग्रगण्य अयोध्या के राजा महाराज मान्धाता थे, जिन्होंने बहुत ही बड़ी तपस्या करके श्रीकेदारलिङ्ग का दर्शन काशी में सब लोगों के लिये सुलभ कर दिया। उस लिङ्ग में केदारजी पन्द्रह कला से निवास करने लगे और यह वरदान ले लिया कि काशीकेदारक्षेत्र में शरीर छोड़नेवाले जीवों को भैरवी यातना भी न हो। उस समय से केदार खण्ड (काशी) में भैरवी यातना बन्द हो गई, और केदारखण्ड की विश्वेश्वरखण्ड से भी अधिक प्रतिष्ठा हो गई। इस समय के विद्वत्-कुलमुकुटमणि म० म० शिवकुमारशास्त्रीजी, यद्यपि विश्वेश्वरखण्ड के रहनेवाले थे, पर शरीरत्याग करने के समय केदारखण्ड में चले आये। ज्योतिर्विदग्रगण्य म० म० अयोध्यानाथजी का मकान सम्भवतः ओङ्कारेश्वरखण्ड में है, फिर भी देह त्यागना उन्होंने भी केदारेश्वर खण्ड में ही उचित समझा। निदान महाराज मान्धाता की तपस्या की पूंजी ऐसी असीम है कि उसने केदारक्षेत्र के लिये विश्वनाथ के सदावर्त से भी भैरवी यातना रूपी अर्गला सदा के लिये हटा दी।

केदारक्षेत्र में भैरवी यातना न होने का कारण

यह कथा किंपुरुषकल्प की है। इस समय श्वेतवाराहकल्प चल रहा है। तब से कई बार त्रैलोक्य का प्रलय और सृष्टि हो चुकी, पर उस परोपकारी के यश में तिल भर भी भेद न पड़ा।

मान्धाता का यश

भगवती श्रुति कहती है कि जिस प्रकार एक कल्प में सृष्टि हुई, उसी प्रकार दूसरे कल्पों में भी होती है, अतः ज्योतिर्लिङ्गादि तीर्थ सब बने रहते हैं। उनमें भेद नहीं पड़ता।

कल्पभेद होने पर भी यथापूर्व व्यवस्था

इस समय वैवस्वत मन्वन्तर की अट्ठाईसवीं चतुर्युगी का कलियुग वर्तमान है। इसमें औरङ्गजेब बादशाह अजमत और करामात की परीक्षा लेता हुआ सम्पूर्ण उत्तरीय भारत में मन्दिरों और मूर्तियों को तोड़ता फोड़ता फिरा। विश्वनाथ जी के मन्दिर को तोड़ने के बाद उसकी दृष्टि केदारेश्वर की ओर फिरी। सुनते हैं कि उस समय केदारेश्वरजी के मन्दिर के उत्तर भाग में एक सिद्ध मुसलमान फकीर भौंरशाह रहता था। उसने बादशाह को केदारजी की ओर जाने से मना किया, पर बादशाह के मन में बात नहीं बैठी और नन्दी तक पहुँच गया, कटार का वार किया। जनश्रुति है कि नादिया (नन्दी) के शरीर से लोहू की धारा वह निकली। जो हुआ हो, पर कोई कारण ऐसा अवश्य हुआ जिससे कि वह आगे न बढ़ सका, नहीं तो श्रीकेदारेश्वर के मन्दिर की भी वही दशा होती जो कि इस समय श्रीविश्वनाथ के प्राचीन मन्दिर की है।

औरंगजेब की करतूत

श्री केदारेश्वरजी के नादिया के बाए पुट्ठे पर अब भी कटार की चोट मौजूद है। श्रीकेदारजी के लिङ्ग के विषय में आप मूलग्रन्थ में पढ़ेंगे कि महाराज मान्धाता ने मूँग की खिचड़ी पकाई थी, वही पाषाण रूप में परिणत हो गई। उस खिचड़ी में रेखा करके राजर्षि ने अतिथि का भाग अलग कर दिया था। वह रेखा आज भी उक्त लिङ्ग में वर्तमान है, और कपूर आदि के तीव्र प्रकाश में लिङ्ग में मूँग की दाल की आभा प्रत्यक्ष दिखलाई पड़ती है। यह कोई कल्पित बात नहीं है, कोई भी इसे आज प्रत्यक्ष देख सकता है।

केदारलिङ्ग की विचित्रता

इस समय जो श्रीकेदारेश्वर का मन्दिर है, उसे दक्षिण से आकर एक महात्मा कुमारस्वामी ने बनवाया। आप भगवान् कार्तिकेय के उपासक थे। श्रीकेदारेश्वरजी के पूजन के साथ साथ इस मन्दिर में भगवान् कार्तिकेय की भी उपासना होती है। सोमवार आदि विशिष्ट पर्वों में उनकी सवारी निकलती है। कार्तिक के महीने में तारकासुरवध की लीला होती है और बड़ी धूम से सवारी निकलती है।

केदारेश्वर का मन्दिर

उन्हीं कुमारस्वामीजी के शिष्य-सम्प्रदाय की ओर से आज भी विधानपूर्वक श्रीकेदारेश्वर की सेवा-पूजा होती है। श्रीकुमारस्वामीजी के बाद उनके शिष्यों ने लखनऊ के नवाब से भूमि प्राप्त की और मठ बनवाया। सुनते हैं कि किसी समय इस मठ से सम्बद्ध ३६० चौक मकान थे और सैकड़ों आदमियों का क्षेत्र था। कुमारस्वामीजी के शिष्य सम्प्रदाय के लोग महन्त होते थे। पर अब महन्त यहाँ नहीं रहते, मैनेजर द्वारा काम होता है, फिर भी पूजन अर्चन की व्यवस्था बहुत अच्छी है। लगभग ११५ वर्ष हुए महाराजा अमृतराव विनायकराव पेशवा (दक्षिण) ने केदारजी के मन्दिर के सामने पक्का घाट बँधवाया।

श्रीकाशीकेदार-माहात्म्य

श्रीकाशीकेदारमाहात्म्य का नाम बचपन से वृद्धों के मुख से सुनते आते हैं। इसके देखने की इच्छा भी बहुत दिनों से थी, पर पोथी नहीं मिलती थी। न मिलनेवाली वस्तु पर उत्कण्ठा भी अधिक होती है। कई बार जी में संकल्प उठा कि यदि कहीं से 'काशीकेदारमाहात्म्य' मिल जाय, तो उसका हिन्दी में अनुवाद करके छपवा दूँ। पर उसमें दो बाधाएँ बड़ी बड़ी थीं। एक तो यह ग्रन्थ दुष्प्राप्य था, और दूसरे पुस्तक छपवा कर लाभ उठाने की विद्या से मैं सर्वथा अनभिज्ञ था, बहुत ही साधारण गृहस्थ होने से छपवा कर धर्मार्थ वितरण करने में असमर्थ था। निदान मन से इस संकल्प को हटा देना पड़ा।

भगवती श्रुति ने ठीक कहा है 'यद्यत्कामयते तत्तल्लभते।' मेरी शुभ कामना थी, अतः परमेश्वर ने उसके पूरे होने का द्वार निकाल दिया। किसी समय बात ही बात में हमने श्रद्धास्पद पं० नित्यानन्द पाण्डेय जी बी० ए०, एल० एल० बी० से अपनी एतद्विषयक कामना प्रकट की थी। न जाने उनके कहने से अथवा श्री केदारेश्वरजी की प्रेरणा से उनके कृपापात्र, सुविख्यात धर्मप्राण सेठ गौरीशङ्कर गोइनकाजी ने हमसे 'श्रीकाशीकेदारमाहात्म्य' के भाषानुवाद के लिये अनुज्ञा दी। मेरी तो माँगी मुराद मिल गई, मैंने तुरन्त स्वीकार कर लिया। वेदान्तदीक्षैकगुरु श्रीपरमहंस परिव्राजकाचार्य्य

श्रीस्वामी घनश्यामानन्दजी तीर्थ, मुमुक्षुभवन-काशी के सरस्वतीभवन में एक प्रति 'काशीकेदारमाहात्म्य' की थी, सेठजी ने उसे मेरे पास भेज दिया।

पुस्तक पाकर मैं प्रसन्न हुआ, पर वह लिखी ऐसी गई थी, और उसकी रचनाशैली भी ऐसे प्राचीन ढङ्ग की है कि उसके पढ़ने और समझने में बड़ी कठिनाई पड़ी। श्री गुरुचरणों की आज्ञा हुई कि तीन प्रतियों के मिलान से ग्रन्थ शुद्ध होता है।

अब मैं और दो प्रतियों के पाने की चिन्ता में पड़ा। अनुमान किया कि श्रीकुमारस्वामीजी के मठ में अवश्य ही कोई प्रति होगी। भ्रातृकल्प पं० उमाकान्त पाण्डेय वकील की सिफारिश पहुँचाई, परन्तु वहाँ यह ग्रन्थ था ही नहीं। हाँ, एक बात अवश्य हुई कि मैनेजर साहब की कृपा से पं० सूर्यनारायण शास्त्री (क्षेमेश्वर घाट) से मेरी मुलाकात होगई। उनके पास तैलङ्गाक्षर की छपी हुई पचास वर्ष की पुरानी एक प्रति मिली, और श्रीसेठजी ने म० म० लक्ष्मणशास्त्रीजी के यहाँ से एक और हस्तलिखित प्रति मँगा दी। इन दोनों प्रतियों की सहायता से मुझे स्वामीजी की प्रति के पढ़ने में बड़ी सफलता हुई, वास्तव में स्वामीजी की प्रति का पांठ इन दोनों प्रतियों के पाठ से बहुत अच्छा है। मैंने स्वामीजी की प्रति के पाठ को ही प्रधान रक्खा पर इन दोनों के पाठभेद की टिप्पणी कर ली। म० म० लक्ष्मण शास्त्रीजी की प्रति के उल्लेख के लिये मैंने 'क' संकेत रख लिया है और पं० सूर्य्यनारायण शास्त्रीजी की प्रति का संकेत 'ख' रक्खा है।

काशीमूलरहस्य का पता बहुत कुछ लगाने पर भी कहीं नहीं लगा, अतः ओङ्कारेश्वर खण्ड के विषय में कुछ भी परिज्ञान न हो सका।

अनुवाद करने में मैंने थोड़ी सी स्वतन्त्रता से काम लिया है। संस्कृतवाक्यरचना क्रम का भी यदि मैं हिन्दी अनुवाद में अनुकरण करता तो अनुवाद की भाषा दुरूह हो जाती।

अनुवाद

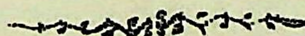
अतः अगत्या मुझे अनेक स्थलों में अक्षरानुवाद पर ध्यान न रखकर भाव-रक्षा पर ही विशेष ध्यान रखना पड़ा। अनुवाद

में मैंने मूल श्लोक की संख्या भी दे दी है। मेरी संस्कृत की योग्यता अतीव सङ्कुचित है, अतः दो चार स्थलों में मुझे भ्रातृकल्प पं० केशवप्रसाद मिश्र, प्रोफेसर हिन्दूयुनिवर्सिटी से सहायता लेनी पड़ी और पं० योगेश्वर झा, अध्यापक मुमुक्षुभवन ने सम्पूर्ण ग्रन्थ के संशोधन का कष्ट उठाया, इसलिये मैं उपर्युक्त महाशयों का कृतज्ञ हूँ।

मैं धर्मप्राण सेठ गौरीशङ्करजी गोइनका को धन्यवाद न देकर आशीर्वाद देता हूँ कि भगवान् भवानीपति इनकी धर्म बुद्धि को, जो कि इस समय भी प्रचुर परिमाण में उन्हीं की दया से है, और भी बढ़ावें, जिसकी कृपा से मुझे श्री केदारगुणगणानुवाद करके अपने केदारखण्ड-निवास को सफल करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

शुभम्।

विजयानन्द त्रिपाठी
भदैनी (भद्रवनी) काशी।





काशीकेदार-माहात्म्य की विषयानुक्रमणिका



छठा अध्याय १२२–१४६ ।

१२२–१३६ ब्रह्मराक्षस का मुक्ति-लाभ । १३७–१४२ राजा और राज-मन्त्री के इस जन्म में विष्णु एवं ब्रह्मा होने की कथा । १४३–१४६ गौरी-तीर्थ में श्रावण के सोमवार को स्नान करने का माहात्म्य ।

सातवाँ अध्याय १४७–१६३ ।

गौरी एवं रमा का अपनी अपनी विजय के लिये शपथ धराना, विष्णु का रमा की जीत के लिए उपाय बतलाना, गौरी की इच्छा पर शिवजी का एक अपूर्व आख्यान सुनाना, पर नैगमेय द्वारा मालूम रहने से रमा का उसे कह सुनाना, पुनः गौरी का क्रमशः एक शत कथाओं का शिवजी से सुन कर लक्ष्मी को सुनाना पर लक्ष्मी द्वारा उन कथाओं के कहे जाने पर दुःखी होना, शङ्कर-जी का नैगमेय की करतूत जान कर उसकी अनुपस्थिति में अनेक कथाओं को सुनाना और लक्ष्मी का अपनी हार मानना ।

आठवाँ अध्याय १६४–१८३

१६४–१७३ लक्ष्मी, पार्वती और सरस्वती का अपने अपने घर जाना, पार्वती का शिवनिन्दा के लिये पश्चात्ताप करना और पूर्व की कथाओं के लक्ष्मी द्वारा कहे जाने की बात पूछना । शंकरजी के भेद खोलने पर गौरी का अत्यन्त क्रुद्ध हो शाप देने के लिये उद्यत होना, पर शङ्करजी का रोकना । पार्वती का उन लोगों को मृत्यु लोक में जन्म लेने के लिये शाप देना, फिर शिव की निन्दा के अपराध के लिये प्रायश्चित्त पूछना, शिवजी का पार्वती को केदार के निकट एक तीर्थ में सावन मास में स्नान करने के लिये उपदेश देना, विष्णु लक्ष्मी, और नैगमेय का शाप से उद्धार पाने के लिये पार्वती के चरणों पर पड़ना । १७३–१८० विष्णु के मृत्युलोक में व्यास होकर पुराणों तथा वेदों की रचना करने, काशी से असन्तुष्ट होकर दूसरी नगरी बसाने और गणेशजी द्वारा उसकी रचना में विघ्न आने पर शिवजी के निकट क्षमायाचना करने की कथा । १८१–१८३ पार्वतीजी का नैगमेय को क्षेम नाम से उत्पन्न होकर व्यासजी का अपमान करने के लिए उपदेश देना तथा लक्ष्मी-तीर्थ की कथा ।

नवाँ अध्याय १८४–२०६ ।

१८४–१८८ शङ्करजी का गौरी को वरदान देना, १८८–२०६ क्षेम कवि (नैगमेय) और व्यास की कथा ।

दसवाँ अध्याय २०७–२२० ।

पुष्पदन्त कृत शिवमहिम्न स्तोत्र ।

बीसवाँ अध्याय ४१४—४२९ ।

मान्धाता की कथा ।

इक्कीसवाँ अध्याय ४३०—४४७ ।

४३०—४४० मान्धाता को शङ्करजी का वर प्रदान करना और उनकी मुक्ति । ४४१—४४७ काशी-केदार का माहात्म्य ।

बाईसवाँ अध्याय ४४७—४६५ ।

काशी में केदारेश्वर के पूजन का माहात्म्य ।

तेईसवाँ अध्याय ४६६—४८३ ।

सनत्कुमार की उत्पत्ति और जय-विजय की कथा ।

चौबीसवाँ अध्याय ४८३—४९२ ।

वामदेव की उत्पत्ति की कथा ।

पचीसवाँ अध्याय ४९२—५०१ ।

राजा चन्द्रवान् की कथा ।

छब्बीसवाँ अध्याय ५०२—५२० ।

नाथशर्मा और अनवद्या के पूर्व जन्म में हंस और हंसिनी होने की कथा ।

सत्ताईसवाँ अध्याय ५२०—५३६ ।

उसी हंस और हंसिनी का दूसरे जन्म में नाथशर्मा और अनवद्या होकर स्वामिकार्तिक के उपदेश से काशी-केदार के दर्शन से शिव-पार्वती स्वरूप होना ।

अट्ठाईसवाँ अध्याय ५३७—५५२ ।

५३७—५५२ शौनकादि ऋषियों का नैमिषारण्य छोड़ कर काशी जाना और सूतजी से मुक्ति के लिये प्रश्न करना । ५४२—५५२ मुक्ति की व्याख्या ।

उनतीसवाँ अध्याय ५५२—५६४ ।

'केदार-क्षेत्र' नाम होने की कथा तथा काशी के केदार-क्षेत्र की उत्कर्षता ।

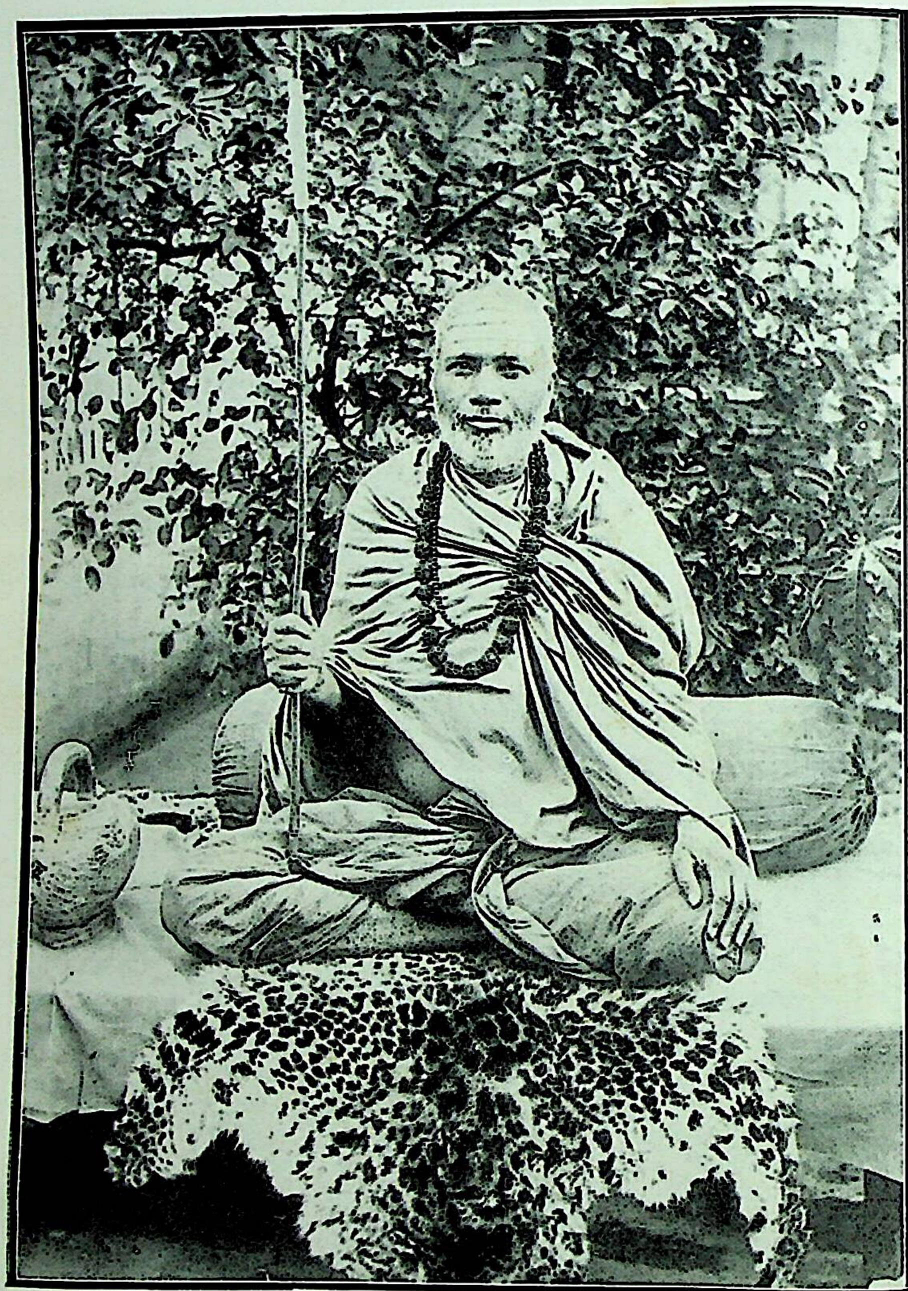
तीसवाँ अध्याय ५६४—५८६ ।

काशी की महिमा को बतलाने के लिये शिवजी का कक्षीवान, सुदास, सुधन आदि अनेकों की कथा को सुनाना ।

इकतीसवाँ अध्याय ५८७—६०४ ।

शिव-पार्वती के विवाह की कथा ।





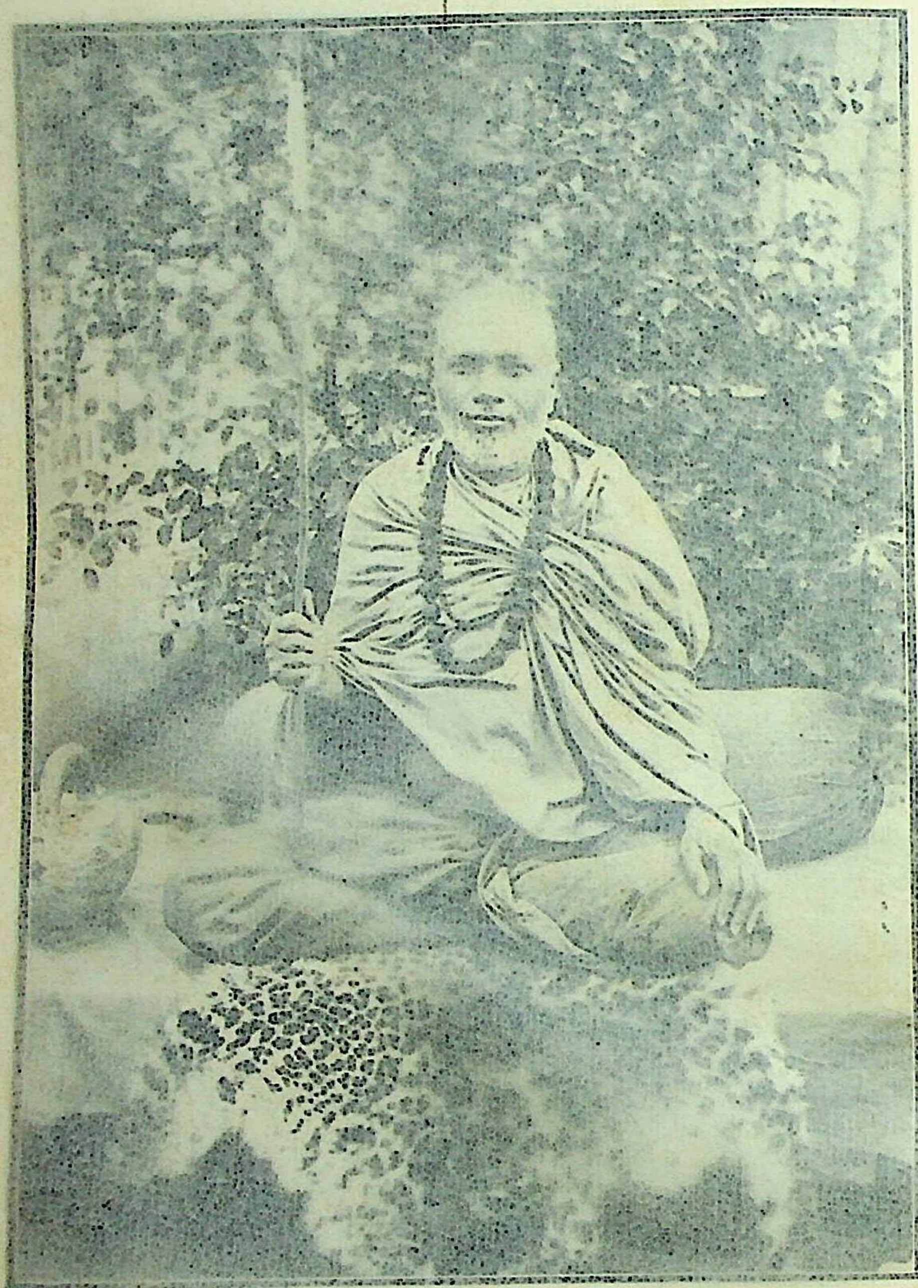
श्रीपरमहंसपरिव्राजकाचार्य श्री १०८ स्वामी घनश्यामानन्दजी
तीर्थ, मुमुक्षुभवन, काशी ।

समर्पण

सद्गुरो,

भगवान् वाल्मीकि के मुख से सुना है कि 'कृतेषु प्रतिकर्तव्यमेष धर्मः सनातनः', परन्तु मेरे-से अकिञ्चित्कर पापमलीमसहृदय पर जैसी श्रीचरणों की अनुकम्पा है, उस ओर ध्यान देने से विनिमय की आकाङ्क्षा भी कृतघ्नता प्रतीत होती है। तथापि श्रीकाशी-केदारखण्ड की महामहिमा मैंने श्रीमुख से बारंबार सुनी है और उसपर जैसी श्रीचरणों की निष्ठा है, सो आँखों देखा है और मूल प्रति के दर्शन का सौभाग्य भी मुझे श्रीचरणों की कृपा द्वारा ही हुआ है, अतः इस हिन्दी अनुवाद को पुष्पाञ्जलिरूप से श्रीचरणों में अर्पित करता हूँ कि मेरी मनस्तुष्टि का किञ्चिन्मात्र कारण हो।

विजयानन्द



श्रीपरमहंसपरिव्राजकाचार्य श्री १०८ स्वामी घनश्यामानन्दजी
तीर्थ, मुमुक्षुभवन, काशी।

समर्पण

सद्गुरो,

भगवान् वाल्मीकि के मुख से सुना है कि 'कृतेषु प्रतिकर्तव्य-मेष धर्मः सनातनः', परन्तु मेरे-से अकिञ्चित्कर पापमलीमसहृदय पर जैसी श्रीचरणों की अनुकम्पा है, उस ओर ध्यान देने से विनिमय की आकाङ्क्षा भी कृतघ्नता प्रतीत होती है। तथापि श्रीकाशी-केदारखण्ड की महामहिमा मैंने श्रीमुख से वारंवार सुनी है और उसपर जैसी श्रीचरणों की निष्ठा है, सो आँखों देखा है और मूल प्रति के दर्शन का सौभाग्य भी मुझे श्रीचरणों की कृपा द्वारा ही हुआ है, अतः इस हिन्दी अनुवाद को पुष्पाञ्जलिरूप से श्रीचरणों में अर्पित करता हूँ कि मेरी मनस्तुष्टि का किञ्चित्मात्र कारण हो।

विजयानन्द

श्रीकेदारेश्वराय नमः ।

काशीकेदारमाहात्म्यम्

भाषानुवादयुतम् ।

अथ प्रथमोऽध्यायः

विघ्नध्वान्तनिवारणैकतरणिर्विघ्नाटवीहव्यवाड्
विघ्नव्यालकुलोपमर्दगरुडो विघ्नेभपञ्चाननः ।

दोहा—चन्द्र मौलि कर शूल, शिर, जटाजूट अभिराम ।
भूतिविभूषित भव्यतनु, जयति त्रिलोचन* राम ॥ १ ॥
महिमा क्षेत्र केदार की, वरणी सूत सुजान ।
शौनकादि प्रति ताहि की, भाषा कहत बखान ॥ २ ॥
निजनिन्दक विधि को दई, महिष होइ हर पीठ ।
जनहित प्रगटे काशिका, प्रेम केदारहिं मीठ ॥ ३ ॥
सोरठा—पाइ शम्भु आदेश, सनक वामदेवहिं कही ।
अनवद्याहिं द्विजेश, व्यास कही सब सूत सन ॥ ४ ॥
महिमा अमित अपार, करुणाकर केदार कर ।
वरणी सूत उदार, सुनी शौनकादिक ऋषय ॥ ५ ॥

जो विघ्नेश्वर विघ्नान्धकार को दूर करने के लिये एकमात्र सूर्य्यरूप हैं, विघ्नवन के दाह के लिये अग्निरूप हैं, विघ्नरूपी सर्पकुल के संहार के लिये गरुडरूप हैं, विघ्नरूपी मतंग के लिये सिंहरूप हैं,

---

* रामं त्रिनेत्रं सोमार्द्धधारिणं शूलिनं परम् । भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गं कपर्दिनमुपास्महे ॥ राम रहस्यो० ।

१ ख. कुलैकमत्त० ।

विघ्नोत्तुङ्गगिरीशमर्दनपविर्विघ्नाब्धिकुम्भोद्भवो
विघ्नाभ्रौघघनप्रचण्डपवनो विघ्नेश्वरः पातु नः ॥ १ ॥
अचतुर्वदनो ब्रह्मा द्विबाहुरपरो हरिः ।
अभाललोचनः शम्भुर्यो व्यासस्तं गुरुं भजे ॥ २ ॥
नैमिषे निमिषक्षेत्रे मुनयः शौनकादयः ।
[1]चक्रविश्रान्तियोगेन आसन् तत्रैव ते मुदा ॥ ३ ॥

विघ्न के भारी पहाड़ को विदारने के लिये वज्ररूप हैं, विघ्न-समुद्र को सोखने के लिये साक्षात् अगस्त्यरूप हैं और विघ्न की घनघोर घटा को उड़ा देने के लिये प्रचण्ड पवनरूप हैं, वे हम लोगों की रक्षा करें। (१)

जो चतुर्मुख न होने पर भी ब्रह्मदेव हैं, जो द्विबाहु रहते हुए भी विष्णु हैं और जो मस्तक में आँख न रखते हुए भी शङ्कर हैं, ऐसे गुरुदेव व्यासजी को मैं नमस्कार करता हूँ। (२)

❀ नैमिषारण्य (नीमसारन) देवभूमि में चक्र† के ठहर जाने से, शौनकादि मुनिगण वहीं प्रसन्नतापूर्वक टिक गये। (३)

❀ × चित्र नं० १ देखिये।

† ब्रह्मदेव ने ऋषियों के लिये एक मनोमय चक्र बना कर छोड़ दिया और कहा कि जहाँ पर इस चक्र की नेमि कुण्ठित हो जाय, वह देश तप के लिये शुभ है, इसी लिये उस देश का नाम नैमिश हुआ, यथा—'एतन्मनोमयं चक्रं मया सृष्टं विसृज्यते। यत्रास्य शीर्यते नेमिः सदेशस्तपसः शुभः॥ इत्युक्त्वा सूर्य्यसंकाशं चक्रं सृष्ट्वा मनोमयम्। प्रणिपत्य महादेवं विससर्ज पितामहः॥ तेऽपि हृष्टतमा विप्राः प्रणम्य जगतां प्रभुम्। प्रययुस्तस्य चक्रस्य यत्र नेमिर्व्यशीर्यत॥ तद्वनं तेन विख्यातं नैमिशं मुनिपूजितम्।'

[यद्यपि नैमिश शब्द शकारान्त और षकारान्त दोनों प्रकार का मिलता है, पर मूल में षकारान्त पाठ है, इसलिए यहां पर वराहपुराणोक्त निम्नलिखित कथानक उपयुक्त प्रतीत होता है—

'एवं कृत्वा ततो देवो मुनिं गौरमुखं तदा।
उवाच निमिषेणेदं निहतं दानवं बलम्॥
अरण्येऽस्मिंस्ततस्त्वेतन्नैमिषारण्यसंज्ञितम्॥'] संपादक।

१ ग. घौघ०। २ क. ख. पुस्तके 'चक्रविश्रान्तियोगेन आसन् तत्रैव ते मुदा'। नास्ति।

कदाचिद्विश्वजिन्नाम सत्रमारभ्य भूसुराः ।
ईजिरे दीर्घकालं ते शिवज्ञानैकवाञ्छया ॥ ४ ॥
शौनकोऽत्रिर्भरद्वाजो वशिष्ठो गालवः शुचिः ।
शातातपः पर्वतश्च नारदो जैमिनिस्तथा ॥ ५ ॥
पैलो मेधातिथिः कण्वो गार्ग्यः पुण्यतपाः क्रतुः ।
अश्माशी जीर्णपर्णाशी तृणाशी कणभक्षकः ॥ ६ ॥
[1]कुशाग्रविन्दुजीवी च नक्ताशी तिलभक्षकः ।
अश्मकुट्टः पर्णशायी जाबालिः सूर्य्यरश्मिभुक् ॥ ७ ॥
स्फुलिङ्गाशी धूमपाश्च जलाशी वायुभक्षकः ।
निरुच्छ्वासी दीर्घरोमास्तृणविन्दुः पतञ्जलिः ॥ ८ ॥
व्याघ्रपादो भस्मशायी रोमशः कौशिकः क्षुपः ।
पक्षोच्छ्वासी सुशर्मा च मासोच्छ्वासी तुषाशनः ॥ ९ ॥

किसी समय में उन ब्राह्मणों ने विश्वजित् नामक यज्ञ आरम्भ करके, शिवजी के ज्ञान-मात्र की इच्छा से बहुत दिनों तक अनुष्ठान किया। (४) शौनक, अत्रि, भरद्वाज, वशिष्ठ, पवित्र गालव, शातातप, पर्वत, नारद, जैमिनि, (५) पैल, मेधातिथि, कण्व, गार्ग्य, पुण्यतपा क्रतु, पत्थर※ खानेवाले, तृण खानेवाले, कणाद, (६) कुशाग्रविन्दु पीकर रहनेवाले, रात को भोजन करनेवाले, तिल खानेवाले, पत्थर से कूटकर खानेवाले, पत्तों पर सोनेवाले, जाबालि, सूर्य्य की किरण आहार करनेवाले (७) चिनगारी आहार करनेवाले, धूमपान करके जीनेवाले, जलभक्षक, वायुभक्षक, श्वास न छोड़नेवाले, दीर्घरोमा, तृणविन्दु, पतञ्जलि, (८) व्याघ्रपाद, भस्म में सोनेवाले, रोमश, कौशिक, क्षुप, पक्ष में श्वास छोड़नेवाले† सुशर्मा, महीने में श्वास छोड़नेवाले, भूँसी खानेवाले, (९) साल में श्वास

※ जिनका जठरानल साधन से अतितीव्र हो जाय, उनको घड़ियालों की भाँति पत्थर भी निगल जाना सम्भव है। † रेचक करनेवाले।

१ क. ख. 'कुशाग्रविन्दुजीवी च नक्ताशी तिलभक्षकः'। नास्ति।

अब्दोच्छ्वासी ब्रह्मशर्मा षाण्मासोच्छ्वासवानृभुः ।
षड्द्वादशाब्दोच्छ्वासी च हारीत उपकौसलः ॥१०॥
इत्याद्याः कोटिसंख्याश्च मुनयो दीर्घदर्शिनः ।
भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गास्त्रिपुण्ड्राङ्कितमस्तकाः ॥११॥
रुद्राक्षमालाभरणाः पञ्चाक्षरपरायणाः ।
शिवागमरहस्यानि श्रुतीश्चैव व्यंचारयन् ॥१२॥
आसीना यज्ञशालायां कथयन्तः शिवं परम् ।
अस्मिन्नवसरे तत्र चागतः सर्वसूक्ष्मवित् ॥१३॥
श्रुतिस्मृतिपुराणागमेतिहासालयः सुधीः ।
व्यासशिष्यः सर्वदर्शी ब्रह्मिष्ठो रौमहर्षणिः ॥१४॥

छोड़नेवाले ब्रह्मशर्मा, छः मास में श्वास छोड़नेवाले ऋभु, छः वर्ष में श्वास छोड़नेवाले हारीत, बारह वर्ष में श्वास छोड़नेवाले उपकौशल (१०) इत्यादि करोड़ों दूरदर्शी ऋषि, सर्वाङ्ग में विभूति रमाये, मस्तक में त्रिपुण्ड्र लगाये, (११) रुद्राक्ष की माला धारण किये, शिवपञ्चाक्षर-मन्त्रपरायण, यज्ञशाला की सभा में बैठे हुए, शिवागम-रहस्य और श्रुतियों को विचारते हुए (१२) शिवजी की वार्ता कर रहे थे ।

ऐसे अवसर पर सब सूक्ष्म बातों को जाननेवाले (१३) श्रुति, स्मृति, पुराण, इतिहास के आलय, बड़े बुद्धिमान् , व्यास के शिष्य, सर्वदर्शी, रोमहर्षण के पुत्र, सूतजी* वहाँ गये । (१४) उन शिव-ज्ञान से पूर्ण समुद्र को देख कर, मुनिगण उठ कर खड़े होगये, और आदर के

---

* अखिल पुराण, उपपुराण, तथा इतिहास के आरम्भ में सूतजी का नैमिष में आगमन पाया जाता है। शौनकादि ऋषियों ने १००० वर्ष का यज्ञ प्रारम्भ कर रक्खा था । अतः यह सिद्ध होता है कि सूतजी का प्रायः वहाँ आना जाना लगा रहता था । यथा भागवत में—'सत्रं स्वर्गाय लोकाय सहस्रसममासत ।' और कथा के प्रचार के लिये वे व्यासजी से सुन कर ऋषियों को सुनाया करते थे ।

१ ग. पुस्तकीयोऽयं पाठः, आ० पु०—'विचारयन्' । २ ग. पुस्तकीयोऽयं पाठः, आ० पु०—'आसीना यज्ञशालाया: सभायां कथयन् शिवम् ।'

तं दृष्ट्वा ते शिवज्ञानपूर्णवारिधिमादरात् ।
प्रत्युत्थाय समालिङ्ग्य मध्ये [1]समुपवेशयन् ॥१५॥
आसनाद्यैश्च सम्पूज्य पप्रच्छुः स्वागतादिकम् ।
पुनस्तमूचुर्मुनयः कुतोऽभ्यागमनं तव ॥१६॥
रोमहर्षणिराहैतान् [2]केदारादहमागमम् ।
तदा ते मुनयः सर्वे शिवतत्त्वार्थवाञ्छया ॥१७॥
पप्रच्छुस्तमतिप्रीत्या शिवज्ञानैकभाजनम् ।
किं चित्रं तत्र भगवन् केदारेशस्य नो वद ॥१८॥
रहस्यं परमेशस्य भवतः श्रोतुमुत्सुकाः ।
तवाज्ञातं किञ्चिदपि न रहस्यं महेशितुः ॥१९॥
सद्गुरोरुपदेशात्त्वं व्यासस्य च महामतेः ।
इति [3]पृष्टो व्यासशिष्यो मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥२०॥
तान् वक्तुमारभद् गुह्यं[4] शिवस्य [5]शिवसक्तधीः ।

साथ मिल कर उन्हें अपने बीच में बिठाया (१५) आसनादिक से उनकी पूजा करके, स्वागत किया । इसके पश्चात् मुनिगण ने उनसे पूछा कि आप कहाँ से आरहे हैं ? (१६) रोमहर्षणजी के पुत्र सूतजी ने कहा कि मैं केदारजी से आ रहा हूँ । तब उन सब मुनियों ने शिवतत्त्वार्थ के जानने की इच्छा से, अत्यन्त प्रेमपूर्वक (१७) शिवज्ञान के एकमात्र पात्र सूतजी से पूछा कि हे भगवन् ! परमेश्वर केदारजी का कैसा विचित्र रहस्य है ? (१८) सो हम लोग आपसे सुनने के लिये उत्सुक हैं, आप कृपा करके हमसे कहें । महेश्वर का कोई रहस्य ऐसा नहीं है (१९) जो महाबुद्धिमान् सद्गुरु व्यासजी के उपदेश द्वारा आपको ज्ञात न हो ।

जब तत्त्वदर्शी मुनियों ने व्यासजी के शिष्य सूतजी से ऐसा पूछा, (२०) तब शिवभक्त सूतजी ने शिवजी का रहस्य कहना प्रारम्भ किया ।

---

१ ग. समुपावेशयन् । २ ख. ग. श्रीकेदारान्निजागमम् । ३ ख. पृष्टस्ततः सूतः । ४ ख. बुद्ध्या । ५ ख. शिवसत्कथाः ।

सूत उवाच—

शृणुध्वं मुनयः सर्वे धन्या यूयं न संशयः ॥२१॥
यतः शुश्रूषवः शम्भो रहस्यं सर्वदुःखहम् ।
अष्टादशपुराणेषु दशभिः कथ्यते शिवः ॥२२॥
तथैवोपपुराणेषु दशभिश्च स्मृतिष्वपि ।
उपस्मृतिष्वपि तथा दशभागैः श्रुतिष्वपि ॥२३॥
भारतादीतिहासेषु खिलेषु सकलेष्वपि ।
चतुर्लक्षं पुराणानि लक्षं तूपपुराणकम् ॥२४॥
स्मृतयः पञ्चनवतिसहस्रा [1]ग्रन्थतः स्मृताः ।
उपस्मृतिसमेताश्च चतुर्लक्षं तु ज्यौतिषम् ॥२५॥
इतिहासो भारताख्यः सपादो लक्षसंख्यया ।
रामायणेतिहासश्च बहुधा ऋषिभिः कृतः ॥२६॥

सूतजी बोले—मुनि लोग ! सुनिये, आप लोग सब धन्य हैं, इसमें संशय नहीं है, (२१) क्योंकि सब दुःखों के नाश करनेवाले शङ्कर-रहस्य को सुनने की आप लोगों की इच्छा है। अठारह पुराणों में से दश में शिवजी का वर्णन है, (२२) इसी भाँति स्मृति, उपस्मृतियों में भी है, और वेदों के दश भाग में शिवजी का ही वर्णन है। (२३) महाभारतादिक इतिहासों में, तथा सम्पूर्ण खिल ग्रन्थों में भी यही बात है। पुराणों की ग्रन्थ संख्या※ चार लाख है, उपपुराणों की एक लाख है (२४) उपस्मृतिसमेत स्मृतियों की पञ्चानबे हजार है, ज्योतिष की चार लाख है, (२५) भारत इतिहास की सवा लाख है, रामायण इतिहास को तो बहुत प्रकार से ऋषियों ने लिखा है, (२६) फिर भी मुनियों की रचना का आधार बाल्मीकीय रामायण ही है, और पृथ्वी

※ अनुष्टुप् श्लोक से ग्रन्थसंख्या ली जाती है। अनुष्टुप् ३२ अक्षरों का होता है। अतः ३२ अक्षरों की इकाई मान कर ग्रन्थ की संख्या कर ली जाती है।

१ ग. ग्रन्थकाः स्मृताः ।

तथापि बाल्मीकिकृतिस्त्वाधारा[1] मुनीनां कृतेः ।
लक्षं वेदाश्च चत्वारो ग्रन्थतो भुवि मूलतः ॥२७॥
चतुर्लक्षं मन्त्रशास्त्रं ग्रन्थतः परिकीर्तितम् ।
सागमं सविधानञ्च सप्रयोगं समन्त्रकम् ॥२८॥
एतासु ग्रन्थसंख्यासु [2]चतुर्भागसमीरिताः ।
देवाः सर्वे विना शम्भुं साङ्गोपाङ्गाः सुसाधनाः ॥२९॥
भागत्रयेणाऽपि शम्भुर्नितरामुपपादितः ।
तथापि परमेशस्य रहस्यं केन गम्यते ॥३०॥
महाप्रलयतोयेषु कुशाग्रकणवद् भुवि ।
वर्त्तते महिमा शम्भोस्त्वपारः सोऽपि [3]सद्धियाम् ॥३१॥
तथापि किञ्चिद्वक्ष्येऽहं सद्गुरोः सत्कृपाबलात् ।
इत्युक्तवन्तं सूतं ते विप्राः प्रोचुः प्रशस्य[4] च ॥३२॥

में मूल मूल चारों वेदों की ग्रन्थसंख्या एक लाख है, (२७) मन्त्र-शास्त्र की चार लाख है, और उसी में आगम, विधान, प्रयोग और मन्त्र भी सम्मिलित हैं (२८) इन सब ग्रंथों में चार भाग कहे गये हैं, उनमें से एक भाग में शम्भु के अतिरिक्त सम्पूर्ण देवतागण अङ्ग, उपाङ्ग और साधन के सहित कहे गये हैं, (२९) और तीन भागों में भली-भाँति शम्भु का ही उपपादन है, फिर भी परमेश्वर का रहस्य कौन जान सकता है। (३०) पृथ्वी में जो महिमा शम्भु की है, सो महाप्रलय के जल में कुशा के अग्रभाग में लगे हुए बिन्दु की भांति तनिकसी है, और वह भी अच्छे बुद्धिवाले लोगों के लिये अपार है। (३१) फिर भी मैं सद्गुरु की कृपा के बल से कुछ कहता हूँ।

जब सूतजी ने ऐसा कहा, तब मुनि लोग उनकी प्रशंसा करने लगे और बोले। (३२) मुनियों ने उत्सुकता से कहा—हे महाबुद्धि-

१ ग. चाधारो। २ ग. पुस्तकीयोऽयं पाठः, आ० पु०—'चातुर्भागः समीरितः'। ३ ख. कथ्यते.। ४ ग. प्रणम्य।

मुनय ऊचुः—

सूत सूत महाबुद्धे ! खिलं किं[1] तद्व वदाऽधुना ।
पुराणग्रन्थसंख्यासु तदन्तश्चेत्[2] कथं बहिः ॥३३॥

सूत उवाच—

वेदादिसर्वशास्त्रेषु प्रभावं परमात्मनः ।
[3]उपपाद्य ममौ नो यत् तेभ्यः शिष्टं खिलं विदुः ॥३४॥
सपादलक्षं[4]ग्रन्थं वै रहस्यं परमेशितुः ।
पृथगस्ति पुराणेभ्यः शैवसिद्धान्तसंग्रहम्[5] ॥३५॥
इतिहासोपदेशेन[6] पुराणेभ्यः पृथक् पृथक् ।
एकैकस्य पुराणस्य उपाख्यानं बहु द्विजाः ॥३६॥
नवलक्षं ग्रन्थतश्च तीर्थक्षेत्रप्रशंसनम् ।
काश्यादिक्षेत्रलिङ्गानां [7]चान्यदेवर्षिनाकिनाम् ॥३७॥
सरित्पर्वतवृक्षाणां ऋषिप्रोक्तं सनातनम् ।

मान् सूतजी ! यह तो बतलाइये कि 'खिल' पुराणों की संख्याओं के भीतर है, या बाहर ? (३३)

सूतजी बोले—वेदादि अखिल शास्त्रों में परमात्मा का प्रभाव कहे जाने पर भी जो उनमें नहीं समाया अर्थात् उनसे जो शेष बचा, वह खिल कहा गया है। (३४) सवा लाख ग्रन्थ परमेश्वर का रहस्य, जिसे शैवसिद्धान्त-संग्रह कहते हैं, पुराणों से अलग है। (३५) पुराणों से अलग अलग इतिहास के उपदेश द्वारा एक एक पुराण के बहुत से उपाख्यान हैं। (३६) तीर्थ-क्षेत्र की प्रशंसा तथा काशी आदिक क्षेत्रों के लिङ्गों की महिमा एवं अन्य देवता, ऋषि, स्वर्गीय पुरुष, (३७) सरित, पर्वत और वृक्षों की प्रशंसा ऋषियों ने की है। इनकी ग्रन्थसंख्या नौ

१ ख. ग. किमित्यवदः पुनः । २ ख. र्वा कथं, ग. र्वा वहिः कथं । ३ ख. उपपाद्य तद्वनं यत्, ग. उपपाद्य मनो नो यत् । ४ ग. लक्षं । ५ ग. संग्रहः । ६ ख. इतिहासापदेशेन । ७ ख. देवर्षिणां तथा, ग. देवर्षिणा कृतम् ।

तथा श्रुतिष्वपि ऋचः खिलाः सामयजूंषि च ॥३८॥
भारतादिष्वपि तथा खिलं सर्वप्रमाणकम् ।
खिलमात्रं पृथक्कृत्य नवलक्षं स्थितं भुवि ॥३९॥
ततोऽधिकं दिवि पुनः पातालेति च शुश्रुम ।
एतेषु सर्वग्रन्थेषु काशी सर्वत्र गीयते ॥४०॥
यतः सा परमेशस्य प्रसिद्धा हृदयङ्गमा ।
श्रुतिस्मृतिपुराणेषु पुराणैः सखिलागमैः ॥४१॥
काशीरहस्यं ऋषिभिर्गीयते तत् पृथक् पृथक् ।
तथापि तद्रहस्यन्तु को जानाति शिवादृते ॥४२॥
नित्याः श्रुतिस्मृतिपुराणागमार्थाश्चिरन्तनाः ।
श्रुतिमूलाः कल्पे कल्पे स्मृतयो ऋषिभिः कृताः ॥४३॥
इतिहासपुराणानि व्यासव्याजेन शङ्करः ।
करोति कल्पकल्पेषु प्रति मन्वन्तरं स्वयम् ॥४४॥

लाख है। ऋक्, साम और यजुर्वेद तथा (३८) भारतादि में जितने खिल हैं, वे सब प्रमाणभूत हैं। केवल खिल को यदि अलग कर लिया जाय तो नौ लाख ग्रंथसंख्या उसकी पृथ्वी में स्थित है, (३९) और सुना जाता है कि इतने से भी अधिक स्वर्ग और पाताल में है। इन सब ग्रन्थों में काशी का वर्णन सर्वत्र पाया जाता है (४०) क्योंकि यह प्रसिद्ध काशी परमेश्वर के हृदय में बैठी हुई है। श्रुति, स्मृति, पुराणों ने तथा सम्पूर्ण प्राचीन आगमों ने (४१) और ऋषियों ने भी पृथक् पृथक् काशी के रहस्य का गान किया है। फिर भी उसके रहस्य को सिवा शङ्कर के और कौन जान सकता है ? (४२) श्रुति, स्मृति तथा पुराणों के नित्य अर्थ को, और श्रुतिमूलक पुरानी बातों को प्रतिकल्प में ऋषि लोग स्मृतिरूप में संग्रथित करते हैं। (४३) कल्प कल्प के प्रति मन्वन्तर में व्यास के व्याज से शिवजी इतिहास पुराणों की रचना करते हैं। (४४) वेदों के विभाग करने पर जो श्रुतियाँ बच जाती हैं, वे खिल श्रुति कहलाती हैं। धर्मशास्त्र तथा पुराण श्रुति का आश्रय करके प्रकट

व्यस्य वेदान् ततः शिष्टा[1] खिलश्रुतिरितीरिता ।
स्मृतयश्च पुराणानि श्रुतीराश्रित्य चाऽभवन् ॥४५॥
खिलश्रुतीः समाश्रित्य सेतिहासाः खिला भवन् ।
आगमानां स्वयं शम्भुः कर्त्ता वेदानुसारतः ॥४६॥
अष्टादशपुराणानां कर्त्ता सत्यवतीसुतः ।
तथैवोपपुराणानां भारतस्यापि मे गुरुः ॥४७॥
तत्तत्पुराणशिष्टानां खिलानां भारतस्य च ।
स्मृतीनां ऋषयो भिन्नाः कर्त्तारः श्रुतिमूलतः[2] ॥४८॥
शब्दब्रह्ममयं सर्वं परमेशसमुद्भवम् ।
प्रणवव्याजतः पूर्वं शिवः शक्त्या युतोऽभवत् ॥४९॥
परमेशकराग्रस्थडमरोः वाद्यसम्भवम् ।

होते हैं। (४५) खिल श्रुतियों का आश्रयण करके इतिहास के सहित खिल उत्पन्न हुए हैं। स्वयम् शिवजी वेदों के अनुसार आगमों की रचना करते हैं (४६) अठारहों पुराण के बनानेवाले सत्यवती के बेटे व्यास ❀ हैं, और वही मेरे गुरु उपपुराण और भारत के भी रचने-वाले हैं (४८) उन पुराणों के, भारत के तथा स्मृतियों के, जो खिल अंश हैं, उनकी रचना भिन्न भिन्न ऋषि श्रुति के मूल से करते हैं। (४८) परमेश्वर से उत्पन्न हुआ सब कुछ शब्द-ब्रह्ममय है। प्रणव के व्याज से शिव शक्ति से युक्त होते हैं (४९) परमेश्वर के हाथ के डमरू बाजे

❀ सूतजी ने सब पुराण शौनकादि ऋषियों को सुनाए। व्यासजी सूत के भी गुरु थे, अतएव वे ही सब पुराणों के कर्ता कहलाये। सूत से सुन कर जिस ऋषि ने जिस पुराण को लिपिबद्ध किया, यशोलोलुप न होने से अथवा अपना नाम मूलोपदेष्टा के स्थान पर न रख कर, इन्हीं का नाम स्थिर रक्खा। पुराणों की भाषा में भेद होने पर भी व्यासकृत होने का यही कारण मालूम होता है।

१ ग. शिष्टो। २ क. ख. ग. 'वेदप्रमाणतत्त्वज्ञाः शिवतत्त्वार्थवेदिनः। शिवागमरहस्यानां वक्तारः श्रुतिमूलतः ॥' अधिकमस्ति।

चतुर्दशात्मकं सूत्रं शब्दजालस्य कारणम् ॥५०॥
तदाधाराणि शास्त्राणि न्यायमीमांसकादितः ।
शब्दमूलान्यनेकानि श्रुतिमूलानि चाऽभवन् ॥५१॥
कर्त्ता सर्वस्य शास्त्रस्य जगताश्च सदाशिवः ।
एतत्सर्वं मद्गुरुणा प्रसादान्मे प्रकाशितम् ॥५२॥
ज्ञातं मयापि ब्रह्मिष्ठाः सद्गुरोः पादसेवया ।
इदानीं गुरुणा साकं काशीं दृष्ट्वा ततो जवात् ॥५३॥
अहं केदारनाथश्च द्रष्टुमागां[1] हिमाचले ।
तत्र दृष्टं मयाऽऽश्चर्य्यं श्रीमत्केदारवैभवम् ॥५४॥
काश्याश्च वैभवं सर्वं भवद्भिः श्रुतमेव हि ।
सनत्कुमारयोगीन्द्रवामदेवाभिभाषणम् ॥५५॥

से चौदह* सूत्र हुए, जो शव्दजाल के कारण हैं (५०) उन्हीं के आधार पर न्याय मीमांसादिक शास्त्रों से वहुत से शव्द† मूलवाले और श्रुति मूलवाले शास्त्र हुए। (५१) इन सब शास्त्रों के और जगत् के कर्ता सदाशिवजी हैं। मेरे गुरूजी ने कृपा करके इन बातों को मुझे बतलाया है। (५२) हे ब्रह्मिष्ठ लोगो! मैंने भी इन बातों को गुरूजी की चरणसेवा करके ही जान पाया है। इस समय मैं गुरूजी के साथ काशी का दर्शन करके पश्चात् वेग से (५३) केदारनाथ के दर्शन को हिमालय गया था, वहाँ पर मैंने श्री केदारजी का अद्भुत वैभव देखा। (५४) काशी-जी का सब वैभव तो आप लोग सुन ही चुके हैं, अब मैंने सनत्कुमार

---

* वे चौदह सूत्र निम्नलिखित हैं—अइउण्। ऋलृक्। एओङ्। ऐऔच्। हयवरट्। लण्। ञमङणनम्। झभञ्। घढधष्। जबगडदश्। खफछठथचटतव्। कपय्। शषसर्। हल्।

† शब्द मूलवाले—शास्त्र, पाणिनीय आदिक आठों व्याकरण, इसी अक्षर-समाम्नाय के आधार पर ही खड़े हैं, परन्तु इसी अक्षरसमाम्नाय के आधार पर भगवान् नन्दकेश्वर ने वेदान्तप्रतिपादक भाष्य लिखा है।

१ क. गाद्धिमचले।

रहस्यं गुरुणा मह्यमुपदिष्टं महाद्भुतम् ।

ऋषय ऊचुः—

सूत ! सर्वज्ञ ! सद्बुद्धे ! शिवज्ञानैकसागर ! ॥५६॥
किं दृष्टमद्भुतं तत्र [1]चोपदिष्टश्च तेन किम् ।

सूत उवाच—

शृणुध्वं ऋषयः सर्वे श्रीमत्केदारवैभवम् ॥५७॥
यच्छ्रुत्वा[2] सर्वपापेभ्यो मुच्यन्ते मानवा ध्रुवम् ।
गिरिरूपेण यत्रस्थौ नरनारायणावृषी ॥५८॥
[3]भजन्तौ हिमवत्पार्श्वे विष्णवंशौ शङ्करं मुदा ।
वदर्याश्रमसंज्ञे वै[4] आस्ते नारायणो द्विधा ॥५९॥
श्रीमत्केदारनाथाख्यो दर्शनान्मोक्षदो नृणाम् ।
कैलासात्स्वयमागत्य नृणां [5]मुक्त्यै स्थितो गिरौ ॥६०॥

योगीन्द्र और वामदेव संवादरूप महा अद्भुत रहस्य गुरुजी से सुना है । (५५) ऋषियोंने कहा कि हे सूतजी ! आप सर्वज्ञ हैं, आपकी सद्बुद्धि है, और शिवज्ञान के तो आप एकमात्र समुद्र हैं, (५६) बतलाइये कि आपने वहाँ कौनसी अद्भुत बात देखी और आपके गुरुजी ने क्या उपदेश दिया ?

सूतजी ने कहा कि सब ऋषि लोग श्रीमान् केदारजी के वैभव को सुनें (५७) जिसके सुनने से निश्चय करके मनुष्य सब पापों से छूट जाता है । जहाँ विष्णु के अंश नर नारायण ऋषि पर्वतरूप में (५८) आज भी हिमवान् के पास शङ्कर का भजन करते हुए वर्तमान हैं । उस स्थान को वदरिकाश्रम कहते हैं, वहाँ नारायण दो रूप से ठहरे हुए हैं । (५९) श्रीमत्केदारनाथ के दर्शन करने वालों को मोक्ष दिया करते हैं, कैलास से आकर मनुष्यों की मुक्ति के लिये पर्वत पर ठहरे हुए हैं । (६०) पिता, माता और गुरु के द्रोहियों को तथा शिवभक्तों और

१ ख. ग. उपदिष्टं किं हि नो वेद । २ ग. दृष्ट्वा । ३ गपुस्तकीयोऽयं पाठः, आ० पु०—'अद्यापि हिमवत्पार्श्वे विष्णवंशौ शंकरं भजन्' । ४ ग. तु । ५ ग. मुक्तौ ।

पितृमातृगुरुद्रोही शिवभक्तशिवाघकृत् ।
ईदृशानाञ्च लिङ्गस्य दर्शनं नैव जायते ॥६१॥
एवं केदारनाथस्य वैभवं मुनिसत्तमाः ।
कदाचिद् गर्वसंयुक्तो ब्रह्मा भूतेशमायया ॥६२॥
मत्तः शिवोऽधिकः केन हेतुना मत्सुतोऽभवत्[1] ।
अहमेव जगत्कर्त्ता मदाज्ञापालकः शिवः ॥६३॥
इत्यादिर्बहुधा निन्दा कृता [2]मुग्धेन वेधसा ।
कदाचिदासुरं दुःखं देवानामागतं पुरा ॥६४॥
सह देवगणैर्ब्रह्मा शिवं विज्ञप्तुमागतः ।
तत्र दृष्ट्वा शिवाकारान् सच्चिदानन्दविग्रहान् ॥६५॥
हृत्पद्मस्थमहालिङ्गभासुरान् अनिवर्त्तिनः ।
तानपृच्छत्तदा ब्रह्मा साश्चर्य्याविष्टमानसः ॥६६॥

शिव के अपराधियों को लिङ्ग का दर्शन नहीं होता (६१) ऐसा केदार-नाथ का वैभव है । हे मुनिसत्तम ! भूतनाथ की माया से किसी समय ब्रह्माजी को यह अभिमान हुआ कि मुझसे यदि शिवजी अधिक होते तो मेरे बेटे* क्यों होते ? जगत् का कर्ता तो मैं हूँ, और शिवजी तो मेरी आज्ञापालन करनेवाले हैं (६३) मोह के वश में होकर ब्रह्मदेव ने इस प्रकार की बहुतसी निन्दाएँ पहिले की थीं । किसी समय में असुरों से सताये हुए देवता लोग (६४) ब्रह्मदेव के साथ शिवजी के यहाँ पुकार करने आये । वहाँ ब्रह्मदेव ने ऐसे पुरुषों को देखा, जो कि सच्चिदानन्द मूर्ति हैं, और आकार उनका शङ्कर का सा है, उनके हृदयकमलों में महालिङ्ग वर्तमान है, जिसके तेज से वे लोग देदीप्यमान हो रहे हैं,

* ततोऽसृजद्वामदेवं त्रिशूलवरधारिणम् ।
सनत्कुमारञ्च विभुं पूर्वेषामपि पूर्वजम् ॥ मात्स्ये ।
तब ब्रह्मदेव ने श्रेष्ठ त्रिशूल धारण करनेवाले वामदेव को उत्पन्न किया ।

१ ख. भवत्, ग. भवन् । २ ग. पुस्तकीयोऽयं पाठः, आ० पु०—'मोहितचेतसा' ।

केन पुण्यप्रभावेण यूयमेवं प्रभाविणः।
वदताऽद्य महाभागाः कृपया मां दयालवः ॥६७॥
इति ब्रह्मवचः श्रुत्वा ते तमूचुः स्ववैभवम्।
श्रीमत्केदारनाथस्य भवने हिमभूधरे ॥६८॥
रेतोदाख्यं महातीर्थमस्ति जन्मभयापहम्।
परमेश्वरस्य वीर्य्यं यदग्नौ दत्तं शिवेन वै ॥६९॥
रेतस्कणास्तदास्कन्नः स केदारे पतद्भुवि।
तद्रेतोदकतीर्थं हि त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥७०॥
पापानां हरणात्तीर्थं हरम्पापमितीर्य्यते।
तत्र दृष्ट्वा महादेवं वयं तदुदपायिनः[१] ॥७१॥
तेन पुण्यप्रभावेण हृत्पद्मे लिङ्गभास्वराः।
न वाच्यं [२]तादृशं गुह्यं शिवनिन्दापरात्मनाम् ॥७२॥

और आवागमन से रहित हैं। उन लोगों से ब्रह्मदेव ने आश्चर्य में आकर पूछा (६६) कि किस पुण्य के प्रभाव से आप लोगों की ऐसी महिमा हुई है? हे महाभाग! हे दयालु! कृपा करके आप लोग मुझे बतलावें (६७) ब्रह्मदेव का ऐसा बचन सुन कर उन लोगों ने उन्हें अपना वैभव बतलाया कि श्रीमान् केदारनाथ के घर अर्थात् हिमालय में (६८) रेतोद नाम का एक महातीर्थ है, वह जन्मभय का नाश करनेवाला है। शिवजी ने जब अपना वीर्य्य अग्नि को दिया (६९) उस समय रेत के कण एकत्रित होकर केदारक्षेत्र में गिरे, सो वहाँ रेतोदकतीर्थ हो गया, जो तीनों लोकों में विख्यात है। (७०) पापों के हरण करने से उस तीर्थ का नाम हरंपाप पड़ा। वहाँ पर महादेवजी का दर्शन करके हम लोगों ने उस तीर्थ का जल पान किया (७१) उसी पुण्य के प्रभाव से हम लोगों के हृदयकमल में देदीप्यमान लिङ्ग है, परन्तु यह रहस्य

---

१ ख. ग. तदुपयायिनः। २ ग. पुस्तकीयोऽयं पाठः, श्रा० पु०—'त्वादृशे गुह्यम्'।

अनेकजन्ममरणभागिनां त्वादृशां विधे ! ।
तथाप्युक्तं रहस्यं तदस्माभिस्तव पुण्यतः ॥७३॥
श्रवणे त्वं न योग्योऽसि रहस्यस्य महेशितुः ।
गर्विष्ठोऽसि[1] शिवद्रोही [2]शिवनिन्दापरस्तथा ॥७४॥
इति श्रुत्वा वचस्तेषां विधाताऽतीवदुःखितः ।
अनेकसृष्टिदुःखश्च दैत्यबाधा ततोऽधिका ॥७५॥
भोक्तव्या चिरमस्माभिः किमर्थं दुःखजन्मभिः ।
न ज्ञातं शिवमाहात्म्यमेतावद्दुःखजन्मभिः ॥७६॥
इतः परं तत्र गत्वा पीत्वा रेतोदकं त्वहम् ।
वसामि निर्भयः शम्भोरन्ते [3]स्वानन्दनिर्भरः ॥७७॥
इति मत्वा समायातः केदारं शिवसन्निधिम् ।
तस्यागमं शिवो दृष्ट्वा ततोऽन्यत्र गतो जवात् ॥७८॥

तुम्हारे ऐसे शिवनिन्दकों से न कहना चाहिये। (७२) हे ब्रह्मदेव ! तुम्हारे ऐसे लोगों के भाग्य में तो अभी बहुत बार जन्मना मरना बदा है, फिर भी हम लोगों ने तुम्हारे पुण्य के प्रभाव से यह रहस्य तुम्हें बतला दिया। परन्तु तुम महेश्वर के रहस्य सुनने योग्य नहीं हो; तुम अभिमानी हो, शिवद्रोही हो, और शिवनिन्दक हो। (७४) उन लोगों का वचन सुन कर विधाता बड़े दुखी हो गये और सोचने लगे कि एक तो बहुत सी सृष्टि करने का दुःख है ही, दूसरा उससे भी बढ़ कर दैत्यों की बाधा का कष्ट (७५) बहुत दिनों तक व्यर्थ ही भोगना पड़ता है, सो यह जन्म दुःख के लिये ही है। इतने दुःखमय जन्म पाने पर भी आज तक शिवजी का माहात्म्य न जाना। (७६) अब इसके बाद वहाँ जा और रेतोदक पी, मैं भी निर्भय होकर आनन्दपूर्वक शम्भु के निकट वास करूँगा। (७७) ऐसा निश्चय करके ब्रह्मा केदार-महादेव के पास आये। उनको आते हुए देख कर शिवजी वेग से अन्यत्र चले गये, (७८) क्योंकि उन्हें शिव-

१ ग. गर्विष्ठोऽपि। २ ख. निन्दापरायणः। ३ ग. चानन्दनिर्भयः।

न दास्ये दर्शनमिति शिवनिन्दापरस्य हि ।
पश्चाद्धावन्[1] विरिञ्चोऽपि द्रष्टुं देवं त्वरायुतः ॥७६॥
चरन्महिषवृन्दे द्रागन्तर्धानं ययौ हरः ।
शोधयन्महिषान् ब्रह्मा शिवदर्शनलालसः ॥८०॥
एकैकशस्तदा शम्भुः पातालं प्राविशद् द्रुतम् ।
अयमेव महादेव इतीशं द्रुतमग्रहीत् ॥८१॥
न मुखं दर्शितं तेन तदा पृष्ठं दधद्विधिः ।
करेणैकेन धृत्वा तु हीतरेण प्रसार्य्य च ॥८२॥
पातुं रेतोदकं त्वैच्छत्तदा शङ्करकिङ्कराः ।
त्रिशूलेन शिरश्छेदं चक्रुः पद्मभुवः क्षणात् ॥८३॥
शिवस्य निन्दक इति न त्वं तीर्थस्य भाजनम् ।
तदा कपालः पतितः शिवस्य पुरतो विधेः ॥८४॥
ततो विष्णुमुखा देवास्ते[2] तं शम्भुं व्यजिज्ञपन् ।
स्वामिन् विना विधिं लोकसृष्टिर्नैव प्रजायते ॥८५॥

निन्दक को दर्शन देने की इच्छा नहीं थी; और ब्रह्मदेव शीघ्रता से उनके दर्शन के लिये दौड़े। (७९) भैंसे चर रहे थे, उन्हीं में जाकर शिवजी अन्तर्धान हो गये, ब्रह्मदेव शिवजी के दर्शन की लालसा से एक एक भैंसे को जाँचने लगे। (८०) तब शङ्कर भगवान् ने शीघ्रता से पाताल में प्रवेश किया, ब्रह्मदेव ने जान लिया कि यही महादेव हैं, और शीघ्रता से पकड़ लिया। (८१) जब शिवजी ने अपने मुख का दर्शन नहीं दिया तो ब्रह्मदेव ने एक हाथ से पीठ पकड़ ली, और दूसरा हाथ फैला कर (८२) रेतोदक पी लेना चाहा। तब शङ्कर के किंकरों ने त्रिशूल से ब्रह्मदेव का शिर एक क्षण में काट डाला। (८३) और यह कहा कि तू शिव का निन्दक है, इस तीर्थ का पात्र नहीं है। ब्रह्मदेव का कपाल जाकर शिवजी के आगे गिरा। (८४) तब विष्णु आदि देवता ने

१ ख, भवन् । २ ख. स्तुवन्, ग, स्तुत्वा ।

पुनर्जीवय चैनं वा सृष्ट्यै वान्यं विधिं कुरु ।
तव निन्दापराधस्य फलं प्राप्तमनेन हि ॥८६॥
अस्माकं यावदाज्ञा ते तन्मध्ये न पदच्युतिः ।
तस्मात्तवाऽऽज्ञा दुर्लङ्घ्या चैनमेवाशु जीवय ॥८७॥
एवं विष्ण्वादिदेवानामङ्गीकुर्वन् समर्थनाम् ।
पुनः प्रसन्नो भगवान् [1]ब्रह्मणोऽन्यच्छिरो व्यधात् ॥८८॥
पुनर्ब्रह्मा लिङ्गमूर्तेर्दर्शनाय व्यजिज्ञपत् ।
विधिमाह तदा शम्भुर्मत्पृष्ठं माहिषं भुवि ॥८९॥
लोकानां [2]दर्शनायात्र भवेल्लिङ्गं न दृश्यते ।
इतः परं लिङ्गरूपदर्शनं दुर्लभं नृणाम् ॥९०॥
दृष्टं चेत्प्राणिभिस्ते वै तत्क्षणं यान्ति मेऽन्तिकम् ।
तस्माद् मल्लिङ्गमूर्तेश्च काश्यां वै दर्शनं भवेत् ॥९१॥

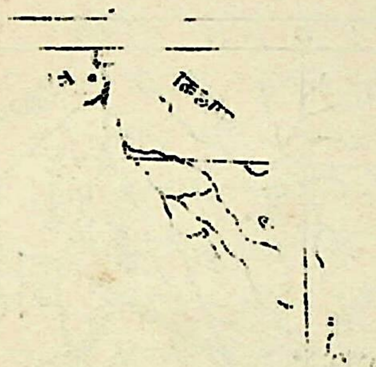
शङ्कर भगवान् से प्रार्थना की कि हे स्वामिन् ! विना ब्रह्मा के लोक में सृष्टि कैसे होगी ? सो या तो इन्हें जिलाइये या सृष्टि के लिए दूसरा ब्रह्मा बनाइये। ये आपके निन्दापराध का फल पा चुके। (८६) हम लोगों को जितने दिनों के लिये आज्ञा है, उतने बीच में मौकूफी (पदच्युति) नहीं होती। इसलिये आप की आज्ञा अपेल (दुर्लंघ्य) है, सो इन्हें शीघ्र जिलाइये। (८७) इस प्रकार की विष्णु आदिक देवों की प्रार्थना स्वीकार करके, भगवान् ने प्रसन्न हो, ब्रह्मा को दूसरा सिर लगा दिया। (८८) फिर ब्रह्मदेव ने लिंगमूर्तिके दर्शन के लिये प्रार्थना की; तब शम्भु ने ब्रह्मा से कहा कि मेरी भैंसवाली पीठ पृथ्वी में (८९) लोगों के दर्शन के लिये यहाँ रहे। लिङ्ग दिखाई नहीं पड़ता। सो अब से लिंगरूप का दर्शन मनुष्यों को दुर्लभ होगा। (९०) यदि दर्शन होता तो तत्क्षण मेरे समीप पहुँच जाते। इसलिये लिंगमूर्ति का काशी में दर्शन होगा।

१ ख. ब्रह्माणमचिराद्। २ ख. दर्शनं तत्र।

तस्माद् विधे ! गच्छ काशीं दर्शनेच्छास्ति ते यदि ।
मन्निन्दादोषशान्त्यर्थमश्वमेधान् दशाऽऽचर ॥६२॥
ततो मंदग्रतीर्थस्य स्नानाद् मल्लिङ्गदर्शनात् ।
मदागसो निवृत्तः स्यात् (स्याः?) जगत्स्रष्टा भवेत्(वेः ?)ततः ॥६३॥
इत्याज्ञां शिरसा धृत्वा गतः काशीं प्रजापतिः ।
दशाश्वमेधकरणात् स्नानात् तल्लिङ्गदर्शनात् ॥६४॥
स्रष्टृत्वञ्च पुनः प्राप्य सत्यलोकं ययौ तदा ।
तीर्थं ब्रह्मकपालाख्यं यत्र ब्रह्मशिरोऽपतत् ॥६५॥
तदारभ्यैव केदारे विख्यातं सर्वपापहम् ।
गौरीतीर्थं तप्तजलं गौर्य्याः स्नानार्थनिर्मितम् ॥६६॥
हरिद्रादिसुगन्धश्रीयुतमद्यापि दृश्यते ।
नदीपञ्चकसंयुक्ता रुद्रगङ्गाऽघनाशिनी ॥६७॥

(९१) ब्रह्मदेव ! यदि दर्शन की इच्छा है तो काशी जाओ, और मेरी निन्दा के दोष की शान्ति के लिये दश अश्वमेध यज्ञ करो, (९२) तब मेरे प्रधान तीर्थ के स्नान तथा मेरे लिङ्ग के दर्शन से मेरे अपराध से निवृत्त होकर स्रष्टा पद को प्राप्त होगे। (९३) उस आज्ञा को शिर पर चढ़ा कर प्रजापति काशी गये। दश अश्वमेध यज्ञ* कर-के स्नान और लिंग-दर्शन करने से (९४) स्रष्टा के पद को प्राप्त होकर फिर सत्यलोक गये। जहाँ पर ब्रह्मदेव का शिर गिरा था, वह तीर्थ ब्रह्मकपाल नाम से (९५) केदार क्षेत्र में विख्यात होकर सब पापों का नाश करनेवाला हुआ। गौरी-तीर्थ नाम का तप्तकुण्ड गौरी के स्नान के लिये निर्मित किया गया है, (९६) जिसमें आज तक हरदी आदिक सुगन्धि का वैभव देखा जाता है। पाँच नदियों से मिल कर रुद्रगंगा पाप का नाश करनेवाली हैं (९७) सो रुद्रगंगा स्वयंभू लिङ्ग के सन्नि-

* जहाँ पर ब्रह्मदेव ने काशी में दशाश्वमेध यज्ञ किया, वह स्थान आज भी दशाश्वमेध घाट, घोड़ा घाट के नाम से प्रसिद्ध हैं। अश्वमेध के स्मारकरूप में वहाँ एक पत्थर का घोड़ा बना हुआ है।



नं० १

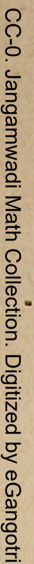
मध्यप्रदेश के मानसरोवर पर्यन्त का मानचित्र

७६ ८० ८४

२८ २८

२४ २४

खश
बद्रीनाथ
मानसरोवर
सरस्वती
केदारनाथ
कुरुक्षेत्र
मायापुरी
हरिद्वार
कनखल
ब्रह्मावर्त
हस्तिनापुर
दृषद्वती
इन्द्रप्रस्थ
नैमिषारण्य
शूरसेन
कोशल
श्रावस्ती
मत्स्यदेश
वृन्दावन
सांकाश्य
कांपिल्य
मथुरा
साकेत
कुसी
पाञ्चाल
सरयू
गण्डकी
गङ्गानदी
गोमती
चर्मण्वती नदी
यमुना
प्रयाग
कालञ्जर
कौशाम्बी
काशी
करुणदेश
पाटलीपुत्र
शोणनद
हिरण्यवाह
अमरकण्टक
ब्र ह्म र्षि दे श
उ
प
पू
द



सङ्गताऽलकनन्दायां स्वयम्भूलिङ्गसन्निधौ ।
रुद्रप्रयागनाम्ना[1] तत्तीर्थं सर्वाघनाशनम् ॥९८॥
मधुद्रवा क्षीरवहा तथा मन्दाकिनी नदी ।
शोणितोदा रुद्रगङ्गा पञ्चनद्यश्च सङ्गताः ॥९९॥
इत्याद्यनेकतीर्थानि सन्ति पुण्यानि तत्र वै ।
तैः सार्कं भगवान् शम्भुः काश्यामेव निजाकृतिम् ॥१००॥
ब्रह्मणे दर्शयामास लिङ्गरूपां सनातनीम् ।
तदाप्रभृति केदारे दर्शनं महिषाकृतेः ॥१०१॥
[2]पूर्वभागे मुक्तिदायि दर्शनात् पापिनामपि ।
काश्यान्तु किञ्चिदुद्धृत्य भूमेर्लिङ्गं प्रकाशितम् ॥१०२॥
विरिञ्चिप्रीतये शेषमाकेदारात् क्षितौ स्थितम् ।
काश्यां तद्दर्शनाद् मुक्तिः करस्थेति मया श्रुतम् ॥१०३॥
श्रीमद्दक्षिणकैलाशप्रभृतीनि महेशितुः ।

कट अलकनन्दा से मिली हैं, वहाँ रुद्रप्रयाग नाम का सब पापों का नाश करनेवाला तीर्थ है। (९८) वहाँ मधुद्रवा, क्षीरवहा, मन्दाकिनी, शोणितोदा और रुद्रगंगा पाँच नदियाँ मिली हुई हैं (९९) और भी अनेक पुण्यतीर्थ वहाँ हैं। उनके साथ शम्भु भगवान् ने काशी में (१००) ब्रह्मदेव को अपने सनातन लिङ्गरूप का दर्शन दिया, तब से केदारक्षेत्र में भैंस के रूप में ही दर्शन होता है। (१०१) पूर्वभाग का दर्शन पापियों के लिये भी मुक्ति देनेवाला है, सो काशी में पृथ्वी से कुछ उभड़ कर ब्रह्मदेव के प्रीति के लिये लिंङ्ग प्रकाशित हुआ है (१०२) और शेष भाग केदार तक पृथ्वी में स्थित ❀ है। मैंने सुना है कि काशी में उसके दर्शन से मुक्ति अपनी मुट्ठी में आ जाती है। (१०३) श्रीमान्

❀ मानचित्र नं० १ में काशी-केदारलिङ्ग का शेष भाग पृथ्वी के भीतर स्थित है, काली रेखा से दिखलाया गया है, और नैमिषारण्य का भी स्थान दिखला दिया गया है।

१ ख, नामास्ति तीर्थम्। २ ग, पूर्वभागो।

सर्वक्षेत्राणि दृष्ट्वाऽहमापं पञ्चनदं शुभम् ॥१०४॥
[1]कुबेरकन्यातीरस्थं क्षेत्रं सद्यो विमुक्तिदम् ।
तत्र मद्गुरुमद्राक्षं वेदव्यासं तपोनिधिम् ॥१०५॥
दम्पती च मया दृष्टौ शिवज्ञानैकभाजनौ ।
अनवद्यानाथशर्मनामभेदेन संस्थितौ ॥१०६॥
अहं ताभ्यां नमस्कृत्य गुरुणा साकमागतः ।
केदारं द्रष्टुकामेन काश्यामादौ प्रणम्य च ॥१०७॥
तदा गुरुर्मया पृष्टः प्रति दम्पतिवैभवम् ।
तयो रहस्यसंवादं मामाह गुरुरात्मवान् ॥१०८॥
गुरुणा सह केदारं दृष्ट्वाहं [2]तदनुज्ञया ।
युष्माकं वक्तुमाश्चर्यं रहस्यं परमेशितुः ॥१०९॥
समागतोऽहं विप्रेन्द्राः शृणुध्वं सर्वपापहम् ।

दक्षिणकैलास आदि में महादेव के क्षेत्रों का दर्शन करता हुआ मैं कल्याण देनेवाले पञ्चनद तीर्थ में आया। (१०४) वह सद्यः मुक्ति देनेवाला तीर्थ अलकनन्दा के तट पर है। वहाँ पर मैंने अपने गुरु तपोनिधि वेदव्यास को देखा (१०५) और वहीं पर मैंने शिव-ज्ञान के एक-मात्र भाजन अनवद्या और नाथशर्मा नामक दोनों प्राणियों को देखा। (१०६) मैंने उन दोनों को नमस्कार किया और गुरुजी के साथ केदार के दर्शन के लिये काशी आया। मैंने नमस्कार करके रास्ते में गुरुजी से दोनों प्राणियों का वैभव पूछा। आत्मवान् गुरुजी ने उन दोनों का रहस्य संवाद मुझे सुनाया। (१०८) गुरुजी के साथ मैंने केदारजी का दर्शन किया, और उनकी आज्ञा पाकर महादेवजी का यह आश्चर्य्य रहस्य (१०९) आप लोगों को सुनाने के लिये यहाँ आया, सो उसे हे विप्रेन्द्र! आप लोग सुनें, जिसके सुननेमात्र से सब पाप नष्ट हो जाते हैं, और स्थिरचित्तवालों का तो निश्चय मोक्ष हो

१ ग. कावेरीकन्यातीरस्थम्। २ ख. च तदाज्ञया।

'मोक्षदं श्रुतमात्रेण स्थिरचित्तवतां ध्रुवम् ॥११०॥

इति गदितमशेषं व्यासशिष्यस्य विप्राः
श्रवणकुतुकचित्ताः सादरं सूतमाहुः ।
वद परमदयालो ! दम्पतीसत्कथां नः
किमिति समवदत्ते सद्गुरुर्व्यासमूर्त्तिः ॥१११॥

इति हि मुनिजनानां नाथशर्माऽनवद्या-
मुखकमलसुधां तां श्रोत्रयुग्माञ्जलिभ्याम् ।
परशिवरससारां पातुमिच्छावतां सद्-
गुरुमुखसमवाप्तामादिशत्[2] स यथावत् ॥११२॥

सूत उवाच—

शृणुत मुनिवरेन्द्राः प्राणिसन्तारगुह्यं
परमशिवदयालोः कल्मषघ्नं कलौ हि ।
गिरिदुहितृमुखानां शम्भुनिन्दापराधा-
पहमखिलजनानां तारकं लक्ष्मसैतत् ॥११३॥

जाता है। (११०) इस भाँति जब व्यासजी के शिष्य ने ब्राह्मणों को सब बातें सुनाईं, तब उन लोगों की और सुनने की लालसा बढ़ी, अतः उन्होंने आदर के साथ सूत जी से कहा—हे परमदयालु ! आप के गुरु व्यास-जी ने उन दोनों प्राणियों की उत्तम कथा जो आप से कही उसे हम लोगों को भी सुनाइये। (१११) इस भाँति नाथशर्मा और अनवद्या के मुखकमल से जो कथारूपी परशिवरससार अमृत निकला, उसे कानरूपी अंजुलि से पीने की इच्छा किये हुए मुनि लोगों को उन्होंने जैसा गुरु-मुख से सुना था, ठीक वैसा ही सुनाया। (११२)

सूत जी ने कहा—हे मुनीन्द्र लोगो ! परमदयालु शिवजी का प्राणिसन्तारण रहस्य सुनो। यह कलियुग में कल्मष का नाश करने-वाला है, गिरिजा आदिक से जो शम्भु की निन्दा का अपराध हो पड़ा,

१ क. ख. ग. 'मोक्षदं श्रुतमात्रेण स्थिरचित्तवतां ध्रुवम्।' नास्ति। २ ख. बभाषे।

सकलकलुषहन्त्री काशिकैका हि भूमौ
पशुमतिरविजानन् ¹तां विनिन्दत्यहोऽज्ञः ।
तमपि परकृपालुस्तारितुं गुह्यमेतत्
स्वयमदिशदुमायै काशिकेदारसारम् ॥११४॥
सकलमुनिजनानां वासपूर्णे च शैवे
मनसिजसुतपञ्चवार्षिको ब्राह्मणोऽसौ ।
²सकनमुनिवरेन्द्रस्त्वाज्ञया शङ्करस्य
³प्रमितमखिलमेतद्वामदेवाय चाह ॥११५॥
तदखिलमभिजानन् नाथशर्माऽनवद्या-
मुपदिशदखिलं तन्मद्गुरुर्मामवोचत्⁴ ।
परमशिवकृपायाः पात्रभूतास्त्रयस्ते
मयि परमकृपालुर्मद्गुरुर्मामरक्षत् ॥११६॥

उसका भी मिटानेवाला है, और सरल रीति से अखिल जनों का तारनेवाला है (११३) काशिका-भूमि सम्पूर्ण कलुष नाश करनेवाली है, उसे न जानकर पशुबुद्धिवाले मूर्ख उसकी निन्दा करते हैं, परमदयालु शङ्करजी ने उनके भी तारने के लिये यह काशीकेदारसार-रहस्य पार्वती जी से कहा। (११४) सकल मुनिजनों के निवास से पूर्ण शैव-क्षेत्र* में शङ्कर की आज्ञा से ब्रह्मा के मानसिक पुत्र सनक मुनिवर ने, जो सदा पाँच ही वर्ष के बने रहते हैं, वामदेव से कहा। (११५) उन सब बातों को जाननेवाले नाथशर्मा ने अनवद्या से पूरी पूरी कथा कही, और उसे मेरे गुरूजी ने मुझसे कहा, परन्तु वे तीन तो शिवजी के परम कृपापात्र थे, पर मुझपर परम कृपा करनेवाले गुरूजी ने, मेरे वैसे न होने पर भी, मेरी रक्षा कर ली, अर्थात् मुझे कह

* केदारक्षेत्र

१ ख. तामशेषैकसाक्षी । २ ख. सकलमुनिवरेन्द्रा० । ३ खपुस्तकीयोऽयं पाठः, आ० पु०—'प्रविदद०', ग० न्यवदद० । ४ ग० मह्यमेव ।

इति मुनिगणमुख्यैः सूतसम्भाषणं यत्
श्रवणसुखपथीनं कारयेदीशभक्त्या ।
स तु सकलमघौघं द्राग् विधुन्वंश्च शम्भो-
श्चरणकमलभक्तिं प्राप्य यातीशलोकम् ॥११७॥

इति श्रीकाशीमूलरहस्ये खिले ब्रह्मवैवर्त्ते काशीकेदारमाहात्म्ये
प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥



अथ द्वितीयोऽध्यायः

मुनय ऊचुः—

सूत ! ज्ञानदयासिन्धो ! शिवज्ञानैकसागर ! ।
यत्त्वया कथितं शम्भो रहस्यं शूलिनेरितम् ॥ १ ॥

सुनाई । (११६) यह सूत का संभाषण जो मुनीश, शङ्कर की भक्ति के साथ लोगों को सुनावेंगे, वे सम्पूर्ण पापसमूह को शीघ्र ही नष्ट करके, शम्भु के चरणकमल की भक्ति-प्राप्तिपूर्वक शिव जी के लोक को प्राप्त होंगे ।

यह श्रीकाशीमूलरहस्य में खिल ब्रह्मवैवर्त के काशी-केदारमाहात्म्य
का प्रथमाध्याय समाप्त हुआ ।

दोहा— काशी थल मणिकर्णिका, जल मूरति पाषान ।
चन्दवान निन्दति सबहिं, मन में ज्ञान-गुमान ॥ १ ॥
सोरठा—तीरथ परै न देखि, त्रसित सनक को पद गह्यौ ।
कीन्हीं कृपा विशेषि, कह्यौ जाउ काशीपुरी ॥ २ ॥
दोहा— कला पञ्च दश ते बसत, क्षेत्र सहित केदार ।
जहाँ युगल मणिकर्णिका, हरनि महा अघभार ॥ ३ ॥
मज्जत गौरी गिरे मणि, भई प्रकट प्राचीन ।
हरश्रवणन की मणि गिरे, मणिकर्णिका नवीन ॥ ४ ॥

मुनि लोग बोले—हे सूतजी ! आप ज्ञान और दया के समुद्र

गौर्य्यै ततो वामदेवो (१) सनकोक्तं शिवाज्ञया ।
रहस्यमनवद्यायै ईरितं नाथशर्म्मणा ॥ २ ॥
भवद्गुरुस्त्वामाहेति त्वयाप्युक्तं दयालुना ।
श्रोतुं योग्या यदि वयमस्माकं त्वमुपादिश ॥ ३ ॥
यत्कथाश्रवणात् सर्वे [३]प्राप्स्यामो वै कृतार्थताम् ।
इत्येवं प्रार्थितः सूतस्तत्त्वदर्शिभिरादरात् ॥ ४ ॥

सूत उवाच—

शृणुध्वं मुनयः सर्वे यद्रहस्यं शिवोदितम् ।
तदा प्राह महाबुद्धिस्तान् मुनीन् रौमहर्षणिः ॥ ५ ॥
शिष्टं तद् ब्रह्मवैवर्त्तपुराणोक्ताद् वरं खिलम् ।
खण्डत्रयं समाम्नातं काशीवैभवसंग्रहम् ॥ ६ ॥

हैं और शिवज्ञान के तो आप ही एक महोदधि हैं, जो आपने अभी कहा है कि शिवरहस्य को स्वयम् शङ्कर ने गौरी से कहा, (१) और शिव की आज्ञा से सनक ने वामदेव से कहा और नाथशर्मा ने अनवद्या से कहा (२) तथा आपके गुरुजी ने आपसे कहा, उसके सुनने के यदि हम योग्य हों, तो हमलोगों से आप कहें, (३) जिसमें हम लोग उसे सुन कर कृतार्थ हो जाँय ।

जब तत्त्वदर्शी मुनिजनों ने सूतजी से आदर के साथ ऐसा पूछा, (४) तब सूतजी बोले—हे मुनिजनो ! शिवजी का कहा हुआ रहस्य सुनो । ऐसा कह कर महाबुद्धिमान् रोमहर्षण के पुत्र सूत जी बोले (५) कि वह रहस्य ब्रह्मवैवर्तपुराण का बचा हुआ खिल अंश है । उसमें तीन खण्ड हैं, जिनमें काशी के वैभव का संग्रह है । (६) पहिला विश्वेश* खण्ड है, जिसमें काशी की नित्ययात्रा का

* विश्वेश-खण्ड और ओंकार-खंड का बहुत खोज करने पर भी पता नहीं चला ।

१ ख. देवं स्कन्धांशोक्तं, ग. देवः स्कन्दांशोक्तः । २ अनवद्या तदेवोक्तरहस्यम्, ग. अनवद्या तदेवोक्ता रहस्यम् । ३ ख. प्राप्या लोके ।

विश्वेशखण्डं प्रथमं देव्यै प्रोक्तं पिनाकिना ।
काश्याञ्च नित्ययात्रायाः[1] विधानं महिमायुतम्[2] ॥ ७ ॥
ततश्चोङ्कारखण्डाख्यं द्वितीयं शिवभाषितम् ।
काश्यामोङ्कारलिङ्गादिसर्वयात्रासु वैभवम् ॥ ८ ॥
ततस्तृतीयं केदारखण्डाख्यं शम्भुनोदितम् ।
[3]काशीकेदारसर्वस्वमहिमानं शिवाघहम् ॥ ९ ॥
तेषु खण्डेषु केदारखण्डमाहात्म्यसत्कथाः ।
वक्ष्ये शृणुत भो विप्रा यथा मद्गुरुणोदिताः ॥१०॥
एवमुक्त्वा मुनिवरान् सूतः पौराणिकोत्तमः ।
शिवेनोक्ताः पुरा देव्यै वामदेवाय [4]ताः पुनः ॥११॥
सनत्कुमारोदिताश्च ताः पुनर्नाथशर्मणा ।
स्वपत्न्यै चानवद्यायै [5]प्रोक्ता मद्गुरुणा च मे ॥१२॥

विधान और महिमा वर्णित है । इसे पिनाकधारी शिवजी ने गौरी को सुनाया है । (७) इसके बाद दूसरा खण्ड ओङ्कार-खण्ड है, इसमें ओङ्कार, लिङ्गादि का और सब यात्राओं का वैभव कथित है, इसे भी शङ्करजी ने कहा है। (८) तीसरा भी शङ्कर का ही कहा हुआ केदार-खंड है, इसमें शिवापराध का हरण करनेवाली काशीकेदार की सर्वस्व-महिमा वर्णित है । (९) हे ब्राह्मणो ! इन खण्डों में से केदारखण्ड-माहात्म्य की उत्तम कथा, जैसी गुरुजी के मुख से मैंने सुनी है, आप लोगों को सुनाऊँगा (१०) ।

मुनिजनों से ऐसा कह कर पुराण जाननेवालों में श्रेष्ठ सूतजी ने कहा कि इस कथा को सबसे पहले शिवजी ने गौरी से कहा, फिर सनत्कुमार ने वामदेव से कहा, और नाथशर्मा ने अपनी पत्नी अनवद्या से कहा, और मेरे गुरुजी ने मुझसे कहा, (१२) सो मैं इस कथा के

१ ग. यात्रायां । २ ग. महिमान्वितम् । ३ ग. केदारनाथस्य ४ ग. याः । ५ ग. पुस्तकीयोऽयं पाठः, आ० पुं०—'प्रोक्तम्' ।

[1]तदिदानीमहं वक्ष्ये व्यासकामनया हि वः।
भवन्तश्च जगद्धेतोः कुर्वन्त्वस्य च विस्तरम् ॥१३॥
[2]इत्युक्त्वा गणपं ध्यायन् सिद्धिबुद्धियुतं विभुम्।
ग्रन्थनिर्विघ्नजनकमाखुवाहं चतुर्भुजम् ॥१४॥
अधस्तान् मानुषाकारं परस्तात् [3]कुञ्जराननम्।
निरस्ताशेषदुरितं पुरस्तात् सिन्दुरारुणम् ॥१५॥
[4]ऋषीनुवाच च परं रहस्यं रौमहर्षणिः।
नाथशर्मानवद्ययोः संवादं मोक्षसाधनम् ॥१६॥
काशीरहस्यसङ्क्षेपं ब्रह्मवैवर्त्तसंस्तुतम्।
अनवद्याधवोक्तं तत् काशीकेदारवैभवम् ॥१७॥
[5]कदाचिदनवद्याऽथ पतिं मद्भक्तिसंयुतम्।
प्रोवाच प्राञ्जली चोमे! नाथशर्म्माणमादरात् ॥१८॥

प्रचार के लिये आप लोगों को इसे सुनाऊँगा, और आप जगत् के मङ्गल के लिये इसका विस्तार करें (१३) ऐसा कहकर ग्रन्थ की निर्विघ्नता के लिये सिद्धिबुद्धिसहित गणेशजी का इस भाँति ध्यान किया—चूहे पर सवार हैं, चार भुजा हैं (१४) धड़ मनुष्य का-सा और शिर हाथी का-सा है, समस्त पापों के नाश करनेवाले हैं और शरीर के सामने का भाग सिन्दूर-सा लाल है। (१५) तत्पश्चात् रोमहर्षण के पुत्र सूतजी ऋषियों से अनवद्या और नाथशर्मा का संवाद वर्णन करने लगे, जो कि परम रहस्य और मोक्ष का साधन है, (१६) जिसमें संक्षेप से काशी का रहस्य कथित है और जिसकी स्तुति ब्रह्मवैवर्त पुराण ने की है। वही अनवद्या के पति का कहा हुआ काशीकेदार-वैभव है (१७) शङ्कर भगवान् ने गौरी से

१ क. ख. ग. वक्ष्ये शृणुत गाथास्ता रहस्याः पापभञ्जकाः। इत्युक्त्वा प्रारभत् सूतो ध्यायन् हृदि गणाधिपम्॥ २ क. ख. ग. इत्युक्त्वा.........अर्थं श्लोको नास्ति। ३ ग. ...दस्तु वस्तु नः। ४ क. ख. ग. ऋषीनुवाच...... अयं श्लोकोऽपि नास्ति। ५. क. ख. ग. 'कदाचिदनवद्या...' श्लोकोऽयं नास्ति।

अनवद्योवाच—

प्राणनाथ ! दयासिन्धो ! वाराणस्याश्च वैभवम् ।
श्रुतं समस्तं त्वद्वक्त्रात् [1]प्राप्ताहश्च कृतार्थताम् ॥१९॥
काशीकेदारनाथस्य पश्चाच्छृणिवति वागभूत् ।
तव सर्वज्ञतां वाचमृतां कुरु मम प्रभो ! ॥२०॥

नाथशर्म्मोवाच—

शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि रहस्यं गोप्यमद्भुतम् ।
प्राचीनेति नवीनेति द्वे काश्यां मणिकर्णिके ॥२१॥
[2]विराजेते विश्वनाथकेदारेशपुरः शुभे ! ।
तदिदानीमहं तुभ्यं वच्मि देवप्रसादतः ॥२२॥

अनवद्योवाच—

प्राणनाथ ! श्रुता त्वत्तः काश्यान्तु मणिकर्णिका ।
[3]एकैवेत्यधुना कासौ प्राचीना मणिकर्णिका ॥२३॥

कहा—हे उमा ! किसी समय अनवद्या ने अपने पति नाथशर्मा से, जो कि हमारा भक्त था, हाथ जोड़ कर, आदर के साथ कहा था। (१८) अनवद्या बोली—हे प्राणनाथ ! हे दयासिन्धो ! वाराणसी का वैभव मैं आपके मुख से सुनकर कृतार्थ हुई। (१९) काशीकेदारनाथ के वैभव को पीछे से कथन करने के लिये आपने वचन दिया था, सो हे प्रभो ! अपनी सर्वज्ञता और वाणी को सच्ची कीजिये। (२०)

नाथशर्मा ने कहा—हे देवि ! मैं छिपा हुआ अद्भुत रहस्य कहूँगा। काशी में दो मणिकर्णिकाएँ हैं। एक प्राचीन और दूसरी नवीन। (२१) उनमें से एक विश्वनाथ के और दूसरी केदारनाथ के सामने विराजमान है, उनका वर्णन मैं देव के प्रसाद से तुमसे करूँगा। (२२)

अनवद्या ने कहा—हे प्राणनाथ ! आपसे मैंने सुना था, काशी में एक ही मणिकर्णिका है, अब वह प्राचीन मणिकर्णिका कौनसी है ? (२३)

---

१. ग. प्रसादाच्चं कृतार्थता। २. क. ख. ग. 'विराजेते विश्वनाथके…' अयं श्लोको नास्ति। ३. ख. एकैकाऽधुना काश्यां।

श्रीमत्काश्यां विराजेते द्वे तत्र मणिकर्णिके।
मोक्षदैका प्रसिद्धाऽस्ति प्राचीना[1] त्वतिगोपिता ॥२४॥
श्रीकाशी श्रुतिसंस्तुता विसृजतां देहांश्च यत्रास्थिरान्
जन्तूनामुपदेशतः पुररिपोः साम्यं करोतोशितुः।
या नूत्ना [2]श्रुतिविच्युताद्धरितपःश्लाघिष्णुशम्भोर्मणेः
प्राचीना मणिकर्णिका विजयते केदारनाथाग्रतः ॥२५॥
श्रीमत्काशी समस्तामरविनुतगुणा त्यक्तदेहांश्च यस्यां
जन्तून् साक्षात्करोति प्रमथपतिसमान् रूपसादृश्यभाजः।
[3]प्राचीनास्याश्चकाशे नगदुहितृमणेः पातनात् स्नानकाले
नूत्ना विष्णोर्वरार्थागतहरशिरसः कम्पनापातरत्नात् ॥२६॥

नाथशर्मा ने कहा—श्रीमती काशी में दो मणिकर्णिकाएँ हैं, एक मणिकर्णिका मोक्ष देनेवाली प्रसिद्ध है और एक प्राचीन मणिकर्णिका अत्यन्त छिपी हुई है। (२४) श्रीकाशीपुरी* की वेदों ने स्तुति की है, जहाँ पर ठहर कर देह छोड़नेवाले जन्तुओं को त्रिपुरारि के उपदेशसे ईश्वर की समता प्राप्त होती है, जो नई मणिकर्णिका है, सो विष्णु के तप की प्रशंसा करते हुए शङ्कर के कान की मणि के गिरने से हुई है और प्राचीन मणिकर्णिका केदारनाथ के सामने विराजमान है। (२५) श्रीमती काशी के गुणों को सम्पूर्ण देवतागण नमस्कार करते हैं, जो कि पुरी में शरीर छोड़नेवाले जन्तुओं को साक्षात् प्रमथपति शिवजी का सारूप्य प्रदान करती है। प्राचीना मणिकर्णिका पार्वती जी के नहाने के समय मणि के गिर जाने से प्रकाशित हुई, और नवीना विष्णु के वरदान के लिये आए हुए शिवजी के शिर हिलाने से गिरी हुई मणि-द्वारा प्रकट हुई। (२६) कमल ऐसे नेत्रवाले विष्णु भगवान् के तप से

* भस्मजाबालोपनिषत्, रामतापनीय द्रष्टव्य "अत्र प्राणेषूत्क्रममाणेषु रुद्र-स्तारकं ब्रह्म व्याचष्टे येन मोक्षीभूत्वाऽमृतो भवति।" (जाबाल)

१. ग. प्राचीनेत्यतिगोपिता। २ ग. विच्युता द्धरितपः। ३. ग. प्राचीनाख्या।

तपस्यन्तीं[1] गौरीं प्रथममरविन्दात्ततपस-
स्तदा शम्भुस्तस्याः परममदिशत् प्रार्थितवरम् ।
चिरं गौरीस्नानात् श्रुतिमणिगणभ्च्युतिरियं
तदा प्राचीनेति प्रथितविभवा गुप्तमहिमा ॥२७॥
काशीकेदारनाथस्य तत्तीर्थस्य च वैभवम् ।
गुह्याद्गुह्यतमं लोके को वेत्ति गिरिशादृते ॥२८॥
पुरा सनत्कुमारेण कथितं सर्वमादितः ।
वामदेवाय मुनये गर्भात्तज्ञानसम्पदे ॥२९॥
कदाचिद् वामदेवाख्यः श्रीमाञ्छिवपरायणः ।
ब्रह्मविष्ण्वीशाष्टदिशापाललोकांश्चरन् शनैः ॥३०॥
भूप्रदेशान् द्रष्टुमना[2] मेर्वादींश्च गिरींश्चरन् ।
द्वीपान् खण्डांश्चरन् योगी हिमवन्तमुपागमत् ॥३१॥

पहिले ही गौरीजी ने तपस्या की थी । उस समय शिवजी ने उनको परम प्रार्थित वर दिया था । तत्पश्चात् गौरीजी ने बहुत देर तक स्नान किया, इस बीच में उनके कान से यहाँ पर बहुत से मणिमुक्ता गिर पड़े, तभी से यह प्राचीन मणिकर्णिका हुई । इसका विभव बहुत भारी और महिमा गुप्त है । (२७) काशी केदारनाथ और उस तीर्थ का वैभव लोक में गुह्यातिगुह्य (अत्यन्त ही गुप्त) है, इसे सिवाय शङ्कर के दूसरा कौन जाने ? (२८) वामदेव मुनि को माँ के गर्भ में ही सब ज्ञान हो गया था । उन्हें सनत्कुमार ने 'आदिहि तें सब कथा सुनाई' । (२९)

किसी समय श्रीमान् शिवपरायण वामदेवजी ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि आठो दिग्पालों के लोकों में धीरे धीरे घूमते हुए पृथ्वी देखने की इच्छा से मेरु आदिक पर्वतों पर विचरते हुए, द्वीप और खण्डों में विहरते विहरते हिमालय में पहुँच गये (३१) वहाँ पर श्रीमान् चेत्र-

१. ग. तपस्यन्ती गौरी । २. ख. कामो ।

तत्र श्रीमत्क्षेत्रतीर्थं लिङ्गश्रेष्ठं विलोकितुम् ।
केदारं प्राप तत्रायमागतं दृष्टवान् मुनिम् ॥३२॥
सनत्कुमारं योगीन्द्रं काश्याः प्राप्तं मनोजवम् ।
तं दृष्ट्वा ब्रह्मनिष्ठं स गर्भज्ञानी [1]सुबालकम् ॥३३॥
रूपेण [2]पञ्चवार्षिक्यवयसा शोभितं द्विजम् ।
अतिहृष्टमना वामदेवः पप्रच्छ तं मुनिम् ॥३४॥
धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं कुतोऽभ्यागमनं मुने ! ।
त्वद्दर्शनविधूतानि पापानि मम सद्गुरो ! ॥३५॥
स्कन्दांशवामदेवौ तौ परिष्वक्तौ परस्परम् ।
अतीव हृष्टमनसौ परस्परसमागमात् ॥३६॥
सनत्कुमारः प्रोवाच काश्यागमनमात्मनः ।
स्कन्दांशवामदेवौ तौ जग्मतुः शिवसन्निधिम् ॥३७॥

तीथ और श्रेष्ठ लिङ्ग के दर्शन के लिये केदारस्थान में आये । (३२) जहाँ उन्होंने योगीन्द्र सनत्कुमार को आते हुए देखा । आप मन के तुल्य वेग द्वारा काशी से वहाँ पहुँचे थे । गर्भज्ञानी वामदेवजी ने उस बालरूप* ब्रह्मनिष्ठ को देखा (३३) कि रूप से और वय से भी उनकी शोभा पाँच वर्ष के बालक-सी ही है । सो अत्यन्त प्रसन्न होकर वामदेव ने उन मुनि से पूछा (३४) कि हे सद्गुरो ! आप के दर्शन से मेरे सम्पूर्ण पाप कट गये, मैं धन्य और कृतकृत्य हुआ, अब बतलाइये कि आप कहाँ से आ रहे हैं । (३५) कार्त्तिकेय के अंश सनत् और वामदेव दोनों गले मिले, और एक दूसरे से मिलकर परम प्रसन्न हुए । (३६) तब सनत्कुमारजी ने कहा कि मैं काशी से आ रहा हूँ; तत्पश्चात् कार्त्तिकेय के अंश सनत्कुमार और वामदेव दोनों शङ्करके समीप

---

* गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा 'देखत बालक बहुकालीना । रूपधरे जनु चारिहु वेदा । समदर्शी मुनि विगत विखेदा' ।

१. ख. ग.···न्यतिबालकम् । २. ग. पञ्चवार्षिक्यं ।

तयोर्गमनकाले तु पर्वतीयो नृपाग्रणीः ।
चन्द्रवान्नामराजर्षिः गर्भाप्तज्ञानवान् सुधीः ॥३८॥
तपः करोति केदारे दुश्चरं चिरकालतः ।
काशी प्रशंसिनावेतौ गच्छन्तौ द्रष्टमागतः ॥३९॥
का प्रशंसा काशिपुर्या भवन्तौ कुर्व(रु१)तः कथम् ।
स्थूलप्रपञ्चो मिथ्यैव ज्ञानिनामिति तौ वदन् ॥४०॥
पुनर्हसन् वदति सः काश्यवज्ञापुरःसरम् ।
ब्रह्मिष्ठौ तु युवां सूक्ष्मदर्शिनौ ज्ञानिनौ पुनः ॥४१॥
स्थूलभक्तिः कुतो जाता युवयोः क्षणभङ्गुरे ।
काशीं युवां प्रशंसेथे[१] तत्केदारं विशेषतः ॥४२॥
शिलामयानि लिङ्गानि विश्वेशादीनि वै मुनी ! ।
केदारादीनि सर्वाणि नश्वराणि जडानि हि ॥४३॥

गये (३७) उस समय पहाड़ी राजाकों का मुखिया उत्तम बुद्धिवाला गर्भज्ञानी राजर्षि चन्द्रवान् (३८) वहाँ (केदारजी में) बहुत दिनों से कठिन तपस्या कर रहा था, सो इन दोनों महात्माओं से मिलने आया। जब ये लोग आपस में काशी की प्रशंसा कर रहे थे, (३९) उसने इन दोनों से कहा कि आप लोग काशीपुरी की क्या प्रशंसा करते हैं ? और किसलिये करते हैं ? यह सब स्थूल प्रपञ्च तो ज्ञानियों के लिये मिथ्या है । (४०) वह राजर्षि काशी का फिर भी अनादर करता हुआ हँसकर बोला कि आप लोग ब्रह्मनिष्ठ हैं, सूक्ष्मदर्शी ज्ञानी हैं, इस क्षण-भङ्गुरस्थूल पदार्थ में आप लोगों की भक्ति कैसे हुई ? आप लोग काशी की और विशेषतः केदार की प्रशंसा करते हैं (४२) हे मुनियो ! विश्वनाथादि के लिङ्ग तो पत्थर के हैं, उसी प्रकार केदारादिक सभी लिङ्ग नश्वर और जड़ हैं (४३)। हम मुक्त पुरुषों की उनमें भक्ति निश्चय-पूर्वक व्यर्थ है ।

१. ग. प्रशंसेते ।

मुक्तानामस्मदादीनां भक्तिस्तेषु वृथा खलु ।
एवं स्वगर्ववाक्यं तदाकर्ण्य क्षितिपेरितम् ॥४४॥
सनत्कुमारो स्कन्दांशो नृपं प्रत्युत्तरं ददौ ।
न वक्तव्यं त्वया चैवं शिवज्ञानविदाऽनृतम् ॥४५॥
ब्रह्मज्ञानं शिवज्ञानात् क्षेत्रलिङ्गप्रभावजात् ।
तस्माद् ब्रह्मस्वरूपं तत् क्षेत्रं लिङ्गञ्च तीर्थकम् ॥४६॥
येन ज्ञातं सत्यमिति स एव ज्ञानिनां वरः ।
एवं सम्भाषमाणास्ते केदारेशस्य सन्निधिम् ॥४७॥
गतास्तदा नृपस्तत्र नापश्यत्तीर्थदेवते ।
किमेतदिति विस्मित्य राजा बभ्राम तौ तदा ॥४८॥
कृतस्नानौ तीर्थवरे लिङ्गे च कृतदर्शनौ ।
नापश्यत्तत्र भूपालस्तीर्थलिङ्गे भ्रमन् मुहुः ॥४९॥
आश्चर्यं किं न दृश्येते लिङ्गतीर्थे ममाऽधुना ।
इति राजा मुनिवरौ पप्रच्छ भयकम्पितः ॥५०॥

इस प्रकार राजा की कही हुई अभिमान भरी बातें सुन कर (४४) स्कन्द के अंश सनत्कुमारजी ने राजा को जवाब दिया कि आप शिवज्ञान के जानकार हैं, आपको ऐसी झूठी बातें न कहनी चाहियें (४५) क्षेत्र और लिङ्ग के प्रभाव से शिवज्ञान होता है, और उससे ब्रह्मज्ञान होता है इसलिये वह क्षेत्र, लिङ्ग और तीर्थ ब्रह्मस्वरूप है। (४६) जिसने सत्य को जाना वही ज्ञानियों में श्रेष्ठ है। इस प्रकार से वार्तालाप करते हुए वे केदारजी के समीप पहुँच गये। (४७) राजा को न वहाँ तीर्थ दिखलाई पड़ा और न देवता दिखाई दिये। इससे आश्चर्य में आकर राजा इधर उधर घूमने लगा (४८) और उन ब्रह्मर्षियों ने तीर्थ में स्नान करके लिङ्ग का दर्शन किया, पर राजा को बार बार खोजने पर भी तीर्थ और लिङ्ग न* दिखाई पड़ा (४९) तब राजा बड़े आश्चर्य में

* यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी ।

स्कन्दांशयोगिन् ! किं चित्रं हरम्पापाख्यतीर्थकम् ।
लिङ्गं केदारनाथाख्यं न दृश्येते उभावपि ॥५१॥
कुत्र तिष्ठति पश्येयं दर्शयस्व महामुने ! ।
इति[1] राजवचः श्रुत्वा योगिराडवदद् नृपम् ॥५२॥

श्रीसनत्कुमार उवाच—
एतत्तीर्थं त्वेष देवः किं न पश्यसि भो नृप ! ।
प्रकाशेते पुनर्मां त्वं [2]पृच्छस्यज्ञातवत्कुतः ॥५३॥

नृप उवाच—
मम[3] दृष्टौ न भवति केन पापेन वाऽद्भुतम् ।
ममापराधः क्षन्तव्यो दर्शनं देहि शङ्कर ! ॥५४॥
ज्ञानवानिति गर्वेण कृतावज्ञा च या मया ।
सर्वज्ञेन त्वया शम्भो ! क्षन्तव्येत्यपतत्पदे[4] ॥५५॥

आया कि मुझे इस समय लिङ्ग और तीर्थ क्यों नहीं दिखाई पड़ रहे हैं, और भय से काँपता हुआ (५०) उन दोनों मुनियों से पूछने लगा कि हे स्वामीकार्त्तिकेय के अंश योगीन्द्र ! यह क्या आश्चर्य्य की बात है कि हरंपाप तीर्थ और केदार लिङ्ग दोनों मुझे दिखाई नहीं पड़ रहे हैं। (५१) वे कहाँ है ? मुझे दिखलाइये। राजा के ऐसे वचन सुन के योगिराज ने कहा (५२)।

श्रीसनत्कुमारजी बोले—हे राजा ! तू क्यों नहीं देखता ? यही तो तीर्थ है और यही देव प्रकाशित हो रहे हैं। तू अनजान की भाँति मुझसे क्यों पूछ रहा है ? (५३) राजा ने कहा—न जानें किस पाप से मेरी आखें नहीं देख रही हैं ? यह क्या अद्भुत बात है ? मेरे अपराधों को क्षमा करके हे शङ्कर ! मुझे दर्शन दो। (५४) ज्ञान के गुमान

१. क. ख. ग. 'इति राजवचः श्रुत्वा०' पादद्वयं नास्ति। २. ग. पृच्छस्य ज्ञानवान्। ३. ख. पुस्तकीयोऽयं पाठः, आ० पु०—मम दृष्टौ न भवति, ग. मम दृष्टी न पश्येते। ४. ग. क्षितौ।

बहुधा प्रार्थितोऽपीशो न दृग्गोचरतां गतः ।
तदा सनत्कुमारं स प्रार्थयामास भूरिशः ॥५६॥
प्रसादीकृत्य शम्भुं त्वं मम दोषं व्यपोहय ।
केदारदर्शनं मेऽद्य कारय त्वं कृपानिधे ! ॥५७॥
एवं नृपो वामदेवकुमारपदपङ्कजे ।
[1]पतत्तदा स्कन्दमुनिः प्रणम्य प्रार्थयद्विभुम् ॥५८॥
राज्ञे[2] कृपां कुरुष्वेति पुनः पुनरनन्यधीः[3] ।
तदा वागभवच्छम्भोः गगने चाऽशरीरिणी ॥५९॥
काशीं गत्वा मत्पुरस्थतीर्थस्नानाच्च दर्शनात् ।
मल्लिङ्गस्य च पूजातः पुनरायाति चेदिह ॥६०॥
तदा मद्दर्शनं भूयाद् भूपतेश्च मयोदितम्[4] ।
नो [5]चेदस्मादेनसो हि दृष्टिलोपो भविष्यति ॥६१॥

से जो अनादर मुझ से हो पड़ा, उसे हे शम्भु ! आप क्षमा करें, ऐसा कहकर चरणों पर गिर पड़ा। (५५) बहुत सी प्रार्थना करने पर भी जब उसे दिखाई न पड़ा, तब उसने सनत्कुमार की बहुत प्रार्थना की (५६) कि आप शङ्कर को प्रसन्न करके मेरे अपराध को क्षमा कराइये और हे कृपानिधे ! मुझे केदार का दर्शन कराइये। (५७)

इस भाँति जब वह राजा वामदेव और सनत्कुमार के पाँव पड़ा, तब कुमार मुनि ने नमस्कार करके विभु शिवजी की एकाग्र हो बार बार प्रार्थना की (५८) कि राजा पर कृपा कीजिये। तब शङ्करजी ने आकाश वाणी से कहा—(५९) हे राजा ! काशी जाकर मेरे सामने स्थित जो तीर्थ है, उसमें स्नान और दर्शन करके यदि यहाँ लौटोगे (६०) तो फिर मेरा दर्शन मेरे वचनानुसार होगा। नहीं तो इसी पाप से तुम्हारी दृष्टि का लोप बना रहेगा। (६१) मेरी आज्ञा से ज्ञानियों की भी बुद्धि नष्ट हो

१. ग. पतंस्तदा। २. ख. राज्ञः। ३. ग. '''रुदारधीः। ४. ख. ग. पुनर्मम। ५. ख. '''दस्यापराधस्य, ग. '''दस्यापराधाच्च।

बुद्धिभ्रंशोऽपि भवति ज्ञानिनाञ्च[1] मदाज्ञया ।
इति वाचं मुनी श्रुत्वा चकितौ भयकम्पितौ ॥६२॥
सनत्कुमारस्तं प्राह नृप ! गच्छाशु काशिकाम् ।
शिवाज्ञया[2] मुच्यसे त्वं काशिनिन्दापराधतः ॥६३॥

नृप उवाच—
कृपापात्रं शिवस्य त्वं मां तारय सुधागिरा ।
शम्भोः प्रसादो मे भूयात्तथा मामाशु बोधय ॥६४॥

सनत्कुमार उवाच—
काश्यां केदारनाथश्च तीर्थं तत्पुरतः स्थितम् ।
पुनः पुनर्नमस्कृत्य शतधा च क्षमापय ॥६५॥

नृप उवाच—
गच्छामि[3] काश्यां भवत आज्ञया च जगद्गुरोः ।
पश्चादिहाहं यास्यामि कर्त्तुमीप्सितमादरात् ॥६६॥

जाती है। इस वाणी को, डर से काँपते हुए, चकित होकर दोनों मुनियों ने सुना। (६२) सनत्कुमार ने उससे कहा हे राजा ! तुम तुरन्त काशी जाओ। शिव की आज्ञा से तुम काशी की निन्दा के अपराध से छूट जाओगे। (६३)

राजा ने कहा कि आप शिवजी के कृपापात्र हैं, मुझे अपने उपदेशामृत से तारिये। मुझे इस भाँति शीघ्र समझाइये कि शङ्कर की मुझ पर कृपा हो। (६४) सनत्कुमार जी ने कहा—काशी में केदारनाथ हैं और उनके सामने एक तीर्थ है, वहाँ बार बार नमस्कार करके सैकड़ों बार क्षमा माँगो। (६५) राजा ने कहा कि हे जगद्गुरो ! मैं आपकी आज्ञा से काशी जाता हूँ और फिर मैं अपने अभीष्ट दर्शन के लिये यहाँ लौटूंगा। (६६) विना जाने मुझसे यह अवज्ञा हो पड़ी,

१ ख. ज्ञानिनोंऽपि, ग. ज्ञानिनोऽस्य। २. क. ख. ग. 'शिवाज्ञया..' श्लोकोऽयं नास्ति। ३. क. ख. ग. 'गच्छामि काश्यां...' अयमपि नास्ति

अजानता मया चैषा कृतावज्ञा ह्यनादरात् ।
[1]भवत्कृपातो भूयासं कृपापात्रं शिवस्य हि ॥६७॥

सूत उवाच—

नृपेणोक्ते व्योम्नि गीश्चाऽपराऽभूदुभयोः पुरः ।
शृणु स्कन्दांशयोगिंस्त्वं काशिकेदारवैभवम् ॥६८॥
वामदेवाय कथय श्रोष्यत्येष नृपोऽखिलम् ।
काशीरहस्यश्रवणाद् अवज्ञापापमुक्तितः ॥६९॥
क्षेत्रतीर्थावगाहाच्च मम लिङ्गस्य दर्शनात् ।
क्षेत्रावज्ञापापमुक्तः पुनर्मद्दर्शनी भवेत् ॥७०॥
काश्यवज्ञाप्तपापानां प्राचीना मणिकर्णिका ।
वारिणी मम लिङ्गस्य दर्शनं वारणं परम् ॥७१॥
विश्वेशमणिकर्ण्यादिदेवैर्नोद्यं कदापि नः ।
अन्यतीर्थैश्च देवैश्च न नोद्यं जन्मकोटिभिः ॥७२॥

आपकी कृपा से मैं शिवजी का कृपापात्र हो सकूँ । (६७) सूत ने कहा—राजा के ऐसा कहने पर फिर आकाश वाणी दोनों के सामने हुई । हे स्कन्द के अंश सनत्कुमार योगी! तुम काशिकेदार की महिमा (६८) वामदेव से कहो और यह राजा भी सब सुने । काशी रहस्य के सुनने से अवज्ञा का पाप छूट जाता है । (६९) क्षेत्र तीर्थ में नहाने और मेरे लिङ्ग के दर्शन से क्षेत्र के अनादर के पाप से छूटकर मेरा दर्शन पाता है । (७०) काशी के अनादर के पाप को रोकनेवाली प्राचीना मणिकर्णिका है और मेरे लिङ्ग का दर्शन उसका नाश करनेवाला है । (७१) विश्वेश्वर और मणिकर्णिकादि देवों से यह पाप कदापि हटनेवाला नहीं है । अन्य तीर्थ और देवों से तो करोड़ जन्म में नहीं कट सकता । (७२) लिङ्ग की अवज्ञा, शिव की

१. क. ख. ग.—'क्षन्तव्या भवतेत्युक्त्वा प्रार्थयामास वै नृपः ।
तदा व्योम्न्यभवद्वाणी स्कन्दांशमुनिमादरात् ॥'

लिङ्गावज्ञा शिवावज्ञा तीर्थावज्ञा च या कृता[1] ।
क्षेत्रावज्ञा मूर्त्त्यवज्ञा देवावज्ञा च या कृता[2] ॥७३॥
विप्रावज्ञा श्रुत्यवज्ञा शास्त्रावज्ञा च या कृता[3] ।
देव्यवज्ञा गणावज्ञा[4] शिवयोगिन एव च ॥७४॥
अवज्ञा शिवभक्तानां पूजावज्ञा महेशितुः ।
पुराणश्रवणावज्ञा मन्त्रावज्ञा महेशितुः ॥७५॥
गुर्ववज्ञा नद्यवज्ञा भूतिरुद्राक्षधारिणाम् ।
अवज्ञा शिवधर्म्माणां रहस्यज्ञानिनां विभोः ॥७६॥
मातापित्रोरवज्ञा या स्कन्दविघ्नेशपार्षदाम् ।
इत्याद्यवज्ञा बह्वयश्च प्राणिनारकदा मुने ! ॥७७॥
एकैवाऽलं नराणां वै पुण्यक्षयसुदुर्गतेः ।
तत्रापि काश्यवज्ञा तु न नोद्या कल्पकोटिभिः ॥७८॥
ततो विश्वेशकेदारलिङ्गादीनामनेन वै ।
कृतावज्ञा ज्ञानलवदुर्विदग्धेन भूभुजा ॥७९॥

अवज्ञा, तीर्थ की अवज्ञा, क्षेत्र की अवज्ञा, मूर्ति की अवज्ञा, देवता की अवज्ञा, (७३) ब्राह्मण की अवज्ञा, वेद की अवज्ञा, शास्त्र की अवज्ञा, देवी की अवज्ञा, गणों की अवज्ञा, शिवयोगी की अवज्ञा, (७४) शिव भक्तों की अवज्ञा, महादेव-पूजा की अवज्ञा, पुराण-श्रवण की अवज्ञा, शिव-मन्त्र की अवज्ञा, (७५) गुरु की अवज्ञा, नदी की अवज्ञा, विभूति-रुद्राक्ष-धारी की अवज्ञा, शिवधर्मों के रहस्यों के जाननेवालों की अवज्ञा, (७६) माता पिता की अवज्ञा, षड़ानन गणेशादि पार्षदों की अवज्ञा इत्यादि बहुत सी अवज्ञाएँ हैं। हे मुने! ये प्राणियों को नरक देनेवाली हैं। (७७) इन अवज्ञाओं में से एक एक पुण्यक्षय और अच्छी भाँति दुर्गति के लिए यथेष्ट है, तिस पर काशी की अवज्ञा से तो कोटि कल्प में भी निस्तार नहीं है। (७८) सो इस ज्ञानलवदुर्विदग्ध

१, २, ३, ग. पुस्तकीयोऽयं पाठः, आ० पु०—गता । ४. ख, गुर्ववज्ञा ।

तत्पापभोगो नरके कल्पकोटिशतैरपि ।
भुक्त्वा न निर्गमोऽस्त्यस्य बहुना किं मुने ! शृणु ॥८०॥
युवयोर्दर्शनार्थं प्राप्तो बहुपुण्यवशादयम् ।
युवां मम प्राणसमौ मद्भक्तौ शिवयोगिनौ ॥८१॥
भवत्प्रार्थनया ह्यस्य निष्कृतिः सूक्ष्मशास्त्रतः ।
रहस्यातिरहस्यं तत्प्रायश्चित्तं सुदुर्लभम् ॥८२॥
कस्मै चापि मया नोक्तं प्रायश्चित्तं विना शिवाम् ।
देव्यै प्रोक्तं[1] मया पूर्वं प्राचीना मणिकर्णिका ॥८३॥
मदवज्ञा [2]च या जाता तदर्थमुपदिष्टवान् ।
तस्माद्गच्छत्वयं काशीं विश्वेशादीन् नमस्य च ॥८४॥
स्नात्वा च मणिकर्ण्याख्यचक्रतीर्थे विमुक्तिदे ।
ततो मत्तीर्थमागत्य मम केदारसन्निधौ ॥८५॥

राजा ने विश्वेश्वर और केदारलिङ्ग की अवज्ञा की है। (७९) इस पाप के फलभोग के लिये, बहुत क्या कहें, शतकोटि कल्प में भी नरक से इसका निस्तार नहीं है। (८०) हे मुने ! सुनो, इसके बहुत बड़े पुण्य के प्रभाव द्वारा आप लोगों से इसकी भेंट हुई है। आप लोग हमारे भक्त शिवयोगी हैं और हमें प्राण के समान प्रिय हैं। (८१) आपकी प्रार्थना से सूक्ष्म शास्त्र द्वारा इसका उद्धार किया जाता है। रहस्यों में भी अतिरहस्य यह अति-दुर्लभ प्रायश्चित्त है। (८२) इस प्रायश्चित्त को मैंने शिवा को छोड़ और किसी से भी नहीं कहा था। पूर्व काल में देवी से मेरी अवज्ञा हो पड़ी, उसके लिए मैंने उन्हें प्राचीन मणिकर्णिका का उपदेश दिया था। इसलिये यह काशी जाय, विश्वेश्वरादिकों को नमस्कार करके (८४) मुक्ति देनेवाले मणिकर्णिका नामक चक्र तीर्थ में स्नान करे, तब मुझ केदार के सन्निकट (८५) अखिल अवज्ञाओं के दोषों का हरण करने-वाले प्राचीन मणिकर्णिका नामक मेरे तीर्थ में आवे और दोषों को दूर

१. ग. प्रोक्ता। २. ग. यतो।

सर्वाविद्यादोषहन्त्रीं[1] प्राचीनां मणिकर्णिकाम् ।
प्रदक्षिणनमस्कारैः प्रार्थ्य दोषापनुत्तये ॥८६॥
तस्यां स्नात्वा चित्तशुद्ध्या मल्लिङ्गस्य च दर्शनात् ।
प्रदक्षिणानमस्कारपूजनात् शुद्धिमाप्स्यति ॥८७॥
पापशुद्धिपरीक्षार्थं पुनरायाति चेदिह ।
तदा मद्दर्शनात्तस्य मुक्तोऽहमिति धीर्भवेत् ॥८८॥
तावन्मद्दर्शनं तस्य न भविष्यति सर्वथा ।
इति[2] वाचौ निशम्याऽथ कुमारः पृष्टवान् विभुम् ॥८९॥

सनत्कुमार उवाच—

भगवन्! सर्वलोकेश! साक्षात् तिष्ठति चात्र हि ।
अत्र स्नानाद्दर्शनाच्च पापमुक्तः कथं न सः ॥९०॥
काश्यां गौणे तीर्थलिङ्गे मुख्यत्वे[3] नः क्षतिर्न किम् ।
संशयो मे महान् जातस्तन्निवारय मे प्रभो! ॥९१॥

करने के लिये प्रदक्षिणा नमस्कारपूर्वक प्रार्थना करे। (८६) उसमें नहाने से चित्त की शुद्धि होगी, और मेरे लिङ्ग के दर्शन, प्रदक्षिणा, नमस्कार और पूजन से शुद्धि को प्राप्त होगा। (८७) पापशुद्धि की परीक्षा के लिए फिर यदि यहाँ आवेगा, तो मेरे दर्शन से इसे यह बुद्धि होगी कि मैं मुक्त हूँ, (८८) तब तक इसको मेरा दर्शन किसी भाँति नहीं होगा।

इस बात को सुनकर कुमार नें व्यापक शङ्कर से पूछा (८९) सनत्कुमार बोले कि हे सर्वलोकेश भगवन्! आप तो साक्षात् यहाँ विराजमान हैं। यहाँ दर्शन और स्नान से वह पाप मुक्त क्यों नहीं होता? (९०) काशी में जो तीर्थ लिङ्ग है, वह गौण है, गौण के मुख्य होने में क्या कोई क्षति नहीं है? यह मुझे बड़ा भारी संशय हो गया है, सो हे मेरे प्रभु! इसका निवारण कीजिये।

१. ग. दोषहन्त्रा प्राचीना मणिकर्णिका। २. क. ख. ग. 'इति वाचौ०...' पादद्वयं नास्ति। ३. ख. ऽत्र।

अशरीरिणी वागुवाच—

शृणु स्कन्दांश ! वक्ष्यामि येन काश्यां गुणाधिके ।
तीर्थलिङ्गे कारणेन तदेकाग्रमना भव ॥९२॥
पाद्मे कल्पे पुरा काश्यां मन्दरादागते शिवे ।
नन्दिनाऽहञ्च तीर्थञ्च प्रार्थ्य नीतौ महापुरीम्[1] ॥९३॥
तदा मे प्रीतिरुत्पन्ना तत्रैव वसतिं प्रति ।
षोडशेषु कलाः पञ्चदश तत्रैव मे स्थिताः ॥९४॥
हरस्पापस्य तीर्थस्य तथैव च कलाः स्थिताः ।
एकया कलयाऽहञ्च तीर्थञ्च स्थानमागतौ ॥९५॥
गौरी तु मामवज्ञाय तद्दोषविनिवृत्तये ।
प्रायश्चित्तं मामपृच्छत्तदा तत्तीर्थमज्जनम् ॥९६॥
मयोपदिष्टं कृला सा द्वादशाब्दमनन्यधीः ।
तदा सा मत्प्रसादेन सर्वावज्ञाघशान्तये ॥९७॥

(९१) बिना शरीरवाली वाणी ने कहा—हे स्वामीकार्त्तिकेय के अंश ! जिस कारण से काशी में तीर्थ लिङ्ग गुणों में अधिक है, उस कारण को मैं कहता हूँ, तुम एकाग्र होकर सुनो। (९२) पहिले पाद्म कल्प में जब मन्दराचल से शिवजी काशी में आये, उस समय नन्दी प्रार्थना करके हमें और तीर्थ को महापुरी काशी में ले गये। (९३) तब मुझे वहीं बसने में प्रीति उत्पन्न हुई और मेरी सोलह कलाओं में से पन्द्रह वहीं ठहर गईं। (९४) उसी भाँति हरस्पाप तीर्थ की भी पन्द्रह कलाएँ वहीं रह गईं और एक कला से हम तथा हमारा तीर्थ यहाँ चला आया। (९५) गौरी ने मेरी अवज्ञा करके उस दोष की निवृत्ति के लिए हमसे प्रायश्चित्त पूछा। तब बारह वर्ष तक उसी में चित्त लगा कर, मेरे उपदेश से, उस तीर्थ में मज्जन किया। तत्पश्चात् शिवा ने मुझसे यह प्रार्थना की कि अखिल अवज्ञा के पाप की शान्ति हमारे

१. ख. पुरम्।

[1]भवत्वेतत्तीर्थवरमिति मां प्रार्थयच्छिवा ।
शिवापराधदोषस्य केनापि हि न निष्कृतिः ॥९८॥
तथापि [2]त्वन्मुदे दास्ये काश्यघस्यापि निष्कृतिम् ।
गौरीतीर्थमिति ख्यातं तव नाम्नापि तिष्ठतु ॥९९॥
प्राक् [3]कल्पाविर्भवात्तस्यां[4] कर्णिकापतनात्तव ।
तवाऽनेकमणेः पातात् प्राचीना मणिकर्णिका ॥१००॥
एवं मद्वरतस्तीर्थं मल्लिङ्गं सर्वपापहम् ।
सर्वावज्ञादोषशान्तिस्तत्रैव हि भवेद् ध्रुवम् ॥१०१॥
एतद्रहस्यं गङ्गापि ज्ञात्वा जह्नूपदेशतः ।
शिवावज्ञादोषशान्त्यै पूर्वमेव समागता ॥१०२॥
दिवोदासोऽपि राजर्षिर्वाष्कलोऽपि[5] द्विजाधमः ।
नैगमेयोऽपि गणराट् बहवो मेऽपराधिनः ॥१०३॥

प्रसाद से (९७) इस तीर्थ द्वारा हो । शिवापराध दोष से किसी प्रकार से उद्धार नहीं है, (९८) तथापि तुम्हारी प्रसन्नता के लिये काशी के अपराध से भी उद्धार करने की शक्ति इस तीर्थ को हमने दी । अब तुम्हारे नाम से इसका नाम गौरीतीर्थ भी हो । (९९) प्राचीन कल्प की महिमा से और तुम्हारे कर्णभूषण और अनेक मणियों के गिरने से इसका नाम प्राचीन मणिकर्णिका होगा । (१००)

इस प्रकार मेरे वर से तीर्थ और मेरा लिङ्ग सब पापों का हरण करनेवाला है, और अशेष अवज्ञा के दोष की शान्ति निश्चय करके उसी से होती है । (१०१) यह रहस्य गङ्गाजी ने जह्नु ऋषि के उपदेश से जाना और शिवजी की अवज्ञा के दोष की शान्ति के लिये पहिले ही काशी गईं । (१०२) दिवोदास राजर्षि, द्विजाधम वाष्कल और गण-राज नैगमेय आदिक बहुतों ने मेरा अपराध किया (१०३) और कृतार्थ

१. ग. भक्त्यै तत्परमं तीर्थमिति मामर्थयच्छिवा । २. ख. त्वत्कृते देवि ! । ३. ख. कल्प्या । ४. तस्य । ५. ग. लक्ष्म ।

जाताः कृतार्थास्त्वेषोऽपि तत्र मुक्तो भविष्यति ।
गच्छ त्वमप्यनेनैव वामदेवर्षिणा सह ॥१०४॥
अज्ञातं मद्रहस्यं यद्विदितं ते भविष्यति ।
[1]राजानं तारयैनौघाद् वामदेवमुपादिश ॥१०५॥
मद्रहस्यमशेषं त्वं श्रुत्वा राजापि मुक्तभाक् ।
भवेदिति नभोवाणी तिरोधाच्छिवसन्निधौ ॥१०६॥
सनत्कुमारस्तच्छ्रुत्वा प्रणिपत्य त्रयो मुहुः ।
[2]काशीं झटित्यागतास्ते केदारेशस्य सन्निधिम् ॥१०७॥
इति मुनिवरयोस्तच्छम्भुवाचः सुवादं
श्रवणरसनपात्रे यः करोत्यादरेण ।
स तु सकलमहाघाद् मुच्यते सत्यमीशा-
लयवसतिममोघां प्राप्यते[3] योगिलभ्याम् ॥१०८॥

इति श्रीकाशीमूलरहस्ये ब्रह्मवैवर्त्ते खिले काशीकेदारमाहात्म्ये द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

हुए, सो यह भी वहाँ मुक्त होगा। तुम भी इसके और वामदेव के साथ जाओ, (१०४) मेरा जो रहस्य तुम नहीं जानते, वह भी तुम्हें मालूम हो जायगा। राजा का पापसमूहों से उद्धार करो और वामदेव को उपदेश दो। (१०५) मेरे अशेष रहस्य को सुन कर राजा भी मुक्ति का भागी होगा।

ऐसा कह कर आकाशवाणी शान्त हो गई। शङ्कर के निकट (१०६) सनत्कुमार ने यह सुना, तब तीनों व्यक्तियों ने वारम्वार शङ्कर को प्रणाम किया, और तुरन्त काशी में केदारजी के सन्निकट आये। (१०७) दोनों मुनि और शङ्कर का शुभ संवाद जो आदर के साथ सुनेगा, वह सम्पूर्ण महापापों से छूटकर शङ्कर के गृह में, जो कि केवल योगी जनों से ही प्राप्य है, अमोघ निवास प्राप्त करेगा। (१०८)

यह श्री ब्रह्मवैवर्त्त के खिलग्रन्थ काशीमूलरहस्य के अन्तर्गत
काशीकेदार-माहात्म्य का द्वितीय अध्याय समाप्त हुआ।

१. ग. वामदेवमुपादिशन् राजानं तारयैनसः। २. ख. काश्याम्। ३. ग. तद्।

अथ तृतीयोऽध्यायः

अनवद्योवाच—

मन्नाथ ! श्रीकृपासिन्धो ! शिवतत्त्वार्थवित्तम ! ।
आश्चर्यं त्वन्मुखाम्भोजाच्छ्रुतमद्य विशेषतः ॥ १ ॥
काशीरहस्यं परमं केदारेशस्य[1] वैभवम् ।
सोमनाथस्य माहात्म्यं वैद्यनाथस्य वैभवम् ॥ २ ॥
तारकेशस्य महिमा हाटकेशस्य वैभवम् ।
महाकालस्य लिङ्गस्य तथा त्रिभुवनेशितुः ॥ ३ ॥
त्र्यम्बकेशस्य[2] महिमा श्रीशैलेशस्य वैभवम् ।
विरूपाक्षमहेशस्य[3] गोकर्णेशस्य वैभवम् ॥ ४ ॥
श्रीकालहस्तिनाथस्य शोणाचलमहेशितुः ।
एकाम्रनाथमहिमा [4]श्रीमद्वृद्धाचलेशितुः ॥ ५ ॥

वामदेव अरु सनत् के संग चले शशिवान ।
पञ्चक्रोश-विधि ते कियो मणिकर्णिका नहान ॥ १ ॥
पूजत केदारेश्वरहिं, पापपुरुष तजि देह ।
प्रगटि कह्यौ महिमा अमित यावत् अन्तर्गेह ॥ २ ॥

अनवद्या ने कहा हे स्वामी ! आप कृपा के समुद्र हैं और शिव-तत्त्व के जाननेवालों में श्रेष्ठ हैं । मैंने आज आपके मुखकमल से विशेष आश्चर्य की बातें सुनीं । (१) काशी का परम रहस्य और केदारनाथ का वैभव, सोमनाथ का माहात्म्य और वैद्यनाथ का वैभव, (२) तार-केश की महिमा, हाटकेश का वैभव, महाकाल लिङ्ग का तथा त्रिभु-वननाथ का माहात्म्य, (३) त्र्यम्बकेश की महिमा, श्रीशैल का वैभव, विरूपाक्ष महेश तथा गोकर्णेश का वैभव (४) श्रीकाल हस्तिनाथ,

---

१ ख. रस्य च । २ ग. अम्बिकेशस्य । ३ ग, विरूपाक्षमाहात्म्यं । ४ ग, श्रीमद्विन्ध्याचलेशितुः ।

दर्शनाद् मुक्तिदविभोः सभानाथस्य वैभवम् ।
श्रीजम्बुनाथमहिमा मातृभूतेशवैभवम् ॥ ६ ॥
श्रीमद्वातपुरीशस्य हालास्येशमहेशितुः ।
त्रीहिवाटीशमहिमा पापनाशमहेशितुः ॥ ७ ॥
श्रीमद्रामेश्वरविभो वेदारण्येशवैभवम् ।
[1]वल्मीकनाथमहिमा तथाऽमृतघटेशितुः ॥ ८ ॥
छायावनेशमहिमा श्वेतारण्येशितुस्तथा ।
वैद्यनाथस्य महिमा तथा ब्रह्मेश्वरस्य च ॥ ९ ॥
मायूरनाथमहिमा श्रीवाञ्छेशस्य[2] वैभवम् ।
श्रीमदर्जुननाथस्य कुम्भेशादिशिवात्मनाम् ॥१०॥
श्रीमत्पञ्चनदेशस्य[3] तथाऽनेकशिवात्मनाम् ।
तथा विन्ध्यगतानां चामरकण्टकशम्भुतः[4] ॥११॥
तथा पशुपतीशादिप्रमुखानां हिमाचले ।
मेरुमन्दरसंस्थानां द्वीपखण्डस्थशूलिनाम् ॥१२॥

शोणाचल महेश, एकांम्रनाथ तथा श्रीमद्वृद्धाचल की (५) महिमा, सभानाथ का वैभव, जो कि दर्शन से ही मुक्ति देनेवाला है, श्री जम्बुनाथ की महिमा, मातृभूतेश का वैभव, (६) श्रीमान् वातपुरीश, हालास्येश शङ्कर, त्रीहिवाटीश तथा पापनाश महेश की महिमा, (७) श्रीमद्रामेश्वर और विद्यारण्येश का वैभव, वाल्मीकिनाथ तथा मृतघटेश की महिमा, (८) छायावनेश तथा श्वेतारण्येश की महिमा, वैद्यनाथ तथा ब्रह्मेश्वर की महिमा, (९) मायूरनाथ की महिमा तथा श्रीवाञ्छेश का वैभव, श्रीमान् अर्जुननाथ तथा कुम्भेशादि (१०) श्रीमत्पञ्चनदेश तथा अनेक शिवलिङ्गों का महत्त्व आपने कहा। जिस भाँति विन्ध्य पर्वत के लिङ्गों में अमर कण्टक लिङ्ग है, (११) उसी भाँति हिमाचल में पशुपति आदिक लिङ्ग प्रधान हैं। मेरु मन्दर द्वीप और खण्डों में

१ ग, वाल्मीकिनाथ०। २ ग, वाञ्छेरेशस्य। ३ ग, पञ्चाल०। ४ ग, सम्भुवाम्।

गङ्गादितीर्थतीरस्थलिङ्गानां च विशेषतः ।
वनपर्वतमध्यस्थपयोधिगतशूलिनाम् ॥१३॥
अनेकानाञ्च[1] माहात्म्यं श्रुतं श्रीमन्मुखाम्बुजात् ।
इदं रहस्यं काशीस्थकेदारस्य महाद्भुतम् ॥१४॥
कथं देव्या शिवावज्ञा जाता[2] वै गङ्गया पुनः ।
नैगमेयगणेनापि शिवाज्ञावशवर्त्तिना ॥१५॥
दिवोदासेन राज्ञा वै[3] धर्म्मज्ञेन महात्मना ।
वाष्कलेन च वाऽवज्ञा कथं प्राप्ता महेशितुः ॥१६॥
मुक्ताः कथं पुनस्ते वै शिवावज्ञा[4] तु दुस्त्यजा ।
स्कन्दांशवामदेवर्षिनृपैः काश्याञ्च किं कृतम् ॥१७॥
एतत्सर्वं मम विभो ! विस्तराद् वक्तुमर्हसि ।
यद्यहं श्रवणे योग्या रहस्यस्य महेशितुः ॥१८॥

जो शिवलिङ्ग हैं (१२) और विशेषतः गङ्गादि तीर्थ के तीर पर जो लिङ्ग स्थित हैं, वन और पर्वत के मध्य में और समुद्र के गर्भ में जो लिङ्ग हैं, (१३) इन सब लिङ्गों तथा और भी अनेक लिङ्गों का माहात्म्य मैंने आपके मुखकमल से सुना । परन्तु काशीस्थ केदार का यह रहस्य महा अद्भुत है । (१४) गङ्गादेवी से शिव की अवज्ञा कैसे हुई ? शिवजी की आज्ञा वशवर्त्ती नैगमेय से अवज्ञा कैसे हुई ? (१५) महात्मा धर्मज्ञ दिवोदास से और बाष्कल से शङ्कर की अवज्ञा कैसे हो पड़ी ? (१६) फिर ये लोग इस अवज्ञा के अपराध से कैसे मुक्त हुए ? क्योंकि यह अपराध बड़ी ही कठिनता से छूटता है। कुमार वामदेव और राजा ने काशी में जाकर क्या किया ? (१७) सो हे प्रभो ! यदि मुझे शिव रहस्य के सुनने के योग्य समझते हो तो यह सब मुझसे विस्तार से कहो ।

इस प्रकार अनवद्या ने जब नाथशर्मा से प्रश्न किया, तब उन्होंने

१ ग. अनेकेषाम् । २ ग. प्राप्ता वा । ३ ग. वा । ४ ख. न शिवावज्ञानपतः ।

इत्येवञ्च कृतप्रश्नो नाथशर्म्माऽनवद्यया ।
वक्तुं समारभत्तस्यै रहस्यं परमेशितुः ॥१९॥

नाथशर्मोवाच—

शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि यथावत्सर्वमादितः ।
सनत्कुमारयोगीन्द्रो[१] वामदेवमहामुनिः ॥२०॥
चन्द्रवान्नामराजर्षिः श्रीकाशीं प्रापुरादरात् ।
पञ्चक्रोशात्मकं दिव्यं महालिङ्गं नमस्य च ॥२१॥
ऊचुः[२] प्राञ्जलयस्ते तु विनयावनताऽनघे ! ।

त्रय ऊचुः—

लिङ्गस्वरूप ! भगवन् ! शृण्वस्माकमभीप्सितम् ॥२२॥

परमेश्वर का रहस्य-वर्णन आरम्भ किया । (१९) नाथशर्मा ने कहा—हे देवि ! सुनो, मैं तुमसे आरम्भ से सब यथावत् कहता हूँ, योगीन्द्र-सनत्कुमार महामुनि वामदेव (२०) और राजर्षि चन्द्रवान आदर के साथ काशी आये और पञ्चक्रोशात्मक दिव्य महालिङ्ग* को नमस्कार किया । (२१) हे पापरहिते ! वे लोग विनय से शिर झुकाये हुए हाथ जोड़कर बोले । तीनों ने कहा—हे लिङ्गस्वरूप भगवान् ! हम लोगों का मनोवाञ्छित सुनो । (२२) आपके महालिङ्गरूप में पाँव रखने के दोष से हम लोगों को मुक्त करो, क्योंकि हे विश्वेश्वर ! आप तो सभी जगह

* अविमुक्तं महत्क्षेत्रं पञ्चक्रोशपरीमितम् (?) ।
ज्योतिर्लिङ्गं तदेकं हि ज्ञेयं विश्वेश्वराभिधम् ॥ (काशीखण्ड०—अ० २६)

अर्थ—महान् क्षेत्र अविमुक्त का परिमाण पाँच कोश है, इसे एक ज्योतिर्लिङ्ग जानना चाहिये, इसी का नाम विश्वेश्वर है ।

लिङ्गरूपधरः शम्भुर्हृदयाद्बहिरागतः ।
वृद्धिमासाद्य महतीं पञ्चक्रोशात्मकोऽभवत् (ब्रह्मवैवर्त्त पु०)

अर्थ—लिङ्गरूपधारी शङ्कर विष्णु के हृदय से बाहर आये, और बड़ी भारी वृद्धि को प्राप्त होकर पञ्चक्रोशात्मक हो गये ।

१ ग. सनत्कुमारो योगीन्द्रो वामदेवो महामुनिः । २ क, ख, ग. 'ऊचुः प्राञ्जलयः'···पादद्वयं नास्ति ।

महालिङ्गे त्वदाकारे[1] पादन्यासादिदोषतः ।
मुक्ता भवेम विश्वेश ! यतस्त्वं सर्वगः प्रभो ! ॥२३॥
एवं सम्प्रार्थ्य ते प्रापुर्दुष्प्रापां मणिकर्णिकाम् ।
तत्र स्नात्वा च विधिना श्रीविश्वेशं प्रणम्य च ॥२४॥

व्याप्त हो। (२३) इसी भाँति प्रार्थना करते हुए वे लोग कठिनता से प्राप्त होनेवाली मणिकर्णिका को प्राप्त हुए। वहाँ विधि के साथ स्नान करके विश्वेश्वर को प्रणाम किया। (२४) ढुण्ढिराज गणेश, वेणीमाधव, दण्डपाणि और कालभैरव को प्रणाम किया। ओंकारादि ❀

❀ १ ओङ्कारेश्वर—मछोदरी के उत्तर पठानी टोला में, २ त्रिलोचनेश्वर—त्रिलोचन मुहल्ले में, ३ आदिमहादेव—वहीं पर, ४ कृत्तिवासेश्वर—(हंसतीर्थ) हरतीरथ, ५—रत्नेश्वर—वृद्धकाल की सड़क के पास, ६ चन्द्रेश्वर—सिद्धेश्वरी, ७ केदारेश्वर—केदार घाट, ८ धर्मेश्वर—मीरघाट, धर्मकूप की गली; ९ वीरेश्वर—सेंधिया घाट के पास, आत्मावीरेश्वर; १० कामेश्वर—त्रिलोचन बाज़ार के पास, ११ विश्वकर्मेश्वर—हनुमान फाटक के पश्चिम (ग्वालगड़ा), १२ मणिकर्णिकेश्वर—काकाराम की गली, गोमठ; १३ अविमुक्तेश्वर—ज्ञानवापी उत्तर फाटक (गुप्त), १४ विश्वेश्वर—विश्वनाथ।

यस्तु क्षेत्रमुषित्वा तु नैतां यात्रां समाचरेत् ।
विघ्नास्तस्यावतिष्ठन्ते क्षेत्रोद्धाटनसूचकाः ॥

१ शैलेश्वर—मढीयाघाट, वरुणातट पर; २ संगमेश्वर, वरुणा-संगम, आदिकेशव के पास; ३ स्वर्लीनेश्वर—राजघाट के पास नया महादेव, ४ मध्यमेश्वर—मधमेसर, मैदागिन; ५ हिरण्यगर्भेश्वर—त्रिलोचन घाट, ६ ईशानेश्वर—कोतवालपुरा, नई सड़क; ७ गोप्रेक्षेश्वर—लालघाट, गायघाट के पास; ८ वृषभध्वजेश्वर—खालिस पुरा, कपिलधारा; ९ उपशान्तीश्वर—अग्नेश्वर घाट, १० ज्येष्ठेश्वर—काशी पुरा, सप्तसागर; ११ निवासेश्वर—भूत भैरव, १२ शुक्रेश्वर—कालका गली, शुक्र कूप; १३ व्याघ्रेश्वर—भूत भैरव, १४ जम्बुकेश्वर—बड़े गणेशजी के दरवाजे पर।

अपरापि शुभा यात्रा योगक्षेमकरी सदा ।
सर्वविघ्नोपहन्त्री च कर्तव्या क्षेत्रवासिभिः ॥

१ अमृतेश्वर—नीलकण्ठ पर, कुञ्जविहारी जी गंगापुत्र के मकान में, २ तारकेश्वर—ज्ञानवापी के पूर्व, ३ ज्ञानेश्वर—लाहौरी टोला, दारूमल खत्री के

१ ग. तु केदारे।

दुण्ढिराजं माधवश्च दण्डपाणिश्च भैरवम् ।
ओङ्कारादीनि लिङ्गानि द्विचत्वारिंशसंख्यया ॥२५॥
दक्षिणोत्तरसंज्ञश्च मानसं लिङ्गतीर्थकम् ।
लोलार्कादीनि लिङ्गानि द्वादशादित्यसंज्ञया ॥२६॥

बयालीस लिङ्गों तथा ❀ बारहों आदित्यों का दर्शन किया । (२६)

घर में; ४ करुणेश्वर—वहीं पर, ५ मोक्षद्वारेश्वर—फूटे गणेश के पास, ६ स्वर्ग-द्वारेश्वर—ब्रह्मनाल, बच्चासिंह के कमरे के पास; ७ ब्रह्मेश्वर—बालमुकुन्द का चौहट्टा, बंगाली टोला; ८ लाङ्गलीश्वर—ज्ञानवापी, खोवा बाज़ार; ९ वृद्धकाले-श्वर—वृद्धकाल मोहल्ला, १० वृषेश्वर—गोरखनाथ का टीला मन्दिर, ११ चण्डी-श्वर—सदर बाज़ार, चण्डी देवी के पास; १२ नन्दिकेश्वर—ज्ञानवापी के पूर्व, १३ महेश्वर—मणिकर्णिका, गङ्गातट; १४ ज्योतीरूपेश्वर—गोमठ, काकाराम की गली ।

काश्याश्चतुर्दशैतानि महालिङ्गानि सुन्दरि ! ।
इमानि मुक्तिहेतूनि लिङ्गान्यानन्दकानने ॥
कलिकल्मषबुद्धीनां नाख्येयानि कदाचन ।
एतान्याराधयेद्यस्तु लिङ्गानीह चतुर्दश
न तस्य पुनरावृत्तिः संसाराध्वनि कर्हिचित् ।

प्रथम चतुर्दश लिङ्ग की यात्रा न करने से काशीवास में विघ्न होते हैं । द्वितीय चतुर्दश की यात्रा योग-क्षेम करनेवाली और विघ्ननाश करनेवाली है और तृतीय चतुर्दश की यात्रा मोक्ष का कारण है ।

❀ १—लोलार्क—मुहल्ला भदैनी में, गो० तुलसीदास के अखाड़े के पश्चिम; २—उत्तरार्क—अलईपुरा, बकरिया कुण्ड (इनके स्थान पर अब गाजीमियाँ पुजाते हैं); ३—साम्बादित्य—सूर्यकुण्ड, ४—द्रुपदादित्य—विश्वनाथ जी के पास हनुमान जी के मन्दिर में, ५—मयूखादित्य—मंगलागौरी में, ६—खखोल-कादित्य--कामेश्वर में, त्रिलोचन बाजार के पास; ७—अरुणादित्य—त्रिलोचन महादेव में, ८—वृद्धादित्य—मीरघाट, ९—केशवादित्य—वरुणा-संगम आदि-केशव में, १०—विमलादित्य—जंगमबाडी खारी कुंआ के पास, ११—गङ्गादित्य—ललिताघाट, नैपालीखपरा मन्दिर के पास; १२—यमादित्य—संकठा घाट, वशिष्ठे-श्वर के पास, घाट की सीढ़ी पर ।

रविवारे रवेर्यात्रा षष्ठ्यां वा रविसंयुजि ।
तथैव रविसप्तम्यां सर्वविघ्नोपशान्तये ॥

षड्पञ्चाशद्गणेशानां[1] मूर्त्तीनाञ्च पृथक् पृथक्।
योगिनीनां चतुःषष्ठिं गणानाञ्च महेशितुः ॥२७॥

[दक्षिण एवं उत्तर नामक मानस तीर्थ तथा द्वादश आदित्य के नाम से परिचित लोलार्कादि लिङ्गों का दर्शन किया (२६)] इसी भाँति ❀

❀ १ अर्क विनायक—लोलार्क के पास भदैनी, २ दुर्गविनायक—दुर्गाजी के मन्दिर में, ३ भीमचण्ड वि०—भीमचण्डी, पञ्चक्रोशी; ४ देहली विना —डेहरिया विनायक, भटौली गाँव; ५ उद्दण्ड विना०—हीरमपुर गांव, पञ्चक्रोशी; ६ पाशपाणि वि०—सदरबाजार के पश्चिम, ७ खर्व विना०—आदिकेशव, वायव्यकोण, किले में; ८ सिद्ध विनायक—मणिकर्णिका।

बाह्यावरणगाश्चैते काश्यामष्टौ विनायकाः।
उच्चाटयन्त्यभक्तांश्च भक्तानां सर्वसिद्धिदाः॥

९ लम्बोदर वि०—केदारजी की गली, चिन्तामणि; १० कूटदन्त वि०—किनाराम का स्थान, ११ शालकटङ्कट वि०—मडुआडीह तालाब के पश्चिम, १२ कूष्माण्ड वि०—फुलवरिया गाँव, १३ मुण्ड विनायक—सदरबाजार चण्डीदेवी में, १४ विकटद्विज वि०—नाटी इमली के पास धूपचण्डी, १५ राजपुत्र वि०—राजघाट के किले में, १६ प्रणव वि०—त्रिलोचन घाट, हिरण्य गर्भेश्वर में।

द्वितीयावरणे काश्यामष्टावेते विनायकाः।
उत्सादयेयुर्विघ्नौघान् काशीस्थितिनिवासिनाम्॥

१७ वक्रतुण्ड विनायक—राणामहल, सरस्वती वि०; १८ एकदन्त वि०—बंगालीटोला, पुष्पदन्तेश्वर में; १९ त्रिमुख वि०—सिगरा, त्रिपुरान्तकेश्वर का टीला; २० पञ्चास्य वि०—पिशाचमोचन, २१ हेरम्ब वि०—पिशाचमोचन, बाल्मीकि का टीला; २२ विघ्नराज वि०—चित्रकोट के तालाब पर, २३ वरद वि०—प्रहलाद घाट के पास, पुरानी सड़क में; २४ मोदकप्रिय वि०—त्रिलोचन घाट, आदिमहादेव के मन्दिर में।

क्षेत्रे तृतीयावरणे क्षेत्ररक्षाकृतः सदा।
ये विघ्नराजाः सन्तीह ते वक्तव्या मयाऽधुना॥

२५ अभयद वि०—दशाश्वमेध, शूलटङ्केश्वर में; २६ सिंहतुण्ड वि०—बालमुकुन्द का चौहट्टा, ब्रह्मेश्वर; २७ कूणिताक्ष वि०—लक्ष्मीकुण्ड, २८ क्षिप्रप्रसाद वि०—पितरकुण्डा, पित्रेश्वर महादेव में; २९ चिन्तामणि वि०—इसरगंगी, बाबू की बजार; ३० दन्तहस्त वि०—बड़े गणेश के पश्चिम फाटक में, ३१ पिचि·

१ ग. गणेशानमूर्तीनाञ्च।

छप्पन विनायक, ❀चौंसठ योगिनी और शङ्कर के

ण्डिल वि०— प्रह्लादघाट, ३२ उद्दण्डमुण्ड वि०—त्रिलोचन महादेव के मन्दिर में।

चतुर्थावरणे काश्यां भक्तविघ्नविनाशकाः।
द्रष्टव्या हृष्टचेतोभिः स्पष्टमष्टौ विनायकाः॥

३३ स्थूलदन्त वि०—मानमन्दिर, सोमेश्वर के द्वार पर; ३४ कलिप्रिय वि०—साक्षिविनायक, मनः कामेश्वर के मन्दिर में; ३५ चतुर्दन्त वि०— ध्रुवेश्वर का मन्दिर, कोदई की चौकी; ३६ द्विमुख वि०—सूर्यकुण्ड, साम्बादित्य के पश्चिम; ३७ ज्येष्ठ वि० —काशीपुरा, ज्येष्ठेश्वर के मन्दिर में; ३८ गज विना०—मछरहट्टा, गोविन्दपुरा, भारतभूतेश्वर के मन्दिर में; ३९ काल विना०—रामघाट, ४० नागेश वि०—घोसलाघाट, नागेश्वरका मन्दिर।

प्रावरे पञ्चमे काश्यां द्विचतुष्कविनायकाः।
कुर्वन्ति रक्षां क्षेत्रस्य ये तानत्र ब्रवीम्यहम्॥

४१ मणिकर्णिका विना०—सतुआ बाबा के पास, ४२ आशा वि०—मीरघाट, हनुमान जी के मन्दिर में; ४३ सृष्टि विना०—कालिका गली, ४४ यक्ष वि०—कोतवालपुरा मुहल्ला, रुद्रप्रसाद का मन्दिर, ४५ गजकर्ण वि०—कोतवालपुरा इशानेश्वर में, नई सड़क पर; ४६ चित्रघण्ट वि०—चाँदनी चौक, ४७ मङ्गल वि०—मङ्गलागौरी, ४८ मित्र विना०—आत्मावीरेश्वर का मन्दिर।

अथ षष्ठावरणगाः प्रोच्यन्ते विघ्ननायकाः।
तेषां नामश्रवादेव पुंसां सिद्धिः प्रजायते॥

४९ मोद विनायक, ५० प्रमोद विनायक, ५१ सुमुख विनायक, ५२ दुर्मुख विनायक, ५३ गणनाथ विनायक, ५४ ज्ञानविनायक, ५५ द्वारविनायक, ५६ अविमुक्त विनायक, ये आठ विनायक ज्ञानवापी के आठो दिशाओं में हैं। ये छप्पन विनायक रूप से भगवान् ढुण्ढिराज ही काशी के सातों आवरणों में आठ आठ मूर्ति से विराजमान होकर तीर्थ की रक्षा करते हैं।

षट्पञ्चाशद्गजमुखानेतान्यः संस्मरिष्यति।
दूरदेशान्तरस्थोऽपि स मृतो ज्ञानमाप्नुयात्॥

❀ राणामहल—१ गजानना, २ सिंहमुखी, ३ गृध्रास्या, ४ काकतुण्डिका, ५ उष्ट्रग्रीवा, ६ हयग्रीवा। मानमन्दिर—७ वाराही राणामहल—८ शरभानना, ९ उलूकिका, १० शिवारावा, ११ मयूरी, १२ विकटानना, १३ अष्टवक्त्रा, १४ कोटराक्षी, १५ कुब्जा, १६ विकटलोचना, १७ शुष्कोदरी, १८ ललज्जिह्वा, १९ श्वदंष्ट्रा, २० वानरानना, २१ ऋक्षाक्षी, २२ केकराक्षी, २३ बृहत्तुण्डा, २४ सुराप्रिया २५ कपालहस्ता, २६ रक्ताक्षी, २७ सुकेशिनी, २८ कपोतिका, २९ पाशहस्ता, ३० दण्डहस्ता, ३१ प्रचण्डा, ३२ चण्डविक्रमा, ३३ शिशुघ्नी, ३४ पापहन्त्री, ३५ काली,

मूर्त्तीनाञ्च महाविष्णोः पृथक् सप्तशतं पुनः ।
ज्ञानवाप्यादितीर्थानां दुर्गाक्षेत्रप्रवर्षणाम्[१] ॥२८॥

*गणों की मूर्तियों का अलग अलग दर्शन किया । (२७) महाविष्णु की सात सौ पृथक् † मूर्तियों का, ज्ञानवापी ‡ आदि तीर्थों का,

---

३६ रुधिरपायिनी, ३७ वसाधया, ३८ गर्भभक्षा, ३९ शवहस्ता, ४० अन्त्रमालिनी । **डौंडियावीर**—४१ स्थूलकेशी । **राणामहल**—४२ बृहत्कुक्षि, ४३ सर्पास्या, ४४ प्रेतवाहना, ४५ दन्दशूककरा, ४६ क्रौंची, ४७ मृगशीर्षा, ४८ वृषानना, ४९ व्यात्तास्या, ५० धूमनिःश्वासा, ५१ व्योमैकचरणा, ५२ ऊर्ध्वदृशी, ५३ तापिनी, ५४ शोषणीदृष्टि, ५५ कोटरी, ५६ स्थूलनासिका, ५७ विद्युत्प्रभा, ५८ वलाकास्या, ५९ मार्जारी, ६० कटपूतना, ६१ अट्टाट्टहासा । **कमच्छा**—६२ कामाक्षा, ६३ मृगाक्षी, ६४ मृगलोचना । ६४ योगिनियों के नाम सब योगिनियोंका पता नहीं चलता, अत एव चौसट्टी घाट पर चतुःषष्टी देवी की पूजा यात्रा से सम्यक् फल होता है ।

* शङ्कुकर्ण, घण्टाकर्ण, सोमनन्दी, कालगण, कुक्कुट, मयूर, गोकर्ण, तिलपर्ण, द्रुमचण्ड, सुकेश, छाग, पिङ्गलाक्ष, किरात, निकुम्भ, भारभूत, क्षेमक, विराध, आषाढ, महाकाल, महोदर, नन्दिषेण, पिङ्गल, कुण्डोदर, वाणगण, तारक, स्थूलकर्ण, प्रभामय, विंदते (?), कपर्दी, वीरभद्र, चतुर्मुख, त्र्यक्ष, लाङ्गलि और सुमख ये ३४ गण विश्वनाथ के भेजे हुए राजा दिवोदास के समय में काशी आये और लिङ्ग-स्थापन करके श्रीकाशी में ही रह गये । तथा नन्दी, नन्दिषेण, सोमनन्दी, महोदर, महाहनु, महाग्रीव, महाकाल, जीवान्तक, मृत्युकम्पन इत्यादि शतकोटि दुरासद गण सब जगह काशी के भीतर बाहर रक्षा करते हैं ।

† काशी के तीर्थों और लिङ्गों के साथ २ विष्णु की मुक्तिदायिका मूर्तियाँ हैं । तमाम पञ्चक्रोशी में और उसके भीतर बाहर उन उन तीर्थादिकों के नाम से सनातन विष्णु स्थित हैं । यथा वायुपुराणेः—

तत्र तीर्थान्यनेकानि लिङ्गानि मुनिसत्तम ! ।
तत्र तत्र हरेर्मूर्तिर्वर्त्तते मुक्तिदायिका ॥
पञ्चक्रोशेषु सर्वत्र वहिरन्तरमेव च ।
तत्तत्तीर्थादिनाम्ना वै स्थितो विष्णुः सनातनः ॥

२ मूर्तियों के अतिरिक्त ७०० मूर्तियाँ महाविष्णु की थीं ।

‡ अर्थात् षट्तीर्थी, १ पादोदक तीर्थ—वरुणा-संगम, २ असी-संगम तीर्थ अस्सीघाट प्रसिद्ध, ३ ज्ञानोद तीर्थ—ज्ञानवापी प्रसिद्ध, ४ मणिकर्णिका तीर्थ—

१ ग. प्रधानतः ।

पञ्चक्रोशस्थदेवानां तीर्थानां क्षेत्ररक्षिणाम् ।
पञ्चक्रोशबहिःस्वर्गभूमेः पालान् समन्ततः ॥२६॥

दुर्गा* तीर्थ क्षेत्र की मूर्तियोंका (२८) † पञ्चक्रोश में स्थित

प्रसिद्ध, ५ ब्रह्मह्रद तीर्थ—ब्रह्मनाल ६ धर्मह्रद तीर्थ—पञ्चगङ्गा । यथा—

पादोदकासिसंभेदज्ञानोदमणिकर्णिकाः ।
षडङ्गोऽयं महायोगो ब्रह्मधर्मह्रदावपि ॥

पञ्चतीर्थी—(१) असी-संगम, (२) दशाश्वमेध, (३) पादोदक, (४) पञ्चनद, (५) मणिकर्णिका ।

चतुस्तीर्थी—(१) पिलिप्पिलातीर्थ, (२) पञ्चगङ्गा, (३) मणिकर्णिका, (४) ज्ञानवापी ।

त्रितीर्थी—(१) दशाश्वमेध, (२) पञ्चगङ्गा, (३) मणिकर्णिका,

* शैलपुत्री दुर्गा—मढ़ियाघाट, शैलेश्वर महादेव में (१)।
ब्रह्मचारिणी दुर्गा—दुर्गाघाट (२)।
चित्रघण्टा दुर्गा—लखीचौतरा, चन्दू नाऊ की गली (३)।
कूष्माण्डा दुर्गा—दुर्गाजी दुर्गाकुण्ड (४)।
स्कन्दमाता दुर्गा—बागेश्वरी जैतपुरा (५)।
कात्यायनी दुर्गा—आत्मावीरेश्वर (६)।
कालरात्रि दुर्गा—कालीजी कालिका गली (७)।
महागौरी दुर्गा—सङ्कटाजी प्रसिद्ध (८)।
सिद्धिदा दुर्गा—सिद्धिमाता की गली (९)।

† १ मणिकर्णिका—प्रख्यात, २ मणिकर्णिकेश्वर—काकाराम की गली, ३ सिद्धविनायक—उसी मार्ग में सीढी पर, ४ गङ्गाकेशव—ललिताघाट, ५ ललिता देवी—ललिताघाट, ६ जरासिन्धेश्वर—मीरघाट, (गुप्त) ७ सोमेश्वर—मानमन्दिरघाट, ८ दाल्भ्येश्वर—मानमन्दिरघाट, ९ शूलटङ्केश्वर—दशाश्वमेध, १० वाराहेश्वर—दशाश्वमेध (राममन्दिर), ११ दशाश्वमेधेश्वर—दशाश्वमेध (शीतला-मन्दिर), १२ वन्दीदेवी—दशाश्वमेध मकान नं० १६।६८, १३ सर्वेश्वर—पाँड़ेघाट, १४ केदारेश्वर—केदारघाट, १५ हनुमदीश्वर—हनुमानघाट, १६ लोलार्क—भदैनी, १७ अर्कविनायक—भदैनी, १८ सङ्गमेश्वर—अस्सीघाट, १९ दुर्गाकुण्ड—प्रसिद्ध दुर्गाकुण्ड, २० दुर्गविनायक—दुर्गाकुण्ड, २१ दुर्गादेवी—दुर्गाकुण्ड, २२ विश्वक्सेनेश्वर—करमैतापुर गाँव, २३ कर्दमतीर्थ—कँदवा, २४ कर्दमेश्वर—कँदवा (विश्राम), २५ कर्दमकूप—कँदवा, २६ सोमनाथेश्वर—कँदवा, २७ विरूपाक्ष कँदवा, २८ नीलकण्ठेश्वर—कँदवा, २९ नागनाथेश्वर—अमरा गाँव, ३० चामुण्डा-

देवताओं का और तीर्थ के रक्षकों का पञ्चक्रोश के बाहर जो

देवी—अँवड़े ग्राम, ३१ मोक्षेश्वर-(?), ३२ करुणेश्वर—देल्हना ग्राम, ३३ वीर-भद्र, ३४ विकटाक्षदुर्गा—(?), ३५ उन्मत्त भैरव—देउरा ग्राम, ३६ नीलगण, ३७ कालकूट, ३८ विमलादुर्गा, ३९ महादेवेश्वर, ४० नन्दिकेश्वर, ४१ भृङ्गीरीटगण—(?) ४२ गणप्रिय—गौरा ग्राम, ४३ विरूपाक्ष—(?), ४४ यक्षेश्वर—मातलदेई चक, ४५ विमलेश्वर—प्रयागपुर, ४६ मोक्षेश्वर, ४७ ज्ञानदेश्वर—(?), ४८ अमृतेश्वर—आसावरी ग्राम, ४९ गन्धर्वसागर—(?), ५० भीमचण्डी देवी—भीमचण्डी, ५१ चण्डविनायक—भीमचण्डी, ५२ रविरक्ताक्षगन्धर्व—भीमचण्डी, ५३ नरकार्णवतार-शिव—भीमचण्डी (विश्राम), ५४ एकपादगण—(कचनार ग्राम), ५५ महाभीम—(हरैं तालाब), ५६ भैरव—हरसोद ग्राम, ५७ भैरवी—हरसोत ग्राम, ५८ भूतनाथेश्वर—दीनदासपुर, ५९ सोमनाथेश्वर—लँगोटिया हनुमान, ६० सिन्धुसंरोधन तीर्थ—लँगोटिया हनुमान, ६१ कालनाथेश्वर—जनसा ग्राम, ६२ कपर्दीश्वर—(?), ६३ कामेश्वर—चौखण्डी, ६४ गणेश्वर, ६५ वीरभद्रगण, ६६ चारुमुखगण—(?), ६७ गणनाथ—भटौली ग्राम, ६८ देहली विनायक—प्रसिद्ध डेहरिया विनायक, ६९ षोडश विनायक—उनके पिछवारे, ७० उद्दण्ड विनायक—(?), ७१ उत्कलेश्वर—हीरमपुर, ७२ रुद्राणी—करौना ग्राम, रामेश्वर; (प्रसिद्ध) ७३ तपोभूमि—रामेश्वर, ७४ वरुणातीर्थ—रामेश्वर, ७५ रामेश्वर—रामेश्वर, ७६ सोमेश्वर—रामेश्वर, ७७ भरतेश्वर—रामेश्वर, ७८ लक्ष्मणेश्वर—रामेश्वर, ७९ शत्रुघ्नेश्वर—रामेश्वर, ८० द्यावाभूमीश्वर—रामेश्वर, ८१ नहुषेश्वर—(विश्राम) रामेश्वर, ८२ असंख्यात तीर्थ—भुलनीवारी, ८३ असंख्यातलिङ्ग—भुलनीवारी, ८४ (क) देवसन्ध्येश्वर—करोमा ग्राम, (ख) पञ्चपाण्डवेश्वर—शिवपुर, (ग) द्रौपदीकूप-शिवपुर, ८५ पाशपाणि विनायक—सदर बाजार, ८६ पृथ्वीश्वर—खजुरी ग्राम, पिसनहरिया कूप; ८७ स्वर्गभूमि—सारङ्ग तालाब, ८८ कूपसरोवरतीर्थ—सोना तालाब, ८९ वृषभध्वजतीर्थ—कपिलधारा ९० वृषभध्वजेश्वर—कपिलधारा, ९१ ज्वालानृसिंह—कोटवा गाँव, ९२ वरुणा-संगम—आदिकेशव, ९३ आदिकेशव—आदिकेशव, ९४ संगमेश्वर—आदिकेशव, ९५ खर्व विनायक—क़िले में ९६ प्रह्लादेश्वर—प्रह्लादघाट, ९७ त्रिलोचन—त्रिलोचनघाट, ९८ पञ्चगङ्गा—पञ्चगङ्गाघाट, ९९ विन्दुमाधव—पञ्चगङ्गाघाट, १०० गभस्तीश्वर—पञ्चगङ्गाघाट, १०१ मङ्गलागौरी—पञ्चगङ्गाघाट, १०२ वशिष्ठेश्वर—सङ्कटाघाट, १०३ वामदेवेश्वर—सङ्कटाघाट, १०४ पर्वतेश्वर—सेंधियाघाट, १०५ महेश्वर—मणिकर्णिका पर मढ़ी में, १०६ सिद्धविनायक—ऊपर सीढी पर, १०७ सप्तावरण विनायक,—जय वि० ब्रह्मनाल, १०८ मणिकर्णिका।

श्रीविश्वनाथ, पञ्चविनायक, ढुण्ढिराज, दण्डपाणि भैरव, ज्ञानवापी, द्रुप-

स्वर्गभूमि* है, उसके पालन† करनेवालों का, जो कि चारों ओर से घेरे हुए हैं, (२९) असी‡ और वरुणा नदी का,

---

दादित्य, विष्णु भगवान्, अन्नपूर्णा, कालभैरव की यात्रा एवं पूजा पञ्चक्रोशी-यात्रा के आरम्भ और समाप्ति में की जाती है।

* १ पूर्व द्वार पर कोटिगणों के सहित अट्टहासेश्वर।

२ दक्षिण	,,	,,	भूतधात्रीश्वर।
३ पश्चिम	,,	,,	गोकर्णेश्वर।
४ उत्तर	,,	,,	महागण घण्टाकर्ण।
५ ईशानकोण	,,	,,	छागवक्त्रगण।
६ अग्निकोण	,,	,,	भीषणगण।
७ नैऋत्यकोण	,,	,,	शङ्कुकर्णगण।
८ वायव्य	,,	,,	द्रुमचण्डगण।

१ गङ्गा-पार—कालाक्ष, रणभद्र, कौलेय, कालकम्पन।
२ असि-पार—वीरभद्र, नभ, स्थूलकर्ण और महाबाहु।
३ पश्चिम देहली में—विशाल, महाभीम, कुण्डोदर, महोदर।
४ वरुणा-पार—नन्दिषेण, पाञ्चाल, खरपाद, करण्डक, आनन्द, गोपक, बभ्रु।

† पञ्चक्रोश के चारों ओर की भूमि एक योजन तक स्वर्गभूमि कहलाती है, जिस प्रकार पञ्चक्रोशान्तर्गत भूमि मोक्षदायिका है, उसी प्रकार स्वर्गभूमि स्वर्गदायिका है। मध्यमेश्वर (मैदागिन) को केन्द्र मानकर देहली विनायक तक सूत्र ले जाय और उसे मण्डलाकार घुमा दे, उस मण्डल के भीतर का स्थान काशी-क्षेत्र कहलाता है। परन्तु वायुपुराण और हरिवंश के मत से इस युग में काशी का अन्तर्धान हुआ है और स्कन्दपुराण उस अन्तर्हित भाग का परिमाण बतलाता हुआ, अर्ध काशी का अन्तर्धान होना बतलाता है। वस्तुस्थिति भी इस समय ऐसी ही है। पूर्वजों के मुख से सुनते आये हैं कि किसी समय बड़ी प्रदक्षिणा काशी की होती थी। वह गङ्गापार बड़े व्यास तक थी, परन्तु वह बहुत दिनों से छोड़ दी गई। उस प्रदिक्षणा के सीमान्त देवता चिन्ह रूप में बराबर पाये जाते हैं। सो ब्रह्मवैवर्त्त के मतानुसार इस समय वाराणसी ही काशी है, जो कि अस्सी वरुणा से लेकर देहली विनायक तक फैली हुई है, शेष अन्तर्हित हो गई। अतः वाराणसी के चारों ओर की भूमि एक योजन तक स्वर्गभूमि कहलाई।

‡ वामनपुराण में कहा गया है कि प्रयाग में जो योगशायी भगवान् विष्णु उपविष्ट हैं, उनके दक्षिण और वाम चरण से क्रमशः वरुणा और असी नदी उत्पन्न हुईं, काशीक्षेत्र की सीमा होकर गङ्गामें जा मिली हैं।

[1]असीवरुणयोर्नद्योरुत्पत्त्यादिं[2] च सङ्गमम् ।
तत्तीरस्थानि लिङ्गानि [3]देवर्षिस्थापितानि च ॥३०॥
श्रीमद्गङ्गातटस्थानि[4] लिङ्गानि परमेशितुः ।
असंख्यातानि लिङ्गानि तथा तीर्थानि च क्रमात् ॥३१॥
स्नात्वा स्नात्वा तत्र तत्र दृष्ट्वा लिङ्गानि वै [5]क्रमात् ।
सनत्कुमारयोगीन्द्रः[6] कथयामास तत्त्वतः ॥३२॥
कथामृतं कर्णकुल्या प्रविष्टं नृपहृत्सरः ।
पूर्णं मुदा तयोद्रिक्तं प्राप्तमानन्दसागरम् ॥३३॥
ततः क्रमात् समागत्य त्रयस्ते मणिकर्णिकाम् ।
तां प्रशस्य यथातत्त्वं गङ्गां विश्वेश्वरं पुनः ॥३४॥
अनन्तं च धनं दत्वा ब्राह्मणेभ्यो यथेच्छया ।
शिवस्याऽऽज्ञाप्रमाणात्ते[7] श्रीमत्केदारमागमन् ॥३५॥

उद्गम और संगम का तथा उनके तीरों पर जो देवताओं और ऋषियों ने लिङ्गों की स्थापना की है (३०) और श्रीमती गङ्गा के तट पर जो परमेश्वर के लिङ्ग हैं, तथा अगणित तीर्थ और लिङ्गों की (३१) यात्रा की। और सनत्कुमार योगीन्द्र सबका दर्शन करते हुए क्रम से उनका यथार्थ वर्णन करते गये। (३२) कथारूपी अमृत कान की नाली द्वारा राजा के हृदय-सर में जाकर भर गया, और प्रसन्नता से उमग कर आनन्द सागर में पहुँच गया। (३३) तब वे लोग क्रम से मणिकर्णिका आये, और उसकी यथार्थ प्रशंसा करके गङ्गा और विश्वेश्वर की यात्रा की। (३४) ब्राह्मणों को इच्छानुसार अनन्त धन देकर,

---

१ ग. देवनद्या च। २ क. ख.…सृत्यादींश्च। ३ ग. तथा तीर्थानि च क्रमात्। ४ ग. 'श्रीमद्गंगा तटस्थानि०'…श्लोकोऽयं नास्ति। ५ ग. च। ६ क ख. ग. 'पूजां कृत्वा ततः सर्वमूर्त्तीनाञ्च पृथक् पृथक्। तत्तद्रहस्यं सकलं वामदेवाय वै क्रमात् ॥', अयमपि नास्ति। ७ ख. पुस्तकीयोऽयं पाठः,; आ० पु०—प्रमाणन्ते।

स्नात्वा यथाविधि च ते प्राचीनां मणिकर्णिकाम् ।
नत्वा केदारनाथश्च परिक्रम्य च[1] पूज्य च ॥३६॥
तिष्ठन्[2] केदारनाथस्य तीर्थस्यैव च मध्यतः ।
कृतार्थाः स्म इति प्राहुरानन्दाश्रुपरिप्लुताः ॥३७॥
तदा सोमवतो राज्ञः शरीरात् कश्चिदद्भुतः ।
पुमान् विनिर्गतः क्रूरः पर्वताकारसन्निभः ॥३८॥
द्रंष्ट्राकरालवदन ऊर्ध्वकेशोऽतिभीषणः ।
ललद्विद्युत्प्रभाजिह्वो [3]निमग्नाक्षिकनीनकः ॥३९॥
तं[4] दृष्ट्वा ते त्रयस्तस्थुराश्चर्य्याविष्टचेतसः ।
किमाश्चर्य्यं नृपतनोरयं निर्गत्य रोदिति ॥४०॥

शङ्कर की आज्ञा को प्रमाण मानते हुए श्रीमान् केदारजी में आये । (३५) यथाविधान प्राचीन मणिकर्णिका में स्नान करके, केदारनाथजी का नमस्कार पूर्वक पूजन करके प्रदक्षिणा की (३६) और केदारनाथजी के तीर्थ में ही ठहर गये । आनन्दाश्रु से भरे हुए कहने लगे कि हम लोग कृतार्थ हुए । (३७) तब तो चन्द्रवान राजा के शरीर से एक अद्भुत पुरुष निकला । वह देखने में क्रूर, पहाड़ सा लम्बा चौड़ा, (३८) दाँत कराल, मुख भयानक, खड़े खड़े भयङ्कर बाल, अत्यन्त डरावनी सूरत का था । लपकती हुई बिजली की भाँति उसकी जिह्वा को चमक थी । आँखें भीतर बैठी हुई और पुतली घुसी हुई मालूम होती थीं । (३९) उसे देखकर तीनों चकित रह गये और बोले यह क्या आश्चर्य्य है कि

---

१ ग. प्रपूज्य । २ ग. केदारनाथतीर्थस्य तिष्ठन्तश्चैव मध्यतः । ३ ग.···क्षिकनासिकः । ४ क. ख. .:—

'अञ्जनाद्रिरिव श्यामः सर्वप्राणिभयङ्करः ।
विनिर्गत्य खरध्वानो रुदन् तिष्ठन्नभोङ्गणे ॥
सर्वस्वहरणाच्चौरै राजा वा वह्निदाहतः ।
दुःखी जनो यथा सोऽपि विलप्य* दुःखितोऽभवत् ॥'

* ग. विलपन् ।

इति तं परिपप्रच्छ स्कन्दांशो भगवानृषिः ।
कस्त्वं घोरवपुर्देहाद् नृपस्याशु विनिर्गतः ॥४१॥
किं रोदिषि यथावत् त्वं सर्वं [1]वक्तुमिहार्हसि ।
इति पृष्टो मुनिं सोऽपि रुदन् प्रत्युत्तरं ददौ ॥४२॥
शृणु ब्रह्मन्नहं पापपुरुषः प्राणिदुःखदः ।
काश्यां श्रीमद्धर्म्मपालकालभैरवकिङ्करः ॥४३॥
सन्ति भैरवभृत्याश्च [2]मामिवानेककोटयः ।
काश्यवज्ञाद्यनेकानां काशीकृतमहैनसाम् ॥४४॥
शिवापराधजातानां देशान्तरकृतामपि ।
काशीमुद्दिश्य सर्वेषां [3]पापानामनिवर्तिनाम् ॥४५॥
पापभोगः समुद्दिष्टश्चास्माकं[4] जीवनं नृषु ।
अस्माकं हानिरायाता जीवने किङ्करात्मनाम् ॥४६॥

यह राजा शरीर से निकल कर रो रहा है। (४०) भगवान् सनत्कुमार ऋषि ने उससे पूछा घोररूपधारी तू कौन है ? एकाएक राजा के देह से कैसे निकल पड़ा है ? (४१) और अब रोता क्यों है ? सब बातें ठीक ठीक कह। मुनिजी के ऐसा पूछने पर उसने भी रोते ही रोते जवाब दिया। (४२) हे ब्राह्मण सुनो, मैं प्राणियों को दुःख देनेवाला पापपुरुष हूँ। काशी में धर्म का पालन करनेवाले कालभैरव का सेवक हूँ। (४३) मेरे-ऐसे अनेकों करोड़ों भैरव के सेवक हैं। काशी की अवज्ञादि तथा काशी में किये हुए महापाप (४४) देशान्तर में किये हुए शिवापराध तथा जो पाप काशी का लक्ष्य करके किए गए हों और किसी भाँति हटाये जाने योग्य नहीं हैं, (४५) उन पापों के भोग तक हम लोग मनुष्य में रहते हैं, सो हम सेवकों के जीवन की भी हानि आपड़ी। (४६)

---

१ ग. मे वक्तुमर्हसि। २ ग. मादृशानेककोटयः। ३ ग. पुस्तकीयोऽयं पाठः, आ० पु०—'अनिवारिणाम्'। ४ ग. पुस्तकीयोऽयं पाठः, आ० पु०—'समुद्दिष्टोऽस्माकम्'।

यमस्य किङ्कराणान्तु पापानां सर्वभूमिषु ।
अस्माकं त्वत्र काश्यैका भैरवाज्ञानुसारतः ॥४७॥
नृणां [1]कर्म्मवशादस्मज्जीवनं पापभोगतः ।
क्लृप्तं तस्यापि हानिश्चेत् कथं जीवामहे वयम् ॥४८॥
विष्णोश्च तपसः पूर्वमस्माकं बहु जीवनम् ।
एकैव मणिकर्णीयं गुप्ता सापि तदा स्थिता ॥४९॥
केदारनाथोऽपि तदा गौर्य्यै तीर्थवरं ददौ ।
गौर्य्येकैव विजानाति माहात्म्यं तीर्थलिङ्गयोः ॥५०॥
ततो विष्णुतपःश्लाघिहरकर्णमणेस्तदा ।
पतनात् सा महातीर्था[2] प्रख्याता मणिकर्णिका ॥५१॥
तदुद्भवात् परं[3] नोऽभूज्जीवनं हीनजीवनम् ।
ततः कालान्तरे गङ्गा प्राप्ता स्वाघनिवृत्तये ॥५२॥

यम के किङ्करों का तो भूमि में सर्वत्र के पापियों पर अधिकार है, और हमलोगों का अधिकार तो भैरवजी की आज्ञा से केवल काशीजी में है। (४७) मनुष्यों के कर्मानुसार उनके पाप भोग तक हम लोगों की जीविका है। यदि उसकी भी हानि होगी तो हम लोग कैसे जीवेंगे ? (४८) विष्णु के तप के पहिले हम लोगों की जीविका बहुत थी, क्योंकि उस समय यही एक मणिकर्णिका थी और सो भी गुप्त रही। (४९) केदारनाथ ने उस समय गौरी को तीर्थ के लिये वर दिया था, और केवल गौरी को तीर्थ और लिङ्ग का माहात्म्य मालूम था। (५०) तब तक विष्णु के तप पर रीझे हुए शंकर के कान से मणि के गिरने से दूसरा ही मणिकर्णिका नामक महातीर्थ उत्पन्न हो गया। उसकी ख्याति भी हो गई। (५१) उसके उत्पन्न होने से हमलोगों की जीविका की बड़ी हानि हुई। फिर कुछ दिन बीतने पर अपने पाप की निवृत्ति अर्थात्

१ ग. पापवशाद्। २ ग. महातीर्थप्रख्याता। ३ ग. परं चैव जीवने हानिरास्त नः।

शिवावज्ञादोषशान्त्यै प्राचीनां मणिकर्णिकाम् ।
अवगाह्य ततो नूत्नां सङ्गम्य च शिवाज्ञया ॥५३॥
काशीक्षेत्रे विशेषेण स्वमाहात्म्यमघापहम् ।
लब्धं यदा शिवादस्मज्जीवनं बहुधा गतम्[1] ॥५४॥
विश्वेशादीनि लिङ्गानि देवर्षिस्थापितानि च ।
स्वस्वपापनिवृत्त्यर्थं तेषां दर्शनमात्रतः ॥५५॥
तत्तत्तीर्थावगाहाच्च हानिर्नो जीवनं प्रति ।
[2]केवलश्च समायाता जनानां पापहानितः ॥५६॥
काशीकृताल्पपापानां नाशो बहुविधादभूत् ।
दुर्नोद्यमेकं केनाऽपि शिवसम्बन्धिपातकम् ॥५७॥
शिवावज्ञापराधाद्धि [3]तद्भक्तावज्ञसम्भवम् ।
तत्रापि काश्यां सम्भूतं दुर्नोद्यं कल्पकोटिभिः ॥५८॥

(५२) शिवजी की अवज्ञा के दोष की शान्ति के लिये गङ्गाजी प्राचीनां मणिकर्णिका में चली आईं। उसमें नहाकर शिवजी की आज्ञा से नई मणिकर्णिका के साथ जा मिलीं। (५३) सो काशीक्षेत्र में उन्हें विशेष रूप से पापनाशकारी माहात्म्य शिवजी से मिला, तब से हम लोगों की जीविका बिल्कुल घट गई। (५४) विश्वेश्वरादि लिङ्ग, और वे लिङ्ग, जिनका कि देवता और ऋषियों ने अपने अपने पापों की निवृत्ति के लिये स्थापन किया है, उनके दर्शनमात्र से, (५५) और उन उन तीर्थों के स्नान से हम लोगों की जीविका को भारी हानि लोगों के पाप नष्ट होने से हुई। (५६) काशी में किये हुए अल्प पापों का नाश अनेक प्रकार से हुआ, केवल शिवसम्बन्धी पातक को कोई नहीं हटा सकता (५७) शिव की अवज्ञा के अपराध से उनके भक्त की अवज्ञा का अपराध बड़ा है, उसमें भी काशी में किया हुआ कोटि कल्प में भी नष्ट

१ ख. गतिम्। २ ग. 'केवलं च समायाता जनानां पापहानितः'। नास्ति। ३ ग. भक्तापराधसम्भवम्।

तदस्माकं जीवनन्तु स्थितं भैरवशासनात् ।
तज्जीवनमपीदानीं गतं युष्मत्प्रबोधनात् ॥५९॥
युष्मत्सत्सङ्गतेः पुण्याद् युष्मत्प्रार्थनया शिवः ।
राज्ञोऽस्य पापिनस्तीर्थमुपादिक्षदघापहम् ॥६०॥
पुरा केदारनाथस्य [१]क्षेत्रमन्तर्गृहं स्थितम् ।
पूर्वस्यां दिशि गङ्गार्धभागं तीर्थसमन्वितम् ॥६१॥

होनेवाला नहीं है (५८) हम लोगों की जीविका तो भैरवी यातना से है, सो वह जीविका भी तुम लोगों के ज्ञान से जाती रही। (५९) आप लोगों के सत्संग के पुण्य एवं आप लोगों की प्रार्थना से शिवजी ने इस पापी राजा को पापहर तीर्थ का उपदेश दिया। (६०) यह तीर्थ केदारनाथ के अन्तर्गृह* के भीतर स्थित है। पूर्व की ओर आधी गङ्गा तक,(६१) अग्निकोण में आध कोश तक, दक्षिण में लोलार्क तक, नैऋतकोण

* ग्रन्थोक्त अन्तगृह लाल रेखा से और प्रचलित बिन्दुओं के निशान से दिखाया गया है। प्रचलित अन्तर्गृह के देवताओं के नाम निम्नलिखित हैं।

केदारघाट—१ आदिमणिकर्णिका, २ केदारेश्वर, ३ गणपति, ४ दण्डपाणि, ५ भैरव, ६ स्कन्द, ७ अन्नपूर्णा, ८ पार्वती, ९ दक्षिणामूर्ति, १० चण्डगण, ११ इन्द्रद्युम्नेश्वर, १२ कालञ्जर, १३ रनादकेश्वर, १४ दधीचीश्वर, १५ नीलकंठेश्वर, १६ गौरीकुण्ड, १७ हरम्पापतीर्थ, १९ किरातेश्वर। **केदारजी के समीप**—२० लम्बोदर (चिन्तामणि वि०), २१ शत्रुघ्नेश्वर—लल्लूजी के धर्मशाला के समीप ४/१७, २२ भरतेश्वर—काशीनाथ शा० का मकान ४/८, २३ लक्ष्मणेश्वर—अनन्य शास्त्री का मकान ४/१६, २४ रामेश्वर—हनुमानजी के मन्दिर के घेरे में, २५ सीतेश्वर—वहीं नीम की जड़ में, २६ हनुमदीश्वर—मकान ५/१९ में, २७ रुरुभैरव—घाट किनारे, २८ स्वप्नेश्वर—वादशाहगंज शिवाला, २९ स्वप्नेश्वरी, ३० अक्रूरेश्वर अक्रूर घाट-भदैनी। **भदैनी में**—३१ चामुण्डादेवी, ३२ चर्ममुण्डादेवी, ३३ महारण्डादेवी, ३४ कर्दमेश्वर, ३५ अर्कविनायक, ३६ पराशरेश्वर २/२१७, ३७ उद्दालकेश्वर, ३८ अमरेश्वर, ३९ कुण्डोदरेश्वर, ४० लोलार्कतीर्थ, ४१ लोलार्क, ४२ शुक्रेश्वर, ४३ जनकेश्वर, ४४ असी-सङ्गम, ४५ सङ्गमेश्वर, १/७५। **कुरुक्षेत्र**—४६ सिद्धेश्वर, ४७ सिद्धेश्वरी देवी, ४८ स्थाणु-

१ ग. क्षेत्रऽन्तर्गतसंस्थितम्।

काशी-केदारखण्ड का मानचित्र।

प्रमाण

पूर्वस्यां दिशि गङ्गार्धभागं तीर्थसमन्वितम्।
अर्धक्रोशं चाग्निदिशि लोलार्केशान्तदक्षिणम्॥
सर्वपापप्रशमनं शङ्खोद्धारान्तनैर्ऋतम्।
पश्चिमे वैद्यनाथान्तं रमातीर्थन्तु वायुदिक्॥
उत्तरे शूलटङ्कान्तमीशान्यां क्रोशमर्धकम्।

अ० ३ का० के० मा०॥

नैऋतकोण
पश्चिम
वायुकोण
वैजनाथजी
इलाहाबाद रोड
गोदौलिया रोड
शंखोद्धार तीर्थ
हिन्दूकालेज
रेवड़ी तालाब
पानीकल
गोईबाई मन्दिर
लक्ष्मीकुण्ड
दक्खिन
दुर्गाकुण्ड
दुर्गाकुण्ड रोड
उत्तर
लक्सा रोड
चेतगंज रोड
लोलार्क
अस्सी रोड
सोनारपुरा
अस्सी
अस्सीघाट
तुलसीघाट
श्रीगङ्गाजी
शिवालाघाट
हरिश्चन्द्रघाट
केदारघाट
केदारजी मन्दिर
राजाघाट
रायघाट
मुन्शीघाट
दशाश्वमेधघाट
शूलटङ्क
मानमन्दिर
मीरघाट
दशाश्वमेध रोड
चौक रोड
विश्वनाथजी
मणिकर्णिकाघाट

काशीकेदार-क्षेत्र की सीमा	———
प्रचलित श्रीकेदारान्तर्गृही की सीमा	------

अग्निकोण
पूर्व
ईशानकोण

अर्द्धक्रोशं चाग्निदिशि लोलार्केशान्तदक्षिणम् ।
सर्वपापप्रशमनं शङ्खोद्धारान्तनैऋतम् ॥६२॥
[1]पश्चिमे वैद्यनाथान्तं रमातीर्थन्तु वायुदिक् ।
उत्तरे शूलटङ्कान्तमीशान्यां क्रोशमर्धकम् ॥६३॥

में सब पापों के शमन करनेवाले शङ्खोद्धार तक,(६२) पश्चिम में वैद्यनाथ तक और वायव्य में लक्ष्मीतीर्थ तक, उत्तर में शूलटङ्क तक और ईशान

लिंगेश्वर, ४९ कुरुक्षेत्र तीर्थ—दुर्गाकुण्ड, ५० दुर्गाकुंड, ५१ दुर्ग विनायक, ५२ दुर्गादेवी, ५३ कालरात्रि, ५४ चण्डभैरव, ५५ द्वारेश्वर, ५६ शूर्पकर्णेश्वर, ५७ कुक्कुटेश्वर, ५८ जाङ्गलीश्वर, ५९ तिलपर्णेश्वर, ६० मुकुटेश्वर, ६१ वराकादेवी। **शंखूधारा**—६२ शङ्खोद्धार, ६३ द्वारिकानाथ, ६४ द्वारिकेश्वर, ६५ शङ्कुकर्णेश्वर, ६६ वैजनाथेश्वर। **कमच्छा**—६७ कहोलेश्वर, ६८ कामाक्षादेवी, २१/१८९, ६९ क्रोधन भैरव, ७० वटुकभैरव, ७१ घृणीश्वर, ७२ ब्रह्मपदपदेश्वर। **लकसा**—७३ लवेश्वर—५५/२२के समीप, ७४ कुशेश्वर—वहीं पर, ७५ रामकुण्ड, ७६ रामेश्वर। ७७ लक्ष्मीकुण्ड, ७८ करवीरेश्वर ५०/५४, ७९ महालक्ष्मीश्वर—नृसिंह बाबू बंगाली ५/२६, ८० कुणिताक्ष वि०—५०/२०, ८१ महालक्ष्मी, ८२ महाकाली, ८३ महासरस्वती, ८४ शिखिचण्डी, ८५ उग्रेश्वर। **दशाश्वमेध**—८६ रुद्रसरोवर, ८७ शूलटङ्केश्वर, ८८ दशाश्वमेध तीर्थ, ८९ वन्दीदेवी, ९० दशाश्वमेधेश्वर, ९१ गोव्याघ्रेश्वर, ९२ मानधातेश्वर, ९३ चतुःषष्ठी देवी, ९४ वक्रतुण्ड वि०—सरस्वती विनायक राणामहल २०/१५ के समीप। **बंगालीटोला**—९५ पातालेश्वर—२८/५१ के समीप, ९६ सिद्धेश्वर, ९७ नैऋतेश्वर, ९८ हरिश्चन्द्रेश्वर, ९९ अङ्गिरसेश्वर, १०० पुष्पदन्तेश्वर—नं० ४८/४६, १०१ एकदन्त विनायक, १०२ गरुड, १०३ गरुडेश्वर, १०४ सर्वेश्वर, १०५ सोमेश्वर। **नारदघाट**—१०६ नारदेश्वर—३४/३८ तैलंगमठ, १०७ विभ्राटकेश्वर, १०८ अत्रीश्वर, १०९ अनुसूयादेवेश्वर. ११० अनुसूयेश्वर, १११ **मानसरोवर**—११२ मानसरोवरेश्वर, ११३ सुराभाण्डेश्वर। **देवड़ियाबीर**—११४ विभाण्डकेश्वर, ११५ कहोलेश्वर, ११६ नर्मदेश्वर—१३/३४, ११७ सुरेश्वर, ११८ पद्मसुरेश्वर। **क्षेमेश्वरघाट**—११९ क्षेमेश्वर, १२० चित्राङ्गदेश्वर. १२१ चित्राङ्गदीश्वरी—कुमारस्वामीमठ १४/१०५, १२२ रुक्माङ्गदेश्वर। **केदारघाट**—१२३ अम्बरीषेश्वर, १२४ तारकेश्वर, १२५ आदि मणिकर्णिका, १२६ केदारेश्वर, इनमें से दो तिहाई मूर्तियाँ गंगा के तट पर या उसके समीप हैं।

१ ग. वारुणे। २ ग. मैशान्याम्।

एतन्मध्ये [१]सुराभाण्डलिङ्गादीनि बहूनि च।
दुर्गाविष्णुगणेशानां मूर्त्तयोऽप्यमिताः स्थिताः ॥६४॥
बहूनि तीर्थानि तथा गुप्तानि प्रकटानि च।
तत्सर्वञ्च गतप्रायं माहात्म्याज्ञानतो मुने! ॥६५॥
तेन तुष्टा वयं किञ्चित् तत्तुष्टिस्तु गताऽद्य[२] वै।
सामान्यसोमवारे तु प्राचीना मणिकर्णिका ॥६६॥
सर्वपापहरा स्नानात् केदारेशस्य दर्शनात्।
तत्रापि च नभोमासि सोमवारचतुष्टयम् ॥६७॥
केदारदर्शनं तीर्थमज्जनं प्राणिनामिह।
शिवावज्ञादिसकलापराधान् हन्त्यसंशयम् ॥६८॥
नभोमासगतं सोमदिनमद्य महामुने!।
अत्र स्नानाद् दर्शनाच्च मुक्तोऽयं काशिपापतः ॥६९॥

में आधे कोश तक। (६३) इसके बीच में सुरासुराभाण्डादि बहुत से लिङ्ग हैं, दुर्गा, विष्णु और गणेश की अगणित मूर्तियाँ हैं। (६४) बहुत से गुप्त और प्रगट तीर्थ हैं, वे सब माहात्म्य के न जानने सेलुप्तप्राय हो चुके हैं। (६५) हे मुनिजी! इस बात से हम लोग थोड़ा बहुत सन्तुष्ट थे, सो आज वह तुष्टि भी गई। साधारण सोमवार को भी प्राचीन मणिकर्णिका के स्नान (६६) और केदार जी के दर्शन से सब पाप नष्ट होते हैं। तिसपर भी श्रावण मास के चारों सोमवार (६७) में केदारजी का दर्शन और तीर्थ का मज्जन, प्राणियों के किये हुए शिव की अवज्ञादि सकल अपराधों को निश्चय नाश करता है। (६८) हे महा-मुनि! आज श्रावणमास का सोमवार है, यहाँ दर्शन और स्नान करने से काशी के पाप से यह विमुक्त हो गया। (६९) इस रहस्य को निश्चय करके आपने संसार में फैला दिया। कलियुग में

१ तिलभाण्डेश्वरादीनि। २ ग. गताऽधुना।

इदं रहस्यं भवता लोकेषु ख्यापितं ध्रुवम् ।
कलौ कलुषचित्तनां तारणं प्रकटं भवेत् ॥७०॥
तदा जीवनमस्माकं कुत्र दास्यति भैरवः ।
न जाने नो[1]ऽन्यतः स्थानं बहिः काश्या विधास्यति ॥७१॥
काशीवासं परित्यज्य कथं गच्छामहे बहिः ।
इति चिन्ता च महती जाता वो दर्शनाद्द मम ॥७२॥
किं करोमि क्व गच्छामि का वास्माकं गतिः पुरः ।
पापिनो विरला एव भविष्यन्ति न[2] वा मुने ! ॥७३॥
काशीरहस्यतीर्थस्य शिवाघध्वंसिनस्त्वया ।
गुप्तमाहात्म्यकेदारलिङ्गस्य महिमाऽधुना ॥७४॥
सम्यक् प्रकटितो लोके[3] जानन्तस्तद्गतैनसः ।
भविष्यन्ति न सन्देहः कालस्य गतिरीदृशी ॥७५॥
कर्त्तव्यन्तु त्वया किं वा किमभाग्यैश्च मादृशैः ।
इच्छा बलवती शम्भोर्लोकतारणमुत्तमा ॥७६॥

पापचित्त पुरुषों के तारने का उपाय यदि प्रकट होगा (७०) तब न जाने कहाँ हम लोगों के जीविका का विधान भैरव जी करेंगे ? क्या जाने काशी में करेंगे, या काशी के बाहर करेंगे ? (७१) काशी-वास छोड़ कर हम लोग बाहर कैसे जायेंगे ? आप लोगों के दर्शन से यही बड़ी भारी चिन्ता मुझे हुई है । (७२) कहाँ जाऊँगा ? क्या करूँगा ? हम लोगों की क्या गति होनेवाली है, आदि आदि । हे मुनिजी ! अब थोड़े से भी पापी होंगे या न होंगे ! (७३) शिवजी के प्रति किये हुए पापों का नाश करनेवाला यह काशी का रहस्य तीर्थ और केदारलिङ्ग की महिमा गुप्त थी, अब (७४) पूरी तरह से प्रकटित होने से, लोग जानकर पापरहित होंगे, इसमें सन्देह नहीं है । काल की ही ऐसी गति है । (७५) आप क्या करें ?

१ ख. नोऽद्यतः । २ ग. नरा । ३ ग. पुस्तकीयोऽयं पाठः आ० पु०—'लोका जानन्त तैद्गतनसः' ।

वयं काश्यां देहपातं प्राप्ताश्चेदाशु तद्वरम् ।
तदस्माकं न घटते भैरवाज्ञा कदा भवेत् ॥७७॥
इत्येवं दूयमानं तमत्यर्थं पापपूरुषम् ।
सनत्कुमारस्तं दृष्ट्वा आश्चर्य्यानन्दनिर्भरः ॥७८॥

सनत्कुमार उवाच—

क्क गच्छसि त्वमधुना ब्रूहि त्वं पापपूरुष ! ।
त्वं क्षेत्रतीर्थलिङ्गानां सम्यक् सूक्ष्मार्थतत्त्ववित् ॥७९॥

पापपुरुष उवाच—

शृणु ब्रह्मन् प्रवक्ष्यामि सत्यमुक्तं त्वयाऽधुना ।
यतो वयं धर्म्मविदः प्राण्येनोभोगजीवनाः[1] ॥८०॥
अस्मद्विरोधिनां नाम भिन्नं भिन्नं वदामि ते ।
आद्या च मणिकर्णीयं प्रथमं मद्विरोधिनी ॥८१॥

यह हम-ऐसों के अभाग्य से हो रहा है। शङ्कर की इच्छा बलवती है। उसे सामर्थ्य है कि लोक का उद्धार कर सके। (७६) यदि हम लोगों का काशी में शीघ्र ही देहपात हो जाय, तभी भलाई है। सो होता नहीं। देखें, भैरवकी कब आज्ञा होती है? (७७) इस भाँति उस पापपुरुष को अत्यन्त दुःखी देखकर सनत्कुमार जी आश्चर्य और आनन्द से भर उठे। (७८)

सनत्कुमार जी बोले—हे पाप पुरुष! अब तुम कहाँ जाते हो? तुम तो क्षेत्र तीर्थ और लिङ्गों के सूक्ष्म अर्थ के तत्त्व को भली भांति जानते हो। (७९) पापपुरुष ने कहा हे ब्राह्मण! तुमने ठीक कहा, अब सुनो—हम लोग प्राणियों के पापभोग की जीविकावाले धर्म के वेत्ता कैसे हुए, अपने विरोधियों के भिन्न २ नाम तुमसे कहता हूँ। मेरी सबसे पहिली वैरिन तो यह आद्या मणिकर्णिका है (८१) तिसपर भी शङ्कर भगवान् ने अपनी महिमा से इसे और भी पापनाशिनी

[1] ख. जीविनः ।

तथापि क्लृप्ता देवेन स्वमहिम्नाऽघतारिणी ।
अनन्तरं विष्णुतपःप्रभावादागताऽपरा ॥८२॥
त्रैलोक्यपापसंहारा विख्याता मणिकर्णिका ।
ततः परं च किरणाधूतपापासरस्वती ॥८३॥
यमुना चैव गङ्गा च पञ्चगङ्गाऽघनाशिनी ।
कार्तिकेन च संयुक्ता महती मद्विरोधिनी ॥८४॥
ततो दशाश्वमेधाख्यो दशपापहरो यतः ।
ज्येष्ठस्य शुक्लदशमीपर्यन्तो मद्विरोधकृत् ॥८५॥
ततः परं माघमासि शूलटङ्कसमीपगा ।
प्रागेव गङ्गा प्रच्छन्नु[1]र्माघस्नानात्ततोऽधिका ॥८६॥

बना दिया । इसके बाद विष्णु के तप के प्रभाव से एक दूसरी आगई । (८२) त्रैलोक्य के पाप के संहार के लिये यह मणिकर्णिका विख्यात है । इसके बाद १ किरणा २ धूतपापा ३ सरस्वती (८३) ४ यमुना और ५ गंगा, ये पांच गङ्गाएं पापनाश करनेवाली हैं, और कार्तिक के योग से तो ये हमारा घोर विरोध करती हैं। (८४) इसके बाद दशाश्वमेध दशपापहरा के योग से जेठ सुदी दसहरा तक मेरा विरोध किया करता है। (८५) इसके बाद माघ मास में शूलटङ्क के समीप की गङ्गा मेरी विरोधिनी है । यह तो पहिले से ही मेरी शत्रु है, माघ स्नान से और भी बढ़ जाती है। (८६) केदार के अन्तर्गृह* और विश्वेश्वर† के अन्तर्गृह में किया हुआ पाप हटाने योग्य नहीं है, उसी से हम लोगों

* केदार अन्तर्गृह का वर्णन पहिले, श्लोक ६१ के विवरण में कर दिया गया है ।

† पूर्व में मणिकर्णिकेश्वर, दक्षिण में ब्रह्मेश्वर, पश्चिम में गोकर्णेश्वर और उत्तर में भारभूतेश्वर । इस बीचका स्थान विश्वेश्वर का अन्तर्गृह कहा गया है। यथा काशीखण्डेः—पूर्वतो मणिकर्णीशो ब्रह्मेशा दक्षिणे स्थितः । पश्चिमे चैव गोकर्णो भारभूतस्तथोत्तरे ॥ इत्येतदुत्तमं क्षेत्रमविमुक्ते महाफलम् ।

१ ग. छन्ना ।

केदारान्तर्गृहकृतं विश्वेशान्तर्गृहोद्भवम् ।
प्राणिपापं दुष्प्रणोद्यं स्थितमस्मत्सुजीवनम् ॥८७॥
तद्विनाशाय सम्प्राप्तं पञ्चक्रोशप्रदक्षिणम् ।
ततो वयं हतास्तेन तरां जीवनहानितः ॥८८॥
पञ्चक्रोशप्रक्रमाख्याद् अधिको मद्विरोधकृत् ।
अस्मज्जीवनसंहर्त्ता न दृष्टो न श्रुतः क्वचित् ॥८९॥

का जीवन है । (८७) उसके विनाश के लिये काशी की पञ्चक्रोश की प्रदक्षिणा है, इससे हम लोगों के लाले पड़ जाते हैं, हम लोगों की जीविका की बड़ी भारी हानि होती है । (८८) पञ्चक्रोश-प्रदक्षिणा से बढ़कर हमारा विरोधी और हमारी जीविका का हरण करनेवाला न देखा गया और न सुना गया । (८९) उससे भी बढ़कर हमारी शत्रुता

विश्वेश्वर अन्तर्गृह के देवताः—१ मणिकर्णिका, २ मणिकर्णिकेश्वर-गोमठ, काकाराम की गली; ३ कमलाश्वतरौ-गोमठ, वासुकीश्वर—सेंधियाघाट, ५ पर्वतेश्वर-सेंधियाघाट, ६ गङ्गाकेशव-ललिताघाट, ७ ललिता देवी-ललिताघाट, ८ जरासन्धेश्वर-मीरघाट, ९ सोमेश्वर-मानमन्दिर, १० वाराहेश्वर-दशाश्वमेध घाट के ऊपर राममन्दिर के पास, ११ ब्रह्मेश्वर-बालमुकुन्द का चौहट्टा, १२ अगस्तीश्वर-अगस्तकुण्डा, १३ कश्यपेश्वर-जङ्गमबाड़ी, १४ हरिकेशेश्वर-रामापुरा, खारी कूआँके पास; १५ वैद्यनाथेश्वर-कोदई की चौकी, १६ ध्रुवेश्वर-गोसाईंजी के शिवाला का दालान, १७ गोकर्णेश्वर दपलू की गली, १८ हाटकेश्वर-इड़हा, १९ अस्थिक्षेप तड़ाग-हड़हा, बेनिया से मिलकर; २० कीकसेश्वर-हड़हा, राजादरवाजासे पश्चिम; २१ भारतभूतेश्वर-मछरहट्टा, गोविन्दपुरा की गली; २२ चित्रगुप्तेश्वर-मछरहट्टा, २३ चित्रघण्टादेवी-चन्दू नाऊ की गली, लखीचौत्तरा के पीछे; २४ पशुपतीश्वर-पातपतेसर की गली; २५ पितामहेश्वर-कश्मीरीमल की हवेली के पास, २६ कलसेश्वर-ब्रह्मपुरा, २७ चन्द्रेश्वर-सिद्धेश्वरी, २८ वीरेश्वर-आत्मावीरेश्वर, २९ विद्येश्वर-नीमवाली ब्रह्मपुरी, ३० अग्नीश्वरघाट, अग्नेश्वर-गणेशघाट, ३१ नागेश्वर-घोसलाघाट, ३२ हरिश्चन्द्रेश्वर-संकटाघाट, ३३ चिन्तामणिविनायक-संकठाघाट, ३४ सेनाविनायक-संकठाघाट, ३५ वशिष्ठ वामदेव-सङ्कटाघाट, ३६ सीमाविनायक ३७ करुणेश्वर-लाहौरीटोला, फूटे गणेश; ३८ त्रिसन्ध्येश्वर-लाहौरीटोला, ३९ विशालाक्षी गौरी-मीरघाट, ४० धर्मेश्वर-धर्मकूप के पास, ४१ विश्वबाहुक-धर्मकूप के पास, ४२ आशाविनायक-मीरघाट, हनुमान मन्दिर में, ४३ वृद्धादित्य-

ततोऽप्यधिकशत्रुत्वमस्मासु भवता कृतम् ।
इदं रहस्यं कोऽप्यत्र न जानाति पुरातनम् ॥९०॥
आद्याया मणिकर्ण्याया: श्रीमत्केदारशूलिनः ।
शिवापराधमाश्रित्य स्थितमस्मत्सुजीवनम् ॥९१॥
विनाशितं तदप्यद्य त्वया श्रेष्ठविरोधिना ।
गौरीगङ्गानैगमेयदिवोदासाख्यबाष्कलैः ॥९२॥
ज्ञातमेतद्रहस्यन्तु नान्यैरिति श्रुदं हि नः ।
कलौ शिवापराधस्तु प्राणिभिर्बहुधा भवेत् ॥९३॥

आप लोगों ने की। इस पुराने रहस्य को तो कोई यहाँ नहीं जानता था। (९०) और वह रहस्य आद्य मणिकर्णिका और शिवकेदार का पूजन है। हम लोग तो शिवापराध से हीं जीते थे। (९१) सो तुम सबसे बढ़ कर विरोधी हो, जिन्होंने आज उसका भी नाश किया। गौरी, गंगा, नैगमेय, दिवोदास और बाष्कल को छोड़ कर (९२) कोई इस रहस्य को कोई नहीं जानता था। इसी बात की हम लोगों को खुशी थी।

मीरघाट, ४४ चतुर्वक्त्रेश्वर–सकरकन्द की गली, ४५ ब्राह्मीश्वर–सकरकन्द की गली, ४६ मनःप्रकामेश्वर–साक्षीविनायक, ४७ ईशानेश्वर–कोतवालपुरा, ४८ चण्डी चण्डीश्वर–कालिकागली, ४९ भवानीशङ्कर–शुक्रकूप के पास, ५० ढुण्ढिराज, ५१ राजराजेश्वर–विसेसरनाथ महल्ला, ज्ञानवापी से पश्चिम; ५२ लांगलीश्वर–खोवा बाजार, ज्ञानवापी के पश्चिम, ५३ नकुलीश्वर–विश्वनाथ के पास, हनुमान मन्दिर में; ५४ परालेश्वर–ज्ञानवापी के पश्चिम बाजार में, ५५ परद्रव्येश्वर–ज्ञानवापी, ५६ प्रतिग्रहेश्वर–ज्ञानवापी, ५७ निष्कर्णकेश्वर–ज्ञानवापी, ५८ मार्कण्डेश्वर–ज्ञानवापी, ५९ अप्सरेश्वर–ज्ञानवापी, उत्तरफाटक पर; ६० गंगेश्वर–ज्ञानवापी पीपरतले, ६१ ज्ञानवापी, ६२ नन्दिकेश्वर ज्ञानवापी के पूर्व, ६३–तारकेश्वर ज्ञानवापी के पूर्व, ६४ महाकालेश्वर–ज्ञानवापी के पूर्वदक्षिणकोण में, ६५ दण्डपाणि–ज्ञानवापी के पश्चिम बाजार में, ६६ महेश्वर–ज्ञानवापी के पश्चिम-दक्षिण कोण में पीपरतले, ६७ मोक्षेश्वर, ज्ञानवापी में गुप्त, ६८ वीरभद्रेश्वर–पश्चिम-उत्तर कोण में गुप्त, ६९ अविमुक्तेश्वर–ज्ञानवापी के उत्तर फाटक में गुप्त, ७० पञ्चविनायक (मोद, प्रमोद, सुमुख, दुर्मुख, गणनाथ)–ज्ञानवापी, विश्वनाथजी की कचहरी सभामण्डप में, ७१ श्रीविश्वनाथ।

जन्मकोटिभिरप्येष प्रायश्चित्ताख्यकोटिभिः ।
दुष्प्रणोद्यस्तेन नोऽत्र बहुजीवनहेतुतः ॥९४॥
जीवाम इति सन्तोषः स्थितः सोऽपि गतोऽद्य नः ।
गच्छामि श्रीभैरवाग्रे वदामि तव शत्रुताम् ॥९५॥
किङ्करोऽहं किं करोमि भैरवाज्ञा बलीयसी ।
इत्युक्त्वा तान्नमस्कृत्य शिवभक्तशिरोमणीन् ॥९६॥
जगामाकाशमार्गेण स्वेच्छया भैरवान्तिकम् ।
यथाक्रमं त्रयाणां तु[1] वृत्तं काश्यागमादिकम्[2] ॥९७॥
उक्त्वा तूष्णीं स्थितं प्राह भगवान् कालभैरवः ।
शृणु पापपुमन्! दोषो मुनेरत्र न विद्यते ॥९८॥
शिव एवोपदेष्टा तद्रहस्यस्य विशेषतः ।
काश्याः शिवापराधस्य सर्वप्राणदयानिधिः ॥९९॥

कलियुग में प्राणियों से शिवापराध बहुत हो पड़ता है (९३) और वह करोड़ों जन्म और करोड़ों प्रायश्चित्त से टलनेवाला नहीं। इससे हम-लोगों की बड़ी जीविका थी। इसी से (९४) हमलोग जीते हैं। इतना-ही सन्तोष था, सो भी आज जाता रहा। अब भैरव के पास जाकर तुम्हारे वैर का हाल कहेंगे। (९५) मैं तो किंकर हूँ, मेरा क्या चारा है, भैरवजी की आज्ञा बलवती है। ऐसा कहकर उसने उन शिवभक्त शिरोमणियों को नमस्कार किया (९६) और आकाशमार्ग से अपनी इच्छापूर्वक भैरवजी के पास गया। उन तीनों के काशी आगमन से लेकर सब वृत्तान्त क्रम से (९७) सुनाकर चुपचाप खड़ा होगया। तब उससे भगवान् कालभैरव ने कहा—हे पापपुरुष! सुन, इसमें मुनि का कोई दोष नहीं है। (९८) सब के प्राण और दया के समुद्र शिवजी ही विशेष करके इस शिवापराधवाले रहस्य के वक्ता हैं। (९९) केदार-रूपी विश्वेश्वर ने ही इस रहस्य का उपदेश किया है, नहीं तो संसार में

१, ग. च। २, ग. पुस्तकायोऽयं पाठः, आ० पु०—०गमादितः।

केदाररूपी विश्वेशो रहस्यस्योपदेशकृत् ।
नो चेत् को वेत्ति जगति रहस्यं परमीदृशम् ॥१००॥
सनत्कुमारो मद्भक्तस्तत्कृतं मत्कृतं हि तत् ।
तयोर्भाषणमप्येवं ज्ञात्वा ज्ञानदृशा मुनिः ॥१०१॥
[1]लोकोपकृतये सर्वं कारुण्याद् ब्रह्मणः सुतः ।
स्तोतुमारभदीशानमाद्याश्च मणिकर्णिकाम् ॥१०२॥

सनत्कुमार उवाच—

श्रीमत्परस्मै निजचिद्घनाय
गौरीतपःपूर्णफलप्रदाय ।
केदारनाथाय नमः शिवाय
नमो नमः कारणकारणाय ॥१०३॥
काश्यां कृताघाखिलवारणाय
कारुण्यसम्पूर्णदृशे पराय ।
प्राचीनतीर्थोत्तमतीरगाय
नमो नमः कारणकारणाय ॥१०४॥

इस परम रहस्य को कौन जानता ! (१००) सनत्कुमार मेरा भक्त है, उसका किया हुआ, मेरा ही किया हुआ जानो । (१०१)

ज्ञानदृष्टि से उन दोनों के संवाद को जानकर सबपर करुणा करनेवाले ब्रह्मदेव के पुत्र मुनिजी लोकोपकार के लिये आद्यमणिकर्णिका और शङ्कर की स्तुति करने लगे (१०२)

सनत्कुमारजी बोले—जो सबके परे है, जो निजरूप है, जो चिद्घन है, जिसने गौरी को तप का पूर्ण फल दिया, और जो कारण का भी कारण है, ऐसे केदारनाथ शिव को मनसा वाचा कर्मणा वारम्वार नमस्कार, (१०३) जो काशी में किये हुए सम्पूर्ण पापों का नाश करनेवाला है, जिसकी दृष्टि सदा कारुण्य से पूर्ण रहती है, जो निर्गुण

१. क. ख. ग. 'लोकोपकृतये सर्वं०' पादद्वयं नास्ति ।

गङ्गादिवोदासगणनैगमेय-
महाघकृद्वाष्कलतारणाय ।
शिवापराधार्त्तनृपोद्धराय
नमो नमः कारणकारणाय ॥१०५॥

मयि प्रसन्नाय च वामदेव-
मुनौ प्रसन्नाय नृपेऽपि तद्वत् ।
रहस्यदात्रे त्वविमुक्तपुर्या
नमो नमः कारणकारणाय ॥१०६॥

नमो नमस्ते भजतां प्रसन्नं
नमो नमः काशिजनाघहन्त्रे ।
हितोपदेष्ट्रे मम धीप्रदात्रे
नमो नमः कारणकारणाय ॥१०७॥

स्वरूप है, जो प्राचीन मणिकर्णिका के तट पर विराजमान है, ऐसे कारण के भी कारण को बारम्बार नमस्कार। (१०४) गंगाजी, राजा दिवोदास, गणराज नैगमेय, और महापापी वाष्कल को तारनेवाले, शिवापराध से आर्त्त राजा का उद्धार करनेवाले, कारणों के भी कारण को बारम्बार नमस्कार। (१०५) मुझपर प्रसन्न होकर, वामदेव मुनि पर प्रसन्न होकर, उसी भाँति राजा पर प्रसन्न होकर, अविमुक्त (वाराणसी) पुरी का रहस्य प्रकाशित करनेवाले कारणों के भी कारण को बारम्बार नमस्कार। (१०६) हे भजन करनेवालों पर प्रसन्न होनेवाले शिवजी! आपको बारम्बार नमस्कार। हे काशी वासियों के पाप हरनेवाले! आपको बारम्बार नमस्कार। हे हितोपदेश करनेवाले! मुझे ज्ञान देनेवाले! कारणों के कारण! आप को बारम्बार नमस्कार। (१०७) श्रीकेदार-नाथ के सामने जो आद्य मणिकर्णिका विराजमान है, वह सदा हम-लोगों के सम्पूर्ण अनादि पापों का नाश करे, शिवापराधी राजा चन्द्र-वान् को, श्रीवामदेव को, और मुझको, प्रसन्न होकर आदर के साथ

आद्या या मणिकर्णिका विजयते केदारनाथाग्रतः
सा नः पापमनादिमूलमखिलं निर्णाशयत्वद्य वै ।
भूपे सोमवतीशपापकलुषे श्रीवामदेवे मयि
प्रीता पूर्णकटाक्षपात्रपदवीमस्मान् ददात्वादरात् ॥१०८॥
श्रीगौरीश्रुतिभूषणप्रविलसत्ताटङ्कमुक्तामणेः
सम्पातादुपलब्धवैभवतया शम्भोरतीवप्रिया ।
याऽस्मानुद्धरदप्रमेयकलुषाधारान् जडान् सा सदा
प्राचीना मणिकर्णिका भवतु नः पापौघविध्वंसिनी ॥१०९॥
या देवी त्रिजगत्पवित्रतटिनी कालुष्यसंहारिणी
या गौर्या अपि शम्भुहेलनसमुद्भूताघसंहारिणी ।
या सा राजशिरोमणेरपि दिवोदासस्य दोषापहा
प्राचीना मणिकर्णिका भवतु नःपापौघविध्वंसिनी ॥११०॥

अपने कृपा-कटाक्ष से सनाथ करे। (१०८) जो श्रीगौरी के ताटङ्क की मोती और मणियों के गिरने से वैभव को प्राप्त होकर शङ्कर की अति-प्रिया हुई और जिसने हम लोगों-से अपार पापियों और जड़ों का उद्धार किया, वह हम लोगों के पाप समूह का नाश करे। (१०९) हे तीनों जगत को पवित्र करनेवाली! पाप हरनेवाली! गौरी के शिवावज्ञा-पाप को दूर करनेवाली, राजशिरोमणि दिवोदास के भी दोषों का नाश करनेवाली प्राचीनमणिकर्णिके! आप हम लोगों के पापसमूह का नाश करें (११०) नैगमेय पार्षद पर शम्भु की कृपा होने में आप ही कारण हैं, आपने ही अधम पापी वाष्कल को परम गति दी, आप पृथ्वी पर अपराधियों को तारनेवाली हैं, सो हे प्राचीन-मणिकर्णिके! आप हम लोगों के पापों का विध्वंस करें। (१११) आप सदा केदारजी के सामने विराजमान होकर काशी वासियों का उद्धार किया करती हैं, आप तीनों लोकों को पवित्र करनेवाली नदी से मिल-कर उनको भी तुष्टि प्रदान करती हैं, दर्शन और मज्जन से काशी की

या सा पार्षदनैगमेयगणपे शम्भोः प्रसादङ्करी
या पापाधमवाष्कलद्विजमपि स्थानं परं प्रापिता।
या भूलोकगतापराधजनतां साम्बा समुत्तारिणी
प्राचीना मणिकर्णिका भवतु नः पापौघविध्वंसिनी ॥१११॥
या केदारपुरः[1] सदा विलसते काश्यां प्रजास्तारयन्
या नित्यं त्रिजगत्पवित्रतटिनीं संयुज्य[2] तत्तुष्टिदा।
या काशी जनताघसङ्घशमनी संदर्शनान् मज्जनात्
प्राचीना मणिकर्णिका भवतु नः पापौघविध्वंसिनी ॥११२॥
इति स्तुत्वा दशश्लोकैः साष्टाङ्गं प्रणिपत्य च।
[3]ननृतुरानन्दभवैर्नेत्रोदैः [4]क्लिन्नदेहिनः ॥११३॥
तत्र वागभवत् खे या पूर्वं केदारसन्निभौ।
सैवात्राह शृणु मुने! मद्भक्ताग्रेति सादरम् ॥११४॥
सोऽहं निदर्शनं दास्ये पश्य सोमवतोऽधुना।
सोमवन्! राजशार्दूल! नेत्रे मीलय वै क्षणम् ॥११५॥
केदारं दर्शयाम्यद्य पापशुद्धिनिदर्शनम्।
चित्रां वाणीं नृपः श्रुत्वा क्षणं नेत्रे ह्यमीलयत्[5] ॥११६॥

जनता का पाप हरती हैं, सो हे प्राचीनमणिकर्णिके! आप हम लोगों के पापसमूह को नष्ट करें। (११२) इस प्रकार दश श्लोकों से स्तुति करके साष्टाङ्ग प्रणाम किया और आनन्दाश्रु से देह को भिगोते हुए नाचने लगे। (११३) फिर यहाँ वही आकाश वाणी हुई जो कि पहिले (हिमालय के) केदार के समीप हुई थी; कि हे मुने! तुम मेरे भक्तों में श्रेष्ठ हो, (११४) अतः आदर पूर्वक सुनो, मैं चन्द्रवान् को प्रमाण दूँगा, तुम लोग देखो। हे राजशार्दूल चन्द्रवान्! तुम क्षण भर के लिये आँख बन्द कर लो। (११५) मैं तुम्हारे पापशुद्धि के प्रमाण में तुम्हें केदार का दर्शन कराता हूँ। विचित्र वाणी सुनकर राजा ने क्षण भर के लिये

१ ख. पुरे। २ ख. सा। ३ ख. ननन्त०। ४ ख. क्लिष्ट०। ५ ख. सुमीलयन्।

पुनरुद्घाटिते नेत्रे श्रीमत्केदारमागतः ।
हरम्पापं तीर्थराजं केदारेशं प्रणम्य च ॥११७॥
आश्चर्य्यमाश्चर्य्यमिति केदारेशस्य वैभवम् ।
तस्थौ क्षणं तदा वाणी खे[1] वदन्नेत्रमीलनम् ॥११८॥
पुनर्मील्योद्घाटितेऽसौ काशीकेदारमागतः ।
तद् दृष्ट्वा तु पुनश्चित्रं तौ मुनी प्रणिपत्य च ॥११९॥
भगवन्तौ कृतार्थोऽस्मीत्यवदच्छिवसन्निधौ ।
एतच्चित्रं मुनी ज्ञात्वा ज्ञानदृष्ट्या यथाक्रमम् ॥१२०॥
प्रशस्य राजशार्दूलं तीर्थं लिङ्गं प्रणम्य च ।
तस्थुराश्चर्य्यसम्पूर्णहृदयाः शिवसन्निधौ ॥१२१॥
इति परमरहस्यं यः शृणोतीशभक्त्या
दुरतिगमपराधं शङ्करे यत्कृतं तत् ।
कृतमपि यदि काश्यां तत्समस्तं व्यपोह्य
प्रविशति शिवधाम प्रार्थितं ब्रह्मनिष्ठैः ॥१२२॥

आँखें मूँद लीं। (११६) फिर जो आँखें खोलीं तो श्रीकेदारजी में अपने को पाया। तीर्थराज हरम्पाप और केदारनाथजी को नमस्कार किया (११७) और कहा कि केदारजी का वैभव महा आश्चर्यमय है। क्षण भर ठहरने के बाद आकाशवाणी ने फिर आँख बन्द करने को कहा। (११८) फिर जो बन्द करके आँख खोलते हैं, तो काशी केदार में आ गये। फिर इस आश्चर्य्य को देखकर, दोनों मुनियों को प्रणाम कर के (११९) (शिव के सन्निकट) कहा कि हे भगवन्! मैं कृतार्थ हो गया। इस आश्चर्य्य को यथाक्रम ज्ञान-दृष्टि से दोनों मुनियों ने जान लिया। (१२०) राजशार्दूल की प्रशंसा और तीर्थ तथा लिङ्ग को प्रणाम करके, परम आश्चर्य्यान्वित होकर शङ्कर के सन्निकट बैठ गये (१२१) इस परम रहस्य को जो शङ्कर की भक्ति के साथ सुनता है, उसने यदि

१ ख. बोधयन्नेत्र० ।

श्रुत्वैतदनवद्यापि साश्चर्य्या नाथमब्रवीत् ।

अनवद्योवाच—

स्वामिन्! गुह्यं कदाप्येतन्न श्रुतं त्वन्मुखाम्बुजात् ॥१२३॥
इदानीं[1] वद मे यस्माल्लोके ख्यातिं गमिष्यति ।
इति श्रुत्वाऽनवद्याया नाथशर्म्माऽवदद्‌ वचः ॥१२४॥

नाथशर्मोवाच—

किं वर्णयामि तव देवि! महाप्रभावं
स्कन्दांशजस्य च मुनेश्च नृपस्य तस्य ।
श्रीवामदेवमुनिपुङ्गवभाग्यपुञ्जं
साक्षाच्छिवः स्वयमुपादिशदात्मगुह्यम् ॥१२५॥
पापे युगे त्विह कलौ कलुषौघपूर्णा
तीर्थोत्तमेषु जनता खलु भक्तिहीना ।
शम्भुः कृपां दधदनन्तदयाम्बुराशि-
रेषा कलौ न तरतीति विमृश्य तस्याम् ॥१२६॥

शङ्कर का नहीं हटाने योग्य अपराध भी किया हो और काशी में किया हो, तो भी उन सब अपराधों से छूट कर, ब्रह्मनिष्ठों से स्तूयमान होकर शिवधाम को प्राप्त होता है। (१२२) इसे सुनकर अनवद्या ने भी आश्चर्य्य में आकर नाथ से कहा। अनवद्या बोली—हे स्वामी! इस रहस्य को मैंने तुम्हारे मुख से कभी नहीं सुना था। (१२३) अब मुझसे कहो कि किस कारण से इसकी लोक में ख्याति होगी? अनवद्या की यह बात सुनकर नाथशर्मा ने कहा।

नाथशर्मा बोले—हे देवि! तुमसे स्कन्द के अंश सनत्कुमार, वामदेव और उस राजा का महाप्रभाव क्या कहें, श्रीवामदेव मुनि बड़े भाग्यवान् थे, जिन्हें साक्षात् शिवजी ने अपना रहस्य बतलाया। (१२५) इस पापयुग कलि में पाप से भरी हुई भक्तिहीन जनता उत्तम उत्तम

१ क. ख. 'इदानीं वद मे०, श्लोकोऽयं नास्ति ।

एतद्रहस्यमपि देवि ! कलौ न केऽपि
जानन्ति पुण्यपरिपाकविहीनचित्ताः ।
श्रद्धापुराणपठनश्रवणेऽपि नास्ति
येषान्तु ते कथमिदं प्रविदन् रहस्यम् ॥१२७॥
काश्यादिपुण्यतमभूमिषु वासमाप्या-
प्यत्यन्तपापमनिशं प्रचरन्ति चित्रम् ।
श्रीकालभैरवभयं मनसाप्यचिन्त्य
स्वल्पे सुखे च क्षणिके विरमन्ति मर्त्याः ॥१२८॥
निन्दन्तु सर्वमपि काशिमहाप्रभावं
रक्षन्ति चेद् हृदि सदा शिवभक्तिमात्रम् ।
लोकाः प्रयान्ति शिवधाम वदामि सत्यं
निर्धूय सर्वकलुषं सहसाऽनवद्ये ! ॥१२९॥
तत्रापि दुष्टमनसां गतिरीशक्लृप्ता
गुप्ता पुरातनमहामणिकर्णिकेयम् ।

तीर्थों में वर्तमान है, सो दया के समुद्र शङ्कर भगवान् ने यह विचार करके कि इनका उद्धार कलियुग में नहीं हो सकता उन पर कृपा की । (१२६) हे देवि ! इस रहस्य को भी कलियुग में कोई नहीं जानता, क्योंकि उनका चित्त पुण्यपरिपाक से रहित है । पुराण के पढ़ने सुनने की उन्हें श्रद्धा ही नहीं है । फिर वे इस रहस्य को कैसे जानेंगे ? (१२७) काशी आदि पुण्यतम भूमि में वास पाकर भी दिन रात पाप में ही लगे रहते हैं । यह बड़े आश्चर्य्य की बात है । श्रीकालभैरव की यातना को मन से भी नहीं सोचते और तनक से क्षणिक सुख में व्यर्थ भूल जाते हैं । (१२८) लोग चाहें सबकी निन्दा करें, पर काशी का महा-प्रभाव और शिव की भक्तिमात्र हृदय में बनाये रहें, तो मैं सत्य कहता हूँ, अनवद्ये ! वे एकाएक सब पापों को नष्ट करके शिवधाम को प्राप्त होंगे । (१२९) उसमें भी दुष्टात्माओं की गति के लिये ईश-

केदारनाथकृपया प्रविदन् निषेवन्
केदारलिङ्गमपि ते शिवमेव यान्ति ॥१३०॥
सर्वाघजालमपि शम्भ्वपराधमग्नं
तादृक् शिवाघशमनी मणिकर्णिकाऽस्ति ।
तत्रापि भक्तिविधुरा यदि जीवलोकाः
पारं तरन्त्यहह केन भवाम्बुराशेः ॥१३१॥
सत्यं ब्रवीमि सकलश्रुतिनिर्णयोक्त-
सारं ब्रवीमि जनतातरणं ब्रवीमि ।
काशी विमुक्तिनगरी तरणोपदेष्टा
विश्वेश एव हि कलौ न ततोऽस्ति किंचित् ॥१३२॥
तत्रापि भक्तिविरहान् बहुपापिनोऽपि
पौरातनी गतिकरा मणिकर्णिकेयम् ।
केदारलिङ्गमपि सत्यमतोऽन्यदस्ति
नैवात्र तद्विषयकाः श्रतयः प्रमाणम् ॥१३३॥

कल्पित गुप्त यह पुरातन महामणिकर्णिका है। केदारनाथ की कृपा से जानते हुए जो केवल केदार लिङ्ग की भी सेवा करेंगे वे शिव को ही प्राप्त होंगे। (१३०) सब पापों का जाल और शम्भु के अपराध में मग्न पुरुष के भी दोषों को दूर करनेवाली मणिकर्णिका है। उसमें भी यदि जीवों को भक्ति न हो तो शोक है कि वे अब किस उपाय से संसार सागर से पार हो सकेंगे? (१३१) मैं सत्य कहता हूँ, सकल श्रुति से निर्णीत सार कहता हूँ, जनता के तरण का उपाय कहता हूँ, काशी अविमुक्त नगरी तारण करनेवाली है, उसका उपदेष्टा शङ्कर के अतिरिक्त कलि में कोई नहीं है। (१३२) उसमें भी बहुत से भक्तिहीन पापियों को सनातन गति, देनेवाली यह मणिकर्णिका ही है और केदार लिङ्ग भी सीत्य है इससे अन्य यहां दूसरा नहीं है, यहाँ तद्विषयक

आत्मापरोक्षविषयात् परमात्मतत्त्व-
ज्ञानाच्च मुक्तिरिति वेदशिरांस्यथाहुः ।
तादृग् विमुक्तिरिह पापयुगे प्रजानां
क्षुद्रात्मनाञ्च लघियान्न कदाचिदाप्या ॥१३४॥
अस्थिस्थमांसगतचर्म्मगतासुमर्त्य-
सम्पादितानि च तपांसि कृताद्युगेषु ।
अन्नासुभिश्च मनुजैश्चलचित्त दुष्टैः
किं लभ्यमत्र परलोकसुखं तपश्च ॥१३५॥
तस्माच्छृणुष्व दयिते ! तरणीह काशी
तत्रापि दुष्टमनसां मणिकर्णिकाद्या ।
केदारलिङ्गमपि सूक्ष्मरहस्यमेतत्
संतारकं द्वयमिदं जगतोऽनवद्ये ! ॥१३६॥
एतद्रहस्यमिह तीर्थमहेशयोर्य-
स्त्वत्प्रश्नमद्वचनसंकथनं हि देवि ! ।

श्रुतियां प्रमाण हैं । (१३३) वेदान्त ने कहा है कि आत्मा के अपरोक्ष का विषय जो परमात्मतत्त्वज्ञान उससे मुक्ति होती है, परन्तु वैसी मुक्ति तो इस पाप युग में चञ्चलमन क्षुद्रात्मा प्रजाओं को किसी भाँति मिल नहीं सकती । (१३४) सत्य, त्रेता और द्वापर में मनुष्यों का प्राण क्रमशः अस्थिगत, मांसगत और चर्मगत होता था, अतः उन युगों में लोग तपसंपादन करते थे, चलचित्त दुष्टों का प्राण अन्न में होता है, सो वे परलोक का सुख या तप कैसे प्राप्त कर सकते हैं ? (१३५) अत एव हे प्रिये ! यह काशी नौका है उसमें भी दुष्टात्माओं के लिए शरण तो आद्या मणिकर्णिका और केदार लिङ्ग हैं । हे अनवद्ये ! संसार के तारक वे दो हैं । यही सूक्ष्म रहस्य है । (१३६) हम दोनों के संवादरूप इस तीर्थ तथा महेश के महारहस्य को जो सुनता

शृण्वन् पठन् हृदि दधाति महारहस्यं
तं मुक्तपापमनयेन्निजधाम शम्भुः ॥१३७॥

इति श्रीकाशीमूलरहस्ये खिले ब्रह्मवैवर्त्ते काशीकेदारमाहात्म्ये
तृतीयोऽध्यायः ॥३॥



चतुर्थोऽध्यायः

अनवद्योवाच—

मदिष्टदेव ! भगवन् ! शिवतत्त्वार्थवित्तम ! ।
शिवावज्ञा कथं प्राप्ता गौर्य्या सर्वज्ञया विभो ! ॥ १ ॥
कथं शिवप्रसादेन निवृत्ता दुस्त्यजा यतः ।
तद्रहस्यं मम श्रोतुं योग्यं यदि वदस्व तत् ॥ २ ॥

है, पढ़ता है, हृदय में धारण करता है, उसे पाप से मुक्त करके शम्भु अपना धाम देते हैं ।

यह काशी-मूलरहस्य के खिलान्तर्गत (ब्रह्मवैवर्त के) काशीकेदार-
माहात्म्य का तीसरा अध्याय समाप्त हुआ ।

दो०—सृजत विधिहिं पालत हरिहिं बढ्यौ मोह अभिमान ।
सौंपन हित अधिकार निज चले जहाँ ईशान ॥ १ ॥
सप्तावरण पार करि लख्यौ महाकैलास ।
चकित विलोकत अतुल छवि वैभव तेज विलास ॥ २ ॥

अनवद्या बोली—हे भगवन् ! आप शिवतत्त्वार्थ जाननेवालों में सर्वश्रेष्ठ हैं, मेरे इष्ट देव हैं, आप कृपा करके बतलाइये कि भगवती ग री तो सर्वज्ञ हैं, उनसे शिवजी की अवज्ञा कैसे हुई ? (१) और वह कठिनता से छूटनेवाली अवज्ञा शङ्कर की कृपा से किस भांति छुटी ? यदि मैं इस रहस्य को सुनने योग्य हूँ, तो मुझे आप कृपा करके बत-लावें (२) नाथशर्मा ने कहा—हे देवि ! मैं कहता हूँ, सुनो, कोई बात

नाथशर्म्मोवाच—

शृणु देवि! प्रवक्ष्यामि नावाच्यं ते[1]ऽस्ति किञ्चन।
इमं प्रश्नं पुरा तेन वामदेवेन वाञ्छितम् ॥ ३ ॥
सनत्कुमारः प्रोवाच रहस्यं शिवभाषितम्।

सनत्कुमार उवाच—

शृणु ब्रह्मन्! वामदेव! पूर्वं रुद्रो हरिर्विधिः ॥ ४ ॥
समागम्य त्रयस्ते वै कार्य्यमालोचिताः पुरा।

ब्रह्मोवाच—

कतिपर्य्यन्तमेतस्याः सृष्टेः कार्य्यं करोम्यहम् ॥ ५ ॥
कस्य प्रीत्यै[2] श्रमोऽयं मे कदाऽस्योपरमो भवेत्।
[3]विरामः क्षणमात्रं मे न सृष्टिं कुर्वतः सदा ॥ ६ ॥
तस्मादीशः करोत्वन्यं विधातुं परमेष्ठिनम्।
महाकैलासमधुना गत्वोत्क्लेशं सुखं वसे ॥ ७ ॥

ऐसी नहीं है जो तुमसे न कही जा सके। यही प्रश्न पहिले वामदेव ने किया था (३) और सनत्कुमार ने शङ्कर का कहा हुआ रहस्य उन्हें उत्तर रूप में बतलाया। सनत्कुमार ने कहा—हे ब्रह्मन् (वामदेव)! सुनो, पहिले रुद्रविष्णु और ब्रह्मा तीनों एकत्रित होकर अपने अपने कार्य की आलोचना करने लगे। ब्रह्मा ने कहा कि मैं इस सृष्टि के कार्य को कितने दिनों तक करता रहूँ? (४) किसके लिये इतना परिश्रम करूँ? (५) और कब इससे मुझे छुट्टी मिलेगी? इस सृष्टि की रचना से मुझे एक क्षण की भी फुरसत नहीं है, (६) इसलिए शङ्करजी अब कोई दूसरा ब्रह्मा सृष्टि के लिए बनावें। अब मैं महाकैलास में जाकर सुख से रहूँगा। (७) वहीं मैं स्थिर मन करके शङ्कर का ध्यान किया करूँगा। यह सुनकर ब्रह्माजी की ओर देखते हुए मधुसूदन (विष्णु)

१. ग. किञ्चिदस्ति ते। २ ग. प्रीतौ। ३. ग. पुस्तकीयः पाठः, अ० पु० विरामम्।

तत्रैवाहं स्वस्थमना ध्यायन् तिष्ठामि शङ्करम् ।
इत्युक्तश्च विधिं प्रेक्ष्य प्रोवाच मधुसूदनः ॥ ८ ॥
सम्यगुक्तं त्वया ब्रह्मन् ! ममाप्येतद्विरोचते ।
असंख्यकोटिजीवानां निर्वेदः पालनेऽपि मे ॥ ९ ॥
अतीवजातो दैत्यानां संहारो बहुधा कृतः ।
तथापीशवराद् दैत्याः सम्भवन्ति पुनः पुनः ॥१०॥
मां विना कः प्रकुर्वीत तेषां हानिं पदे पदे ।
अहमप्यागमिष्यामि न करिष्यामि पालनम् ॥११॥
[1]स्वस्थस्तत्रैव तिष्ठामि यो वा को वा करोतु तत् ।
त्वमप्यागच्छ भो रुद्र ! कतिधा संहरिष्यसि ॥१२॥
ब्रह्मणो वरदानेन तव चैव महासुराः ।
तपःक्लेशाप्तविभवा भविष्यन्ति क्षणे क्षणे ॥१३॥
के सन्त्यस्मान् विना कार्य्यकर्तारः परमेशितुः ।
ईशः सर्वोत्तमो भूत्वा स्वयं तिष्ठति निर्भयः ॥१४॥

जी बोले—(८) ब्रह्माजी ! आपने ठीक कहा, मुझे भी यही अच्छा लगता है। असंख्य कोटि जीवों का पालन करते करते मैं भी ऊब गया हूँ। (९) कितनी बार मैंने दैत्यों का संहार किया जिससे नाकों दम होगया, फिर भी शङ्कर के वर से दैत्य वार बार निकलते ही आते हैं। (१०) मेरे बिना उनका पदे पदे नाश कौन करेगा ? मैं भी आपके साथ ही चलूँगा। मुझसे जगत् का अब पालन न होगा। (११) मैं भी आराम से वहीं रहूँगा। अब जो चाहे इस काम को करे। रुद्रजी आप भी चलिये, कब तक संहार करते रहियेगा। (१२) आपके और ब्रह्माजी के वरदान से बड़े बड़े राक्षस तपस्या का कष्ट उठा उठा कर बराबर विभव प्राप्त करते ही रहेंगे। (१३) हम लोगों को छोड़ कर परमेश्वर के काम करनेवाले और कौन लोग हैं ? ईश्वर तो स्वयं

१, ग, स्वच्छ; ।

पश्यामः कथमीशस्य कार्य्यं चलति नो[1] विना ।
अस्माकन्तु बलादीशः सुखमास्ते निरङ्कुशः ॥१५॥
तस्माद् वयं किमबला एकैकश्च ततोऽधिकाः ।
महाकैलासाधिपत्ये नास्महे किं वयं तथा ॥१६॥
हरिमेवं भाषमाणं स्मयमानो हरोऽब्रवीत् ।
ईशमायामोहितौ हि [2]युवां नात्र तु संशयः ॥१७॥
नो चेदेवं गर्वयुक्तौ ब्रवीतां निर्भयौ हृदि ।
भवतोः सहकारित्वाद् भवद्भ्यां सह याम्यहम् ॥१८॥
तथापि शिक्षा युवयोर्भविष्यति हि तत्र वै ।
[3]करुणां परमेशस्य न जाने हि गरीयसीम्[4] ॥१९॥
कदाचिद्भाग्यशेषश्चेत् स्वस्थानं याम पूर्ववत् ।
इत्युक्तं रुद्रमूर्त्ति तौ गर्वेण पुनरूचतुः ॥२०॥

सबसे उत्तम बने हुए बेग़म (निर्भय) बैठे रहते हैं । (१४) देखें अब हम लोगों के विना परमेश्वर का काम कैसे चलता है ? हम लोगों के भरोसे परमेश्वर सुख से मस्त बैठे हैं । (१५) हम लोग भी कुछ निर्बल नहीं है, एक से एक अधिक हैं । महाकैलास के मालिक होने योग्य क्या इस भांति हम लोग नहीं हैं ? (१६) विष्णु के ऐसा कहने पर रुद्र ने मुसकुरा कर कहा कि निस्सन्देह आप लोग परमेश्वर की माया से मोहित हैं, (१७) नहीं तो भीतर से निर्भय होकर ऐसी अभिमान की बात न बोलते। आप लोगों का सहकारी होने के कारण मैं आप लोगों के साथ चलता हूँ । (१८) फिर आप लोगों की शिक्षा वहीं होजायगी । परमेश्वर की करुणा की बात नहीं कह सकते । वह बहुत बड़ी है । (१९) यदि भाग्य शेष है, तो फिर पहले की तरह हम लोग अपने पद को प्राप्त होंगे । तब दोनों अभिमान के साथ रुद्रमूर्ति से

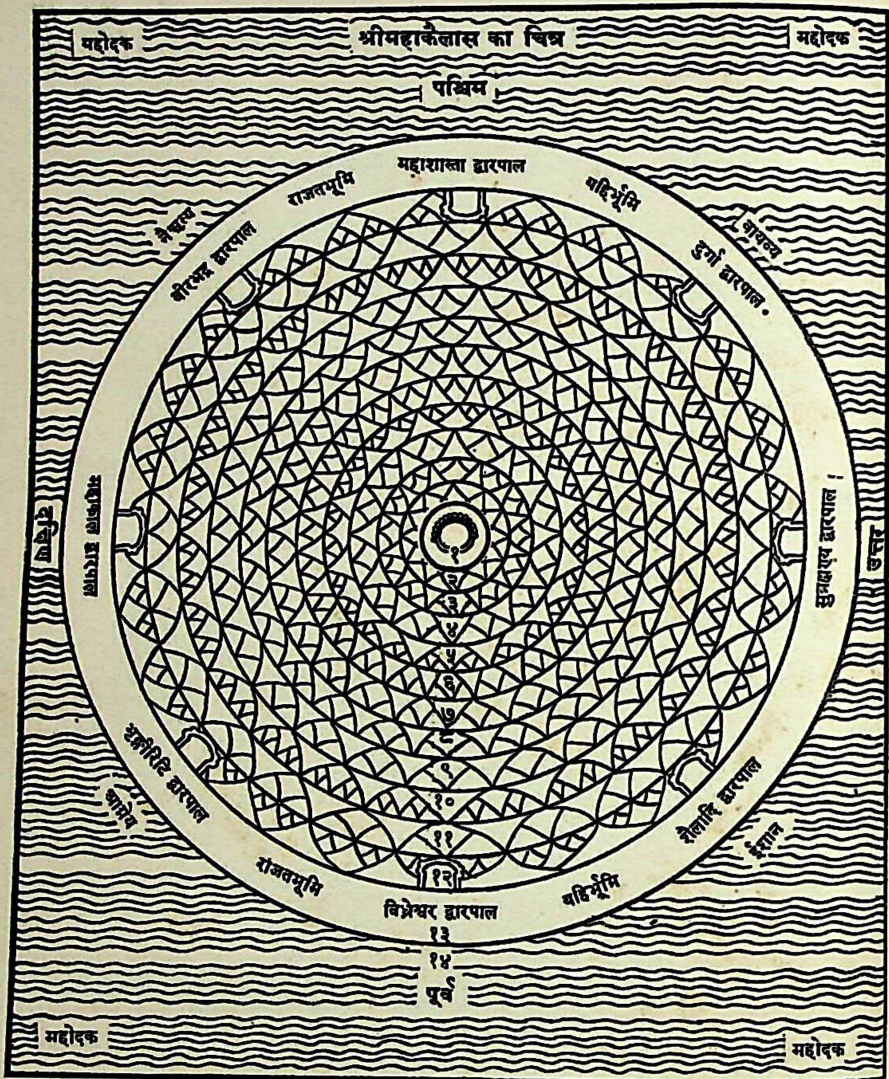
१. ग. वा न त्वा । २. ग. युवामत्र न । ३. ग पुस्तकीयोऽयं पाठः, आ० पु०—करुणा । ४. ग. पुस्तकीयोऽयं पाठः, आ० पु०—गरीयसी ।

त्वं भीतोऽसि न भीः स्वल्पाऽप्यावयोः किं करोति सः[1] ।
न भेतव्यं त्वयाप्येवं गमिष्यामोऽहमस्मि ते ॥२१॥
तदा रुद्रो हसन्नेतौ याम इत्यवदत् सह ।
महाकैलासमुद्दिश्य गता वायुमनोजवाः ॥२२॥
अप्राकृतं बहिष्ठं तद् [2]ब्रह्माण्डज्योतिःपुञ्जकम् ।
सत्यज्ञानानन्दमयं मनोवाचामगोचरम् ॥२३॥
यं प्रार्थयन्ति योगीन्द्रा योगाभ्याससमाधिना ।
सालोक्यादिचतुर्भावमुक्तिदं तारतम्यतः ॥२-॥
रुद्रमूर्तिं पुरस्कृत्य महाकैलासमाययुः ।
विघ्नेशश्च नमस्कृत्य नन्दिकेशं प्रणम्य च ॥२५॥
शैलादेराज्ञया मन्दमन्तर्याताः शनैः शनैः ।
तत्तदा प्रतिसंस्थानि लोकयन्तोऽद्भुतानि च ॥२६॥

बोले (२०) कि तुम डर गये हो। हम लोगों को उनका तनिक भी भय नहीं है। वे क्या कर लेंगे? तुमको ऐसा डर जाना वाजिब नहीं है। तुम चलो, तुम्हारे लिए हम हैं। (२१) तब रुद्र उन दोनों से हंसते हुए बोले—'हम लोग साथ ही चलेंगे।' और साथ ही वे लोग वायु और मन के वेग से महाकैलास की ओर चले। (२२) वह ज्योतिःपुञ्ज ब्रह्माण्ड से बाहर और अलौकिक है, सच्चिदानन्द मय है और मन वाणी के अगोचर है। (२३) उसकी योगीन्द्र लोग योगाभ्यास और समाधि से चाहना करते हैं, और जो तारतम्य से सालोक्यादि चारों प्रकार की मुक्ति दिया करता है। (२४) रुद्रमूर्ति को आगे करके वे लोग ऐसे महाकैलास में पहुँचे। पहिले विघ्नेश गणेश जी को नमस्कार किया फिर नन्दिकेश्वर को प्रणाम किया। (२५) तत्पश्चात् शैलादि की आज्ञा से धीरे धीरे भीतर चले, और वहाँ की अद्भुत रचना देखी। (२६) वाम-

१. ख. नः। २. ग. ब्रह्माण्डाद् द्युतिपुञ्जकम्।

महाकैलास का चित्र



१ हीरक शिखर

२ स्फटिक शिखर

३ मुक्तामय शिखर

४ मरकतमय शिखर

५ गारुत्मत शिखर

६ इन्द्रनील शिखर

७ गोमेदक शिखर

८ पुष्पराग शिखर

९ वैडूर्यमणि शिखर

१० पद्मराग शिखर

११ प्रवाल शिखर

१२ राजतसाल

१३ स्वर्णभूमि

१४ महोदक

वामदेव उवाच—

महाकैलास इति यो ब्रह्मन्नुक्तः स कीदृशः।
तत्प्रभावं वद विभो! विस्तरेण ममाधुना ॥२७॥

सनत्कुमार उवाच—

अनेककोटिब्रह्माण्डाधारभूतमहोदके ।
लक्षयोजनविस्तारा स्वर्णभूरिति शुश्रुम ॥२८॥
उन्नतं परमेशस्य स्थानं तल्लक्षयोजनम्।
महाकैलास इति च स्थानं वेदविदो विदुः ॥२९॥
तत्र साहस्रपञ्चाशद्योजना परितश्च पूः[1]।
परितो राजते [2]सालो विंशत्साहस्रमुन्नतः ॥३०॥
राजन्ते परितो द्वाराण्यष्टौ दिक्षु मणेर्गणैः।
पूर्वद्वाराधिपत्यन्तु विघ्नेशस्य महात्मनः ॥३१॥
अग्निदिग्द्वारपालस्तु [3]भृङ्गोरिटिमहागणः।
दक्षिणद्वाररक्षी तु महाकालो गणाग्रणीः ॥३२॥

देव ने कहा—हे ब्राह्मण! जिसको आप लोगोंने महाकैलास कहा है वह कैसा है? उसका प्रभाव अब मुझसे विस्तार के साथ कहिये। (२७) सनत्कुमार बोले—अनन्तकोटिब्रह्माण्ड के आधार भूत महोदक* में, हमलोगों ने सुना है कि लाख योजन विस्तीर्ण स्वर्ण-भूमि है (२८) वहीं परमेश्वर का स्थान लाख योजन ऊँचा है, उसीको वेद के जाननेवाले 'महाकैलास' कहते हैं। (२९) उसके चारों ओर पचास हजार योजन विस्तृत और बीस हजार योजन ऊँची राजत-भूमी का घेरा है। (३०) उसके आठो दिशाओं में मणियों के आठ फाटक हैं पूर्व फाटक के मालिक महात्मा विघ्नेश हैं। (३१) अग्निकोण फाटक के मालिक

* सम्भवतः इसी महोदक को आधुनिक विज्ञानी (scientest) लोग perfect fluid कहते हैं।

१ क. ख. भूः। २ ग. सानुः। ३ ग. ०रिष्टिः।

नैर्ऋतद्वारपालस्तु वीरभद्रः शिवाङ्गजः ।
पश्चिमद्वाररक्षी[1] तु [2]महाशास्ता शिवात्मजा ॥३३॥
वायुदिग्द्वारपाली तु दुर्गा [3]दुर्गार्त्तिनाशिनी ।
उत्तरद्वारनाथस्तु सुब्रह्मण्यः परः शिवः ॥३४॥
ईशानदिग्द्वारपतिः शैलादिर्गणनायकः ।
एतेषां [4]किङ्करीभूतास्त्वसंख्या द्वाररक्षकाः ॥३५॥
सहस्राणाञ्च पञ्चाशद्योजना नगरी मुने ! ।
एकाधिकानि शृङ्गाणि शतकोटिशतानि च ॥३६॥
दशसाहस्रोच्छ्रितानि योजनानां महामुने ! ।
प्रवालमयशृङ्गाणि [5]वेष्टयन्ति स्थितानि च ॥३७॥
तदन्तः शतकोटीनां दशचैकाधिकानि च ।
[6]विंशत्सहस्रोच्छ्रितानि योजनानां महामुने ! ॥३८॥

महागण भृंगीरिटि हैं, और दक्षिण द्वार के पालक गणों के सरदार महाकाल हैं। (३२) नैऋत्य के द्वारपाल साक्षात् शङ्कर के अङ्ग से उत्पन्न वीरभद्र हैं, और पश्चिम द्वार की पालिका शिव की बेटी महाशास्ता है। (३३) वायव्य दिक् की द्वारपालिका कठिन संकट का नाश करनेवाली दुर्गा है और उत्तर द्वार के द्वारपाल सुब्रह्मण्य नामक पर शिव हैं (३४) और ईशान कोण के द्वार के मालिक शैलादि गणनायक हैं, और इन लोगों के किंकर जो द्वाररक्षक हैं, उनकी गिनती नहीं है। (३५) हे मुनि ! पचास हजार योजन की वह नगरी है और दस हजार कोटि तथा एक शिखर उसमें है (३६) और वे दश हजार योजन ऊँचे हैं। मूँगे से बने हुए चारों तरफ से घेरे हुए हैं। (३७) उसके भीतर एक हजार कोटि तथा एक शृङ्ग बीस हजार योजन ऊँचे हैं। (३८) हे महामते! वे सब शृङ्ग पद्मराग के हैं और चारों ओर से घेरे खड़े

---

१ ग. द्वारपालस्तु। २ ग. महाशाखः शिवात्मजः। ३ ग. दुर्गतिनाशिनी। ४. ग. किङ्कराः। ५. ख. ग. वेष्टयन् संस्थितानि। ६. ग. त्रिंशद्।

शृङ्गाणि पद्मरागाणां वेष्टितान्यभितः सदा।
तदन्तः शतकोटीनि तथा चैकाधिकानि च ॥३९॥
त्रिंशद्योजनसाहस्रमुच्छ्रितानि महान्ति च।
[1]वैडूर्य्यमणिशृङ्गाणि वेष्टितान्यभितो मुने! ॥४०॥
योजनैर्दशसाहस्रं द्वारेभ्यो बाह्यभूमिका।
चत्वारिंशत्सहस्रान्तर्भूमिका द्वारतो मुने! ॥४१॥
प्रवालपद्मरागाख्यवैडूर्य्यावरणानि[2] च।
एतावद्भूमिभागेषु शृङ्गेषु च महामुने! ॥४२॥
सालोक्यमुक्तास्तिष्ठन्ति तारतम्यक्रमेण हि।
[3]मनोभीष्टगृहारामवापीकूपसरःसरित् ॥४३॥
दिव्याप्सरःपानभक्ष्यस्रग्गन्धा[4] भोगभूमिका।
तत्रासंख्याः शिवगणा रुद्रकन्याश्च सुप्रभाः ॥४४॥
वनानि कल्पवृक्षाणां कामधेनुव्रजाः[5] पराः।
चिन्तामणिसमूहाश्च तिष्ठन्त्यत्र शिवाज्ञया ॥४५॥

हैं उसके भी एक कोटि और एक, (३९) तीस हजार योजन ऊँचे और विशाल वैडूर्य्य के शृङ्ग चारों ओर से घेरे हुए विद्यमान हैं। (४०) फाटक के बाहर की भूमि दस हजार योजन है तथा फाटक के भीतर की भूमि चालीस हजार योजन है। (४१) मूँगा पद्मराग और वैडूर्य्य के रङ्गके शृङ्ग हैं, इस भूमि में तथा शृङ्ग पर तारतम्य क्रम से सालोक्य मुक्तिवालेरहते हैं। उनके मनोनुकूल उसमें घर, बाग, बावड़ी, कूआँ, नद और नदियाँ हैं। (४३) वह भोगभूमि दिव्य अप्सरा, दिव्य पान और भक्ष्य से पूर्ण है। वहां अगणित शिव के गण और अच्छी प्रभावाली रुद्र की कन्याएं रहती हैं। (४४) कल्पवृक्ष के वहां वन हैं, और कामधेनु की गोंठ हैं, और शङ्कर की आज्ञा से वहां चिन्तामणि के समूह हैं। (४५) वहां

१. ग. वैदूर्य्यमयशृङ्गाणि। २. ग. वैदूर्य्यावरणानि। ३. ग. ०रामा वापी। ४ ग. ०सुगन्धा। ५. ख. प्रजाः।

शिवधर्म्मपराश्चात्र शिवाराधनतत्पराः ।
शिवभक्तार्चकाः पुण्यतारतम्याद् वसन्ति वै ॥४६॥
सालोक्यभाजो मनुजास्तत्र सन्तीति शुश्रुम ।
यो यो यद्वाञ्छते तत्तत्सर्वं तस्य पुरःस्थितम् ॥४७॥
सर्वभोगसमायुक्ता नित्यास्तत्र स्थिता जनाः ।
'सारूप्यसामीप्यसार्ष्टिमुक्तिं' कालादवाप्नुयुः ॥४८॥
ततः परं शृणु ने ! शृङ्गवेष्टनमन्ततः ।
एकोत्तरा च 'शृङ्गाणां दशकोटिः समावृताः ॥४९॥
पुष्परागमणीनाञ्च प्रभया द्योतितत्विषाम् ।
चत्वारिंशत्सहस्राणां योजनैरुच्छ्रितानि च ॥५०॥
तेषु तिष्ठन्ति गन्धर्वयक्षकिन्नरगारुडाः ।
नागाः शिवार्चका नित्याः सर्वभोगसमन्विताः ॥५१॥
तदन्तः कोटिसंख्यानि गोमेदमणिमन्ति च ।
एकाधिकानि शृङ्गाणि परितो वेष्टितानि हि ॥५२॥

तारतम्य से शिवधर्मपरायण, शिव के आराधक, और शिवभक्तों को पूजनेवाले बसते हैं। (४६) सालोक्य मुक्ति के भागी मनुष्य वहां बसते हैं, ऐसा हमने सुना है, वहां पर जो जिस वस्तु को चाहे, वही उसके सामने मौजूद रहती है। (४७) सब भोगों से युक्त वहाँ पर लोग नित्य रहते हैं और वे ही लोग क्रम से सारूप्य सामीप्य और सार्ष्टि मुक्ति को काल पाकर प्राप्त होते हैं। (४८) हे मुनि ! इसके बाद भीतर के शिखरों के घेरे को बात सुनो। प्रभा से दिशाओं को प्रकाशित करनेवाले दस करोड़ और एक (४९) पुष्पराग मणि के शृंग चालीस हजार योजन ऊँचे हैं। (५०) उनमें गन्धर्व, यक्ष किन्नर, गारुड, नाग, जो कि शिव के पूजक हैं, सदा सब भोगों से युक्त होकर रहते हैं। (५१) उसके भीतर एक कड़ोर और एक गोमेदकमणि के शृङ्गों का घेरा है।

१. ख. सालोक्य० । २. ख. ०मुक्तीः । ३. ख. ०णां ।

पञ्चाशद्योजनानाञ्च [1]साहस्रैरुच्छ्रितानि च ।
देवेन्द्राः शिवमाराध्य तिष्ठन्त्यत्र पदच्युताः ॥५३॥
ततस्त्वेकाधिकदशलक्षाणि शृङ्गसंख्यया ।
इन्द्रनीलमहारत्नमयान्यावेष्ट्य सन्ति वै ॥५४॥
षष्टियोजनसाहस्रोच्छ्रितानि मुनिपुङ्गव [2] ।
[3]शिवभक्त्या चतुर्वक्त्रब्रह्माणो ध्यानतत्पराः ॥५५॥
तेषु तिष्ठन्ति शृङ्गेषु शिवज्ञानास्तहृन्मलाः ।
ततो गारुत्मतमणेः शृङ्गाणि द्युतिमन्ति च ॥५६॥
सन्त्येकाधिकलक्षाणि दिव्यमारकतानि च ।
विष्णवस्तेषु तिष्ठन्ति [4]शिवध्याना निरन्तरम् ॥५७॥
मुक्तिकामाः शिवध्याननिर्धूताखिलहृन्मलाः ।
साहस्रसप्तत्युच्छ्राययोजनेषु पदच्युताः ॥५८॥

(५२) ये शृङ्ग पचास हजार योजन ऊँचे हैं, यहाँ पर अपने पद से च्युत हुए इन्द्रगण शङ्कर की आराधना करते हुए बसते हैं। (५३) इसके बाद दस लक्ष और एक इन्द्रनीलमणि के शिखरों का घेरा है। (५४) हे मुनि पुंगव ! ये शिखर साठ हजार योजन ऊँचे हैं, यहाँ चार मुखवाले ब्रह्मा लोग भक्ति से शङ्कर के ध्यान में लगे हुए (५५) उन शृङ्गों में रहते हैं, उनका हृदय और मन शिव के ज्ञान से शान्त हो गया है। उसके बाद गारुत्मत मणियों के चमकते हुए शृङ्ग हैं। (५६) ये दिव्य नीलम के शिखर गिनती में एक लाख और एक हैं। इनमें विष्णु लोग निरन्तर शिवजी का ध्यान करते हुए बसते हैं। (५७) अपना अधिकार समाप्त होने पर मुक्ति की इच्छा से, शिवजी के ध्यान द्वारा हृदय के अखिल मल को दूर करके इन सत्तर हजार योजन ऊँचे २ शिखरों में ये विष्णु लोग बसते हैं। (५८) इन सब लोगों को तारतम्य

१ ग. सहस्रै०। २. ग. पुंगवाः। ३ ग. शिवभक्ताश्चतुर्वक्त्राः। ४ ग. पुस्तकीयोयं पाठः, आ० पु०—शिवं ध्यायन्निरन्तरम्।

सामीप्यमुक्ता एते वै तारतम्येन सन्ति वै ।
ततो मुक्तामयान्यन्तः शिखराण्ययुतानि च ॥५९॥
एकाधिकानि ब्रह्मर्षे[1] ! परितो वेष्ट्य सन्ति वै ।
साहस्राशीतिसंख्येव योजनेनोच्छ्रितानि वै ॥६०॥
तेषु रुद्रा महात्मानः प्राप्तसारूप्यवैभवाः ।
पशुपाशप्रतिज्ञानाद् गुरोः[2] सेवाप्तवैभवाः ॥६१॥
नित्यमुक्ताः शिवं ध्यायन्[3] सदा हृदयपङ्कजे ।
लोकानुग्रहकर्त्तारो ह्यसंख्याताः शिवाज्ञया ॥६२॥
तिष्ठन्ति नित्यं कैलासं भाषयन्तः स्वतेजसा ।
तदन्तश्च सहस्राणि दिव्यानि स्फटिकानि च ॥६३॥
एकाधिकानि शृङ्गाणि वेष्टितान्यभितो मुने ! ।
योजनानाञ्च नवतिसहस्रेणोच्छ्रितानि च ॥६४॥
अपरा मूर्त्तयस्तेषु शिवस्य परमात्मनः ।
नन्दीभृङ्गीमहाकालवीरभद्रादयो मुने ! ॥६५॥

से सायुज्य मुक्ति प्राप्त होती है । इसके बाद हे ब्रह्मर्षि ! दश हजार और एक मुक्तामय शिखरों (५९) का घेरा भीतर है, और ये सब शिखर ८० हजार योजन ऊँचे हैं (६०) इनमें महात्मा रुद्र लोग, पशुपाश के ज्ञान तथा गुरुसेवा के महात्म्य द्वारा स्वरूप्य मुक्ति प्राप्त करके (६१) हृदय कमल में शिव का ध्यान किया करते हैं । लोकों पर अनुग्रह करनेवाले ये अगणित महात्मा नित्य मुक्त हैं । (६२) शिवजी की आज्ञा से (६२) नित्य कैलास में निवास करते हुए, अपने तेज से देदीप्यमान हैं । इसके भीतर दिव्य स्फटिक के (६३) एक हजार एक शिखरों का घेरा है और ये शिखर नब्बे हजार योजन ऊँचे हैं । (६४) हे मुनि ! इनमें नन्दी भृङ्गी, महाकाल, बीरभद्र आदिक, जो कि परमात्मा शिवजी की अपरमूर्ति हैं, (६५) सच्चिदानन्दरूप सार्ष्टि तथा सायुज्य मुक्ति को प्राप्त

१ ख. शृङ्गाणि । २ ग. ०पते: । ३ ग. गुरुसेवाप्त० । ४ ग. शिवध्याना ।

नित्यज्ञानानन्दरूपाः सार्ष्टिसायुज्यमुक्तयः ।
अकर्त्तुं कर्त्तुमपि च [1]अन्यथाकर्त्तुमीश्वराः ॥६६॥
अनेककोटिजगतामिच्छयाऽपि शिवाज्ञया ।
तिष्ठन्ति ते तु कैलासं रक्षन्तः स्वेच्छया मुने ! ॥६७॥
तदन्तर्वज्ररत्नाख्यमणिमन्त्यद्भुतानि[2] च ।
एकाधिकशतान्येव द्योतयन्ति[3] स्वधाम च ॥६८॥
एकाधिकशतैः सन्ति योजनानां समुच्छ्रयैः[4] ।
शृङ्गाणि[5] वेष्ट्य तिष्ठन्ति निजधाम शिवस्य हि ॥६९॥
शक्तयस्तेषु तिष्ठन्ति देव्याः[6] श्रीपरमेशितुः ।
कुमारविघ्नराजादिनित्यान्तःपुरवासिनः ॥७०॥
नित्यानन्दमयाः सेवां[7] कुर्वन् देव्या महेशितुः ।
ज्योतिर्मयश्च तत्स्थानं लक्षयोजनमुच्छ्रितम् ॥७१॥

हैं, जो कि शङ्कर की आज्ञा से इच्छामात्र द्वारा अनेक कोटि जगत् को करने, न करने और अन्यथा करने में समर्थ हैं। (६६) वे लोग अपनी इच्छा से कैलास की रक्षा करते हुए बसते हैं। (६७) इस घेरे के भीतर हीरे के अति अद्भुत एक सौ एक शिखर हैं, जो अपने प्रकाश से अखिल धाम को प्रकाशित किया करते हैं, (६८) ये एक सौ एक योजन ऊँचे भी हैं और ये ही शङ्कर के निज धाम को घेरे खड़े हैं। (६९) श्रीपरमेश्वर की और देवी की शक्तियाँ और स्वामी कार्तिकेय विघ्नराजादि रहते हैं। ये अन्तःपुर निवासी, (७०) नित्यानन्दमय हैं, सदा महेश्वर और जगदम्बा की सेवा करते हैं। यह स्थान ज्योतिर्मय और लाख योजन ऊँचा है। (७१) यह शङ्कर का धाम साधारण देवताओं के लिये अगम्य है। इस धाम को शिवज्ञान के जानकार अन्तःपुरी

१ ग. ह्यन्यथा। २ ग. तेषु। ३ ग. पुस्तकीयोऽयं पाठः, आ० पु०— द्योतयन् सर्वधाम च। ४ ग. समुच्छ्रितैः। ५ ग. शृङ्गाण्ययावे०। ६ ग. देव्या। ७ ग. सेवामकुर्वन् श्रीमहेशितुः।

प्राकृतानाञ्च देवानामगम्यं शिवधाम तत् ।
अन्तःपुरमिति प्राहुः शिवज्ञानैकवेदिनः ॥७२॥
ततः परं शिवपदं निजं[1] ज्योतिर्मयं विभुम् ।
तत्रैकादशश्रृङ्गाणि आत्मज्योतिर्मयानि च ॥७३॥
परितो वेष्ट्य तिष्ठन्ति साम्बं शुद्धं सदाशिवम् ।
अनुग्रहात्मकं शान्तं[2] स्वे महिम्नि सदा स्थितम् ॥७४॥
अप्राकृतमहासौधं[3]दिव्यसिंहासनस्थितम् ।
पराशक्त्या च निजया महानन्दं परात्परम् ॥७५॥
यं ध्यायन्ति सदा बाह्यं दशावरणसंस्थिताः ।
कालेन मुक्तिमिच्छन्तो भोगस्यान्ते शिवाज्ञया ॥७६॥
यमेवोपनिषत्सर्वा रूपारूपात्मनाऽवदत् ।
पञ्चविंशन्मुख इति यमाहुर्ब्रह्मवित्तमाः ॥७७॥
सोमस्कन्दादिमूर्त्तीनां पञ्चविंशात्मभेदतः ।
वेदागमपुराणेषु प्रथितं यं विदुर्बुधाः ॥७८॥

कहते हैं। (७२) इसके बाद शङ्कर का अपना धाम है, जिसके ज्योतिर्मय इग्यारह शृङ्ग हैं (७३) और ये साम्ब शुद्ध सदाशिव को घेरे खड़े हैं शिवजी अनुग्रहात्मक हैं, शान्त हैं और अपनी ही महिमा से प्रतिष्ठित हैं। (७४) अलौकिक भारी महल के दिव्य सिंहासन पर, अपनी पराशक्ति के साथ विराजमान हैं। ये परे से भी परे हैं, महानन्दरूप हैं। (७५) जिनका ध्यान सदा बाहरी दशों घेरों के निवासी किया करते हैं, और शिवजी की आज्ञा से भोग के अन्त में मुक्ति चाहते हैं। (७६) जिसे सम्पूर्ण वेदान्त रूपारूपात्मक कहते हैं, और ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ जिसे पचीस मुखवाला बतलाते हैं। (७७) वेद, आगम, और पुराणों में सोम, स्कन्द आदि मूर्तियों का पचीस भेद से वर्णन है, जिसके जानकार पंडित लोग हैं, (७८) जिसकी सृष्टि, स्थिति, संहार और तिरो-

१ ग, निज। २ ग. शान्ते। ३ ग. सौधे।

सृष्टिस्थितिमहाध्वंसतिरोधानाख्यमूर्त्तयः ।
ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्र ईश्वराख्यप्रभेदतः ॥७९॥
यस्यानुग्रहतः कार्य्यं कुर्वन्ति स्वस्वकल्पितम् ।
यदाज्ञयाऽनेककोटिब्रह्माण्डोद्भवसंक्षयः ॥८०॥
यस्यैव वशगा शक्तिरिच्छाज्ञानक्रियात्मिका ।
यस्यैवाभेदरुद्रोऽयं भूकैलासी लयङ्करः ॥८१॥
महाकैलासवत्सर्वं भूकैलासेऽप्यकल्पयत् ।
अविस्तारतया तत्र तद् योग्योऽप्यतिवैभवः ॥८२॥
भूकैलासोऽपि सगणः प्रलये तत्र गच्छति ।
उद्‌र्ध्ववृद्ध्या[1] 'सपरिवारोऽण्डमुद्भिद्य'[2] वै बहिः ॥८३॥
अप्राकृतमहाकैलासेऽन्तर्भवति शाश्वते ।
निग्रहानुग्रहव्याजमूर्त्तिभेदः सदाशिवः ॥८४॥
जम्बूद्वीपस्थकैलासमहाकैलासभूमिके ।
निग्रहानुग्रहस्थाने शाश्वते परमेशितुः ॥८५॥

धान की मूर्त्तियाँ क्रम से ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और ईश्वर भेद से हैं, (७९) जिसके अनुग्रह से ये अपने २ कल्पित काम किया करते हैं और जिसकी आज्ञा से अनेक कोटि ब्रह्माण्डों की उत्पत्ति और संहार हुआ करता है। (८०) इच्छा, ज्ञान और क्रिया शक्तियाँ जिसके वश में हैं, और भूकैलास के रुद्र, लय करनेवाले, जिसके भेद हैं। (८१) महाकैलास की भाँति उन्होंने भूकैलास में भी अपने योग्य अतिवैभववाली वैसी ही कल्पना संक्षेप में की है। (८२) भूकैलास भी गणों के सहित प्रलय काल में ऊपर बढ़कर अण्ड का भेदन करता हुआ, परिवार के सहित बाहर निकल कर वहीं चला जाता है (८३) और उस नित्य अलौकिक महाकैलास के अन्तर्भूत हो जाता है। निग्रह और अनुग्रह के व्याज से सदाशिव की मूर्तियों में भेद होता है। (८४) जम्बूद्वीप-

१ ग. वियद्‌गत्या तलमुद्भिद्य चैव हि। २ ख. भवमुद्भिद्यते वहिः।

ब्रह्मविष्ण्वादिदेवाश्च तदाज्ञावशवर्त्तिनः ।
वेदागमपुराणेषु रहस्यज्ञा हि तं विदुः ॥८६॥
सर्वान्तरात्मा सर्वज्ञः सर्वशक्तिः सदाशिवः ।
इष्टोऽसीति मया [1]प्रोक्तो महाकैलासवैभवः ॥८७॥
एवमप्राकृतः शम्भोर्महाकैलास उच्यते ।
रुद्रेण सह तौ ब्रह्मविष्णू रुद्रबलाद्गतौ ॥८८॥
महाकैलासमतुलं स्ववृत्तान्तं निवेदितुम् ।
पुरो विज्ञाप्य देवेशं शैलादिस्तान् समागतान् ॥८९॥
पश्चात्तदाज्ञयेशानं त्रिमूर्तीनामदर्शयत् ।
[2]तेऽपि तत्र विलोक्याऽऽसन् चकिता मुनिपुङ्गव ! ॥९०॥
तत्र ज्ञानक्रियेच्छाविभवविरचिते स्वात्मशक्त्या समेत-
मात्मज्योतिःप्रकाशाऽपरिमितविलसत्युच्चसिंहासनस्थम् ।

वाले कैलास और महाकैलास की भूमिकाएँ उस परमेश्वर के निग्रहानुग्रह के शाश्वत स्थान हैं । (८५) ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता लोग उसी की आज्ञा के वशवर्ती हैं । वेद, आगम और पुराणों के रहस्य जाननेवाले उसे जानते हैं । (८६) सदाशिव सबकी आत्मा हैं, सर्वज्ञ हैं और सर्वशक्तिमान हैं । आप मेरे प्रिय हैं, इसी लिये मैंने महाकैलास का वैभव आप को सुनाया । (८७) इस प्रकार से शङ्कर के महाकैलास को अलौकिक कहते हैं । ब्रह्मा और विष्णु रुद्र के बल से (८८) उस अतुल कैलास में अपना वृत्तान्त निवेदन करने के लिये गये । शैलादि ने पहिले इन लोगों के आने का समाचार देवेश को दिया । (८९) तत्पश्चात् उनकी आज्ञा से ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र को उनका दर्शन कराया । हे मुनिपुंगव ! वे भी वहाँ का हाल देखकर चकित हो गये (९०) वहाँ जो कुछ रचना है, सो सब ज्ञान, इच्छा और क्रिया के विभव से है, उसमें आत्मशक्ति के सहित अपरिमित आत्मज्योतिःप्रकाश सिंहासन

१ ग. प्रोक्ता । २ क. ख ग. 'तेऽपि तत्र०' पादद्वयं नास्ति ।

ब्रह्माण्डानेककोटिस्थितविधिहरिरुद्रादिदेवैस्तदाज्ञा-
मङ्गीकृत्य स्वयं तद्भ्रकुटिचलसमाप्त्यात्मकार्यञ्च चक्रे ॥९१॥
[1]नन्दीशेनेशविघ्नेश्वरसुखनिजसंज्ञाप्ययोग्यप्रदत्त-[2]
स्वाज्ञाब्रह्मादिदिव्याखिलभुवनगतान् ब्रह्मविष्ण्वीशसङ्घान्।
भ्रूभङ्गज्ञातदेवाशयविमलधियां यद्गणानां कराग्र-
[3]वेत्राग्रस्पन्ददृष्टीन् विधिहरिरुद्राश्चर्यचित्ताः प्रपश्यन्[4] ॥९२॥
अत्रास्माकञ्च विज्ञापनवचनमहो केन शम्भुः शृणोति[5]
त्राता कोऽस्मानिहाऽद्याऽवसरमपि न पश्यामहे [6]स्वेन वक्तुम्।
इत्यालोच्य त्रयस्ते चरणकमलयोरीशितुः सम्प्रणम्य
[7]साष्टाङ्गं तत्र तस्थुः परमशिवकटाक्षं च [8]वाञ्छन् सहर्षम् ॥९३॥

पर स्थित हैं, अनेक कोटि ब्रह्माण्ड के जो ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रादि देवता हैं, उनकी प्रार्थना जानकर हँसते हुए केवल भ्रूभङ्गमात्र से वहाँ आज्ञा चलती है। (९१) वहाँ ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र ने चकित चित्त होकर देखा कि केवल नन्दी, स्वामी कार्तिकेय, गणेशादि सम्भाषणयोग्य व्यक्तियों को ही श्रीमुख से आज्ञा होती है, और विमलबुद्धिवाले गण लोग भ्रूभङ्गमात्र से शङ्कर के आशय को समझ जाते हैं, अखिल भुवन के ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र के समूह तो उन गणों के हाथ में के बेंत के टोंके की फड़क पर अपनी दृष्टि लगाये रहते हैं। (९२) यहाँ हमारी प्रार्थना शम्भु कैसे सुनेंगे ? यहाँ हमारा रक्षक कौन है ? स्वयम् कुछ कहने का तो यहाँ अवसर ही नहीं दिखायी पड़ता, ऐसा सोच कर उन तीनों (त्रिदेव ने) शिवजी को साष्टाङ्ग प्रणाम किया और सहर्ष शङ्कर की कृपाकटाक्ष चाहते हुए खड़े रहे। (९३) महाकैलास की अनुपम महिमा मैंने तुमसे भी कही, भक्ति के सहित इसके सुननेवालों

१ ग. नन्दीशैलेश०। २ ग. योग्यैः प्रदत्तां। ३ ग. वेत्राग्रासक्त०। ४ ग. विधिहरिमुखरुद्राश्च चित्रा अपश्यन्। ५ ग. शृणोतु। ६ ग. पश्याम ईशेन। ७ ग. काङ्क्षन्तस्तत्र। ८ ग. देवाः।

[1]महाकैलासस्याऽनुपममहिमा ते[2] प्रकथित-
[3]स्सुभक्त्या श्रोतॄणां भवति च फलं मोक्षजनकम् ।
चतुर्वर्गः पुंसः करतलगतस्तस्य परितः
सुराः सर्वे सेवामहरहः[4] करिष्यन्ति हि मुने ! ॥९४॥

इति श्रीकाशीमूलरहस्ये ब्रह्मवैवर्त्ते खिले काशीकेदारमाहात्म्ये
महाकैलासवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः ।

वामदेव उवाच—

सनत्कुमार ! भगवन् ! महाकैलासवैभवम् ।
श्रुतं मया ततस्ते वै किमकुर्वन् वदस्व मे ॥ १ ॥

को मोक्षजनक फल होता है और चारों फल चारों ओर से हस्तगत होता है, हे मुनि ! उसकी सब देवता लोग प्रतिदिन सेवा करते हैं । (९४)

यह श्रीब्रह्मवैवर्त के खिलग्रन्थ काशीमूलरहस्य के अन्तर्गत काशी-
केदार-माहात्म्य का चौथा अध्याय समाप्त हुआ ।

विनय सहित शिवते कियो अरज गरज निज जाय ।
जाइ करौ निज काज तुम ऐसी भई रजाय ॥१॥
सेवा साँची भगत की किये रहे पद पाय ।
नियमित काल बिताई पुनि रहौ निकट मम आय ॥२॥

---

१ क, "महाकैलासस्यानुपममहिमा वेदितुं केन वक्तुं
क्षमस्तत्सम्बन्धामतुलितकथां यः शृणोतीशभक्त्या !* ।
चतुर्वर्गः पुंसः करतलगतस्तस्य परितः
सुराः सर्वे सेवां प्रतिदिनमकुर्वन् खलु । मुने ! ॥"

२ ख. '०केन वदितुम् । क्षमस्तत्सम्बन्धामतुलितकथां यो हि शृणुते ॥ ग. को हि वक्तुं क्षमस्तत् । ३ ग. स्वस्वश्रद्धामतुलितकथां यः शृणोतीशभक्त्या ४ ग. प्रतिदिनमकुर्वन खलु मुने !

* अत्रान्तिमं पादद्वयं शिखरिणीमनुसरति, आद्यं पादद्वयं तु तत्र नान्तर्भवति ।

सनत्कुमार उवाच—

शृणु ब्रह्मन् वामदेव! ब्रह्मविष्णुहरास्ततः।
सदा शिवस्यावसरमाकाङ्क्षन्तश्चिरं[1] स्थिताः ॥ २ ॥
सेवनायागताः सर्वे गतास्तदनु ते पुनः।
विविक्ते परमेशानं वक्तुं समुपचक्रमुः ॥ ३ ॥
ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा तेन सर्वे व्यजिज्ञपन्।

ब्रह्मोवाच—

भगवन् सर्वलोकेश! वयं सृष्टिस्थितिक्षये ॥ ४ ॥
निर्वेदं परमं प्राप्ता अन्यान् प्रेषय तत्कृते।
वयमत्रैव तिष्ठामो भवत्सेवापरायणाः ॥ ५ ॥
एते विष्णुविधीशास्ते पदे [2]स्वस्थावसन् यथा।
तथा वयमपीहैव वसाम विगताधयः ॥ ६ ॥

कह्यौ कृपानिधि विधि हरिहिं पूरवजन्म-प्रसंग।
शिवयोगी-वाष्कल-मिलन सुनत होय मन दंग ॥३॥

वामदेव ने कहा कि हे भगवन् सनत्कुमार! महाकैलास का वैभव तो मैने सुना, परन्तु इसके बाद उन लोगों ने क्या किया? सो सब मुझसे कहिये। (१) सनत्कुमार बोले—'हे ब्राह्मण वामदेवजी! इसके बाद ब्रह्मा, विष्णु और शिव वहाँ पर बहुत समय तक खड़े २ सदाशिव का अवसर देखते रहे। (२) जो लोग सेवा के लिये आये थे, वे सब लोग जब चले गये और निराला हुआ, तब शिवजी से प्रार्थना करने की इच्छा की। (३) ब्रह्माजी को आगे करके, उन्हीं से सब कुछ कहलवाया। ब्रह्माजी बोले—हे भगवन्! हे सब लोकों के ईश! हम लोग सृष्टि, स्थिति और लय करते २ (४) हैरान हो गये, अब हम लोगों के स्थान पर किसी दूसरे को भेज दीजिये, हम लोग यहीं रहकर आपकी सेवा करेंगे। (५) ये विष्णु, ब्रह्मा और रुद्र लोग जिस भाँति आपके चरणों में स्वच्छन्द रहते हैं, उसी भाँति हम लोग भी

१ ग. काङ्क्षन्तस्तत्र संस्थिताः। २ ग. स्वस्था यथा वसन्।

इत्युक्तवन्तं ब्रह्माणमविलोक्य[1] सदाशिवः।
तदा रुद्रं समालोक्य हसन् भ्रूसंज्ञयाऽवदत् ॥ ७ ॥
किमेताभ्यां व्यवसितं न श्रुतं किं भवद्वचः।
मायया मोहितौ जाने ब्रह्मविष्णू विशेषतः ॥ ८ ॥
इत्युक्तं वाक्यमाकर्ण्य रुद्रमूर्त्तिर्महेशितुः।
भ्रूसंज्ञया तथैवेति समन्दहसितोऽवदत् ॥ ९ ॥
[2]एतावतावनिर्वेशं[3] प्राप्तौ स्वस्वकृतौ विभो!।
यथा[4] चिकित्सया यातां सृष्टिपालनकर्म्मणि ॥१०॥
तथा त्वयाधुना कार्य्यं सर्वज्ञेन दयालुना।
एवं रुद्रवचः श्रुत्वा सर्वकर्त्ता सदाशिवः ॥११॥
ब्रह्मविष्णू समालोक्य प्राह युक्तं दयानिधिः।
भवद्भ्यां यत्कृतं पुण्यं मामुद्दिश्यातिकृच्छ्रतः ॥१२॥

यहीं सब जञ्जाल छोड़कर बसेंगे। (६) इस प्रकार कहते हुए ब्रह्मा की ओर न देखकर रुद्र की ओर हँसते हुए देखा, और आँख के ईशारे से कहा (७) कि इन लोगों ने क्या किया? क्या आपकी बातों को इन लोगों ने नहीं सुना? ये ब्रह्मा और विष्णु विशेष करके माया से मोहित जान पड़ते हैं। (८) भगवान् सदाशिव की बात सुनकर रुद्र मूर्ति ने मुसकुराते हुए* आँख के ही इसारे से कहा कि 'बात ऐसी ही है' (९) ये लोग अपना अपना काम करते करते बहुत तंग आ गये हैं; अब इनकी ऐसी चिकित्सा होनी चाहिये कि अपने काम पर आ जायँ। (१०) आप सर्वज्ञ हैं, दयालु हैं, सो आप ऐसा ही कीजिये। रुद्र की ऐसी बात सुनकर सब कुछ करने वाले, दया के सिन्धु सदाशिवजी, ब्रह्मा और विष्णु की ओर देखकर उचित बात बोले। (११) आप लोगों नें जो अति कष्ट सहन करके मेरे उद्देश्य से जो पुण्य किया

* महाकैलास में वाणी की पश्यन्ती अवस्था ही प्रचलित मालूम होती है, वैखरी से यहाँ बहुत कम काम लिया जाता है।

१ ग. ०मवलोक्य। २ ख. एतावतीव। ३ ख. ०निर्देशं। ४ ख. यथा।

प्राप्तं तदनुरूपं तद्[1] युवयोः फलमुत्तमम् ।
ब्रह्मविष्णुपदं[2] श्रेष्ठं प्राकृतैर्दुर्लभं भुवि ॥१३॥
तादृक्पदोपभोगान्ते युवयोर्मत्पदागमः ।
भविष्यति न मध्ये वां मद्भक्त्या तिष्ठथो यदि ॥१४॥
मद्भक्तिहीनौ यदि वां पुनर्जन्म भवेद्भुवि ।
इति ज्ञात्वा गच्छतां वै अप्रमत्तौ स्वकर्म्मणि ॥१५॥
पूर्वस्मिन् जन्मनि युवां ब्राह्मणक्षत्रियौ भुवि ।
शिवविज्ञानवान्नाम मद्भक्तस्तपसान्निधिः ॥१६॥
वेदागमपुराणज्ञो मद्रहस्याखिलाङ्गवित् ।
तपः कुर्वंश्च केदारे हिमवच्छिखरे [3]वसत् ॥१७॥
पार्वतीयो[4] नृपस्त्वासीद् नरनरायणाह्वयः ।
तन्मन्त्री ज्ञानसिद्धाख्यः शिवभक्तो द्विजाग्रणीः ॥१८॥

है (१२) उसके अनुरूप ही आप लोगों ने उत्तम फल भी पाया है। यह ब्रह्मपद और विष्णुपद प्राप्त करना पृथ्वी मे साधारण लोगों के लिये दुलभ है। (१३) इस पद के भोग के बाद आप लोगों में यदि मेरी भक्ति वनी रही तो आप लोग मेरे पद को प्राप्त होंगे। बीच में ऐसा नहीं हो सकता (१४) और यदि आप लोगों में भक्ति नहीं रही, तो आप लोगों को पृथ्वी में फिर जन्म ग्रहण करना पड़ेगा ऐसा जानकर, प्रमाद छोड़, वहाँ जाकर अपना अपना काम कीजिये। (१५)

पहिले जन्म में आप लोग भूलोक में ब्राह्मण और क्षत्रिय थे। और शिवविज्ञानवान् नाम का एक मेरा भक्त, वड़ा तपस्वी, (१६) वेद, आगम और पुराणों को जाननेवाला, मेरे रहस्य और खिल अङ्ग का जानकार, तपश्चर्य्या करता हुआ हिमालय के शिखर में केदारनाथ पर बसता था। (१७) नरनारायण नाम का एक पहाड़ी राजा और उसका

१ ग. युवाभ्यां। २ ग. पदे श्रेष्ठे प्राकृते दुर्लभे। ३ ग. वसन्। ४ ग. पार्वतीयनृप०।

१३

ताभ्याञ्च शिवविज्ञानवतः सेवा चिरात् कृता ।
तयोः प्रसन्नो मद्भक्तः सेवयानुग्रहं ददौ ॥१६॥
शिवविज्ञानवान् योगी मत्स्वरूपो न संशयः ।
तस्य सेवा च ताभ्यां वै घटिता पूर्वपुण्यतः ॥२०॥
शिवविज्ञानवान् योगी केदारेशं प्रणम्य च ।
भगवँस्तव लिङ्गस्य दर्शनं मेऽस्तु साम्प्रतम्[1] ॥२१॥
मायामाहिषरूपस्य पृष्ठं दर्शितवानसि ।
सर्वेषां दर्शनं मास्तु लिङ्गं दर्शय मे[2] तव ॥२२॥
एवं चिरात् प्रार्थयतः शिवज्ञानवतो हरः ।
व्योमवाण्यावदत् काले शिवज्ञानिनमादरात् ॥२३॥
शृणु मद्भक्त ! मल्लिङ्गदर्शनं नात्र देहिनाम् ।
मल्लिङ्गदर्शनं काश्यां केदारे हि भवेत् तव ॥२४॥

मन्त्री ज्ञानसिद्ध नामक ब्राह्मणों में श्रेष्ठ और मेरा भक्त था। (१८) उन दोनों ने बहुत दिनों तक शिवविज्ञानवान् की सेवा की । सेवा से उन दोनों पर प्रसन्न होकर मेरे भक्त ने उनपर अनुग्रह किया। (१९) शिवविज्ञानवान् योगी मेरा स्वरूप था । इसमें संशय नहीं है, पूर्वपुण्य के प्रभाव से उसकी सेवा उन दोनों से बन पड़ी । (२०) शिवविज्ञानवान् योगी ने केदारेश्वर से प्रणाम करके प्रार्थना की कि 'हे भगवन् ! अब मुझे आपके लिङ्ग* का दर्शन हो । (२१) माया से जो आपने भैंस का रूप धारण किया था, उसके पीठ का दर्शन तो मैंने पाया, सबको दर्शन न हो, परन्तु मुझे आपके लिङ्ग का दर्शन हो । (२२) इस भाँति जब उस शिवज्ञानी ने बहुत दिनों तक प्रार्थना की, तब शिवजी ने आकाशवाणी द्वारा उस शिवज्ञानी से आदरपूर्वक कहा—(२३) तू मेराभक्त है, सुन; यहाँ पर देहवालों को मेरे लिङ्ग का दर्शन नहीं होता । काशी के केदार

* उस समय ब्रह्मदेव के अपराध से केदार लिङ्ग अन्तर्धान हो चुका था ।
१ ख. साङ्गतः, ग. सङ्गतः । २ ग. चैतयोः ।

तत्रैव मे पूर्णकलायुक्तं लिङ्गं विराजते ।
हरम्पापाख्यरेतोदं तीर्थं गौर्य्यभिधायकम् ।
लिङ्गमूर्तेः पूर्वभागे प्राचीनं सर्वतारकम् ।
तत्र स्नात्वा भवान् सम्यक् मल्लिङ्गं दृक्पथं[1] कुरु ॥२६॥
इति श्रुत्वा व्योमवचः शिवविज्ञानवान् द्विजः ।
शिवाज्ञां शिरसा धृत्वा काशीं यातुं त्वरां व्यधात् ॥२७॥
श्रुत्वा तज्ज्ञानसिद्धाख्यनरनारायणौ तदा ।
शिवविज्ञानवानस्मत्पूज्यो गच्छति काशिकाम् ॥२८॥
आवामपि च सेवायै गच्छावस्तस्य सादरात् ।
आवयोरपि काशिस्थकेदारेशस्य दर्शनम् ॥२९॥
गौरीतीर्थाख्यरेतोदस्नानाद्यौ[2] लभतेऽञ्जसा ।
कृतार्थौ स्याव नितरां सेवया शिवयोगिनः ॥३०॥

पीठ में ही मेरे लिङ्ग का दर्शन तुझे होगा । (२४) वहीं मेरी पूर्णकला से युक्त लिङ्ग विराजमान है, उसी का नाम हरम्पाप, रेतोद और गौरीतीर्थ है । (२५) यह प्राचीन तीर्थ सबको तारनेवाला लिङ्गमूर्ति के पूर्वभाग में है । पहिले वहाँ नहाकर तब तुम मेरे लिङ्ग का दर्शन करो । (२६) ऐसी आकाशवाणी सुनकर शिवविज्ञानवान् ब्राह्मण ने शिव की आज्ञा शिरोधार्य्य करके काशी-यात्रा के लिये जल्दी की । (२७) जब ज्ञानसिद्ध और नरनारायण ने सुना कि हम लोगों के पूज्य काशी जा रहे हैं । तब उन लोगों ने विचार किया कि (२८) हम लोग भी उनकी आदर के साथ सेवा करने के लिये साथ ही चलेंगे, हम लोगों को भी काशीस्थकेदार का दर्शन हो जायगा (२९) और रेतोद, गौरीतीर्थ का भी स्नान सुलभ होगा, शिवयोगी की सेवा से हम लोग भली भाँति कृतार्थ होंगे । (३०) ऐसी सम्मति करके वे दोनों भी उन्हीं के साथ निकल पड़े ।

१ ग. ०पथीकुरु । २ ख. ग. स्नानञ्चा० ।

इति कृत्वा मतिं तौ च तेन साकं विनिर्गतौ ।
समित्कुशफलाहारपत्रपुष्पादिभिः पथि ॥३१॥
पादसंवाहनजलाहरणोद्धृष्टचन्दनैः ।
वस्त्रप्रक्षालनशिवाराधनानीतवस्तुभि[1]ः ॥३२॥
सेवाभिरनुरूपाभिस्तोषयामासतुश्च तम्[2] ।
स्वयं पादचरौ भूत्वा हित्वायानमिव[3] द्विजौ ॥३३॥
स्वहस्तेन [3]कृतवन्तौ भक्त्या सेवां महात्मनः ।
शिवयोगी पादचारी नौ [4]यानन्तु न चोचितम् ॥३४॥
इति तावपि तद्भक्त्या [5]गच्छतां पादचारिणौ ।
चतुरङ्गबलं सर्वं राज्ञो दूरादगात् पृथक् ॥३५॥
यानारोहाय तौ[6] विप्रं प्रार्थयेतां[7] दिने दिने ।
नारोहेऽहं यानमिति यात्रायां सोऽवदद् द्विजः ॥३६॥

रास्ते में वे लोग समिधा, कुशा, फलाहार, पत्रपुष्प से (३१) उनकी सेवा करते थे, पैर दबाते थे, जल लाते थे, चन्दन घिसते थे, धोती कचारते थे और शङ्कर के पूजन की सामग्री एकत्रित करते थे। (३२)

सेवानुसार वे ब्राह्मण सन्तुष्ट हुए। उन दोनों ने सवारी छोड़कर उनके साथ पैदल चलना आरम्भ किया। (३३) अपने हाथों से उन महात्मा की सेवा करने लगे। जब शिवयोगीजी पैदल चलते हैं तो हम लोगों का सवारी पर चलना उचित नहीं है। (३४) यह सोचकर वे दोनों भी उनकी भक्ति से पैदल चले और राजा की चतुरंगिणी सेना दूर २ अलग अलग चली। (३५) सवारी पर चलने के लिये वे दोनों ब्राह्मण से नित्य प्रार्थना करते थे, परन्तु उस ब्राह्मण ने तीर्थयात्रा में सवारी पर चढने से सदा इनकार किया। (३६) मन्त्री और राजा भी शिवविज्ञान योगी को भक्ति से पैदल चले और उनकी सेवा में बड़ा

१ ग. ०नार्थकवस्तुभिः। २ ग. मथो। ३ ग. पुस्तकीयोयं पाठः, आ० पु०—कृतावेतौ। ४ ख. यानस्तु न चोचितः। ५ ग. गच्छतः। ६ ख. तं। ७ ग. प्रार्थयेते।

तद्भक्त्या तौ पादचरौ सेवायै च कृतश्रमौ ।
असेवतां मन्त्रिनृपौ शिवविज्ञानयोगिनम् ॥३७॥
मध्येमार्गमरण्येऽस्ति तटाकापूर्णमानसम् ।
तत्रैको वटवृक्षोऽभूदाकाशं शिरसा लिहन् ॥३८॥
[1]ततो दूरे नृपस्सेनानिवेशं कारयत्तदा ।
रात्रौ तत्र स्थिताः सर्वे शिवज्ञानवता सह ॥३९॥
तस्मिन् [2]वटे महावृक्षे न्यवसद् ब्रह्मराक्षसः ।
अनेककालात् पापेन शिवनिन्दाकृतेन च ॥४०॥
अर्धरात्र वटतरोरवतीर्य्य स राक्षसः ।
सुषुप्तं शिवविज्ञानयोगिनं हन्तुमाययौ ॥४१॥
नरनारायणो राजा मन्त्री च ज्ञानसिद्धकः ।
शिवयोगीरक्षणार्थं सायुधौ जाग्रतौ निशि ॥४२॥
अञ्जनाचलसङ्काशं राक्षसं तं ददर्शतुः ।
कस्त्वं दुरात्मन्निति तौ भर्त्सयन्तौ समागतौ ॥४३॥

परिश्रम किया। (३७) रास्ते में एक जङ्गल पड़ा, जिसमें जल से भरा हुआ एक तालाब था, वहीं एक वट का वृक्ष था, जिसकी चोटी आकाश तक पहुँची थी। (३८) राजा ने अपनी सेना को वहाँ से दूर टिकाया और स्वयम् शिवविज्ञानवान् के साथ वहीं ठहरे। (३९) उस बड़े भारी वटवृक्ष में एक ब्रह्म राक्षस रहता था, जो कि बहुत दिनों तक शिवनिन्दा करने के पाप से इस गति को प्राप्त हुआ था। (४०) आधी-रात को वह राक्षस वट के ऊपर से उतर कर सोते हुए शिवविज्ञानवान् योगी को मारने के लिये आया। (४१) नरनारायण राजा और ज्ञान-सिद्ध मन्त्री दोनों हथियार बन्द होकर शिवयोगी का पहरा देते थे। (४२) उन दोनों ने काजल के पहाड़ के समान उस राक्षस को देखा और 'हे दुष्ट तू कौन है' ? ऐसा कह कर झिड़की देते हुए वहाँ पहुँच गये।

१ ग. अकारयत्ततो दूरे नृपस्सेनानिवेशनम्। २ ग. तटे।

तौ दृष्ट्वा राक्षसोवाच[1] युवां कौ गतजीवितौ ।
यः कश्चिद् वृक्षमूलेऽत्र[2] रात्रौ तिष्ठति मूढधीः ॥४४॥
स ममाहारतां याति तस्मात् कोऽप्यत्र नो वसेत् ।
वृक्षच्छायां परित्यज्य दूरतो यो वसेदिह ॥४५॥
तन्न हन्मि प्रतिज्ञा मे पुरा वै कारणान्तरात् ।
युवान्तु वृक्षच्छायाया दैवाद्वै दूरतः स्थितौ ॥४६॥
ततोऽपि सेना दूरे च स्थिता चैकोऽत्र वै स्वपत्[3] ।
मदाहारस्त्वेक एव दैवेन विहितोस्त्विति ॥४७॥
एनं भक्षितुमायातश्चिरकालाद् बुभुक्षितः ।
युवां यद्यत्र मे विघ्नमाचरेतान्तु भक्षणे ॥४८॥
युवामपि च[4] सेनाश्च नाशयामि क्षणेन हि ।
तूष्णीं[5] वा गच्छतां दूरे यद्यायुःशेषिणौ ध्रुवम् ॥४९॥

(४३) उन दोनों को देखकर राक्षस बोला—तुम दोनों कौन हो, जो प्राण देने के लिये यहाँ आ गये ? जो मूढ इस वृक्ष के नीचे रात में बसता है, (४४) उसे मैं खा जाता हूँ, इसलिये रात में कोई यहाँ नहीं बसता । पेड़ की छाया बचा कर जो दूर बसता है, (४५) उसको मैं नहीं मारता, यह प्रतिज्ञा मैंने किसी कारण से करली है । तुम दोनों भाग्य से वृक्षछाया के बाहर खड़े हो (४६) और सेना तो उससे भी दूर पड़ी हुई है, केवल यही एक सो रहा है, अतएव मेरे भाग्य में यही एक मेरा आहार है । (४७) मैं बहुत दिनों का भूखा हूँ और अकेला यही मुझे खाने को मिला है, यदि तुम लोगों ने मेरे भोजन में बाधा डाली, (४८) तो मैं सेना के साथ तुम दोनों का एक क्षण में नाश कर डालूँगा । यदि तुम्हारी आयु पूरी नहीं हुई, तो चुप होकर दूर बैठो (४९) और तुम्हारी सेना की भी सुख से जीने

१ ग. राक्षसः प्राह । २ ग. मूले तु । ३ ग. चास्वपत् । ४ ख. मपीह । ५ ग. तुष्टौ हि वा गच्छतं दूरे ।

सेनापि वाञ्च शिष्टायुर्यदि जीवति वै सुखम् ।
स्वरूपं पश्यथ (?) युवां प्रलयाग्निसमं मम ॥५०॥
इत्युक्त्वा प्रलयाकारवह्निज्वालाचलोऽभवत् ।
तं दृष्ट्वा राजमन्त्री (?) तौ भयकम्पितचेतसौ ॥५१॥
अयं क्रुद्धो यदितरां सर्वान् संहरते ध्रुवम् ।
शिवविज्ञानयोगीन्द्रं भक्षत्येष न संशयः ॥५२॥
किं कर्त्तव्यमहो कष्टमावयोः प्राप्तमीदृशम्[1] ।
नायं युद्धेन वै शक्य आवाभ्यां सेनयापि च ॥५३॥
साम्ना तरां प्रार्थनया द्विजमोक्षे यतावहे ।
इति कृत्वा मतिं[2] तौ वै साष्टाङ्गं प्रणिपेततुः ॥५४॥
त्वं महानसि भो रक्षो विप्रवर्य्यं त्यजाधुना ।
एनं विना यद्द् वदसि तत् करिष्यावहे ऋतम्[3] ॥५५॥

की अवधि अभी शेष नहीं हुई है। अच्छा मेरा प्रलयाग्नि के समान रूप तुम लोग देख लो। (५०) ऐसा कह कर वह प्रलयाकार अग्निज्वाला का पर्वत-सा हो गया। उसे देख कर राजा और मन्त्री दोनों भय से अचेत-से हो गये। (५१) यह यदि क्रुद्ध होगा तो हम लोगों का अवश्य संहार कर डालेगा और शिव-विज्ञान योगीन्द्र को भी निःसन्देह खा जायगा। (५२) हम लोगों के लिए यह बड़ा विकट कष्ट आपड़ा, अब हम लोग क्या करें? हम लोग सेनासहित भी इसका युद्ध में कुछ नहीं कर सकते। (५३) सामनीति का आश्रयण करके प्रार्थना से हम लोग ब्राह्मण को बचावेंगे। ऐसी राय करके उन दोनों ने राक्षस को साष्टाङ्ग प्रणाम किया और बोले—(५४) हे राक्षस! तुम महान् हो, अब इस ब्राह्मण को छोड़ दो। इन्हें छोड़कर जो कुछ तुम कहोगे, सो हम करेंगे, यह हम सत्य कहते हैं। (५५) तुम ब्राह्मण पर

१ ख. मैश्वरम्। २ ख. मती ते। ३ ग. ध्रुवम्।

दयां कुरु ब्राह्मणे त्वं जात्या त्वं ब्रह्मराक्षसः ।
पुरा ब्राह्मण एव त्वं पापाद्राक्षसतां गतः ॥५६॥
तस्मात्त्वं जातिबान्धव्यं दृष्ट्वा विप्रे दयां कुरु ।
इत्येवं प्रार्थयन्तौ तौ प्राह रक्षो हसन्निव ॥५७॥
भवन्तौ [1]नाकरिष्येतां मम प्रीतिं कथञ्चन ।
तथापि वक्ष्ये शृणुतं युवां मद्भक्षणौ यदि ॥५८॥
स्यातामेनं विमोक्ष्यामि नान्योपायैश्च कोटिशः ।
इति ब्रुवन्तं निःशङ्कं राक्षसं तौ विचार्य्य च ॥५९॥
परस्परं द्विजेंद्रस्य रक्षायै सेवया खलु ।
आवां समागतौ सत्यं देहस्तु क्षणभङ्गुरः ॥६०॥
गतश्चेत् सम्यगेवात्र विप्रार्थं किं ततोऽधिकम् ।
इति कृत्वा मतिं तौ तु राजमन्त्री तमूचतुः ॥६१॥

दया करो, तुम भी जाति के ब्रह्मराक्षस हो; पहिले तुम ब्राह्मण ही थे, पाप से राक्षस हो गये हो । (५६) इसलिये तुम जातिभाइ के ख्याल से ब्राह्मण पर दया करो । इस प्रकार उन दोनों प्रार्थना करनेवालों से वह राक्षस हँसता हुआ-सा बोला—(५७) तुम लोग मेरी मनभाई कभी भी न करोगे, फिर भी कहता हूँ कि तुम दोनों यदि मेरे भक्ष्य बनो, (५८) तो मैं इसे छोड़ सकता हूँ, नहीं तो दूसरे करोड़ उपायों से भी मैं इसे नहीं छोड़ सकता । राक्षस को इस प्रकार निःशङ्क बोलते देखकर, उन दोनों ने विचार किया (५९) कि हम लोग तो मिलकर इस श्रेष्ठ ब्राह्मण की सेवा और रक्षा के लिये आये हैं और यह सेवा सच्ची है, देह तो क्षणभंगुर है, मिथ्या है, (६०) एक न एक दिन जायगा ही । यदि यह ब्राह्मण के लिये जाय, तो इससे बढ़कर क्या है । ऐसा आपस में विचार करके राजा और मन्त्री दोनों राक्षस से बोले—(६१) हे राक्षस ! सुनो, यदि हम दोनों के भक्षण से तुम्हारी

[1] ग. करिष्येते ।

शृणु राक्षस! तुष्टिश्चेदस्मद्भक्षणतस्तव।
निःशङ्कमावां त्वं भक्ष[1] मुञ्चैनं शिवयोगिनम् ॥६२॥
[2]अव्यवस्थो राक्षसस्त्वमावयोर्भक्षणात् परम्।
प्रसुप्तं ब्राह्मणमपि पुनर्भक्ष्यसि चेत्कथम् ॥६३॥
इत्युक्तवन्तौ तौ रक्षः प्राह तौ बुद्धिमत्तरौ।
सत्यमुक्तं युवाभ्यां वै चला वै रक्षसां मतिः ॥६४॥
वृक्षमूले प्रसुप्तं मे प्रदिष्टं भक्षणं पुरा।
[3]परे स्थितं वृक्षतलाद्रात्रौ नैव स्पृशाम्यहम् ॥६५॥
दिवा सुखेन तिष्ठन्तु [4]जनानां निर्भयं मम।
शपथं [5]दद्तम् मह्यं युवां भक्ष्यौ मया यदि ॥६६॥
तदा वक्ष्याम्युपायं वा विप्रस्य च विसर्जने।
इत्युक्तवन्तं तौ शीघ्रं वदतां ब्रह्मराक्षसम् ॥६७॥

तुष्टि हो, तो निःशङ्क होकर हम लोगों को खा जाओ और शिवयोगी को छोड़ दो। (६२) तुम राक्षस हो, अव्यवस्थित हो, हम लोगों के खाने के बाद फिर यदि सोये हुए ब्राह्मण को भी खाजाओ तो क्या होगा? ऐसा कहने पर उन दोनों बड़े बुद्धिमानों से राक्षस ने कहा कि तुम लोग सच कहते हो, राक्षसों की बुद्धि चञ्चल होती है। (६४) परन्तु वृक्ष के नीचे सोया हुआ ही मेरा पहिले से कल्पित भक्ष्य है और जो वृक्ष के नीचे से अलग है, उसे मैं रात को छूता तक नहीं। (६५) दिन को तो मुझसे निर्भय होकर लोग जहाँ चाहें ठहरें। तुम लोग अपने भक्ष्य होने का मुझसे शपथ करो। (६६) तब मैं तुम लोगों को ब्राह्मण के छूटने का उपाय बतला दूँगा। ऐसा कहते हुए उस राक्षस से वे दोनों तुरन्त बोले कि (६७) शपथ खाने पर भी हम लोगों के

---

१ ग. मुङ्क्ष्व। २ ग. 'तथापि नात्यजद्रक्षो ब्रह्माणं शिवयोगिनम्, राजमान्त्रिणावूचतुः—, अधिकमस्ति। ३ ग. पार०। ४ ग. जना मत्तास्तु निर्भयाः। ५ ख. वदतम्।

केन प्रतीयसे रक्षः शपथेनावयोर्वचः ।
इति ब्रुवन्तौ रक्षस्तु स्पृशतां[1] विप्रपादयोः ॥६८॥
भवन्तौ सत्यवचनौ विप्रार्थमसुसन्त्यजौ ।
तदा तौ विप्रपादं द्राक् स्पृशेतां राजमन्त्रिणौ ॥६९॥
नान्यथा प्रकरिष्याव उपायं वद निर्भयः ।
द्विजमुक्तौ सत्यवचा[2] भव पुण्यमवाप्स्यसि ॥७०॥
तदाऽवदद्राक्षसस्तौ विप्रमुत्थाप्य दूरतः ।
प्रेरयेतां युवामास्ये मे तिष्ठेतां[3] विशङ्कितौ ॥७१॥
विप्रस्य दूरगमनाद् निगिलामि युवाम् ऋतम् ।
इत्युक्ते रक्षसि च तौ तदास्यं निरयोपमम् ॥७२॥
उत्प्लुत्य पातालसमं विशतस्तत्र[4] संस्थितौ ।
विप्रमुच्चैः स्वरैर्भक्त्या क्रोशन्तौ राजमन्त्रिणौ ॥७३॥

वचन का कौन विश्वास करेगा ? राक्षस ने कहा ब्राह्मण का चरण छूकर तुम लोग जो कहोगे, (६८) उसे सत्य करोगे, क्योंकि तुम इस ब्राह्मण के लिये ही प्राण दे रहे हो । तब उन दोनों राजा और मन्त्री ने तुरन्त ब्राह्मण का चरण ग्रहण कर लिया, (६९) और कहा कि हम लोग अन्यथा नहीं करेंगे । तुम निर्भय होकर उपाय बतलाओ । ब्राह्मण के छूटने की सच्ची बात बतला कर तुम पुण्य के भागी बनो । (७०) तब उस राक्षस ने कहा कि तुम दोनों मेरे मुख में बेडर आजावो, और ब्राह्मण को पुकार कर जगावो और वृक्ष के तले से दूर भेज दो । (७१) ब्राह्मण के दूर जाते ही मैं तुम दोनों को सचमुच निगल जाऊँगा । राक्षस के ऐसा कहने पर वे दोनों उसके नरक के समान भयानक और पाताल के समान गहिरे मुख में (७२) कूद कर घुस गये, और वहीं खड़े होकर राजा और मन्त्री उस ब्राह्मण को भक्ति के साथ ऊँचे स्वर से

१ ग. पस्पृशतुः । २ ग. द्विजं मुक्त्वा सत्यवाक्त्वमेवं । ३ ख. तिष्ठन्, ग, तिष्ठन्तौ मे विशङ्कितौ । ४ ग. विशतुस्तौ ।

उत्थापयामासतुश्च बुद्धो विप्रः समुत्थितः ।
राक्षसास्यगतौ दृष्ट्वा गह्वराग्रे[1] गिरेरिव ॥७४॥
[2]कोऽयमञ्जनसङ्काशः पर्वताकारदेहवान् ।
तदास्यगौ राजमन्त्री (?) चित्रं किं कारणं त्विति ॥७५॥
प्रोच्चस्वरैः[3] शिवज्ञानी राजमन्त्री (?) प्रक्रुश्य च ।
कोऽयं पर्वतसङ्काशो अस्यास्ये किं युवां गतौ ॥७६॥
वदताञ्च युवां शीघ्रं कालो हि दुरतिक्रमः ।
इति सङ्क्रुश्य तौ विप्रः शुचा चित्ते शिवं स्मरन् ॥७७॥
स्थितं [4]तं राजमन्त्री (?) तौ [5]गदतुः शिवयोगिनम् ।
दूरं गच्छ ततो[6] ब्रह्मन् छायामुत्सृज्य शीघ्रतः ॥७८॥
राक्षसोऽयं भवद्भक्षी आवयोः परिवर्तनात् ।
त्वां मुक्तवान् [7]कृतार्थौ च जातावावां त्वदाश्रयात् ॥७९॥

पुकार कर जगाने लगे । (७३) ब्राह्मण जागकर उठ बैठा, देखता क्या है राजा और मन्त्री पहाड़ की कन्दरा के अग्र के समान राक्षस के मुख में हैं । (७४) अरे ! यह काजल के पहाड़-सा देहवाला कौन है ? और ये राजा और मन्त्री इसके मुँह में क्यों चले गये ? (७५) तब शिवज्ञानी ने राजा और मन्त्री से चिल्लाकर पूछा कि यह पहाड़-सा कौन है ? तुम दोनों इसके मुंह में कैसे गये ? (७६) तुम लोग जल्दी बोलो । काल का कोई उल्लंघन नहीं कर सकता । इस प्रकार उन लोगों को पुकार कर ब्राह्मण ने शोक के साथ शङ्कर का स्मरण किया । (७७) बैठे हुए शिवयोगी से राजा और मन्त्री ने कहा कि जल्दी से हे ब्राह्मण देवता ! पेड़ की छाया छोड़कर दूर भागो । (७८) यह राक्षस है, आपको खाना चाहता था, हम दोनों के बदले में इसने आपको छोड़ दिया ।

---

१ ख. गह्वरे च गिरेरिव । ग. गह्वरेऽग्रे गिरेरिव । २ ग. 'कोऽयमञ्जन०, इत्यादिसार्द्धश्लोको नास्ति । ३ क. ख. प्रोच्य स्वरः । ४ ख. तु । ५ ग. च जगदे । ६ ग. च हं । ७ ग. कृतार्थत्वञ्च गता० ।

सुखेन काशीं गच्छ त्वं सेनां देशाय चोदय।
आवां कृतार्थौ त्वत्पादसेवया जन्ममृत्युतः[1] ॥८०॥
इति ब्रुवन्तौ तौ विप्रो दृष्ट्वा [2]तस्यास्यगह्वरे।
वृक्षच्छायाबहिर्गत्वा[3] दृष्ट्वा तौ रक्षसो मुखे ॥८१॥
मीमांसमाने विप्रेन्द्रे किमिति द्राक् तदन्तरे।
गिलितौ रक्षसा राजा मन्त्री चाशु[4] क्षणेन हि ॥८२॥
रक्षसा गिलितौ दृष्ट्वा भस्मना शिववल्लभः।
मृतसञ्जीवनीयुक्तपञ्चाक्षरमहामनुम् ॥८३॥
भस्मन्यावर्त्तयामास तत्क्षणं राजमन्त्रिणौ।
गले तस्थतुरस्यैव[5] रक्षसो न गतौ अधः ॥८४॥
रक्षस्तदा गलगतावङ्गारसदृशौ त्वरत्।
भूमौ [6]उद्गारयामास मूर्च्छितो निपपात च ॥८५॥

हम लोग आप के आश्रयण से कृतार्थ हो गये। (७९) आप आनन्द से काशी जाइये, फौज को देश भेज दीजिये। हम लोग आपकी चरण की सेवा से कृतार्थ होकर जन्म मृत्यु से निर्भय हो गये। (८०) ब्राह्मण ने उन दोनों को राक्षस के मुखरूपी गड़हे में से इस प्रकार बोलते हुए देखा, तब वृक्षछाया से दूर चले गये और फिर देखा कि वे दोनों राक्षस के मुख में हैं। (८१) ब्राह्मण यह विचार ही रहे थे कि यह क्या व्यापार है, राक्षस उसी क्षण राजा और मन्त्री को निगल गया। (८२) शङ्कर के प्यारे भक्त ने राक्षस को निगलते देखकर, मृतसञ्जीवनीयुक्त शिव-पञ्चाक्षर महामन्त्र से भस्म को अभिमन्त्रित करके (८३) राजा और मन्त्री पर उसी क्षण प्रयोग किया, सो वे दोनों उसके गले में अँटक गये, भीतर नहीं उतरे, (८४) राक्षस ने गले में अँटके हुए, अँगारे की भाँति जलते हुए उन दोनों को पृथ्वी पर उगल दिया और आप मूर्छित

१ ग. ०सत्कृतम्। २ क० ०स्ये तेऽस्य (?)। ३ ग. देशं जगाम मुनिसत्तमः। ४ ग. चापि। ५ ख. रास्ये तु। ६ ग. उद्गीरयामास।

भस्महस्तेन तौ स्पृष्ट्वा शिवविज्ञानवान् सुधीः ।
किमेतदिति पृष्टौ तौ [1]वदेतां सर्वमादितः ॥८६॥
यदा तौ निर्गतौ कण्ठाद्रक्षस्तत्क्षणमुत्थितम् ।
दृष्ट्वा रक्षस्तदा योगी कस्त्वं पापीत्यपृच्छत ॥८७॥
प्रश्नोत्तराय तद्रक्षः [2]तत्सम्मुखमभूद् यदा ।
[3]सत्सम्भाषणपुण्येन [4]गतपापोऽभवत् क्षणात् ॥८८॥
शपथेन प्रतिज्ञातौ मद्भक्ष्यौ मोचितौ त्वया ।
त्वां हित्वा[5] मत्क्षुधाशान्त्यै चाहारं बाधितं त्वया ॥८९॥
कस्त्वं दुःखप्रदायी मे क्षुधार्त्तस्य चिरादिह ।
एतौ त्वाञ्चैव सेनाञ्च भक्षयाम्यधुना क्षणात् ॥९०॥
त्वमेको [6]भक्षणं मे स्याद् द्वौ जातौ भाग्यतो मम ।
सेनासमेतमधुना भक्ष्यं मे तव दुर्नयात् ॥९१॥

होकर गिर पड़ा। (८५) शिवविज्ञानवान् विद्वान् ने उन दोनों को भस्म के हाथ से स्पर्श किया और पूछा कि यह क्या माजरा है ? आरम्भ से कहो। (८६) ज्योंही वे गले से बाहर हुए कि वह राक्षस उठा, और योगी को देखकर पूछने लगा कि 'अरे पापी! तू कौन है ? (८७) सवाल जवाब के लिये ज्योंही वह राक्षस योगी के सम्मुख हुआ कि उनसे बोलने के पुण्य से उसी क्षण पापरहित हो गया। (८८) राक्षस ने कहा कि इन दोनों ने शपथपूर्वक मेरे भक्ष्य होने की प्रतिज्ञा की थी। इन्हें तूने छुड़ा लिया, मैंने तुझे छोड़ दिया, मेरे क्षुधाशान्ति के लिये ये ही आहार थे, उसमें भी तूने बाधा की। (८९) अरे मैं बहुत दिनों का भूखा हूँ। मुझे दुख देनेवाला तू कौन है ? अब मैं इन दोनों को, तुझे और सेना को अभी खा जाऊँगा। (९०) पहिले तो केवल तू ही मेरा भक्ष्य था, फिर मेरे भाग्य से एक के जगह दो हो गये। अब तेरी दुष्टता

१ ग. वदतः। २ ग. सम्मुखोऽभवद्यदा। ३ ग. तद्। ४ ग. गतपाप्मा। ५ ख. हि तौ। ६ ख. भक्षणे।

पुरा मम प्रतिज्ञासीद् वृक्षे मूलस्थभक्षणम् ।
रात्रौ तदपि नैवाह्नि तेनाहं दुर्लभाशनः ॥६२॥
मद्भक्षणविघातं[1] तु यदा भवति तत्क्षणे ।
चिरकालं क्षुत्प्रशान्तिर्भविष्यति न संशयः ॥६३॥
एवमाह पुरा कश्चिच्छिवभक्तो मया[2] धृतः ।
तद्दिनं मे क्षुधाशान्तिं कृत्वा[3] स्वतपसा गतः ॥६४॥
तदारभ्य ममाहारो[4] न लब्धस्त्वद्य भाग्यतः ।
वृक्षमूलस्थाशनं[5] च प्रतिज्ञातं तदाज्ञया ॥६५॥
तस्य विघ्नं यदा भूयात्तदा[5] क्षुत्ते गमिष्यति ।
इति तस्य वचः[6] सत्यमद्य जातं मया द्विज ! ॥६६॥
युष्मान् ससेनान् भक्षिष्ये मद्भुक्तेर्विघ्नकारिणः ।
चिरं तृप्तिं प्रयास्यामि बहुभक्षणया[7]ऽद्य हि ॥६७॥

से सबके-सब सेना के सहित मेरे भक्ष्य हुए। (९१) पहिले मेरी प्रतिज्ञा थी कि पेड़ के नीचे आनेवालों को ही खाया करूं, सो भी केवल रात को, दिन को नहीं, इस कारण से ही मुझे खाना मिलना दुर्लभ हो गया था। (९२) जब मेरे खाने में बाधा उपस्थित होगी, उसी क्षण मेरी बहुत दिनों की भूख निस्सन्देह शान्त हो जायगी, (९३) यह बात मुझसे एक शिव-भक्त ने, जब मैंने उसे पकड़ा, कही थी, उस दिन वह मेरी क्षुधा-शान्ति करके तप के लिये चला गया। (९४) उस दिन से मुझे खाने को ही नहीं मिला, आज भाग्य से मिला था। उन्हीं की आज्ञा से मैंने पेड़ की छाया में आये हुए को खाने की प्रतिज्ञा की थी। (९५) इसमें जब विघ्न होगा, तब तुम्हारी भूख जायगी, सो आज मैंने जाना कि उस ब्राह्मण की बात सत्य है। (९६) तुम लोगों ने मेरे भोजन में विघ्न किया, सो तुम लोगों को सेनासमेत खाउँगा, और आज खूब खाने से बहुत दिनों के लिये

१ ग. विघातस्तु। २ ख. ममाग्रतः। ३ ग. स तपसे गतः। ४ ख. तु न, ग. मया। ५ ख. भूयस्तथा॥ ६ ग. सत्यमपि जातं मया द्विज!। ७ ग. ,तोऽद्य हि।

इत्येवं पर्वताकारो विदार्यास्यं गुहासमम् ।
प्रसार्य हस्तौ क्रोशार्धमाववार ससैनिकान् ॥९७॥
शिवविज्ञानवान् योगी तं दृष्ट्वा भोक्तुमुद्यतम् ।
सर्वान् संवर्त्तकालाभं हुङ्कारेणावभर्त्सयत्[1] ॥९९॥
तस्य हुङ्कारतो रक्षो हाहेति तनुदाहतः ।
उत्प्लुत्याकाशपर्यन्तं पतन्भूमौ लुलोठ ह[2] ॥१००॥
त्राहि त्राहीति च क्रोशन्[3] साष्टाङ्गं विप्रमानमत्[4] ।
शीघ्रं[5] तु तनुदाहं मे शमयाशु दयानिधे ! ॥१०१॥
साधवः परहिंसां वै न कुर्वन्तीति हि श्रुतिः ।
त्वद्भाषणादहं पूर्वं शान्ताधिरधुना[6] पुनः ॥१०२॥
पूर्वादपि सहस्रांशोदाहो मे बाधते तनुम् ।
कृपां कुरु दयासिन्धो ! क्षमासारा हि साधवः ॥१०३॥

हमारी तृप्ति होगी। (९७) ऐसा कहकर उस पर्वताकार ने खोह की भाँति अपना मुहँ खोला और आध कोस तक हाथ फैलाकर उन लोगों को फौज के साथ घेर लिया। (९८) शिवविज्ञानवान् योगी ने जब देखा कि यह सबको खाना चाहता है, तो उसको संवर्तक काल के समान हुंकार से डाँटा। (.९) उनके हुंकार से वह राक्षस हाय हाय करता हुआ आकाश तक उछल कर पृथ्वी पर गिरा और लोटने लगा। (१००) त्राहि त्राहि चिल्लाते हुए उसने ब्राह्मण को साष्टाङ्ग प्रणाम किया और कहा कि हे दयानिधे ! मेरे देह में आग लगी हुई है, उसे शीघ्र शान्त कीजिये। (१०१) साधु दूसरे को पीड़ा नहीं देते, ऐसा वेद ने कहा है। आपसे संभाषण करने से मेरी पीड़ा शान्त हो गई थी। (१०२) अब फिर पहिले से भी हजारगुना अधिक आग मेरे देह में लगी हुई है। हे दयासिन्धु ! दया करो। साधु लोगों का सार क्षमा है। (१०३) इस भाँति

१ ख ग. हुङ्कारेणाभिभर्त्सयत्। २. ग. लुलुण्ठ ह। ३. ग. चुक्रोश। ४ ग. विप्रमानमन् ५ ख. ग. असह्यं। ६ ग. शान्तधी०।

क्रोशन्तमेवं मुनिराट् शान्तदृष्ट्या व्यलोकयत् ।
तदा शीतलतां प्राप्तस्तुष्टाव मुनिपुङ्गवम् ॥१०४॥
सुखितोऽस्मि दयामूर्त्ते ! मामुद्धर शिवप्रिय ! ।
तृषाक्षुधाविनिर्मुक्तो जातोऽहं त्वत्कटाक्षतः ॥१०५॥
शरणं त्वां गतोऽस्म्यद्य निरयान्मां समुद्धर ।
एवं वदन्तं तं दृष्ट्वा राक्षसं शिवयोगिराट् ॥१०६॥
हसन् प्रपच्छ योगीन्द्रः कस्त्वं पूर्वभवेति[1] च ।
सत्यं वद त्वदुद्धारं करोम्यनृततो[2] नहि ॥१०७॥
एवं [3]पृच्छन्तमानम्य रक्षो वक्तुं समारभत् ।
शृणु ब्रह्मन् ! पूर्वभवे विप्रोऽहं शिवनिन्दकः ॥१०८॥
बाष्कलो नामधेयेन विष्णुपाखण्डमाश्रितः ।
विष्णुपाखण्डिनो वेदबाह्यान् पूजाविधानतः ॥१०९॥

चिल्लाते हुए उस राक्षस को मुनीश ने शान्त दृष्टि से देखा, तब वह हे मुनिपुंगव ! शीतलता को प्राप्त होकर, सन्तुष्ट हुआ। (१०४) राक्षस बोला—हे शिवजी के प्रिय ! अब मैं सुखी हूँ, आप मेरा उद्धार कीजिये, तुम्हारे कृपाकटाक्ष से मेरी भूख-प्यास जाती रही (१०५) मैं तुम्हारे शरण हूँ, अब मेरी नरक से रक्षा कीजिये। राक्षस को ऐसा कहते देख कर शिवयोगीन्द्र ने (१०६) हँसते हुए पूछा कि तू कौन है और पहिले क्या था ? तू सच-सच कह, मैं तेरा उद्धार करूँगा, यह बात झूठी नहीं है (१०७) ऐसा पूछने पर वह राक्षस कहने लगा कि हे ब्राह्मणदेवता ! मैं पूर्व जन्म में ब्राह्मण था और शिवजी की निन्दा किया करता था। (१०८) मेरा नाम बाष्कल था और मैं कुछ पाखण्डी वैष्णवों के फेर में पड़ गया था। उन वेदबाह्य पाखण्डी वैष्णवों की पूजा मैं विधान से करता था (१०९) और नित्य करता था। वे लोग मुझे यह उपदेश

१ ग. भवेऽपि च। २ ग. ०नृतता। ३ ग. सम्पृच्छ्यमानन्त।

अपूजयं प्रतिदिनं ते मामुपदिशन्ति वै ।
नोच्चार्य्यं शिवनामेति न गन्तव्यं शिवालये[1] ॥११०॥
न पूज्या शिवभक्ता वै न द्रष्टव्या शिवाकृतिः ।
न धार्य्ये भस्मरुद्राक्षे न श्रोतव्या कथेशितुः[2] ॥१११॥
हननं भस्मरुद्राक्षधारिणां धर्म्म ईरितः ।
शिवलिङ्गध्वंसनं च शिवालयविभञ्जनम् ॥११२॥
ध्वंसनं शिवतीर्थस्य शिवोच्चारकृतो[3] वधः ।
गङ्गापि शिवनिर्माल्यं[4] न स्प्रष्टव्या कदाचन ॥११३॥
शिवसम्वन्धि यद् यच्च तत्सर्वं त्याज्यमेव नः ।
[5]वेदागमपुराणानि शिवसम्बन्धिकानि च ॥११४॥
मिथ्यैव तानि सर्वाणि बुद्धिमत्कल्पितानि हि[6] ।
इत्येवं मां प्रतिदिनं बोधयन्ति च पापिनः ॥११५॥
कलिङ्गदेशाधिपतिर्मन्त्रित्वं दत्तवान् मम ।
राजकार्याणि सर्वाणि प्रवृत्तानि मदाज्ञया ॥११६॥

दिया करते थे कि शिवजी का नाम नहीं लेना और शिवालय में जाना नहीं चाहिये। (११०) शिवभक्तों की न पूजा करनी चाहिये और न शिवलिङ्ग का दर्शन करना चाहिये। (१११) भस्मरुद्राक्षधारण करनेवालों का वध करना ही धर्म है। शिवलिङ्ग फोड़ना, शिवालय तोड़ना, (११२) शिवतीर्थ नष्ट करना, शिवनाम लेनेवाले का वध करना धर्म है, गंगा शिवनिर्माल्य है, इन्हें छूना भी नहीं चाहिये (११३) जो जो बातें शिवसम्वन्धी हैं, उन सबको त्याग देना चाहिये, चाहे वे वेद और पुराण ही क्यों न हों (११४) वे सब झूठी हैं और बुद्धिमानों की कल्पित हैं। इस प्रकार से वे पापी मुझे नित्य समझाते रहते थे। (११५) तिस पर

१ ग. पुस्तकीयोयं पाठः, आ० पु० शिवालयम् । २ ख. कथामृतम् । ३ ख. ०णतो । ४ ख. पुस्तकीयोऽयं पाठः, आ० पु०—०निर्माल्या । ५ ग. 'वेदागम०' श्लोको नास्ति । ६ ग. च ।

राज्ञा मां विश्वसन्[1] (?) दत्तं राज्यसैन्यधनादिकम् ।
त्वदिच्छया सर्वकार्य्यं कुर्वित्याज्ञाञ्च मां[2] ददौ ॥११७॥
उन्मत्तोऽहं तदा राजकार्य्यं प्राप्यातिकामुकः ।
परस्त्रीलालसोऽत्यर्थं पाखण्डो[3] मे तथाविधः ॥११८॥
ज्ञात्वा मां स्ववशीकर्त्तुमेवं नित्यमुपादिशन् ।
परस्त्रीसङ्गदोषस्तु मद्भक्तानां कदापि न ॥११९॥
देहधर्मस्तु मिथ्यैव तत्कार्य्यं सङ्गमादिकम् ।
यथेच्छं स्त्रीषु भोगश्च कर्त्तव्यस्तेन किं भवेत् ॥१२०॥
अस्मच्छिष्यो भवसि चेत् स्त्रियो दास्यामहे वयम् ।
एवं प्रतार्य्य मच्चित्तं सर्वं सम्पादितं शनैः ॥१२१॥
[4]हृतं समर्पणं[5] व्याजात्[6] खलैः स्वार्थपरैस्तदा ।
अस्मदीयासु नारीषु यत्रेच्छा भुङ्क्ष्व तां स्त्रियम् ॥१२२॥

कलिङ्ग के राजा ने मुझे अपना मन्त्री बना लिया, और सब राजकाज मेरे हुक्म से चलने लगा । (११६) राजा ने मुझपर विश्वास करके राज्य, सेना, धन सबका अधिकार दे दिया और यह आज्ञा दी कि अपने इच्छानुसार सब कार्य करो । (११७) मैं कामी राज्य का अधिकार पाकर पागल होगया । मुझे पराई स्त्री की बड़ी लालसा थी, और मेरे पाखण्डी उपदेशक भी वैसे ही थे । (११८) मेरी प्रवृत्ति जानकर मुझे वश करने के लिये उपदेश दिया करते थे कि मेरे भक्तों को परस्त्रीदोष लगता ही नहीं । (११९) देहधर्म तो मिथ्या ही है, उससे यथेष्ट समागम करना चाहिये, स्त्रीसम्भोग करना चाहिये, इससे होता क्या है ? (१२०) यदि हमारे शिष्य हो जावो, तो हम लोग स्वयम् स्त्री देवें, इस प्रकार से मेरे चित्त को बहका कर (१२१) उन स्वार्थी खलों ने 'हरण करके समर्पण करने के व्याज से मुझसे धीरे धीरे सब कुछ करवाया ।

१ ख. विश्वस्य । सविश्वासं वा पाठः स्यात् । २ ख. मे । ३ ख. पाखण्डं मां, ग. पाखण्डा मां तथाविधम् । ४ क. दूतं । ५ ग. समर्पणव्याजात् । ६ ख. १ व्याजाखि ।

इत्युक्त्वा मे स्वनारीस्ते शयने निशि[1] चोदयन् ।
ताः स्त्रियो मां वशीकुर्युः[2] कामुकं भर्तृचोदिताः ॥१२३॥
तेषां शिष्योऽभवं पश्चादङ्कितस्तप्तमुद्रया ।
ततस्ते मामुपदिशन्[3] मद्यमांसनिषेवणम् ॥१२४॥
[4]स्वसृमातृसुताभ्रातृजायाश्वश्रुस्नुषादिकाः ।
पितृष्वसा गुरोर्जाया मातृस्वसृसुखापराः ॥१२५॥
एतासां सङ्गमे दोषो नास्ति [5]सत्सम्प्रदायिनाम् ।
चातुर्वर्ण्याः स्त्रियो भोज्या[6] अन्त्यजा म्लेच्छजा अपि ॥
पुलिन्दहूणकैरात्यः [7]संकराप्यनुलोमजाः ।
भोक्तव्याश्च मदीयैस्ता[8] निःशङ्कं नात्र दोषभाक् ॥१२७॥
मिथ्या शरीरबाधेयमिच्छारूपा क्षणात्मिका ।
अस्माकमनया दोषः कोऽस्ति सत्सम्प्रदायिनाम् ॥१२८॥

हम लोगों की स्त्रियों में से जिस पर तुम्हारी इच्छा हो उसे भोगो, (१२२) ऐसा कह कर उन सबने अपनी स्त्रियों को रात्रि में सोने के लिये भेज दिया, और वे स्त्रियाँ अपने पतियों के उसकाने से मुझ कामुक को रिझाती थीं। (१२३) पीछे से मैं तप्तमुद्रा लगवा कर उनका शिष्य हो गया; तब उन लोगों ने मुझे शराब-कबाब खाने का और इस बात का उपदेश किया (१२४) कि मेरे सम्प्रदाय में बहन, मौसी, भावज, सास, पतोह, बूआ, गुरु-पत्नी, माता, बहन इत्यादिकों (१२५) के संगम में दोष नहीं है। चारों वर्ण की स्त्रियाँ भोग्य हैं। चाण्डाली तथा यवनी, पुलिन्द, हूण, किरात, संकर जाति और अनुलोमज स्त्रियाँ हमारे सम्प्रदायियों को निःशङ्क भोगनी चाहियें, इसमें दोष नहीं है, (१२७) यह शरीर की बाधा इच्छा रूपा है और क्षणात्मिका है। हम लोगों को इससे कुछ भी दोष नहीं है, क्योंकि हम लोग सत्सम्प्रदायी हैं। (१२८) हम

---

१ ग. निश्यचो० । २ ग. वशीचक्रुः । ३ ख. ०मुपादिशन् । ४ ग. स्वस्व । ५ ग. मे । ६ ग. भोग्या । ७ ग. संस्कार श्रा० । ८ ख. स्तु ।

अस्माभिरेवं [1]क्लृप्तश्च [2]कर्त्तव्यं गुरुशासनात् ।
[3]भाले मृल्लेपनं कण्ठे तुलसीकाष्ठधारणम् ॥१२९॥
एतावता वयं सर्वे कृतार्था नात्रसंशयः ।
इति मां नित्यशस्ते वै स्वार्थकामा ह्युपादिशन् ॥१३०॥
कामुकस्य ममाप्येतद्रुचितं तद्वचो मुदा ।
तथैवाऽकरवं गर्वादुन्मत्तोऽहं धनादिकात् ॥१३१॥
युवा च कामुकोऽतीव प्रभुश्चाप्यविवेकवान् ।
एकैकमप्यनर्थाय प्राप्तं सर्वं तदा मम[4] ॥१३२॥
ततस्तेषामधीनोऽहं जातः कामुकशेखरः ।
स्वेच्छाचारः पापरतः परमोच्छृङ्खलो मदी[5] ॥१३३॥
उन्मत्तो मदगर्वेण न स्थितः स्वेषु वर्त्मसु ।
महापाखण्डिनस्ते वै द्रव्यलोभेन मां सदा ॥१३४॥

लोगों को केवल एक काम गुरू की आज्ञा से अवश्य करना चाहिये, वह यह कि माथे में मिट्टी की टीका और कण्ठ में तुलसी का काठ धारण करना चाहिये। (१२९) बस इतने से ही हम लोग कृतार्थ हो जाते हैं, इसमें संशय नहीं है। इस प्रकार से वे स्वार्थी नित्य मुझे उपदेश किया करते थे। (१३०) मैं था कामी। मुझे ये वचन बहुत रुचते थे। मैं प्रसन्नता से वैसा ही करता था। मैं तो धनादिक के गर्व से पागल हो गया था। (१३१) जवानी, कामीपन, प्रभुता और अविवेक इनमें से एक एक अनर्थ कर डालता है। मुझे तो चारों प्राप्त थे; (१३२) सो मैं उनके अधीन होकर कामियों का सरदार, स्वेच्छाचारी, पापी, परम उच्छृङ्खल और अभिमानी हो गया। (१३३) पद और गर्व से उन्मत्त होकर मैं अपने रास्ते पर नहीं चल सका, और वे महापाखण्डी रुपये के लोभ से मुझ दुर्बुद्धि को (१३४) सदा ठगा करते थे। फिर मुझे शिष्य भी किया, तप्तमुद्रा भी लगवाई, शिवनिन्दा का

---

१ ख. कृत्स्नं । २ ग. कृत्यं । ३ ख. स्फाले । ४ ग. मया । ५ ग. मदात् ।

प्रतारयन्ति दुर्बुद्धिं शिष्यं कृत्वा च मां पुनः ।
तप्तमुद्राङ्कितं कृत्वा शिवनिन्दामुपादिशन् ॥१३५॥
[1]मत्सम्प्रदायः शैवानां निन्द्यं[2] वक्त्रावलोकनम् ।
सम्भाषणञ्च तैः साकं कदाचिन्नैव कारयेत् ॥१३६॥
शिवालयं न प्रविशेच्छिवलिङ्गं न लोकयेत् ।
शिवनाम च नोच्चार्य्यं प्रसङ्गादपि सर्वथा ॥१३७॥
वेदोक्तमार्गस्मृत्युक्तमार्गं[3] कर्म्मप्रशंसनम् ।
तत्सर्वं भ्रामकं लोके सम्प्रदायो गतिप्रदः ॥१३८॥
ऊर्द्ध्वं पुण्ड्रञ्च मुद्रा च[4] यैरङ्गीकृतमादरात् ।
गुरुं मुद्राप्रदातारं तदीयानेव पूजयेत् ॥१३९॥
[5]सत्सम्प्रदायरहितान् विप्रानपि न पूजयेत् ।
धार्य्यञ्च तुलसीकाष्ठमूर्द्ध्वपुण्ड्रञ्च नेतरत् ॥१४०॥

भी उपदेश किया (१३५) कि मेरे सम्प्रदाय में शैवों का मुँह देखना मना है और उनके साथ बात चीत तो कभी भी नहीं करनी चाहिये। (१३६) न शिवालय में जाय, न शिवलिङ्ग देखे और प्रसंग आजाने पर भी शिवनाम का उच्चारण कभी न करे। (१३७) वेदोक्त मार्ग, धर्म-शास्त्र का मार्ग, और कर्म की प्रशंसा के वाक्य सब भ्रम में डालनेवाले हैं, गति का देनेवाला तो सम्प्रदाय है। (१३८) जो उर्ध्वपुण्ड्र लगाते हैं, जिन्होंने आदर से तप्तमुद्रा लगवाई है, मुद्रा देनेवाले गुरु और जो उनके भक्त (तदीय) हैं, उन्हीं का पूजन करना चाहिये। (१३९) जो सत्संप्रदाय के नहीं हैं, उन ब्राह्मणों की भी पूजा नहीं करनी चाहिये। ऊर्ध्वपुंड्र और तुलसी छोड़ कर दूसरा कुछ धारण न करना चाहिये। (१४०) पञ्चयज्ञ, पितृश्राद्ध, और जितने नित्य, नैमित्तिक और कर्म हैं, वे सब त्याग देने योग्य हैं, और सम्प्रदाय में जो कर्म हैं वे

१ ग. सत्। २ ग. नित्यं। ३ ग. मार्गं०। ४ ग. पुस्तकीयोऽयंपाठः, आ० पु० मुद्राञ्च। ५ क. ख. तत्।

पञ्चयज्ञपितृश्राद्धनित्यनैमित्तिकादयः ।
त्याज्याः 'सर्वाः सम्प्रदायस्त्वनुक्तोऽपि समाचरेत्[2] ॥१४१॥
स्त्रीणामपि न दोषोऽस्ति सम्प्रदायि[3]सुसङ्गमात् ।
मद्यमांसादिकं ग्राह्यं सम्प्रदायाविरोधतः ॥१४२॥
[4]भाषाप्रबन्धास्त्वधिका वेदेभ्य इति [5]निश्चयः ।
आचार्यात् [6]पुत्रिकां कृत्वा चान्ते वैकुण्ठमावसेत् ॥१४३॥
सुखी यथा गृहाद्यैश्च सर्वोपकरणैस्तथा ।
शिवनिन्दा शिवद्रोहः शिवभक्तेषु धिक्कृतिः ॥१४४॥
भस्मरुद्राक्षनिन्दा च प्रथमो धर्म एष नः ।
एवं स्थिते तस्य मुक्तिः करस्थाऽस्मत्प्रसादतः ॥१४५॥
एवं मां[7] बोध्य नित्यं ते चपलं वशमानयन् ।
तेषां दुर्बोधने मग्नस्त्वहं कामी दुराशयः ॥१४६॥

कहीं न भी लिखे हों तो भी उन्हें करना चाहिये । (१४१) साम्प्रदायी का साथ करने से स्त्रियों को भी कोई दोष नहीं है, और सम्प्रदाय के विरुद्ध जो नहीं है, उसे मद्य और मांस का भी ग्रहण करना चाहिये । वेद से भी भाषाप्रवन्ध अधिक है, यह निश्चय मन में होना चाहिये । आचार्य्य से सुता को पुत्रिका* करने से अन्त में वैकुण्ठ को प्राप्त होता है । (१४३) वहाँ घर और सामान इत्यादि से सुखी रहता है । शिव की निन्दा, शिव का द्रोह, शिवभक्त को धिक्कार तथा (१४४) भस्म और रुद्राक्षकी निन्दा, यह हमारा पहिला धर्म है । इस भाँति जो रहता है, उसको हमारे प्रसाद से मुक्ति हस्तगत रहती है (१४५) इस प्रकार

* जिस पुत्री के प्रथम पुत्र को ले लेने की प्रतिज्ञा करा के दान करते हैं' वह पुत्रिका कहलाती है । यहाँ पर यह मालूम होता है कि इस सम्प्रदाय के लोग आचार्य्य से पुत्री में पुत्र उत्पन्न कराना स्वर्ग्य कर्म समझते हैं ।

१ ख. ग. सर्वे । २ ग. समादृतः । ३ ग. सम्प्रदायिषु सङ्गमात् । ४ ग. ०प्रवन्धस्त्वधिको । ५ ग. पुस्तकीयोऽयं पाठः, आ० पु०—निश्चयेत् । ६ ख. ग. पात्रिकां । ७ संबोध्य नित्यं ते ।

स्त्रीलालसः क्रमात्तेषां बोधनाद्धनगर्वतः ।
भ्रष्टोऽहं कामवशगस्तेषां स्त्रीभिर्विमोहितः ॥१४७॥
राज्याधिकारादुन्मत्तः स्वैरचारी दुराशयः ।
शिवापराधास्त्वमिताः कृता मोहाद् मया मुने ! ॥१४८॥
विष्णुपाखण्डमाश्रित्य पाखण्डानां मनोनुगः ।
पापिनां शिष्यतां प्राप्य प्राप्तोऽहं त्वीदृशीं दशाम् ॥१४९॥
तेषां गतिर्वा[1] का जाता जानाति शिव एव ताम् ।
शिष्यस्यैकस्य मे त्वेवं दुर्गतिश्च दुरत्यया ॥१५०॥
किं पुनर्बहवः शिष्यास्तेषां दुरुपदेशतः ।
नष्टास्तदुपदेष्टॄणां गतिः का वा भविष्यति ॥१५१॥
गच्छन्तु ते दुरात्मानः किं तेषां व्यर्थचिन्तया ।
इतोऽपि मम दुष्कर्म्म वदामि शृणु भूसुर ! ॥१५२॥

मुझ चपल को नित्य समझाते समझाते अपने हाथ में ले आये। (१४६) उनके बहकावे में फँसकर मैं कामी, दुष्ट, स्त्री-लम्पट, धन के गर्व से और उनके फुसलाने से भ्रष्ट हो गया और उनकी स्त्रियों में फँस गया। (१४७) राज्य का अधिकार पाने से उन्मत्त हो गया, यथेच्छाचार करने लगा और मेरा हृदय पापी हो गया। हे महामुने ! मैंने मोह से अपार अपराध शिवजी का किया। (१४८) पाखण्डी वैष्णवों के फेर में आकर, उनके इच्छावशवर्ती होकर, पापियों का शिष्य होकर मैं इस दशा को प्राप्त हुआ। (१४९) उन लोगों की क्या गति हुई, सो तो शिवजी ही जानते होंगे, उनके शिष्यों में से मैं एक हूँ, सो मेरी यह दुर्गति है। (१५०) फिर उनका क्या कहना, जिनके बुरे उपदेश से बहुत से शिष्य नाश को प्राप्त हुए। (१५१) वे दुष्ट भाड़ में जाँय, उनकी व्यर्थ चिन्ता से क्या लाभ ? अब हे ब्राह्मण देवता ! मेरे दुष्कर्मों को सुनिये, (१५२) उन सब को ठीक ठीक सुनकर

१ ख. र्यया ।

तत्सर्वं तत्त्वतः श्रुत्वा मामुद्धर दयानिधे ! ।
सतां समीपे पापानि गोपनीयानि नैव हि ॥१५३॥
ज्ञानिनां ब्रह्मनिष्ठानां ज्ञानाग्नौ कर्म्मसञ्चयाः ।
भस्मीभवन्ति सत्यं हि महाग्नौ तूलराशिवत् ॥१५४॥
त्वयि ज्ञानस्वरूपेऽहं निवेद्याखिलदुष्कृतिम् ।
ज्ञानतेजोयुजा दृष्ट्या दग्धपापोऽभवं ध्रुवम् ॥१५५॥
इत्येवं शिवयोगीन्द्रं पुनर्नत्वा कृताञ्जलिः ।
प्रवक्तुमारभत्पापं स्वकृतं ब्रह्मराक्षसः ॥१५६॥
इति सकलजनाघध्वंसिनीं सत्कथां यः
प्रबलकलुषकर्त्तुः शङ्करागस्कृतस्ताम् ।
शिवमुनिकृपया तस्योद्धृतेः प्राप्त्युपायां[1]
सकृदपि शिवभक्त्या मुक्तिमाकर्ण्य याति ॥१५७॥

हे दयानिधे ! मेरा उद्धार कीजिये, भलों के सामने पापों को छिपाना न चाहिये । (१५३) ज्ञानी और ब्रह्मनिष्ठों के ज्ञानाग्नि से सब सञ्चित कर्म निःसन्देह इस भाँति भस्म हो जाते हैं, जैसे महाग्नि में रूई का ढेर जल जाता है । (१५४) आप ज्ञानस्वरूप हैं, आपसे अपना सब पाप कह कर, आपकी ज्ञानतेज-युक्त दृष्टि से मैं निश्चय करके दग्धपाप हो जाऊँगा (१५५) ऐसा कह कर उस ब्रह्म राक्षस ने शिवयोगीन्द्र को फिर से नमस्कार किया, और हाथ जोड़कर अपने किये हुए पाप सुनाने लगा । (१५६) यह भली कथा सब जनों के पापों की नाश करने-वाली है, प्रबल पापियों ने जो शङ्कर का अपराध किया है, उनके लिये यह कथा शिव मुनि की कृपा से उद्धार की उपाय-रूप है, इसे जो कोई शिव-भक्ति के साथ एक बार भी सुनता है, वह मुक्ति को प्राप्त होता है । (१५७) इस सद्रहस्य को जगत् के उपकार के लिये शङ्कर ने प्रकट किया है, यह मूर्खों को भी उत्तम बुद्धि देनेवाला है, पामर को भी

१ ख. ०पायं ।

जगदुपकृतये तत्सद्रहस्यं शिवेन
प्रकटितमबुधानां बुद्धिदायि प्रकृष्टम् ।
शिवचरणयुगे सद्भक्तिदं पामराणां
श्रवणपठनतस्तद्भुक्तिदं मुक्तिदं च ॥१५८॥
नित्यं तत्परमेश्वरस्य मुखतो गौर्य्यै प्रदिष्टं महत्
पापघ्नं सकलेष्टदं भुवि जनाः शृण्वन्ति भक्त्या यदि ।
तेषां भक्तिरपीह भोगविभवोऽप्यन्ते च मुक्तिः परा
लभ्या नाऽत्र विचारणा [1]परमिदं दिव्यं रहस्यं द्विजाः ! ॥१५९॥
विद्वेषः परमेश्वरे शिवजने किं किं न सम्पादय-
त्यत्यन्तं बहुदुःखमत्र च परत्राप्यन्यजन्मन्यपि ।
पश्यध्वं त्विह वाष्कलस्य विपदं कोट्योपि दुर्जन्मनां
तादृङ्नारकयातना अपि पुनः पाखण्डसङ्गोद्भवाः ॥१६०॥

शङ्कर के चरणों की भक्ति प्रदान करनेवाला है, कान में पड़ने से हीं भुक्ति, मुक्ति दोनों सुलभ कर देता है। (१५८) इसका उपदेश परमेश्वर ने श्रीमुख से गौरी को दिया। यह महापापों को हरनेवाला है, सबका इष्ट है, इसे यदि पृथ्वी में लोग सुनेंगे, तो उन्हें यहाँ भक्ति, भोग और विभव प्राप्त होगा, और अन्त में परा मुक्ति मिलेगी, इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये, क्योंकि हे ब्राह्मणो ! यह परम दिव्य रहस्य है। (१५९) परमेश्वर शिवजी और उनके भक्तों का द्वेष करने से क्या क्या नहीं होता ? अन्त में, इस लोक, परलोक तथा अन्य जन्मों में बड़े बड़े दुःख उठाने पड़ते हैं। पाखण्डियों के साथ से वाष्कल के विपत्ति समूह को देखिये कि उसे कैसी दुष्टयोनि प्राप्त हुई ? और कैसी नरक यातना सहनी पड़ी ? (१६०) अतः ऐहिक तथा पारलौकिक सुख चाहनेवालों को शङ्कर तथा उनके भक्तों के चरणों की भक्ति कदापि छोड़नी न चाहिये। एकाग्रमन होकर शङ्कर की कथा का श्रवण करना चाहिये।

१ ग. पद० ।

तस्माच्छङ्करपादपद्मभजनं तद्भक्तिभाजामपि
त्याज्यं नैव कदापि चैहिकमितः [1]पारक्यसौख्येच्छुना ।
श्राव्या शम्भुकथा तदेकमनसा भक्ताश्च[2] शम्भोः [3]परं
पूज्या[4] नान्यविचारहीनमनसा सेवेच्छिवं सद्धिया ॥१६१॥

इति श्रीकाशीमूलरहस्ये खिले ब्रह्मवैवर्त्ते काशीकेदार-
माहात्म्ये पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः ।

मुनय ऊचुः—

सूत ! सर्वज्ञ ! तत्पश्चात् किमाह ब्रह्मराक्षसः ।
[5]स्वदुष्कर्म्मावृतं योगी तं वा कथमतारयत् ॥ १ ॥

शङ्कर के परम भक्तों का पूजन करना चाहिये और अच्छी बुद्धि से, अन्य विचारहीन मन से शम्भु की सेवा न करनी चाहिये। (१६१)

यह ब्रह्मवैवर्त्तके काशीरहस्य नामक खिलग्रन्थ के अन्तर्गत केदारमाहात्म्य का पाँचवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥

पुनि शिवयोगी की कृपा, श्रीकाशीकेदार ॥
पाइ वाष्कल गति लही, कही सो कथा उदार ॥ १ ॥
तदपि न मानत देवि ! तव, शिव अनुशासन पाय ॥
निज प्रभाव प्रकटी कछुक, देखि उठे अकुलाय ॥ २ ॥
शिर धर आयसु पांय परि, आये जँह केदार ॥
सर मज्जन करि पूजि प्रभु, पाये निज अधिकार ॥ ३ ॥
गौरी निज अपराध के, क्षमा करावन हेतु ॥
प्राचीना मज्जन करति, पूजति श्रीवृषकेतु ॥ ४ ॥

मुनियों ने कहा—हे सर्वज्ञ सूतजी ! फिर उस ब्रह्मराक्षस ने अपना क्या २ दुष्कर्म वर्णन किया और फिर योगी ने उसे कैसे

१ ख. पारत्र । २ ग. भक्त्या च । ३ ग. पदं । ४ ग. पूज्यान् प्राप्य ।
५ ग. दुष्कर्म्मार्यं ततो ।

वदाऽस्माकं महाश्चर्य्यनिमग्नानां[1] कथारसम्[2] ।
इति पृष्टस्तदा सूतः प्राह तान् योगिवैभवम् ॥ २ ॥
शृणुध्वं मुनयः सर्वे दयालूनां शिवात्मनाम् ।
महिमा दुर्निरूप्यो हि [3]वक्तव्यस्त्वादृशां[4] खलु ॥ ३ ॥
पुनः प्राह तदा रक्षो योगिने स्वात्मदुष्कृतिम् ।
मुने ! शृणु महायोगिन् ! मद्दुष्कर्म्म दुरत्ययम् ॥ ४ ॥
यः कश्चित् मां समागत्य हितं वदति चेच्च तम् ।
मदान्धो धनगर्वेण मानभङ्गादमारयम् ॥ ५ ॥
ततः कोऽपि न मत्पार्श्वे न वदेद्धितमप्युत ।
मद्दुर्बुद्ध्या च पाखण्डजनबोधाच्च[5] मां त्यजन् ॥ ६ ॥
[6]मद्धनं सर्वमसतां पाखण्डानाञ्च सत्कृताम्[7] ।
ते दुष्टा मां प्रतार्य्यैवं स्वस्त्रीभिः काममोहितम् ॥ ७ ॥

तारा ? (१) हमलोग महा आश्चर्य में निमग्न हैं, सो हमलोगों को कथा-रसपान कराइये ।

ऐसा पूछने पर सूतजी उन लोगों से योगीजी का वैभव कहने लगे । (२) 'सब मुनि लोग सुनें, यद्यपि दयालु शिवस्वरूप योगी की महिमा कही नहीं जा सकती, फिर भी आप महानुभावों से कहना न्याय प्राप्त है । (३) फिर, उस राक्षस ने अपना कुकर्म योगिराज से कहा कि हे मुनिजी ! मेरे अपार दुष्कर्म सुनिये, (४) जो कोई मेरे पास आकर यदि हित वात कहे, तो मैं मद से अन्धा, मानभङ्ग समझ कर उसे बिना मारे नहीं छोड़ता था । (५) इसलिए मेरे पास कोई भी हित कहने के लिये नहीं आता था । मेरी दुर्बुद्धि अथवा पाखण्डियों की-सी बुद्धि देख कर सब लोगों ने मेरा परित्याग किया (६) मेरा धन सब पाखण्डियों के सत्कार के लिये था । वे पापात्मा मुझ

१ ग. महाश्चर्ये । २ ग. कथारसे । ३ ख. वक्तव्यं । ४ ग. तादृशां । ५ ग. ०दधात्यजन् । ६ ग. मत्कुलम् । ७ ग. सत्कृतम् ।

[1]धनलोभेन [2]तद्द्रव्यं सर्वं सम्पादितं हरन् ।
तावेव सर्वद्रव्येणापूजयं शिवदूषकान् ॥ ८ ॥
स्वेच्छाचारी सतां द्रोही शिवद्रोह्यभवं तराम्[3] ।
देशस्थाः सज्जनाः सर्वे शिवभक्ताश्च मां त्यजन् ॥ ९ ॥
अयं राजकुलद्रोही [4]राज्ञा दत्ताधिकारकः ।
बाधेतास्मान्न सन्देहस्तस्माद्द देशान्तरं वरम् ॥१०॥
इति ते साधवः सर्वे गता देशान्तरं तदा ।
अहं राज्ञा कृतप्रीतिः प्राप्तसर्वाधिकारवान् ॥११॥
धनमत्तो युवा मूढः पुनः पाखण्डबोधितः ।
उपदिष्टोऽपि तैस्तादृक् स्वेच्छाचरणकर्म्मणि ॥१२॥
तेषां नार्य्यस्तथाधूर्त्ता मम चित्तेष्टभोगदाः ।
यौवनं धनसम्पत्तिः प्रभुत्वमविवेकिता ॥१३॥

काम मोहित को अपनी स्त्रियों द्वारा खूब ठगते थे । (७) धन के लोभ से मेरा पैदा किया हुआ सब धन वे सब हरण कर लेते थे और उस से शिव के निन्दकों की पूजा करते थे । (८) मैं अत्यन्त स्वेच्छाचारी, भले लोगों से द्रोह करनेवाला और शिवद्रोही हो गया । देश के रहनेवाले सब सज्जनों ने और शिवभक्तों ने मुझे त्याग दिया । (९) यह राजकुल का द्रोही, राजा से अधिकार पाया हुआ है, निस्सन्देह हम लोगों को बाधा पहुँचावेगा इससे दूसरे देश में जा बसना ही कल्याण कारक है । (१०) ऐसा ठान कर वे भले लोग दूसरे देशको चले गये । परन्तु मुझे राजा मानता था और उसने सब अधिकार मुझे दे रक्खे थे । (११) मैं धन के मद में मत्त था, तिस पर जवानी की उम्र थी, ज्ञान था नहीं, पाखण्डियों ने बहका रक्खा था, उपदेश भी उन लोगों ने वैसा ही दिया था, जिससे मैं स्वेच्छाचारी हो जाऊँ । (१२) उनकी स्त्रियाँ भी

१ ग. मुदाहरन् ते मद्द्रव्यं सर्वं सम्पादितं तदा । २ ख. मद्द्रव्यं । ३ ग. तदा । ४ ग. राजदत्ताधिकारवान् ।

एकैकमप्यनर्थाय प्राप्तमेतच्चतुष्टयम् ।
तेनाहं सर्वकर्म्माणि स्वार्थैस्तैरुदितानि हि ॥१४॥
कृतवान् मद्यमांसाशी सर्वस्त्रीभोगलालसः ।
गुर्वङ्गनामातृसुतास्नुषास्वस्रमुखाः स्त्रियः ॥१५॥
आचाण्डाला मया भुक्तास्तद्देशपरदेशगाः ।
कस्यां कस्यां सुखं कीदृगिति संशोध्य[1] सङ्गताः ॥१६॥
[2]स्वदेशे या वरा नार्य्यश्चातुर्वर्ण्ये निजे पुरे ।
राजस्त्रियोऽपि वित्तेन भूषावस्त्रैः सुवाञ्छिताः ॥१७॥
मद्दुष्कर्म्म तदा ज्ञात्वा सन्तो[3] देशे पुरे स्थिताः ।
भीताः साम्ना मामवोचन् मा कर्म्मैवं कृथा इति ॥१८॥

वैसी ही धूर्ता थीं, मेरे मनोनुकूल भोग के लिये तैयार रहती थीं। जवानी की उम्र, धनसम्पत्ति, अधिकार का मिलना और अज्ञान (१३) इनमें से एक एक अनर्थ करनेवाले हैं, मुझे तो चारों प्राप्त थे। उन स्वार्थियों के कहे हुए सब काम मैं करता था, (१४) क्योंकि मैं शराबी एवं कबाबी हो गया था, और उन सबों की स्त्रियों के भोगने की मुझे लालसा थी। गुरु की स्त्री, मौसी, पतोहू और सास आदिक स्त्रियों को भी मैंने भोगा। (१५) क्या स्वदेश और क्या परदेश, कहीं की स्त्री चाण्डाली तक मैंने नहीं छोड़ी, किस किस स्त्री में कैसा २ सुख होता है, इसका पता लगा कर मैंने साथ किया। (१६) अपने देश और पुर में जो जो अच्छी स्त्रियाँ चारों वर्णों में थीं, उनकी और राजा की स्त्रियों की भी मैंने धन, गहना और कपड़े के द्वारा इच्छा की। (१७) मेरे दुष्कर्म को जान कर देश और पुर में जो भले लोग थे, वे डर गये और सलाह करके मुझसे कहने लगे कि ऐसा काम मत करो। (१८) तब तो मैं पाखण्डियों की बातों में आकर उन पर क्रुद्ध हो गया, मैंने शिवमन्दिर तथा शिवलिङ्ग का तोड़ना फोड़ना शुरू कर

१ ग. संदृश्य। २ ग. स्वदेशजा। ३ ग. शान्ता।

तदा तान्[1] भत्यहं क्रुद्धः पाखण्डोक्तिविमोहितः ।
शिवालयध्वंसनञ्च लिङ्गविध्वंसनादिकम् ॥१९॥
कर्त्तुमारब्धवान् पश्चाच्छिवभक्तवधादिकम् ।
तेन राज्ञः समीपे मां[2] दुष्कर्म्म विदितं जनैः ॥२०॥
अन्तःपुरस्त्रीसङ्गश्च[3] ज्ञातं[4] राज्ञा शनैः शनैः ।
मां निराकर्त्तुमुद्युक्तः शासितुं हन्तुमुत्क्रुद्धाः ॥२१॥
तदाहं पाककर्त्तारं राज्ञो दत्वा धनादिकम् ।
गरप्रक्षेपणात् पाके नृपं मारितवानहम् ॥२२॥
राज्ञो मृतेः परं राजस्त्रियो मे स्ववशीकृताः ।
राजपुत्रानपि तथा गरदानेन[5] मारयन् ॥२३॥
सर्वाः स्त्रियो राजगृहे मम भोगस्त्रियोऽभवन् ।
अहमेव नृपो जातो निरबाधः[6] स्वतन्त्रवान् ॥२४॥

दिया। (१९) तत्पश्चात् शिवभक्तों का वध भी करने लग गया। तब तो लोगों ने मेरे दुष्कर्म की चरचा राजा से की (२०) और धीरे २ महल की स्त्रियों के साथ मेरा सम्बन्ध भी राजा को मालूम हो गया। राजा क्रोध के मारे मुझे निकालने, दण्ड देने तथा मार डालने के लिये तैयार हो गया। (२१) तब तो मैंने राजा के रसोइया को धनादि देकर मिलाया, और जेवनार में विष प्रयोग करवा के राजा को मार ही डाला। (२२) राजा के मरने पर राजा की शेष स्त्रियों को भी मैं अपने काबू में ले आया और राजपुत्रों को भी विष देकर मार डाला। (२३) इस प्रकार राजा की सब स्त्रियाँ अब मेरी रखेली हो गईं और मैं बिना किसी अड़चन के स्वतन्त्र राजा हो गया। (२४) मैं बावड़ी, कुंआ, तालाब, नहर आदि धर्मकार्य्य की आड़ लेकर, शहर और गाँव

१ ख. प्रहरन्, ग. प्राहरम्। २ ग. मद्दुष्कर्म्म ज्ञापितं। ३ ग. सङ्गश्च। ४ ग. ज्ञातः। ५ ग. दानादमारयम्। ६ ग. निराबाधः स्वतन्त्रकः।

ततो देशस्थपौरस्थशिवालयविभञ्जनम् ।
वापीकूपसरोनद्यो[1] धर्म्मच्छ्रमकृता मया ॥२५॥
काश्यां शिवालयशतं ध्वसितं द्रव्यदानतः ।
शिवक्षेत्रेषु चान्यत्र ध्वस्तं बहुशिवालयम् ॥२६॥
शिवलिङ्गध्वंसनञ्च [2]दृष्टं नारीबलात्कृतिः ।
इत्यादिदुष्कर्म्मजातं [3]प्रवृद्धं दुरतिक्रमम् ॥२७॥
शिवभक्तास्तदा सन्तो देशं त्यक्त्वा गता बहिः ।
अन्तःपुरस्थितं त्वेकं शिष्टन्तु शिवमन्दिरम् ॥२८॥
राज्ञश्च राजपत्न्याश्च [4]नित्यपूजार्थनिर्मितम् ।
राजपत्नी ह्यवशगा तल्लिङ्गं समगोपयत् ॥२९॥
[5]शिलावद्धाच्च परितो धिष्ण्यवच्छून्यमन्दिरम् ।
कारयित्वा मद्भयतः स्थिता तूष्णीं विनार्चनम् ॥३०॥
तन्मन्दिरध्वंसनेऽहं स्त्रीणां स्वापे निशि त्वरन्[6] ।
धृत्वा च करदीपान् हि मन्दिरं ध्वंसयं निशि ॥३१॥

के शिवालयों को तोड़वाने लगा। (२५) रुपया देकर मैंने काशी में सौ शिवालय तोड़वाए, और दूसरे शिवक्षेत्रों में भी बहुत से शिवालय तोड़वाए (२६) जव शिवभक्तों एवं सज्जनों ने शिवलिङ्ग का ध्वंस, स्त्रियों पर बलात्कार आदि दुष्कर्म को बढ़ते देखा, और कोई उपाय भी न रहा। (२७) तो उन्होंने देश छोड़ दिया और दूसरे देशों में जा बसे। केवल एक शिवमन्दिर महल में बच गया। (२८) राजा और रानियों ने इसे नित्य पूजा के लिये बनवाया था। जबरदस्ती रानी ने उस लिङ्ग को छिपा रक्खा था। (२९) उस के चारों ओर पत्थर चुन दिया और गृह की भाँति उसे शून्य कर रक्खा था अर्थात् मन्दिर का शिखर तोड़ मेरे डर से उन्हें विना पूजा के छोड़ दिया था। (३०) उस मन्दिर के

१ ग. ...नद्यः कृता धर्मच्छलान्मया। २ ग. शिष्टनारी०। ३ ग. प्रारब्धं। ४ ग. पूजार्थं किल निर्मितम्। ५ ख. ग. शिलाबन्धाच्च। ६ ख. त्वरात्।

शून्यधिष्ण्यं परित्यज्य गतोषसि ॐ गृहाद्बहिः ।
[1]मातस्ता दुःखिता दृष्ट्वा न किञ्चिदवदन् भयात् ॥३२॥
कदाचिदेवं [2]दुष्कर्म्मा गतोऽहं मृगयारतः ।
वनं गतो द्वीपिनाहं हतः पापकृतां वरः ॥३३॥
[3]नीत्वा मां यमदूताश्च बध्वा पादे यमालयम्[4] ।
चित्रगुप्तेनापि मेऽघं नालं वक्तुमियत्तया ॥३४॥
तदा मां सर्वनरकातिथिं कल्पायुतावधि ।
[5]बाधयेयुर्यमभटा धर्मराजाज्ञया भृशम् ॥३५॥
[6]अशीतिचतुराधिक्यकोटिं नरकयातनाम् ।
क्रमेणानुभवन् पश्चात् स्वेदजाण्डजयोनिषु ॥३६॥

ध्वंस के लिये, स्त्रियों के रात में सो जाने पर मैंने जल्दी से हाथ में दिया लेकर रातों-रात मन्दिर तोड़ डाला (३१) और मन्दिर सूना छोड़ कर सबेरा होतेही घर से बाहर चला आया। प्रातःकाल वे सब देख कर बड़ी दुखी हुईं। परन्तु मेरे डर से कुछ न कहा। (३२) इस प्रकार का दुष्कर्मी मैं हो गया। एक वार मैं शिकार के लिये वन में गया, सो मुझ पापी को हाथी ने मार डाला। (३३) तब तो यमदूत लोग मेरी टांग बांध कर घसीटते हुए ले गये। चित्रगुप्त भी मेरे पापों का पूरा लेखा नहीं लगा सके। (३४) तब भटों को धर्मराज की आज्ञा हुई कि इसका आतिथ्य सत्कार प्रत्येक नरकों में दस २ हजार कल्प तक क्रमशः हो। (३५)

चौरासी कोटि नरकों की यातना मैं क्रम से अनुभव करता हुआ पीछे से क्रमशः स्वेदज, अण्डज, (३६) कुत्ता, गदहा, सूअर आदि योनियों में सौ सौ जन्म भुगतता

१ ग. ततस्ता। २ ग. पुस्तकीयोऽयं पाठः, आ० पु०—दुष्कर्म्म। ३ ग. नीतोऽहं यमदूतैश्च बध्वा पादे यमालयम्। ४ ख. मुवा ग्रसन्। ५ ग. निर्बन्धुर्यमभटा। ६ क, ख. 'अशीतिं चतुराधिक्य० श्लोकोऽयं नास्ति। ॐ सन्धिरार्षः।

श्वगर्दभवराहादिचतुष्पात्सु क्रमाज्जनिम् ।
एकैकस्यां शतं जन्म प्राप्याऽद्य ब्रह्मराक्षसः ।३७।।
जातोऽहं दशसाहस्रवर्षो क्षुत्तृट्प्रपीडितः ।
पुरा धृतो मया त्वेकः शिवभक्तो वनेऽत्र वै ।।३८।।
स दयालुर्मामवोचत् क्षुन्निवृत्तिं करोमि ते ।
मुञ्च मां मद्गिरा तिष्ठ वृक्षेऽस्मिंस्ते शुभं भवेत् ।।३९।।
तरुमूलगतान् रात्रौ भक्ष नाऽन्यान् बहिःस्थितान् ।
अद्य ते क्षुन्निवृत्तिः स्यादग्रे कालाच्छुभं भवेत् ।।४०।।
त्वया धृताश्च रात्रौ वै करदीपाः शिवान्तिके ।
आलयं ध्वंसता राजगृहे पूर्वभवे निशि ।।४१।।
तत्पुण्यं तेऽस्ति किञ्चित्तु फलं तस्य महद्भवेत् ।
मद्भक्षणान्ते स्वल्पैव क्षुन्निवृत्तिर्भवेदिह ।।४२।।
[1]बहुभक्षस्य तेऽद्याहं कुर्वे तृप्तिं तपोबलात् ।
अग्रेऽपि ते शुभं भूयादत्रैव त्वं स्थिरो भव ।।४३।।

हुआ अब ब्रह्मराक्षस हुआ हूँ। (३७) दस हजार वर्ष तक भूख प्यास के दुःख से पीड़ित हुआ हूँ। पहिले मैंने इसी वन में एक शिवभक्त को पकड़ पाया था। (३८) उस दयालु ने मुझ से कहा कि मैं तेरी क्षुधा तृषा की निवृत्ति करता हूँ, मुझे छोड़ दे और इसी पेड़ में रह, तेरा भला होगा। (३९) जो रात को इस पेड़ के तले बसें, उन्हीं को खाना और जो इसके बाहर हों, उन्हें मत खाना। आज तुम्हारी भूख मिटती है। काल पाकर तुम्हारा भला होगा। (४०) पूर्व जन्म में रात्रि में महल का शिवालय तोड़ते हुए तूने रात को शिव जी के निकट एक बार दिया रक्खा था। (४१) वही थोड़ा सा तेरा पुण्य है, परन्तु उस का बड़ा भारी फल होगा, और मुझे खा जाने से तुम्हारा कलेवे का भी काम न चलेगा। (४२) तुम बड़े भारी खानेवाले हो, तुम्हारी तृप्ति मैं

१ ग. बहुभक्ष्यस्य ।

इत्युक्त्वा तपसा तेन तद्दिने क्षुन्निवारिता ।
तद्वचोऽमृतपानेन तृप्तस्तद्दिनमावसम् ॥४४॥
[1]तृप्तं कृत्वा तद्दिने मां[2] गतः सोऽपि शिवास्तधीः ।
तदारभ्य च तद्वाक्यं सत्यं ज्ञात्वा वसन् तरौ ॥४५॥
तत्परेद्युर्यथापूर्वं क्षुत्तृषौ मां प्रबाधतः ।
[3]शतसंवत्सरं जातं तद्वाक्यस्यापि तापस ! ॥४६॥
अद्यापि [4]कोऽपि नायातस्तरुमूलं[5] त्वया विना ।
[6]भवद्दर्शनतः श्रेयो मम भावि न संशयः ॥४७॥
शिवभक्तवचः सत्यं कुर्वन् मामुद्धराऽऽशु भोः ।
न जाने केन पुण्येनाभवं जातिस्मरो मुने ! ॥४८॥

तपस्या के बल से करता हूँ, आगे भी तुम्हारा भला ही होगा, अब तुम यहीं ठहर जाओ । (४३) ऐसा कह कर उसने उस दिन की भूख रोकदी । उसके वचनरूपी अमृत के पीने से ही मेरी उस दिन तृप्ति हो गई । (४४) वह शिवभक्त मुझे उस दिन तृप्त करके चला गया । उसी दिन से मैं उसकी बात को सच मानता हुआ पेड़ में रहता हूँ । (४५) दूसरे दिन से फिर मुझे भूख प्यास सताने लगी । हे तपस्वी ! उसे कहे भी सौ वर्ष हो गये । (४६) और आपको छोड़ कर कोई भी पेड़ के नीचे नहीं आया, आपके दर्शन से मेरा कल्याण होनेवाला है इस में सन्देह नहीं है । (४७) शिवभक्त के वचन को सत्य करते हुए मेरा शीघ्र उद्धार कीजिये । हे भगवन् ! मैं नहीं जानता कि किस पुण्य से मुझे पूर्व जन्म की कथा स्मरण है । (४८) कुयोनि में जन्म होते हुए भी मुझ पाखण्डियों के वशवर्ती, शङ्करद्रोही और शिवनिन्दक को, कुयोनि में जन्म होते हुए भी, किस पुण्य से पूर्व जन्म की सुधि बनी रही ?

१ ग. तृप्तिं । २ ग. मे । ३ ग. शतं संवत्सरम् । ४ ग. केऽपि नायाता: । ५ ख, ०मूलो भवान् । ६ ख. भवतो दर्शनात् :

कुयोनिषु जनिर्मेऽभूत् पूर्वस्मृतियुता सदा ।
पाखण्डबुद्धिदुष्टं मां निन्दाद्रोहपरं शिवे ! ॥४९॥
उद्धर्तुं शिवभक्ताग्र्य[1] ! त्वां विना नैव कोऽपि भोः ।
भवादृशां जनिर्भूमौ पतितोद्धरणाय हि ॥५०॥
[2]यथेमौ राजमन्त्री (?) ते त्रातुं योग्यावहं तथा ।
सतां शरणमासाद्य न पुनर्याति दुर्गतिम् ॥५१॥
यो वा को वा महापापी दयासारा हि साधवः ।
इत्येवं वादिनं दीनं राक्षसं शिवयोगिराट् ॥५२॥
केनोद्धारो भवेदस्येत्यचिन्तयदनन्यधीः ।
स्मृत्वा शिवापराधादिध्वंसके [3]तीर्थलिङ्गके ॥५३॥
काशीस्थशिवकेदारतीर्थलिङ्गे विनिश्चयत् (?) ।
तयोः प्रभावादेवास्य समुद्धारो भवेदिति ॥५४॥

इसका पता मुझे नहीं लगता । (४९) हे शिवभक्तों में श्रेष्ठ ! आप के विना मेरा कोई उद्धार करनेवाला नहीं है, आप ऐसों का जन्म पृथ्वी पर पतितों के उद्धार के लिये ही होता है । (५०) जिस भांति ये राजा और मन्त्री आप से रक्षा किये जाने के योग्य हैं, वैसा ही मैं भी हूँ । भले लोगों की शरण जाकर फिर वह दुर्गति को प्राप्त नहीं होता, (५१) चाहे वह जो कोई हो, चाहे वह महापापी हो, क्यों कि साधुओं का सार दया है । इस भाँति दीन वचन जब राक्षस ने कहा तब शिवयोगी (५२) किस उपाय से उद्धार होगा इस बात को एकाग्र होकर विचारने लगा और उसके शिवापराधादि एवं तीर्थ तथा लिङ्ग के नाशकारी कर्मों का स्मरण करके (५३) यह निश्चय किया कि काशी में शिवकेदार तीर्थ और लिङ्ग इन दोनों के प्रभाव से इसका उद्धार हो सकेगा । (५४) तब सवेरे राजा और मन्त्री तथा सेना

१ ग. शिवभक्ताग्र २ ! । ख. यथा मे । ३ क. ०प्याति० ।

सहितो नृपमन्त्रिभ्यां सेनया रक्षसा सह ।
शिवविज्ञानवान् प्रातः प्रतस्थे काशिकां द्रुतम् ॥५५॥
मार्गे तमवदद् योगी पुरुषादं [1]कृतादरः ।
न भेतव्यं त्वया रक्षस्तव क्षेमं भविष्यति ॥५६॥
दुष्पापिनाऽपि भवता करदीपाः शिवाग्रतः ।
प्रकाशिता निशि पुरा आलयध्वंसबुद्धिना ॥५७॥
जातिस्मरस्तेन पुण्यप्रभावेणाधुनाऽभवत् ।
रावणादिभिरत्युग्रापराधा[2] घटिताः शिवे ॥५८॥
कैलासोत्क्षेपणाद्याश्च नन्दीशावमतिः[3] पुनः ।
[4]लिङ्गे शिलाप्रहारादिनियमैः प्राकृतैरपि ॥५९॥
अन्यैर्दैत्यैश्च देवैश्च दक्षादिभिरपि द्विजैः ।
शिवापराधो घटितो दयालुस्तानवत्[5] पुनः ॥६०॥

और राक्षस के साथ शिवविज्ञानवान् योगी ने शीघ्रता से काशी को प्रस्थान किया । (५५) रास्ते में उस योगी ने उस मनुष्य खानेवाले राक्षस से कह दिया कि राक्षस ! तू डर मत, तेरा कल्याण होगा । (५६) तूने महापापी होने और शिवालयध्वंस करने की बुद्धि रखने पर भी रात को हाथ में दिया लेकर शङ्कर के सामने उजियाला दिखाया। (५७) उसी पुण्य के प्रभाव से तुम्हें पूर्वजन्म की बातें स्मरण हैं । रावणादिक से भी शङ्कर का अति-उग्र अपराध हो पड़ा । (५८) जैसे कैलास का उखाड़ लेना, नन्दीश्वर का अपमान करना, लिङ्ग पर शिला फेंकना इत्यादि अनेक भाँति से हुआ । (५९) अन्य साधारण दैत्य, देवता तथा दक्षादिक ब्राह्मणों से भी शिवजी का अपराध बन पड़ा था । परन्तु दयालु शिवजी ने फिर उन लोगों की रक्षा कर ली । (६०) किए हुए अपराध को भी

१ ख. कृतादराद् । २ ग. ० पराधाद् । ३ ग. पुस्तकीयोऽयं पाठः, आ० पु०— ० मतिम् । ४ ग. 'लिंगे शिला०, इत्यारभ्य सार्द्धश्लोको नास्ति । ५ घ. तानवदत्पुनः ।

कृतमप्यपराधं स स्वसेवां मनुते हरः ।
पञ्च-क्रोशसमीपं त्वां नयामि तदनन्तरम् ॥६१॥
गत्वाहं पुनरायास्ये त्वदुद्धरणहेतवे ।
शिवापराधदोषघ्नं गौरीतीर्थोदमानये ॥६२॥
त्वां सिक्त्वा[1] दोषनिर्मुक्तं नेष्यामि त्वां शिवान्तिके ।
प्राचीनतीर्थे संस्नाप्य केदारं दर्शये ततः ॥६३॥
तल्लिङ्गदर्शनात् सद्यो मुक्तो भवसि निर्भयः ।
एवमाश्वासयन् मार्गे पञ्चक्रोशान्तमभ्यगात् ॥६४॥
पंचक्रोशात्परे देवभूमिपा गणनायकाः ।
राक्षसं वारयामासुरन्ये यातास्ततः पुरीम् ॥६५॥
शिवविज्ञानवान् योगी स्थाप्य रक्षस्त्वगात् पुरीम् ।
तिष्ठाऽत्र त्वं पुरीं यात्वा यावन्मे पुनरागमः ॥६६॥

शङ्कर भगवान् ने सेवा ही माना । अब तुम्हें मैं पञ्चक्रोश के समीप ले चलूँगा । (६१) वहाँ जाकर फिर मैं तुम्हारे उद्धार के लिये शिवापराध दोष को हरनेवाले गौरीतीर्थ के जल को ले आऊँगा । (६२) उसे तुम्हारे ऊपर छिड़क कर तुम्हें दोष से निर्मुक्त करूँगा और शङ्कर के समीप ले चलूँगा । प्राचीन तीर्थ में नहलाकर तब केदारजी का दर्शन कराऊँगा । (६३) उस लिंग के दर्शन से तू तुरन्त मुक्त होकर निर्भय पद को प्राप्त होगा । इस भाँति रास्ते में उसे ढाढस बँधाते पञ्चक्रोश तक उसे ले आये । (६४) पञ्चक्रोश के बाहर जो देवभूमि है, उसके रक्षा करनेवाले शिवगणों ने उस राक्षस को तो रोक दिया, और बांकी लोग पुरी में चले गये। (६५) शिवविज्ञानवान् योगी राक्षस को वहीं ठहरा कर आप पुरी में गये और उससे ऐसा कह गये कि 'जब तक मैं लौटकर न आऊँ, तब तक तू यहीं ठहर' (६६) ऐसा कहकर मुनिजी ने आकर देहली विनायक को प्रणाम किया और कहा कि

१ ख. कृत्वा ।

इत्युक्त्वा [1]त्वरयागत्य देहलीशं प्रणम्य च ।
यास्येऽहं परमेशस्य पञ्चक्रोशात्मके तनौ ॥६७॥
पादन्यासादिदोषोत्थ[2]दोषं[3] त्वं क्षन्तुमर्हसि ।
इति प्रार्थ्य गणेशानं सनृपामात्यसैनिकः ॥६८॥
सम्पूज्य विधिवत् पश्चात् पुरीं प्राविशदञ्जसा ।
स्नात्वादौ मणिकर्ण्यां स विश्वेशं सम्प्रणम्य च ॥६९॥
[4]सम्यक् पूज्य ततस्त्वागात् प्राचीनां मणिकर्णिकाम् ।
तस्यां यथाविधि स्नात्वा श्रीमत्केदारनाथकम् ॥७०॥
दृष्ट्वा सम्पूज्य विधिवत् केदारं लिङ्गरूपिणम् ।
स्मृत्वा हृदा विभो ! राज्ञाममन्यत कृतार्थताम् ॥७१॥
तीर्थोपवासश्राद्धादिकर्म्म राज्ञा सहाचरन् ।
दापयन् नृपमन्त्रिभ्यां ब्राह्मणेभ्योऽमितं धनम् ॥७२॥

'परमेश्वर का जो पञ्चक्रोशात्मक शरीर है, उसमें मैं जा रहा हूँ। (६७) इसमें पैर रखने से जो दोष होता है, उसके पाप को आप क्षमा करें, इस प्रकार राजा, मन्त्री और सेना के साथ प्रार्थना करके (६८) गणेशजी की विधान के साथ पूजा की और तब पुरी में प्रवेश किया। पहिले उन्होंने मणिकर्णिका स्नान और विश्वेश्वर को प्रणाम किया। (६९) भलीभाँति पूजा करने के बाद प्राचीन मणिकर्णिका आये। उसमें यथाविधि स्नान करके श्रीमान् केदारनाथ (७०) का दर्शन किया और लिङ्गरूपी केदार का विधिवत् पूजन किया। हृदय से स्मरण करके राजा के सहित अपने को कृतार्थ माना (७१) और राजा के साथ तीर्थोपवास और श्राद्धादिक किया। राजा तथा मन्त्री ने ब्राह्मणों को अमित धन दिया। (७२) विश्वेश्वरादिक सब लिङ्गों का भक्ति के साथ तत् तत् तीर्थों

१ क. तरसा गत्वा। २ ग. दोषं मे देव!। ३ ख. दोषान्। ४ ग. सम्पूज्य च।

विश्वेशादीनि सर्वाणि[1] दृष्ट्वा लिङ्गानि भक्तितः ।
तत्तत्तीर्थस्नानपूर्वं ततो रक्षोविमुक्तये ॥७३॥
हरम्पापाख्यरेतोद[2]गौरीतीर्थोदमाहरन् ।
जगाम रक्षोनिकटे शिवविज्ञानवान् कृती ॥७४॥
शिवापराधादिमहापातकघ्नं शुभोदकम् ।
महापापकृतो देहे रक्षसः समसिञ्चत ॥७५॥
तत्क्षणं तस्य देहात्तु निःसृता[3] धूमसन्ततिः ।
नीलधूमस्तोमचयैर्नभोदिग्मण्डलं ततम् ॥७६॥
क्षेत्रपालगणा दृष्ट्वा साश्चर्य्या विप्रमब्रुवन् ।
ब्रह्मन्! किमेतदाश्चर्यं धूमनिर्गमनं तनोः ॥७७॥
इति पृष्टो द्विजः प्राह तान् वृत्तं रक्षसः क्रमात् ।
अस्य पापौघसमिधो दग्धास्तीर्थाग्निनाऽधुना ॥७८॥

में स्नानपूर्वक दर्शन किया। तत्पश्चात् राक्षस की मुक्ति के लिए (७३) हरंपाप नामवाला जो रेतोद तीर्थ है, जिसे गौरी तीर्थ भी कहते हैं, उसमें से थोड़ा जल लेकर, पुण्यात्मा शिवविज्ञान वान् उस राक्षस के निकट गये (७४) और उस शिवापराधादि महापातक को हरनेवाले शुभ जल को उस महापापी राक्षस के देह पर छिड़का, उसी समय उसके देह से धूएँ का समूह निकला। नीले धूएँ के समूह से आकाश और दिशाएँ व्याप्त हो गईं। (७६) क्षेत्रपाल और गणों ने यह देखकर आश्चर्य्य के साथ ब्राह्मण से कहा—हे ब्राह्मण! यह क्या आश्चर्य्य है, इसके देह से यह धुआँ कैसे निकला? (७७) ऐसा पूछने पर ब्राह्मण ने उस राक्षस का वृत्तान्त क्रम से कहा। इसका महापापरूपी समिध तीर्थ की आग से अब जल गया। (७८) समिधा के जलने से जो नीला धूआँ उठा है, उसी ने आकाश को ढँक लिया है। ऐसा कहते कहते

१ ग, लिङ्गानि दृष्ट्वा सर्वाणि भक्तितः। २ ग. रेतोदं। ३ ग. निर्गता।

समिद्दाहोद्भवो धूमो नीलस्त्वाकाशमावृणोत् ।
इत्युक्तमात्रे रक्षस्त्वं त्यक्त्वा [1]सोऽभूच्छुभाकृतिः ॥७९॥
तेन साकं द्विजः काशीमागत्य मणिकर्णिकाम् ।
स्नापयित्वा च विश्वेशं दर्शयित्वा खिलां पुरीम् ॥८०॥
[2]श्रीमत्केदारनिकटमानयामास योगिराट् ।
संस्नाप्य गौरीतीर्थे तमुक्त्वा तीर्थस्य वैभवम् ॥८१॥
श्रीमत्केदारलिङ्गश्चादर्शयद् विधिपूर्वकम् ।
तत्क्षणं चागतं यानं कैलासात् पार्षदैः सह ॥८२॥
बाष्कलं यानमारोप्य गणाः शम्भोर्मुदाऽनयन् ।
पुनरावृत्तिरहितं शिवस्थानं परात्परम् ॥८३॥
पुलकाञ्चितसर्वाङ्गः शिवविज्ञानवाँस्ततः ।
राजा च मन्त्री सैन्यश्च साश्चर्याश्चापरे जनाः ॥८४॥
दृष्ट्वा मुक्तिं राक्षसस्य तीर्थलिङ्गं[3] प्रशंशिरे ।
वाष्कलस्य च तद्देहं प्राकृतं पतितं द्विज ! ॥८५॥

वह राक्षस स्वरूप को छोड़ कर सुन्दर स्वरूपवाला हो गया। (७९) उसके साथ ब्राह्मण ने काशी में आकर उसे मणिकर्णिका में नहवाया, उसे विश्वेश्वर का दर्शन कराया और सम्पूर्ण पुरी की यात्रा करवाई। (८०) तब श्रीमान् केदारनाथ के निकट योगिराज ले गये, गौरीतीर्थ में नहलाकर उससे तीर्थ की महिमा कही (८१) और श्रीमान् केदारलिङ्ग का विधिपूर्वक दर्शन कराया। उसी समय पार्षदों के सहित कैलास से विमान आया। (८२) वाष्कल को विमान पर बिठा कर शम्भु के गण खुशी खुशी उसे आवागमन से रहित शिवजी के परात्पर स्थान को ले गये। (८३) शिवविज्ञानवान् योगी का शरीर तब पुलकित हो उठा, राजा, मन्त्री और सेना के लोग यह देखकर चकित हो गये। (८४) उस राक्षस की मुक्ति को देखकर तीर्थ और लिङ्ग की प्रशंसा करने

१ ख. ० भूत्स शुभाकृतिः। २ ख. 'श्रीमत्केदार०' श्लोकोऽयं नास्ति। ३ ग. लिङ्ग।

प्राक्षेपयन् महातीर्थे सद्यो [1]मुक्तिप्रदे मुदा ।
सद्यः पापहरं यस्माद्धरम्पापाभिधं मुने ! ॥८६॥
वामदेव ! शृणु परां शिवविज्ञानवद्गतिम् ।
नरनारायणाख्यं तं नृपं विप्रं च मन्त्रिणम् ॥८७॥
शिष्यत्वेन [2]मुनिर्ग्राह्य (?) शिवज्ञानमुपादिशत् ।
[3]पशुपाशपतिज्ञानात् सद्गुरोरुपदेशतः ॥८८॥
तृणीकृत्य जगत्सर्वं गुरोः पार्श्वे व्यतिष्ठताम् ।
निस्पृहौ राज्यविभवे दृष्ट्वा योगी जगाद तौ ॥८९॥
[4]विष्णुत्वं प्राप्य राजेन्द्र ! त्वं भुङ्क्ष्व पदवीं वराम् ।
विरिञ्चित्वं त्वया प्राप्यं मन्त्रिन् भुङ्क्ष्वोत्तमं पदम् ॥९०॥

लगे । वाष्कल का वह पञ्चभौतिक देह गिर गया । (८५) उसे सद्यः मुक्तिप्रद महातीर्थ में ब्राह्मण ने फेंकवा दिया । हे मुनि ! सद्यः पाप को हरने से इस तीर्थ का नाम हरम्पाप है । (८६) हे वामदेव-जी ! अब शिवविज्ञानवान् की परा गति सुनो । नर-नारायण नामवाले राजा और उसके ब्राह्मण मन्त्री को मुनिजी ने अपने शिष्यत्व में ग्रहण कर लिया (८७) और उनको शिवज्ञान का उपदेश दिया। पशुपाशपति के ज्ञान से तथा सद्गुरु के उपदेश से (८८) सम्पूर्ण जगत् को तिनका मानते हुए वे दोनों गुरु के पास रहने लगे। उन दोनों को राजवैभव से निःस्पृह देखकर योगी ने उनसे कहा कि (८९) हे राजेन्द्र ! तुम विष्णुत्व को प्राप्त होओ और वड़ी भारी पदवी को भोगो । हे मन्त्री ! तुम ब्रह्म पद को प्राप्त होओ और उत्तम पदवी का भोग करो । (९०) तुम लोगों ने मेरे लिये अपना देह राक्षस के भोजन के लिये दे दिया, सो बिना उस फल को भोगे निश्चय करके तुम शङ्कर के पद को

१ ग. मुक्तिप्रदायके । २ ग. अनुग्राह्य । ३ ग. ततः पशुपति० । ४ ख. पुस्तके श्लोकोऽयं नास्ति । ग. पुस्तके ९१ तमश्लोकात् परं पठितः ।

युवां मत्कारणे देहत्यागिनौ रक्षसे पुरा ।
अभुक्त्वा तत्फलं शम्भोः पदं [1]नायास्यथो युवाम् ॥६१॥
युवां सकामौ मत्सेवां कृतवन्तौ महत्तराम् ।
निष्कामौ यदि सेवेतां मुक्तिमद्यैव चाप्स्यथः ॥६२॥
तस्माद् युवां राज्यतन्त्रं गत्वा कुरुतमादरात् ।
न वाक्यं मे वृथा भूयात् [2]गच्छेतां मम शासनात् ॥६३॥
इत्याज्ञाप्य महायोगी नभोमासि शिवाग्रतः ।
पूर्णिमायां सोमवारे गौरीतीर्थे विगाहयन् ॥६४॥
चक्रे समाधिं केदारनाथाग्रे क्षणमात्रकम् ।
मूर्द्धरन्ध्रेणाप[3] पदं पुनरावृत्तिवर्जितम् ॥६५॥
ततो राजा च मन्त्री च [4]निन्दन्तौ राजसम्पदम् ।
तीर्थे क्षिप्त्वा गुरोर्देहं गुरुपूजाविधानतः ॥६६॥

प्राप्त न होगे। (९१) तुम दोनों ने सकाम होकर मेरी बड़ी भारी सेवा की। यदि तुम दोनों ने निष्काम सेवा की होती, तो आज ही तुम लोगों की मुक्ति हो जाती। (९२) इसलिए तुम लोग जाकर आदर के सहित राज्य करो। मेरी बात झूठी न हो, मेरी आज्ञा से जाओ। (९३) यह आज्ञा देकर उस महायोगी ने श्रावण पौर्णमासी को, जिस दिन सोमवार भी था, शङ्कर के सामने गौरी तीर्थ में नहाकर (९४) केदारनाथ जी के सामने क्षणमात्र समाधि लगाई और ब्रह्मरन्ध्र द्वारा आवागमन से रहित पद को प्राप्त किया। (९५) तब राजा और मन्त्री ने राजसम्पदा की निन्दा करते हुए गुरुपूजा के विधान से गुरुजी के शरीर का तीर्थ में प्रवाह कर दिया। (९६) गुरु की आज्ञा का उल्लङ्घन नहीं करना चाहिये इस ख्याल से देश को चले गये। केदारनाथ और हरपाप तीर्थ को नमस्कार किया, विश्वेश्वरादिक लिङ्ग और काशी पुरी

१ गपुस्तकीयोऽयं पाठः श्रा० पु०—नायाति वां ध्रुवम्। २ ग. गच्छत। ३ ग. प्रापदं। ४ ग. निन्दित्वा राजसम्पदः।

गुरोराज्ञा नैव लङ्घ्येत्यगातां[1] निजदेशकम् ।
नत्वा केदारनाथञ्च हरपापञ्च तीर्थकम् ॥९७॥
विश्वेशादीन् तथा काशीं नत्वा स्तुत्वा च वैभवम् ।
गत्वा स्वदेशाधिपत्यं [2]कृतवन्तावकण्टकम् ॥९८॥
कालेन निधनं [3]प्राप्तावभूतां विष्णुपद्मजौ ।
तौ युवां दुर्लभपदं प्राप्तौ मद्भक्तसेवया ॥९९॥
पदान्ते मत्पदं वां हि [4]लभेन्मद्भक्तशासनात् ।
युवां स्वकार्ये गच्छेतां यथेच्छं सुखमाप्स्यथः ॥१००॥
इत्युक्तौ परमेशेन मुने ! पद्मजमाधवौ ।
सर्वथा नैव गच्छाव इत्युक्ते परमेश्वरः ॥१०१॥
पराशक्तिमुखं दृष्ट्वा संज्ञया शिक्षयेति तौ ।
[5]आज्ञापयत्तदा देवीं तावाज्ञापयदादरात् ॥१०२॥

की स्तुति एवं प्रणाम करके, अपने देश को गये और गुरु का स्मरण करते हुए अपने राज्य का शासन करने लगे। (९८) समय पाकर शरीर त्याग किया और वे ही विष्णु और ब्रह्मा हुए। वे ही तुम लोग हो, मेरे भक्त की सेवा से तुम दोनों ने दुर्लभ पद पाया है। (९९) अधिकार पूर्ण होने पर मेरे भक्त के आज्ञानुसार तुम दोनों मेरे पद को प्राप्त होगे। तुमलोग अपने २ काम पर जाओ, जैसी तुमलोग इच्छा करोगे, वैसा सुख तुम दोनों को मिलेगा। (१००) परमेश्वर के ऐसा कहने पर हे मुनि ! ब्रह्मा और विष्णु ने परमेश्वर से कहा कि हम लोग तो किसी प्रकार न जायेंगे। (१०१) तब पराशक्ति का मुख देखकर इशारे से उनसे दोनों को शिक्षा देने की आज्ञा दी, और देवी ने अँगली के इशारे से उन दोनों को सादर आज्ञा दी। (१०२) वे दोनों कोश में जाकर जिसमें करोड़ों पेटियाँ भरी हुई थीं, दो ले आये, और

१ ग. यातां। २ ग. पुस्तकीयोऽयं पाठः, आ० पु०—कृतवन्तौ गुरुं स्मरन्। ३ ख. प्राप्य अभूताम्। ४ ग. लभ्यं मद्भक्तशासनात्। ५ ग. आज्ञां प्राप्य।

अङ्गुल्या कोशमाविश्य [1]पूर्णं तं [2]भूतकोटिभिः !
आभ्यां [3]भूतद्वयं शीघ्रमानयित्वा तयोर्मुखम् ॥१०३॥
उद्घाट्य दर्शयामास जीवराशिं सुपूरितम् ।
जीवद्वयं ततो गृह्य[4] चैकमाह महेश्वरी ॥१०४॥
ब्रह्मा भवेति विष्णुस्त्वं भवेत्याह द्वितीयकम् ।
[5]तत्क्षणं ब्रह्मविष्णू तौ जातौ बद्धाञ्जली [6]क्षणात् ॥१०५॥
प्राचीनावाह सा देवी विशतं मूलके युवाम् ।
युवयोः कार्य्यमेतौ हि क्रियेतां विशतं युवाम् ॥१०६॥
बद्ध्वा मूलमुखं कोशे प्रक्षिपामि त्वराऽस्ति मे ।
दृष्ट्वा शक्त्याः प्रभावं तौ प्राचीनौ विधिमाधवौ ॥१०७॥
श्रुत्वा देव्याः वचः शीघ्रं पेततुर्दण्डवद् भुवि ।
मूलप्रविष्टयोर्देवि ! निर्गमस्त्वावयोः कदा ॥१०८॥

उनका मुँह खोल कर (१०३) दिखलाया। उनमें जीवों के ढेर के ढेर भरे हुए थे। उनमें से दो जीवों को पकड़ कर एक से महेश्वरी ने कहा—(१०४) तू ब्रह्मा हो, और दूसरे से कहा कि तू विष्णु हो। उसी क्षण वे दोनों ब्रह्मा एवं विष्णु हो गये और उन्होंने हाथ जोड़ कर नमस्कार किया। (१०५) तब पुराने ब्रह्मा और विष्णु से देवी ने कहा कि अब तुम लोग इन पेटियों में प्रवेश करो, तुम दोनों का काम ये दोनों करेंगे। तुम दोनों अब इनमें प्रवेश करो। (१०६) पेटियों का मुँह बन्द करके मैं अब कोश में डाल दूँगी। मुझे जल्दी है। पुराने ब्रह्मा और विष्णु ने शक्ति का प्रभाव देख कर (१०७) और वाणी सुनकर, दण्डवत् प्रणाम किया और बोले कि पेटियों में प्रविष्ट होने पर हम लोग कितने दिनों में निकलेंगे? (१०८) अनेक कोटि पेटियाँ हैं और उनमें जीव राशियां भरी

---

१ ग. पूरितं मूलकोटिभिः। २ ग. ख. मूर्त्ति। ३ ख. मूर्त्ति, ग. मूल। ४ ग. नीत्वा। ५ ग. नमन्तौ विष्णुब्रह्माणौ। ६ ग. पुस्तकीयोऽयं पाठः आ० पु०—नमन्।

अनेककोटिभूतेषु[1] जीवराशिभरेषु च ।
न जाने केन पुण्येन पदं प्राप्ताविमौ[2] खलु ॥१०९॥
कदाचिदेतौ निर्वेदं प्राप्यायातौ हि चेत्तदा ।
आवामेव ब्रह्मविष्णू भूयास्वेति च को विधिः ॥११०॥
तस्माद्गच्छाव कार्ये वां क्षमस्वागांसि चावयोः ।
इतः परं नागमिष्यावहेऽस्तं नाविहागमः ॥१११॥
दासयोरावयोर्देवि ! दयां कुरु दयानिधे ! ।
नौ[3] पदान्ते स्थानमत्र[4] प्राप्तं चेदावयोरलम् ॥११२॥
इति प्रार्थयतोर्देवी हसन्त्याह[5] पुनर्वचः ।
गर्विष्ठौ हि युवां शिक्षा कर्त्तव्या शिवशासनात् ॥११३॥
तथापि मद्भक्तवाक्यगौरवाद् विसृजामि वाम् ।
इत्युक्त्वा तौ तदा देवी रुद्रं कृत्वैकजीवकम् ॥११४॥

हैं न जाने किस पुण्य से इस पद को हम लोगों ने पाया है ? (१०९) कदाचित् ये दोनों भी ऊब कर ही आये हों तो फिर हम लोग ब्रह्मा तथा विष्णु होंगे इसका क्या ठिकाना है ? (११०) अत एव हम लोग अपने काम पर जायेंगे, आप हमारे अपराध को क्षमा करें । इसके बाद इस प्रकार की अवहेलना हम लोगों से न होगी । (१११) हे देवि ! हम लोग आप के दास हैं, हे दयानिधे ! हम पर दया कीजिये । अधिकार के अन्त में हम लोग आपके स्थान में प्राप्त हों, इतना ही हम लोगों के लिये पर्याप्त है । (११२) इस भाँति प्रार्थना करने पर देवी हँसती हुई फिर बोली—तुम लोगों को गर्व है, सो शिवजी की आज्ञा से तुम लोगों की शिक्षा होनी चाहिये । (११३) फिर भी भक्त के वाक्य के गौरव से मैं तुम्हें छोड़ देती हूँ । ऐसा कह कर देवी ने एक जीव को रुद्र बनाया (११४) और उन नये त्रिमूर्तियों को, नया ब्रह्माण्ड रच

१ ख. मूर्त्तेषु, ग. मूलेषु । २ ग. विमौः । ३ ग. त्वत्पदान्ते । ४ ग. प्राप्यं । ५ ग. पुस्तकीयोऽयं पाठः आ० पु० हसन्नाह ।

नूतनाँस्तान् त्रिमूर्तींश्च सृष्ट्वाण्डं नूतनं पृथक् ।
[1]संप्रेष्य तत्र जीवानां सृष्टिस्थितिलयाय हि ॥११५॥
गतास्ते चरणौ नत्वा पराशक्तीशयोस्तदा ।
दृष्ट्वा तदद्भुतं त्वेतौ रुद्रेण सह पादयोः ॥११६॥
देव्याश्च परमेशस्य मुक्ताविति झटित्यगुः ।
[2]अस्मद्भाग्यविशेषेण पुनः प्राप्ताः स्वकं पदम् ॥११७॥
नो चेत्कृतागसान्नः का गतिर्भवति शङ्कर ! ।
इति रुद्रं वदन्तौ तौ रुद्रोऽप्याह तथेति च ॥११८॥
रुचितं न वचो वां मे इतो वा जाग्रतं युवाम् ।
इति संभाष्य ते स्थानं स्वं स्वमापुर्गतज्वराः ॥११९॥
पूर्वं गतेषु चैतेषु महाकैलासमन्तरे ।
रमागौर्योश्च संवादो ह्यभवद् मेरुपर्वते ॥१२०॥
शपथेन तदप्यग्रे वक्ष्यामि मुनिपुङ्गव ! ।
एवं सनत्कुमारोऽसौ वामदेवमुपादिशत् ॥१२१॥

कर उसमें सृष्टि, स्थिति और लय करने के लिये भेज दिया। (११५) तब वे लोक पराशक्ति और परमेश्वर के चरणों को नमस्कार करके गये। इस अद्भुत वृत्त को देखकर ये दोनों रुद्र के साथ (११६) देवी और परमेश्वर के चरणों को नमस्कार करके, अपने को मुक्त पाकर तुरन्त चल दिये और कहने लगे कि 'भाई अपने विशेष भाग्य से फिर अपना पद पाया'। (११७) नहीं तो, हे शङ्कर ! हम अपराधियों की क्या गति होती ? इस प्रकार जब रुद्र से कहा तो उन्होंने भी कहा कि ठीक है, (११८) तुम लोगों को मेरी बात नहीं रुची, अब से सावधान रहो। ऐसी बात चीत करके वे लोग विगत ज्वर हो, अपने अपने स्थान को गये। (११९) इन लोगों के महाकैलास जाने से पहिले रमा और गौरी से मेरुपर्वत पर शपथपूर्वक बात चीत हुई थी। (१२०) हे मुनि !

१ ग. अप्रेषीत। २ ग. तस्माद्।

अनवद्ये ! तदेवाहं त्वामवोचमघापहम् ।
चरित्रं परमेशस्य रहस्यं सर्वकामदम् ॥१२२॥
एवमुक्त्वा नाथशर्मा जायां सर्वगुणान्विताम् ।
आनन्दाश्रुसुततनुर्विवशोऽभूच्छिवं स्मरन् ॥१२३॥

सूत उवाच—

शृणुध्वं मुनयः सर्वे [1]मद्गुरुर्मां कथामिमाम् ।
दम्पत्योश्च सुसंवादामद्भुतां सर्वपापहाम् ॥१२४॥

ऋषय ऊचुः—

नभोमासि विधोर्वारे पूर्णिमास्नानमाचरन् ।
शिवविज्ञानवान् योगी कस्मिन् तीर्थे तनुं जहौ ॥१२५॥
वदास्माकं महाबुद्धे ! श्रोतुमिच्छावतां कथाम् ।
शृणुध्वं मुनयः सर्वे पापतूलानलां कथाम् ॥१२६॥

पुंगव मैं उसे आगे कहूँगा। इस प्रकार से सनत्कुमार ने वामदेव को उपदेश दिया। (१२१) हे अनवद्ये ! वही पापों को हरनेवाली कथा मैं तुमसे कहता हूँ। यह परमेश्वर का रहस्य चरित्र सब कामों को देनेवाला है (१२२) नाथ शर्मा अपनी सर्वगुणयुक्त गृहिणी से ऐसा कह कर आनन्दाश्रु से शरीर भिगाये शिव जी को स्मरण करते हुए मग्न हो गये। (१२३) सूत बोले—हे मुनि लोगो ! इस अद्भुत सब पापों को हरनेवाली पति पत्नी की बात चीत की कथा मेरे गुरु ने मुझ से कही थी। (१२४) ऋषि लोग बोले—सावन के सोमवार पौर्णमासी तिथि को स्नान करके शिवविज्ञानवान् योगी ने किस तीर्थ में शरीर छोड़ा ? (१२५) हे महाबुद्धे ! हम से कहो, हम लोग यह कथा सुनना चाहते हैं। सूत ने कहा कि हे मुनि लोग पापरूपी रूई के लिये अग्नि सदृश इस कथा को आप लोग सुनिये। (१२६) जब शङ्कर ने शिवनिन्दा का पाप हरनेवाला तीर्थ गौरी जी को बतलाया, उस दिन सावन की

[1] ग. यद्रहस्यां कथामिमाम्।

शिवनिन्दाघहं शम्भुस्तीर्थं गौर्य्यै यदाऽवदत् ।
तदा नभोमासयुक्तसोमवारा तु पौर्णिमा ॥१२७॥
तद्दिने नियमं कृत्वा सस्नौ द्वादशवत्सरान्[१] ।
तद्वत्सरान्तेऽपि नभःपूर्णिमा सोमवारगा ॥१२८॥
तदा प्रसन्नो भगवान् गौर्यै वरमदाद् मुदा ।
अम्बिका लोकरक्षायै तदा शम्भुमयाचत ॥१२९॥
सर्वाघहं विशेषात्तेऽपराधघ्नं भवत्विदम् ।
मम नाम्ना जगत्यस्मिन् ख्यातं भवतु सर्वदा ॥१३०॥
सदा सर्वाघहं [२]त्वस्तु नभोमासि ततोऽधिकम् ।
तत्रापि सोमवारे तु तीर्थं सर्वाघनाशनम् ॥१३१॥
तत्रापि पूर्णिमायुक्तसोमवारेऽखिलाघहम् ।
यस्माद् ममोपदेशस्तु नभोमास्यभवत्त्वया[३] ॥१३२॥

पूर्णिमा थी । (१२७) उसी दिन से नियम करके भगवती ने बारह वर्ष स्नान किया । उस वर्ष के अन्त में भी श्रावणी पूर्णिमा को सोमवार था । (१२८) तब प्रसन्न होकर भगवान् ने गौरी को आनन्द पूर्वक वर दिया और अम्बिका ने लोक-रक्षा के लिये शम्भु से माँगा (१२९) कि यह तीर्थ सब पापों को हरनेवाला और विशेषतः आपके अपराधों को हरनेवाला हो, और मेरे नाम से इस संसार में इसकी सदा ख्याति हो । (१३०) यह सदा सब पापों का नाश करनेवाला हो । परन्तु श्रावण मास में विशेष करके पाप हरण करे, फिर भी सोमवार को यह तीर्थ सब पाप का नाश करे । (१३१) तिस पर भी यदि पूर्णिमा युक्त सोमवार हो तो कोई भी पाप ऐसा नहीं रहे, जिसका नाश न हो जाय, क्योंकि श्रावण में ही आपने मुझको उपदेश दिया था । (१३२) मेरे वर प्रसाद के दिन फिर भी श्रावण ही आया, अत एव इस महीने

१ ग. पुस्तकस्थोऽयं पाठः, आ० पु०—द्वादश वत्सरम् । २ ग. किन्तु । ३ ग. भवत्तव ।

[1]वरप्रसादमपि मे नभोमास्यभवत् पुनः ।
तस्माज्जनानां तन्मासि स्नातानां मम तीर्थके ॥१३३॥
तत्रापि सोमवारेषु सर्वाभीष्टप्रदो भव ।
पूर्णिमा सोमवारस्तु तन्मासे दुर्लभो भुवि ॥१३४॥
जनानां पुण्यपाकेन घटितश्चेत्तदा विभो ! ।
स्नातानां तद्दिने तीर्थे यथा मयि कृपा तव ॥१३५॥
कृपां कुरु तथा तेषु भोगदो मोक्षदो भव ।
तथेति वरदो देवस्तां देवीमदिशद्वरम् ॥१३६॥
सोमवान् वाष्कलो गौरी जाह्नवी नैगमेयकः ।
दिवोदासादयः सर्वेऽप्यपराधकृतः शिवे ॥१३७॥
नभःसोमदिनस्नानाद् विमुक्ताः शङ्करागसः ।
तद्दिनं दुर्लभमिति शिवविज्ञानवानपि ॥१३८॥
मुक्तोऽभूत् तद्दिनस्नानात्[2] तारयद् वाष्कलं तथा ।
तस्मिन्नभःसोमवारे मज्जनं दुर्लभं नृणाम् ॥१३९॥

में मेरे तीर्थ में नहानेवालों को, (१३३) विशेषतः सोमवार के दिन आप सब अभीष्ट को देनेवाले हों। उस महीने में पूर्णिमा के दिन सोमवार पृथ्वी में दुर्लभ है। (१३४) यदि मनुष्यों के पुण्य-पाक से कभी आ पड़े, तो हे विभो ! उस तीर्थ में नहानेवालों पर जैसी मुझपर कृपा है, वैसी कृपा करो। (१३५) उन्हें भोग और मोक्ष दो। वर देनेवाले देव ने देवी को 'तथास्तु' कहकर वरदान दिया। (१३६) सोमवान्, वाष्कल, गौरी, गङ्गा, नैगमेय, और दिवोदासादि सभी ने शिवजी का अपराध किया (१३७) और श्रावण के सोमवार को स्नान करके शङ्कर के अपराध से विनिर्मुक्त हुए। वह दिन दुर्लभ है। उसी दिन शिवविज्ञानवान् भी मुक्त हुए (१३८) और उसी दिन स्नान करा के वाष्कल को भी उन्होंने तारा। उस श्रावण के सोमवार

१ ग. वरप्रसादो यदयं। २ ग. तारयन्।

इति सकलजनाघक्षालनं तीर्थवर्य्यं
परमशिवजनानां वैभवं लिङ्गमूर्त्तिम्[1]।
नमति च सुकथां तां यः शृणोतीशभक्त्या
व्रजति स शिवधाम ध्वस्तपापौघसङ्घः ॥१४०॥
शृणुत मुनिवरेन्द्राः ! दुर्लभं तद्रहस्यं
[2]त्वकृतसुकृतकानां शङ्करेऽभक्तिभाजाम् ।
अहह ! किमिति वच्ये मुक्तिरास्तेऽञ्जसास्मिन्
परमशिवमहिम्नि[3] श्रोतुमिच्छा तु येषाम् ॥१४१॥

इति श्रीकाशीमूलरहस्ये ब्रह्मवैवर्त्ते खिले काशीकेदारमाहात्म्ये षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

का स्नान मनुष्यों के लिये दुर्लभ है, (१३९) सब जनों के पापों को हरनेवाले इस तीर्थ को और परम शिवभक्तों की महिमा को, और लिङ्ग-मूर्ति को जो नमस्कार करता है, और शङ्कर की भक्ति के साथ जो इस अच्छी कथा को सुनता है, वह पाप समूहों को नष्ट करके शिवधाम को प्राप्त होता है। (१४०) हे मुनीन्द्रो ! सुनो जिन्होंने पुण्य नहीं किया है और जिनको शिव-भक्ति नहीं है, उनके लिये यह रहस्य दुर्लभ है। और क्या कहें, जिनको शिवजी की महिमा सुनने की इच्छा है, उनको मुक्ति अतिसुलभ है।

यह ब्रह्मवैवर्त के खिलग्रन्थ काशीमूलरहस्य के अन्तर्गत काशीकेदारमाहात्म्य का छठा अध्याय समाप्त हुआ।

---

१ ग. मूर्तेः । २ ग. त्वनुकृतसुकृतानां । ३ ग. महिम्नः ।

अथ सप्तमोऽध्यायः ।

ऋषय ऊचुः—

सूत सूत ! महाबुद्धे ! ब्रह्मविष्णू गतौ[1] तदा ।
महाकैलासमत्र श्रीगौर्य्या लक्ष्म्याश्च वादतः ॥ १ ॥
मेरौ किमासीच्छपथं ततो[2] ब्रूहि तपोधन ! ।
सनत्कुमारयोगीन्द्रः स किमाह च तं पुनः ॥ २ ॥
तद् वदस्व महाबुद्धे ! रहस्यं श्रोतुमिच्छतां ।
श्रोतुं[3] योग्या यदि हि[4] नः पाहि श्रावय सत्कथाम् ॥ ३ ॥

दो०—रमा कह्यौ परिहास में हर तें अधिक प्रभाव ।
हरि को सो न सह्यौ उमा पतिव्रत सहज सुभाव ॥ १ ॥
हरहिं बूझि पूछत उमा प्रतिदिन कथा पुरानि ।
दिन शत लौं पद्मा कहति नैगमेय तें जानि ॥ २ ॥
सो०—भयो हृदय अति क्रोध, परुष वचन शिव को कह्यौ ।
प्रभु ने कियो प्रबोध, कहि अष्टोत्तर शत कथा ॥ ३ ॥
पूछ्यौ रमहिं प्रचारि, नैगमेय जान्यौ नहीं ।
भई रमा की हारि, चूक चतुरई में सदा ॥ ४ ॥

ऋषियों ने कहा—हे महाबुद्धि सूतजी ! ब्रह्मा, विष्णु तो महाकैलास को गये, परन्तु मेरु पर्वत पर गौरी तथा लक्ष्मी के वाद-विवाद में (१) कौन सा शपथ (बाजी) हुआ, सो हे तपोधन ! आप हमसे कहिये । सनत्कुमार योगीन्द्र ने वामदेवजी से जो कहा (२) हे महाबुद्धि ! वह सब हमसे कहिये, हमें इस रहस्य को सुनने की इच्छा है। यदि हम लोग सुनने के योग्य हों, तो इस अच्छी कथा को सुनाकर हम लोगों को कृतार्थ कीजिये । (३)

---

१ क. गते । २ ख. ग. तन्मे । ३ ख. पुस्तके पादद्वयमिदं नास्ति । ४ ग. वयं ।

सूत उवाच—

शृणुध्वं मुनयः! सर्वे नाथशर्माणमप्यमुम्।
प्रश्नं पप्रच्छ सा देवी ह्यनवद्या तदाऽऽह सः॥ ४॥

नाथशर्मोवाच—

शृणु देवि! ब्रह्मविष्णुरुद्राणां गमनान्तरे।
वाणीगौरीरमास्तिस्रश्चागता मेरुपर्वते॥ ५॥
विलासार्थं[1] तत्र मुदा खेलं कृत्वा गिरौ स्थिताः।
तदा परस्परं वार्तासँल्लापे[2] प्रकृते मुदा॥ ६॥
रमा प्रोवाच मे भर्त्ता सर्वज्ञ इति शाङ्करीम्।
महाकैलासभूमावप्युच्चं[3] प्राप्नोति पूजनम्॥ ७॥
त्वद्भर्त्तुरपि संमानं दापयत्येव नान्यथा।
ब्रह्मणोऽपि तथा पूजां [4]सन्दापयति मे पतिः॥ ८॥
तव भर्त्ता न जानाति मम भर्त्तेव[5] लौकिकम्।
केवलं प्रलयाधीशः भ्रमत्युन्मत्तवत् सदा॥ ९॥

सूतजी बोले—हे मुनि लोग! सुनो, यही प्रश्न अनवद्या ने नाथशर्मा से किया था और उन्होंने उससे यह कथा कही थी (४)। नाथ शर्मा बोले—हे देवि! सुन, ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र के चले जाने पर वाणी, गौरी और रमा तीनों देवियाँ मेरु पर्वत पर गईं। (५) ये केवल विहार के लिये गईं थीं। वहाँ आनन्द से खेल करती रहीं, आपस में बात करते-करते हँसी में (६) रमा ने कहा कि हे उमे! मेरे पति सर्वज्ञ हैं, महाकैलास में भी उनकी बड़ी पूजा होती है। (७) तुम्हारे पति को भी सम्मान दिलानेवाले वे ही हैं, और वे ही ब्रह्माजी को भी पूजा दिलाते हैं। (८) मेरे पति की भाँति तुम्हारे पति जानकार नहीं हैं। वे प्रलय के मालिक हैं। केवल लौकिक बातें जानते हैं, और

१ ग. विनोदार्थं। २ ग. वार्तासँल्लापौ प्रकृतौ। ३ ग. पत्युच्चम्। ४ ग. सम्पादयति। ५ ग. भर्त्तुश्च।

भूतं भव्यं भविष्यच्च ज्ञात्वा पालनकर्म्मणि ।
प्रवृत्तस्तेन सर्वज्ञस्तस्य पत्नी त्वहं तथा ॥१०॥
जानाम्यहं पुरावृत्तं सर्वं त्वं नासि तादृशी ।
इति खेलाव्याजतस्तामाकर्ण्य गिरमम्बिका ॥११॥
रमामुवाच साक्षेपं सर्वमद्य स्फुटं भवेत् ।
आगमिष्यति ते भर्त्ता तन्मुखाच्छ्रोष्यसि प्रियम् ॥१२॥
त्वयोक्तं खेलनव्याजात् तथापि न सहे वचः ।
सर्वज्ञत्वं तव पतेर्मत्पतेश्च स्फुटं भवेत् ॥१३॥
कथया त्वां विजेष्यामि [1]त्वयाप्यज्ञातया ध्रुवम् ।
सर्वज्ञस्तव भर्त्तास्ति त्वं तस्य गृहिणी तथा ॥१४॥
द्रक्ष्यामि युवयोः प्रज्ञां सर्वज्ञत्वञ्च वां रमे ! ।
आवयोश्शपथे वाणि ! साक्षिणी त्वं [2]जयाजये ॥१५॥

पागलों की भाँति घूमा करते हैं। (९) परन्तु मेरे पति भूत, भविष्य और वर्तमान को जानते हुए पालन कर्म में प्रवृत्त हैं, इसी से वे सर्वज्ञ हैं, और उनकी पत्नी होने से मैं भी वैसी ही हूँ। (१०) मैं सब पुरानी वातें जानती हूँ, तुम नहीं जानती। इस प्रकार हँसी के बहाने से उनकी कही हुई वात सुनकर (११) अम्बिका ने आक्षेप के साथ रमा से कहा कि आज ही सब वातें साफ हो जाती हैं। तुम्हारे भर्ता आते हैं, उनके मुख से शुभ समाचार सुन लेना। (१२) यद्यपि तुमने हँसी के बहाने से कहा, फिर भी मैं तुम्हारी इस बात को नहीं सहूँगी। तुम्हारे पति और हमारे पति का सर्वज्ञ होना स्पष्ट हो जायगा। (१३) जिन कथाओं को तुम नहीं जानती, उन्हें कह कर मैं तुम्हें निश्चय जीतूँगी। तुम्हारे भर्ता सर्वज्ञ हैं, और उसी प्रकार उनकी गृहिणी तुम भी सर्वज्ञा हो। (१४) हे रमा ! तुम दोनों की प्रज्ञा और सर्वज्ञता को मैं देखूँगी। हम दोनों की जीत-हार के शपथ (बाजी) में हे सरस्वती ! तुम साक्षी हो। (१५)

१ ग. तवाप्यज्ञतया। २ ग. जयेऽजये।

एवं वाणीं साक्षिणीं ते कृत्वा याते[1] स्वमालयम् ।
एतस्मिन्नन्तरे नाथास्तासां प्रापुः स्वमालयम् ॥१६॥
तदा लक्ष्मीः प्रियं प्राह गौरीशपथमात्मनः ।
माधवस्तां तदा प्राह त्वं तावदतिवादिनी ॥१७॥
सर्वज्ञत्वञ्च शिवयोर्नास्त्यन्यस्य तथाविधम् ।
कथं जयसि[2] तां गौरीं प्राप्तस्तव पराजयः ॥१८॥
तथाप्युपायं वक्ष्यामि रहस्यं तं कुरु त्वराम्[3] ।
नैगमेयो गणश्रेष्ठः शिवयोरन्तिके सदा ॥१९॥
परिचर्य्यापरोऽस्माकमिष्टस्तं प्रार्थयाशु वै ।
रहस्ये शिवयोर्वार्त्तां मां वदस्वेति सादरम् ॥२०॥
तेन ज्ञात्वा रहस्यं त्वं गौरीं प्रत्युत्तरं वद ।
एवं जेष्यसि गौरीं त्वं कञ्चित्कालं ततः परम् ॥२१॥

इस प्रकार से वाणी को साक्षी करके वे दोनों घर गईं। इस बीच में उन लोगों के पति घर लौटे। (१६) तब लक्ष्मी ने अपने प्रियतम से अपनी और गौरी की बाजी की बात कही। माधव ने उनसे कहा कि तुम बहुत बढ़ चढ़ कर बोलती हो। (१७) जैसे सर्वज्ञ शङ्कर तथा पार्वती हैं, वैसा और कोई नहीं है। तुम ऐसी गौरी को कैसे जीतोगी। तुम्हारी हार तो रक्खी हुई है। (१८) फिर भी तुमसे एक गुप्त उपाय बतलाता हूँ, उसे जल्दी करो। गणों में श्रेष्ठ नैगमेय सदा शङ्कर पार्वती की सेवा किया करता है। (१९) वह हम लोगों का मित्र है, उससे आदर के साथ प्रार्थना करो कि एकान्त में शङ्कर पार्वती में जो बातें हों, उन्हें तुम्हें बतला दिया करे। (२०) उससे सब भेद जानकर तुम गौरी को उत्तर देते रहना। इस प्रकार से कुछ दिन तक तो तुम जीतती रहोगी, फिर उसके बाद (२१) गौरी के कोप से जो होगा, सो समय आने पर देखा जायगा। ऐसा सुनकर, रमा ने नैगमेय से प्रार्थना करके

१ ग. पुस्तकीयोऽयं पाठः आ० पु०—याताः। २ ग. जेष्यसि। ३ ग. द्रुतम्।

गौरीकोपात् किं भवेद्वा तत्कालोचितमाचरे[1]।
इति श्रुत्वा रमा प्रार्थ्य नैगमेयं तथाऽकरोत् ॥२२॥
महाकैलासवृत्तान्तं गौरीमाह ततः शिवः।
सर्वं यथावत् पद्मात्तपद्मयोन्योर्यथाक्रमम् ॥२३॥
श्रुत्वा [2]हसन्ती वृत्तान्तं गौर्य्यप्याह रमावचः।
तदा [3]शिवो हसन् गौरीमाह शम्भुः शृणु प्रिये! ॥२४॥
मन्मायामोहिताः सर्वे मम माया दुरत्यया।
ब्रह्मविष्णुमुखा देवा मामाराध्य पदाधिपाः ॥२५॥
मां न जानन्ति तत्त्वेन ज्ञाते मुक्ता भवन्ति ते।
न[4] ज्ञाते मयि भोगान्ते जन्मभाजः पुनर्ध्रुवम् ॥२६॥
एवं सँल्लापतः काले गते कतिपये शिवा।
शिवं पप्रच्छ भगवन्! कामप्येकां कथां वद ॥२७॥
अपूर्वां चैव केनापि न ज्ञातां श्रीजयाय च।

उसे राजी किया। (२२) इधर शिव ने गौरी से महाकैलास का सब वृत्तान्त सुनाया कि ब्रह्मा और विष्णू को क्रम से क्या गति हुई? (२३) उस वृत्त को सुनकर हँसती हुई गौरी ने भी रमा का वचन कह सुनाया। तब शङ्कर ने हँसते हुए गौरी से कहा कि हे प्रिये! सुनो, (२४) मेरी माया से सब मोहित हैं। मेरी माया उल्लंघनयोग्य नहीं है। ब्रह्मा, विष्णु आदि देव मेरी आराधना करके ही पद के अधिकारी हुए हैं। (२५) मुझे ठीक २ नहीं जानते, जानने से मुक्त हो जाते। मुझे यदि नहीं जाना तो भोग के अन्त में फिर निश्चय जन्म धारण करना पड़ता है। (२६) इस प्रकार बात-चीत होते-होते कुछ काल बीतने पर भगवती ने शिवजी से कहा कि मुझसे कोई ऐसी कथा कहिये, (२७) जो अपूर्व हो और किसी को मालूम न हो। तब शङ्करजी ने पूर्व कल्प की एक ऐसी कथा कही, जिसे कोई देवता नहीं जानते थे।

---

१ ग. माचर। २ ग. प्रियं स्ववृत्तान्तं। ३ ग. हसन् शिवो। ४ ग. अज्ञाते।

[1]तदा वदत् पूर्वकल्पामज्ञातां सर्वदैवतैः ।
तां श्रुत्वाऽगाच्छिवा मेरुं खेलितुं रमया सह ॥२८॥
उभाभ्यां च गताः[2] सख्य उभयोः खेलितुं मुदा ।
तदा खेलावसाने तु गौरी प्राह रमां प्रति[3] ॥२९॥
कथामेकां प्रवक्ष्यामि जानासि यदि मे वद ।
सर्वज्ञस्य महाविष्णोः पत्नी लक्ष्म तथाविधा ॥३०॥
त्वञ्चेद्वदसि तां लक्ष्मीः ! कथां तव जयो ध्रुवम् ।
त्वं न जानासि चेत्तां वै जयो मम न संशयः ॥३१॥
इत्युक्तायां शिवायाश्च भवत्वेवं वदेति च ।
रमा [4]हसन्त्याह गौरीं गौर्य्यवोचद्रमां तदा ॥३२॥
नायाता साक्षिणी वाणी शीघ्रं तामानयावहे ।
इत्युक्त्वा प्रेष्य सख्यौ द्वे चैकैका[5] चोभयोः समा[6] ॥३३॥

उसे सुनकर भगवती उमा, रमा के साथ विहार के लिये मेरु पर्वत पर गईं। (२८) दोनों के साथ दोनों की सखियाँ भी खेलने के लिये गईं। जब खेल समाप्त हुआ, तब गौरी ने रमा से हंसते हुए कहा कि (२९) मैं एक कथा कहती हूँ, यदि जानती हो तो मुझ से कहो, तुम सर्वज्ञ महाविष्णु की पत्नी हो, अतः तुम भी वैसी ही हो। (३०) हे लक्ष्मी ! यदि तुम वह कथा कह दो, तो निश्चय तुम्हारी जीत हो जाय। यदि तुम्हें वह न मालूम हो, तो निःसन्देह मेरी जीत होगी। (३१) शिवा के ऐसा कहने पर लक्ष्मी ने गौरी से कहा कि अच्छा ऐसा ही हो, तुम कहो। गौरी ने तब लक्ष्मी से कहा (३२) कि हम लोगोंकी साक्षी सरस्वती तो आई ही नहीं, हम लोगों को उन्हें शीघ्र लाना चाहिये, ऐसा कहकर उन दोनों ने एक २ सखी अपने समान

१ ख. तदा तत्पूर्वकल्पान्ते अज्ञातां सर्वदैवतैः । २ ख. गतं । ३ ग. पुस्तकीयोऽयं पाठः आ० पु०—हसन् । ४ ग. पुस्तकीयोऽयं पाठः आ० पु०—प्राह हसन् । ५ ग. चैकैकां । ६ ग. समाम् ।

ते सख्यौ ब्रह्मपत्नीं [1]द्रागानीते(?)सन्निधौ [2]तयोः ।
तामागतामुभे दृष्ट्वा गौरी प्राह रमां ततः [3] ॥३४॥
शृणु लक्ष्मीः ! प्रवक्ष्यामि परमार्थं शिवं विना ।
जगन्नास्ति शिवाज्जाता ब्रह्मविष्णुमुखाः सुराः ॥३५॥
तथापि प्राकृतैः शास्त्रैर्बन्धुत्वं [4] नो वदे शृणु ।
भ्रातृपुत्रस्य पत्नी मे [5] स्नुषा ते ब्रह्मणो वधूः ॥३६॥
आवयोः साक्षिणी वाणी जयापजयकर्मणि ।
आवामुभे समे त्वस्या वदत्वेषा जयाजयौ ॥३७॥

(अर्थात् दो सखियाँ) भेजीं । (३३) उन सखियों ने शीघ्र ब्रह्माणी को वहाँ ला उपस्थित किया । उनके आने पर दोनों को देखकर हँसती हुई उमा ने लक्ष्मी से कहा—(३४) हे लक्ष्मी ! मैं कहती हूँ, सुनो, शिव के विना जगत् में परमार्थ नहीं है और ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता शिवजी से ही उत्पन्न हुए हैं । (३५) फिर भी सांसारिक रीति से हम लोगों में रिश्तेदारी है, सो मैं कहती हूँ । सुनो, ये ब्रह्माणी मेरे भतीजे की स्त्री❀ हैं और तुम्हारी पतोहू† हैं । (३६) और ये ही हम दोनों की जीत-हार की साक्षी हैं । इनके लिये हम दोनों समान हैं, सो ये हम लोगों के जीत-हार का निपटारा करें । (३७) इस प्रकार से आनन्दित होती हुई गौरी से रमा, जो कि नैगमेय के बल पर सब कथा सुन चुकी थीं, शीघ्रता से बोल उठीं कि

❀ रुद्रयामल के अनुसार महासरस्वती से विष्णु और उमा की उत्पत्ति है । और विष्णु के नाभिकमल से ब्रह्मा हुए, अतः सरस्वती उमा के भतीजे की स्त्री हुई ।

† पद्मोद्भव की स्त्री होने से लक्ष्मी की पतोहू हुईं । इससे यह भी सिद्ध होता है कि इस अध्याय में जिस ब्रह्मा का उल्लेख है, वे महालक्ष्मीप्रसूत ब्रह्मा नहीं हैं, बल्कि पद्मोद्भव-ब्रह्मा हैं ।

१ ग. प्रागा० । २ ख. सन्निधिं । ३ ग. पुस्तकीयोऽयं पाठः, आ० पु०—इसन् । ४ ख. बन्धुत्वात् । ५ ग. त्वं ।

इति सन्नह्यमानां तां गौरीं प्राह रमा [1]द्रुतम् ।
वदेति नैगमेयस्य [2]बलाच्छ्रु[3]तकथापि च ॥३८॥
यो यो रहस्यवृत्तान्तः शिवयोर्जायते रहः ।
रमा प्रार्थनया तं तं नैगमेयोऽवदद्रमाम् ॥३९॥
तद्बलेन रमा गौरीं जेष्यामीति मुदा स्थिता ।
तदा गौर्य्या कथारम्भे कृते द्विचतुरे पदे ॥४०॥
गौरीं प्राह रमा खेलात् समर्था त्वं कथोक्तिषु ।
इयमेव कथा तेऽस्ति नास्ति वा ते कथापरा ॥४१॥
जानाम्यहमिमां गौरि ! बह्वीरेतादृशीरपि ।
इत्युक्तायां शिवायान्तु रमया प्राह तां शिवा ॥४२॥
वद पश्यामि जानासि यदि लक्ष्मीः ! कथामिमाम् ।
इत्युक्ता च रमा प्राह चानुपूर्वां कथां क्रमात् ॥४३॥
श्रुत्वा तामम्बिका चित्रं कथं जानाति वै रमा ।
इत्येवं चिन्त्य मनसि [4]त्वद्य गच्छतु खेलया ॥४४॥

'अच्छा कहो'। (३८) जो २ रहस्य वृत्तान्त शिवगौरी का एकान्त में होता था, वह सब नैगमेय रमा की प्रार्थना से उन्हें बतला देता था। (३९) उसी बल से रमा इस खुशी में थीं कि मैं गौरी को जीत लूँगी। सो ज्योंही गौरी ने कथा प्रारम्भ करके दो चार बातें कहीं, (४०) रमा हँसी से कहने लगी कि तुम कथा कहना खूब जानती हो, तुम्हें यही कथा कहनी है ? कोई दूसरी कथा कहने को नहीं है। (४१) हे गौरि ! मैं इस कथा को भी जानती हूँ। और भी बहुत-सी ऐसी कथायें जानती हूँ। ऐसा कहने पर शिवा ने रमा से कहा (४२) हे लक्ष्मी ! यह कथा यदि जानती हो तो कहो, हम देखें, ऐसा कहने पर रमा आरम्भ से सब कथा कह गई। (४३) उसे सुन कर अम्बिका आश्चर्य्य में आ गई कि

१ ग. पुस्तकीयोऽयं पाठः आ० पु०—त्वरन् द्रुतम्। २ क. बलाच्छ्रुतकथांपिव। ३. ख. ०वृत०। ४ ग, तदहः खेलयानयत्।

श्वो वक्ष्याम्यपरामस्यै ज्ञात्वा शम्भोस्त्वतोऽधिकाम् ।
इति कृत्वा मतिं गौरी शौण्डेति [1] श्लाघ्य वै रमाम् ॥४५॥
आगमिष्याम खेलायै श्वो वयं त्विति ता गताः ।
पुनः शम्भुं प्राह गौरी कथामन्यां वद प्रभो ! ॥४६॥
[2] उक्तायाः प्राग्भवां गुप्तां हृत्पद्मे तव वै प्रभो ! ।
ततोऽवदत् कथां शम्भुः प्राग्भवाञ्च ततः पराम् ॥४७॥
तां श्रुत्वा सा परेद्युस्तु रमा वाणीयुताऽभ्यगात् ।
मेरौ खेलात् परं गौरी कथां प्राह [3] रमां पुनः ॥४८॥
तामप्याह रमा गौरीं प्राग्गौर्यारम्भतः कथां ।
तद्दिनेऽपि रमां श्लाघ्य [4] गतास्ताः स्वस्वमन्दिरम् ॥४९॥
एवं गौरी प्रतिदिनं नूतनैकां कथां वदत् ।
जयं न प्राप लक्ष्म्यास्तु शतं जाताः कथाः क्रमात् ॥५०॥

रमा ने इसे कैसे जाना ? तब मन में ऐसा विचार किया कि आज तो बात को हँसी में जाने दो । (४४) कल इससे भी विशेष शम्भु भगवान् से जान कर कथा कहूँगी । इस प्रकार निश्चय करके गौरी ने रमा की प्रशंसा करते हुए कहा कि 'तुम बड़ी जानकार हो' । (४५) फिर कल खेल के लिये हम लोग आवेंगी ऐसा ठीक करके वे लोग चली गईं । फिर गौरी ने शम्भु से कहा कि हे प्रभो ! कोई दूसरी ऐसी कथा कहो (४६) जो और भी पहिले की हो, और उसे कोई जानता न हो । केवल तुम्हारे ही हृदय में वह हो । तब शङ्कर भगवान् ने उससे भी पुरानी उन्हें दूसरी कथा सुनाई । (४७) उसे सुनकर दूसरे दिन रमा वाणी को साथ लेकर खेलने के लिये मेरु पर्वत पर गई । खेल के बाद गौरी ने फिर रमा से कथा कही । (४८) उस कथा को भी गौरी के सामने लक्ष्मी जी आरम्भ से कह गईं । उस दिन भी रमा की प्रशंसा करके वे सब अपने २ घर गईं । (४९) इस प्रकार से गौरी नित्य ही

१ ग. प्रशंस माम् । २ ख. उक्तायां । ३ ग. ०माह । ४ ग. स्तुत्वा ।

ज्ञात्वा शिवेन नित्यं सा प्राक्कल्पीयाः कथाः क्रमात् ।
यदा न प्राप विजयं कथया चक्रधृग्वधोः (?) ॥५१॥
तदा शिवं समं मेने विष्णुना नाधिकस्त्विति ।
कथा मां शम्भुना प्रोक्ता विष्णोः प्राप रमापि ताः ॥५२॥
तस्माच्छिवः पर इति मिथ्या भाति श्रुतेर्वचः ।
इत्येवं दूयमाना सा गौरी प्राप शिवान्तिकम् ॥५३॥
दृष्ट्वा शम्भुर्व्यग्रचित्तां गौरीं प्राह महेश्वरः ।
किं प्रिये ! व्यग्रचित्तासि यथापूर्वं न दृश्यसे ॥५४॥
[1]किमप्यप्राप्तकामायाः सर्वानुग्रहकृद्धियः ।
न प्राप्तमिच्छितमिति [2]द्रक्ष्यामि मुखविक्रियाम् ॥५५॥
वद त्वञ्चञ्चलापाङ्गे ! पूरये त्वन्मनोरथम् ।
इत्येवं वादिनं शम्भुमौदासीन्येन चाह सा ॥५६॥

एक नवीन कथा कहती थीं, परन्तु लक्ष्मी को न जीत सकीं, और क्रमशः सौ कथाएँ हो चुकीं। (५०) नित्य शङ्कर से पहिले कल्प की कथाएं जान-जान कर भी जब चक्रधर की पत्नी से कथा में विजय न प्राप्त कर सकीं। (५१) तब उनके मन में यह बात आई कि शिवजी विष्णु के समान हैं, उनसे अधिक नहीं हैं। जो कथाएँ मुझ से शम्भु ने कहीं, वे रमा को भी विष्णु से मिल गईं। (५२) अतः शङ्कर बड़े हैं, यह वचन वेद का मुझे झूठा प्रतीत होता है। इस प्रकार चिन्ता करती हुई भगवती शङ्कर के पास गईं। (५३) उन्हें व्यग्र देखकर महेश्वर शम्भु ने कहा कि हे प्रिये ! तू व्यग्र क्यों है ? तू पहिले की-सी नहीं दिखाई पड़ती। (५४) तुम्हारी बुद्धि सबके अनुग्रह में लगी रहती है, किसी वस्तु की तुमने कामना की, वह पूरी नहीं हुई। ऐसा तुम्हारे मुख के विकार से मुझे मालूम होता है कि तुम्हारी चाही हुई वस्तु तुम्हें न मिली। (५५) हे चञ्चलकटाक्षवाली ! तू मुझसे कह, मैं तेरे मनोरथ

१ ग. किमाप्यमाप्तकामायाः। २ ग. ०मिप्सितं। ३ ग. पश्यामि।

देवा यथा वसन्त्येते तथा त्वमपि नाधिकः ।
विश्वाधिको महादेव इति नाम वृथा तव ॥५७॥
केवलं पूज्यवाच्यार्थं वदन्ति श्रुतयोऽप्यमूः ।
तादृशस्त्वं कथं मेऽद्य पूरयेथा मनोरथम् ॥५८॥
भ्रान्ताऽहं सर्वकर्त्तारं सर्वज्ञं त्वामुदीरये ।
विष्णोरधिकविज्ञानं न जानासीति मे मतिः ॥५९॥
समो वाऽप्यथवा न्यून 'इत्येवं प्रतिभाति मे ।
त्वत्तः श्रुताः कथाः सर्वाः पूर्वमेवावदद्रमा ॥६०॥
त्वद्बलाज्जयमाकाङ्क्षे प्राप्तस्त्वपजयो मया ।
भर्त्ता न निन्द्यो नारीणामिति प्राह श्रुतिः 'खलु ॥६१॥
कथं न निन्द्यो भवति भर्त्ता नारीगणैर्वद ।
सर्वोत्कृष्ट इति ज्ञात्वा जनिता मामदात्तव ॥६२॥

को पूर्ण करूंगा ! इस प्रकार जब शङ्कर ने कहा तो उदासीनता के साथ वह बोलीं कि (५६) जैसे सब देवता रहते हैं, वैसे ही एक आप भी हैं। आप उनसे अधिक नहीं हैं। जो सबसे अधिक हो उसे महादेव कहते हैं, सो यह नाम आपका व्यर्थ ही है। (५७) केवल पूज्य का वाचक होने से श्रुतियाँ भी ऐसा ही कहती हैं। जब आप ऐसे ही हैं, तो आज मेरे मनोरथ को कैसे पूरा करेगें? (५८) मैं भ्रान्त हूँ, इसलिये आपको सर्वकर्ता और सर्वज्ञ कहती हूँ। आपको विष्णु से अधिक ज्ञान नहीं है, ऐसा मुझे मालूम होता है। (५९) या आप उनके समान हैं, या उनसे कम हैं। मुझे तो ऐसा ही लखाई पड़ता है। जो २ कथाएँ मैंने सुनीं, वे सब रमा ने पहिले ही कह दीं। (६०) आप के बल से मैंने जय चाहा, सो मेरी हार हुई। वेद तो निश्चय करके कहता है कि स्त्री को पति की निन्दा न करनी चाहिये, (६१) अब आप ही कहिये कि कैसे स्त्रियाँ पति की निन्दा न करें। आप को

१. ०मि०। २ ग. खलाः।

आत्मोद्धाराय हिमवान् मम नैश्चिन्त्यहेतवे ।
तथा सति मया प्राप्तो विष्णुपत्न्याः पराजयः ॥६३॥
इतोऽप्यवमतिः कास्ति सर्वज्ञस्य वधोः (?) परा ।
यादृशो भाग्यशेषोऽस्ति नारीणां तादृशो धवः ॥६४॥
आयाति बहुना किं तेनौक्तेनेत्यवदच्छिवा ।
इत्येवं दूयमानां तां परमेश्वरः परात् परः ॥६५॥
स्त्रीस्वभावं समायाता गौरी नास्त्यत्र संशयः ।
इति ज्ञानदृशा सर्वं नैगमेयकृतं त्विति ॥६६॥
विज्ञाय शम्भुस्तां प्राह प्रिये ! किं दूयसे वृथा ।
अद्य शृणु कथामेकां श्वो रमां त्वं विजेष्यसि ॥६७॥
इत्युक्त्वा नैगमेयं सः कार्य्यमन्यत् समादिशत् ।
नैगमेये गतेऽन्यत्र गौरीं प्राह कथां नवाम् ॥६८॥

सबसे उत्तम जानकर मेरे पिता हिमवान् ने (६२) अपने उद्धार तथा मेरी निश्चिन्तता के लिये मुझे आप को दिया, ऐसा होने पर भी मेरी हार विष्णु की पत्नी के मुकाबिले में हुई। (६३) सर्वज्ञ की वधू के लिये इससे बढ़ कर और अपमान क्या हो सकता है? जैसा भाग्य शेष स्त्रियों का होता है, वैसे ही उन्हें पति मिलते हैं। (६४) इस बात के बहुत कहने से क्या लाभ? जब ऐसी बातें शिवा ने कहीं, तब इस प्रकार दुखित होती हुई भगवती को देखकर शिवजी ने विचारा (६५) कि गौरी निःसन्देह अपने स्त्रीस्वभाव पर आगई है, और ज्ञान दृष्टि से नैगमेय की करतूत जान कर (६६) शम्भु ने उनसे कहा कि हे प्रिये! तुम क्यों व्यर्थ दुःखी होती हो आज एक कथा सुनो, इससे कल तुम रमा को जीत लोगी। (६७) ऐसा कहकर नैगमेय को उन्होंने किसी दूसरे काम के लिये भेज दिया। नैगमेय के चले जाने पर गौरी से नयी कथा कही। (६८) कल यह कथा लक्ष्मी से कहो, तुम्हारी जीत रक्खी हुई है, ऐसा कहकर गौरी को, जो कि लक्ष्मी

श्वो वदेर्नां कथां लक्ष्म्यै जयस्ते भविता ध्रुवम् ।
इत्युक्त्वा प्रेषयामास गौरीं लक्ष्मीं जयोत्सुकाम् ॥६९॥
न ज्ञाता नैगमेयात् सा कथा लक्ष्म्या परे दिने ।
मेरौ समागतास्ता वै गौरी वाणी रमा तदा ॥७०॥
समारभत्कथां गौरी तूष्णीं जाता रमा तथा ।
शिवाऽवदत्तां हे लक्ष्मीः ! किन्नाद्य वदसे कथाम् ॥७१॥
इत्युक्ता सा तदा प्राह गौरीं लक्ष्मीः [1]स्मयान्विता ।
एकया कस्तव जयः कथया श्वो वदामि ते ॥७२॥
शतं कथाः मया प्रोक्तास्तावन्त्य[2]स्त्वं वदेर्यदि ।
ततः परं तव जयो न ज्ञाताश्चेत्कथा मया ॥७३॥
भवत्विति गता गौरी रमाप्युक्त्वा गता तदा ।
शम्भुमुक्त्वा च वृत्तान्तं पुनः पप्रच्छ सा कथाः ॥७४॥

को जीतने के लिये बड़ी उत्सुक थीं, वहाँ भेज दिया । (६९) दूसरे दिन लक्ष्मी को नैगमेय से कथा का पता न चला । मेरु पर्वत पर, गौरी, वाणी और रमा तीनों इकट्ठी हुईं । (७०) तब गौरी ने कथा प्रारम्भ की और लक्ष्मी चुपके रह गईं । शिवा ने कहा कि हे लक्ष्मी ! आज तुम चुप क्यों रह गई ? (७१) ऐसा कहने पर लक्ष्मी हँसती हुई गौरी से बोलीं कि एक ही कथा से तुम्हारी जीत कैसे हो जावेगी ? कल मैं कह दूँगी । (७२) मैंने १०० कथाए कही हैं, जब तुम उतनी कथा कह लोगी, और मैं न कह सकूँगी, उसके बाद की कथा यदि मेरी जानी हुई न होगी, तो तब तुम्हारी जय होगी । (७३) गौरी ने कहा 'यही सही' और यह कहकर शिवजी से जाकर सब वृत्तान्त कहा और फिर उनसे कथा पूछी । (७४) शम्भु ने इकट्ठी ही एक सौ आठ कथाएँ सौ कल्प के पहिले की, जिनमें छोटे छोटे इतिहास

१ ग. पुस्तकीयोऽयं पाठः आ० पु०—हसन्निव । २ ग. तावती ।

एकधैव शतञ्चाष्टाधिकां प्राह [1]कथाततिम् ।
स्वल्पां स्वल्पां पूर्ववृत्तां [2]शतकल्पात् पुरोद्भवाम् ॥७५॥
उक्त्वा [3]शम्भुः प्रेषयत्तां गौरीं तत्र परे दिने ।
गौरी वाणी रमा मेरौ मिलितास्तद्दिने शिवा ॥७६॥
साक्षीकृत्य गिरं पश्चात् प्राह सर्वाः कथा रमाम् ।
तूष्णीभूता तदा लक्ष्मीः सर्वाः प्रति कथास्तदा ॥७७॥
तदा प्राह परा शक्तिर्लक्ष्मीः प्राग्वदसे न किम् ।
अष्टाधिकशताः प्रोक्ताः कथा ज्ञाता न किं तव ॥७८॥
एवं वदन्त्यां गौर्य्यान्तु प्रणिपत्य रमाऽवदत् ।
सर्वज्ञाऽसि शिवे ! श्रेष्ठे ! क्षमस्वागो मया कृतम् ॥७९॥
रक्ष माञ्च पतिं मेऽद्य ज्ञातश्चेदन्यदप्यहो ।
इति संप्रार्थिता देवी रमया भक्तिनम्रया ॥८०॥
तदा गौरी रमां [4]प्राह कापट्यं मनसा स्मरन्* ।
ज्ञातश्चेदिति मां प्राह[5] किमप्यत्रास्ति कारणम् ॥८१॥

थे, कहकर (७५) दूसरे दिन गौरी को भेज दिया और गौरी, वाणी और रमा जाकर मेरु पर्वत पर मिलीं। (७६) उस दिन शिवा ने सरस्वती को साक्षी देकर तत्पश्चात सब कथाएँ रमा से कहीं, और लक्ष्मी सब ही कथाओं में चुप रह गईं (७७) तब पराशक्ति ने कहा कि 'हे लक्ष्मी ! अब आगे से ही क्यों नहीं बोलतीं, मैंने एक सौ आठ कथाएँ कहीं, क्या वे सब तुम्हारी जानी हुई नहीं हैं॥ (७८) गौरी के ऐसा कहने पर, नमस्कार करके लक्ष्मी ने कहा कि हे शिवा ! आप सर्वज्ञ हैं, श्रेष्ठ हैं, जो पाप मैंने किया है, उसे क्षमा करें। (७९) आज मेरे पति की मेरी और यदि पता लगा हो तो और दूसरे की भी रक्षा कीजिये। जब इस प्रकार भक्ति से नम्र होकर रमा ने कहा, (८०) तब गौरी ने

१ ग. कथां ततः। २ ग. वृत्ताच्छतकल्पात्। ३ ग. प्रैषीन्महादेवो।
४ ग. वाक्यं स्मृत्वा मनसि वञ्चनम्। *ङीबभाव आर्षः। ५ ख. ग. ०मांह।

परमात्मा परानन्दः शाश्वतो नित्य❀ अव्ययः ।
वेदवाचामप्यगम्यो नित्यज्ञाननिधिः स्वराट् ॥८२॥
स्वतन्त्रः सर्वदृग्भूमा विश्वेशः प्रकृतेः परः ।
[1]तस्य ज्ञानक्रियेच्छाऽहं सर्वतन्त्रस्वतन्त्रिणी (१) ॥८३॥
तादृश्याऽपि मया शम्भुरगम्यः परमेश्वरः ।
नेति नेतीत्युपनिषत्तद्गिरामप्यगोचरः ॥८४॥
तादृशेनात्मना तेन शतकल्पीयपूर्विकाः ।
उक्ताः कथाः श्रीजयार्थं मयि प्रेम्णा दयालुना ॥८५॥
ताः कथा रमया ज्ञाताः कथमित्यतिविस्मिता ।
[2]मदारम्भात् पूर्वमेवाऽवदद्गतदिनावधि ॥८६॥
अद्योक्ताष्टोत्तरशताश्चाऽज्ञातास्ताः कथाः कथम् ।
विना हेतुं रमा नम्रा न भवेत् मयि सर्वथा ॥८७॥

मन में ऐसा विचार किया कि लक्ष्मी ने कहा है 'यदि पता लग गया हो' तो अवश्य इसमें कोई कारण है । (८१) परमात्मा, परानन्द, शाश्वत, नित्य, अव्यय, वेद की वाणी से भी अगम्य, नित्यज्ञान के निधि, स्वराट्, (८२) स्वतन्त्र, सर्वद्रष्टा, भूमा, प्रकृति से परे विश्वेश्वर हैं। उनकी सर्वतन्त्रस्वतन्त्रा ज्ञानक्रिया इच्छा मैं हूँ। (८३) सो शम्भु परमेश्वर मुझसे भी अगम्य हैं। नेति नेति कहकर जिसका उपनिषद् निरूपण करती है, अतः उपनिषद् के भी अगोचर हैं। (८४) उन्होंने पूर्व सौ कल्प की कथाएँ मेरे ऊपर प्रेम और दया करके लक्ष्मी को जीतने के लिये कहीं। (८५) यह बड़े आश्चर्य की बात है कि उन कथाओं को रमा कैसे जान गई ? गत दिन तक मेरे आरम्भ करने से पहिले ही कह देतीं थीं। (८६) आज मैंने एक सौ आठ कथाएँ कहीं, सो वे एक भी नहीं जानती थीं। यह बात क्या है ? बिना कारण लक्ष्मी मुझसे कभी नम्र नहीं

१ ख. पुस्तके श्लोकोऽयं नास्ति । २ ख. कथा० । ❀ विसर्गलोप आर्षः ।

तस्मात् काप्यत्र शङ्काऽस्तीत्यमन्यत तदा शिवा ।
लक्ष्मीं प्राह [1]हसन् ❀गौरी वद सत्यं रमे ! वचः ॥८८॥
पूर्वमुक्ताः कथाः सर्वास्त्वद्य किं न वदेः कथाः ।
ब्रूहि तत्कारणं मे[2] त्वं नो चेदग्रे स्फुटं भवेत् ॥८९॥
गौरीं प्राह तदा लक्ष्मीर्नाहं वाचा ब्रुवेति[3] †च ।
यदा जानासि गुह्यं त्वं तदाऽस्मासु दयां कुरु ॥९०॥
इति जलधिसुतावचो निशम्य
सा त्रिजगदधीश्वरनायिकाऽपि गौरी ।
भवतु पुरः प्रकटं किमद्यवाद-
स्त्विति हृदये गिरिजा रुषं निगृह्यात् ॥९१॥
प्राप्तो मेऽद्य जयः कथं कथमहो किं मेऽनया[4] शङ्कया
देवं ब्रूमि ❀ किमत्र कारणमितीशानो वदेदेव मां ।
तज्ज्ञात्वा तदनन्तरन्त्वकरवं शिक्षां च यां यां यथा
यस्यैतत्कुटिलं च तस्य विधिवद्देवाज्ञयाऽहं क्षणात् ॥९२॥

होती थीं । (८७) इसमें कोई रहस्य अवश्य है, शिवा ने अपने मन में ऐसा निश्चय करके हँसते हुए कहा—हे रमा ! सच्ची बात कह दो । (८८) पहिले की कथाएँ तुमने सब कहीं, आज की क्यों नहीं कह दी ? यह कारण मुझे तुम बतला दो, नहीं तो आगे चलकर भेद खुलेगा ही । (८९) तब लक्ष्मी ने गौरी से कहा कि मैं अपने मुख से न कहूँगी । यदि तुम भेद जानती हो तो हमलोगों पर दया करो । (९०) समुद्र की बेटी का ऐसा बचन सुनकर तीनों लोक के ईश्वर की प्रिया गौरी ने ऐसा समझकर क्रोध को रोका कि आगे चलकर यह खुल ही जायगा, इसमें झगड़ा क्या है ? (९१) किसी न किसी तरह मेरी जीत तो आज हुई, अब इस शङ्का से क्या मतलब ? देवदेव से मैं इसका

१ग. स्मृत्वा प्राह । ❀डीबभाव आर्षः । २ ग. वै मे । ३ ग. ध्रुवम् । ४ ग. तया । ५ ग. ब्रूहि । † सन्धिरार्षः । ❀ इडभावोऽप्यत्रार्षः ।

इत्येवं मनसा विचिन्त्य गिरिजा लक्ष्म्या च वाण्या पुनः
खेलाव्याजमुपेत्य हासवदना खेलाच्च ताभ्यां पुनः ।
सन्तुष्टा नितरामवाप्य गिरिजा लक्ष्म्या जयं त्वञ्जसा
माहात्म्यञ्च विभोरमेयमतुलं चित्ते स्मरन्ती वरम् ॥६३॥
इत्येवं गिरिजाजयप्रमुदितां पुण्यां कथां पावनीं
यः कर्णाञ्जलिसम्पुटैः सकृदपि प्रीत्या पिबत्यादरात् ।
मोक्षानन्दसुधानिधेरमृतसंमग्नो भवेत् सः पुमान्
सत्यं सत्यमहं वदे प्रियतमे ! धन्येऽनवद्ये ! शृणु ॥६४॥

इति श्रीकाशीमूलरहस्ये ब्रह्मवैवर्त्ते खिले काशीकेदारमाहात्म्ये
सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

कारण पूछूंगी, वे मुझे बतला देंगे। तब मैं सब जानकर देव की आज्ञा से जिसकी यह कुटिलता है, उसकी विधिवत्, और सब की यथायोग्य शिक्षा एक क्षण में करूँगी। (९२) गिरिजा मन में ऐसा विचार करके खेल के बहाने से लक्ष्मी और वाणी के साथ विहरने लगीं। लक्ष्मी की जीत और विभु शङ्कर के अमेय और अतुल माहात्म्य का स्मरण करती हुई अत्यन्त सन्तुष्ट हुईं। (९३) इस प्रकार गिरिजा के जय से प्रमुदित इस पुण्य पावनी कथा को जो आदर के साथ कान रूपी अञ्जलि से पीता है, वह पुरुष मोक्षानन्द रूपी अमृत के समुद्र में अवश्य मग्न होता है। हे प्रियतमा, धन्या अनवद्या! तू सुन, मैं सत्य सत्य कहता हूँ। (९४)

यह ब्रह्मवैवर्त के खिलग्रन्थ काशीमूलरहस्यान्तर्गत काशीकेदारखण्ड
का सातवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

अथ अष्टमोऽध्यायः ।

ऋषय ऊचुः—

सूत ! सर्वज्ञ ! सद्बुद्धे ! गौरी किं वाऽकरोत्ततः ।
कथं विदितमासीत्तद्रहस्यं पैशुनं बहिः ॥ १ ॥
लक्ष्मीर्वाणी तथा गौरी किमकुर्वन् ततः परम् ।
गौर्य्या पुनः कथं ज्ञातं पैशुन्यं वै गणस्य च ॥ २ ॥
किमाह गौरी भूतेशं तत आगत्य वै रहः ।
किं वाऽकरोद् रमा पश्चात् नैगमेयोऽथवा पुनः ॥ ३ ॥
एतत्सर्वं विस्तरेण रहस्यं वक्तुमर्हसि ।
श्रोतुमिच्छावतां चित्रमस्माकं गिरिजापतेः ॥ ४ ॥

दोहा—किमि जान्यौ शतदिन कथा, रमा उमहिं सन्देह ।
पूछति पै न कहति रमा, गईं सबै निज गेह ॥ १ ॥
शिवतें जान्यौ मर्म तब, शाप कोप करि दीन्ह ।
द्विज तनु दीन्ह्यौ हरि गणहिं, रमहिं चञ्चला कीन्ह ॥ २ ॥
यद्यपि पायो जय तदपि, भयो हृदय परिताप ।
परुष वचन शिवतें कह्यौ, सो मिटिहहि किमि पाप ॥ ३ ॥
गईं काशी-केदार तब, शिव अनुशासन पाय ।
पूज्यौं विधितें शङ्करहिं बारह बरिस नहाय ॥ ४ ॥

ऋषि लोग बोले—हे सर्वज्ञ ! हे अच्छी बुद्धिवाले सूतजी ! आप बतलाइये कि फिर गौरी ने क्या किया ? और यह गुप-चुप की चुगली लोगों को कैसे विदित हुई ? (१) इसके पश्चात् लक्ष्मी, वाणी और गौरी ने क्या किया ? और गौरीजी ने अपने गण की चुगली कैसे पकड़ पायी ? (२) वहाँ से आकर भगवान् भूतनाथ से एकान्त में गौरी ने क्या कहा ? फिर, रमा तथा नैगमेय ने क्या किया ? (३) इस गिरजापति के रहस्य को आप विस्तार से कहिये, हम लोगों को सुनने की इच्छा है। (४) ऐसा पूछे जाने पर सूतजी प्रसन्न होकर ऋषियों से

इति पृष्टस्तदा सूतः पुनः प्राह ऋषीन् मुदा।

सूत उवाच—

शृणुध्वं ब्रह्मविच्छ्रेष्ठा रहस्यं शिवयोः परम् ॥ ५ ॥
रहस्यं शिवयोः पुण्यं श्रवणात् कलुषापहम्।
गौरी वाणी रमा मेरौ खेलां कृत्वा चिरं ततः ॥ ६ ॥
खेलाश्रमप्रशान्त्यै ता निषेदुर्मेरुमस्तके।
गन्धर्वाप्सरसां सङ्घाः सेवन्ते दूरतः स्थिताः ॥ ७ ॥
देवस्त्रियोऽपि हेमाद्रौ [1]दूरतः प्रणमन् स्थिताः।
ब्रह्मविष्णुशिवस्त्रीणां खेलादर्शनसोत्सुकाः ॥ ८ ॥
तदा गौरी पुनः प्राह लक्ष्मीं हासमुखी मुदा।
किमर्थं न वदेर्लक्ष्मीर्भर्त्रा ज्ञाता कथं वद ॥ ९ ॥
अथवाऽन्येन केनापि यदि जानासि त्वं वद।
अथवा त्वं भर्तृभक्त्या पातिव्रत्यमहत्त्वतः ॥१०॥

कहने लगे। सूतजी बोले—हे ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ! आपलोग शिव-शिवा का परम रहस्य सुनिये। (५) शिव-शिवा का रहस्य पुण्य है और सुनने से पापों को दूर करता है। गौरी, वाणी और रमा बहुत देर तक मेरु पर्वत पर विहार कर, तत्पश्चात् (६) विहार के परिश्रम को दूर करने के लिये मेरु के शिखर पर बैठ गईं। गन्धर्व और अप्सराओं के समूह दूर से उनकी सेवा कर रहे थे। (७) उस सोने के पहाड़ (मेरु) पर देवताओं की स्त्रियाँ भी उनको प्रणाम करके दूर ही खड़ी थीं, उनलोगों को ब्रह्मा, विष्णु और शिव की स्त्रियों के विहार देखने की उत्कण्ठा थी। (८) फिर हंसती हुई गौरी ने लक्ष्मी से कहा—हे लक्ष्मी! तुम क्यों नहीं कहती, क्या तुमने इन कथाओं को अपने पति से सुना था? (९) यदि किसी दूसरे से सुना हो तो भी क्यों नहीं कह देती? अथवा तुम पतिभक्ति तथा पातिव्रत की महिमा से (१०)

१ ग. नमन्त्यो दूरतः स्थिताः।

सर्वज्ञासि स्वयं ज्ञाता तत्त्वं सखि ! वदाऽधुना ।
इति पृष्टा तदा लक्ष्मीर्गौर्य्या सर्वज्ञया पुनः ॥११॥
तदा हसन्त्याह[1] गौरीं प्रणम्य चरणौ रमा ।
देवि ! सर्वज्ञदयिता[2] किमन्यां पृच्छसे पुनः ॥१२॥
सर्वज्ञाऽसि स्वयं सर्वाः त्वदंशाश्चास्मदादयः ।
त्वत्तेजसा वयं सर्वाः पूज्या लोकेषु पार्वति ! ॥१३॥
रहस्यं वा प्रकाशं वा स्वगोप्यं न प्रकाशयेत् ।
इति त्वयैवोपदिष्टा वयं देवि ! पुरा खलु ॥१४॥
तव गोप्यं किमस्त्यत्र लीलार्थं मां हि पृच्छसि ।
त्वां विना मे न चान्यास्ति पूज्या सत्यं वदे शिवे ! ॥१५॥
क्षमस्व ज्ञातवृत्तान्ता त्वचिरात्त्वं भविष्यसि ।
इत्येवंवादिनीं प्राह रमे ! सत्यं वदेति सा ॥१६॥

सर्वज्ञ हो गई हो ? बिना किसी के कहे आप-से-आप जान गई । हे सखि ! अब सचसच कह दो । सर्वज्ञा गौरी के ऐसा पूछने पर (११) लक्ष्मी ने हंसते हुए गौरीजी के चरणों में प्रणाम करके कहा— हे देवि ! तुम सर्वज्ञ की प्रिया हो, तुम दूसरे से क्यों पूछती हो ? (१२) तुम स्वयं सर्वज्ञा हो । हम सबलोग तो तुम्हारे अंश हैं। हे पार्वति ! तुम्हारे तेज से हम सब लोक में पूजित हैं । (१३) हे देवि ! आपने ही पहिले हम लोगों को उपदेश दिया है।कि अपने रहस्य को, चाहे वह छिपा हो, चाहे प्रगट हो, स्वयं प्रकाशित न करे । (१४) इसमें कोई बात तुमसे छिपी नहीं है, केवल लीला के लिये मुझसे पूछ रही हो । हे शिवे ! मैं सत्य कहती हूँ, तुम्हें छोड़कर दूसरा कोई मेरा पूज्य नहीं है । (१५) तुमको बहुत जल्द पता चल जायगा, तब क्षमा करना । ऐसा कहने पर रमा से गौरी ने कहा कि ठीक ठीक कह न दो, (१६) तुमने यह सब कथाएँ कैसे जान लीं ? इसमें मुझे बड़ा

१ ग. पुस्तकीयोऽयं पाठः आ० पु०—प्रहसन् । २ ग. दयिते ! ।

ज्ञाताः कथं कथाः सर्वास्त्वया मे संशयो महान् ।
इति गौरीवचः श्रुत्वा रमाप्याह प्रणम्य ताम् ॥१७॥
सर्वं जानाति ते भर्त्ता सर्वज्ञः करुणानिधिः ।
ज्ञात्वा तेनैव भक्तेषु नातिक्रोधं समाचर ॥१८॥
इति सन्तुष्टचिन्तास्ताः स्वस्वधामगताः सुखम् ।
पत्या लक्ष्मीः किं भवेद्वा आवयोर्नैगमस्य च ॥१९॥
चिन्तावती स्थिता चैवं तदा गौरी शिवान्तिके ।
सन्तोषेणाऽवदच्छम्भुं स्वामिन्नद्य जयो मया ॥२०॥
प्राप्तस्त्वत्करुणादृष्ट्या क्षमस्वाऽऽगो मम प्रभो ! ।
निन्दां पूर्वमहं त्वां वै प्रावोचं गतसाध्वसा ॥२१॥
मत्प्रायश्चित्तमधुना वद शम्भो ! त्वदागसः ।
तवाऽपराधदोषस्तु दुर्नोद्यः कल्पकोटिभिः ॥२२॥
अज्ञानात् स्त्रीस्वभावेन निनिन्दाऽहं महागुरुम् ।
सत्यज्ञानानन्दमयं सर्वभूतदयापरम् ॥२३॥

भारी संशय है । गौरी का ऐसा वचन सुनकर रमा ने फिर प्रणाम कर-के कहा—(१७) तुम्हारे पति सर्वज्ञ हैं, करुणानिधि हैं, वे सब जानते हैं । उनसे सब बातें जानकर अपने भक्तों पर अतिक्रोध न करना । (१८) तब सन्तुष्टचित्त होकर वे सब अपने अपने घर गईं । लक्ष्मी, पति के साथ चिन्ता में बैठी कि हम दोनों और नैगमेय का क्या होना है ? (१९) इधर गौरीजी शङ्कर के पास जाकर सन्तोष के साथ बोलीं —हे स्वामिन् ! आज मुझे आपकी कृपा से जय मिली । (२०) हे प्रभो ! मेरे अपराध को क्षमा करो, मैंने बेडर होकर आपके सामने आपकी निन्दा के वचन पहिले कहे थे । (२१) हे शम्भु ! अपने अपराध का प्रायश्चित अब आप मुझे बतलाइये, आपके अपराध का दोष तो कोटि-कल्प में भी मिटनेवाला नहीं है । (२२) अज्ञान से तथा स्त्री-स्वभाव से मैंने ऐसे महागुरु की निन्दा की, जो कि साक्षात् सच्चिदानन्दमय

मदिष्टदेवं भर्त्तारं क्षमस्व करुणानिधे !।
एवं वदन्तीं गौरीं तां पश्चात् तापवतीं हरः ॥२४॥
प्रहसन्नाह दयया तव दोषो न भामिनि !।
प्रतारिता त्वं रमया तेन कोपोऽभवत्तव ॥२५॥
क्षान्तं तवागो भद्रं ते चापल्यं सहजं स्त्रियः।
त्वन्तु सर्वज्ञदायिता न तथा प्राकृता शुभे ! ॥२६॥
मा भव त्वं खिन्नचित्ता प्रायश्चित्तं वदामि ते।
तदा प्रसन्ना गिरिजा दयां दृष्ट्वा शिवस्य सा ॥२७॥
देवी प्राह तदा देवं स्वामिन् ! मे संशयं नुद।
कथाशतं पुराभूतं रमया विदितं कथम् ॥२८॥
त्वमेक एव जानासि त्वदर्धापि न मे स्मृतिः।
एतत्कल्पा रमा चेयं प्राक्कथा ह्यवदत् कथम् ॥२९॥

हैं और सम्पूर्ण प्राणियों पर जिनकी दया है। (२३) जो मेरे इष्टदेवता और पति हैं। हे करुणानिधे ! आप उसे क्षमा करें। इस प्रकार पश्चात्ताप करती हुई गौरी की बात सुनकर शङ्कर ने (२४) प्रसन्न हो दया के साथ कहा—हे भामिनि ! तुम्हारा कुछ दोष नहीं है, रमा ने तुमको धोखा दिया और इसी से तुम्हें क्रोध हुआ। (२५) मैंने तुम्हारा अपराध क्षमा किया, तुम्हारा कल्याण हो। स्त्रियों में चपलता तो स्वाभाविक है। तुम सर्वज्ञ की प्रिया हो। हे शुभे ! तुम साधारण स्त्री नहीं हो, (२६) तुम अपने चित्तको खिन्न न करो, मैं तुम्हें प्रायश्चित्त बतलाता हूँ। तब तो शिवजी की दया देखकर गिरिजा प्रसन्न हो गईं, (२७) और देव-देव से देवी ने कहा कि हे स्वामिन् ! मुझे एक संशय है, उसे आप दूर करें। पहिले की सौ कथाओं को रमा कैसे जान गईं ? (२८) जाननेवाले केवल आप हैं, मुझे तो आपकी आधी भी स्मृति नहीं है। इतने पुराने कल्पों की कथा को रमा ने कैसे कह दिया ? (२९) यह बात मेरी समझ में नहीं आती, स्पष्ट कहकर मेरे संशय

स्फुटं वद रहस्यं मे संशयं नोदयाऽधुना।
एवं वदन्तीं भगवान् प्राह तां सान्त्वयन् हसन् ॥३०॥
देवि! न क्रुध्यसे चेत्त्वं वदाम्येतद्रहस्यकम्।
एवं वदन्तं गिरिजा न क्रुध्यामि वद प्रभो! ॥३१॥
रहस्यं वेदितुं [1]प्रद्ये त्वदाज्ञां लङ्घये कथम्।
तदा प्राह महादेवो रमायै विष्णुबोधनम् ॥३२॥
रमया प्रार्थितेनैता नैगमेयेन वेदिताः।
कथा इति सविस्तारं गौर्य्यै देवो[2] व्यकाशयत्[3] ॥३३॥
तदा देवी परा[4] क्रुद्धा नैगमेयं रमां हरिम्।
घोरं शापं दातुमैच्छत्तदा देवो न्यवारयत् ॥३४॥
देवि! शापं न मुञ्चस्व क्षमासारा हि साधवः।
त्वमीश्वरी लोकमाता त्वद्भक्तास्ते त्वदाश्रयाः ॥३५॥

को दूर कीजिये। ऐसा कहती हुई गौरी को सान्त्वना देते हुए भगवान् ने हँसकर कहा—(३०) हे देवि! यदि क्रोध न करो, तो तुम्हें यह रहस्य बतलाऊँ। इसपर गिरिजा बोलीं—मैं क्रोध न करूँगी, आप बतलावें। (३१) मैं आपसे यह रहस्य जानना चाहती हूँ, भला आपकी आज्ञा को मैं कैसे टालूँगी? तब महादेवजी ने, विष्णु का रमा को समझाना (३२) और रमा की प्रार्थना पर नैगमेय का कथाओं का प्रकाश करना आदि सब बातें, विस्तार के साथ गौरीजी से कहीं। (३३) तब तो देवी अत्यन्त कुपित होकर नैगमेय, रमा और हरि को घोर शाप देने को उद्यत हुईं, पर महादेवजी ने उन्हें रोक लिया। (३४) शङ्करजी बोले—हे देवि! शाप न दो। साधुओं का तत्त्व क्षमा है। तुम ईश्वरी हो, लोकमाता हो, वे तुम्हारे भक्त हैं, तुम्हारे आश्रित हैं। (३५) सान्त्वना पाने पर भी जगत्माता ने शिवजी को नमस्कार करके क्षमा प्रार्थना की,

१ ख. वद्ये, ग. वच्मि तदाज्ञां। २ ग. देवेन भाषितम्। ३ ख. प्रकाशयत्। ४ ग. महा०।

२२

सान्त्वितापि जगन्माता शिवं नत्वा क्षमापयत्[1] ।
तवापराधिनी जाता त्वेते कारणमत्र वै ॥३६॥
रहस्यमावयोर्ज्ञातुं कावेतौ मारमाधवौ ।
कथं ज्ञापितवान् मन्दो नैगमेयस्तयोरिदम् ॥३७॥
तस्मात् शिक्षा च कर्त्तव्या त्रयाणां भयहेतवे ।
क्रोधो महान् मे जातोऽपि तदाज्ञापालनाय वै ॥३८॥
एकैकं जन्म दास्यामि भूमावेषां भयाय वै ।
इत्युक्त्वा नैगमेयञ्च रमां विष्णुं शिवाऽशपत् ॥३९॥
लक्ष्मीस्त्वञ्चञ्चला भूत्वा गेहें[2] गेहेषु सञ्चर ।
एकत्रस्था न भूयास्त्वमंशेनैकेन भूतले ॥४०॥
तथा लोकान्तरेऽपि त्वं नितरामासुरे गृहे ।
एवं रमां शपित्वाऽथ माधवं वाक्यमब्रवीत् ॥४१॥

और कहा—इन्हीं सबके कारण मैं आपकी अपराधिनी हुई । (३६) मेरे और आपके रहस्य को जाननेवाले ये [लक्ष्मी और विष्णु] कौन होते हैं ? इस मन्द नैगमेय ने उन दोनों से हमारा रहस्य कैसे कहा ? (३७) अतएव इन तीनोंकी शिक्षा तो भय के लिये करनी ही चाहिये । मुझे तो बड़ा भारी क्रोध हुआ है, परन्तु आपकी आज्ञा के पालन के ख्याल से (३८) इन तीनों को पृथ्वी में एक एक जन्म दूँगी, जिसमें इनको भय बना रहे । ऐसा कहकर शिवा ने नैगमेय, रमा और विष्णु को शाप दिया कि (३९) हे लक्ष्मी ! तुम चञ्चला होकर घर घर घूमो, तुम एक जगह कहीं न रहो, तुम एक अंश से पृथ्वी में (४०) तथा दूसरे लोकों में और विशेषतः असुरों के गृह में रहो । इस प्रकार रमा को शाप देकर तब उनके पति विष्णु को शाप दिया—(४१) हे हरे ! तुमने लक्ष्मी को उपाय बतलाया इसलिये तुम पृथ्वी में जाकर ब्राह्मण होओ । व्यास होने पर भी वहाँ तुम्हारा

१ ग. परम् । २ ग. प्रतिगेहञ्च सञ्चर ।

उपायवक्ता लक्ष्म्यास्त्वं भूमौ विप्रतनुर्भव ।
व्यासोऽपि भूमौ ते तत्र गर्वभङ्गो भवेद्ध्रुवम् ॥४२॥
एवं शप्त्वा हरिं पश्चाद् नैगमेयं शशाप ह ।
अप्रमेयेन पुण्येन [1]जातोऽसि गणतां मम ॥४३॥
पैशुन्यदोषात् त्वमपि भूमौ विप्रतनुर्भव ।
एवं शप्त्वा [2]तदा गौरी परमेशमपृच्छत ॥४४॥
प्रायश्चित्तं वद विभो येनाऽहं तारिताऽभवम् ।
[3]तवागसो महापापादञ्जसा करुणानिधे ! ॥४५॥
इति ब्रुवन्तीं तामाह परमात्मा विचार्य्य च ।
शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि रहस्यमतिगोपितम् ॥४६॥
सर्वेषां पापजातानां[4] काशी निष्कृतिकारिका ।
ममाऽपराधदोषस्य [5]तथापि नहि निष्कृतिः ॥४७॥
तथापि वक्ष्ये गुह्यं ते काश्यां केदारसन्निधौ ।
तीर्थमस्ति रहस्यं तत् प्राचीनं गोपितं मया ॥४८॥

निश्चयपूर्वक मान भङ्ग हो । (४२) इस प्रकार से विष्णु को शाप देकर तब नैगमेय को शाप दिया, हे नैगमेय ! तू बड़े भारी पुण्य से मेरा गण हुआ, (४३) फिर भी तुझमें चुगुली का दोष बना रहा, अतः तू भी पृथ्वी में ब्राह्मण हो । इस प्रकार शाप देने के बाद गौरी ने परमेश्वर से पूछा कि (४४) हे विभो ! मुझे प्रायश्चित्त बतलाइये जिससे हे करुणानिधे ! आपके अपराध रूपी महापाप से सरलतापूर्वक छूट जाँऊ । (४५) यह सुनकर परमात्मा ने विचार करके कहा कि हे देवि ! मैं अतिगुप्त रहस्य को कहता हूँ, सुनो, (४६) सब पापों की निष्कृति (निकास) करनेवाली काशी है, परन्तु मेरे अपराध के दोष की निष्कृति वहाँ भी नहीं होती । (४७) फिर भी तुम्हें यह छिपी बात

१ ग. प्राप्तोऽसि । २ ग. पुस्तके नास्त्ययं श्लोकः । ३ ख. तदागसो । ४ ख. जालानां । ५ ग. तत्रापि ।

शिवापराधात् पापं किमन्यदस्ति जगद्गुरु ।
तत्रापि काश्यघं श्रेष्ठं दुर्नोद्यं जन्मकोटिभिः ॥४९॥
तादृशानाञ्च पापानां ध्वंसकं तीर्थमुत्तमम् ।
अहमेव[1] विजानामि तत्तीर्थस्य च वैभवम् ॥५०॥
पुरा कस्यापि नोक्तं तद् रहस्यं कथितं तव ।
कलया पञ्चदशया लिङ्गे केदारनायकः ॥५१॥
कलैकया हिमाद्रौ सोऽवसत् काश्यान्तु पूर्वतः ।
हरंपापाख्यरेतोदाद्यनेकैस्तीर्थकोटिभिः ॥५२॥
विराजते तत्र तीर्थं गुह्यं मदघतारकम् ।
देवि ! त्वं तत्र गच्छाऽऽशु तत्तीर्थस्नानमाचर ॥५३॥
अहं [2]केदारलिङ्गाख्ये वसामि तदुपह्वरे ।
दृष्ट्वा त्वं लिङ्गरूपं मां सम्पूज्य च यथाविधि ॥५४॥

बतलाता हूँ कि काशी में केदार जी के समीप एक प्राचीन तीर्थ है, वह छिपा हुआ है, क्योंकि मैंने उसे गुप्त कर रक्खा है । (४८) शिव के अपराध से और बड़ा पाप संसार में क्या है ? उसमें भी काशी सम्बन्धी पाप और बड़ा है, कोटि जन्म में भी मिटने वाला नहीं है । (४९) यह उत्तम तीर्थ ऐसे पापों को भी मिटानेवाला है, उस तीर्थ की महिमा मैं ही जानता हूँ । (५०) इस रहस्य को पहिले मैंने किसी से नहीं कहा । कलियुग में पन्द्रह कला से वहाँ के लिङ्ग में केदारनाथ बसते हैं (५१) और एक कला से हिमालय में रहते हैं । काशी में पूर्व की ओर हरम्पाप, रेतोद आदि अनेक कोटि तीर्थों के साथ (५२) मेरे अपराध से उबारनेवाला गुह्य (छिपा हुआ) तीर्थ विराजमान है । हे देवि ! तुम शीघ्र जाकर उस तीर्थ में स्नान करो । (५३) वहाँ मैं ऐकान्त में उस केदारनामक लिङ्ग में निवास करता हूँ । वहाँ मैं लिङ्गरूप हूँ, सो मेरा दर्शन करके यथाविधि पूजन करना । (५४)

१ ग. ०वावजानामि । २ ग. केदारनाथाख्ये ।

नभोमासि समारभ्य स्नाहि द्वादशवत्सरम्[1] ।
आगतोऽयं नभोमासः [2]श्वः प्रारभ्य समाचर ॥५५॥
[3]तत्रापि वारास्त्विन्दोर्वै तन्मास्याः सर्वपापहाः ।
केदारस्येन्दुवारे त्वं महापूजां समाचर ॥५६॥
सोमवारे[4] महापूजा लब्ध्वा चैकाऽपि मानवैः ।
मुच्यन्ते नाऽत्र सन्देहो देवि ! सत्यं ममागसः ॥५७॥
इति शम्भुवचः श्रुत्वा काशीं गन्तुं कृतोद्यमाम् ।
नैगमेयो रमा विष्णुस्त्रयो नत्वा शिवापदे ॥५८॥
अप्रार्थयञ्छिवां शम्भुं तारयाऽस्मानितीश्वरौ[5] ।
परमात्मा तदा प्राह तारयैतानपीति[6] ताः ॥५९॥
तदा देवी दयादृष्ट्या विष्णुं लक्ष्मीं गणं जगौ ।
विष्णो ! त्वं मानुषं देहं लोकोपकृतये कुरु ॥६०॥

सावन के महीने से आरम्भ करके बारह वर्ष बराबर नहाना । सावन का महीना भी आ गया, बस कल प्रारम्भ कर दो । (५५) तिसमें भी इस महीने का सोमवार सब पापों का हरनेवाला है । केदारजी की सोमवार को तुम महापूजा करना । (५६) मनुष्यों को सोमवार की एक महापूजा का अवसर भी मिल जाय, तो हे देवि ! इसमें सन्देह नहीं है कि वे मेरे अपराध के दोष से विनिर्मुक्त हो जाँय । (५७) शङ्कर की ऐसी वाणी सुनकर देवी काशी जाने को तैयार हुईं, तब तक नैगमेय, रमा और विष्णु तीनों ने शिवा के चरणों पर गिर कर (५८) उनसे और शम्भु से प्रार्थना की कि आप दोनों ईश्वर और ईश्वरी हैं, हम लोगों को उबारिये । तब परमात्मा ने गौरी से कहा कि इनलोगों का भी उद्धार करो । (५९) तब देवी दयादृष्टि से विष्णु, लक्ष्मी और गण से बोलीं—हे विष्णु ! तुम लोकोपकार के लिये मेरी आज्ञा से पराशर और

१ ग. वत्सरान् । २ ग. प्रातस्त्वं । ३ ख. पुस्तके नास्त्ययं श्लोकः । ४ ग. सोमवारे । ५ ख. ०श्वरम् । ६ ख. पीडिते ।

पराशरं सत्यवतीं व्याजीकृत्य ममाऽऽज्ञया ।
वेदान् विभज्य प्राचीनपुराणानि नवीकुरु ॥६१॥
कालपाकेन लुप्तं यच्छास्त्रगुह्यं नवीकुरु ।
तथा लोकोपकृत्या त्वं मुच्यसे वै शिवागसः ॥६२॥
काश्यां शिवोपदिष्टे त्वं तीर्थे स्नात्वा शिवागसः ।
मुक्तो मन्वन्तरं स्थित्वा तदन्ते धाम यास्यसि ॥६३॥
रमे ! त्वं चञ्चला नित्यं सम्पद्रूपा जगत्त्रये ।
भ्रमन्नेकत्र ते स्थानं न जातु [1]भवतु क्वचित् ॥६४॥
देवतिर्यङ्मनुष्येषु आसुरेषु विशेषतः ।
वासो भवतु ते नित्यमंशेनैकेन चञ्चला ॥६५॥

सत्यवती के पुत्र के बहाने से मनुष्य* शरीर धारण करो। (६०) वेदों का विभाग करके पुराने पुराणों की कायापलट करो। (६१) जो शास्त्र समय के फेर से लुप्त हो गये हैं, उन गुह्य शास्त्रों को फिर से प्रकट करो। इस लोकोपकार के करने से तुम शिवापराध से विनिर्मुक्त होगे। (६२) काशी में शिव से निर्दिष्ट तीर्थ में स्नान करके शिवजी के अपराध से छूटोगे और एक मन्वन्तर रह कर, उसके अन्तमें अपने धाम को प्राप्त होगे। (६३) हे रमा ! तुम संपद् रूप से नित्य चञ्चला होकर तीनों लोकों में फिरती रहोगी, कहीं एक जगह तुम कभी न रह सकोगी। (६४) तुम्हारा एक अंश से चञ्चल होकर लोको-

* परन्तु अपान्तरतमा नामक वेदाचार्य्य का विष्णु के नियोग से व्यास होना पुराणान्तर में पाया जाता है यथा—अपान्तरतमा नाम वेदाचार्य्यः पुराणर्षिर्विष्णुनियोगात्कलिद्वापरयोः सन्धौ कृष्णद्वैपायनः सम्बभूवेति स्मरन्ति। शां० भा०। इससे यह अनुमित होता है कि अपान्तरतमा वेदाचार्य्य, विष्णु के नियोग से कृष्णद्वैपायन रूप में पहिले से ही वर्तमान थे, और नियोगरूप से विष्णु का आवेश भी उनमें था, भगवती का शापानुग्रह यह हुआ कि उसी आवेशावतार में क्षेम कवि से उनका अपमान होकर शाप चरितार्थ हो जाय, दूसरा शरीर व्यास होने के लिये न धारण करना पड़े।

१ ग. भविता।

लोकोपकृतये तेन मुच्यसे त्वं शिवागसः ।
तव भर्त्ता पूर्वमेवेशाज्ञया व्यासनामतः ॥६६॥
तद्गर्वभङ्गः कार्यो मे भूमौ तत्कारणं शृणु ।
तव भर्त्ता वेदशास्त्रस्थापनाय शिवाज्ञया ॥६७॥
लुप्तवेदपुराणादेर्नियुक्तोऽस्य पुनः स्थितौ ।
व्यासाभिधेन मे काशीपौराः शप्ता हि विष्णुना ॥६८॥
तदा निराकृतः काश्या व्यासो विश्वेशकोपतः ।
तदा मया समाश्वस्तः शिवो व्यासकृते तराम् ॥६९॥
पुण्यकाले समायातु व्यासः काश्यामिति व्यधात् ।
तदा गङ्गापरे पारे वसन् व्यासोऽतिगर्वितः ॥७०॥
अत्रैव काशी भवतु किं काश्येति स्वयं व्यधात् ।
काशी गताखिलक्षेत्रलिङ्गतीर्थर्षिदेवताः ॥७१॥
कल्पयामि च माहात्म्यं पुराणं लोकमुक्तिदम् ।
प्रमाणं मद्वचो लोके नो चेत्तान् को हि विश्वसेत् ॥७२॥

पकार के लिये नित्य देव, पशु और मनुष्यों में तथा विशेष करके असुर में वास हो। (६५) इससे तुम भी शङ्कर के अपराध से छूट जाओगी तुम्हारे भर्त्ता ईश्वर की आज्ञा से पहिले से ही व्यास नाम से, लुप्त वेद-शास्त्र के पुनः स्थापन के लिये (६७) नियुक्त हैं, सो व्यासनामक विष्णु ने हमारे काशीनिवासियों को शाप दे दिया। (६८) विश्वनाथों ने कोप करके उनको काशी से बाहर निकाल दिया। तब मैंने व्यास के लिये शिवजी से बहुत प्रार्थना की। (६९) उनकी यह आज्ञा हुई कि पुण्यकाल उपस्थित होने पर व्यास काशी में आ सकते हैं। तब व्यास गंगा के उस पार बड़े अभिमान के साथ बसने लगे। (७०) और कहने लगे कि यहीं पर काशी होगी, काशी लेकर क्या होगा? काशी में जितने क्षेत्रलिंग, तीर्थ, ऋषि और देवता हैं (७१) उनके लोकमुक्तिदायक माहात्म्य की कल्पना पुराणों में मैं करता हूँ,

मन्निराकरणात्तस्याः प्रतिकाशी भवत्विह ।
इति निश्चित्य गर्वेण प्रतिकर्त्तुं समारभत् ॥७३॥
तदभीष्टध्वंसनाय तदा शम्भुरचिन्तयत् ।
केनोपायेन तस्येच्छा भवेद् व्यर्थेति तत्कृतौ ॥७४॥
चिन्त्यमानो हि[1] तच्चित्ते प्रतिभातो विनायकः ।
अयमेवास्य गर्वस्य संहर्त्ताऽन्यो न तादृशः ॥७५॥
मच्चिन्तितफलं दातुं रत्नवद् भात्ययं यतः ।
पूर्वमप्ययमेवाऽत्र मत्कार्य्यपरिसाधकः ॥७६॥
काश्यर्थं मन्दरेऽप्येष मच्चिन्तारत्नतां गतः ।
तस्मादयं भवेन्नाम्ना चिन्तामणिविनायकः ॥७७॥

संसार में मेरा वचन प्रमाण है, नहीं तो उनका विश्वास ही कौन करे, (७२) सो मुझे काशी से निकाल दिया, अतः उस काशी के जोड़ की काशी यहाँ बनाऊँगा । अभिमान से ऐसी चिन्ता करके जोड़ बनाना आरम्भ कर दिया । (७३) तब शङ्कर को उनके अभीष्ट के नष्ट करने की चिन्ता हुई कि किस उपाय से उनकी इच्छा व्यर्थ हो । ऐसा सोचते हुए (७४) उन्हें विनायक याद पड़े; यही उनके गर्व का नाश कर सकते हैं, दूसरा कोई ऐसा नहीं है । (७५) मेरे चिन्तित फल देने के लिए रत्न की भाँति मालूम पड़ते हैं, और पहिले भी इन्होंने यहाँ पर मेरा कार्यसाधन किया है । (७६) मन्दर* पर्वत पर जब मुझे काशी के लिये चिन्ता † हुई, तब भी रत्न की भाँति इन्होंने ही उसका हरण किया । इसलिए इनका नाम चिन्तामणि

* कई दिन भोजन न मिलने से व्यासजी ने काशी निवासियों को शाप दिया । इसकी कथा विस्तार से काशीखण्ड में है ।

† ब्रह्मदेव ने दिवोदास राजा को वर दिया कि काशी में केवल तुम्हारा आधिपत्य रहे, और किसी देवता का न रहे, तत्पश्चात् शिवजी से विनती करके उन्हें मन्दर पर लिवा ले गये ।

१ ग. चिन्त्यमानः सुतश्चित्तं ।

इति सम्भाव्य विघ्नेशं व्यासगर्वनुदे व्यधात् ।
अतिसाराख्यरोगश्च तत्सहायार्थमादिशत् ॥७८॥
व्यासो रुजा धृतस्तस्य शिष्योऽभूत् कैतवेन सः ।
[1]स्वकृतिं लिखितुं शिष्यं वदन् शीघ्रमथादिशत् ॥७९॥
रोगग्रस्तं तदा देवो ह्यपृच्छत पदे पदे ।
मृतानां का गतिस्तत्र वदेति प्रावदत् क्रुधा ॥८०॥
सोऽपि क्रुद्धो रुजाग्रस्तः शिवाज्ञावशतोऽब्रवीत् ।
रासभा वाऽथवा श्वानो भवन्त्वत्र[2] मृता ध्रुवम् ॥८१॥
तथैवाऽलिखदत्यन्ततुष्ट[3]ः सन् सत्यमित्यथ ।
रुजा मर्त्तुं[4] त्वमापन्नः[5] का गतिस्ते भवेद् गुरो ! ॥८२॥
रासभे वा तवेच्छाऽस्ति शुनि वा, भव सत्यवाक् ।
तदासौ विकृतिं ज्ञात्वा स्वकृतेश्च शिवाज्ञया ॥८३॥

विनायक हो । (७७) ऐसा सोच करके विघ्नेश (गणेश) को व्यास के गर्वभङ्ग के लिए कहा और अतीसार रोग को उनकी सहायता के लिए आज्ञा दी । (७८) सो अतीसार ने व्यासजी को पकड़ा और गणेशजी धूर्तता से उनके शिष्य हुए । व्यासजी ने आज्ञा दी कि मैं अपनी रचना बोलता हूँ, तुम लिख डालो । (७९) व्यासजी को तो रोग ग्रसे था और गणेशजी पदपद पर पूछते थे कि यहाँ पर मरनेवाले की क्या गति होती है ? व्यासजी बिगड़ उठे, (८०) क्रोध और रोग से ग्रसित होकर, शिवजी की आज्ञा के परवश बोल बैठे कि यहाँ पर मरनेवाले निश्चय करके गधे वा कुत्ते होंगे । (८१) गणेशजी ने भी अत्यन्त तुष्ट होकर वैसा ही लिख डाला, और तब बोले—हे गुरूजी ! यदि यह बात सत्य है, तो रोग के कारण आप भी तो मरने के किनारे ही हैं, आपकी क्या गति होगी ? (८२) आपकी गधे या कुत्ते

१ ग. स्वकृतं । २ ग. भवन्त्यत्र । ३ ग. तथैवालिखदत्यन्तं तुष्टः । ४ ग. मृत्युं । ५ ग. ०पन्ने ।

कृतिं सर्वां जले क्षिप्य विघ्नेशं प्रणमद्[1] भिया ।
चिन्तारत्नं शिवस्यापि भवान् चिन्तां हराऽऽशु मे ॥८४॥
शिवं प्रसाद्य मां त्राहि मोहितं शिवमायया ।
ज्ञातोऽहं त्वं गणाधीशो मां प्रतारितुमागतः ॥८५॥
गर्विष्ठं मां निग्रहीतुं कपटेन शिवाज्ञया ।
गङ्गातटमृतानान्तु सद्गतिः श्रुतिविश्रुता ॥८६॥
तादृक्पुण्यतटे शापो मया दत्तोऽत्र दुर्धिया ।
काशीं शप्त्वा दुर्धियाऽहं [2]दूरतः शम्भुना कृतः ॥८७॥
इतोऽप्यहं तथा दूरो यथा न स्यां तथा कुरु ।
एवं व्यासेन मत्पुत्रः प्रार्थितो बहुधा [3]नमन् ॥८८॥

दोनों में से क्या होने की इच्छा है ? अब अपनी बात से न हटिये । तब उन्होंने जाना कि शिवजी की आज्ञा से मेरी रचना बिगड़ गई, (८३) सो अपनी सब रचना जल में फेंक दी और भयभीत होकर विघ्नेश के चरण पर गिरे और कहा कि आप शिवजी के भी चिन्तामणि हैं । अब मेरी चिन्ता का भी शीघ्र हरण कीजिये । (८४) मैं शिवजी की माया से मोहित हूँ । आप शिवजी को प्रसन्न करके मेरी रक्षा कीजिये । मैं जान गया कि आप गणेश हैं, मुझे धोखा देने के लिये आये हैं । (८५) शिवजी की आज्ञापूर्वक आपने कपट से मेरा पराभव किया । गंगा के तट में मरनेवालों की सद्गति वेदों में कही गई है । (८६) मैं दुर्बुद्धि हूँ, मैंने ऐसे पुण्य तट को यहाँ पर शाप दे दिया । मैंने दुर्बुद्धि से काशी को शाप दिया, शम्भु ने मुझे वहाँ से दूर कर दिया । (८७) मैंने यहाँ आकर भी वही किया, सो आप ऐसा कीजिये कि अब यहाँ से भी न हटाया जाऊँ । इस प्रकार से व्यासजी ने हाथ जोड़कर मेरे पुत्र को बहुत ही बिनती की । (८८) वहाँ से आकर गणेशजी ने शिवजी को नमस्कार कर सब हाल सुनाया ।

१ ग. प्राणमद् । २ ग. शम्भुना विदूरीकृतः । ३ ग. च सः ।

तदागत्य गणाधीशो वृत्तं प्राह शिवं नमन् ।
तदा प्रसन्नो भगवान् कृतकार्य्यं सुतं मुदा ॥८९॥
प्राह मच्चिन्तितं कार्य्यं साधितं मणिवत्त्वया ।
नाम्ना चिन्तामणिरिति चिन्तितार्थप्रदो भव ॥९०॥
काश्यां ते रूपभेदेषु षट्पञ्चाशत्स्वभीष्टदः ।
तथापि क्षिप्रफलदो जनानां भव [1]मेऽर्थवत् ॥९१॥
एवं देवाद्वरं प्राप्य चिन्तामणिविनायकः ।
व्यासस्य का गतिरिति नमन् शम्भुं व्यजिज्ञपत् ॥९२॥
तेनैव चानयामास व्यासमीशो निजान्तिकम् ।
दीनं पदानतं व्यासमाह देवः कृपानिधिः ॥९३॥
वेदागमपुराणादिशास्त्राणि [2]प्राक्तनानि मे ।
मलिनानि नवीकर्त्तुमाज्ञातस्त्वं मया पुरा ॥९४॥

तब भगवान् प्रसन्न होकर, अपने बेटे से, जो कि काम बनाकर आये थे, प्रेम से बोले—(८९) तुमने मेरे कार्य्य को मणि की भांति साधन किया, अतः तुम्हारा नाम चिन्तामणि होगा और तुम चिन्तित अर्थ के दाता होगे। (९०) काशी में माँगी मुराद देनेवाले तुम्हारे ५६ रूप हैं, तथापि चिन्तामणिरूप से तुम भक्तों को शीघ्र फल देनेवाले हो। (९१) इस प्रकार देव से वर पाकर, चिन्तामणि विनायक ने प्रणाम करके विनती की कि व्यास की क्या गति होगी ? (९२) और तब वे व्यास जी को शिवजी के समीप ले आये। कृपानिधि महादेव ने व्यास को दीन तथा चरणों में गिरे हुए देखकर (९३) कहा कि मेरे वेद, शास्त्र, पुराणादिक सब पहिले के ही हैं। वे मलिन हो गये थे, उनको नया कर देने के लिए मैंने पहिले ही तुम्हें आज्ञा दे रक्खी थी। (९४) तुम्हारे बनाने से संसार में क्या होगा ? ये मैंने बनाए हैं इस बात का गर्व अब तुम मत करना। जहां हो, वहीं मेरी आज्ञा से रहो और काशी

१ ख. मेध्यवत्। २ ख. प्राक् कृतानि।

[१]त्वत्कृत्या किं भवेल्लोके मा गर्वीस्त्वमितः परम् ।
तिष्ठ तत्रैव यत्रासि पश्यन् काशीं मदाज्ञया ॥९५॥
गङ्गातटं वेदनुतं मुक्तिदं हि तनुत्यजाम् ।
तत्रापि काश्याः परितो देवभूमिस्त्रियोजना ॥९६॥
शापस्ते न स्पृशेदत्र तत्रैव वस मा शुचः ।
एवमुक्तो गतस्तत्र चाऽऽस्ते व्यासः शिवाज्ञया ॥९७॥
ततो व्यासः शिवमपि चिन्तामणिविनायकम् ।
[२]नमन् व्यासः परे चास्ते व्यासात्माऽद्यापि ते पतिः॥९८॥
तद्विद्यागर्वभङ्गो मे कार्यो वै नैगमेयतः ।
त्वं मदंशा तथा नासि भर्तृवात्सल्यभूषिता ॥९९॥
[३]तव चञ्चलताऽवश्यं कर्त्तव्या भक्तभूतये ।
एकत्रैव स्थिता चेत्त्वं मद्भक्तानां सुखं कुतः ॥१००॥

को देखा करो। (९५) गंगातट की महिमा वेद ने कही है, यहाँ शरीर छोड़नेवालों की मुक्ति होती है। उसपर भी काशी के चारों ओर तीन योजन तक देवभूमि है। (९६) तुम्हारा शाप यहाँ स्पर्श न करे। अब तुम सोच मत करो, वहीं बसो। ऐसा कहने पर व्यास वहाँ गये और शिवजी की आज्ञा से वहीं ठहरे हैं। (९७) इसके बाद चिन्तामणि विनायक और शिवजी को नमस्कार कर व्यासरूप से तुम्हारे पति वहीं बसे हैं। (९८) उनके विद्यागर्व का भङ्ग मुझे नैगमेय से कराना है। तुम भर्ता के वात्सल्य से भूषित होने के कारण मेरी अंशरूप होने पर भी वैसी नहीं रह गई। (९९) भक्तों के ऐश्वर्य के लिए तुमको चञ्चलता अवश्य करनी चाहिये। यदि तुम किसी एक स्थान में ही ठहर जाओ, तो मेरे भक्तों को सुख कैसे मिले ? (१००) इसलिये तुम हमारे भक्तों में एक अंश से न्यूनाधिक भाव

१ तत्कृत्वा। २ ग. गङ्गातटे नमंश्चास्ते। ३ ग. पुस्तकेऽयोऽयं पाठकः, आ० पु०—त्वं चाञ्चलतावश्यं।

तस्मात्त्वं तारतम्येन मद्भक्तेषु वसांऽशतः ।
जगत्येकांशतः स्थित्वा शेषांशैर्भर्तृवक्षसि ॥१०१॥
शिवोपदिष्टतीर्थस्नानतो[1] यासि मदाज्ञया ।
नैगमेयमुवाचेशा त्वं भूमौ मानुषो भव ॥१०२॥
[2]क्षेमनाम्ना सर्वशास्त्रज्ञानवान् व्यासनिन्दकः ।
काश्यां शिवोपदिष्टे त्वं तीर्थे स्नात्वा शिवं [3]नमन् ॥१०३॥
व्यासः प्रत्यक्षतस्त्वत्तो यदा प्राप्नोति हेलनम् ।
काश्यां तदा ते मुक्तिः स्यात् प्रियोऽसि त्वं हरेर्यतः ॥१०४॥
रहस्यस्यावयोस्त्वं वै पिशुनोऽसि हरिं रमाम् ।
[4]प्रियस्तस्य त्वया कार्या [5]तस्य हेला मदाज्ञया ॥१०५॥
इति स्वभक्तं शरणागतं प्राह हसन्[6] हरिम् ।
पाराशर्यो विष्णुरभूत् क्षेमाख्यो गणराट् [7]प्रभुः ॥१०६॥

पूर्वक बसो । एक अंश से जगत् में रहो और शेष अंश से भर्ता के वक्षस्थल में रहो । (१०१) शिवजी के उपदेश से मिले हुए तीर्थ में स्नान करने से मेरी आज्ञा द्वारा अपने पद को प्राप्त होओ । तब ईश्वरी ने नैगमेय से कहा—तुम जाकर पृथ्वी में मनुष्य होओ । (१०२) तुम्हारा क्षेम नाम होवे, तुमको सब शास्त्रों का ज्ञान हो और व्यास के निन्दक होओ । काशी में शिवजी से उपदिष्ट तीर्थ में स्नान तथा शिवजी को नमस्कार करने पर, (१०३) तुम्हारी भेंट व्यासजी से काशी में होगी और तुम उनका अपमान करोगे, तब तुम्हारी मुक्ति होगी । क्योंकि तुम विष्णु के प्रिय हो, (१०४) तुमने ही हम लोगों के रहस्य को जाकर के रमा और विष्णु से कह दिया था । तुम उनके प्रिय हो, इसलिये मेरी आज्ञा से तुम ही उनका अपमान करो । (१०५) इस प्रकार अपने शरण में आये हुए भक्त बिष्णु से हँसती हुई जगदम्बिका

१ ग. तीर्थे त्वं स्नानतो मुक्तिमाप्स्यासि । २ ग. क्षेमो । ३ ग. नम ।
४ ग. प्रियस्यास्य । ५ ग. त्वयेहेला । ६ ग. गणेश्वरम् । ७ ख. ग. कविः ।

जगत्येकांशतो लक्ष्मीः प्रसार्य्याऽत्यन्तसम्पदम्[1] ।
गौरीसेवापरा काशीमागत्य शिवया सह ॥१०७॥
श्रीमत्केदारवायव्यभागे तीर्थं स्वनामतः ।
कृत्वा तस्मिन्नित्यकृत्यं ततो गौर्य्यन्तिकेऽवसत् ॥१०८॥
द्वादशाब्दं कृतवती सह गौर्य्या च मज्जनम् ।
सेवया च तदा गौर्य्याः केदारस्य च वै रमा ॥१०९॥
काशीवासवरं प्राप्ता एकांशेन मुदाऽवसत् ।
लक्ष्मीतीर्थमिति ख्यातमद्याप्यत्रास्ति वै रमा ॥११०॥
वामदेव ! शृणु मुने ! शापोऽपि महतां खलु ।
लोकोपकृतये पश्य शास्त्रसम्पद्युतं जगत् ॥१११॥

सूत उवाच—

एवं कुमारकथितां नाथशर्माऽऽह गेहिनीम् ।
ममाऽऽह मद्गुरुः प्रीत्या स्वोत्पत्तिं तामनुक्रमात् ॥११२॥

ने कहा। सो पराशर के बेटे विष्णु हुए और गणराज नैगमेय क्षेम हुए। (१०६) संसार में लक्ष्मी एक अंश से अत्यन्त संपदा को फैलाकर, शिवा के साथ ही उनकी सेवा के लिए काशी आई। (१०७) श्रीमत्केदारनाथ के वायव्य भाग में अपने नाम से तीर्थ बनाया। उसमें नित्यकृत्य करके गौरी के सन्निकट बसीं। (१०८) बारह वर्ष तक गौरी के साथ मज्जन किया, तब गौरी तथा केदारजी की सेवा से (१०९) काशीवास का वर पाया और एक अंश से वह सदा काशी में वसती हैं। उस स्थान को लक्ष्मीतीर्थ कहते हैं। वहाँ अब भी रमा वर्तमान हैं। (११०) हे मुनि वामदेव ! सुनो, बड़ों का शाप भी निश्चय करके लोक के उपकार के लिए होता है। देखो, यह जगत् उसीसे शास्त्रसंपत् से युक्त है। (१११) सूतजी ने कहा—इस प्रकार सनत्कुमार की कही हुई कथा नाथशर्मा ने अपनी गृहिणी से कही और मेरे गुरु ने मुझसे प्रीति-

१ ग, पुण्यदम्।

सर्वज्ञः सर्वदर्शी मे गुरुः शम्भोः [1]कृपालवात् ।
[2]तदेव च मया सर्वं कथितं भवतां पुरः ॥११३॥
इति सकलजनाघध्वंसिनीं पुण्यकीर्त्ति
परमशिवपदाब्जप्रापिकां सत्सुलभ्याम् ।
श्रवणपुटगृहीतां सत्कथामीशभक्त्या
हृदि विदधति एते प्राप्नुयुस्त्वीशधाम ॥११४॥
इति सकलमुनीनामादरेणाऽऽह सूतः
पुनरपि मुनिवर्य्यैः सोत्सुकैः प्राथितोऽभूत् ।
कथय परमशम्भोः सद्रहस्यं [3]सुधीम-
न्निति पुनरपि सूतः प्रस्तुतं वक्तुमैच्छत् ॥११५॥

इति श्रीकाशीमूलरहस्ये ब्रह्मवैवर्त्ते खिले काशीकेदारमाहात्म्ये
अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

पूर्वक अपनी उत्पत्ति कही। (११२) शम्भु की कृपा के लेश से मेरे गुरु सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हुए, सो सब मैंने आप लोगों के सामने वर्णन किया। (११३) यह सबके पापों का नाश करनेवाली पुण्यकीर्ति परमशिव के चरणकमलों को प्राप्त करानेवाली है और इसे सज्जन लोग ही प्राप्त कर सकते हैं। इस अच्छी कथा को शिवजी की भक्ति के सहित जो सुनकर हृदय में धारण करता है, उसे शिवलोक की प्राप्ति होती है। (११४) इस कथा को आदर के साथ सूतजी ने मुनियों को सुनाया, तत्पश्चात् मुनियों ने उत्सुकता के साथ प्रार्थना की कि हे अच्छी बुद्धिवाले सूतजी! आप परमशिव के सद्रहस्य का कथन कीजिये सो सूतजी ने फिर कहने की इच्छा की।

यह ब्रह्मवैवर्त्त के खिलग्रन्थ काशीरहस्य के अन्तर्गत काशीकेदारखण्ड का
आठवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

१ ग. बलात्। २ ख. पुस्तके सार्द्धश्लोको नास्ति। ३ ग. सुधामन्!

अथ नवमोऽध्यायः ।

ऋषय ऊचुः—

व्यासशिष्य ! ज्ञाननिधे ! नैगमेयो गणाग्रणीः ।
व्यासप्रत्यक्षतः काश्यां मानुष्याद् मुक्तिमाप सः ॥ १ ॥
कथं व्यासेन संवादो जातः सर्वज्ञमूर्तिना ।
श्रोतुं योग्या यदि वयं रहस्यं वद नौ भवान् ॥ २ ॥

सूत उवाच—

शृणुध्वं ऋषयः सर्वे नाथशर्म्माणमप्यमुम् ।
रहस्यमनवद्याऽपि पप्रच्छ [1]चरणौ नमन्❀ ॥ ३ ॥
सनत्कुमारोदितं स वामदेवाय सादरम् ।
तां प्रोवाच रहस्यं सद् वदामि [2]भवतामहम् ॥ ४ ॥

दोहा—क्षमा कियो अपराध सब, ह्वै प्रसन्न गिरिजेश ।
कह्यौ हरिहिं यह तीर्थ थल, मम अपराध अशेष ॥ १ ॥
विष्णु अंश श्री व्यास को, नैगमेय अपमान ।
कीन्ह क्षेमकवि ह्वै जगति, गौरी-शाप प्रमान ॥ २ ॥
सावन पूनो सोमदिन, गौरी कुण्ड नहाइ ।
पूजि केदारहिं मुक्त ह्वै, रही अचल गति पाइ ॥ ३ ॥

ऋषि लोग बोले—हे ज्ञाननिधि व्यास के शिष्य ! गणों में श्रेष्ठ नैगमेय काशी में व्यास के साक्षात्कार से मनुष्य योनि से कैसे मुक्त हुए ? (१) सर्वज्ञमूर्ति व्यास से उनकी कैसी बातचीत हुई, यदि हम लोग सुनने के अधिकारी हों, तो यह रहस्य सुनाइये । (२) सूतजी बोले—हे मुनिलोग ! आप सब कोई सुनें । अनवद्या ने भी यही रहस्य नाथशर्मा के चरणों पर गिरकर पूछा था । तब सनत्कुमार ने जो आदर के सहित वामदेव को सुनाया था, वही उन्होंने उसे सुनाया, वही मैं आपलोगों को सुनाता हूँ । (४)

१ ग. स्वामिनं । २ ग. भवतापहम् । ❀ डीबभाव आर्षः ।

सनत्कुमार उवाच—

वामदेव ! शृणु मुने ! व्यासस्य च गणस्य च ।
संवादं गणमुक्तिञ्च काश्यां सर्वाघशान्तये ॥ ५ ॥
यदा गौर्य्यागता काशीं लक्ष्म्या साकमघापहाम् ।
स्नात्वा तीर्थे [1]पूज्य लिङ्गं स्थिता द्वादशहायनम्[2] ॥ ६ ॥
शिवाज्ञया तदा शम्भुः केदारेशो दयानिधिः ।
[3]पूर्णायां श्रावणे मासि द्वादशाब्दादनन्तरम् ॥ ७ ॥
शशिवारयुतायां स केदारेशोऽवदच्छिवाम् ।
प्रत्यक्षतो लिङ्गमूर्त्तेराविर्भूय पराशरः ॥ ८ ॥
गौरीमाह प्रसन्नात्मा गिरा गम्भीरया हरः ।
गौरि ! प्रसन्नोऽहमस्मि तीर्थस्नानेन पूजया ॥ ९ ॥
[4]ममापराधसाहस्रमपि क्षान्तं त्वया कृतम् ।
इत्येवंवादिनं गौरी नत्वा प्राह सदाशिवम् ॥१०॥

सनत्कुमार बोले—हे वामदेव मुनिजी ! व्यास और गण (नैगमेय) का संवाद तथा काशी में उसकी मुक्ति की कथा सब पापों की शांति के निमित्त सुनिये। (५) जब गौरी लक्ष्मी के साथ सब पापों को हरनेवाली काशी पुरी में गईं, और तीर्थ में स्नान करके लिङ्ग की पूजा करती हुई शिवजी की आज्ञा से बारह बरस रहीं, (६) तब शम्भु केदारनाथ दयासिन्धु ने बारह बर्ष बीतने पर सोमवार युक्त श्रावणी पूर्णिमा को शिवा से कहा। लिङ्गमूर्ति से वे परात्पर भगवान् प्रत्यक्ष प्रगट हुए और प्रसन्न होकर गम्भीर वाणी से उन्होंने गौरी से कहा—हे गौरि ! मैं तीर्थस्नान और पूजा से प्रसन्न हूँ। (९) तुम्हारे किये हुए हजारों अपराधों को भी मैंने क्षमा किया। ऐसा कहनेवाले सदाशिव को नमस्कार करके गौरी बोलीं—(१०) हे स्वामिन् ! इस संसार में

१ ग. प्रपूज्येशं। २ ग. द्वादश वत्सरान्। २ ग. पुस्तकीयाऽयं पाठ आ० पु०—श्रावणे मासि पौर्णमास्यां। ४ ग. मया०।

स्वामिन्! लोके जनास्त्वज्ञा मौढ्यात्त्वयि कृतागसः ।
भविष्यन्ति कलौ सत्यमज्ञात्वा शिववैभवम् ॥११॥
कोटयो ब्रह्महत्यानामगम्यागम्यकोटयः ।
शिवापराधलेशस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥१२॥
शिवापराधिजीवानां मुक्तिर्नास्त्येव सर्वथा ।
तादृशां पापजीवानामुपकाराय मत्कृते ॥१३॥
अनुग्रहं कुरु विभो! तीर्थे मुक्ता भवन्तु ते ।
त्वल्लिङ्गदर्शनात्तेऽग्रतीर्थस्नानाच्छिवाघतः ॥१४॥
सर्वाघतश्च निर्मुक्ता भवन्तु कृपया तव ।
इति सम्प्रार्थयन्तीं तां प्राह केदारनायकः ॥१५॥
देवि! प्रार्थयसे मत्तो दुर्लभं वरमीदृशम् ।
तथापि [1]प्रीतये तेऽहं दास्यामि वरमुत्तमम् ॥१६॥
मदागसो विमुक्तिस्तु प्रसादादेव मे भवेत् ।

आपके अपराधी लोग अपनी मूढता से सचमुच कलियुग में आपकी महिमा न जानने से आपके अपराध से कैसे मुक्त होंगे? (११) करोड़ों ब्रह्महत्याएँ और करोड़ों अगम्यागमन भी शिवापराध के लेश की सोलहवीं कला के तुल्य नहीं है। (१२) शिवापराधी जीव की तो किसी भांति मुक्ति नहीं है। ऐसे पापी जीवों पर मेरी खातिर (१३) आप दया करें। हे विभो! आपके लिङ्ग-दर्शन और आपके सामने के तीर्थ के स्नान द्वारा शिवजी के अपराध से मुक्त हों। (१४) तथा आपकी कृपा से सब पापों से भी मुक्त हों। इस प्रकार प्रार्थना करती हुई गौरीजी से केदारनाथ ने कहा (१५)—हे देवि! तुम हमसे ऐसा दुर्लभ वर माँगती हो, फिर भी तुम्हारी प्रीति के लिए मैं यह उत्तम वर देता हूँ। (१६) मेरे पाप से विनिर्मुक्ति मेरी ही कृपा से होती है। तीनों लोकों में जिन जीवों पर मेरी कृपा

---

१ ग. पुस्तकीयोऽयं पाठ आ० पु०—प्रयते।

मत्प्रसादस्तु येष्वस्ति जीवेषु त्रिजगत्सु वै ॥१७॥
तेषामेव भवेच्छ्रद्धा मल्लिङ्गे मम तीर्थके ।
काश्यां तीर्थान्यनेकानि मणिकर्ण्यादिकानि वै ॥१८॥
सर्वाघपूगध्वंसीनि तथा लिङ्गान्यपि प्रिये ! ।
विश्वेशादीन्यनेकानि सर्वपापहराणि वै ॥१९॥
तथापि मयि लोकानां नोद्धाराय कृतागसाम् ।
प्राचीनतीर्थकेदारलिङ्गे एव मदागसाम् ॥२०॥
काश्यां वाऽन्यत्र वा मय्यागसां नृणां विमुक्तिदे ।
इमे एव न [१]चान्येस्तस्तीर्थलिङ्गे वरानने ! ॥२१॥
तव नाम्ना भवेत्तीर्थं लोकोपकृतये भुवि ।
गौरीतीर्थमिति ख्यातं रहस्यं भवतु प्रिये ! ॥२२॥
श्रावणे सर्वपापघ्नमस्तु तत्रापि वै विधोः ।
वासरे सर्वपापघ्नं पूर्णिमायां महाघहम् ॥२३॥

होगी, (१७) उन्हीं लोगों को मेरे लिङ्ग और मेरे तीर्थ में श्रद्धा होगी । काशी में मणिकर्णिकादिक जितने असंख्य तीर्थ हैं, (१८) ये सब पाप समूहों का नाश करनेवाले हैं, उसी भाँति विश्वेश्वरादिक लिङ्ग भी अनेक हैं और सब पापों को हरनेवाले हैं। (१९) परन्तु इनसे मेरे अपराधियों का उद्धार नहीं होता । प्राचीन तीर्थ और केदारलिङ्ग ही मेरे अपराधियों को (२०) मुक्ति देनेवाले हैं, चाहे उन्होंने काशी में पाप किया हो या बाहर किया हो । हे वरानने ! इन दोनों को छोड़कर दूसरा तीर्थ और दूसरा लिङ्ग ऐसा नहीं है । (२१) लोकोपकार के लिये यह तीर्थ पृथ्वी में तुम्हारे नाम से हो । हे प्रिये ! यह गुप्त तीर्थ गौरीतीर्थ नाम से प्रसिद्ध हो । (२२) सावन के महीने में यह सब पापों का नाश करनेवाला हो, उसमें भी सोमवार को अखिल पापों का नाश करे और पूर्णिमा को महापापों का ध्वंसकारी हो। (२३) देहधारियों के

१ ख. चास्त्यन्ये० ।

सोमवारे महापूजा दुर्लभा मम देहिनाम् ।
तत्रापि श्रावणे मासि पर्वयुक्ता ततोऽधिका ॥२४॥
इति दत्वा वरं तस्यै गौर्य्यै केदारनायकः ।
तस्मिल्लिङ्गे [1]तिरोधत्त पश्यतां सर्वदेहिनाम् ॥२५॥
शिवागसस्ततो देवी मुक्ता शम्भुमुपागता ।
एवं तीर्थस्य लिङ्गस्य महिमा काशिकाभुवि ॥२६॥
इत्युक्त्वा वामदेवं स [2]स्कन्दांशोवाच❀ वै पुनः ।
वामदेव ! शृणु मुने ! नैगमेयस्य सद्गतिम् ॥२७॥
गौरीशापान्नैगमेयो मानुष्यं प्राप भूतले ।
नाम्ना क्षेमकविः सर्ववेदशास्त्रागमालयः ॥
पूर्वकल्पकथासङ्घशतश्रवणबुद्धितः ॥२८॥
वेदशास्त्रपुराणागमेतिहासान् स्थितान् भुवि ।
अतिशय्य नवग्रन्थमकरोत् सर्वसङ्ग्रहम् ॥२९॥

लिए सोमवार को मेरी पूजा दुर्लभ है । उसमें भी सावन का महीना और यदि पूर्णिमा पड़ जाय तो कहना ही क्या ! (२४) इस प्रकार गौरीजी को वर देकर केदारनाथ सबके देखते देखते उसी लिङ्ग में अन्तर्धान हो गये । (२५) तब देवी, शङ्कर के अपराध से मुक्त होकर शम्भु के पास गई काशी की भूमि में इस तीर्थ और लिङ्ग की ऐसी महिमा है । (२६) वामदेव से ऐसा कहकर सनत्कुमार ने फिर कहा कि हे मुनि वामदेवजी ! नैगमेय की सद्गति सुनिये । (२७) गौरी के शाप से नैगमेय पृथ्वीतल पर मनुष्य हुए । उनका नाम क्षेमकवि हुआ । पूर्व कल्प की सौ कथाओं के समूह के सुनने से उनकी बुद्धि ऐसी हो गई थी (२८) कि वे सम्पूर्ण वेद, शास्त्र, पुराण के घर हो गये । जो वेद, पुराण, शास्त्र, तन्त्र, इतिहास पृथ्वी पर वर्तमान थे, उन सबका संग्रह करके एक ऐसा बढ़चढ़ कर नया ग्रन्थ बनाया, (२९) जिसमें

१ ग. निरोधात्तु । २ ग. स्कन्दाशः प्राह ❀सन्धिरार्षः ।

बृहत्कथामञ्जरीति नाम्ना संगृह्य शास्त्रतः ।
'शिवप्रोक्तकथां पूर्वकल्पवृत्तान्तसंयुताम् ॥३०॥[1]
तेन ग्रन्थेन व्यासोक्तपुराणानि स्मृतयश्च[2] ।
धर्म्मशास्त्रागमा लोके निःसारा भान्ति धीमताम् ॥३१॥
तादृग्ग्रन्थस्य करणं श्रुत्वा सत्यवतीसुतः ।
केनोपायेन स ग्रन्थो न प्रवर्त्तेत भूतले ॥३२॥
तत्प्रचारान्मम वृथा भवेद् ग्रन्थपरिश्रमः ।
एवं चिन्तासमायुक्ते नितरां बादरायणे ॥३३॥
क्षेमनाम्ना[3] कविर्व्यासोक्तं[4] तूलवदखण्डयत् ।
पूर्वोत्तरविरोधोक्त्या पौनरुक्त्यादिदोषतः ॥३४॥
अर्थवादाधिक्य (?)[5] कवेः सम्प्रदायविरोधतः ।
अद्वैतद्वैतभेदेन विद्वच्चित्तभ्रमप्रदात्[6] ॥३५॥

शिवजी की कही हुई पूर्व कल्प के वृत्तान्तों की भी कथाएँ थीं । उसका नाम -बृहत्कथामञ्जरी रक्खा । (३०) उस ग्रन्थ के सामने व्यास के कहे हुए पुराण, स्मृति तथा अन्य शास्त्र बुद्धिमानों को निस्तत्त्व भासने लगे । (३१) जब सत्यवती के पुत्र व्यास ने ऐसे ग्रन्थ की रचना सुनी, तब उनको यह चिन्ता हुई कि किस उपाय से उस ग्रन्थ का प्रचार पृथ्वी पर न हो । (३२) उसके प्रचार से तो मेरा ग्रन्थ बनाने का परिश्रम ही व्यर्थ हो जायगा, इस प्रकार भगवान् बादरायण को बड़ी चिन्ता हुई । (३३) इधर क्षेमकवि व्यास के कथन को रुई की भाँति चोंथ कर फेंक देते थे । पूर्वापरविरोध, पुनरुक्ति, (३४) अर्थ वाद की अधिकता, कविसंप्रदाय का विरोध, अद्वैत द्वैत भेद से विद्वानों के चित्त में भी भ्रम डालना (३५) इत्यादि अनेक दोषों को दिखला कर

१ ग. 'शिवप्रोक्तकथापूर्वकल्पवृन्तान्तसंयुता, क. ०साम्प्रतम् । २ ख. स्मृतीश्च यः । ३ ख. क्षेमनामा । ४ ग. व्यासस्योक्तं चारादखण्डयत् । ५ ग. कविसम्प्रदायविरोधतः । ६ ग. ग्रहात् ।

इत्याद्यनेकदोषेभ्यस्तस्य शास्त्राण्यखण्डयत् ।
स्वग्रन्थस्य प्रचाराय कृतयत्नोऽभवद्र यदा ॥३६॥
व्यासं प्रत्यक्षतो जित्वा ततः कुर्वे प्रचारणम् ।
[१]एवं चिन्त्य क्षेमकविः काशीमागत्य भक्तितः ॥३७॥
केदारस्योत्तरे भागे लिङ्गं स्थाप्य स्वनामतः ।
जयार्थं व्यासमूर्त्तेश्च नित्यं लिङ्गमपूजयत् ॥३८॥
गौरीकुण्डे प्रतिदिनं स्नात्वा केदारनायकम् ।
नत्वा स्वस्थापितं लिङ्गं नाम्ना क्षेमेश्वराभिधम् ॥३६॥
आराधयन् स्थितो नित्यं द्वादशाब्दं निरन्तरम् ।
तदा प्रसन्नः क्षेमेशो [२]लिङ्गादाविर्भवन् हरः ॥४०॥
तं क्षेमकविनामानं गणश्रेष्ठं महेशितुः ।
प्राह गम्भीरया वाचा कोटिसूर्य्यसमप्रभः ॥४१॥

व्यास के शास्त्रों का खण्डन करते थे । उन्होंने अपने ग्रन्थ के प्रचार के साथ २ व्यास के खण्डन का भी आरम्भ किया (३६) 'व्यास का सामना करके जीतने के बाद अपने ग्रन्थ का प्रचार करूँगा' ऐसा विचार करके क्षेमकवि काशी आये, और भक्ति के साथ (३७) केदारजी के उत्तर भाग में अपने नाम के लिङ्ग* को स्थापना करके, व्यासमूर्ति की जय के लिए नित्य लिङ्ग की पूजा करने लगे। (३८) प्रतिदिन गौरीकुण्ड में स्नान करके केदारनाथ को नमस्कार करते थे । और अपने स्थापित क्षेमेश्वर लिङ्ग की नित्य आराधना करते थे। (३९) इस भाँति उन्हें निरन्तर बारह वर्ष बीत गये । तब प्रसन्न होकर क्षेमेश्वर महादेव उस लिङ्ग से प्रगट हुए (४०) और उस क्षेमकवि नामवाले अपने श्रेष्ठ गण से कोटि सूर्य्य के समान प्रभावाले शङ्कर जी गम्भीर वाणी से बोले—(४१) हे वत्स क्षेमकवि ! तू बुद्धिमान है, शास्त्र के द्वारा

* मानसरोवर के निकट क्षेमेश्वर महादेव का मन्दिर है ।
१ ग. विचिन्त्यैवं । २ ग. लिंगादाविर्बभूव ह ।

शृणु क्षेमकवे ! वत्स ! बुद्धिमानसि शास्त्रतः ।
शिवापराधाद् गौर्य्याश्चाऽपराधात्त्वं विमोचितः ॥४२॥
गौरीतीर्थस्नानबलाच्छ्रीमत्केदारदर्शनात्[1] ।
गन्तासि त्वं परं धाम नवमेऽहनि चाद्यतः ॥४३॥
नभसीन्दोर्वारयुता पूर्णिमा नवमेऽहनि ।
गन्तासि तद्दिने त्वञ्च स्नानार्थं मणिकर्णिकाम् ॥४४॥
तत्र त्वं व्यासमूर्त्तिं च दृष्ट्वा श्वेतशिलामयीम् ।
निन्दसि त्वं तत्र तां वै ततस्त्वां बादरायणः ॥४५॥
आविर्भूय शिलामूर्त्तेः प्रत्यक्षस्त्वां परीक्षति ।
परीक्षोत्तरतो व्यासस्त्वया केदारमेष्यति ॥४६॥
रात्रौ महापूजनान्ते तव मुक्तिर्भविष्यति ।
इत्युक्त्वान्तरधाच्छम्भुस्तस्मिंल्लिङ्गे महामुने ! ॥४७॥
क्षेमेश्वरं तदारभ्याद्यापि भाति नतेष्टदः ।
केदारस्योत्तरे भागे क्षेमेशः कविपूजितः ॥४८॥

तुम्हारा किया हुआ शिवापराध और गौरी का अपराध छूट गया। (४२) गौरीतीर्थ में स्नान और केदारदर्शन के प्रताप से तुम आज के नवें दिन परम धाम जाओगे। (४३) आज से नवें दिन सावनी पूर्णिमा का सोमवार पड़ेगा। उस दिन तुम स्नान के लिए मणिकर्णिका जाओगे। (४४) वहाँ पर तुम सफेद पत्थर की व्यास की मूर्ति देखकर उसकी निन्दा करोगे। तब बादरायण (व्यास) (४५) शिलामूर्ति से प्रगट होकर प्रत्यक्ष तुम्हारी परीक्षा लेंगे, परीक्षा के बाद व्यास तुम्हारे साथ केदार जी जायँगे (४६) और रात की महापूजा के अन्त में तुम्हारी मुक्ति होगी। ऐसा कहकर हे मुनि ! शम्भु उसी लिङ्ग में अन्तर्धान हो गये। (४७) उस दिन से आज तक नमस्कार करनेवालों को अभीष्ट देनेवाले क्षेमेश्वर, केदारजी के उत्तर भाग में विराज-

१ ख. ०बलात् शिव० ।

तदा क्षेमकविस्तुष्टः प्रतीक्ष्य नवमेऽहनि ।
मणिकर्णीं गतः स्नातुं स्नात्वा [1]विश्वेशमर्च्य च ॥४९॥
निर्गत्य च बहिस्तत्र व्यासमूर्त्तिश्च दृष्टवान् ।
कोऽयं पिचिण्डितो भाति पूर्णकुक्षिश्चकारतः ॥५०॥
इति हेलनतो मूर्त्तिमंगुल्या तुदतोदरे ।
आविर्भूय तदा मूर्त्तेर्व्यासस्तस्य करं दधत् ॥५१॥
चकारकुक्षिरिति मामंगुल्या त्वं तुदः खलु ! ।
मदुक्तिं वद [2]पश्ये त्वां निश्चकारामनुष्टभा ॥५२॥
कुत्रचिद् भूपतेर्द्वारं स्थितं तद्वर्षतोऽगलत् ।
भित्तिः स्थिता तत्र चैका तस्मिन् काले च साऽपतत् ॥५३॥
तत्र श्वा[3] च स्थितोऽप्येको मृतस्तस्मिन् क्षणे च सः ।
भूपतेस्तनयो जातः तस्मिन्नेव क्षणे तदा ॥५४॥

मान हैं, उन क्षेमेश्वर की कविगण पूजा करते हैं। (४८) तब क्षेमकवि सन्तुष्ट होकर नवें दिन की प्रतीक्षा करने लगे, और उस दिन स्नान करके विश्वेश्वर का पूजन किया तत्पश्चात् स्नान के लिए मणिकर्णिका गये (४९) वहाँ से बाहर निकलकर उन्होंने व्यासमूर्ति देखी और बोले—यह बड़ी तोंदवाला कौन है? इसका पेट 'चकार' से ठँसा हुआ है। (५०) इस प्रकार अपमान करते हुए उस मूर्ति के पेट में अङ्गुली गड़ाई। तब तो उस मूर्ति से प्रकट होकर व्यासजी ने हाथ पकड़ लिया (५१) और कहा कि 'चकारकुक्षि' कहकर तुमने मुझमें अङ्गुली गड़ाई, अब मैं जो कहता हूँ, उसे तुम अनुष्टप् छंद में कहो और चकार न पड़ने पावे। (५२) 'राजा का कहीं पर फाटक था, वह बहुत दिन का होने से महा जीर्ण हो गया था, वहाँ पर एक दीवार थी, जिस समय वह दीवार गिरी (५३) वहाँ पर एक कुत्ता था, सो

१ ग. ०मर्चयन् । २ ग पश्येतां । ३ ग. स्थान स्थितो० ....क्षणे च श्वा ।

जातस्य तनयस्यापि तस्मिन्नेव क्षणे पुनः ।
[1]तस्यापि तनयो जातस्तस्मिन्नेव क्षणे पुनः ॥५४॥
कुष्माण्डखण्ड इति च नाम जातस्य वै शिशोः ।
एतत्सर्वं वद द्राक् त्वं चकारेण विनाऽधुना ॥५५॥
द्वात्रिंशदक्षरेऽनुष्टुप्छन्दसि त्वं वदेर्यदि ।
कविरेव न सन्देहो मदुक्तेर्हेलनम् [2]ऋतम् ॥५६॥
बादरायणमित्युक्तं प्रत्युवाच हसन् कविः ।
वदस्येतावदेवं वा इतोऽन्यदपि चेद् वद ॥५७॥
इतिवादिनमेनं स कविं व्यासोऽप्युवाच ह ।
एतावत्त्वं वद ततः पश्यामि तव कौशलम् ॥५८॥
ततः प्राह क्षेमकविः सर्वमर्थं त्वनुष्टुभि ।
शृणु व्यास ! महायोगिन् ! मदुक्तिमिति चावदत् ॥५९॥

उसी समय मर गया, तब उसी समय राजा का लड़का पैदा हुआ और उस पैदा हुए लड़के का उसी क्षण में लड़का पैदा हुआ। (५३) उस उत्पन्न लड़के का नाम रक्खा गया कुष्माण्डखण्ड'। अब बिना चकार के तुम इसे तुरन्त अभी कहो। (५५) बत्तीस अक्षर के अनुष्टुप् छन्द में यदि तुम इसे कह दो, तो तुम निस्सन्देह कवि हो और मेरी रचना का जो तुम अनादर करते हो, सो भी सच्चा है। (५६) बादरायण भगवान् के ऐसा कहने पर हँसते हुए उस कवि ने जवाब दिया कि इतना ही तुम्हारा कहना है ? और हो तो उसे भी कह डालो। (५७) ऐसा कहने पर उस कवि से व्यासजी ने कहा कि तुम इतना ही कहो, इसी में तुम्हारी पण्डिताई देखी जायगी। (५८) तब क्षेमकवि ने यह सब बात अनुष्टप् में कह दी, और बोले कि हे व्यास महायोगी! मेरी रचना सुनो, (५९) 'राजद्वारि गलद्वारि पतद्भित्तौ मृते शुनि।

१ ग. पुस्तके 'तस्यापि०, इति पादद्वयं नास्ति। २ ग. ह्यृतम्।

राजद्वारि गलद्वारि पतङ्क्तौ मृते शुनि ।
राजपुत्रस्य पुत्रोऽभून्नाम्ना कुष्माण्डखण्डकः ॥६०॥
एकाक्षरस्तव कृते ककारः [1]पातितो मया ।
[2]एकाक्षरोनेऽनुष्टुभि जातोक्तिस्ते ककारतः ॥६१॥
इत्युक्तं क्षेमकविनं (?) व्यासस्तुष्टोऽब्रवीत् पुनः ।
बुद्धिमांस्त्वं सर्वशास्त्रतत्त्वज्ञः शिवसेवया ॥६२॥
तुष्टोऽहं त्वय्यद्य कवे ! स्मृतिर्जाता हि पूर्विका ।
[3]नाम्ना गणो नैगमेयः शिवस्य परमात्मनः ॥६३॥
शापाद्विप्रत्वमापन्नो देव्या मद्धेलना त्वया ।
कर्त्तव्यैव कृता पूर्वं रहस्यं शिवयोर्वदन् ॥६४॥
पूर्वस्मिन्नहमासन्ते मित्रं जन्मनि चक्रभृत् ।
एकेनांशेन मानुष्यं गौर्य्याज्ञापालनाय वै ॥६५॥

राजपुत्रस्य पुत्रोऽभून्नाम्ना कुष्माण्डखण्डकः' (६०) इसमें एक अक्षर ककार मैंने तुम्हारे खातिर बढ़ा दिया, नहीं तो अनुष्टुप् से एक अक्षर कम में ही आपकी बात पूरी हो गई थी । (६१) इससे प्रसन्न होकर व्यासजी फिर क्षेमकवि से बोले—तुम बुद्धिमान हो और शङ्कर की सेवा से तुम सब शास्त्रों के तत्त्व को जानते हो । (६२) हे कवि ! आज मैं तुमसे प्रसन्न हूँ, मुझे पहिले की बातें स्मरण आगईं, आप परमात्मा शिव के नैगमेय नामक गण हैं । (६३) देवी के शाप से आप ब्राह्मण हुए हैं, मेरा अवहेलन करके आपने अपना कर्तव्य ही किया है । पूर्वकाल में आपने शिव-गौरी का रहस्य कहा था । (६४) हम आपके पूर्व जन्म में मित्र विष्णु हैं, गौरी की आज्ञा के पालन के लिए एक अंश से मैं मनुष्य योनि को प्राप्त हुआ हूँ । (६५) भर्ता के अपमान से रमा को अत्यन्त लजवाने के लिए आपके द्वारा,

१ ग. प्रापितो । २ ग. एकाक्षरेष्वनुष्ट्भि । ३ ग. पुस्तकीयांऽयं पाठः, आ० पु०—भगवान् ।

प्राप्तं त्वया हेलनं मे भवितेति शिवाऽब्रवीत् ।
रमां लज्जावतीं कर्त्तुं भर्तृहेलनतस्तराम् ॥६६॥
गणेन निजभक्तेन मन्मित्रेणैव मां पुनः ।
मन्वन्तरमिह स्थातुमाज्ञा [1]तस्य मम त्विह ॥६७॥
तव शापः [2]शान्तिमगात् कृपया शिवयोः कवे ! ।
एहि गच्छाव केदारं तारकन्तु शिवागसाम् ॥६८॥
इति सम्भाष्य तौ क्षेमकविव्यासौ समागतौ ।
श्रीमत्केदारनाथस्य सन्निधिं त्वरया तदा ॥६९॥
[3]प्राचीनमणिकर्ण्यां तौ स्नात्वा केदारमर्च्य च ।
दृष्ट्वा निशि महापूजां नभःपर्वविधोर्दिने ॥७०॥
तस्थतुस्तत्र सानन्दौ [4]ध्यायन्तौ शङ्करं तदा ।
तयोः प्रसन्नो भगवान् लिङ्गादाविर्बभूव ह ॥७१॥

जो कि उनके भक्त गण और हमारे मित्र हैं, हमारा अपमान होना शिवा ने पहिले ही कह दिया था । (६६) उनकी आज्ञा मेरे लिए एक मन्वन्तर यहाँ ठहरने के लिए है । (६७) हे कवि ! तुम्हारा शाप तो शिवपार्वती की कृपा से शान्त हो गया । आओ, केदारजी चलें, जो कि शिवापराध से उद्धार करनेवाले हैं । (६८) ऐसी बातचीत करके दोनों—व्यासदेव और क्षेमकवि—शीघ्रता से तब केदारनाथ के सन्निकट आये । (६९) प्राचीन मणिकर्णिका में स्नान करके श्रीकेदारेश्वर की पूजा की, और सावन की पूर्णिमा के सोमवार की महापूजा, जो रात्रि को होती है, देखी । (७०) दोनों आनन्द से बैठकर हृदय में शम्भु का ध्यान करने लगे । उन दोनों पर प्रसन्न होकर भगवान् लिंग से प्रगट हुए । (७१) करोड़ों सूर्य्य की भाँति उनका प्रकाश था और

---

१ ग. तस्या । २ ग. पुस्तकीयोऽयं पाठः, आ० पु०—शान्तमगात् । ३ ग. प्राचीनतीर्थे तौ स्नात्वा केदारेशं समर्च्य च । ४ ग पुस्तकीयोऽयं पाठः, आ० पु०—ध्यायन् शम्भुं हृदा तदा ।

कोटिसूर्य्यप्रतीकाशः कोटिचन्द्रांशशीतलः ।
गौर्य्यावृषारूढतनुर्गणैर्नन्द्यादिभिर्वृतः ॥७२॥
पार्श्वयोर्मूषकारूढमयूरस्थसुतद्वयः ।
वन्दीभूतश्रुतिस्तोमजयघोषककुप्तटः ॥७३॥
धिक्कृतामृतसौरभ्यरसवाचा गभीरया ।
प्राह क्षेमकविव्यासौ स्वसुताविव सादरम् ॥७४॥
शृणु क्षेमकवे ! व्यास ! युवयोर्भजनादहम् ।
प्रसन्नः प्रार्थय वरान् वाञ्छितान् हि यथेष्टतः ॥७५॥
इति शम्भोर्वाक्यसुधां तौ [1]पिबन्तौ कर्णपुटैः ।
प्राहतुर्गद्गदरवौ आनन्दाश्रुपरिप्लुतौ ॥७६॥
भगवन् ! सर्वलोकेश ! भक्तानामभयप्रद ! ।
किं प्रार्थ्यमावयोरस्ति प्रत्यक्षे त्वत्पदाम्बुजे ॥७७॥
तथापि [2]मानुषं भावं यथा गच्छेत्तथा कुरु ।
इत्युक्तः शङ्करस्ताभ्यां प्राह [3] वाचा पुनश्च तौ ॥७८॥

करोड़ों चन्द्रमा की भांति वे शीतल थे । गौरी के साथ बैल पर सवार, नन्दी आदिक गणों से घिरे हुए (७२) और दोनों बगल में दोनों बेटे चूहे और मोर पर सवार हुए विराजमान थे । वेद बन्दी होकर स्तुति कर रहे थे । जयघोष से दिशाएँ व्याप्त थी । (७३) अमृतरस को लजानेवाली वाणी से क्षेमकवि और व्यास से अपने बेटों की भांति आदर के साथ बोले (७४) कि हे क्षेमकवि और व्यास ! हम तुम लोगों के भजन से प्रसन्न हैं, जैसी तुम लोगों की इच्छा हो, वैसा वाञ्छित वर माँग लो । (७५) शम्भु भगवान् की ऐसी अमृतमय वाणी सुनकर दोनों आनन्दाश्रु से भींग उठे और गद्गद स्वर से बोले—(७६) हे सब लोकों के ईश ! भगवन् ! हे भक्तों को अभय देनेवाले ! आपके चरण कमलों का हम लोग दर्शन पा रहे हैं, अब हमलोगों को और क्या प्रार्थनीय है ? (७७)

१ गं. पिबन्तौ कर्णपुटकैः । २ गं. मानुषो भावो । ३ ग. वाचं ।

भक्तौ युवान्तु शृणुतं मुक्तिरद्योभयोर्नहि ।
एकस्य च कवेरद्य मुक्तिं दास्यामि मानुषात् ॥७९॥
आवयोराज्ञया व्यास ! वस मन्वन्तरं भवान् ।
[1]मद्रहस्यशास्त्रजातं प्रकाश्य जनतारकम् ॥८०॥
याहि मन्वन्तरान्ते त्वं हित्वा मानुष्यमाज्ञया ।
भुक्त्वा स्वपदशेषं तु ततो यास्यसि मेऽन्तिकम् ॥८१॥
इत्युदीरितमाकर्ण्य शिवेन मुनिपुङ्गवः ।
आज्ञानुरूपं [2]वर्त्तेऽहं शृणु विज्ञापनां मम ॥८२॥
अयं क्षेमकविः स्वामिन् धिक्कुर्वन् मत्कृतिं स्वयम् ।
रहस्यं रचयामास प्राक्कल्पशतजं तव ॥८३॥
श्रवणात् तद्रहस्यस्य सर्वे यान्ति तवान्तिकम् ।
ब्रह्मणः किं कार्य्यमस्ति पालने वा ममापि च ॥८४॥

तिसपर भी जिस प्रकार हम लोगों का मनुष्यभाव जाता रहे, वैसा कीजिये। ऐसा कहने पर शङ्कर भगवान् फिर उन दोनों से बोले कि (७८) सुनो, तुम दोनों हमारे भक्त हो तुम दोनों की आज ही मुक्ति न होगी। केवल कवि को आज मनुष्य योनि से मैं मुक्त करूँगा, (७९) हम दोनों की आज्ञा से व्यासजी! आप मन्वन्तरभर रहिये और भक्तों के उद्धार करनेवाले मेरे रहस्य शास्त्र समूहों का प्रकाश कीजिये। (८०) मेरी आज्ञा से तुम मन्वन्तर के अन्त में मनुष्य योनि छोड़ना अपने अधिकार में जो शेष है, उसे भोगकर तब मेरे पास आओगे। (८१) शंकरजी की बात सुनकर मुनियो में श्रेष्ठ व्यासजी ने कहा कि मैं आज्ञानुसार ही चलूँगा, पर मेरी विनती सुन ली जाय। (८२) हे स्वामी! इस क्षेमकवि ने मेरी रचनाओं का निरादर करके, पूर्व के सौ कल्पों के रहस्यों की स्वयम् रचना की है। (८३) उस रहस्य के श्रवण करने से सब तुम्हारे सान्निध्य को प्राप्त

१ ग. मद्रहस्यं । २ ग. पुस्तकीयोऽयं पाठः, आ० पु०—वर्त्तामि ।

मन्वन्तरान्तपर्यन्तमावयोः किमिहास्ति वै ।
लोकं सर्वं त्वया पूर्णं कर्म्मभेदाद् विचित्रकम् ॥८५॥
समूलं कर्म्म विध्वस्तं रहस्यश्रवणात्तव ।
[1]तत्रापि शतकल्पीयं रहस्यं तेऽमुना कृतम् ॥८६॥
तल्लेशश्रवणाल्लोके दग्धकर्म्मा ध्रुवं जनः ।
त्वां यात्येवाचिरान्नाथ ! आवामप्यागमावहे ॥८७॥
मन्वन्तरावधिं किं मे करोषि करुणानिधे ! ।
मानुष्यं बहुदुःखाढ्यं तावत्कालं किमादिशः ॥८८॥
नैष्कर्म्म्यशेषं हि जगत् [2]क्षणेन भवति प्रभो ! ।
तत्क्षणं यावत्ते धाम आज्ञां देहि तथाऽऽवयोः ॥८९॥
इति स्फुटं भाषमाणं व्यासं विष्णवंशजं हरः ।
अनेन किं कृतं व्यास ! मद्रहस्यं तथाविधम् ॥९०॥

होंगे । अब ब्रह्मा को क्या काम रह गया और पालन में मेरा ही क्या कार्य्य शेष है ? (८४) मन्वन्तर के अन्त तक हम लोगों की यहाँ क्या आवश्यकता है ? । कर्मभेद से ही यह विचित्र लोक आपसे भरा-पूरा है । (८५) आपके रहस्य सुनने से मूल के सहित कर्म का नाश हो जाता है । तिसमें भी जो सौ कल्प का रहस्य इन्होंने बनाया है, (८६) उसके तनक-से भी कान में पड़ जाने से लोगों का कर्म निश्चय करके भस्म हो जाता है, और वे लोग आपको प्राप्त होते हैं, हे नाथ ! हम लोग भी चलेंगे । (८७) एक मन्वन्तर तक हे करुणानिधे ! मैं यहाँ क्या करूँगा ? मनुष्य देह दुःख से भरा हुआ है, उतने दिन के लिए क्यों आज्ञा होती है ? (८८) यह जगत् तो हे प्रभो ! क्षणभर में कर्माभाव से शेष हो जायगा । जब वह क्षण आ जाय तब हम दोनों को अपने धाम की आज्ञा दीजिये । (८९) विष्णु के अंश व्यास की ऐसी स्पष्ट बात सुनकर शङ्कर जी ने पूछा—हे व्यास ! इसने मेरा ऐसा रहस्य

१ ग. तथापि । २ ग. भवता प्रतिपादितम् ।

इत्युक्त्वोत्तरमाहैनं व्यासः शम्भुं नमन् पुनः ।
ज्ञातुमर्हस्यनेनैव कविना तत्कृतिं प्रभो ! ॥६१॥
इत्युक्ते माधवांशे वै वादरायणसंज्ञके ।
क्षेममाहेति भगवान् वद ते कृतिमुद्धसन् ॥१२॥
तदा क्षेमकविः प्राह स्वकृतिं लोकतारिणीम् ।
बृहत्कथामञ्जरीति नाम्नीं सर्वरहस्यगाम् ॥६३॥
'सङ्ग्रहां शतकल्पीयां शिवाभ्यां भाषितां रहः ।
महारहस्यसारां तां श्रवणाद् मुक्तिदां क्षणात् ॥६४॥
यद्रहस्यांशलेशस्य श्रवणं शिवधामदम् ।
पशुपाशपतिज्ञानदायकं सद्गुरुर्यथा ॥६५॥
'सर्ववेदागमास्तन्त्रपुराणानीतिहासकाः ।
स्मृतयो धर्म्मशास्त्राणि आयुर्वेदं च ज्यौतिषम् ॥६६॥
शब्दतर्कौ योगशास्त्रं मीमांसाद्वयनिर्णयम्[3] ।
शतकल्पे देवतीर्थं[4] लिङ्गक्षेत्रप्रशंसनम् ॥६७॥

क्या बनाया ? (९०) तब व्यास ने शम्भु को नमस्कार करके उत्तर दिया कि हे प्रभो ! इन (कवि) की रचना इन्हीं से सुनिये । (९१) विष्णु के अंश वादरायण की ऐसी बात सुनकर हँसते हुए शङ्कर ने क्षेम से कहा कि तुम ही कहो । (९२) तब क्षेमकवि सब रहस्यों की स्थली, लोकों को तारनेवाली अपनी रचना बृहत्कथामञ्जरी सुनाने चले, (९३) जो कि शङ्करपार्वती के एकान्त की बात-चीत में सौ कल्पों की कथाओं की संग्रहस्वरूपा तथा महारहस्यसाररूपा थी, जिसके सुनने से सद्यः मुक्ति प्राप्त होती है, (९४) जिस रहस्य के अंश के लेशमात्र सुन पाने से शिवधाम की प्राप्ति हो, जो सद्गुरु के समान पशुपाशपतिज्ञान देनेवाला है (९५) जिसमें सब वेद, शास्त्र, पुराण, तन्त्र, इतिहास, स्मृति, धर्मशास्त्र, आयुर्वेद, ज्योतिष (९६) शब्द, तर्क, योग और दोनों मीमांसाओं

१ ग. रहस्यं । २ ग. सर्वे । ३ ग. निर्णयः । ४ ग. तीर्थे ।

एतत्कल्पीयशास्त्रस्य सर्वस्वरसमिश्रितम् ।
कल्पे कल्पे भिन्नभिन्नसिद्धान्तज्ञानमिश्रितम् ॥९८॥
सर्वसिद्धान्तसारं तद्रहस्यं शिवभाषितम् ।
लक्षग्रन्थेनं संक्षिप्तं सर्वज्ञत्वप्रदं क्षणात् ॥९९॥
[1]ग्रन्थमेतादृशं प्राह स्वकृतं कविभूपतिः ।
शिवयोरग्रतः सर्वमन्यूनाधिकलक्षणम् ॥१००॥
मृदुपुष्पग्रन्थनवझरीवत् पुष्पसंहतेः ।
प्राह पुष्पमृदुर्वाक्यं जिह्वादन्तमुखोद्भवम् ॥१०१॥
ग्रन्थं तं श्रावयामास सपुत्रगणयोस्तयोः ।
सपुत्रगणसंयुक्तौ[2] शिवौ श्रुत्वा तदद्भुतम् ॥१०२॥
रहस्यं स्वं महासारं तत्क्षणं मुक्तिदं नृणाम् ।
पुष्पवद् वाग्झरीं श्रुत्वा तस्य नाम व्यधाच्छिवः[3] ॥१०३॥

का निर्णय और सौ कल्प के देवतीर्थ, लिङ्ग और क्षेत्र की प्रशंसा (९७) इन सब शास्त्रों के सर्वस्व का सार और प्रत्येक कल्प के भिन्न सिद्धांत-ज्ञान को मिलाकर (९८) शिवजी से उपदिष्ट सर्वसिद्धान्तसार रहस्य संक्षेप से एक लाख श्लोकों में कहा गया था, जिससे तत्क्षण सर्वज्ञता की प्राप्ति होती है, (९९) ऐसे अपने बनाए हुए ग्रन्थ को कवियों के सरदार ने ठीक ठीक जैसे का तैसा शिव-पार्वती के सामने सुनाया। (१००) सुकुमार फूलों की लरी, या पुष्पनिकाय की झरी की भांति जिह्वा, दाँत और मुख से उच्चरित मृदु वाक्यों से भरी (१०१) अपनी रचना को पुत्र और गणों के साथ दोनों को सुनाया। तब पुत्र और गणों के साथ शङ्कर ने (१०२) तत्काल मुक्ति देनेवाले अपने अद्भुत रहस्य के महासार को, फूल की झरी-सी वाणी में सुनकर उनका नया नाम रक्खा (१०३) और पुष्पदन्त, पुष्पजिह्व और पुष्पास्य

१ ग. ग्रन्थं मे तादृशं। २ ग. ......संयुक्तः शिवः श्रुत्वा...। ३ ग. पुस्तकीयोऽयं पाठः, आ० पु०—व्याधच्छिव।

[1] पुष्पदन्तः पुष्पजिह्वः पुष्पास्य इति चाह्वयत् ।
शृणु वत्स ! रहस्यं मे न प्रकाश्यं त्वयाऽधुना ॥१०४॥
लोकस्त्विदं रहस्यं मे शृणुयाद् यदि भूतले ।
सृष्टिलोपो भवेत् सद्यः [2] कर्म्मलेशस्य चापि वै ॥१०५॥
कर्म्मशेषलयाल्लोके ब्रह्मविष्ण्वीशजन्मनाम् ।
कार्य्याभावाच्च लीला मे लीना भवति तत्त्क्षणम् ॥१०६॥
जगत्सृष्टिः पालनं च [3] लयो लीला निजा मम ।
तल्लयो मास्तु ते ग्रन्थ पुष्पदन्त ! जले क्षिप ॥१०७॥
अद्यप्रभृति ते नाम पुष्पदन्तेति मद्गणाः ।
वदन्तु नैगमेयेति यातु नाम [4] मदागसः ॥१०८॥
[5] इत्युक्त्वा ग्रन्थमतुलं [6] प्राक्षेपयत वै जले ।
तदा तद्ग्रन्थमखिलं जले लीनं शिवाज्ञया ॥१०९॥

इन नामों से सम्बोधन करते हुए कहा—हे वत्स ! इस रहस्य को तुम्हें इस समय प्रकाश करना उचित नहीं है। (१०४) पृथ्वी पर लोग यदि इसे सुनेंगे, तो सृष्टि का लोप हो जायगा और कर्म का लेश भी न रह जायगा। (१०५) लोक में कर्म-शेष के लय से, ब्रह्म, विष्णु और ईश की रची हुई लीला कार्य्याभाव से उसी क्षण मुझमें लीन हो जायगी। (१०६) जगत् की सृष्टि, पालन और लय मेरी निजी लीलाएँ हैं, इनकी समाप्ति न हो, इसलिये हे पुष्पदन्त ! इसे जल में फेंक दो। (१०७) आज से मेरे गण तुम्हें पुष्पदन्त कहा करें और मेरे अपराध से तुम्हारा नैगमेय नाम जाता रहे। (१०८) ऐसा कहकर उस बेजोड़ ग्रन्थ को जल में फेंकवा दिया और वह ग्रन्थ शिवजीकी आज्ञा से जल में लीन होगया। (१०९) तब शंकरजी ने व्यासजी से कहा कि अब जो तुमने वेदशास्त्रपुराण का सार कहा है, उसका मेरी आज्ञा से

१ ग. पुष्पदन्तं पुष्पजिह्वं पुष्पास्यामिति चाह्वयत्। २ ग. कर्मलोपोऽस्य। ३ ग. तथा ।।४ ग. मदागसा। ५ ग. इत्युक्तः। ६ ग. प्राक्षिपत् सलिले कविः।

ततः प्राह शिवो व्यासं त्वत्कृतं [1]प्रचरिष्यतु (?) ।
वेदागमपुराणोक्तसारं लोके मदाज्ञया ॥११०॥
प्रमाणं सर्वशास्त्रार्थे चतुर्वर्गफलप्रदम् ।
मन्वन्तरान्ते व्यासोऽन्यो भविष्यति तवांशतः ॥१११॥
इत्युक्तमात्रे देवेशे विमानं खादवातरत् ।
शिवाज्ञया नैगमेयो मानुष्यं तत्क्षणं जहौ ॥११२॥
दिव्यरूपो दिव्यमाल्यगन्धभूषाविभूषितः ।
त्रिनेत्रभूतिरुद्राक्षत्रिशूलाद्यैरलङ्कृतः ॥११३॥
त्यक्त्वा मानुष्यदेहं स काशीभूमौ शिवाग्रतः ।
श्रीमत्केदारकृपया कैलासादागते रथे ॥११४॥
आरोहेति तयोराज्ञा शिवयोः सादरं त्वभूत् ।
तदासौ पुष्पदन्ताख्यो गणानामग्रणीर्मुदा ॥११५॥
रुद्रसारूप्यमुक्तः सन् आनन्दाश्रुपरिप्लुतः ।
अहो केदारनाथस्य महिमा काशिकाभुवि ॥११६॥

लोक में प्रचार हो। (११०) तुम्हारा किया हुआ शास्त्रों का सब अर्थ प्रमाण हो, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को देनेवाला हो। मन्वन्तर के अन्त में तुम्हारे अंश से दूसरे व्यास होवेंगे। (१११) देवेश के ऐसा कहते ही कहते विमान आकाश से उतरा। शिवजी की आज्ञा से नैगमेय उसी समय मनुष्यभाव को छोड़कर (११२) दिव्यरूप, दिव्यमाला, दिव्यगन्ध और दिव्यभूषणों से विभूषित होगये, और तीन नेत्र, विभूति, रुद्राक्ष और त्रिशूलादिकों से शोभित हुए। (११३) शिवजी के सामने काशी-भूमि में मनुष्य-देह छोड़कर, और श्रीमान् केदार की कृपा से कैलास से आये हुए रथ पर (११४) चढ़ने की आज्ञा शङ्कर-पार्वती ने आदर के साथ उन्हें दी। तब वह पुष्पदन्त नामक गणों का सरदार प्रसन्न होकर (११५) रुद्रसारूप्य मुक्ति

१ ग प्रचरिष्यति ।

अहो शिवापराधानां ध्वंसिनी मणिकर्णिका ।
अहो नभःसोमवारपूर्णिमानिशि पूजनम् ॥११७॥
अहो महापूजनस्य दर्शनं मुक्तिदं क्षणात् ।
अहो स्वयं तारकोपदेष्टा प्रत्यक्षतोऽत्र वै ॥११८॥
इति सञ्चिन्त्य सञ्चिन्त्य शिवं ध्यात्वा हृदम्बुजे ।
अवशः परमेशानो महिम्ना स्तोतुमारभत् ॥११९॥
स्तुतिं लोकोपकृतये स्तुत्वाऽभीष्टप्रदां नृणाम् ।
सपुत्रयोः सगणयोः शिवयोः पादपङ्कजे ॥१२०॥
हृत्पेटिकायां संस्थाप्य साष्टाङ्गं प्रणनाम ह ।
तदा प्रसन्नौ वरदौ गणं प्रीत्या शिवाशिवौ ॥१२१॥
सुधाधारासरसया वाचा प्राहतुरीश्वरौ ।
पुष्पदन्त ! वरं तेऽद्य दास्यावस्ते स्तुतिं प्रति ॥१२२॥
स्तुत्याऽनया ये जगति स्तुवन्त्यनुदिनं नराः ।
तेषामभीष्टभोगं च ज्ञानं दास्यावहे ध्रुवम् ॥१२३॥

पाकर आनन्दाश्रु से भींगा हुआ सोचने लगा, कि इस काशी-भूमि में केदारनाथ की महिमा धन्य है, (११६) शिवापराध का नाश करनेवाली मणिकर्णिका धन्य है और सावन में पूनो सोमवार की निशापूजा धन्य है। (११७) महापूजन का दर्शन धन्य है, जो सद्यः मुक्ति देता है। आश्चर्य है कि स्वयम् तारक मन्त्र के उपदेष्टा यहाँ प्रत्यक्ष हैं। (११९) ऐसा सोचकर हृदयकमल में शिव का ध्यान करते हुए, मग्न होकर परमेश्वर की महिमा द्वारा स्तुति करने लगा। (११९) मनुष्यों को वाञ्छित देनेवाले स्तव से स्तुति करके, पुत्र और गणों के सहित शङ्करपार्वती के चरण-कमलों को हृदय की पेटी में रख करके साष्टाङ्ग प्रणाम किया। तब अपने गण पर प्रसन्न होकर पार्वती-शङ्कर (१२१) अमृत की धारा की भाँति सरस बाणी से बोले—हे पुष्पदन्त ! हम दोनों तुम्हारी स्तुति के प्रति वर देंगे। (१२२) तुम्हारे किये हुए स्तव से संसार में जो मनुष्य

भुक्त्वा भोगान् यथाकाममन्ते[१] चाप्स्यन्ति नौ पदे ।
यानमारुह्य भद्रन्ते यथापूर्वं गणाग्रणीः ॥१२४॥
मत्पदं प्राप्य मोदस्व पुनरावृत्तिवर्जितम् ।
इत्युक्त्वाऽन्तरधाच्छम्भुः क्षणात् सपरिवारकः ॥१२५॥
श्रीमत्केदारलिङ्गान्तः पश्यतां सर्वदेहिनाम् ।
तदा व्यासं समापृच्छ्य गणराड् यानमारुहत् ॥१२६॥
श्रीनिवास ! महाविष्णो ! ह्यपराधं क्षमस्व मे ।
निन्दितोऽसि मया त्वन्तु शिव एव न चापरः ॥१२७॥
लीलार्थं रूपभेदेन क्रीडसे शिवयोः कृते ।
व्यासरूपं हरिं त्वेवमुक्त्वा प्रार्थ्याऽरुहद्रथम् ॥१२८॥

नित्य प्रति स्तुति करेंगे, उनको अभीष्ट भोग और ज्ञान हम लोग निश्चय करके देंगे। (१२३) यथाभिलाष भोग करके वह अन्त में हमारे पद को प्राप्त होंगे। तुम्हारा कल्याण हो, हे गणों के सरदार ! तुम विमान पर चढ़कर, पहिले की भाँति मेरे पद को प्राप्त करके आनन्द करो और अब फिर तुम न लौटोगे। ऐसा कहकर सबके देखते देखते अपने गण और परिवार के सहित श्रीमान् केदारजी लिङ्ग में अन्तर्धान हो गये। तब विमान पर चढ़ते २ गणों के सरदार ने व्यासजी से कहा— (१२६) हे श्रीनिवास ! हे महाविष्णो ! मेरा अपराध क्षमा करो। मैंने तुम्हारी निन्दा की, तुम शिव* ही हो कोई दूसरे नहीं हो। (१२७) शिवपार्वती की खातिर लीला के लिये रूपभेद से क्रीड़ा कर रहे हो। व्यासरूप हरि से ऐसी प्रार्थना करके पुष्पदन्त विमान पर सवार हो गये। (१२८) हे ब्राह्मण लोग ! इस प्रकार से प्राचीना मणिकर्णिका

* यहाँ पर शिव और विष्णु का अभेद प्रतिपादन किया गया है। काशी में तो अभेदोपासना अधिक है, परन्तु अन्य स्थानों में ऐसा नहीं है। क्षेमकवि केइस अमूल्य वाक्य पर सबको ध्यान देना चाहिये कि 'तुम शिव ही हो, कोई दूसरे नहीं हो'।

१ ग. चाप्स्यासि नः पदं ।

[1]एवं तीर्थवरा विप्राः ! प्राचीना मणिकर्णिका ।
काश्यां केदारलिङ्गञ्च रहस्यद्वयमीदृशम् ॥१२९॥
प्रशंसन् हृदि केदारं शिवधाम जगाम ह ।
एवं गौरी समाराध्य केदारेशं शिवागसः ॥१३०॥
तीर्थस्नानमहिम्ना च द्वादशाब्दकृतेन च ।
कर्णमुक्तामणीनाञ्च पतनाद् मणिकर्णिका ॥१३१॥
प्राक्स्थितत्वाच्च प्राचीना गौरीतीर्थं वरात्ततः ।
एवं गौर्य्यपराधस्य शिवनिन्दाकृतस्य च ॥१३२॥
[2]क्षालनं शिवकेदारे नैगमेयगणस्य च ।
काश्यां रहस्यं केदारतीर्थं वैभवमुत्तमम् ॥१३३॥
वर्णितुं कः समर्थोऽस्ति ऋते च परमेशितुः ।
[3]तदिच्छाप्रेरिता बुद्धिर्यथामत्यवदं यतः ॥१३४॥

तीर्थों में श्रेष्ठ है और केदार लिङ्गों में श्रेष्ठ हैं, इन दोनों का रहस्य इस प्रकार का है। (१२९) हृदय से इनकी प्रशंसा करता हुआ पुष्पदन्त शिव-धाम को गया। इसी प्रकार केदारेश्वर की आराधना और बारह वर्ष तक तीर्थ में स्नान करके उनकी महिमा से गौरी शिवापराध से विनिर्मुक्त हुई। गौरी के कान के मुक्ता मणियों के गिरने से इसका मणिकर्णिका नाम पड़ा। (१३१) पहिले से ही स्थित होने से प्राचीना कहलाई, और तत्पश्चात् वर मिलने से गौरी-तीर्थ नाम पड़ा। इस प्रकार गौरी ने और नैगमेयगण ने जो शिव का अपराध किया था, उसको धो देनेवाला केदारेश्वर के केदारतीर्थ का रहस्य और महिमा काशी में अतीव श्रेष्ठ है। (१३३) इसका वर्णन सिवा परमेश्वर के कौन कर सकता है ? उन्हीं की इच्छा ने जैसी बुद्धि को प्रेरित किया और जैसी मेरी बुद्धि है, वैसा मैंने वर्णन किया। (१३४) हे मुनि ! तुमने पहिले

---

१ ग. श्लोकोऽयम् 'प्रशंसन् हृदि' इति पादद्वयात् परं पठितः। २ ग. चालयन्तीह। ३ क. ख. ग. 'तदिच्छा……' इति पादद्वयं नास्ति।

मुने ! पृष्टस्त्वया पूर्वमहं व्यासगुणान् प्रति ।
व्यासं सर्वज्ञमप्येवमधिक्षेपस्त्वगात् कवेः ॥१३५॥

सूत उवाच—

शृणुध्वं मुनयस्त्वेतां नाथशर्मा कथां प्रियाम् ।
प्राह तां मद्गुरुर्मां तु सर्वज्ञो गणवैभवम् ॥१३६॥

इति सकलमहाघध्वंसिनीं सद्रहस्यां
श्रवणयुगपथीनां काशिकेदारमूर्त्तेः ।
स्थिरयितुमभिवाञ्छां यः करोतीशभक्त्या
परमशिवपदं [1]स याति सत्यं मुनीन्द्राः ! ॥१३७॥

इति श्रीकाशीमूलरहस्ये ब्रह्मवैवर्त्ते खिले काशीकेदारमाहात्म्ये
नवमोऽध्यायः ॥९॥

मुझसे पूछा था, सो कवि ने व्यासजी के सर्वज्ञ होने पर भी उनके गुणों पर आक्षेप किया । (१३५) सूतजी बोले—हे मुनि लोग ! सुनिये, इस कथा को नाथशर्मा ने अपनी प्रिया से कहा, और वही गण का माहात्म्य मेरे गुरुजी ने मुझसे कहा । (१३६) यह सब पापों का विध्वंश करनेवाली काशीकेदारमूर्ति के रहस्य की सत्कथा ईश्वर की भक्ति के साथ जो श्रवणपूर्वक मन में धारण करता है, वह सचमुच हे मुनीन्द्र लोगों ! शिवपद को प्राप्त होता है (१३७) ।

यह ब्रह्मवैवर्तान्तर्गत काशीमूलरहस्य खिलग्रन्थ काशीकेदारमाहात्म्य का
नवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

---

१ ग. तद् ।

अथ दशमोऽध्यायः

मुनय ऊचुः—

सूत ! सर्वार्थतत्त्वज्ञ ! पुष्पदन्तो गणाग्रणीः ।
स्तुत्या सन्तोषयामास परमेशं परात् परम् ॥ १ ॥
का स्तुतिस्तादृशी शम्भोरतिप्रियकरी मुने ! ।
महिम्ना केन संस्तुत्य गाणपत्यमगात् पुनः ॥ २ ॥
तां स्तुतिं कथयाऽस्माकं श्रोतुं योग्या वयं यदि ।
यां श्रुत्वा शिवमास्तुत्य प्राप्स्यामो वै कृतार्थताम् ॥ ३॥
एवं तदा मुनिगणैः प्रार्थितो रौमहर्षणिः ।
प्राह गम्भीरया वाचा शृणुध्वमिति सादरम् ॥ ४ ॥
रहस्येयं स्तुतिवरा तथापि प्रवदामि वः ।
नमस्कृत्य महादेवं स्तुतिं वक्तुं समारभत् ॥ ५ ॥
पुष्पदन्तकृतां श्रेष्ठां सर्वाभीष्टप्रदां नृणाम् ।
यस्य श्रवणमात्रेण मुच्यते सर्वकिल्विषात् ॥ ६ ॥

महिम्नः स्तुतिः ।

मुनि लोग बोले—हे सब बातों के तत्त्व को जाननेवाले सूतजी ! गणों के नायक पुष्पदन्त ने परात्पर परमेश्वर को जिस स्तुति से सन्तुष्ट किया था, (१) वह कौन-सी स्तुति है ? जो शम्भु को इतनी प्रिय है ? किस महिमा से स्तुति करके वे फिर से गणों के नायक हुए ? (२) यदि हम लोग सुनने के योग्य हों, तो वह स्तुति हम लोगों को भी सुनाइये। उसको सुनकर हम लोग उसी से शिवजी की स्तुति करके कृतार्थता को प्राप्त हों । (३) मुनिगणों ने जब ऐसी प्रार्थना की तब रोमहर्षणजी के पुत्र ने अति आदर के साथ गम्भीर वाणी से कहा—सुनिये, (४) यह स्तुतियों में श्रेष्ठ एवं गोपनीय है, तथापि मैं आप लोगों से कहता हूँ । तब उन्होंने महादेवजी को नमस्कार किया (५) और मनुष्यों को सम्पूर्ण

पुष्पदन्त उवाच—

महिम्नः पारन्ते परमविदुषो यद्यसदृशी
स्तुतिर्ब्रह्मादीनामपि तदवसन्नास्त्वयि गिरः ।
अथावाच्यः सर्वः स्वमतिपरिणामावधि गृणन्
ममप्येष स्तोत्रे हर ! निरपवादः परिकरः ॥ ७ ॥
अतीतः पन्थानं तव च महिमा वाङ्मनसयो-
रतद्व्यावृत्त्या यं चकितमभिधत्ते श्रुतिरपि ।
स कस्य स्तोतव्यः कतिविधगुणः कस्य विषयः
पदे त्वर्वाचीने पतति न मनः कस्य न वचः ॥ ८ ॥
मधुस्फीता वाचः परमममृतं निर्मितवत-
स्तव ब्रह्मन् ! किं वागपि सुरगुरोर्विस्मयपदम् ।
मम त्वेतां वाणीं गुणकथनपुण्येन भवतः
पुनामीत्यर्थेऽस्मिन् पुरमथन ! बुद्धिर्व्यवसिता ॥ ९ ॥

अभीष्ट देनेवाली पुष्पदन्त की बनाई हुई उस स्तुति का, जिसके कान में पड़ने से सब पाप भाग जाते हैं, वर्णन प्रारम्भ किया । (६) पुष्पदन्त ने कहा—हे शङ्कर ! आप की महिमा के पर पार को न जाननेवाले पुरुष से की गई स्तुति यदि आपके अयोग्य हो, तो ब्रह्मा आदि से की गई स्तुति भी आपके अयोग्य ही है, क्योंकि वे भी आप-की महिमा का पूर्ण ज्ञान नहीं रखते । यदि कहिए कि अपनी २ बुद्धि के अनुसार स्तुति करनेवाले सभी लोग निर्दोष हैं, तो मेरा भी यह उद्योग निन्द्य नहीं है । (७) हे भगवन् ! आपकी महिमा वाणी और मन की दौड़ से परे हैं, अर्थात् न वाणी ही उसका वर्णन कर सकती है और न मन ही वहाँ पहुँच सकता है, जिसका वेद भी नेति नेति कहकर अनि-श्चितरूप से डरता २ प्रतिपादन करता है, उसका वर्णन कौन कर सकता है ? आपके कितने गुण हैं ? आप किसके विषय हैं ? इस नवीन विषय में किसकी वाणी और मन असफल नहीं होते हैं। (८) हे प्रभो ! आप

तवैश्वर्य्यं यत्तज्जगदुदयरक्षाप्रलयकृत्
त्रयीवस्तु व्यस्तं तिसृषु गुणभिन्नासु तनुषु ।
अभव्यानामस्मिन् वरद ! रमणीयामरमणीं
विहन्तुं व्याक्रोशीं विदधत इहैके जडधियः ॥१०॥
किमीहः किंकायः स खलु किमुपायस्त्रिभुवनं
किमाधारो धाता सृजति किमुपादान इति च ।
अतर्क्यैश्वर्ये त्वय्यनवसरदुस्थो हतधियः
कुतर्कोऽयं कांश्चिन्मुखरयति मोहाय जगतः ॥११॥

स्वयं परम अमृत सरीखी मधु के समान मधुर वाणी की रचना करने-वाले हो, आपको बृहस्पति की वाणी से भी क्या आश्चर्य हो सकता है ? हे त्रिपुररिपो ! मैं तो आपके गुणवर्णन रूपी पुण्य से अपनी वाणी को पवित्र करता हूँ। इसी कारण आपकी स्तुति करने के लिए मेरी बुद्धि तत्पर हुई है। (९) हे वरद ! जो आपका ऐश्वर्य्य तीनों गुणों से, अर्थात् सत्त्व, रज और तम से, भिन्न हुए शरीरों में आरोपित है, जो संसार की उत्पत्ति, सृष्टि और लय करनेवाला है, जो वेद त्रय प्रतिपाद्य देवत्रय विधि-हरि-हर रूप है, उसका खण्डन करने के लिए कोई कोई मन्दमति पापी इस संसार में उसकी निन्दा करते हैं, सो वह घृणित निन्दा उन पापियों को ही अच्छी लगती है। (१०) किस इच्छा से, किस शरीर से, किस उपाय से, किस आधार से, कहाँ बैठकर और किस चीज (उपादान) से धाता इस त्रिभुवन की रचना करते हैं। इस प्रकार के कुतर्क की बातें कुछ मन्दमति लोग संसार के मोह के लिये बका करते हैं, परन्तु ये कुतर्क आप के विषय में बेमौके (अनवसर) के और दुर्बल हैं, क्योंकि आपका ऐश्वर्य्य अतर्क्य है। (११) ये लोक क्या सावयव होते हुए भी अजन्मा हैं ? जगत् का कर्त्ता क्या आप-ऐसे को छोड़कर कोई दूसरा हो सकता है ? क्या जड़ जीव भुवनों को उत्पन्न करने की सामग्री कर सकते हैं ? अतः हे देवताओं में श्रेष्ठ ! आपके प्रति संशय-

अजन्मानो लोकाः किमवयवयन्तोऽपि जगता-
मधिष्ठातारं किं भवविधिरनादृत्य भवति ।
अनीशो वा कुर्याद् भुवनजनने कः परिकरं
यतो मन्दास्त्वां प्रत्यमरवर ! संशेरत इमे ॥१२॥
त्रयी साङ्ख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च ।
रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव ॥१३॥
महोक्षः खट्वाङ्गं परशुरजिनं भस्म फणिनः
कपालञ्चेतीयत्तव वरद ! तन्त्रोपकरणम् ।
सुरास्तां तामृद्धिं दधति तु भवद्भ्रूप्रणिहितां
नहि स्वात्मारामं विषयमृगतृष्णा भ्रमयति ॥१४॥
ध्रुवं कश्चित् सर्वं सकलमपरस्त्वध्रुवमिदं
परो ध्रौव्याध्रौव्ये जगति गदति व्यस्तविषये ।
समस्तेऽप्येतस्मिन् पुरमथन ! तैर्विस्मित इव
स्तुवन् जिह्रेमि त्वां न खलु ननु धृष्टा मुखरता ॥१५॥

करनेवाले मूर्ख हैं। (१२) तीनों वेद, सांख्य, योग, शैवसिद्धान्त और वैष्णवमत इस प्रकार रास्ते जुदे जुदे हैं। कोई कहता है यह श्रेष्ठ है और कोई कहता है यह पथ्य है, रुचियों के विचित्र होने से सीधे टेढ़े रास्ते पर चलनेवाले लोगों के लिये आप ही केवल प्राप्य स्थान हैं। जैसे विभिन्न मार्ग से बहनेवाले नदी-नालों के लिए सागर। (१३) बैल, खट्वाङ्ग, परशु, मृगचर्म, भस्म, सर्प और कपाल यही तो आपका कुटुम्ब-पालन के लिए माल-असबाब है, और हे वरद ! आपके भ्रूविक्षेप से देवता लोग अनिर्वचनीय ऋद्धि को धारण करते हैं, सो यही बात ठहरी कि स्वात्माराम पुरुष को विषय-मृगतृष्णा अपने फेर में नहीं ला सकती। (१४) इस सारे संसार को कोई सत्, कोई असत् और कोई सदसत् कहता

तवैश्वर्यं यत्नाद् यदुपरि विरिञ्चिर्हरिरधः
परिच्छेत्तुं यातावनलमनलस्कन्धवपुषः ।
ततो भक्तिश्रद्धाभरगुरु गृणद्भ्यां गिरिश ! यत् ।
स्वयं तस्थे ताभ्यां तव किमनुवृत्तिर्न फलति ॥१६॥
अयत्नादासाद्य त्रिभुवनमवैरव्यतिकरं
दशास्यो यद्बाहूनभृतरणकण्डूपरवशान् ।
शिरःपद्मश्रेणीरचितचरणाम्भोरुहबलेः
स्थिरायास्त्वद्भक्तेस्त्रिपुरहर ! विस्फूर्जितमिदम् ॥१७॥
अमुष्य त्वत्सेवासमधिगतसारं भुजवनं
बलात् कैलासेऽपि त्वदधिवसतौ विक्रमयतः ।
अलभ्या पातालेऽप्यलसचलिताङ्गुष्ठशिरसि
प्रतिष्ठा त्वय्यासीद् ध्रुवमुपचितो मुह्यति खलः ॥१८॥

है, इसके विषय में कोई भी बात ठीक न होने से मैं विस्मित-सा हो गया हूँ; अतः स्तुति करते मुझे लज्जा आती है, तिस पर भी स्तुति में प्रवृत्त होना निश्चय करके मेरी मुखरता है। (१५) आपके तेजःपुञ्जस्वरूप रूप का पता लगाने के लिये ब्रह्मा ऊपर की ओर और विष्णु नीचे की ओर बड़े यत्न से गये, पर आपके अग्निस्वरूप की थाह न लगी, परन्तु वे दोनों ही जब अत्यन्त भक्तिश्रद्धा के साथ स्तुति करने लगे, तो हे गिरिश ! आप स्वयम् प्रकट हुए, कौन कह सकता है कि आपकी सेवा नहीं फलती। (१६) दशमुख रावण ने आपके चरणकमलों में बलि देने के लिये अपने शिर कमल के फूल बना दिये, इससे उसे बिना परिश्रम निष्कण्टक तीनों भुवन मिल गये और रावण की भुजाओं की लड़ाई की खुजली न मिटी, हे त्रिपुरहर ! तुम्हारी भक्ति में स्थिर रहने का ही यह प्रताप है। (१७) उस रावण की बीसों भुजाओं में आप ही की सेवा से बल मिला, सो वह आपके निवासस्थान कैलास में ही जोर लगाने लगा। आपके आलस्य के साथ अँगूठे का शिर रख देने से, उसका पाताल में

यदृद्धिं सुत्राम्णो वरद ! परमोच्चैरपि सती-
मधश्चक्रे बाणः परिजनविधेयत्रिभुवनः ।
न तच्चित्रं तस्मिन् वरिवसितरि त्वच्चरणयो-
र्न कस्या उन्नत्यै भवति शिरसस्त्वय्यवनतिः ॥१९॥
अकाण्डब्रह्माण्डक्षयचकितदेवासुरकृपा-
विधेयस्यासीद्यस्त्रिनयन ! विषं संहृतवतः ।
स कल्माषः कण्ठे तव न कुरुते न श्रियमहो
विकारोऽपि श्लाघ्यो भुवनभयभङ्गव्यसनिनः ॥२०॥
असिद्धार्था नैव क्वचिदपि सदेवासुरनरे
निवर्त्तन्ते नित्यं जगति जयिनो यस्य विशिखाः ।
स पश्यन्नीश ! त्वामितरसुरसाधारणमभूत्
स्मरः स्मर्त्तव्यात्मा नहि वशिषु पथ्यः परिभवः ॥२१॥

भी ठिकाना न लगा। निश्चय करके बढ़ जाने से खल मोह को प्राप्त होते हैं। (१८) हे वरद! इन्द्र का ऐश्वर्य्य बहुत ऊँचा है, परन्तु बाण ने उसे भी नीचा दिखलाया और तीनों लोकों को अपने वश में कर लिया। सो आपके चरणों के सेवक के लिये कोई आश्चर्य्य की बात नहीं है। आपको शिर नवाने से कौन ऊँचा नहीं होता ? (१९) हे त्रिनयन ! एका-एक ब्रह्माण्ड के क्षय से चकित देवता और असुरों पर कृपा करके आप विष पीगए, उस विष का नीला रंग क्या आपके कण्ठ की शोभा नहीं बढ़ाता ? जिनको कि संसार के भय को दूर करने का शौक़ है, उनका विकार भी प्रशंसा योग्य है। (२०) जिस कामदेव के बाण जगत् को जीतनेवाले हैं, देवता, असुर और मनुष्यों पर चलाए गए जो कभी व्यर्थ नहीं लौटते, वह कामदेव आपको साधारण देवता की दृष्टि से देखने से अनङ्ग होगया, सो ठीक ही हुआ, जितेन्द्रियों का तिरस्कार करना हितकर नहीं होता। (२१) हे भगवन् ! जब आप जगत् की रक्षा के लिए ताण्डव करते हैं, तब आपके

महीं पादाघाताद् व्रजति सहसा संशयपदं
पदं विष्णोर्भ्राम्यद्भुजपरिघरुग्णग्रहगणम् ।
मुहुर्द्यौर्दौःस्थ्यं यात्यनिभृतजटाताडिततटा
जगद्रक्षायै त्वं नटसि ननु वामैव विभुता ॥२२॥
वियद्व्यापी तारागणगुणितफेनोद्गमरुचिः
प्रवाहो वारां यः पृषतलघुदृष्टः शिरसि ते ।
जगद्द्वीपाकारं जलधिवलयं तेन कृतमि-
त्यनेनैवोन्नेयं धृतमहिमदिव्यं तव वपुः ॥२३॥
रथः क्षोणी यन्ता शतधृतिरगेन्द्रो धनुरथो
रथाङ्गे चन्द्रार्कौ रथचरणपाणिः शर इति ।
दिधक्षोस्ते कोऽयं त्रिपुरतृणमाडम्बरविधि-
र्विधेयैः [1]क्रीडन्त्यो न खलु परतन्त्राः प्रभुधियः ॥२४॥

पैर के आघातों से पृथ्वी की स्थिति संशय में पड़ जाती है, आकाश में भुजाओं के घूमने से ग्रहगण आर्त हो जाते हैं और छितराई हुई जटा के लटों से बार-बार स्वर्ग संकट में पड़ जाता है। सच-मुच प्रभु की प्रभुता विपरीत ही है। (२२) जो जल का प्रवाह आकाश में व्याप्त है, और तारागणों से द्विगुणित फेनवाला है, वह प्रवाह आपके शिर पर जल की बूँद-सा दिखाई पड़ा, वही जब पृथ्वी पर आया तो समुद्र को भरकर चारों ओर मेखलाकार होगया और उसके बीच में जगत् द्वीप-सा होगया। इसी से आपकी दिव्य तनु की महिमा का अनुमान किया जा सकता है। (२३) जब त्रिपुर को जलाने की आपको इच्छा हुई, तो आपके लिये त्रिपुर तृण था, फिर भी उसके लिए इतना आडम्बर कि पृथ्वी रथ बनी, ब्रह्माजी सारथी बने, मेरु धनुष बना, सूर्य्य और चन्द्र रथ के पहिये बने और चक्रधर (विष्णु) बाण बनाये गये, निश्चय करके सेवकों के साथ क्रीड़ा करते हुए प्रभु की

१ ग. क्रीड़न्ते ।

हरिस्ते साहस्रं कमलबलिमाधाय पदयो-
र्यदेकोने तस्मिन् निजमुदहरन्नेत्रकमलम् ।
गतो भक्त्युद्रेकः परिणतिमसौ चक्रवपुषा
त्रयाणां रक्षायै त्रिपुरहर ! जागर्ति जगताम् ॥२५॥
क्रतौ सुप्ते जाग्रत्त्वमसि फलयोगे क्रतुमतां
क्व कर्म्म प्रध्वस्तं फलति पुरुषाराधनमृते ।
अतस्त्वां सम्प्रेक्ष्य क्रतुषु फलदानप्रतिभुवं
श्रुतौ श्रद्धां बद्ध्वा दृढपरिकरः कर्म्मसु जनः ॥२६॥
क्रियादक्षो दक्षः क्रतुपतिरधीशस्तनुभृता-
मृषीणामार्त्विज्यं शरणद ! सदस्याः सुरगणाः ।
क्रतुभ्रंशस्त्वत्तः क्रतुफलविधानव्यसनिनो
ध्रुवं कर्त्तुः श्रद्धाविधुरमभिचाराय हि मखाः ॥२७॥

बुद्धि परतन्त्र नहीं होती है। (२४) विष्णु ने आपके चरणों में एक सहस्र कमलों का उपहार चढ़ाना चाहा। उसमें एक की कमी देखकर अपने नेत्र कमल को निकालकर चढ़ा दिया। वही भक्ति की उमङ्ग चक्ररूप में परिणत होगयी, और हे त्रिपुरारि ! वही चक्ररूप से तीनों लोकों की रक्षा के लिये जाग रही है। (२५) यज्ञ के सो जाने पर भी याज्ञिकों को फल देने के लिये आप जागते हैं, भला नष्ट हुआ कर्म बिना पुरुष की आराधना के फल देने में कैसे समर्थ हो सकता है ? अतः आपको यज्ञों के फल-दान में लगे हुए देखकर ही वेद में श्रद्धा रखनेवाले लोग कर्म के लिये कमर कसे हुए हैं। (२६) प्रजापति दक्ष कर्मकाण्ड में अतिकुशल यजमान थे, शरीरधारीमात्र के मालिक क्रतुपति थे, ऋषि लोग ऋत्विक् बने थे और साक्षात् देवतागण सदस्य थे। ऐसा यज्ञ भी आपसे, जिन्हें यज्ञ के फल देने का शौक है, नष्ट किया गया। अतः यही ध्रुव है, कि श्रद्धाविरहित यज्ञ अभिचार (मारण) का काम देता है। (२७) हे नाथ ! ब्रह्मदेव कामुक

प्रजानाथं नाथ ! प्रसभमभिकं स्वां दुहितरं
गतं रोहिद्भूतां रिरमयिषुमृष्यस्य वपुषा ।
धनुष्पाणेर्यातं दिवमपि सपत्राकृतममुं
त्रसन्तं तेऽद्यापि त्यजति न मृगव्याधरभसः ॥२८॥
स्वलावण्याशंसा धृतधनुषमह्नाय तृणवत्
पुरः प्लुष्टं दृष्ट्वा पुरमथन ! पुष्पायुधमपि ।
यदि स्त्रैणं देवी यमनियतदेहार्द्धघटना-
दवैति त्वामद्धा बत वरद ! मुग्धा युवतयः ॥२९॥
श्मशानेष्वाक्रीडाः स्मरहर पिशाचाः सहचरा-
श्चिताभस्मालेपः स्रगपि नृकरोटीपरिकरः ।
अमङ्गल्यं शीलं तव भवतु नामैवमखिलं
तथापि स्मर्तॄणां वरद ! परमं मङ्गलमसि ॥३०॥

होकर हरिन के रूप से बलात्कार के लिये हरिणीरूपधारिणी अपनी पुत्री के पीछे दौड़े। पर आपको आखेट (शिकार) का ऐसा उत्साह है कि हाथ में धनुष लिये हुए आपने बाणों से पीड़ित और डरकर स्वर्ग में भागे हुए उस मृग का भी पीछा नहीं छोड़ा। (२८) हे त्रिपुरमथन! अपने सामने तृण की भाँति शीघ्र धनुषधारी पुष्पायुध काम को जला हुआ देखने पर भी, यदि स्वरूपाभिमानिनी देवी आपके अर्धाङ्गनिवासिनी बना लेने से आपको स्त्रैण मानें, तो खेद के साथ कहना पड़ेगा कि युवतियाँ मुग्धा ही होती हैं। (२९) श्मशान में मौज से खेलना, और संगी पिशाच, चिता के भस्म का अङ्गराग, और नर मुण्डों की माला, ये सब सामान, हे स्मरहर! यद्यपि अमङ्गलरूप हैं, परन्तु स्मरण करनेवालों के लिये तो आप परम मङ्गल रूप हैं। (३०) योगी लोग मन को विधान के साथ भीतर चित्त में धारण करके, प्राणों को रोक के, पुलकित शरीर, और आनन्दवारिपरिपूरितलोचन होकर जिस किसी अन्तस्तत्त्व का साक्षात्कार करके आनन्दामृत के कुण्ड

मनः प्रत्यक्चित्ते सविधमवधायात्तमरुतः
प्रहृष्यद्रोमाणः प्रमदसलिलोत्सङ्गितदृशः ।
यदालोक्याऽऽह्लादं ह्रद इव निमज्ज्याऽमृतमये
दधत्यन्तस्तत्त्वं किमपि यमिनस्तत् किल भवान् ॥३१॥
त्वमर्कस्त्वं सोमस्त्वमसि पवनस्त्वं हुतवह
स्त्वमापस्त्वं व्योम त्वमु धरणिरात्मा त्वमिति च ।
परिच्छिन्नामेवं त्वयि परिणता बिभ्रति गिरं
न विद्मस्तत्तत्त्वं वयमिह हि यत्त्वं न भवसि ॥३२॥
त्रयीं तिस्रो वृत्तीस्त्रिभुवनमथो त्रीनपि सुरा-
नकाराद्यैर्वर्णैस्त्रिभिरभिदधत्तीर्णविकृति ।
तुरीयं ते धाम ध्वनिभिरवरुन्धानमणुभिः
समस्तं व्यस्तं त्वां शरणद ! गृणात्योमिति पदम् ॥३३॥
भवः शर्वो रुद्रः पशुपतिरथोग्रः सह महां-
स्तथा भीमेशानाविति यदभिधानाष्टकमिदम् ।
अमुष्मिन् प्रत्येकं प्रविचरति देवः श्रुतिरपि
प्रियायाऽस्मै नाम्ने प्रणिहितनमस्योऽस्मि भवते ॥३४॥

में मग्न हो जाते हैं, वह वस्तु आप ही हैं । (३१) आप ही सूर्य्य हैं, आप चन्द्र हैं, आप पवन हैं, आप अग्नि हैं, आप जल हैं, आप आकाश हैं, आप आत्मा हैं और आप पृथ्वी हैं । परिपक्व बुद्धिवाले आपके लिये इस प्रकार परिच्छिन्न वाणी का प्रयोग करें, परन्तु हम लोग तो कोई ऐसा तत्त्व ही नहीं जानते, जो आप न हों । (३२) ऋगादि तीनों वेद, उदात्तादि तीनों वृत्तियां, स्वर्गादि तीनों भुवनों को तीन वर्ण अकार, उकार और मकार द्वारा जो धारण करता है, और आपके अधिकारी तुरीय धाम को जो सूक्ष्म ध्वनि अर्थात् अर्धमात्रा से स्वीकार करता है, ऐसा जो निर्विकार 'ओ३म्' पद वह हे शरण देनेवाले ! आपकी स्तुति करता है । (३३) (१) भव (२) शर्व (३) रुद्र (४) पशु-

नमो नेदिष्ठाय प्रियदव ! दविष्ठाय च नमो
नमः क्षोदिष्ठाय स्मरहर ! महिष्ठाय च नमः ।
नमो वर्षिष्ठाय त्रिनयन ! यविष्ठाय च नमो
नमः सर्वस्मै ते तदिदमतिसर्वाय च नमः ॥३५॥
बहुलरजसे विश्वोत्पत्तौ भवाय नमो नमः
प्रबलतमसे तत्संहारे हराय नमो नमः ।
जनसुखकृते सत्त्वस्थित्यै मृडाय नमो नमः
प्रमहसि पदे निस्त्रैगुण्ये शिवाय नमो नमः ॥३६॥

पति (५) उग्र (६) महादेव (७) भीम और (८) ईशान, ये जो आप के आठ नाम हैं, इन प्रत्येक नामों में महादेवजी तथा श्रुति विचरती हैं। हे देव ! ऐसे आपके परम प्रिय इस नाम के लिये हम नमस्कार करते हैं। (३४) हे निर्जनवनविहरणशील ! हे शत्रुओं के इष्ट का नाश करनेवाले ! आप बहुत निकट हैं, आपको हम नमस्कार करते हैं, आप बहुत दूर हैं, आपको हम नमस्कार करते हैं। हे स्मरहर ! आप परमाणु-आदिरूप से अतिक्षुद्ररूप हैं, हम आपको नमस्कार करते हैं, आप पर्वतादिरूप से विपुल परिमाणरूप हैं, आपको हम नमस्कार करते हैं, आप वृद्धरूप हैं, आपको हम नमस्कार करते हैं, हे त्रिनयन ! आप तरुणरूप हैं, आपको हम नमस्कार करते हैं, आप ही सर्वस्वरूप हैं, आपको हम नमस्कार करते हैं, वही आप वाणी और मन से अतीत हैं, आपको हम नमस्कार करते हैं। (३५) विश्व की उत्पत्ति में रजोगुण बाहुल्य के अधिष्ठानरूप भव को नमस्कार, उसके संहार में तमोगुण बाहुल्य के अधिष्ठानरूप हर को नमस्कार, जनों का पालन करने में सत्त्वबाहुल्य के अधिष्ठानरूप मृड़ को नमस्कार, सर्वोत्तम प्रकाशरूप निस्त्रैगुण्य मुक्तिमार्ग में शिव को नमस्कार। (३६) कहाँ मेरी महेश की वश्य क्षीण बुद्धि और कहाँ गुण की सीमा पार करनेवाला आपका नित्य ऐश्वर्य्य ? इस भांति मुझ चकित और भीत को उत्साह दिला-कर, हे वरद ! इस भक्ति ने आपके चरणों में वाणी-रूपी फूलों का

कृशपरिणति चेतः क्लेशवश्यं क्व चेदं
क्व च तव गुणसीमोल्लंघिनी शश्वदृद्धिः ।
इति चकितममन्दीकृत्य मां भक्तिराधा-
द्वरद ! चरणयोस्ते वाक्यपुष्पोपहारम् ॥३७॥
[1]असितगिरिसमं स्यात् कज्जलं सिन्धुपात्रे
सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी ।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं
तदपि तव गुणानामीश ! पारं न याति ॥३८॥

उपहार रखवाया । (३७) हे ईश ! यदि समुद्ररूपी पात्र में अञ्जनगिरि के बराबर काजल हो, कल्पवृक्ष के शाखा की लेखनी हो, और उसे लेकर सरस्वती सब काल पृथ्वी रूपी पत्र में लिखती चली जावें, तब भी आपके गुणगणों का पार नहीं पा सकतीं । (३८) जो चन्द्रमौलि देव, दनुज और मुनियों से पूजित हैं, जिनके गुणों की महिमा अतिविस्तृत है, जो निर्गुण हैं और ईश्वर हैं, उनके इस स्तोत्र की सकलगुणगरिष्ठ पुष्पदन्त ने

---

१ ग. पुस्तके इतः परं श्लोकत्रयमधिकं पठितम्—

कुसुमदशननामा सर्वगन्धर्वराजः
शिशुशशधरमौलेर्देवदेवस्य दासः ।
स खलु निजमहिम्नो भ्रष्ट एवाऽस्य रोषात्
स्तवनमिदमकार्षीद् दिव्यदिव्यं महिम्नः ॥ १ ॥
सुरवरमुनिपूज्यं सर्वमोक्षैकहेतुं
पठति यदि मनुष्यः प्राञ्जलिर्नान्यचेताः ।
व्रजति शिवसमीपं किन्नरैः स्तूयमानः
स्तवनमिदममोघं पुष्पदन्तप्रणीतम् ॥ २ ॥
श्रीपुष्पदन्तमुखपङ्कजनिर्गतेन
स्तोत्रेण किल्विषहरेण हरप्रियेण ।
कण्ठस्थितेन पठितेन समाहितेन
सम्प्रीणितो भवति भूतपतिर्महेशः ॥ ३ ॥

असुरसुरमुनीन्द्रैरर्चितस्येन्दुमौले-
ग्रंथितगुणमहिम्नो निर्गुणस्येश्वरस्य ।
सकलगुणवरिष्ठः पुष्पदन्ताभिधानो
रुचिरमलघुवृत्तैः स्तोत्रमेतच्चकार ॥३९॥
अहरहरनवद्यं धूर्जटेः स्तोत्रमेत-
त्पठति परमभक्त्या शुद्धचित्तः पुमान् यः ।
स भवति शिवलोके [1]रुद्रतुल्यस्तथाऽत्र
प्रचुरतरधनायुःपुत्रवान् कीर्तिमांश्च ॥४०॥
महेशान्नापरो देवो महिम्नो नापरा स्तुतिः ।
अघोरान्नापरो मन्त्रो नास्ति तत्त्वं गुरोः परम् ॥४१॥
दीक्षा दानं तपस्तीर्थं ज्ञानं यागादिकाः क्रियाः ।
महिम्नः स्तवपाठस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥४२॥
[2]आसमाप्तमिदं स्तोत्रं पुण्यं गन्धर्वभाषितम् ।
अनुपम्यं मनोहारि शैवमीश्वरवर्णनम् ॥४३॥

बड़े छन्दों में रचना की । (३९) भगवान् शङ्कर के इस निर्मल स्तोत्र को जो पुरुष शुद्धचित्त होकर प्रतिदिन परम भक्ति के साथ पढ़ता है, वह शिवलोक में रुद्र के तुल्य होता है, तथा इस लोक में उसे बहुत-सी सम्पत्ति मिलती है, दीर्घायु होकर पुत्रवान् और कीर्त्तिमान् होता है । (४०) न महेश से दूसरा कोई देवता है, न महिम्न के समान दूसरी स्तुति, न अघोर के समान मन्त्र है, न गुरु के समान तत्त्व । (४१) दीक्षा, दान, तप, तीर्थ, ज्ञान और योगादिक क्रियाएँ महिम्नस्तव-पाठ की सोलहवीं कला के बराबर भी नहीं हैं । (४२) गन्धर्व का कहा हुआ यह स्तोत्र आरम्भ से अन्त तक पुण्य है, उपमा रहित है, मन को हरनेवाला है और इसमें ईश्वर शिव का वर्णन

१ ग. रुद्रतुल्यो महात्मा । २ ग. श्लोकोऽयं '४२' श्लोकात् परं पठितः ।
२ ग. "समाप्तमसमस्तं स्तोत्रं सर्वमीश्वरवर्णनम्" ।

शिवतत्त्वं न जानामि कीदृशोऽसि महेश्वर ! ।
याद्दशोऽसि महादेव ! तादृशाय नमो नमः ॥४४॥

इति श्रीकाशीमूलरहस्ये ब्रह्मवैवर्त्ते खिले काशीकेदारमहात्म्ये
दशमोऽध्यायः ॥१०॥

अथैकादशोऽध्यायः ।

ऋषय ऊचुः—
श्रीरौमहर्षणे ! ब्रह्मन् ! शिवज्ञानैकसागरः ।
शिवापराधतो गङ्गा कथं मुक्ता जगद्धिता ॥ १ ॥
शिवापराधस्तु तया संप्राप्तः केन हेतुना ।
सर्वलोकोद्धारिणी सा गङ्गा दिव्यतरङ्गिणी ॥ २ ॥
यस्या दर्शनतः स्नानात् स्पर्शनादपि पानतः ।
तीरवासात्तत्र मृतेर्देहास्थिपतनादपि ॥ ३ ॥
मुक्ता एव भविष्यन्ति जना अप्यतिपापिनः ।
गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयात् सहस्रैर्योजनैः परे ॥ ४ ॥

है । (४३) हे महेश्वर ! शिवतत्त्व को मैं नहीं जानता, कि वह कैसा है, हे महादेव ! आप जैसे हों ,वैसे आपको नमस्कार है । (४४)

यह ब्रह्मवैवर्त्त के खिल ग्रन्थ काशीमूलरहस्य के अन्तर्गत
काशी-केदारखण्ड का दसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

ऋषि लोग बोले—हे रोमहर्षणजी के पुत्र ! हे ब्रह्मन् ! आप शिवज्ञान के एकमात्र समुद्र हैं, आप बतलाइये कि ज़गत् का हित करनेवाली गङ्गाजी शिवजी के अपराध से कैसे मुक्त हुईं और शिवापराध उनसे कैसे हो पड़ा ? (१) वह दिव्यतरङ्गवाली गङ्गा तो सब लोकों का उद्धार करनेवाली हैं । (२) जिनके दर्शन से, स्नान करने से, छू लेने से, जल पीने से, तीर में बसने से, वहाँ पर शरीर छोड़ने से (३) और हड्डी

मुच्यते सर्वपापेभ्य इति वेदानुशासनम् ।
त्रीन् लोकान् पावयति सा तेन त्रिपथगा स्मृता ॥ ५ ॥
दूरदेशेऽपि यस्याश्च कथाश्रवणतो जनाः ।
कणिकाप्रोक्षणात् पानाद् मुक्ता हीत्यवदच्छ्रुतिः ॥ ६ ॥
यस्या जलाभिषेकेण लिङ्गेषु भगवान् हरः ।
प्रसन्नस्त्वभिषेक्तृणामभीष्टद इति श्रुतिः ॥ ७ ॥
यामिष्टमहिषीत्वेन दधार शिरसा हरः ।
सा किं शिवापराधस्य पात्रं जाता शिवप्रिया ॥ ८ ॥
कथं मुक्ताऽपराधात् सा तद्रहस्यं वद प्रभो ! ।
श्रोतुं योग्या यदि वयं रहस्यं परमात्मनः ॥ ९ ॥

सूत उवाच—

शृणुत ब्रह्मनिष्ठास्तद्रहस्यं लोकपावनम् ।
गङ्गा शिवागसो मुक्ता येन जाताऽपराधिनी ॥१०॥

के फेंकने से अतिपापी जन भी मुक्त हो जाते हैं। हजार योजन दूर से भी जो 'गङ्गा गङ्गा' कहते हैं, (४) वे सब पापों से छूट जाते हैं, ऐसा वेद का अनुशासन है। गङ्गा तीनों लोकों को पवित्र करती हैं, इससे उन्हें त्रिपथगा कहते हैं। (५) दूर देश में भी जिसकी कथा सुनने से, एक बूँद के छिड़क लेने से, पान कर लेने से लोग मुक्त होते हैं, ऐसा वेद ने कहा है। (६) लिङ्गों पर जिसके जल का अभिषेक करने से भगवान् हर प्रसन्न होकर अभिषेक करनेवालों को अभीष्ट प्रदान करते हैं यह भी वेद ने कहा है। (७) पटरानी होने से इष्ट मानकर भगवान् हर ने जिन्हें शिर पर स्थान दिया, वह शिव की प्रिया शिवापराध की पात्र कैसे हुईं ? (८) और वह कैसे अपराध से विनिर्मुक्त हुईं ? हे प्रभो ! आप इस रहस्य को हमसे, यदि हम लोग परमात्मा के रहस्य को सुनने के योग्य हों, तो कहिये। (९) सूतजी ने कहा—आप लोग ब्रह्मनिष्ठ हैं, आप लोग इस रहस्य को सुनें कि गङ्गाजी

पुरा शक्त्या कराभ्याञ्च पिहिते शम्भुलोचने ।
लीलार्थं भालनेत्राग्नितेजसा स्वेदितौ करौ ॥११॥
देव्याः [1]करयुगस्वेदधाराऽभूत् प्रलयोदकम् ।
तेजोसहा मुक्तकरा यदा जाता तदा शिवः ॥१२॥
दृष्ट्वा स्वाभ्यां सर्वमन्यद् महोदेनाप्लुतं जगत् ।
अनेककोटिब्रह्माण्डसङ्घं लीनं महोदके ॥१३॥
लीलां दृष्ट्वा पराशक्तेरीदृशीं परमेश्वरः ।
पुनस्त्वनेककोटीनां ब्रह्माण्डानां सिसृक्षया ॥१४॥
इच्छया शक्तियुक्तः संस्तज्जलं शिरसा दधत् ।
सृष्ट्वाऽण्डानि यथापूर्वं तेषामाधारकारणात् ॥१५॥
उत्सृष्टमर्धमुदकं प्लवविप्लवहेतवे ।
अर्धं धृतं शिवेन स्वजटोदर्याञ्च बिन्दुवत् ॥१६॥

शिवापराध से कैसे मुक्त हुईं और उन्हें अपराध कैसे लगा ? (१०) प्राचीन काल में शक्ति ने हँसी में शम्भु की आँखें दोनों हाथों से मूँद लीं, पर मस्तक के नेत्र की गरमी से हाथ पसीने पसीने हो गये। (११) देवी के दोनों हाथों से जो पसीने की धार निकली तो वह प्रलयकाल का जल हो गया। जब तेज को न सहकर उन्होंने हाथ छोड़ दिया, तब शिवजी ने (१२) देखा कि हम दोनों को छोड़कर सारा जगत् जल में डूब गया। अनेक कोटि ब्रह्माण्ड का समूह उस महाजल में लीन हो गया। (१३) पराशक्ति की ऐसी लीला देखकर परमेश्वर ने, फिर अनेक कोटि ब्रह्माण्ड को रचने की इच्छा से (१४) इच्छा शक्ति से युक्त होकर उस जल को शिर पर धारण कर लिया और पहिले की भाँति ब्रह्माण्ड की रचना करके उसके आधार के लिये (१५) आधा जल तो सृष्टिलय के लिये छोड़ दिया, और शेष आधे को शिवजी ने जटामण्डल के बीच में बूँद की भाँति रख

१ ग. स्वेदो ।

एतद्ब्रह्माण्डस्थविधिप्रार्थितोऽभूच्छिवस्तदा ।
सृष्ट्यनुग्रहभूतं तच्छक्तेः स्वेदोदमादरात् ॥१७॥
तदा शम्भुः स्वमूर्द्धस्थशक्तिस्वेदाम्भसो लवम् ।
ददौ तस्मै सर्वसृष्टिकार्य्यानुग्रहहेतुकम् ॥१८॥
स्वकमण्डलुपात्रेऽसौ प्रसादमिति वाऽग्रहीत् ।
नत्वा शिवौ स्वलोकं तदानीय स्थाप्य पूजयन् ॥१९॥
[1]तत्प्रसादाप्तविज्ञानः सर्वसृष्टिं व्यधाद् विधिः ।
इन्द्राद्या द्रुहिणं प्रार्थ्य शिवज्ञानाय चार्थयन् ॥२०॥
प्रसादलेशं शिवयोः कमण्डलुगतं विधेः ।
तदा ददौ विधिस्तेषां भुक्तये मुक्तये लवम् ॥२१॥
प्रसादभूतमानीतं जाता स्वर्गतरङ्गिणी ।
तेषां भोगाय मोक्षाय स्थिता स्वर्गे प्रसादजा ॥२२॥

लिया। (१६) जब इस ब्रह्माण्ड के ब्रह्माजी ने प्रार्थना की तब शिवजी ने सृष्टि के अनुग्रहरूप, शक्ति के उस पसीनेरूप जल में से आदर के साथ (१७) एक बूँद सब सृष्टि कार्य्य की सहायता के लिये उन्हें दी। (१८) उन्होंने प्रसादलेश समझकर उसे अपने कमण्डलु में रख लिया, शक्ति और शिव को नमस्कार करके, उसे अपने लोक में ले आये। स्थापन करके उसका पूजन करने लगे। (१९) उसकी कृपा से ऐसा ज्ञान ब्रह्माजी को हुआ कि उन्होंने सब सृष्टि कर डाली। इंन्द्रादि ने भी ब्रह्मदेव से प्रार्थना करके उसे शिवज्ञान के लिये माँगा। (२०) तब ब्रह्माजी ने अपने कमण्डलु में से तनक-सा प्रसाद उनकी भुक्ति और मुक्ति के लिये उन्हें दे दिया। (२१) वे प्रसाद समझकर जो जल-बिन्दु लाए, वही स्वर्गङ्गा हो गई। वही प्रसाद से उत्पन्न होकर उन लोगों के भोग और मोक्ष के लिये वहाँ ठहरी हुई हैं। (२२) सूर्य्य कुल में कोई सगर नामक राजा हुआ। उसके साठ हजार

१ ... दात् परिज्ञाय।

सावित्रो भूतले कश्चिद्राजाऽभूत् सगराह्वयः।
तत्पुत्राः षष्टिसाहस्रा याज्ञीयहयकारणात् ॥२३॥
कापिले शापवह्नौ ते प्रदग्धा दुर्गतिं गताः।
तेषामुद्धरणार्थाय तस्य नप्ता भगीरथः ॥२४॥
अतितीव्रं तपस्तप्त्वा प्रार्थयद् देववाहिनीम्।
ततः प्रसन्ना ब्रह्माद्या ददुस्तां राजसूनवे ॥२५॥
भूमावतरणे तस्या वेगं धर्तुं सुरासुराः।
नालमित्यवदद् ब्रह्मा प्रार्थयेति शिवं नृपम् ॥२६॥
तदासौ परमेशानं तपसा तोषयन्तराम्।
तमाह भगवान् शम्भुर्भक्तानुग्रहतत्परः ॥२७॥
धर्त्तुं मेने स्वकीयां तां दुर्धार्य्यामन्यदैवतैः।
देवतासहवासाच्च गर्वयुक्ता महानदी ॥२८॥
विस्मृत्य स्वपतेः शक्तिं मायया मोहितेशितुः।
तृणीकृत्य स्वनाथं सा सावलेपाऽऽह तं तदा ॥२९॥

पुत्र यज्ञ के घोड़े के लिये (२३) कपिलमुनि की क्रोधाग्नि से जलकर दुर्गति को प्राप्त हुए। उनके उद्धार के लिए उनके नाती भगीरथ ने (२४) अत्यन्त तीव्र तप करके गङ्गा माँगी। तप से प्रसन्न होकर ब्रह्मादिक देवताओं ने उस राजपुत्र को गङ्गाजी दे दीं। (२५) तब ब्रह्माजी ने कहा कि इनके पृथ्वी पर उतरने के वेग को सुर और असुर नहीं सह सकते, अतः हे राजा! शिवजी की प्रार्थना करो। (२६) तब उन्होंने परम ईशान को तप से अच्छी तरह तुष्ट किया। भक्तों पर अनुग्रह करने में सदा तत्पर रहनेवाले शम्भु भगवान् ने उनसे कहा (२७) कि अन्य देवताओं से वह धारण नहीं की जा सकतीं। वह मेरी स्वकीया स्त्री हैं, उनको मैं धारण करूँगा। देवताओं के साथ रहने से वह महानदी गर्वयुक्ता हो गई थीं। (२८) ईश की माया से मोहित होकर अपने पति की शक्ति को भूल गईं। अपने पति को

मद्वेगधारणे रुद्र ! त्वं किं[1] यास्यधिक्षिपन् ❀ ।
पश्य नेष्यामि पातालं मद्वेगध्वस्तमूर्धकम् ॥३०॥
एनं रुद्रं त्वल्पसत्त्वमिति चिन्त्य हृदा तदा ।
महाप्रलयकल्लोलयादःसंघमहोदका ॥३१॥
धिक्कृत्य मनसा शम्भुं न्यपतत्तस्य मूर्द्धनि ।
सावलेपां शिवो ज्ञात्वा कपर्दे तां व्यलीनयत् ॥३२॥
कुत्र वा पतिता सेति जनानां संशयोऽभवत् ।
प्रलीनायां तदा नद्यां चिरं कृतपरिश्रमः ॥३३॥
भगीरथो महादेवं प्रसन्नीकृत्य याचत † ।
उद्धारणाय मे शम्भो ! पितृणां त्वं दयां कुरु ॥३४॥
देहि गङ्गां दयासिन्धो ! पाहीत्येवमयाचत ।
तदा दयालुर्गिरिशो बिन्दुं बिन्दुसरः प्रति ॥३५॥

कुछ भी न गिनकर गर्व के साथ आक्षेप करती हुई, उनसे बोलीं—(२९) हे रुद्र ! मेरे वेग को धारण करने के लिये भला तुम क्या जा रहे हो । गङ्गा ने अपने मन में विचार किया—देखो, ये रुद्र अल्पसत्त्व हैं, इनका सिर तोड़कर मैं इन्हें अभी पाताल को पहुँचा दूँगी । (३०) ऐसा मन में सोचकर महाप्रलय की-सी तरङ्ग लेती हुई जलचरों से संयुक्त वह महानदी (३१) मन से शम्भु की भर्त्सना करती हुई उनके शिर पर गिरीं । उनको अभिमान से भरी हुई जानकर शिवजी ने उन्हें अपने जटामण्डल के बीच में ले लिया । (३२) लोगों को संशय हुआ कि गङ्गा गिरी कहाँ ? नदी के प्रलीन हो जाने पर भगीरथ ने, जिन्होंने उनके लिये बहुत दिनों तक परिश्रम किया था, (३३) महादेवजी को प्रसन्न करके उनसे गङ्गा माँगी—हे शम्भो ! मेरे पितरों के उद्धार के लिये आप दया करें, (३४) हे दयासिन्धो ! गङ्गा

❀ क्लीबभाव आर्षः । † अडभाव आर्षः ।

१ ग. कियानित्यधिक्षिपत् ।

किंचित् कपर्दमुत्क्षिप्य व्यसृजद्भूपकारणात् ।
बिन्दुः[1] सप्तनदीभूय तिस्रः प्राक् पश्चिमे तथा ॥३६॥
गताश्चैका भूपतेश्च पश्चाद्रथपथानुगा ।
सा गता हिमवत्पृष्ठे पुत्रीति हिमवान् दधौ ॥३७॥
गाङ्गतां स्वर्णदीं देवा द्रष्टुं यानैर्ययुर्दिवि ।
शापग्रस्ता भूतले ये[2] स्पृश्य मुक्ताश्च तज्जलम् ॥३८॥
एवं भगीरथस्यन्दनस्य पश्चाद्वहा नदी ।
शिवभक्ताग्रवर्य्यस्य जह्नोराप क्रतोर्भुवम् ॥३९॥
यागोपकरणैर्युक्तामृत्विग्वर्य्यैरधिष्ठिताम् ।
आप्लावयत् क्रतोः शालामवलेपेन निम्नगा ॥४०॥
गङ्गोदकाप्लुतां शालां ध्वस्तोपकरणां तदा ।
हाहेति[3] च क्रुशदृत्विग्गणघोषानुनादिताम् ॥४१॥

दीजिये, मेरे ऊपर दया कीजिये, मेरी रक्षा कीजिये ऐसा कहकर वे माँगने लगे। तब दयालु शङ्करजी ने जटा को तनक-सा हटाकर एक बूँद राजा के लिए बिन्दुसर की ओर छोड़ दी। उस बूंद से सात नदियाँ हो गयीं। जिनमें से तीन पूर्व, तीन पश्चिम को गई। (३५) और एक राजा के पीछे पीछे चली। वह हिमाचल की पीठ पर पहुँची और उन्होंने पुत्री मानकर उसे धारण किया। (३६) स्वर्ग की नदी को पृथ्वी पर गई हुई जानकर, देवता लोग विमानों पर चढ़कर देखने के लिये आकाश में आये, यह सुनकर कि जो शापग्रस्त हैं, वे भी इस नदी के स्पर्श से मुक्त होंगे, सो ऐसी नदी के जल को देखना चाहिये। (३८) इस प्रकार से भगीरथ के रथ के पीछे २ बहती हुई, वह नदी शिवभक्ताग्रगण्य जह्नु मुनि की यज्ञभूमि में आ पहुँची। (३९) वहाँ पर यज्ञ का सब सामान रक्खा था और ऋत्विक् लोग आसन जमाये बैठे थे। सो नदी ने अभिमान से यज्ञशाला डुबा दी। (४०) गङ्गा के जल से यज्ञ-

१ ग. ... सा च। २ ग. स्पृष्ट्वा। ३ क. चक्रुशुः, ग. चुक्रुशद्।

पर्वताकारवीचीभिर्भुवं [1]स्नाव्याभितोवहाम् ।
एवंभूतां यज्ञशालां दृष्ट्वा जह्नुर्महामुनिः ॥४२॥
गङ्गावलेपसङ्क्रुद्धो निर्दहन्निव चक्षुषा ।
सागराकारतोयौघां चुलुकीकृत्य तेजसा ॥४३॥
आचामत् तापसो जह्नुर्निःशेषीकृत्य जीवनम् ।
क्व गङ्गेति भ्रमो जातो देवानां भूपतेस्तदा ॥४४॥
भगीरथस्तदा गङ्गामदृष्ट्वा जह्नुमानमत् ।
चिरं [2]तपःश्रमानीता मया गङ्गा महामुने ! ॥४५॥
न जाने क्व गता गङ्गा लीना तव तपोबलात् ।
पितॄणां तारणायाहं कृतयत्नश्चिराद् मुने ! ॥४६॥
प्रकाशय पुनर्गङ्गां क्षमासारा हि साधवः ।
क्षमस्वाऽऽगस्तपोमूर्त्ते ! गङ्गाया मम च प्रभो ! ॥४७॥

शाला और सामान नष्ट होते देखकर, ऋत्विजों के हाहाकार से यज्ञशाला गूँज उठी थी । (४१) पर्वताकार तरङ्गों से उस भूमि को डुबाकर गङ्गाजी चारों ओर बह रही थीं । यज्ञशाला की यह दशा देखकर महामुनि जह्नु (४२) गङ्गा के अभिमान से ऐसे क्रुध हुए, मानो आँख से ही जला डालेंगे । उन्होंने सागर के सदृश जलसमूह को अपने तेज से चुल्लू में ले लिया और आचमन कर गये । (४३) तपस्वी जह्नु ने ऐसा सोखा कि सब जल ही खतम हो गया और देवता तथा राजा भगीरथ को ऐसा भ्रम हुआ कि गङ्गा क्या हो गई ? (४४) भगीरथ ने गङ्गा को न देखकर जह्नु मुनि को नमस्कार किया और कहा कि हे महामुने ! मैं बहुत दिनों तक तपस्या करके गङ्गा ले आया, अब मैं नहीं जानता कि आपके तपोबल से लीन होकर गङ्गा कहाँ गई ? हे महामुने ! मैंने अपने पितरों को तारने के लिये बहुत दिनों तक यत्न किया । (४६) आप गङ्गा को फिर प्रगट कीजिये क्योंकि साधुओं का

१ ग. व्याप्य । २ ग. श्रमं नीता ।

एवं वदन्तं राजानं पादयोः पतितं तदा ।
जह्नुः प्राह हसन् भूपं न दोषस्तेति* सान्त्वयन् ॥४८॥
विसृजामि न गङ्गां ते गर्वितेयं तरां नृप ! ।
सर्वलोकोद्धारिकापि सर्वपापहरापि सा ॥४९॥
शिवापराधदुष्टोदा जाता तन्निग्रहं[1] वरम् ।
पितृक्रियार्थे गङ्गोदे मदुच्छिष्टे न योग्यता ॥५०॥
[2]किं करोषि गृहीत्वा तां गच्छ तूष्णीं नृपोत्तम ! ।
शिवापराधदुष्टानां कस्मिन् कर्म्मणि योग्यता ॥५१॥
इच्छसि त्वं पितॄन् कष्टात् तारितुं चानया मुधा ।
सर्वलोकेश्वरं शम्भुं सर्वदीनदयापरम् ॥५२॥
कारणं जगतां सर्वदेवकारणकारणम् ।
अनिन्दयत् सा गर्वेण तत्कर्मफलमागतम् ॥५३॥

सार क्षमा है। हे तपोमूर्ते, हे प्रभो! मेरे और गङ्गा के अपराध को क्षमा कीजिये (४७) ऐसा कहकर राजा चरणों पर गिर गया। तब जह्नु मुनि ने हँसते और सान्त्वना देते हुए राजा से कहा—हे राजन्! तेरा कोई दोष नहीं है। (४८) सब लोकों का उद्धार करनेवाली और सब पापों का नाश करनेवाली भी यह बड़ी अभिमानिनी है, मैं इसे न छोड़ूगा। (४९) शिव के अपराध से इसका जल दुष्ट हो गया, सो इसका पकड़ा जाना ही ठीक है। इसका जल मेरा जूठा हो गया, सो इससे पितृ-कार्य्य नहीं हो सकता। (५०) इसे लेकर क्या करोगे? हे नृपोत्तम! अब चुपके से घर चले जाओ। जिसको शिवापराध का दोष लग गया, उसकी किसी कर्म में भी योग्यता नहीं है। (५१) तुमने व्यर्थ ही इसके द्वारा पितरों का कष्ट से उद्धार चाहा। शङ्कर सब लोकों के ईश्वर हैं, सब दीनों पर दया करनेवाले हैं, (५२) सम्पूर्ण जगत् के कारण हैं और सब देवताओं के कारण के भी

१ ग. निग्रहो वरम्। २ ख. पुस्तके श्लोकोऽयं नास्ति। * सन्धिरार्षः।

मद्यज्ञशालाविप्लवात् क्रोधो मे नास्ति भूपते ! ।
तृणीकृत्य शिवं गर्वाद्विनिन्दन्त्यपतद्दिवः ॥५४॥
तदैव गर्वभङ्गोऽस्या जातो मूर्द्धिन भ्रमात्तराम् ।
त्वदर्थं किञ्चिदुत्सृष्टा सर्वज्ञेन दयालुना ॥५५॥
तथापि गर्वो न गतो गङ्गाया निग्रहो वरम् ।
एवं ज्ञात्वा मया पीता न मत्तो निर्गमः पुनः ॥५६॥
एवमुक्ते मुनौ राजा व्योम्नि देवान् व्यजिज्ञपत् ।
भो देवाः ! मे श्रमं ज्ञात्वा मुनिं वदत मत्कृते ॥५७॥
यथा गङ्गा पुनः शुद्धा मत्पितॄनुद्धरेत्तथा ।
तदा देवा मुनिं स्तुत्वा प्रार्थयामासुरादरात् ॥५८॥
भगवन् ! भूदेव ! जह्नो ! सर्वज्ञोऽसि दयानिधे ! ।
शिवागसः पवित्रां तां कृत्वा गङ्गां नृपे दिश ॥५९॥

कारण हैं। ऐसे शिवजी की इसने गर्व से निन्दा की। उसका फल इसे मिल गया। (५३) हे राजन् ! अपनी यज्ञशाला के नाश का क्रोध मुझे नहीं है, इसने मारे अभिमान के शिवजी को तिनका समझा और उनकी निन्दा करती हुई आकश से गिरी। (५४) उसी समय इसके गर्व का भंग हुआ कि जटा में ही चक्कर काटती रह गई। सर्वज्ञ दयालु शिवजी ने तुह्मारे लिए थोड़ी-सी छोड़ दी। (५५) फिर भी इसका अभिमान न गया, सो गङ्गा का पकड़ा जाना ही भला है ऐसा जानकर मैंने इसे पी लिया। अब मुझसे यह नहीं निकल सकती। (५६) जब मुनि ने राजा से ऐसा कहा तो राजा ने आकाश में स्थित देवताओं से पुकार (फरियाद) की, (५७) कि हे देवता लोगो ! मेरे परिश्रम का ख्याल करके मेरी ओर से मुनिजी से कहो (५७) जिसमें गङ्गा फिर शुद्ध होकर मेरे पितरों को तारे। तब देवताओं ने मुनिजी की स्तुति करके आदर के साथ प्रार्थना की देवताओं ने कहा—(५८) हे भगवन् ! हे भूदेव ! हे जह्नो ! आप सर्वज्ञ हैं, दयानिधान हैं। शिव के अपराध

दुहितृत्वं समाधाय गङ्गायां कुरु वै दयाम् ।
शिवाज्ञया निग्रहोऽस्या [१]जातश्चेशाज्ञयोत्सृज ॥६०॥
भवानेव शिवोऽस्माकं तद्भक्तोऽसि यतस्तराम् ।
गङ्गा कुक्षिगताप्यस्याऽशृणोद् देवार्थनां मुनौ ॥६१॥
किं वा भवति मे कार्य्यमिति चिन्तां गता तराम् ।
दुःसहं मुनितेजोऽत्र मां शोषयति हि ध्रुवम् ॥६२॥
तपस्तेजोभिभूताया निर्गमो मे कथं भवेत् ।
भवेद् मे निर्गमो देवैः प्रार्थिताद् यदि वै मुनेः ॥६३॥
शिवागसो मुक्त्युपायं मुनेरेव कृपाबलात् ।
ज्ञात्वा तरामि मे जातो गर्वभङ्गस्तरां मुने ! ॥६४॥
एवं चिन्तापरां गङ्गां मुनिर्ज्ञात्वा नृपार्थनाम् ।
दिविस्थदेवतानाञ्च दयार्द्रहृदयोऽभवत् ॥६५॥

से पवित्र करके गङ्गा को राजा के लिये दे दीजिये । (५९) बेटी समझ कर गङ्गा पर आप दया करें, शिव की आज्ञा से आपने गङ्गा को पकड़ा, अब शिव की आज्ञा से आप इसे छोड़िये । (६०) आप ही हम लोगों के लिये शिव हैं, क्योंकि आप शिवजी के परम भक्त हैं । गङ्गा भी उनकी कुक्षि में देवों से की हुई विनती सुनती रहीं (६१) और सोचने लगीं कि मेरा काम होगा या नहीं ? यह न सहने योग्य मुनि का तेज मुझे अवश्य सोख डालेगा । (६२) तप और तेज से मैं हार गई । अब मैं कैसे निकल सकती हूँ । यदि देवताओं की प्रार्थना से मुनि के पञ्जे से मैं छूटूँ, (६३) तो मुनि की ही कृपा के बल से शङ्कर के अपराध से छूटने का उपाय जानकर, मैं उस अपराध से विनिर्मुक्त होऊंगी, और रहा मान-भंग सो तो मुनि द्वारा भली भाँति हो गया । (६४) इस प्रकार गङ्गा की चिन्ता जान, राजा तथा आकाश के देवताओं की विनती सुनकर मुनि-

१ ग. पुस्तकीयोऽयं पाठः, आ० पु०—जातोत्सृज शिवाज्ञया ।

दक्षिणश्रोत्रमार्गेण निर्दुष्टां मे वचोऽसृजत्[१] ।
तदा गङ्गा प्रणम्यैनं पितृभावनयाऽऽदरात् ॥६६॥
मुने ! शिवज्ञाननिधे ! त्राहीत्याह सद्गद्गदम् ।
शिवापराधो दुर्नोद्यः केनापि जगतीतले ॥६७॥
तदज्ञानाद् मया प्राप्तो वद तन्निष्कृतिं गुरो ! ।
शिवयोगी भवान् पुत्री तवाहं धर्म्मतो मुने ! ॥६८॥
मामुद्धर यथा दोषमुक्ता शम्भोः प्रियाऽभवम् ।
एवं दैन्यवचः पुत्र्याः श्रुत्वा जह्नुर्दयानिधिः ॥६९॥
उवाच वत्से ! माभैस्त्वं वदामि तव तारणम् ।
शिवापराधो बलवान् सर्वपापाज्जगत्त्रये ॥७०॥
सर्वपापहरा काशी तत्रापि मणिकर्णिका ।
विश्वेशादीनि लिङ्गानि मुक्तिदानि न संशयः ॥७१॥

जी के हृदय में दया आ गई । (६५) दक्षिण कान के रास्ते से गलितमान उस गङ्गा को बाहर निकाल दिया । तब गङ्गा ने मुनिजी को पिता की बुद्धि से आदर के साथ प्रणाम किया (६६) और गद्गद वाणी से कहा—हे शिवज्ञाननिधे ! हे मुने ! त्राहि त्राहि । शङ्कर का अपराध जगत् में किसी के टाले नहीं टलता, (६७) सो अज्ञान के वश मुझसे हो पड़ा । उसका प्रायश्चित्त बतलाइये । आप शिवयोगी हैं और मैं आप की धर्म की बेटी हूँ । (६८) आप मेरा उद्धार कीजिये, जिसमें मैं दोषों से छूटकर शङ्कर की प्यारी हो जाऊँ, दयानिधि जह्नु बेटी की ऐसी दीनता की बात सुनकर (६९) बोले—बेटी ! तू डर मत, मैं तेरे उद्धार का उपाय बतलाता हूँ । तीनों लोकों में सब पापों से बलवान् शिवापराध है । (७०) सब पापों की हरने-वाली काशी है, तिस पर भी मणिकर्णिका और विश्वेश्वरादिक लिङ्ग मुक्ति को देनेवाले हैं, इसमें संशय नहीं । (७१) तथापि परमेशान का

१ ग.......दुष्टामुत्ससर्ज ह ।

तथापि परमेशानापराधस्तैर्न नोद्यते ।
भोगेनैव च तच्छान्तिर्जायते कल्पकोटिभिः ॥७२॥
तथापि तेऽहं वक्ष्यामि रहस्यं शिवभाषितम् ।
गौर्य्यै शिवापराधस्य शान्त्यर्थं शम्भुचोदितम् ॥७३॥
श्रीमत्काश्यां महातीर्थं केदारेशस्य सन्निधौ ।
केदारेशो हिमगिरेः काशीं प्राप्तः सतीर्थकः ॥७४॥
पूर्वमेव हिमाद्रौ तौ तीर्थकेदारनायकौ ।
सर्वपापहरौ नृणां काश्यां सर्वोत्तरौ[1] ततः ॥७५॥
हरणात् सर्वपापानां हरम्पापाख्यतीर्थकम् ।
रेतोदादिमहातीर्थकोट्या[2] केदारसंस्थया ॥७६॥
[3]संयुतं काशिभूभागे केदाराग्रे विराजते ।
तच्छिवेनोपदिष्टं हि गौर्य्यै शान्त्यै शिवागसः ॥७७॥
तत्तीर्थसङ्गमाद् मुक्ता भवसि त्वं शिवागसः ।
तत्र केदारनाथं त्वं सम्पूज्य विगतज्वरा ॥७८॥

अपराध उनसे नहीं छूटता । करोड़ों कल्प में जाकर कहीं उसकी शांति भोग से होती है । (७२) फिर भी तुमको शिव का कहा हुआ रहस्य बतलाता हूँ । शिवापराध की शान्ति के लिये इसको शम्भु ने गौरी से कहा था । (७३) श्रीमती काशी में केदारेश्वर के सन्निकट महा तीर्थ है । हिमिगिरि के केदारेश्वर तीर्थ के साथ काशी चले आये । (७४) पहिले हिमालय में केदार जी और यह तीर्थ दोनों मनुष्यों के सब पापों को हरनेवाले और सबसे उत्कृष्ट थे । पीछे से काशी में आ गये । (७५) सब पापों के हरण करने से तीर्थ का नाम 'हरंपाप' है और रेतोद आदि करोड़ों तीर्थ, जो केदार जी में हैं, (७६) उन के साथ काशी-क्षेत्र में केदारजी के सामने विराजमान हैं । शिवजी ने गौरी को शिवापराध शान्ति के लिये उसी का उपदेश दिया था । (७७) उस तीर्थ

१ ग......मौ । २ ग. कोटी । ३ ग. संयुता ।

शिवापराधनिर्मुक्ता भवसि त्वं शिवप्रिया।
प्राचीनमणिकर्णी सा तस्याः सङ्गप्रभावतः ॥७९॥
शुद्धा शिवागसो भूत्वा विश्वेशमणिकर्णिकाम्[1]।
सङ्गम्य[2] पूज्य विश्वेशं गच्छाऽब्धिं त्वं ततः परम् ॥८०॥
गत्वा रसातलं तत्र त्वं सन्तारय सागरान्।
यथा त्रिपथगेति त्वं ख्याता भवसि पावनी ॥८१॥
एवं सन्दिश्य गङ्गां स प्रददौ तां भगीरथम्।
भगीरथोऽपि राजर्षिर्मुनिं नत्वा तया सह ॥८२॥
रथेन यातः पूर्वस्यां दिशि सन्तुष्टमानसः।
प्रजापतिक्षेत्रमगात् सापि राजरथानुगा ॥८३॥
श्रुत्वा च यमुना गङ्गावृत्तान्तं जह्नुचोदितम्।
सरस्वत्यपि तच्छ्रुत्वा नदीरूपेण चागता ॥८४॥

के संगम से तुम शिवापराध से छूट जाओगी। वहाँ केदारनाथजी की पूजा करके शिवापराध से छूट, विगतज्वर होकर (७८) शिवजी की प्यारी होओगी। वहाँ प्राचीन मणिकर्णिका है, उससे मिलकर, और विश्वनाथ की पूजा करके तत्पश्चात् तुम समुद्र में चली जाओ। (८०) फिर, तुम रसातल में जाकर सगर के पुत्रों को तारो। हे पावनी! तुम 'त्रिपथगा' नाम से वहाँ विख्यात होओगी। (८१) गङ्गाजी को ऐसी आज्ञा देकर उन्होंने भगीरथ को गङ्गा दे दी। राजर्षि भगीरथ भी मुनि को नमस्कार कर, गङ्गा के साथ (८२) सन्तुष्टचित्त होकर, रथ पर सवार हो पूर्व की ओर चले और प्रजापति के* क्षेत्र में पहुँचे। गङ्गा भी राजा के रथ के पीछे पीछे वहाँ पहुँची। (८३) यमुना और सरस्वती भी जह्नु मुनि से गङ्गा का वृतान्त सुनकर नदीरूप से वहाँ पहुँचीं। (८४) यमुना ने गङ्गा से आदर के साथ कहा—हे गङ्गे!

---

* प्रयागराज

१ ग. ......शं मणि०। २ ग. तत्र सम्पूज्य।

यमुना प्राह गङ्गां वै शृणु गङ्गेति सादरम् ।
भ्रात्रा सह यमेनाहं पूर्वं दक्षक्रतुं गता ॥८५॥
सर्वे देवाः समायाता द्रष्टुं यज्ञमहोत्सवम् ।
इयं वाण्यपि तद्यज्ञे स्थिता [1]बह्व्यः स्त्रियः पुरा ॥८६॥
शिवापराधिनं दक्षं त्यक्तदेहां शिवामपि ।
तत्र दृष्ट्वाऽऽवयोर्देहौ श्यामरक्तौ बभूवतुः ॥८७॥
तद्दुःखमसहन्त्यौ नौ चित्ते जाता बहुव्यथा ।
शिवनिन्दाशिवादेहत्यागौ द्रष्टुमिहागते ॥८८॥
शिवनिन्दां यः शृणोति संहरेच्छिवनिन्दकम् ।
तत्कर्म्मण्यसमर्थश्चेदात्मघातो वरं ततः ॥८९॥
एवं वै शास्त्रसिद्धान्तः किं कर्त्तव्यमिति क्रुधा ।
महापराधः प्राप्तो नौ तत्र तत्कर्म्मदर्शनात् ॥९०॥

सुनो, मैं अपने भाई यम के साथ दक्ष के यज्ञ में गयी थी। (८५) सब देवता लोग उस महोत्सव को देखने के लिये आये थे। यह सरस्वती भी उस यज्ञ में थीं और भी बहुत-सी स्त्रियाँ थीं। (८६) शिवापराधी दक्ष को और शिवा को शरीर छोड़ते हुए देखकर मेरा शरीर काला हो गया और सरस्वती भी लाल हो उठी। (८७) उस दुःख को सहन न कर सकने से हम लोगों को बड़ी पीड़ा हुई कि हम दोनों शिव-निन्दा सुनने और शिवा का देहत्याग देखने को यहाँ आई। (८८) जो शिव-निन्दा सुने, उसे चाहिये कि निन्दक का वध करे। यदि ऐसा करने में असमर्थ हो, तो शिवनिन्दा सुनने की अपेक्षा आत्मघात श्रेष्ठ है। (८९) शास्त्र का सिद्धान्त तो ऐसा ही है। मैं क्रोध से विचारने लगी कि क्या करना चाहिये? इस कर्म को देखने से तो हम लोगों को महापराध लग गया। (९०) हम लोग इस चिन्ता में थीं कि इस पाप से कैसे छूटेंगी? दैवात् जह्नु मुनि ने मुझसे कहा कि हे देवि! तुम काशी

१ क. ब्रह्माद्यः पुरा पराः। ख. ब्रह्मास्त्रियः०।

कदा पापाद्विमोक्ष्याव इति चिन्ता स्थिताऽऽवयोः ।
दैवाज्जह्नुप्रसादेन यासि त्वं देवि ! काशिकाम् ॥९१॥
शिवापराधान्मुक्ता त्वं भवितुं नात्र संशयः ।
आवामपि तथा देवि ! मुक्ते कुरु शिवागसः ॥९२॥
त्वया सङ्गम्य यास्याव काश्यां केदारसन्निधिम् ।
गौरीतीर्थे[1] सुसङ्गम्य त्वया साकं गतैनसौ ॥९३॥
भवाव देवीति वचस्तयोः श्रुत्वाऽमरापगा ।
सङ्गम्य ताभ्यां सन्तुष्टा ततः पूर्वां ययौ दिशम् ॥९४॥
सितासिते च सरितौ[2] यत्र युक्ता सरस्वती ।
तत्राप्लुता दिवं यान्ति मुक्ता एव तनुत्यजः ॥९५॥
यमिच्छंस्तत्र धैर्य्येण तनुत्यागी लभेद्धि तम् ।
नैवात्मघाती स भवेत्तीर्थराजप्रसादतः ॥९६॥
यत्रैकमज्जनाद्‌ माघे महापापोऽपि मुक्तिभाक् ।
यत्राऽक्षय्यवटः साक्षी हयमेधशते विधेः ॥९७॥

जाओ, (९१) अब तुम शिवापराध से मुक्त हो जाओगी, इस में संशय नहीं है । हे देवि ! हम दोनों को भी शिवापराध से मुक्त करो, तुमसे मिलकर हम दोनों काशी में केदार के सन्निकट जावेंगी और तुम्हारे साथ गौरी-तीर्थ से मिलकर निष्पाप होवेंगी । (९३) गङ्गाजी उन दोनों का यह वचन सुनकर उनसे मिलीं और सन्तुष्ट होकर पूर्व की ओर चलीं । (९४) श्वेत और काली नदी से जहाँ पर सरस्वती का संगम हुआ है, वहाँ शरीर छोड़नेवाला स्नान करके स्वर्ग को जाता है और क्रम से मुक्त होता है । (९५) मनुष्य जैसी इच्छा करता हुआ धैर्य्य के साथ वहाँ तन-त्याग करता है, वह वही अभीष्ट पाता है । प्रयाग-राज के प्रसाद से वह आत्मघाती नहीं होता । (९६) जहाँ केवल नहा लेने से महापाप भी मुक्त हो जाता है, जहाँ पर कि ब्रह्मदेव के सौ अश्वमेधों

१ ग....तीर्थसुसंगम्य । २ ग. सरिते ।

तत्र सङ्गम्य ता नद्यः प्राचीं [1]प्रवहतास्तदा ।
गङ्गा कलिन्दकन्याश्च वाणीं प्राह हसन्॰ मुदा[2] ॥९८॥
शृणु वाणि ! रवेः कन्ये ! परिणीतेः [3]कथां युवाम् ।
[4]परिणायकथां वामे सम्यक् कथयतं प्रिये ॥९९॥
तदा तरणिजा प्राह स्वकथां पूर्विकां क्रमात् ।
शृणु गङ्गे ! रवेर्जाया सवर्णा जननी मम ॥१००॥
मनुं यमञ्च मां चैव प्रसूता द्वादशात्मनः ।
मनुर्ज्येष्ठः शान्तमतिर्यमस्य मम बालता ॥१०१॥
असह्यतेजसा माता मत्पितुस्तपसे ययौ ।
निजच्छायाञ्च निजवद् भर्त्रर्थे स्थाप्य लीलया ॥१०२॥
छायापत्यानि च त्रीणि जातानि जनितुर्मम ।
विशेषलालनं तेषु दृष्ट्वा भ्राता यमो मम ॥१०३॥

का साक्षी अक्षयवट खड़ा है, (९७) वहाँ पर वे नदियाँ मिलकर पूर्व की ओर बहीं । तब हँसती हुई गङ्गाजी ने यमुना और सरस्वती से प्रसन्नता से कहा—(९८) हे शोभने ! हे प्रिये ! सरस्वती और यमुना ! सुनो, तुम दोनों अपनी कथाएँ पूरी २ मुझसे कहो । (९९) तब यमुनाजी ने अपनी पिछली कथा का क्रम से वर्णन किया । वे बोलीं— हे गङ्गे ! सुनो, सूर्य्य नारायण की सवर्णा पत्नी मेरी माता है । (१००) सूर्य्य से इन्होंने मनु, यम और मुझे उत्पन्न किया । मनुजी जेठे और शान्त थे, यम का और मेरा लड़कपन था । (१०१) पिता के असह्य तेज होने से मेरी माता अपनी छाया को हँसी से अपनी भांति पति के लिये छोड़कर तप के लिये चली गई । (१०२) मेरे पिता से छाया के भी तीन बच्चे हुए, उनका विशेष लालन पालन देखकर मेरे भाई यम ने (१०३) लड़कपन के कारण उसे मारने के लिये लात उठाई । सौत

१ ग. प्रववृुस्तदा । २ ग. हसन्मुखी । ३ ग कथम् । ४ ग परिणयकथां
॰ ङीवभाव आर्पः ।

बालत्वादुत्थितपदस्तां हन्तुमिव लीलया।
यस्मात् सपत्नीवालं तमशपत् कृमिदं पदम् (?) ॥१०४॥
ज्ञात्वा पिता मे तद्वृत्तं मातरं चानयच्च मे।
मातृशापाद् यमपदं निर्व्रणि[1] नाभवत् कृमेः ॥१०५॥
तदा मां च यमं गृह्य[2] पिता मेऽगात् पितामहम्।
ब्रह्माज्ञया ते कृमयो गता भूमौ हि देहिषु ॥१०६॥
मद्भ्रातरं दिशापालं चकार भगवान् विधिः।
धर्म्माधर्म्मविवेक्तारं प्राणिनां सुखदुःखदम् ॥१०७॥
मामाऽऽह वत्से ! त्वं भूमौ वहुपुण्यवहा नदी।
मदाज्ञयेति वेधास्ते शुभमग्रे भविष्यति ॥१०८॥
त्वय्याप्लुतानां लोकानां यमः शास्ता न भूतले।
तद्भूतानां तस्य लोकदर्शनञ्च भवेन्न वै ॥१०९॥
एवमुक्त्वा तदा तेन हिमवन्तमुपागता।
शिवमाराध्य तत्रस्थं तदाज्ञावशवर्तिना[3] ॥११०॥

का लड़का होने से उसने उन्हें शाप दे दिया कि 'जा तेरे पैर में कीड़े पड़ जाँय', (१०४) मेरे पिता सब वृतान्त जानकर मेरी माता को घर लाये, विमाता के शाप से यम के पैर में कीड़े पड़ गये। (१०५) तब मुझे और मेरे भाई को लेकर पितामह के यहाँ गये और ब्रह्मा की आज्ञा से वे कृमि पृथ्वी पर देहधारियों में चले गये। (१०६) ब्रह्मदेव ने मेरे भाई को लोकपाल वना दिया कि ये धर्माधर्म की विवेचना करके तदनुसार प्राणियों को सुख-दुख दिया करें। (१०७) और मुझ-से कहा—हे बच्ची ! तू पृथ्वी में पुण्यवहा नदी हो जा, मेरी आज्ञा के पालन से तेरा आगे शुभ होगा। (१०८) तुममें स्नान किये हुये प्राणियों पर यम का हुकुम न चलेगा और न उनको यम लोक का दर्शन होगा। (१०९) उनके ऐसा कहने पर मैं हिमालय चली गई और

१ क. निर्वृणम्, ख. ग. निर्व्रणम्। २ ग. नीत्वा। ३ ग. ...वशवर्तिनी।

तदा वरं ब्रह्मणाऽहं प्राप्ता प्राण्यघभञ्जने ! ।
मय्याप्लुतानां[1] जीवानां भ्रातृलोकगतिर्न मे ॥१११॥
भवेदिति वरं प्राप्य जाताऽहं भूप्रवाहिणी ।
तदा जना मय्याप्लुत्य न यान्ति यमपत्तनम् ॥११२॥
कार्य्याभावाद् यमो दण्डपट्टो गृह्यागतो विधिम्[2] ।
भगिन्या वरदानाद् मे कार्य्यं मे नास्ति मत्पुरे[3] ॥११३॥
स्वर्गादिपुण्यलोकेषु गच्छन्ति प्राणिनोऽधुना ।
वसाम्यत्रैव[4] भो ब्रह्मन् ! कार्य्याभावात्तवान्तिके ॥११४॥
एवं वदति कीनाशे स्वर्गादिभुवनाधिपाः ।
ब्रह्माणमूचुरागत्य स्वस्वलोकस्थितिं तदा ॥११५॥
स्थानाभावात् पुण्यकृद्भिः स्थानं निविडितं हि नः ।
कश्चिदुच्चैःश्रवा मेति[3] ❀कश्चिन्मेति च सामजम्[4] ॥११६॥

और वहाँ ठहरकर शिवजी की आराधना करने लगी। (११०) हे प्राणियों के पाप का नाश करनेवाली! वहाँ शङ्कर की आज्ञा के वशवर्ती ब्रह्मा ने मुझे वर दिया कि मुझमें स्नान करनेवाले जीवों की मेरे भाई के लोक में गति न हो। (१११) ऐसा वर पाकर मैं पृथ्वी पर बही, तब मनुष्यों का मुझमें स्नान करने से यमलोक जाना बन्द हो गया। (११२) काम न होने से यमराजजी वर्दी सोंटा लेकर ब्रह्मदेव के पास पहुँचे, और कहा कि आपने ऐसा वरदान मेरी वहिन को दिया कि उससे मेरे लोक में मेरा कोई काम ही नहीं रह गया। (११३) अब तो लोग स्वर्गादिक पुण्य लोकों में जावेंगे। अब बेकार होने से, हे ब्रह्म देव! मैं यहीं आपके पास ही रहूँगा। (११४) यमराजजी ऐसा कह ही रहे थे कि स्वर्गादिलोकों के मालिक ब्रह्माजी के पास आकर अपने अपने लोकों की स्थिति कहने लगे (११५) कि स्थानाभाव से

१ ग. मय्याप्लुता। २ ग. नीत्वा। ३ ग. मे स्यात्। ४ क. वसाम, ग. ...मम तु सामजम्। ❀ मे + इति छेदोऽत्र सन्धिरार्षः।

कश्चित्सुधर्मा मे भागः कश्चिद् मे नन्दनं त्विति ।
कश्चिदप्सरसो मेति सुधाकोशो ममेति च ॥११७॥
देवयानानि चाच्छिद्य सर्वाणि [1]प्राभजन् पृथक् ।
अनेककोट्यप्सरसो विभक्ताश्च पृथक् पृथक् ॥११८॥
गन्धर्व्यश्चैव किन्नर्यस्तथा किंपुरुषस्त्रियः ।
यक्ष्यश्च तासां सख्यश्च तथाऽन्या भूतयोनिजाः ॥११९॥
एतासां परिचर्योऽपि नालं भोगाय देहिनाम् ।
पुंश्चल्यश्चैव कामिन्यः स्वैरिण्यो नागकन्यकाः ॥१२०॥
पाताललोकादानीता नालं तेषां च ता अपि ।
अहंपूर्विकया भुक्ता बलात्कृत्य च तैश्च ताः ॥१२१॥
करं धृत्वा न मुञ्चन्ति एकैकां पञ्च षट् जनाः ।
तथा दिक्पाललोकेषु भुज्यन्ते वै बलात् स्त्रियः ॥१२२॥

पुण्यात्माओं के मारे हम लोगों का लोक भर उठा है। कोई उच्चैःश्रवा अपने लिये माँगता है, कोई हाथी (ऐरावत) चाहता है, (११६) कोई देव-सभा सुधर्मा में अपना भाग चाहता है, कोई नन्दन वन को अपना बतलाता है, कोई अप्सराओं को अपनाता है और कोई अमृत के कोष पर दाँत लगाये हैं। (११७) देवताओं के यान छीन-छीनकर सब ने आपस में बाँट लिये, अप्सराएँ अनेक करोड़ हैं, उन्हें भी उन लोगों ने बाँट लिया। (११७) गन्धर्वी, किन्नरी, किंपुरुष की स्त्रियाँ, यक्षिणियां, उनकी सखियाँ, तथा अन्यभूतयोनि की स्त्रियाँ (११९) और उनकी सेविकाएँ भी प्राणियों के लिये यथेष्ट नहीं हैं। जो कामिनी पुंश्चली हैं और जो नाग-कन्याएँ आवारा हैं, (१२०) वे पाताल लोक से लाई गईं, परन्तु उनसे भी उन लोगों का पूरा नहीं पड़ता। पहिले मैं, पहिले मैं इस प्रकार वे बलपूर्वक उन सबसे भोगी जाती हैं। (१२१) पाँच पाँच छः छः एक एक का हाथ पकड़कर नहीं

१ ग. व्यभजन् ।

विरामो निमिषं नास्ति रम्भादीनाञ्च भोगतः ।
चिन्तामणेः कामधेनोः कल्पवृक्षस्य च क्षणम् ॥१२३॥
विरामो नास्ति सुकृतां वस्त्रभूषणकल्पनात् ।
कल्पनाद् गन्धमाल्यानामिष्टवस्तुप्रदानतः ॥१२४॥
क्षणे क्षणे प्रभुज्यन्ते स्त्रियस्तैः कामुकैस्तराम् ।
भोगाय तेषामप्सरसो नालं मन्याः सृज त्वरम् ॥१२५॥
नो चेत् परस्परं घ्नन्ति स्त्रियै लोको हतो भवेत् ।
यदि पुण्यकृतस्त्वेवं यमुनावैभवाद् दिवि ॥१२६॥
वसन्ति चेन्नो न स्थातुं शक्यं तत्र विधे ! खलु ।
अस्मद्वेश्मानि सुकृतां विहर्त्तुं नालमेव हि ॥११७॥
नालमष्टदिशापाललोका अपि नवान् सृज ।
एवं रविसुता कानि दिवसान्यकरोद् यदि ॥१२८॥

छोड़ते । इसी भाँति दिक्पालों के भी लोकों में बलपूर्वक स्त्रियाँ भोगी जा रही हैं । (१२२) रम्भादि को तो भोग से एक क्षण के लिये विश्राम नहीं है । चिन्तामणि, कामधेनु और कल्पवृक्ष को (१२३) पुण्यात्माओं के लिये वस्त्रभूषण की कल्पना करते २ दम मारने की फुरसत नहीं है । गन्ध-माल्य की कल्पना से और चाही वस्तु के मिलने से (१२४) वे कामी क्षण २ पर स्त्रियों को अच्छी भाँति भोगते हैं, उनके भोग के लिये अप्सराएँ पर्याप्त (काफी) नहीं हैं, औरों की रचना तुरन्त कीजिये (१२५) नहीं तो स्त्री के लिये वे आपस में लड़ेंगे और लोक का नाश हो जावेगा । यदि यमुना की महिमा से इस भाँति पुण्यात्मा लोग स्वर्ग में बसेंगे (१२६) तो हे ब्रह्मदेव ! हम लोगों का वहाँ रहना नहीं हो सकता । हम लोगों के घर पुण्यात्माओं के विहार के लिये यथेष्ट नहीं हैं । (१२७) आठों दिक्पालों के लोक पर्य्याप्त नहीं हैं, और भी बनाइये । यदि यमुना ने कुछ दिनों तक यही रास्ता चलाया, (१२८) तो आप लोगों के लोकों में भी हम लोगों का गुजारा न होगा । इस

तव लोकादिलोकेषु स्थातुं शक्या वयं नहि ।
एवं मत्कृतिसञ्जातोद्विग्नचिन्तान् सुरान् विधिः ॥१२६॥
दृष्ट्वाऽऽहूय विधाता मां प्राह वाचा सुसादरम् ।
वत्से ! त्वद्दूरतो देवा भ्राता च तव चागमन् ॥१३०॥
[1]देवाः स्थानाभावमाहुर्भ्राता ते गतकार्यताम् ।
पूर्णं [2]त्वय्यासुतप्राणिलोकैर्लोकं दिवौकसाम् ॥१३१॥
तस्माद् वरवलं तेऽस्ति सङ्कोच्यैतद् वदे शृणु ।
कालं त्वं ब्रूहि तत्काले यान्तु [3]स्नानाद् दिवं त्वयि ॥१३२॥
इत्युक्ता विधिनाऽहं तमपृच्छं कालसंग्रहम् ।
[4]षण्मासमासपक्षाष्टचतुरेकदिनावधिम् ॥१३३॥
न दत्तवान् मे निर्बन्धाद् दिनमेकं वरं ददौ ।
ऊर्जे च शुक्लपक्षस्य द्वितीयायां जनास्त्वयि ॥१३४॥

प्रकार मेरे उद्योग से ब्रह्माजी देवताओं को उद्विग्न देखकर, (१२९) मुझे बुलाकर आदर के साथ बोले—बच्ची ! तेरे वर से देवता लोग और तेरे भाई भी मेरे पास आये। (१३०) देवताओं ने तो अपने लोकों में स्थानाभाव बतलाया और तुम्हारे भाई ने अपनी बेकारी कही। तुममें स्नान करनेवाले प्राणियों से देवताओं का लोक भर उठा है, (१३१) इसलिये तुममें जो वर का बल है, उसका संकोच करके मैं कहता हूँ, सुनो, तुम कोई समय बतलाओ, जब तुममें स्नान करके लोग स्वर्ग को जाँय। (१३२) ब्रह्माजी के ऐसा कहने पर मैं उनसे समय का मान पूछने लगी। मैंने छः महीना, एक महीना, एक पक्ष, आठ दिन, चार दिन तथा एक दिन तक पूछा। (१३३) दबाव के कारण ब्रह्म देव ने अधिक अवधि न देकर केवल एक दिन का समय दिया। कार्त्तिक के शुक्लपक्ष की द्वितीया को जो लोग तुममें स्नान करेंगे, (१३४)

१ ग. पुस्तकीयोऽयं पाठः, आ० पु०—देवस्थाना० । २ ग. त्वय्याप्लुत्य । ३ ग. स्नाता । ४ ग. षण्मासा मासपक्षाष्टचतुस्त्रिद्विदिनावधिम् ।

स्नाता यमपुरं नैव यान्तु सत्यं वराद् मम ।
इत्युक्त्वा भ्रातरं माञ्च समाधायोभयोर्मुदा ॥१३५॥
भ्रातृवाचाप्येवमेव दापयित्वा वरं मम ।
[1]पूजयाऽद्य द्वितीयायां धर्म्मराजश्च दिक्पतिम् ॥१३६॥
[2]निर्विण्णं तं स्वाधिकारात् सन्तुष्टहृदया शुभे ! ।
[3]पूजयन्तु स्त्रियोऽप्येवं भ्रातॄन् त्वामिव तद्दिने ॥१३७॥
याः पूजयन्ति वै भ्रातॄन् तासां सम्पद्भवेद् ध्रुवम् ।
परिणेता च दाशार्हस्त्वामग्रे भविता शुभे ! ॥१३८॥
व्रजभूमौ भूभरावताराय स पतिस्तव ।
तेन क्रीडां भुङ्क्ष्व मुदा [4]रमावत्त्वं सुखी वस ॥१३९॥
[5]इति मां प्रेषयद्ब्रह्मा परिणीता च विष्णुना ।
रमासमाऽहं विष्णोश्च मय्येवास्ते सदा हरिः ॥१४०॥

वे मेरे वर के प्रभाव से यमपुर को सचमुच नहीं जावेंगे, ऐसा कहकर, मुझे और मेरे भाई दोनों को समझा-बुझाकर, (१३५) प्रसन्नतापूर्वक भाई से भी कहलाकर मेरा वर मुझे दिलवाया और कहा—हे ! वत्से आज द्वितिया है धर्मराज दिक्पाल की पूजा करो। (१३६) ये अपने अधिकार से निर्वेद को प्राप्त हुए हैं। हे शुभे ! सन्तुष्टहृदय होकर इनकी पूजा करो। तुह्मारी भाँति स्त्रियाँ आज के दिन भाइयों की पूजा करें। (१३७) जो भाइयों की पूजा करती हैं, निश्चय करके उनको सम्पत्ति मिलती है। हे शुभे ! इसके अनन्तर तुम्हारा विवाह दाशार्ह से होगा। (१३८) व्रजभूमि में पृथ्वी का भार उतारने के लिये तुम्हारा पति अवतरित होगा। उसके साथ उदार क्रीड़ा की भागिनी होकर तुम सुख से वसो। (१३९) इस प्रकार ब्रह्मा ने मुझे लौटाया और विष्णु से मेरा विवाह हुआ। मैं विष्णु की लक्ष्मी के समान हूँ। मुझमें हरि सदा निवास

१ ग. पूजयोर्जद्वितीयायां। २ ग. निर्विघ्नं तं। ३ ग. पुस्तके इतः पर सार्द्धश्लोको नास्ति। ४ ग. रमावत्त्वं सुखं वस। ५ ग. ब्रह्मणा प्रेषिताहं च।

एकेनांशेन भगवान् विहरन् व्रजभूमिषु ।
[1]मय्यप्यद्यापि सदये ! रमते मत्प्रियाय सः ॥१४१॥
एवं मद्वैभवं सर्वं शङ्करस्य प्रसादतः ।
पित्रोपदिष्टा बाल्येऽहं गुरुणा द्वादशात्मना ॥१४२॥
वत्से ! भज शिवं भोगमोक्षौ तेन लभेदिति ।
तदारभ्य शिवं नित्यं पूजयामि सुरापगे ! ॥१४३॥
तत्प्रसादाच्च ते सङ्गस्तत्प्रियायाश्च मेऽभवत् ।
त्वया साकमहं काशीं यास्ये सम्यक् सुसेवितुम् ॥१४४॥
[2]शिवापराधिजनतादर्शनाघनिवृत्तये ।
प्राचीनां मणिकर्णीं च श्रीमत्केदारनायकम् ॥१४५॥
[3]सेव्याऽद्य मुक्ता यास्येऽहं ततः श्रीमणिकर्णिकाम् ।
विश्वेशादीन् नमस्कृत्य मन्नाम्ना लिङ्गसंस्थितिम् ॥१४६॥

करते हैं । (१४०) एक अंश से भगवान् व्रजभूमि में विहार करते हुए भी, हे सदये ! मेरी प्रीति के लिये वह आज भी मेरे भीतर विहार करते हैं । (१४१) इस प्रकार से मेरी सब महिमा शङ्कर के प्रसाद से है । मेरे पिता सूर्य्य भगवान् ने वचपन ही में मुझे उपदेश दिया था कि (१४२) हे बेटी ! तू शिवजी को भज । उन्हीं से भोग और मोक्ष मिलता है । हे गङ्गे ! तब से मैं नित्य शिवजी की पूजा करती हूँ॥ (१४३) उन्हीं की कृपा से मुझे तुम्हारा, जो कि स्वयम् उनकी प्रिया हो, संगम प्राप्त हुआ । तुम्हारे साथ मैं तीर्थसेवा भली भाँति करने के लिये काशी जाऊँगी । (१४४) जिससे शिवापराधी जनों के दर्शन का पाप छूट जावे । प्राचीन मणिकर्णिका तथा श्रीमान् केदारनाथ की (१४५) सेवा करके पाप से विनिमुक्त होकर मैं मणिकर्णिका जाऊँगी, विश्वेश्वरादिक को नमस्कार करके अपने नाम का एक लिङ्ग स्थापन

१ ग. मय्यद्यापि इ सदयो । २ ख. ग शिवापराधजनित० । ३ ग. संसेव्य मुक्ता ।

कृत्वा सम्पूज्य चैकांशेन यास्ये सागरं ततः।
इत्येवं भानुदुहिता गङ्गया सह सादरम् ॥१४७॥
सम्भाष्य च तया साकं याता काशीमघापहाम्।
इति सकलजनौघश्लाघनीयाप्रमेय-
प्रचुरवरचरित्रां सत्कथां यामुनीं यः[1]।
सकृदपि सकलाघध्वंसिनीं संशृणोति
ध्रुवमखिलसुरेड्यं[2] धाम संयाति शैवम् ॥१४८॥
शृणुत मुनिवरेन्द्राः! काशीकेदारमूर्त्ते-
श्चिरतरमणिकर्ण्यास्तीर्थराज्ञ्याः प्रभावम्[3]।
परमशिवकटाक्षाच्छ्रोत्रपात्री करोति
यदि मनुजवरो यः सैव ※धन्यो न चान्यः ॥१४९॥

इति श्रीकाशीमूलरहस्ये ब्रह्मवैवर्त्ते खिले काशीकेदारमाहात्म्ये
एकादशोऽध्यायः ॥११॥

करूँगी। (१४६) तब एक अंश से समुद्र में जाऊँगी। इस प्रकार यमुना गङ्गाजी से सादर बातचीत करके उनके साथ पापनाशिनी काशी में गईं। (१४७) यमुनाजी की यह सुन्दर कथा सब लोगों से प्रशंसनीय, अप्रमेय बर के चरित्र से युक्त और सकल पापों का नाश करनेवाली है, जो इसे एक वार भी सुन लेगा, निश्चय करके देवताओं से स्तुत शङ्कर के धाम को प्राप्त होगा। (१४८) हे मुनिवर्य्य लोगो! कशी-केदारमूर्ति और तीर्थों की रानी प्राचीना मणिकर्णिका की महिमा को जो शिवजी के कृपाकटाक्ष से सुनता है, वही मनुष्य धन्य है, दूसरा नहीं। (१४९)

यह ब्रह्मवैवर्त के खिल भाग काशीमूलरहस्यान्तर्गत काशी-केदारखण्ड
का ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

---

१ ग. पुस्तकयोऽयं पाठः, अा० पु०—यामुनियाम्। २ ख. सुरढ्यं, ग. सुराढ्यम्। ३ ग. ...राजप्रभावम्। ※ सन्धिरार्षः

अथ द्वादशोऽध्यायः ।

ऋषय ऊचुः—

व्यासशिष्य ! ज्ञाननिधे ! यमुनाकथनात् परम् ।
किमाह वाणी गङ्गायै स्वरहस्यञ्च पौर्विकम् ॥ १ ॥
तद्वदस्व महाधीमन् ! श्रोतुमिच्छावताञ्च नः ।
श्रोतुं योग्या यदि वयं त्वन्मुखाब्जसुधां कथाम् ॥ २ ॥

सूत[1] उवाच—

शृणुध्वं ऋषयः सर्वे कथां श्रोतुरघापहाम् ।
कुमारकथितां वामदेवाय जनपावनीम् ॥ ३ ॥
जायायै चानवद्यायै बोधितां नाथशर्म्मणा

सनत्कुमार उवाच—

वामदेव ! शृणु मुने ! गङ्गामाह सरस्वती ।
गङ्गे ! शृणु ममोत्पत्तिं विवाहमिति चादरात् ॥ ४ ॥

ऋषियों ने कहा—हे ज्ञान के निधान ! व्यासजी के शिष्य ! यमुनाजी के कथन के पश्चात् सरस्वती ने अपना पूर्व का रहस्य क्या कहा ? (१) हे महामते ! हमलोगों को सुनने की इच्छा है, यदि आप समझते हों कि हम लोग आपके मुख-कमल से निकले हुए कथामृतपान के अधिकारी हैं । (२) हे ऋषिलोग ! सुननेवालों के पापों को हरनेवाली जनपावनी कथा को, जिसे सनत्कुमार ने वामदेवजी को (३) और नाथशर्मा ने अपनी स्त्री अनवद्या को सुनाया था, सुनिये । सनत्कुमार बोले—हे वामदेव मुनिजी ! सुनिये, सरस्वतीजी ने गङ्गा से कहा कि मेरी उत्पत्ति और विवाह आदर के साथ सुनिये । (४) पहिले भगवान् स्वयम्भू (ब्रह्मदेव) ने विद्यारूपा शक्ति का हृदय से स्मरण किया, और उसे अपने

१ ख. पुस्तकीयोऽयं पाठः, आ० पु०—एतद् नास्ति ।

स्वयंम्भूर्भगवान् ब्रह्मा पुरा[1] शक्तिं हृदा[2] स्मरन् ।
विद्यारूपां स्ववशगां कर्त्तुमिच्छन् स्वतेजसा ॥ ५ ॥
तपश्चचार शरदामयुतं . ध्याननिश्चलः ।
विद्याशक्तिस्तदा तस्य जिह्वाग्रात् समवातरत् ॥ ६ ॥
मम देहमिषाद् दिव्यकन्यारूपा शुभाकृतिः ।
मम देहस्य सौन्दर्य्यं दृष्ट्वा वेधाश्चचाल ह ॥ ७ ॥
कामाविष्टशरीरो मां धर्त्तुं रन्तुमकामयत् ।
पराशक्तेरंशभूतामित्यज्ञात्वा हि[3] मायया ॥ ८ ॥
ममापि [4]स्वस्वरूपस्य ज्ञानं नास्ति च बाल्यतः ।
उक्तस्तदा मया वेधाः किं ब्रह्मन् ! चलितस्त्विति ॥ ९ ॥
त्वत्तो मे जन्म तस्मात्त्वं पिता पश्य स्वधर्म्मतः ।
त्वया न कामितुं योग्या धर्म्मलोपो भवेत्त्वया ॥१०॥

तेज से वश में लाने की इच्छा की। (५) ध्यान में निश्चल होकर दश हजार वर्ष तक तप किया। तब विद्याशक्ति उनके जिह्वाग्र से मेरे देह के बहाने सुन्दर कन्या का रूप धारणकर अवतरित हुई। मेरी देह की सुन्दरता को देखकर ब्रह्माजी विचलित हो गये। (७) उनके शरीर में कामावेश हुआ, सो मुझे पकड़कर मेरे साथ रमण करना चाहा। माया से यह न जाना की मैं परा शक्ति की अंशभूता हूँ। (८) मुझे भी लड़कपन के कारण अपने स्वरूप का ज्ञान नहीं था। मैंने ब्रह्माजी से कहा कि 'हे ब्रह्मदेव! आप ऐसे विचलित क्यों हो उठे हैं। (९) आपसे मेरा जन्म है, सो देखिये धर्मतः आप मेरे पिता हैं। आपको मेरी कामना न करनी चाहिये, इसमें आपके धर्म का लोप हो जायगा।' (१०) मैं 'ना' 'ना' करती ही रही, पर उन्होंने बलात्कार के लिये शीघ्रता की, यह देखकर मैं मृगी-रूप धारण करके

१ ख. परा। २ ख....स्तथा, ग. ह्रादे। ३ ग. ज्ञात्वेरामायया। ४. ग. सुख।

मा मेति क्रोशमानां मां[1] बलात् कर्त्तुं[2] कृतत्वरम् ।
दृष्ट्वा विधिमहं मृग्या रूपं धृत्वा पलायनम् ॥११॥
कृत्वा तदा मृगो भूत्वा सोऽप्याधावच्च मामनु ।
पराशक्तिस्तदा शम्भुं पश्येत्याह हसन्[3] *विधिम् ॥१२॥
यां[4] ध्यायदयुताब्दं स सापरोक्षाऽभवं[5] पुरः ।
तामज्ञात्वा[6] मायया ते कामस्य वशमागतः ॥१३॥
तं शिक्षयाशु प्राक् शम्भो ! पश्चात्तस्यैव तां[7] दद ।
जगद्भवेन्नाऽमर्य्यादं[8] मर्य्यादा तव शासनम् ॥१४॥
स्त्रीपुंव्यक्तिश्च सर्वापि त्वया मयि समुद्भवा ।
परमार्थदृशां सेतुस्तथापि तव शासनम् ॥१५॥
अकर्त्तव्या न कर्त्तव्या[9] वेदवाक् तव शासनम् ।
अत्यन्तं सुन्दरं रूपं स्त्रीपुंसोः कुरुतेऽनिशम् ॥१६॥

भागी । (११) तब तो उन्होंने भी मृग रूप से मेरा पीछा किया । परा शक्ति ने शम्भु से हँसते हुए कहा कि ब्रह्मा को देखो, (१२) जिसका इन्होंने दस सहस्र वर्ष ध्यान किया, वह जब प्रत्यक्ष हुई, तब उसको इन्होंने आपकी माया से मोहित होने के कारण न जाना, और काम के वश में आ पड़े । (१३) हे शम्भु ! पहिले तो आप इन्हें तुरन्त शिक्षा दें, और पश्चात्, इन्हें उसे दे दें, जिसमें जगत् विमर्याद न होने पावे, आपका शासन ही मर्यादा है, (१४) जितने स्त्री-पुरुष व्यक्ति हैं, वे सब आपसे मुझमें उत्पन्न हुए हैं, तथापि परमार्थदर्शियों के लिये आपका शासन ही सेतु हैं । (१५) जो निषेध है, उसे न करना चाहिये, वेद का वाक्य आपका शासन है । ये दिन-रात स्त्री-पुरुषों का अत्यन्त सुन्दर रूप बनाया ही करते हैं । (१६) फिर भी हे स्वामिन् ! आपकी माया ने ब्रह्मा

१ ग. स । २ ग. तदा त्वरन् । ३ ग. मुदा । ४ ग. ध्यायन्नयुताब्दम् । ५ ग. ०भवत्पुरः । ६ ग. कामयंत । ७ ग. दिश । ८ ख. कुर्याच्च । ९ ग. इति वेदानुशासनम् । * जीवभाव आर्षः ।

तथापि माया ते स्वामिन् विधातारं व्यमोहयत् ।
स्त्रीणां पुंसां धर्म्मलोपकारी कन्दर्प एव हि ॥१७॥
तच्छिक्षको भवानेव कोऽन्योऽस्ति जगति प्रभो !।
स्थानास्थानं न जानाति दृष्टिः कामस्य दुर्भरा ॥१८॥
तथापि ते कृपादृष्टिस्त्रातुं भ्रष्टान् गरीयसी ।
तस्माच्चतुर्मुखं काममोहितं रक्ष तद्दृशा ॥१९॥
एवमुक्तस्त्वादिशक्त्या यदंशाहं तया शिवः ।
कैरातवेशो भगवान् धृतचापशरस्तदा ॥२०॥
शरं सन्धाय धनुषि [1]ब्रह्माणमनुधावते ।
अतिघोराकृतिं दृष्ट्वा मृगरूपी पितामहः ॥२१॥
शम्भुरेवेति [2]तं ज्ञात्वा संत्रस्तो नितरां तदा ।
मृगरूपं परित्यज्य लज्जया नतकन्धरः ॥२२॥
स्थितः [3]पदा लिहन् भूमिं का मे शिक्षा भवेदिति ।
मामाह भगवान् त्रस्तां माभैरिति मृगाकृतिम् ॥२३॥

का मोह लिया । स्त्री-पुरुषों के धर्मों का लोप करनेवाला यह काम है । (१७) उसके शिक्षक आप ही हैं और दूसरा जगत् में कौन है ? काम की दृष्टि अघाती नहीं, यह अवसर अनवसर कुछ नहीं देखती, (१८) तथापि आपकी कृपादृष्टि पड़ने से भ्रष्टों की बड़ी रक्षा होती है । अतः अपनी कृपादृष्टि से काम-मोहित ब्रह्मा की रक्षा कीजिये । (१९) जिनके अंश से मैं हूँ, उन आदि शक्ति ने जब ऐसा कहा, तब शिवजी ने किरात के वेष से धनुष-बाण उठाया । (२०) धनुष पर बाण चढ़ाकर ब्रह्मा के पीछे दौड़े । मृगरूपी ब्रह्मा ने अतिघोर रूप देखकर (२१) जान लिया कि ये शङ्कर ही हैं, और वे अत्यन्त डर गये । मृग-रूप छोड़कर उन्होंने लज्जा से शिर झुका लिया (२२) और पैर से पृथ्वी पर लिखते हुए खडे

१ ग. ...मन्वधावत । २ ग. तज्ज्ञात्वा । ३ ग. पदोल्लिखन् ।

स्वस्थचित्ता तदाहञ्च यथापूर्वाकृतिं गता ।
तदाह वेधसं शम्भुस्त्वां हन्म्यद्य न संशयः ॥२४॥
सृष्टिकर्त्रेति गर्वेण मर्य्यादालङ्घिनं खल ! ।
बलात्कृतेरनर्हा हि स्वस्त्रियोऽपि पतिप्रियाः ॥२५॥
परस्त्रियः संमताश्च नार्हा एवान्यसंगमे ।
स्नुषा पुत्री भ्रातृजाया स्वसा मातुः पितुः स्वसा ॥२६॥
गुरुपत्नी मित्रपत्नी श्वश्र्वाद्या[1] वर्जिता रतौ ।
मदाज्ञां शास्त्रमर्यादां त्वं न जानासि किं विधे ! ॥२७॥
शीर्षं ते छिन्नमेकं प्राक् छिनद्म्यद्य चतुष्टयम् ।
इत्युक्त्वा बाणमाकर्णाकृष्टमुत्स्रष्टुमुत्क्रुधा ॥२८॥
स्थितमग्र शिवं वेधा न्यपतत् पादयो रुदन् ।
एतस्मिन्नन्तरे चागात् परा शक्तिः शिवान्तिकम् ॥२९॥

हो गये कि देखें मुझे क्या शिक्षा होती है। मुझे मृगी के रूप में डरी हुई देखकर भगवान् ने कहा कि तू मत डर, (२३) तब मैं स्वस्थ चित्त होकर अपने पहिले रूप में हो गई। तब शम्भु ने ब्रह्मा से कहा कि तुम्हें मैं अभी मारता हूँ, इसमें संशय नहीं है, (२४) तुम खल हो, तुमने सृष्टि-कर्ता होने के अभिमान से मर्यादा का लंघन किया। अपनी प्रिया स्त्री से भीं बलात्कार करना उचित नहीं है (२५) और पराई स्त्री तो सभी भाँति दूसरे के संयोग के योग्य नहीं है। पतोहू, बेटी, भाई की स्त्री, मौसी, फूआ (२६) गुरु की पत्नी, और मित्र की पत्नी इत्यादि तो एकदम रति में वर्जित हैं। हे ब्रह्मा ! शास्त्र की मर्य्यादा और मेरी आज्ञा को क्या तू नहीं जानता ? (२७) पहिले तो तुम्हारा एक ही शिर काटा गया था, आज चारों काटूँगा, ऐसा कहते हुए शिवजी ने बाण खींचकर क्रोध से छोड़ना ही चाहा (२८) कि ब्रह्माजी रोते हुए सामने खड़े हुए, शङ्करजी के चरणों पर गिर पड़े, इसी बीच में परा शक्ति शिवजी के सन्निकट

[1] ग. श्वश्र्वश्च ।

मा संहर विधिं नाथ ! भवन्तं शरणागतम् ।
ईश ते माययात्यन्तं मोहितं गद्गदस्वरम् ॥३०॥
[1]ना मोहयत्येव माया ज्ञानिनोपि पतन्त्यधः (?) ।
इत्युक्त्वा [2]स्वंशजां मां हि स्वस्यामेव तिरोदधत् ॥३१॥
स्वान्तस्थितां सा मामाह कं वत्से ! [3]वरसे वद ।
एनं वा विधिमन्यं वा कस्मिन्निच्छाऽस्ति ते वद ॥३२॥
इति पृष्टाऽवदमहं पराशक्तिं स्वमातरम् ।
[4]यस्मिन् त्वदाज्ञा भवति तं वृणे नात्र संशयः ॥३३॥
इत्युदन्तीं (?) पुनः प्राह मां परा शक्तिरीश्वरी ।
त्वयि संसक्तचित्तोऽयं जगत्स्रष्टा महान् प्रभुः ॥३४॥
विद्यार्थी मां स्थितो ध्यायन्नयुताब्दं त्रयीमयीम् ।
तस्माद् मदंशा सञ्जाता त्वं तस्य रसनाग्रतः ॥३५॥

चली आई (२९) और कहा कि हे नाथ ! ब्रह्मा को न मारो, ये आपके शरण में आ गये हैं, हे ईश ! आपकी माया से अत्यन्त मोहित हो गये हैं, इनका स्वर गद्गद हो रहा है । (३०) आपकी माया से मोहित होकर ज्ञानी भी नीचे गिर जाते हैं, ऐसा कहकर अपने अंश से उत्पन्न हुई मुझको अपने में लीनकर लिया । (३१) अपने भीतर ठहरी हुई मुझसे उन्होंने पूछा—हे बेटी ! तू किसे वरना चाहती है, बतला, तुम्हें इन्हीं ब्रह्मा की अथवा किसी दूसरे की इच्छा है, सो कह । (३२) ऐसा पूछने पर मैंने अपनी मां परा शक्ति से कहा—जिसके लिये आप की आज्ञा हो निश्चय करके मैं उसी को वरूंगी । (३३) मेरी बात सुनकर पराशक्ति ईश्वरी ने मुझसे कहा कि यह जगत् के रचनेवाले महाप्रभु हैं, और तुममें इनका चित्त भी लग गया है । (३४) तीनों वेदों की विद्या के लिये इन्होंने दस सहस्र वर्ष तक मेरा ध्यान किया, इसलिये तुम

१. ग. न । 'मायया मोहमेत्यैव ज्ञानिनोऽपि पतन्त्यधः' इति वा स्यात् । २ ग. स्वांशजां । ३ ग. वरयसे । ४ ग. यस्मिन्नाज्ञा भवति तं वृणे नान्यं न संशयः ।

स्वरूपं ते न जानन् स त्वयि कामातुरोऽभवत् ।
तथापि तन्मनोऽभीष्टं पूरणीयं मया शुभे ! ॥३६॥
तदुत्पत्तिं परित्यज्य मयि लीना यथा पुरा ।
अहमुत्पाद्य दास्यामि तस्यैव त्वान्तु मत्सुताम् ॥३७॥
त्रयीरूपां वृणीष्व त्वं तं विधातारमादरात् ।
इत्युक्त्वा मां शिवं प्राह [1]हसन्ती परमेश्वरी ॥३८॥
स्वामिन् ! दयां कुरुष्वास्मिन् [2]त्वद्भक्ते चतुरानने ।
वाणीं दास्यामि मत्कन्यां कृत्वास्मै चाविरोधतः ॥३९॥
भक्ताभीष्टप्रदाता त्वमधर्मोऽपि त्वदाश्रितः ।
भूत्वा स्वधर्म्मस्तं रक्ष[3] मनोभीष्टप्रदानतः ॥४०॥
[4]ब्रह्मोत्पत्तिर्गता वाण्या मयि लीनां मदुद्भवाम् ।
दापयैनां पुनर्जातां [5]ब्रह्मणा कामितां प्रभो ! ॥४१॥

मेरे अंश से उनकी जिह्वा से उत्पन्न हुई । (३५) तुम्हारे स्वरूप को न जानते हुए वह कामातुर हो उठे । फिर भी हे शुभे ! मुझे उनकी कामना पूर्ण करनी ही है, (३६) उनसे अब तुम्हारी उत्पत्ति नहीं रही, क्योंकि अब तुम मेरेमें पहिले की भांति लीन हो गई, अब मैं फिर से तुम्हें उत्पन्न करके, अपनी बेटी बनाकर उन्हें दूंगी । (३७) तब ब्रह्माजी से आदरपूर्वक कहा कि वेदत्रयीरूपा विद्या को तुम मांगो । मेरे लिये ऐसा कहकर, हँसती हुई परा शक्ति ने शिवजी से कहा—(३८) हे स्वामिन् ! अपने भक्त ब्रह्मा पर दया करो, इनको मैं अपनी कन्या बनाकर सरस्वती को दूंगी, जिससे शास्त्र से विरोध न हो । (३९) आप भक्तों को अभीष्ट देनेवाले हैं, अधर्म भी आपका आश्रित होकर इनका धर्म हो गया, सो इनको मन चाही वस्तु देकर इनकी रक्षा कीजिये । (४०) ब्रह्मा से जो सरस्वती उत्पन्न हुई थीं, वे मेरे में लीन हो

१ ग. पुस्तकीयोऽयं पाठः, आ० पु०—परशक्तिः हसन् पुनः । २ ग. तद्भक्ते । ३ ग. रक्षेत । ४ ग. ...त्ति गतां वाणीं । ५ ग. ब्रह्मणे ।

त्रयीं विद्यां प्राप्य [1]वेधाः प्रमोदतु चिरं सुखम् ।
इत्युक्तो देवदेवेशो निजशक्त्या प्रसादितः ॥४२॥
ब्रह्माणं प्राह कृपया पतितं पादयोर्भिया ।
ब्रह्मन्नुत्तिष्ठ गृह्णीष्व स्वाभीष्टां कन्यकामिमाम् ॥४३॥
प्रसादाभिमुखं शम्भुं ज्ञात्वोत्थाय कृताञ्जलिः ।
'विभो ! क्षमस्व चागो मे त्वमीशोऽसीति संस्तुवन् ॥४४॥
धर्म्मलोपमतिर्मा [2]भूदग्रेत्यनुगृहाण मे ।
नेच्छामि स्वसुतां वाणीं कामितामपि दुर्धिया ॥४५॥
एवं वदन्तं ब्रह्माणं प्राह शम्भुः सनातनः ।
शृणु ब्रह्मन् ! धर्म्मलोपो नास्त्यत्र मदनुग्रहात् ॥४६॥
कामितापि सुता साऽभूदन्यजाता हि धर्म्मतः ।
इयं परम्परा देवगणेष्वस्ति न दोषता ॥४७॥

गई, अब ये हमसे उत्पन्न हैं, सो फिर से जनमी हुई हैं, ये ब्रह्मा से चाही हुई हैं, इन्हें उन्हीं को दे दीजिये। (४१) तीनों वेदों की विद्या पाकर ब्रह्माजी बहुत दिनों तक आनन्द करें । जब इस प्रकार की बातें कहकर परा शक्ति ने शिवजी को प्रसन्न किया, (४२) तब वे भय से चरणों पर गिरे हुए ब्रह्माजी से कृपापूर्वक बोले—ब्रह्माजी ! उठो और अपनी चाही हुई इस कन्या को ग्रहण करो। (४३) प्रसन्नता से शङ्कर को सम्मुख जानकर, हाथ जोड़कर ऐसी स्तुति की—हे भगवन् ! आप ईश हैं, मेरे अपराध को क्षमा करें। (४४) आप मेरे ऊपर ऐसा अनुग्रह करें कि फिर मेरी मति धर्म-लोप में न जाय। यद्यपि मैंने कामना की, तथापि अपनी बेटी होने से मैं सरस्वती को नहीं चाहता। (४५) ब्रह्माजी के ऐसा कहने पर सनातन शम्भु ने कहा कि हे ब्रह्मा ! मेरे अनुग्रह से इसमें धर्म-लोप नहीं है। (४५) यह चाही हुई होने पर भी तुम्हारी बेटी नहीं हुई, क्योंकि धर्मतः अन्य से अब उत्पन्न हो गई, यह पर-

१ ग. प्रभो। २ ग.... ह्यनुगृहाण मे।

विष्णोः पत्न्यौ धरालक्ष्म्यौ धराजाता हि जानकी ।
धर्म्मतः सा सुता विष्णोस्तामगृह्णाद्धरिः पुनः ॥४८॥
कौसल्यातनयव्याजात्तत्र दोषोऽस्ति को वद ।
त्वत्पुत्रः कश्यपो दक्षः पुलोमात्रिस्तथाऽङ्गिराः ॥४९॥
दक्षकन्याः पितृव्येन कश्यपेनोररीकृताः ।
प्रजापतीनां तनयैश्चन्द्रेन्द्रार्कादिभिः पुनः ॥५०॥
ऊढाः पितृव्यतनयाः शच्यश्विन्यादिकन्यकाः ।
मदाज्ञया सृष्टिकार्य्यवृद्ध्यर्थं कुक्षिभेदतः ॥५१॥
[1]स्त्रीपुमुत्पत्तिभेदेन परिणीताः परस्परम् ।
तथा त्वयाऽपि संग्राह्या त्रयी चोत्पत्तिभेदतः ॥५२॥
धर्म्मप्रवर्त्तको लोके स्रष्टासि ज्ञानवान् कृती ।
आत्मजा कामिता चेति क्रोधो मामविशद् द्रुतम् ॥५३॥

म्परा देवगणों में चली आती है, इसमें दोष नहीं है । (४७) पृथ्वी और लक्ष्मी दोनों विष्णु की पत्नी हैं, और जानकी का अवतार पृथ्वी से है । धर्म से वह विष्णु की बेटी ठहरीं, परन्तु हरि ने उन्हें कौशल्या के वेटे होने के व्याज से ग्रहण किया । (४८) तव कहो, यहां पर क्या दोष है । कश्यप, दक्ष, पुलोम, अत्रि और अङ्गिरा ये सव तुम्हारे पुत्र हैं, (४९) सो दक्ष की कन्या को चचा होकर कश्यप ने ग्रहण किया । चन्द्र, इन्द्र, सूर्य्यादिक सव प्रजापति के पुत्र हैं, (५०) इन लोगों ने चचा की वेटी शची, अश्विनी आदि को ग्रहण किया । सो इन लोगों ने मेरी आज्ञापूर्वक कुक्षिभेद से ग्रहण किया है । (५१) स्त्री और पुरुषों ने उत्पत्ति भेद से आपस में व्याह कर लिया, इसी भाँति उत्पत्ति के भेद से तुमको भी वेदविद्या (सरस्वती) को ग्रहण करना चाहिये । (५२) तुम पुण्यात्मा हो, ज्ञानवान् हो, लोक के स्रष्टा हो, धर्म प्रवर्त्तक हो, तुमने अपने से उत्पन्न की कामना की, इससे मुझे तुरन्त क्रोध आ गया । (५३) सो मैंने क्षमा की । ऐसा कहकर शक्ति के सामने शिवजी ने

१. ख. स्त्रियमुत्पत्ति ।

ज्ञान्तं मयेत्यदाड् माञ्च विरिञ्चाय सशक्तिकः ।
परिणीय तदाहं [1]तं शास्त्रदृष्टेन कर्म्मणा ॥५४॥
जिह्वायां स्थापिता प्रेम्णा सुकुमारेति वेधसा ।
तदाद्यहं तेन सार्कं रममाणा त्रयीतनुः ॥५५॥
आसं सुखं तज्जिह्वायां पुनर्मामाह शङ्करः ।
वत्से ! त्वं कामिता पूर्वं पित्रा तेन स दोषभाक् ॥५६॥
भर्त्तृदोषः स्त्रिया नोद्यः स्त्रीणां भर्त्ता हि दैवतम् ।
तस्मात्त्वं श्रेयसे भर्त्तुर्नदी भूत्वा वह क्षितौ ॥५७॥
आर्य्यावर्त्ते पुण्यभूमौ कुरुक्षेत्रे शुभप्रदे ।
वसन्तु तत्र मुनयः सर्वज्ञा ब्रह्मवित्तमाः ॥५८॥
तेषां त्वमुपकाराय अन्येषामन्यदेहिनाम् ।
त्वयि स्नात्वा नित्यकर्म्मविधिं कुर्वन्तु तापसाः ॥५९॥

मुझे ब्रह्मा को दे दिया, तब मैंने उनसे शास्त्रोक्त पद्धति के अनुसार व्याह किया। (५४) ब्रह्मदेव ने मुझे सुकुमार समझकर अपनी जिह्वा पर स्थान दिया, तब से मैं वेदमय शरीर से उनसे रमण करती हुई, उनकी जिह्वा पर सुख से बसती हूँ। (५५) तब फिर शङ्कर ने मुझसे कहा कि हे बेटी ! तुझे पहिले इन्होंने पिता होकर चाहा इससे ये दोषी हैं। (५६) भर्ता का दोष स्त्रियों को दूर करना चाहिये, स्त्रियों का भर्ता ही देवता है, अतः तुम भर्ता के कल्याण के लिये नदी होकर पृथ्वी में वहो। (५७) वहाँ पर पुण्य भूमि आर्य्यावर्त है, उसमें कुरुक्षेत्र शुभ देनेवाला है, वहाँ पर सर्वज्ञ ब्रह्मवादियों में श्रेष्ठ मुनि लोग रहते हैं। (५८) उन लोगों के तथा अन्य देहधारियों के उपकार के लिये तुम वहाँ जाओ, तुममें स्नान करके तापस लोग नित्यकर्म-विधि करें। (५९) उन लोगों के प्रसाद से तुम भी सब पापों को हरनेवाली होओ, सब लोग तुममें स्नान करके निष्पाप

१ ग. तु।

तेषां प्रसादात्त्वमपि सर्वपापहरा भव ।
लोका सर्वे त्वयि स्नात्वा ध्वस्तपापा भवन्तु हि ॥६०॥
यज्ञास्त्वनेके त्वत्तीरे भविष्यन्ति तपोधनैः ।
तवोदकस्नानपानात् प्राणिनां पापभञ्जनात् ॥६१॥
कृतार्थीकृत्य लोकांस्त्वं कृतार्था भव [1]ज्ञानिना ।
मम प्रिया वियद्गङ्गा भविष्यति महीवहा ॥६२॥
प्रसादाभिमुखं शम्भुं ज्ञात्वोत्थाय कृताञ्जलिः ।
तदा तया त्वं सम्पूज्य लोकान् पावय शाश्वती ॥६३॥
पतिक्षेमाय भूमौ त्वमेकांशेन नदी भव ।
सावित्री चैव गायत्री [2]त्वत्सपत्न्यावपि क्षितौ ।
एकांशेन नदी भूत्वा वहेतां पतितुष्टये ॥६४॥
[3]त्वं सर्वपापसंहर्त्री भव मच्छासनात् क्षितौ ।
त्वत्पुण्येन चिरञ्जीवी त्वया भवति ते पतिः ॥६५॥
एवं मामनुगृह्येशः स्वशक्त्यागात् स्वधाम च ।
तदारभ्य कुरुक्षेत्रे स्थिताहं त्वत्प्रतीक्षया ॥६६॥

हो जायँ। (६०) तुम्हारे तीर में तपोधन लोग अनेक प्रकार के यज्ञ करेंगे । जो तुममें स्नान और आचमन करें, तुम उनके पापों का नाश करके (६१) उन लोगों को कृतार्थ करो, और ज्ञानी से तुम कृतार्थ होओ । मेरी प्रिया आकाश-गङ्गा भी पृथ्वी पर बहेंगी । (६२) तब तुम उसकी पूजा करके उसके साथ लोगों को पवित्र करो । पति के कल्याण के लिये तुम एक अंश से नदी होओ । (६३) तुम्हारी दोनों सौतें—गायत्री और सावित्री भी पति की तुष्टि के लिए एक अंश से नदी होकर बहें। (६४) मेरे शासन से तुम पृथ्वी में सब पापों को हरनेवाली होओ, तुम्हारे पुण्य से तुम्हारा पति तुम्हारे द्वारा चिरञ्जीवी होवे । (६५) इस भाँति मेरे ऊपर अनुग्रह करके शङ्कर भगवान् अपनी शक्ति के साथ अपने

१ ग. ज्ञानिनी । २ ग. तद् । ३ ग. तव् ।

त्वां भूमिमागतां श्रुत्वा त्वत्सङ्गकृतलालसा ।
अंशमात्रे कुरुक्षेत्रे स्थाप्य सर्वांशसंयुता ॥६७॥
शीघ्रं भूम्यन्तरा यांता त्वदग्रे प्रकटाऽभवम् ।
मद्भर्तृक्षेत्रभूमौ त्वां [1]सम्पूज्य मुदिताऽभवम् ॥६८॥
शिवप्रसादतः प्राप्तस्तव देवि ! समागमः ।
शिवप्रिया त्वं शिरसा धृता तेनेष्टभामिनी ॥६९॥
त्वया सह नदीनाथं प्राप्स्यामि मुदिता चिरात् ।
प्रजापतिक्षेत्रमेतत्त्वया देवि ! सुपावितम् ॥७०॥
दशाश्वमेधा मद्भर्त्रा [2]कृतात्र* बहुवारतः ।
तत्सार्थकमभूदद्य त्वदागमनतोऽत्र वै ॥७१॥
हरिप्रिया च कालिन्दी त्वत्सङ्गार्थमिहागता ।
अहं ब्रह्मप्रिया देवि ! त्वं तावच्च शिवप्रिया ॥७२॥

धाम को गये, तब से मैं कुरुक्षेत्र में तुम्हारी प्रतीक्षा करती हुई ठहरी हूँ। (६६) सुना कि तुम भूमि में आ गई, सो तुम्हारे साथ की लालसा से, एक अंश को कुरुक्षेत्र में स्थापन करके, और सब अंशों से युक्त होकर (६७) शीघ्रता के साथ पृथ्वी में घुसकर तुम्हारे सामने मैं प्रगट हो गई। और अपने पति की क्षेत्रभूमि में तुम्हारा पूजन करके मैं प्रसन्न हो गई। (६८) हे देवि! शिवजी की कृपा से तुमसे भेंट हुई। तुम शिवजी की प्रिया हो, इसी लिये उन्होंने तुम्हें शिर चढ़ा रक्खा है। (६९) तुम्हारे साथ में आनन्दपूर्वक जल्दी से नदी-नाथ (समुद्र) में पहुँच जाऊँगी। इस प्रजापति-क्षेत्र को हे देवि! तुमने भली भाँति पवित्र किया। (७०) मेरे भर्ता ने यहाँ पर अनेक वार दस अश्वमेध यज्ञ किये हैं, सो आज तुम्हारे यहाँ आने से सार्थक हो गये। (७१) विष्णु की प्रिया कालिन्दी भी तुम्हारे संगम के लिये यहाँ आ गई। मैं ब्रह्मा की प्रिया हूँ, तुम तो शिवजी की प्रिया हो, (७२) तुम्हारे संगम से हम

१ क. संयुज्य। २ ग. ...ताश्च। आ० पु०—सन्धिरार्षः।

त्वत्सङ्गादावयोरत्र महत्त्वं त्रिजगत्स्वपि ।
यथा त्रिपथगा त्वं वै तथा वामपि कीर्त्तिते ॥७३॥
एवमुक्तवतीं वाणीं गङ्गा प्राह हसन्मुखी ।
युवां लोकपवित्रे च सर्वप्राण्यघनाशिके ॥७४॥
मत्सङ्गात् क्षेत्रमत्राऽभूच्चतुर्वर्गफलप्रदम् ।
वाणि ! त्वन्तु कुरुक्षेत्रे स्थिता पुण्यसरिद्वरा ॥७५॥
तत्रस्थैर्विप्रवर्य्यैस्त्वं पूजिता नितरां पुनः ।
तेषां प्रभावो विप्राणां श्रुतश्च बहुधा मया ॥७६॥
अनेकयज्ञकर्त्तारस्तपसामालया इति ।
तस्या वाक्यं च गङ्गायाः श्रुत्वा प्राह पुनश्च ताम् ॥७७॥
शृणु गङ्गे ! महाभागे ! विप्राणां महिमा परः ।
आर्य्यावर्त्तः पुण्यभूमिर्मध्यं विन्ध्यहिमालयोः ॥७८॥
तत्रापि च कुरुक्षेत्रं[1] विशेषं सर्वसिद्धिदम् ।
तत्रानेकक्रतुकृतां प्रभावं शृणु यज्विनाम् ॥७९॥

लोगों का महत्त्व तीनों लोक में हो गया। जैसे लोग तुमको त्रिपथगा कहते हैं, वैसे ही हम दोनों को भी कहेंगे। (७३) सरस्वती के ऐसा कहने पर हँसती हुई गङ्गा ने कहा—तुम दोनों लोकों को पवित्र करनेवाली हो, सब प्राणियों के पापों का नाश करनेवाली हो, (७४) मेरे सङ्ग से यह क्षेत्र चारों फलों को देनेवाला हुआ। हे सरस्वती ! हे पुण्य सरित् ! तुम तो कुरुक्षेत्र में रही, (७५) फिर वहाँ के ब्राह्मणों से तुम भलीभाँति पूजित हो, उन ब्राह्मणों का प्रभाव मैंने बहुत वार सुना है। (७६) वे अनेक यज्ञों के करनेवाले हैं और तप के तो घर ही हैं। गङ्गाजी का ऐसा वचन सुनकर सरस्वती फिर उनसे बोली—(७७) हे महाभागे ! गङ्गे ! ब्राह्मणों की महा महिमा सुनो, विन्ध्य और हिमालय के बीच में आर्य्यावर्त पुण्य भूमि है। (७८) उसमें भी कुरुक्षेत्र विशेष

१ ग. कुरुक्षेत्रे ।

कन्या कुब्जा ह्यभूद्भानोः कालिन्दी तपसा तराम् ।
विष्णोः प्रसादसिद्ध्यर्थं स्वपतित्वमभीप्सती ॥८०॥
तपसा देहशोषेण स्थिता यत्र तपोऽचरत् ।
तत्कायक्लेशजं प्राप्तं कौब्जं दृष्ट्वा तदा द्विजाः ॥८१॥
[1]आश्चर्य्यभूतास्तां कन्यां द्रष्टुं प्राप्ताश्च संघशः ।
तदा तत्तपसा तुष्टः कृष्णस्तामाह कन्यकाम् ॥८२॥
भद्रे ! तुष्टोऽस्मि तपसा भवामि च पतिस्तव ।
कमन्यं वाञ्छसे ब्रूहि दास्यामि वरमुत्तमम् ॥८३॥
पुरःस्थं माधवं दृष्ट्वा तत्स्वान्ते न ममुर्मुदः ।
आनन्दगद्गदा भूत्वा स्तुत्वाऽऽह मधुसूदनम् ॥८४॥
मत्पतित्वेन मां रक्ष मां वै[2] सरक्षकानिमान् ।
विप्रानपि दयासिन्धो ! मदर्थं संस्थितानिह ॥८५॥

करके सब सिद्धियों को देनेवाला है, वहाँ के अनेक यज्ञ करनेवालों के प्रभावों को सुनो, (७९) सूर्य्य की कन्या यमुना विष्णु को अपना पति चाहती हुई उनकी कृपा-प्राप्ति के लिये भलीभाँति तप करते-करते कुबड़ी हो गई। (८०) जहाँ तप कर रही थी, वहीं तप से शरीर के सुखाने पर शरीर के क्लेश से कुबड़ी हुई उसे देखकर ब्राह्मण लोग आश्चर्य्य में आ गये। (८१) और झुण्ड के झुण्ड उसे देखने के लिये आने लगे। तब उसके तप से तुष्ट होकर विष्णु ने उस कन्या से कहा— (८२) हे भद्रे ! मैं तुम्हारे तप से प्रसन्न हूँ, मैं तुम्हारा पति होऊँगा, और भी जो कुछ चाहती हो, वह उत्तम वर भी मैं तुमको दूँगा, तुम कहो। (८३) माधव को सामने देखकर यमुना ने आनन्दपूर्वक उनको हृदय में स्थान दिया, हर्ष से गद्‌गद होकर उनकी स्तुति की और कहा कि (८४) हे दयासिन्धो ! पति होकर मेरी रक्षा कीजिये और ये ब्राह्मण लोग, जो मेरे रक्षक हैं, मेरे लिये यहाँ ठहरे हुए हैं, इनकी भी रक्षा

१ ग. आश्चर्यभूतां । २ ग. रक्ष ।

तदाह भगवान् शौरिः शृणु भद्रेति * सादरम् ।
नदीरूपं परित्यज्य त्वया यत्र तपः कृतम् ॥८६॥
कन्या कुब्जाकृतिर्भूत्वा स देशः पावितस्त्वया ।
अतश्चोत्तरतो गङ्गा यात्यग्रे लोकपावनी ॥८७॥
[1]तव तस्याश्च मध्या भूर्भवेदन्तरवेदिका ।
सर्वयज्ञक्रतुफला[2] भवेत्तत्र निवासिनाम् ॥८८॥
अत्र तिष्ठन्तु मुनयो ह्यसंख्यातास्तपस्विनः ।
चातुर्वर्ण्याश्च चत्वारोऽप्याश्रमाचारवर्त्तिनः ॥८९॥
कन्या त्वं कौब्जमापन्ना तपसा मत्कृतेन यत् ।
तद्भवत्वत्र नगरं[3] कान्यकुब्जाभिधं[4] प्रिये ! ॥९०॥
त्वन्नाम्ना बहुविप्राणामालयः [5]सतपस्विनाम् ।
इत्युक्त्वा कन्यकां विष्णुर्विकुब्जामात्मदर्शनात् ॥९१॥

कीजिये। (८५) तब श्रीकृष्ण ने आदर के साथ कहा--हे भद्रे! सुनो, नदी-रूप छोड़कर जहाँ तुमने तप किया है (८६) और कुब्जा होकर उसे पावन किया है, इसके उत्तर से लोक-पावनी गङ्गा आगे जाकर बहेंगी। (८७) तुम्हारे और गङ्गा के बीच की भूमि अन्तर्वेदिका हो, वहाँ के रहनेवालों को सब यज्ञों और ऋतुओं का फल प्राप्त हो। (८८) इसमें अगणित मुनि और तपस्वी रहें, चारों वर्ण और चारों आश्रमवाले निवास करें। (८९) हे देवि! यहाँ पर तुम मेरे लिये तप करते २ कन्या होती हुई भी कुब्जता को प्राप्त हो गई। अतः हे प्रिये! यहाँ पर कान्यकुब्ज नाम का नगर बसे (९०) और तुम्हारे नाम से बहुत से तपस्वी ब्राह्मणों के घर हों। ऐसा कहकर विष्णु ने अपने दर्शन के प्रभाव से कुब्जा कन्या को अकुब्जा करके (९१) उससे ब्याह कर लिया अनेकों ऋतु तक उसके साथ विहार किया। तब भगवान् ने भूतल में

१ ग. भव। २ ग. ...फलं। ३ ख. नगरीं। ४ ख. कान्यकुब्जाभिधां। ५ ग. श्च तपस्विनाम्।

परिणीय च [1]तस्यां वै विजहार बहूनृतून् ।
तदा तामाह भगवान् भूतले तव चागमम् ॥९२॥
[2]त्वया सङ्गम्य मुदिता गच्छेति सरितां पतिम् ।
तदद्य लब्धश्चानन्दस्तस्या मम च जाह्नवि ! ॥९३॥
त्वत्सङ्गमाद् महादेवि ! आवां लब्धे कृतार्थताम् ।
शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि कान्यकुब्जे स्थिता द्विजाः ॥९४॥
कालेन देशदेशेषु गतास्तत्रैव संस्थिताः ।
[3]त्वदागमात् पूर्वमेव [4]जातमाश्चर्यकं शृणु ॥९५॥
मत्तीरमागताः केचित् तद्देशात् पश्चिमे द्विजाः ।
कुरुक्षेत्रस्य परितस्तीरमाश्रित्य मे स्थिताः ॥९६॥
सद्यःफलप्रदा स्वर्गदायिका भूरियं त्विति ।
प्रारब्धयज्ञविविधा हविषा देवतृप्तये ॥९७॥
मत्तीरस्यं प्रभावेण महिम्ना च कुरुक्षितेः ।
[5]वरप्रसादेन मह्यं शिवदत्तेन मत्तटे ॥९८॥

तुम्हारे आने का हाल बतलाया (९२) और तुमसे मिलकर प्रसन्नतापूर्वक समुद्र में जाने को कहा। हे जाह्नवी ! वह आनन्द उन्हें और मुझे आज मिला। (९३) हे महादेवि ! तुम्हारे संगम से हम दोनों कृतार्थ हुई। हे देवि ! मैं कहती हूँ, सुनो, कान्यकुब्ज में रहनेवाले ब्राह्मण (९४) काल पाकर देश देश को गये और वहीं रह गये। तुम्हारे आने से पहिले ही एक आश्चर्य्य हुआ, वह यह कि (९५) कुछ ब्राह्मण उस देश से पश्चिम मेरे तीर पर आये, और कुरुक्षेत्र के चारों ओर मेरे किनारे पर बसे (९६) यह जानकर कि यह भूमि सद्यः फल देनेवाली और स्वर्ग देनेवाली है। ब्राह्मणों ने हविद्वारा देवताओं को तृप्त करने के लिये अनेक प्रकार के यज्ञ प्रारम्भ किये। (९७) मेरे तीर के

१ ग. तस्या। २ ग. तया। ३ ग. वेदागमात्। ४ ग. ज्ञात०। ५ ग. वरप्रदानेन।

हविर्ग्रहणमात्रेण देवाः सद्यः फलं ददुः ।
सद्यः फलं परित्यज्य भावि वा केन चेष्यते ॥९९॥

ब्राह्मणा ऊचुः—

देहोऽयं पार्थिवो निन्द्यः पूयशोणितपूरितः ।
जरामृत्युपरिग्रस्तः सर्वदुःखालयः सदा ॥१००॥
तादृशेनापि देहेन वाचा वा मनसापि वा ।
कृतं पुण्यञ्च पापञ्च[1] स्वल्पमप्यतिभोगदम् ॥१०१॥
पुण्यमेव सदा कुर्म इति वा नियमः कुतः ।
स्वल्पं पापं पुण्यसङ्घं नाश्यापि[2] नरकं दिशेत् ॥१०२॥
मनःप्रवृत्तिः पुण्ये वै स्वल्पैवास्ते नृणां भुवि ।
मनःप्रवृत्तिः पापे तु बहुला नाऽत्र संशयः ॥१०३॥
तथापि भूमौ जीवानां मानुषं त्वतिदुर्लभम् ।
लब्धमप्यत्र [3]सुकृतं बलेन क्षणभङ्गुरम् ॥१०४॥

प्रभाव, कुरुक्षेत्र की महिमा और शङ्करजी के दिये हुए वर के प्रसाद से मेरे तट पर (९८) हविग्रहण करते ही देवता लोग सद्यः फल दे देते थे। सद्यः फल को छोड़कर भावी की आशा में कौन रहना चाहता है? (९९) यह देह मिट्टी की है, निन्दा के योग्य है, दुर्गन्ध और रक्त से भरी हुई है, मृत्यु से ग्रस्त है और सदा सब दुःखों की खानि है। (१००) ऐसे देह से, मन या वाणी द्वारा जो कुछ थोड़ा-सा पुण्य पाप होता है, वह भोग देनेवाला है। (१०१) सदा पुण्य ही करता रहूँगा यह नियम भी तो नहीं है, छोटा सा पाप पुण्य-समूह को नष्ट करके नरक देता है (१०२) पृथ्वी पर मन की प्रवृत्ति पुण्य की ओर ऐसें ही किसी की जाती है, मन की प्रवृत्ति पाप की ओर बहुत जाती है इसमें सन्देह नहीं है। (१०३) तिस पर भी पृथ्वी में मनुष्य-योनि

१ ग. पुस्तकीयोऽयं पाठः, आ० पु०—एतत् नास्ति। २ ग. विनाश्य।
३ ग. सुकृतबलेन।

तस्मादेतादृशे देहे का शक्तिः कुत्सिते जडे ।
सरस्वतीतटे पुण्ये विपणिर्दिव्यदेहदा ॥१०५॥
तस्यां विनिमयं कृत्वा कुत्सितां पार्थिवीं तनुम् ।
[1]गृह्णीम दिव्यदेहं वै तत्र गत्वोत्तरक्षणे ॥१०६॥
सत्कर्म्मणा केनचित्तु संप्रसाद्य दिवौकसः ।
वेदशास्त्रोक्तविधिना सत्कर्म्मकरणेन च ॥१०७॥
प्राप्स्यामः सद्यो देवत्वं क्षणाद् ब्रह्मवधूतटे ।
वरप्रदानं शम्भोश्च तत्तटेऽस्ति[2] तथा पुरा ॥१०८॥
इति निश्चित्य विप्रेन्द्रा मद्रहस्यप्रवेदिनः ।
समागत्य च मत्तीरं नानायागान् समाचरन् ॥१०९॥
प्रसन्नास्तत्क्षणं देवास्तान् लोकाननयन् स्वकान् ।
प्रथितो मत्प्रभावश्च तत्क्षणेष्टफलप्रदः ॥११०॥

अतिदुर्लभ है, और यदि सुकृत के बल से मिल भी जाय तो भी क्षण-भंगुर है, दुर्लभ है, (१०४) उस कुत्सित जड़ देह में ऐसी क्या शक्ति है कि सरस्वती के पुण्य तट में दिव्य देह से बदला न कर लिया जाय। (१०५) वहाँ पर इस कुत्सित मिट्टी की देह को बदलकर तत्पश्चात् तुरन्त ही दिव्य देह को ग्रहण करेंगे। (१०६) किसी सत्कर्म से देवताओं को प्रसन्न करके वेदशास्त्र की विधि से सत्कर्माचरण करने से (१०७) हमलोग सरस्वती के तट पर एकक्षण में देवत्व ले लेंगे, शम्भु का भी ऐसा ही वरदान उनके तट के लिये पहिले से हो चुका है। (१०८) ऐसा निश्चय करके मेरे रहस्य को जाननेवाले ब्राह्मण लोग मेरे तीर पर आकर नाना प्रकार के यज्ञ करने लगे। (१०९) तुरन्त देवता प्रसन्न होकर उनको अपने लोक में ले जाते थे, मेरा प्रभाव उसी क्षण अभीष्ट का देनेवाला है, यह तो सभी जानने लगे। (११०) सब लोगों ने मेरे सन्निकट सद्यः फल को प्राप्त किया। यह सब लोगों के पापों का विध्वंस

१ ग. गृह्णीमो। २ क. स्थामहे।

सर्वे जनाः फलं प्रापुः फलं सद्यो मदन्तिके ।
इति सकलजनाघध्वंसिनीं सच्चरित्रां
सुरसरितमवादीत्[1] स्वप्रभावञ्च वाणी ।
दिनपतितनुजायाश्चापि सर्वं यथोक्तं
द्विजवरतिलकानां सङ्गमप्यात्मतीरे ॥१११॥
जगदुपकृतिसारं सच्चरित्रं रहस्यं
सनकमुनिमुखाब्जान्निर्गतं[2] पुण्यसारम् ।
सकृदपि मनुजो योवामदेवेन पीतं[3]
श्रवणरसनयाऽऽस्वाद्यापि यातीशधाम ॥११२॥

इति श्रीकाशीमूलरहस्ये ब्रह्मवैवर्त्ते खिले काशी-
केदारमाहात्म्ये द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥



करनेवाली अपनी अच्छी करणी और प्रभाव, जिसका वाणी ने स्वयं गङ्गाजी से वर्णन किया, और सूर्य्य की पुत्री यमुना का चरित्र तथा अपने तीर बसनेवाले ब्राह्मणों का चरित्र (१११) जगत् के उपकार का सार है। यह सत् चरित्र-रहस्य, सनत्कुमार मुनि के मुख से निकला हुआ पुण्य का सार है, इसका वामदेवजी ने पान किया था। एक वार भी जो मनुष्य इसका श्रवण रूपी रसना से आस्वादन करेगा, वह ईश के धाम को प्राप्त होगा। (११२)

यह ब्रह्मवैवर्त के खिलग्रन्थ काशीमूलरहस्यान्तर्गत काशी-केदार
महात्म्य का बारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

---

१ ग. मथाह। २ क. ग. निर्गलत्०। ३ ग, पीतः।

अथ त्रयोदशोऽध्यायः ।

ऋषय ऊचुः—

सूत ! सर्वरहस्यज्ञ ! शिवस्य परमात्मनः ।
वाणीतटे कथं विप्राः स्वेच्छया स्वर्गमापिरे ॥ १ ॥
वरप्रदानं कीदृक् तत् स्मृतमात्रेण स्वर्गदम् ।
निर्णीतमायुषोऽन्ते वै धात्रा लोकान्तरं पुरा ॥ २ ॥
तन्निर्णयं परित्यज्य कथं मध्ये स्वयेच्छया ।
स्वर्गं प्राप्ता जनाश्चित्रमाज्ञामुल्लङ्घ्य वेधसः ॥ ३ ॥
सरस्वत्याः प्रभावो वा कीदृशः [1]सर्वतोषकृत् ।
ततो सरस्वती गङ्गां किमाह स्वात्मवैभवम् ॥ ४ ॥

दो०—भोग रहित है अपसरन्हि, विधि तें कियो पुकार ।
भा सरसइ तट तेहि कृपा, सद्यः फल दातार ॥
सो०—नारद कीन्ह प्रचार, देश देश के विप्र तव ।
आइ यज्ञ विस्तार, . करहिं वसुरथिर एक छन ॥
दो०—विरह विथा देविन्ह कहेउ, ब्रह्म देव तें जाइ ।
वाणी देवन्ह को तुरत, दीन्हें भवन पठाइ ॥
सो०—भे सुर अन्तर्धान, सद्यःफल महिमा गई ।
विप्र त्यागि सोइ थान, देश विदेशन में बसे ॥

ऋषिगण बोले—हे सूत ! आप परमात्मा शिव के सब रहस्यों को जाननेवाले हैं । सरस्वती के किनारे ब्राह्मणों ने अपनी इच्छा से कैसे स्वर्ग प्राप्त किया ? (१) वह वर-प्रदान कैसा था; जो कि स्मरण-मात्र करने से स्वर्ग दे देता था, ब्रह्माजी ने तो मरने के बाद परलोक में जाकर स्वर्ग की प्राप्ति का निर्णय किया था । (२) बड़े आश्चर्य्य की बात है कि लोग उस निर्णय को छोड़कर, ब्रह्मदेव की आज्ञा का उल्लंघन करके अपनी इच्छा से बीच में ही कैसे स्वर्ग प्राप्त कर लेते थे ? (३) सब को

१ ख. सर्वदोषहृत् ।

तत्सर्वं विस्तरेणाद्य वद ज्ञानविदां वर ! ।
इति पृष्टस्तदा सूतः प्राह तान् मुनिपुङ्गवान् ॥ ५ ॥

सूत उवाच—

शृणुध्वमृषयः सर्वे गङ्गां वाणी ततोऽवदत् ।
गङ्गे ! शृणु जगद्वन्द्ये ! पूर्वं मामाह शङ्करः ॥ ६ ॥
पराशक्त्या सह तदा दास्यामीति वरं ददौ ।
त्वं नदीरूपिणी भूमौ वह भर्तृहितार्थिनी ॥ ७ ॥
त्वत्तीरे यत्फलं प्राप्यं जना देवान् यजन्ति हि ।
तेषां सद्यः फलप्राप्तिर्भवत्वद्धा मदाज्ञया ॥ ८ ॥
इति लब्धवराऽहं तदाज्ञया चात्मभूरपि ।
तथैवं मां वरं दत्वा भवदागमनावधि ॥ ९ ॥
तदाहश्च कुरुक्षेत्रं [1]पुण्यमाप्याभवं नदी ।
एकांशेन ततः सर्वभागेनासं विधेर्मुखे ॥१०॥

तुष्ट करनेवाला सरस्वती का प्रभाव कैसा था ? तत्पश्चात् सरस्वती ने गङ्गाजी से अपना क्या माहात्म्य कहा ? (४) हे ज्ञानियों में श्रेष्ठ ! वह सब आप विस्तार पूर्वक हम लोगों से कहिये। ऐसा पूछने पर सूतजी उन श्रेष्ठ मुनियों से बोले—(५) हे ऋषिवृन्द ! सुनिये। वाणी ने गङ्गा से कहा—हे जगद्वन्द्ये गङ्गे ! सुनो, पहिले ही शङ्करजी ने (६) पराशक्ति के साथ मुझे वर देने के लिए कहा था, सो दिया कि तुम भर्ता के कल्याण के लिये भूमि पर बहो। (७) तुम्हारे तीर में जिस फल की प्रार्थना करके लोग देवताओं का आराधन करें, उनको मेरी आज्ञा से तुरन्त फल की प्राप्ति हो। (८) शिवजी ने मुझे ऐसा वर दिया, और उनकी आज्ञा से ब्रह्मदेव ने भी आपके आने तक के लिये ऐसा ही वर दिया। (९) तब मैं पुण्य-क्षेत्र कुरु-क्षेत्र को पाकर एक अंश से नदी हो गई, और सम्पूर्ण अंश से ब्रह्माजी के मुख

१ पुण्यं प्राप्या० ।

मत्तीरसद्यःफलदवृत्तान्तं नारदो मुनिः ।
लोके प्रचारयामास ततो लोकास्तथाऽऽचरन् ॥११॥
देवलोकेऽप्यप्सरसो ब्रह्माणं प्रार्थयंस्तदा ।
वियुक्तभोगाः पुंभिस्ता धात्रा लब्धवरा भवन्[१] ॥१२॥
सरस्वतीप्रसादेन युष्माकं भोगविस्तरः ।
भवत्वग्रे स्वर्गवासो लोकैरिति वरं ददौ ॥१३॥
कतिचित्कालपर्य्यन्तं पुंभिः प्राप्स्यथ वै सुखम् ।
इति देववरं ज्ञात्वा विप्रा मत्तीरमापिरे ॥१४॥
यद्‌ यदिच्छन्ति विप्रेन्द्रास्तत्तत्त्वर्णं[२] प्रापिरे फलम् ।
मत्तीरवैभवं श्रुत्वा विप्राः सद्यःफलप्रदम् ॥१५॥
कालान्तरे क्रतुफलं देहान्तर इति श्रुतम् ।
तदत्र सद्यः फलते यस्य यस्य यदिच्छितम् ॥१६॥

में रही । (१०) मेरा तीर सद्यः फल देनेवाला है इस वृत्तान्त को नारद मुनि ने संसार में फैला दिया । तब सब लोग वैसा ही करने लगे । (११) देवलोक में अप्सराओं को भी पुरुषों का भोग दुर्लभ हो रहा था, उन लोगों ने ब्रह्माजी से प्रार्थना की, वर मिला कि (१२) सरस्वती की कृपा से तुम लोगों का भोग वृद्धि को प्राप्त होगा । आगे चलकर बहुत लोगों का वास स्वर्ग में होगा । (१३) कुछ दिनों तक तुम लोग पुरुषों से सुख पाओगी । देव के इस प्रकार के वर को जानकर ब्राह्मण लोग मेरे तीर में पहुँच गये । (१४) जो जो फल ब्राह्मणों ने चाहे, वे सब फल तत्काल उन्हें मिले । मेरे तीर का तत्काल फल देनेवाला माहात्म्य सुनकर (१५) ब्राह्मण लोगों ने विचार किया कि वेद ने कहा है कि यज्ञ का फल मरने के बाद कालान्तर में होता है, और यहाँ जिसे जिसकी इच्छा होती है, वह सद्यःफलीभूत हो रही है। (१६) सो तुरन्त फल पाने के लिये वहीं चलना चाहिये । ऐसी राय पक्की

१ ग. किल । २ ग. प्रतिपेदिरे ।

तस्मात्तत्रैव यास्यामः सद्यः फलचिकीर्षया ।
इति कृत्वा मतिं विप्राः क्षत्रविट्शूद्रसंयुताः ॥१७॥
अनुलोमविलोमाश्च म्लेच्छचाण्डालकादयः ।
मत्तीरं परितः प्राप्ता आपूर्वात् पश्चिमोदधेः ॥१८॥
विप्रान् स्वतन्त्रान् क्रतुषु तानन्येऽपि समाश्रयन् ।
क्रतुयोग्याः क्रतून् कुर्य्युरितरेऽपि स्वयोग्यतः ॥१९॥
कर्म्माणि देवानुद्दिश्य कृत्वा सद्यः फलं ययुः ।
मयि स्नानाच्च दानाच्च क्रतुभिर्विप्रपूजया ॥२०॥
यस्य यस्य यथायोग्यकर्म्मणा देवतामुदे ।
समाचरन् फलं प्रापुः सद्यो यत् पारलौकिकम् ॥२१॥
ऐहिकं दुःखदं जन्म त्यक्त्वाद्यैव व्रजामहे ।
शाश्वतं सर्वभोगाढ्यं निर्दुःखं सुखदं त्विति ॥२२॥
शिष्टायुषोऽपि भूलोके देहं तृणमिवात्यजन् ।
सद्यःफलप्रदबलाद् बालवृद्धयुवादयः ॥२३॥

करके ब्राह्मण लोग, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र (१७) * अनुलोम, विलोम, म्लेच्छ, चाण्डालादिकों के साथ मेरे तीर के चारों ओर पूर्वीय समुद्र से लेकर पश्चिमीय समुद्र तक आने लगे। (१८) यज्ञों में ब्राह्मण लोग ही स्वतन्त्र हैं और लोगों ने उन्हीं का समाश्रय किया। जो यज्ञ के योग्य थे, उन्होंने यज्ञारम्भ किया, दूसरे लोगों ने भी देवों के उद्देश्य से (१९) कर्म किया और सद्यः फल को प्राप्त हुए। मुझमें स्नान, दान और यज्ञ करने एवं ब्राह्मणों का पूजन करने से (२०) जिसकी जैसी योग्यता जिस कर्म में थी, उसने वैसे कर्म द्वारा, देवताओं को प्रसन्न करके तुरन्त पारलौकिक फल पाया। (२१) सांसारिक जन्म दुःखद है, इसे छोड़कर दुःख-रहित, नित्य, सब भोगों से युक्त एवं सुख देनेवाले लोकों में आज ही हम लोग जावेंगे, ऐसा उन्होंने निश्चय किया। (२२) जिनकी

* सङ्करजाति ।

सर्वे स्वर्गं ययुर्भोगं वाञ्छया प्राणिनोऽमिताः ।
तदा देवस्त्रियो देवैर्वियुक्ताश्चिरकालतः ॥२४॥
मत्तीरविप्रयज्ञेषु भागाहूतैर्निरन्तरम् ।
म्लानशुष्कसुगन्धश्रीधम्मिल्लकुसुमाश्चिरात् ॥२५॥
म्लानवस्त्रसुभूषास्रग्गन्धकस्तूरिकुङ्कुमाः ।
कामाग्न्यसहविच्छायपाण्डुनेत्रकपोलकाः ॥२६॥
मार्गप्रतीक्षा भर्तॄणां तैः सङ्गो नः कदा भवेत् ।
केयं सरस्वती भूमौ [1]नः शत्रुः सरिदाययौ ॥२७॥
यन्महिम्नाऽत्र भर्तॄणां विरामो न क्षणं त्वहो ।
सद्यःफलप्राप्तिलोभाद्द यज्ञे न विरमो नृभिः[2] ॥२८॥
पिशाचभूतगन्धर्वस्वर्गाष्टाशेषभूस्थलम् ।
महर्जनस्तपोलोकमपि मध्यान्तरालकम् ॥२९॥

आयु शेष रही, वे भी पृथ्वी पर तृण की भाँति देह छोड़ते थे । बाल, वृद्ध, युवा आदि अगणित सभी प्राणी तुरन्त फल मिलने के बल पर (२३) भोग की वाञ्छा से स्वर्ग गये । तब तो मेरे तीर में जो यज्ञ हो रहे थे, उनमें निरन्तर देवताओं का आवाहन होने लगा, और देवताओं का देवियों से बहुत दिनों तक बराबर वियोग ही रहा । (२४) देवियों के धम्मिल्लों में फूल के गहनों की शोभा जाती रही, फूल मुरझा गये, सुगन्ध भी म्लान हो गई । (२५) असह्यकामाग्नि से उनकी कान्ति फीकी पड़ गई । नेत्र और कपोल पीले हो गये । (२६) वे दिन रात भर्ताओं का रास्ता देखती रहीं कि कब वे आवें और उनसे भेंट हो । आपस में कहने लगीं कि यह सरस्वती नामवाली नदी कौन है ? जो हम लोगों की शत्रु होकर भूमि में आई है, (२७) जिसकी महिमा से हम लोगों के भर्ताओं को एक क्षण का भी अवकाश नहीं मिलता, सद्यःफल-प्राप्ति के लोभ से मनुष्य लोगों का यज्ञ रुकता ही नहीं । (२८) पिशाच,

१ ख. मच्छत्रुः । २ ग. नृणाम् ।

भूमौ सारस्वते क्षेत्रे कृतपुण्यैः सुपूरितम् ।
भुज्यन्ते चाप्सरास्तैस्तैः स्वस्वभाग्यानुसारतः ॥३०॥
पुरा चाप्सरसः सर्वाश्चास्मान् भर्त्तृन् ययाचिरे ।
एकरात्रायापि देहि भर्त्तारं तेति ❀ नित्यशः ॥३१॥
तदा कदापि भर्त्तारमाज्ञां दास्याम[1] वा न[2] वा ।
तदाप्सरसस्तु गच्छन्ति कृताज्ञाश्चैकरात्रकम् ॥३२॥
एवमप्यत्र रम्भादिमुख्यानामेव वै रतिः ।
इतरा नैव जानन्ति रतिसौख्यं नृदुर्लभात् ॥३३॥
पुण्याद् भूमेरागताश्चेद् मुख्यानामेव ते धवाः ।
रतिभोगविहीनानां प्राकृताप्सरसामपि ॥३४॥
एकस्याः पञ्चपतयस्तृप्तिं कुर्वन्ति भोगतः ।
अस्माकं दुर्दशा चैवमागता रत्यभावतः ॥३५॥

भूत, गन्धर्व और आठों स्वर्ग की भूमि तथा महलोक, जनलोक और उनके बीच के स्थान (२९) मर्त्यलोक के सारस्वत क्षेत्र के सुकृतियों से भर उठे। वे लोग अपने-अपने पुण्यानुसार अप्सराओं को भोगते हैं। (३०) पहले ये सब अप्सराएँ हमी लोगों से हम लोगों के भर्ताओं के लिये नित्य गिड़गिड़ाती थीं कि एक रात के लिये अपने पति को हमें दे दो। (३१) तब कभी हम लोग अपने भर्ताओं को आज्ञा दे देती थीं, अथवा नहीं भी देती थीं। वे लोग आज्ञा पाकर एक रात्रि के लिये अप्सराओं के पास जाते थे। (३२) इस प्रकार से अप्सराओं में मुख्य रम्भादिकों को रति की प्राप्ति हो जाती थी, और शेष अप्सराएँ तो रति-सुख ही नहीं जानतीं थीं। (३३) मनुष्य दुर्लभ पुण्य करके जो पृथ्वी से आते थे, वे मुख्य अप्सराओं के स्वामी हो जाते थे। अब तो रति-सुख-विहीन साधारण २ अप्सराओं में से (३४) एक-एक को पाँच-पाँच पति भोगों से तृप्त कर रहे हैं,

❀ सन्धिरार्षः १ ग. दास्यामि । २ ख. सदा ।

पश्यत प्राकृताप्यस्मान् हसन्ति स्वमुदा स्त्रियः ।
सर्वञ्च सहितुं योग्यं स्त्रिया दुःखं निरन्तरम् ॥३६॥
अन्यस्त्रिया सुखितया[1] हेलनं मरणाधिकम् ।
न यान्त्यस्मन्नायकात्र[2] यावद्वाणी नदी भुवि ॥३७॥
सद्यःफलप्रदाद् विप्रा विरमन्ति न वै क्रतोः ।
तस्मादनाथाः किन्त्वत्र वसामो व्यर्थचिन्तया ॥३८॥
व्यर्थवस्त्रविभूषास्रग्गन्धकस्तूरिकुङ्कुमाः ।
गच्छाम ब्रह्मसदनमस्मद्दुःखं निवेदितुम् ॥३९॥
इति कृत्वा मतिं देवस्त्रियो याताश्चतुर्मुखम् ।
शचीमुख्याष्टदिक्पालपत्न्यो गन्धर्वयोषितः ॥४०॥
वसुरुद्रमरुत्पत्न्यो या हविर्भोगियोषितः ।
ब्रह्माणमूचुः [3]स्वदुःखं पतिविश्लेषकारणम् ॥४१॥

और रति के अभाव से हम लोगों की तो दुर्दशा हो गई है। (३५) देखो, साधारण अप्सराएँ भी अपने आनन्द के कारण हम लोगों को हँस रही हैं। स्त्रियाँ सब प्रकार का दुख निरन्तर सह सकती हैं, (३६) परन्तु उनके लिये अन्य सुखी स्त्री द्वारा हुई अवहेलना मरने से बढ़कर है। जब तक यह सरस्वती नदी पृथ्वी पर है, तब तक हम लोगों के स्वामी नहीं आवेंगे। (३७) और न सरस्वती के सद्यःफलप्रद होने के कारण ब्राह्मण यज्ञ करना बन्द करेंगे। इसलिये अनाथ होकर व्यर्थ चिन्ता करते हुए यहाँ बसने से क्या प्रयोजन? (३८) हम लोगों का गहना, कपड़ा, माला, गन्ध, कस्तूरी और केसर आदि सब व्यर्थ है। चलो, हम लोग अपना २ दुःख निवेदन करने के लिये ब्रह्मलोक चलें। (३९) ऐसी सलाह करके देवताओं की स्त्रियाँ ब्रह्माजी के पास गईं। इन्द्रादिक मुख्य आठ दिक्पालों की स्त्रियाँ, गन्धर्वों की स्त्रियाँ, (४०) वसु, रुद्र और मरुत् की पत्नियाँ तथा यज्ञ में भाग पानेवाले सब देवताओं की स्त्रियाँ

१ ख. सुखतया। २ ग. ०नायकाश्च, आ० पु०-सन्धिरार्षः। ३ ग. स्वं दुखं।

तास्तदा मत्पतिः प्राह समाधाय हसन् वचः ।
देवस्त्रियः ! शृणुत भोः स्वर्गङ्गायाश्च[1] भूतले[2] ॥४२॥
अवतारोऽचिराद्भूयाद्[3] वाण्याः सङ्गो भवेत्तया ।
सद्यःफलप्रदा शक्तिस्तया गच्छति तद्भुवः ॥४३॥
ततो विप्रास्तन्निराशा देशान् यान्ति यथायथम् ।
हविर्भक्षणतस्तृप्ता मत्ता यान्त्यन्तिकं हि वः[3] ॥४४॥
युष्मन्नाथास्तदा यूयं पातिव्रत्येन मोदत ।
पतिव्रतानामन्यस्त्रीभोगेर्ष्या नैव जायते[4] ॥४५॥
क्षणभोगाश्च ता दास्यो युष्माकं तासु किं क्रुधा[5] ।
कदाचित् पुण्ययोगेन यावदप्सरसां रतिः ॥४६॥

ब्रह्मदेव के पास गईं, ब्रह्माजी से अपना दुख कहा और उसका कारण पति-वियोग बतलाया। (४१) तब उन लोगों से मेरे पति ब्रह्माजी ने उनका समाधान करके हंसते हुए कहा कि हे देवियो ! सुनो, स्वर्गङ्गा का अवतार पृथ्वीतल में। (४२) शीघ्रही होने वाला है, तब उस भूमिकी सद्यः फल देनेवाली शक्ति जाती रहेगी। (४३) ब्राह्मण लोग भी निराश होकर जहाँ से आये हैं, वहाँ चले जावेंगे। और तुम लोगों के स्वामी भी हविर्भक्षण से तृप्त और मत्त होकर तुम लोगों के पास आवेंगे। (४४) तब तुम लोग पातिव्रत्यधर्म-पूर्वक आनन्द करना। पतिव्रताओं को अन्य स्त्री-संभोग से ईर्ष्या न करनी चाहिये। (४५) वे दासियां क्षण भर के भोग के लिये हैं, तुम लोगोंको उनपर क्रोध न करना चाहिये। कदाचित् पुण्य योग से उतने काल के लिये ही अप्सराओं को रति प्राप्ति होती है। (४६) नहीं तो उन्हें सदा ही पुरुष दुर्लभ रहते हैं, तुम लोगों का पुण्य बहुत है। तुम लोग देवताओं की पट्टरानियाँ हो, (४७) तिस पर पतिव्रता हो,

१ ग. स्वर्गङ्गीयाश्च। २ ख. ...भूमौ। ३ ग. आगच्छन्त्यन्तिकमितः। ४ ग. पुस्तकीयोऽयं पाठः आ० पु०—भोगेर्ष्या नैव कारयेत्। ५ ख. न क्वचित्।

नो चेत् पुरुषदौर्भाग्यं तासामस्त्येव सर्वदा ।
यूयन्तु पुण्यबहुला महिष्यस्त्रिदिवौकसाम् ॥४७॥
पुनः पतिव्रताश्चैव यावत्कल्पसुखालयाः ।
तस्मात् सुखेन गच्छध्वं मोदत स्वस्वभर्तृभिः ॥४८॥
अनेककोट्यप्सरसो दिव्याः सपरिचारिकाः ।
त्रिंशत्त्रिकोट्यो हि देवास्तेऽपि पत्नीयुताः पृथक् ॥४९॥
गीतवादित्रनृत्यर्थं कृता देवमुदे मया ।
वेश्या एव च देवानां रतिशुल्काश्च ताः स्त्रियः ॥५०॥
बहुपुण्यकृतो भूमेरागमिष्यन्ति चेद् यदि ।
सत्कर्म्मणा प्राप्तदेवभावानां भोगदाश्च ताः ॥५१॥
भूमिर्विस्तारतः क्लृप्ता पञ्चाशत्कोटियोजना ।
द्वीपखण्डविभागेन भेदिता भोगभूमिका ॥५२॥
तस्यां वै कर्म्मभूः क्लृप्ता नवसाहस्रयोजना ।
भारतं वर्षमिति या स्वल्पा कर्म्मफलप्रदा ॥५३॥

कल्पान्त तक तुम्हारा सुख स्थायी है । इसलिये तुम लोग सुख से जाओ और अपने अपने भर्ताओं के साथ आनन्द करो । (४८) अप्सराएं अनेक करोड़ हैं और ये अपने परिचारिकाओं के सहित दिव्य हैं, और तैंतीस कोटि देव हैं, सो सब के सब सपत्नीक हैं । (४९) गाने, बजाने, नाचने और देवों के आनन्द के लिये मैंने इन्हें बनाया है, ये देवताओंकी वेश्याएँ हैं, और इनका शुल्क (फीस) रति ही है । (५०) पृथ्वी पर बहुत पुण्य करने से यदि लोग यहाँ आवें, तो वे भी अपने सत्कर्म से देव-भाव को प्राप्त होते हैं । उनको भी ये भोग प्रदान करती हैं । (५१) पृथ्वी का विस्तार पचास करोड़ योजन बनाया गया है, द्वीप और खण्ड के विभाग से भोग-भूमि का भेद किया गया है । (५२) उसमें भी कर्म-भूमि नौ हजार योजन बनी हुई है । वही छोटी-सी भूमि कर्म-फल को देनेवाली 'भारतवर्ष' कहलाती है । (५३) उसमें

तस्यामपि वरा पुण्यफलदात्री क्वचिच्च भूः ॥
आर्य्यावर्त्तेति नो तादृक् फलदा शेषभूमिका ॥५४॥
कर्म्मभूमौ पुण्यकृतां भोगाय सकलं जगत् ।
काम्यपुण्यकृतां भोगभूमयस्तारतम्यतः ॥५५॥
भूस्वर्गा बहवः सन्ति तथा पातालभूमयः ।
इलावृत्तादिखण्डाश्च जम्बूद्वीपगताः पराः ॥५६॥
प्लक्षादिद्वीपमध्यस्था वङ्गमेरुमुखाद्रयः[1] ।
लोकालोकाचलभुवः सप्तपातालभूमयः ॥५७॥
एतेषु [2]स्थानमुख्येषु स्वेष्टभोगसमृद्धिषु ।
स्त्रियोऽप्यसंख्या भोगिन्यः सन्ति सौन्दर्य्ययौवनाः॥५८॥
पातालेष्वपि पौंश्चल्यः स्वैरिण्यः कामिनीमुखाः ।
बह्व्यः सन्ति तथा स्वर्गेऽप्यप्सरःप्रमुखा वराः ॥५९॥
एतेषु भोगस्थानेषु कर्म्मभूमिगता जनाः ।
पुण्यस्य तारतम्येन भोक्ष्यन्ति सुखमुत्तमम् ॥६०॥

भी श्रेष्ठ पुण्य का फल देनेवाली भूमि और छोटी है, उसे आर्य्यावर्त कहते हैं। उसके समान फल देनेवाली और भूमि नहीं है। (५४) कर्म-भूमि में पुण्य करनेवालों के भोग के लिये सम्पूर्ण जगत् है। सकाम पुण्य करनेवालों के तारतम्यानुसार भोगभूमियों का भी तारतम्य है। (५५) भूमि अनेक हैं, स्वर्ग भी बहुत हैं, उसी भाँति पाताल भी अनेक हैं। जम्बू-द्वीप में इलावृत्तादि खण्ड हैं। (५८) प्लक्षादिद्वीप के मध्य में वंग, मेरु आदि पर्वत हैं। लोकालोक पर्वतों की भूमियाँ एवं सात पातालों की भूमियाँ हैं। (५७) अपने इष्ट भोग की समृद्धिवाले इन मुख्य स्थानों में अगणित भोगवती सुन्दरी युवती स्त्रियाँ हैं। (५८) पाताल में भी पुंश्चली, स्वैरिणी, कामिनी आदि बहुत-सी स्त्रियां हैं और स्वर्ग में अप्सरा आदि हैं। (५९) इन

१ ग. ...दयः। २ ग. पुण्यस्थानेषु।

पुण्यक्षयात् कर्म्मभूमौ जनिष्यन्ति पुनः पुनः ।
भोगमात्रं भोगभूमौ न फलं तत्र कर्मणाम् ॥६१॥
कर्म्मभूमौ पुण्यकृतः स्वल्पा एव भवन्ति हि ।
पापिनो बहवः सन्ति भास्करेर्लोकगामिनः ॥६२॥
काम्यपुण्यकृतो यान्ति स्थानेष्वेतेषु वै जनाः ।
निष्कामपुण्या मे लोकं विष्णोर्वा शूलिनोऽपि वा ॥६३॥
एतेषु पुण्यस्थानेषु बह्व्यः सन्त्येव योषितः ।
तासां पुण्यकृतः कुत्र लभन्ते पश्यताऽधुना ॥६४॥
एतासु भोगनारीषु कस्याः कस्याश्च पुण्यतः ।
एकैको लभ्यते शिष्टास्त्वभुक्ता एव पूरुषैः ॥६५॥
आर्य्यावर्त्तः कर्म्मभूमौ[1] केवलं स्वर्गदायकः ।
तत्रापि च कुरुक्षेत्रं पुण्यक्षेत्रं नृणां दिवे[2] ॥६६॥

स्थानों में कर्म-भूमि के लोग ही पुण्य के तारतम्य से उत्तम सुख भोगते हैं। (६०) पुण्य के क्षय होने पर कर्म-भूमि में बार-बार उत्पन्न होते हैं। भोग-भूमि में भोग-मात्र होता है, वहाँ कर्म का फल नहीं मिलता। (६१) कर्म-भूमि में पुण्यात्मा थोड़े ही होते हैं और यमलोक में जाने-वाले पापी बहुत होते हैं। (६२) सकाम पुण्य करनेवाले इन स्थानों को प्राप्त होते हैं और निष्काम पुण्य करनेवाले मेरे या विष्णु के या शिवजी के लोक को प्राप्त होते हैं। (६३) इन पुण्य स्थानों में भी बहुत-सी स्त्रियाँ हैं। उन पुण्य करनेवालियों को पुरुष कहाँ से मिलते हैं, सो भी सुनो। (६४) इन भोगवती नारियों में से किन्हीं २ को, जो कि शिष्टा हैं, एक-एक पुरुष मिल जाता है। और तो पुरुषों से अभुक्त ही रहती हैं। (६५) कर्म-भूमि में आर्य्यावर्त केवल स्वर्ग देने-वाला है, उसमें भी कुरुक्षेत्र मनुष्यों के लिये पुण्यक्षेत्र है। (६६) सात पुरियां मोक्ष देनेवाली हैं, उनमें काशी सर्वश्रेष्ठ है। बहुत से शिवधाम

१ ग. ...भूमिः केवलं स्वर्गदायिका। २ ख. भुवि।

मोक्षदाः सप्तपुर्यश्च तासु काशी विशिष्यते ।
बहूनि शिवधामानि मुक्तिदानि च सन्ति हि ॥६७॥
पुरीषु षट्सु मरणं काशीमरणदं नृणाम् ।
षट्पुरे काम्यपुण्या वै जनास्तपमहोऽलभन्[1] ॥६८॥
काश्यान्तु काम्यपुण्या वै मल्लोकं विशते(?) हरेः[2] ।
काश्यां विसृष्टदेहा ये संयुज्यन्ते शिवेन ते ॥६९॥
स्वर्गङ्गा भूगता च स्यात् काम्यपुण्याऽपि[3] भूतले ।
[4]काम्यं तृणीकृत्य लोकान् मुक्तानेव करोति हि ॥७०॥
तदा स्वर्लोकगाः स्वल्पाः काम्यपुण्या भवन्ति हि ।
केवलं स्वर्गगतयः कृतपुण्याः कुरौ[5] जनाः ॥७१॥
तत्रापि वाणीतीरस्थं पुण्यं सद्यःफलप्रदम् ।
इति ज्ञात्वाऽहमेताभिरप्सरोभिः कृतार्थनः ॥७२॥

मुक्ति देनेवाले हैं। (६७) छः पुरियों में मरने से मनुष्यों का काशी में मरण होता है। छः पुरियों में सकाम पुण्य करनेवाले जन तप और महर्लोक को प्राप्त होते हैं। (६८) काशी में सकाम पुण्य करनेवाले मेरे लोक या विष्णु के लोक को प्राप्त होते हैं और जो काशी में देह-त्याग करते हैं, वे शिवजी में मिल जाते हैं। (६९) यदि स्वर्गङ्गा पृथ्वीतल पर जाँय तो काम्य लोकों को तुच्छ करदें और पृथ्वी पर काम्य करनेवालों को भी मुक्त कर दें। (७०) गङ्गा के जाने पर ऐसे सकाम पुण्य-वाले थोड़े ही होंगे, जो स्वर्ग जायँगे। कुरुक्षेत्र में पुण्य करनेवालों की केवल स्वर्ग में गति होती है। (७१) उसमें भी सरस्वती के तट पर किया गया पुण्य सद्यःफल देनेवाला होता है। ऐसा जानकर ही मैंने अप्सराओं की प्रार्थना पर (७२) एवं उन सबों को बहुत दिनों से भोग नसीब नहीं हुआ—इस बात को समझते हुए बहुत से लोगों को स्वर्गगामी

---

१ ग. ययुः। २ ख. वेशतुर्हरेः, ग. वेशितुर्हरेः। ३ क. ...पुण्यांश्च, ग. ...पुण्यापि ४ क. काम्यान्। ५ ख. परे।

चिरभोगवियुक्ताभिः स्वर्गिणः कृतवान् बहून् ।
सरस्वत्यै वरं दत्वा सद्यः प्राप्त्यै नृणां दिवि ॥७३॥
तस्मादप्सरसां तृप्त्यै मयैवं कृतमादरात् ।
इतः परं भवन्नाथानानयिष्यामि वोऽन्तिकम् ॥७४॥
गच्छतेत्यवदत् पत्नीदवानां प्रैषयत् स्वभूः[1] ।
ततो मामाह मे भर्त्ता स्वस्वधाम्नि दिवौकसः ॥७५॥
प्रेषयेति तदाहं तान् प्रैरयं[2] स्वस्वधामनि ।
युष्मत्प्रत्यक्षतः[3] सद्यः फलं प्राप्ताऽत्र❀ वै जनाः ॥७६॥
भवता दृश्यफलदाः सद्यः फलनिवृत्तये ।
एवमाज्ञा विधेर्जाता यूयं मत्प्रीतये स्थिताः ॥७७॥
कृतोपकारा यूयं मे सुखं गच्छत सद्मसु ।
एवमुक्त्वा [4]तदैवाहमन्तर्धिमगमं ततः ॥७८॥

कर दिया। अतः मनुष्यों की सद्यः स्वर्ग प्राप्ति के लिये मैंने पहिले से सरस्वती को वर दिया है। (७३) जिसमें अप्सराओं की तृप्ति हो। इसके बाद मैं आप लोगों के स्वामियों को आप लोगों के पास पहुँचा दूँगा। (७४) अब आप लोग जाँय, ऐसा कहकर ब्रह्मदेव ने उन लोगों को उनके घर रवाना कर दिया। तब मेरे भर्ता ने मुझसे कहा कि तुम देवताओं को (७५) उनके लोकों में भेज दो, मैंने उन लोगों को यह कहकर उनके घर भेज दिया कि तुम लोगों के प्रत्यक्ष होने से लोगों ने सद्यःफल पाया। (७६) अब ब्रह्मदेव की यह आज्ञा हुई है कि तुम लोग अदृश्य होकर फल दिया करो, जिसमें सद्यः फल मिलना बन्द हो जाय। तुम लोग तो मेरी प्रीति के लिये ठहरे हो। (७७) तुम लोग मेरा उपकार कर चुके, अब सुख से अपने अपने घर जाओ, ऐसा

❀ सन्धिरार्षः ।

१ ख. ...प्रेषयत्स्वभूः । २ ग. प्रेरयन्ति । ३ ख. ...तोऽसङ्ख्यफलं । ४ ग. तदा देवा अन्तर्धिमगमन्ततः ।

हविर्यज्ञे ग्रहीतुं वै विप्रा देवान् समाह्वयन् ।
प्रत्यक्षतस्त्वनायातान् दृष्ट्वा देवांस्तदा द्विजाः ॥७९॥
सद्यःफलप्रार्थनया व्यरमन्[1] यज्ञकर्म्मसु ।
कान्यकुब्जं गताः केचिदन्यदेशेषु केचन ॥८०॥
केचिच्च मुनयस्तत्र मामाश्रित्य तपस्विनः ।
सद्यःफलदशक्ताश्च[2] गुप्तां केवलवाहिनीम् ॥८१॥
सारस्वताभिधा जाता मत्तीरपरितो द्विजाः ।
कान्यकुब्जस्थिता विप्राः कान्यकुब्जाभिधा※भवन्[3] ॥८२॥
मिथिलादेशमायाता मैथिलाख्या † भवन् द्विजाः ।
उत्कलं देशमायाता[4] उत्कलाख्या‡भवन् द्विजाः ॥८३॥
गुडाभिधानो राजर्षिर्विन्ध्योत्तरभुवां पतिः ।
बली कदाचिदभवत्तेनाऽऽक्रान्तं भुवः स्थलम् ॥८४॥

कहकर उसी समय मैं अन्तर्धान हो गई । (७८) ब्राह्मणों ने जब देवताओं को हविष ग्रहण करने के लिये बुलाया, तब प्रत्यक्षरूप से देवताओं को न आते देखकर (७९) उनकी सद्यःफल पाने की आशा जाती रही और वे यज्ञ करने से विरत हुए। कुछ लोग तो कान्यकुब्ज देश को गये, कुछ अन्य देशों को चले गये । (८०) कितने ही तपस्वी मुनियों ने तो मुझमें सद्यःफल देनेवाली शक्ति होने के हेतु गुप्त होकर अकेली बहने पर भी (८१) मेरा आश्रय लिया, वे मेरे तीर को घेर कर बसे, और वे सारस्वत कहलाये । (८२) जो मैथिल देश में चले गये, वे मैथिल कहलाये । जो उत्कल देश में गये, वे उत्कल कहलाये । (८३) गुड़ नामक एक बलवान् राजर्षि विन्ध्याचल के उत्तर देश का किसी काल में राजा हुआ था । उसके अधिकार में जो भूमि थी, वह गुड़ देश के नाम से प्रसिद्ध हुई । (८४) गुड़ देश में जो

---

१ ग. व्यारमन् । २ ग. ...शक्ताश्च । ३ ग. ...श्च ते । ४ ग. उत्कलाख्याश्च तेऽभवन् । ※ अडभाव आर्षः । † अडभाव आर्षः । ‡ अत्रापि ।

गुडदेशे स्थिता विप्रा गौडाख्यां लेभिरे ततः ।
सर्वदेशो गुडाक्रान्तस्तदा सर्वेऽपि गौडताम् ॥८५॥
प्राप्ताः पञ्चापि भेदेन सर्वे ब्रह्मविदां वराः ।
सारस्वताः कान्यकुब्जा गौडा उत्कलमैथिलाः ॥८६॥
एते पञ्च महागौड़ा विन्ध्यस्योत्तरवासिनः ।
विन्ध्यस्य दक्षिणे भागे गताः केचिद् द्विजोत्तमाः ॥८७॥
गुर्जरे च महाराष्ट्रे चान्ध्रे कार्णाटकदेशके ।
दक्षिणाब्धेः समीपे च पाण्ड्यचोलादिदेशके ॥८८॥
तत्तद्देशे स्थिता विप्राः सर्वे ब्रह्मविदां वराः ।
पाण्ड्यदेशे पुरा चाभूद् [1]द्रविड़ो नाम भूपतिः ॥८९॥
शम्भोर्वरप्रसादेन विन्ध्यदक्षिणभूमिका ।
आक्रान्ता तेन सर्वापि स राजाऽतिप्रतापवान् ॥९०॥
तस्य देशस्थिता विप्रा द्रविडाख्यां च लेभिरे ।
कर्णाटा द्रविडाश्चान्ध्रा महाराष्ट्राश्च गुर्जराः ॥९१॥

ब्राह्मण जा बसे, वे गौड़ कहलाए। उत्तर का सारा देश गुड़ के अधिकार में था, इसलिये सभी (पाँचो) गौड़ हैं। (८५) ब्रह्मविदों में श्रेष्ठ ये लोग इस भाँति पाँच भेदों में विभक्त हो गयेः—(१) सारस्वत (२) कान्यकुब्ज (३) गौड़ (४) मैथिल और (५) उत्कल (८६) ये पाँचों महागौड़ विन्ध्य के उत्तर देश में वसनेवाले हैं। कितने हा ब्राह्मणों में श्रेष्ठ विन्ध्य के दक्षिण—(८७) गुर्जर, महाराष्ट्र, आन्ध्र, कार्नाटक एवं दक्षिण समुद्र के समीप पाण्ड्य, चोल आदि—देशों में चले गये। (८८) और वहीं बस गये, वे सब ब्राह्मण ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ हैं। पूर्व काल में पाण्ड्य देश का द्रविड़ नामक एक राजा था। (८९) शङ्कर से वरदान पाकर उस प्रतापी राजा ने विन्ध्याचल के दक्षिण की सब भूमि जीत ली। (९०) अतः उधर रहनेवाले द्रविड़

१ ग. द्राविड़ाः ।

पञ्चद्रविडसंज्ञाश्च विन्ध्यदक्षिणवासिनः ।
एवञ्च भारतं वर्षं व्याप्तं विप्रवरैस्तदा ॥९२॥
सर्वे वेदविदः प्राज्ञाः सर्वे ब्रह्मविदां वराः ।
मत्तीराच्च कुरुक्षेत्रात् [1]प्रसृताः क्षितिमण्डले ॥९३॥
तदारभ्य महादेवि ! त्वदागमनकाङ्क्षया ।
[2]स्मरन्ती च वरं चित्ते स्थिता त्वत्सङ्गमोत्सुका ॥९४॥
इदानीं भाग्यतो मे त्वमागता लोकपावनी ।
इयं च यमुनाहञ्च कृतार्थे तव संगतः ॥९५॥
[3]त्वं मुक्तिदा स्वर्गदे ह्यावां तिस्रश्चैव सङ्गताः ।
तस्मादत्र स्वर्गमोक्षौ करस्थौ प्राणिनां भुवि ॥९६॥
आवां काशीं गमिष्यावस्त्वया सार्कं सुरापगे ! ।
श्रीमत्केदारविश्वेशादीन् प्रणम्य च भक्तितः ॥९७॥

कहलाये । कर्णाटक, द्रविड़, आन्ध्र, महाराष्ट्र और गुर्जर (९१) इन पाँचो विन्ध्य से दक्षिण रहनेवालों की पञ्च द्रविड़ संज्ञा है । इस प्रकार से भारतवर्ष श्रेष्ठ ब्राह्मणों से व्याप्त है । (९२) ये सब ब्राह्मण वेदों को जाननेवाले, बुद्धिमान् एवं सब ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ हैं । कुरुक्षेत्र में मेरे तीर से तमाम दुनिया में फैल गये । (९३) तभी से हे महादेवि ! मैं ब्रह्माजी के वचन को मन में स्मरण करती हुई, तुमसे मिलने की इच्छा से तुम्हारी वाट देख रही थी । (९४) हे लोकपावनी ! अब तुम मेरे भाग्य से आ गई हो, तुम्हारे संग से यह यमुनाजी और मैं कृतार्थ हुई । (९५) तुम मुक्ति देनेवाली हो और हम स्वर्ग देनेवाली हैं, अब हम सब मिलकर तीन हो गईं । इसलिये यहाँ पर स्वर्ग और मोक्ष दोनों प्राणियों के करतलगत हैं । हे गङ्गे ! हम दोनों तुम्हारे साथ काशी

१ ख. श्रुताः । २ ग. पुस्तकीयोऽयं पाठः, आ० पु०—स्मरन् ब्रह्मवचश्चित्ते इति । ३ ग. पुस्तकीयोऽयं पाठः, आ० पु०—त्वं मुक्तिदा स्वर्गदा आवां तिस्रश्च सङ्गताः ।

मणिकर्णीद्वयं सेव्य सागरं याम मोदतः ।
एवं सरस्वतीगङ्गासंवादं लोकपावनम् ॥९८॥
सनत्कुमारो भगवान् वामदेवाय चाऽब्रवीत् ।
[1]तमेव नाथशर्मापि स्वपत्नीं प्राह चादरात् ॥९९॥
[2]तमेव मद्गुरुर्मां प्रत्याह कारुणिकोत्तमः ।
शृणुत मुनिवरेन्द्राः ! स्वर्धुनीब्रह्मपत्न्यो-
[3]र्विवदनमखिलाघध्वंसबद्धैकदीक्षम्[4] ।
सकृदपि मनुजो यः कर्णपीयूषसारं
पिबति शिवपदाब्जं भुक्तभोगः प्रयाति ॥१००॥
सद्यः सर्वसुखावहं कलिमलप्रोद्दामशैलाशनिं[5]
लोकानुग्रहकारकं सुचरितं सारस्वतं स्वर्गदम् ।
[6]निष्कामाच्च विमोक्षदं सकृदपि शृण्वन्ति ये सादरम्
ते यान्ति त्रिदशैरगम्यमपि यद्धामैश्वरं निर्भयम् ॥१०१॥

जायँगी, और केदार तथा विश्वेश्वरादि को भक्तिपूर्वक प्रणाम करके (९७) दोनों मणिकर्णिकाओं का सेवन करेंगी और तब आनन्द से समुद्र में जा मिलेंगी। इस प्रकार सरस्वती गङ्गा का लोकपावन संवाद (९८) भगवान् सनत्कुमार ने वामदेव को सुनाया, वही नाथशर्मा ने अपनी पत्नी से आदरपूर्वक कहा (९९) और वही परमकारुणिक मेरे गुरु ने मुझे सुनाया। हे मुनिवरेन्द्रो ! सुनो, गङ्गा और सरस्वती का संवाद अखिल पापों के नाश के लिये कृतप्रतिज्ञ है। इस श्रवणामृत-सार को एक वार भी जो पीता है, वह सब उत्तम भोगों का भोगकर शङ्कर के चरणों में प्राप्त होता है। (१००) यह सरस्वती का चरित्र सद्यःसुख देनेवाला है। कलियुग के मलरूपी विशाल पर्वत के लिये वज्ररूप है, लोकों पर अनुग्रह करनेवाला है और स्वर्ग देनेवाला है।

१ ग तदेव। २ ग. तदेव मद्गुरुर्मह्यं प्राह······। ३ ग. कथन······, ४ ग. दक्षम्। ५ ग. हेलाशनिम्। ६ ख. निष्कामस्य।

किं वै तेन परिश्रमेण बहुना कृच्छ्रादिचान्द्रायणाद्
[1]किं जन्मार्जितकायशोषणतपःक्लेशेन वा भूसुराः ।
श्रीकाशीमणिकर्णिकासुरनदीविश्वेश्वरा दुर्लभाः
[2]पुंसां पूर्वतपःप्रभावनिचयात्[3]प्राप्स्यन्ति तान् नाऽन्यथा ॥१०२॥
तत्राप्युत्तमपुण्यदाखिलशिवाघानां[4] निहन्त्री नृणां
प्राचीना मणिकर्णिका शुभकरी केदारनाथस्तथा ।
काश्यां भैरवयातनास्त्यघकृतां सर्वत्र नास्त्यन्यथा
तत्रापीशदयावशात् परिहृता[4] केदारसद्माभितः ॥१०३॥
पश्यध्वं मणिकर्णिकां चिरतरां केदारलिङ्गं जनाः
गाहध्वं मणिकर्णिकाशुभजलेऽप्यर्च्यध्वमीशं सदा[5] ।

निष्काम होकर एक बार भी जो इसका सादर श्रवण करते हैं, वे ईश्वर के देव-दुर्लभ निर्भय धाम को प्राप्त होते हैं। (१०१) हे ब्राह्मणो ! जन्म भर बहुत से कृच्छ्र, चान्द्रायण आदि शरीर के शोषण करनेवाले तप करके कष्ट उठाने और इतना परिश्रम करने से क्या लाभ है ? श्रीकाशी, मणिकर्णिका, गङ्गा, और विश्वेश्वर दुर्लभ हैं। ये पुरुषों को पूर्व तप के प्रभाव के समूह से ही मिलते हैं, दूसरे उपाय से नहीं। (१०२) उस पर भी उत्तम पुण्य देनेवाली, सम्पूर्ण शिवापराध का शमन करनेवाली और मनुष्यों की शुभकामना पूर्ण करनेवाली प्राचीना मणिकर्णिका और केदारनाथ हैं। काशी में भी सर्वत्र भैरव पापियों को यातना देते हैं, उससे किसी प्रकार जान नहीं बचती, केदारजी के मन्दिर के चारों ओर शङ्करजी की दया से वह भी नहीं होती। (१०३) लोगो ! "प्राचीना मणिकर्णिका और केदार का दर्शन करो, मणिकर्णिका के शुभ जल में स्नान करो और शङ्कर की पूजा करो। पृथ्वी पर भुक्ति और अन्त समय में सुर-दुर्लभ

१ ग. पुस्तकीयः पाठः आ० पु०—या । २ ग. पुंसः । ३ ग. प्राप्या हि ।
४ ख. ···च सकल······ । । ५ ग. मुदा ।

प्रापध्वं भुवि भुक्तिमन्तसमये मुक्तिं सुरैर्दुर्लभा-
मित्युद्दामसुवाग् हि भैरवविभोः केदार एवास्त्यहो ॥१०४॥

इति श्रीकाशीमूलरहस्ये ब्रह्मवैवर्त्ते खिले काशीकेदारमाहात्म्ये
त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः ।

ऋषय ऊचुः—

सूत ! सर्वज्ञाननिधे ! सरस्वत्या महाकथा ।
श्रुताऽस्माभिः प्रकृष्टाघध्वंसिनी जनपावनी ॥ १ ॥
श्रुत्वा गङ्गा कथां पश्चात् किमाह च सरस्वतीम्[1] ।
कथं काशीं समायाता नद्यस्तिस्रोऽपि मेलिताः[2] ॥ २ ॥

मुक्ति प्राप्त करो । यह बात केदारजी में ही है," यह सुन्दर उदार वचन विभु भैरवजी का है । (१०४)

यह ब्रह्मवैवर्त पुराण के खिलभाग काशीमूलरहस्यान्तर्गत केदार-माहात्म्य का तेरहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

दो०—शम्भु संग सुर-सरित को, जेहि विधि भयेउ विवाह ।
वरन्यौ जिमि कलि वरन सब पातक परे अथाह ॥
सो०—पाइ शंभु आदेश, मृत्यु लोक गङ्गा वहीं ।
तारन हेतु अशेष, कलिमल ग्रसित जीव कहँ ॥
दो०—हरि पूजत केदार कहं, धरि द्वै रूप सुजान ।
होइ चतुर्धा तहं वहीं श्रीसुर-सरित महान ॥

ऋषि लोग बोले—हे सब ज्ञानों के निधान ! सूत जी ! प्रबल पापों का नाश करनेवाली और लोगों को पवित्र करनेवाली सरस्वती जी की महाकथा हम लोगों ने सुनी । (१) गङ्गाजी ने यह कथा सुनकर फिर सरस्वती से क्या कहा ? और तीनों नदियाँ मिल-

१ ग. वाक च । २ ख. मानिताः, ग. मिलिताः ।

प्रयागं तीर्थराजानं* कृत्वा काशीं सुसेवितुम् ।
प्राचीनमणिकर्ण्यां ताः कथं मुक्ताः शिवागसः ॥ ३ ॥
तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामस्त्वत्तो ब्रह्मविदां वर ! ।
इति पृष्टस्तदा सूतो मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ ४ ॥
तदा तानाह वै सूतो रहस्यं तत्पुरातनम् ।

सूत उवाच—

शृणुध्वं ऋषयः सर्वे त्विममेव[1] पुरा सती ।
अनवद्या स्वात्मनाथं प्रश्नं पप्रच्छ सादरम् ॥ ५ ॥
नाथशर्मा वामदेवमुनये ऋषिणोदितम् ।
सनत्कुमारेण गुह्यं तन्मामाह च मद्गुरुः ॥ ६ ॥
[2]सनत्कुमारं पप्रच्छ वामदेवः पुरातनम् ।
रहस्यं सर्वलोकानां तारकं शम्भुभक्तिदम्[3] ॥ ७ ॥

कर काशी कैसे आईं ? (२) प्रयाग को तीर्थों का राजा बनाकर वे प्राचीन मणिकर्णिका को प्राप्त हो, किस भांति शिवापराध से विनिर्मुक्त हुईं ? (३) हे ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ ! ये सब बातें हम लोग आपसे सुनना चाहते हैं। जब तत्त्वदर्शी मुनियों ने सूतजी से इस भांति प्रार्थना की, (४) तब सूतजी प्राचीन रहस्य उन लोगों से कहने लगे। सूतजी बोले—हे ऋषिवृन्द ! आप लोग सुनिये, पूर्वकाल में सती अनवद्या ने अपने स्वामी से यही प्रश्न सादर पूछा था। (५) और नाथशर्मा ने अनवद्या से जिस भाँति यह रहस्य कहा, उसी भाँति सनत्-कुमार ऋषि ने वामदेव मुनि से यह गुप्त बात कही। और इसी को मेरे गुरु ने मुझसे कहा। (६) वामदेव ने पुरातन ऋषि सनत्कुमार से सब लोकों को तारनेवाला और शिवजी की भक्ति देनेवाला रहस्य पूछा। (७) वामदेव ने कहा—हे स्कन्द के अंश ! ब्रह्मन् !

१ ग. त्विदमेव। २ ग. पुस्तके 'सनत्कुमारम्'......इति सार्धश्लोको नास्ति। ३ ग. किल मुक्तिदम्। * टजभाव आर्षः।

वामदेव उवाच—

स्कन्दांश! विद्वन्! ब्रह्मर्षे! किमाह त्रिदशापगा।
स्वरहस्यं महेशेन परिणीताऽऽपगा कथम्॥ ८॥

[1]सनत्कुमार उवाच—

तदाह गङ्गा संवादं वाणीयमुनयोर्द्विज!।

गङ्गोवाच—

शृणु वाणि! प्रवक्ष्यामि मत्पाणिग्रहणं पुरा।
कृतं शिवेन भक्तानां सर्वाभीष्टप्रदायिना॥ ९॥
पूर्वमेव पराशक्तेरंशां मां शिरसादधत्।
विरिञ्चेन पुनर्देवैर्गृहीतां स्वस्वकाम्यया॥१०॥
स्वर्लोकस्थां ददौ ब्रह्मा भगीरथनृपाय माम्।
पितॄणां तारणार्थाय तदाऽहं गर्विता भृशम्॥११॥

देवर्षि! गङ्गाजी ने अपना क्या रहस्य कहा? कैसे उक्त नदी ने महादेवजी से विवाह किया? (८) सनत्-कुमारजी बोले—हे ब्राह्मण! सरस्वती और यमुना का संवाद सुनकर गङ्गाजी बोलीं—हे सरस्वती! जिस भाँति पूर्वकाल में भक्तों को सब अभीष्ट देनेवाले शङ्करजी ने मेरा पाणिग्रहण किया, इसे मैं कहती हूँ, सुनो, (९) मैं पराशक्ति की अंश हूँ। मुझे पूर्वकाल में शिवजी ने सिर में स्थान दिया, फिर ब्रह्माजी ने, तत्पश्चात् देवताओं ने अपनी २ कामना के लिये मुझे उनसे प्राप्त किया। (१०) तब मैं स्वर्लोक में स्थित हुई। वहाँ से ब्रह्मदेव ने भगीरथ राजा को उनके पितरों को तारने के लिये मुझे दिया, तब तो मुझे बड़ा अभिमान हुआ। (११) इसके पश्चात् जब शिवजी ने राजा की प्रीति के लिये मुझे धारण करना अङ्गीकार कर लिया, तब मैंने अभिमान से यह ठाना कि शिवजी को रसातल पहुँचा दूँगी। (१२) मैं पूरे बेग से शम्भु के शिर पर गिरी। शिवजी के माहात्म्य को न जानने एवं

१ ख. पुस्तकीयोऽयं पाठः, आ० पु०—नास्ति।

नृपप्रीत्यै शिवो धर्त्तुं मामङ्गीकृतवान् यदा ।
तदाहं गर्विता शम्भुं न यामीति रसातलम् ॥१२॥
अपतं शम्भुशिरसि सर्ववेगेन दुर्भरा ।
अज्ञात्वा शिवमाहात्म्यं स्त्रीचापल्याच्च गर्विता ॥१३॥
शिवं निन्द्य तृणीकृत्य दुर्बुद्ध्या पतिताश्च माम् (?) ।
जटागह्वरकान्तारे लीनाहं बिन्दुवत्तदा ॥१४॥
अलब्धनिर्गमा सर्वप्रयत्नेनापि दुर्बला ।
तदाहं तपसा देवं चिरेण पर्य्यतोषयम्[1] ॥१५॥
जटागह्वरलीनापि मनसा सर्वभावतः ।
तदा प्रसन्नो भगवान् वाञ्छितं ते वदेति किम् ॥१६॥
तदाहं वरदं नत्वाऽवदं[2] नाथो भवेति मे ।
तदा मां भगवानाह हसन् मद्बुद्धिचापलम् ॥१७॥
त्वं मच्छत्त्यंशभूतैव[3] पूर्वमेव वृता मया ।
तथापि वेधसे दत्ता प्रसादमिति सृष्टये ॥१८॥

स्त्रियों की स्वाभाविक चपलता से मुझे अभिमान हो गया । (१३) इसलिए मैं शिवजी की निन्दा करके, उनको तृण के समान समझकर दुष्टबुद्धि से उनके सिर पर कूदी । परन्तु जटा की खोह के जंगल में मैं बूंद की तरह लीन हो गई । (१४) जब मैं किसी प्रयत्न से भी उसमें से निकल न सकी और थक गई, तब मैंने बहुत दिनों तक तप करके महादेव को परितुष्ट किया । (१५) जटा-गह्वर में लीन होने पर भी मैंने सर्वभाव से मानसिक तप किया । तब प्रसन्न होकर भगवान् ने कहा—तुम क्या चाहती हो, माँगो । (१६) तब मैंने वर देनेवाले उनको नमस्कार करके कहा हे भगवन् ! आप मेरे स्वामी हो । तब भगवान् ने मेरी बुद्धि की चपलता पर हँसते हुए मुझसे कहा—(१७) तुम मेरी शक्ति की अंश हो; मैंने तुमको पहिले ही वरण कर लिया है ।

१ ग. पुस्तकीयोऽयं पाठः, आ० पु०—परितोपयम् । २ ग.'''ह्यवदं । ३ ग. भूता वै ।

तत्कुण्डिकास्था देवैस्त्वं प्राप्ता तेषां विभूतये ।
मन्मायामोहितानां त्वं सहवासाद् दिवौकसाम् ॥१९॥
अज्ञानमोहिता जाता मां न जानासि गर्वतः[1] ।
तदज्ञाननिवृत्त्यर्थं हिमवद्दुहिता भव ॥२०॥
उमा त्वां भगिनीं भाव्य त्वदज्ञानं व्यपोह्य च ।
आत्मांशामात्मवत्सा मां त्वां प्रापयति मैत्रतः ॥२१॥
इति देववचः श्रुत्वा तदाहं चकिता भृशम् ।
मयि देवस्य कोपोऽस्ति तेन मां त्यक्तुमिच्छति ॥२२॥
तस्माच्छिवं न मुञ्चामीत्येव[2] चिन्त्याहमन्वहम्[3] ।
शिवैकचित्ता नितरामुपासां[4] करवं तदा ॥२३॥
पुनर्भगीरथो हीशं चिरं प्रार्थितवांस्तदा ।
उद्धारणाय पितॄणां तदा मामवदत् प्रभुः ॥२४॥

तिसपर भी प्रसादरूप से मैंने तुम्हें ब्रह्मा को सृष्टि के लिये दिया था। (१८) तब तुम उनके कमण्डलु में रही। देवताओं ने अपने ऐश्वर्य्य के लिये तुमको उनसे प्राप्त किया। मेरी माया तथा देवताओं के सहवास से तुम (१९) अज्ञान से मोहित हो गई। तुमने गर्व से मुझे न जाना। उस अज्ञान की निवृत्ति के लिये तुम हिमाचल की बेटी होओ। (२०) उमा तुमको बहिन जानकर, तुम्हारे अज्ञान को मिटाकर, अपने अंश को अपनी ही भाँति प्रीति के साथ मुझसे मिला देंगी। (२१) शिवजी की ऐसी वाणी सुनकर मैं बहुत चकित हुई और मैंने यह समझा कि मुझपर देव का कोप है। इसी से मुझे त्यागना चाहते हैं। (२२) पर मैं शङ्करजी को न छोड़ूंगी ऐसा मन में ठानकर मैं नित्य शिवजी में ही चित्त को भली भाँति लगाकर उपासना करने लगी। (२३) तत्पश्चात् भगीरथ ने पितरों के उद्धार के लिये ईश्वर की बड़ी प्रार्थना की, तब मुझसे प्रभु ने कहा—(२४) हे

१ ग. गर्विता। २ ग.…वं। ३ ग. चिन्त्या समन्विता। ४ ग. कृतवत्यहं।

विसृजामि भुवं गच्छ गङ्गे ! त्वां भक्तकारणात् ।
उद्धारय पितृंस्तस्य सिन्धुं व्रज[1] मदाज्ञया ॥२५॥
एवं वदन्तं सर्वेशं प्रणिपत्य पुनः पुनः ।
मा मुञ्च मां प्राणनाथ ! क्षमस्व त्वं कृतागसम् ॥२६॥
अज्ञानात् स्त्रीस्वभावात् त्वामनिन्दं[2] चापलात् प्रभुम् ।
यदि मां मुञ्चति भवान् भक्तार्थं प्रार्थितश्चिरम् ॥२७॥
भीतां मां सत्यवाक्येन समाधाय दृढां कुरु ।
येन मे[3] हृद्गता शङ्का त्वद्वियोगान्न भीतिदा ॥२८॥
भवेत्तथा कुरु विभो ! त्वद्वागमृतसेचनात् ।
इति मां भीतभीतां स पुनः प्राह हसन् विभुः ॥२९॥
गङ्गे ! त्वां सर्वभावेन न मुञ्चामि स्थिरा भव ।
भक्तार्थं किञ्चिदेव त्वं कलांशेन भुवं व्रज ॥३०॥

गङ्गे ! भक्त के लिये मैं तुम्हें छोड़ता हूँ, तुम पृथ्वी पर जाओ और उसके पितरों का उद्धार करके समुद्र में मिल जाओ। (२५) उन सवश्वर के ऐसा कहने पर वार-वार नमस्कार करके मैंने कहा—हे प्राणनाथ ! मेरा त्याग न कीजिए, मुझ अपराधिनी के अपराध को क्षमा कीजिए। (२६) हे प्रभु ! मैंने अज्ञान से तथा स्त्रियों की स्वभाविक चञ्चलता से आपकी निन्दा की। यदि वहुत दिनों की प्रार्थना से भक्त के लिये छोड़ना ही चाहते हो (२७) तो मैं भीत हो गई हूँ, सच्ची वातों से मेरी शङ्का का समाधान करके मुझे दृढ़ कर दीजिये, जिससे कि आपके वियोग की आशङ्का जो मेरे हृदय में है, वह मुझे भय न दे सके। (२८) हे विभो ! अपनी वाणी रूपी अमृत के सेचन से मुझे अभय कीजिये। इस भाँति मुझे डरी हुई जानकर विभु ने हंसते हुए फिर कहा—(२९) हे गङ्गे। मैं तुम्हारा सर्वथा त्याग न करूँगा। तुम स्थिर हो जाओ। भक्त के लिये थोड़ी-सी

१ ग. गच्छ। २ ग. पुस्तकीयोऽयं पाठः, आ० पु०—मविदं। ३ ग. मां।

तत्र त्वं हिमवत्कन्याव्याजेन गिरिजामुदे ।
गिरिजा भगिनीप्रीत्या मामेव त्वां परिणयेत् ॥३१॥
तदाहं गिरिजापत्न्या परिणीय पुनर्भवाम् ।
गतापराधदोषां त्वां तदा मयि विधारये ॥३२॥
पश्य गौरी पितुर्दोषाद् विसृष्टाङ्गा हि पावके ।
पुनर्गिरेः सुता भूत्वा मामाप मम भक्तितः ॥३३॥
¹यद्यसंस्कारितां त्वां वै गृह्णामि त्वां कृतागसम् ।
मयि कोपश्च सा कुर्यात् त्वां निरस्तां करोति च ॥३४॥
तस्मात्त्वं निर्भया गच्छ मम प्रीतिस्त्वयि स्थिरा ।
अन्तःकरणतः प्रीतिः पत्न्यामस्ति प्रियस्य चेत् ॥३५॥
तस्याश्चिन्ता काऽस्ति लोके सपत्न्या वाऽन्यतोऽपि वा
गौरीमर्द्धाङ्गतो धास्ये त्वां धास्ये शिरसा प्रियाम् ॥३६॥

अंश-कला से तुम पृथ्वी पर जाओ । (३०) वहाँ पर तुम गिरिजा के प्रसन्नार्थ हिमवान् की कन्या होओ और इस व्याज से गिरिजा की बहिन हो जाओ (!) । तत्र गिरिजा बहिन की प्रीति से तुम्हारा विवाह मुझसे ही करावेंगी । (३१) तब पर्वत के यहाँ तुम्हारा पुनर्जन्म होने से तुम्हारे अपराधदोष से विनिर्मुक्त होने पर तुम्हारा पत्नीरूप से मैं पाणिग्रहण करके तुम्हें अपने में धारण करूँगा । (३२) देखो, गौरी पिता के दोषसे अग्नि में अपना शरीर छोड़कर, फिर हिमवान् की बेटी हुई और मेरी भक्ति करके मुझे प्राप्त हुई । (३३) यदि अपराध करने पर भी बिना विवाह किये तुम्हें मैं ग्रहण कर लूं, तो वह मुझपर भी कोप करेंगी और तुम्हें तो नष्ट ही कर देगी । (३४) इसलिये तुम निर्भय होकर जाओ । तुममें मेरी निश्चल प्रीति है । यदि पति की अन्तः-करण से पत्नी पर प्रीति हो, (३५) तो उसको सौत से या अन्य किसी से लोक में क्या चिन्ता है ? गौरी को अर्धाङ्ग में धारण करूँगा,

१ ग. सद्यः ।

तस्माद् मा कुरु चित्ते त्वं भयबुद्धिं च मत्कृते ।
इति भक्ताभीष्टदो मां समाधाय जटान्तरात् ॥३७॥
किञ्चिदुत्सर्जनव्याजाद् गौरीप्रीत्यै हिमाचले[1] ।
सुतां कृत्वा हिमगिरेर्मा बिन्दुसरसि ❀ क्षिपत्[2] ॥३८॥
तदा सर्वहृदन्तःस्थो देवो हिमगिरेर्हृदि ।
प्रविश्य तेन मां पत्न्याऽग्राहयत् स्वात्मजा धिया ॥३९॥
गिरिजापि तदा प्रीत्या स्वसृभावं चकार मे ।
ततो मां पितरौ प्रार्थ्य स्वात्मवत्समदापयत् ॥४०॥
पुनर्विवाहविधिना निजनाथाय शम्भवे ।
ब्रह्मविष्णुमुखा देवाः सर्वे यातास्तदुत्सवे ॥४१॥
तान् यथार्हेण[3] हिमवान् विधिवत्समपूजयत् ।
[4]ब्रह्मर्षीन् शम्भुगणपान् नन्व्यादींश्च सुतावपि ॥४२॥

तुम प्रिया हो, अतः तुम्हें शिर पर धारण करूँगा। (३६) अतः तुम मेरे लिये अपने चित्त में भयबुद्धि मत करो। भक्त को अभीष्ट देनेवाले शिवजी ने इस तरह मेरी शङ्का का समाधान करके (३७) जटा खोलने के बहाने से गौरी के प्रसन्नार्थ हिमगिरि की बेटी बनाकर मुझे जटा में से हिमालय के बिन्दुसर में डाल दिया। (३८) तब सबके हृदय में रहनेवाले महादेवजी ने हिमालय के हृदय में प्रवेश करके ऐसी प्रेरणा की कि उन्होंने अपनी पत्नी के सहित पुत्रीबुद्धि से मुझे ग्रहण किया। (३९) गिरिजा ने भी प्रीति से मुझे बहन माना। तब उमा ने पिता माता की प्रार्थना करके अपनी भाँति (४०) फिर अपने नाथ शङ्करजी का विवाह मुझसे करवाया। ब्रह्मा, विष्णु प्रमुख सब देवता लोग उस उत्सव में सम्मिलित हुए। (४१) हिमवान् ने यथायोग्य सबकी पूजा की। (४२) ब्रह्मर्षिगण, शङ्कर, गणनायक,

---

१ ग. हिमालये। २ ग. क्षिपन्। ३ ग. यथार्हञ्च। ४ ग. ब्रह्मादीन्।
❀ अडभाव आर्षः।

वस्त्रै रत्नैश्च भूषाभिर्गजवाजिरथादिभिः ।
ततो मामाह भगवान् लोकोद्धरणहेतवे ॥४३॥
त्वं सप्तधा नदी भूत्वा धाराभिः षड्भिरादरात् ।
पश्चात् पूर्वोदधिं गच्छ तिसृभिस्तिसृभिस्त्विह ॥४४॥
तत्तत्खण्डगतप्राणिलोकान् [1]संपावय मुदा ।
एकया धारया गच्छ भगीरथरथानुगा ॥४५॥
मद्भक्तो जह्नुनामास्ति शिवज्ञानी महामुनिः ।
तेन त्वं शिक्षिता तस्य कन्या भूत्वाऽग्रतो व्रज ॥४६॥
मदागसो निवृत्तिं ते स मुनिश्चोपदेक्ष्यति ।
मद्रहस्योपदेष्टा स मदागोविनिवृत्तये ॥४७॥
तेनोपदिष्टा मत्क्षेत्रं गच्छ प्राग् मणिकर्णिकाम् ।
तत्र केदारनाथोऽहं लिङ्गरूपी वसामि हि ॥४८॥

नन्दी आदि की तथा दोनों बेटों की वस्त्र, रत्न, आभूषण, हाथी, घोड़े और रथ आदि से पूजा की । तब भगवान् ने मुझसे कहा कि लोक के उद्धार के लिये (४३) तुम सात प्रकार से नदी होकर अपनी धाराओं में से तीन धाराओं द्वारा यहाँ से पूर्वसमुद्र में और शेष तीन धाराओं द्वारा आदर के साथ पश्चिम समुद्र में जाओ (४४) और उन खण्डों के प्राणियों को प्रसन्नतापूर्वक पवित्र करो । एक धारा से भगीरथ के रथ के पीछे जाओ । (४५) मेरा एकान्तभक्त शिवज्ञानी महामुनि है, उसका नाम जह्नु है, उससे तुम शिक्षा पाकर एवं उसकी कन्या होकर आगे बढ़ो । (४६) मेरे अपराध की निवृत्ति का उपाय वह मुनि बतलावेगा । मेरे अपराध की निवृत्ति के लिए वही मेरे रहस्य का उपदेष्टा है । (४७) उससे उपदेश पाकर तुम मेरे क्षेत्र में जाओ, जहाँ प्राचीना मणिकर्णिका है, वहाँ पर मैं केदारनाथ-लिङ्गरूप से बसता हूँ । (४८) वहाँ पर मेरी सेवा और गौरी-तीर्थ की सेवा से निष्पापा होकर पश्चात् विश्वनाथ और

१ ग. सम्पावयन्ति हि ।

तत्र मत्सेवया गौरीतीर्थस्य च निषेवणात् ।
भूत्वा निरागसी पश्चाद् विश्वेशं मणिकर्णिकाम् ॥४९॥
[1]सेव विश्वेशपादाब्जं तत्र त्वं सकला वस ।
स्तोकांशेनोदधिं गच्छ पितॄंस्तारय भूपतेः ॥५०॥
त्रेताऽधुना द्वापराख्यकली चाग्रे भविष्यतः ।
पुनः कृतस्तेषु तिष्ठेत्त्वां विना नोद्धरन्[2] प्रजाः ॥५१॥
कृतत्रेताद्वापरेषु धर्म्मो द्वित्रिचतुष्पदः ।
येन तिष्ठति भूभागे भारते वर्षसंज्ञके ॥५२॥
कृते युगे सर्वजना धर्मेण गतिमाप्नुवन् ।
धर्मन्यूनतया त्रेता द्वापरे जनता तदा ॥५३॥
त्वत्सेवनाच्च मुच्यन्ते कर्म्मबन्धात् स्वकर्म्मतः ।
सम्प्राप्ते च कलौ लोकाः कर्म्मभ्रष्टाश्च दुर्धियः ॥५४॥
भविष्यन्त्युग्रपापिष्ठाश्चातुर्वर्ण्या अपि प्रिये ! ।
वर्णसाङ्कर्य्यमापन्ना वेदविप्रविदूषकाः ॥५५॥

मणिकर्णिका में जाओ। (४९) वहाँ तुम विश्वनाथ के चरण कमलों की सेवा करो और सब कलाओं के साथ बसो। तब थोड़े अंश से समुद्र में जाकर राजा के पितरों को तारो। (५०) इस समय त्रेता है आगे द्वापर और कलि होंगे। फिर सत्य युग होगा। इन चारों युगों में तुम रहो। तुम्हारे बिना प्रजा का उद्धार नहीं होगा। (५१) त्रेता, द्वापर और कलियुग में धर्म का क्रम से तीन दो और एक पाद पृथ्वी में भारतवर्ष के लोगों में रह जायगा। (५२) सत्य युग में सब लोग धर्म से गति को प्राप्त होते हैं। धर्म के न्यून होने से लोग त्रेता और द्वापर में (५३) तुम्हारी सेवा के द्वारा अपने कर्म-बन्ध से मुक्त होंगे। कलियुग आने पर लोग कर्म-भ्रष्ट और दुर्बुद्धि होंगे। (५४) हे प्रिये ! चातुर्वर्ण्य में भी उग्रपापी होंगे, वर्णसंकरता

१ ग. सेव्य। २ ग. नोद्धरेत्।

नीचा भविष्यन्ति वरा वरा नीचा भवन्ति हि ।
दस्यवश्चैव राजानो म्लेच्छचाण्डालपुल्कसाः ॥५६॥
प्रजाद्रोहपरा नित्यं परस्त्रीधर्षका बलात् ।
परद्रव्यापहर्त्तारश्छलादौग्र्यात् प्रतारणात् ॥५७॥
राजानुरूपाश्च जना धर्म्मभ्रष्टाः स्वधर्म्मतः ।
वर्णाश्रमव्यवस्थाऽपि लुप्यते स्वोदरंभरैः ॥५८॥
धर्म्मलिङ्गप्रतिच्छन्नैः शिश्नोदरपरायणैः ।
एकपादोऽपि लुप्येत धर्म्मस्य विकृतैर्जनैः ॥५९॥
कलौ भार्य्यागिरो वेदा स्वकुक्षिभरणं क्रतुः ।
यथेच्छचिन्तितं मानं श्रेष्ठशास्त्रमशास्त्रकम् ॥६०॥
अमार्गश्चोत्तमो मार्ग उक्तधर्मोऽप्यधर्म्मकः ।
प्राचीनशास्त्रमुच्छिद्य कुर्वन्ति च नवं नवम् ॥६१॥

को प्राप्त हो जायँगे, वेद और ब्राह्मणों की निन्दा करेंगे। (५५) नीच अच्छे होंगे, अच्छे लोग नीच-स्वभाव होंगे। चोर, म्लेच्छ, चाण्डाल और पुल्कस राजा होंगे। (५६) वे रात-दिन प्रजा के द्रोह में लगे रहेंगे, बल से पराई स्त्री का सतीत्व नष्ट करेंगे तथा छल, उग्रता, एवं ठगपन से दूसरों का द्रव्य हरेंगे। (५७) यथा राजा तथा प्रजा के अनुसार सभी लोग अपने धर्म से भ्रष्ट हो जायँगे। अपने पेट भरने से काम रखनेवाले वे वर्णव्यवस्था का भी लोप करेंगे। (५८) शिश्नोदरपरायण, धर्म के ढोंगी एवं विगड़े हुए लोगों द्वारा धर्म का एक पाद भी लुप्त हो जायगा। (५९) कलियुग में जोरू की वाणी वेद वाणी होगी, अपना पेट भरना ही यज्ञ होगा तथा शास्त्र-विरुद्ध मनमानी वात ही श्रेष्ठ शास्त्र होगी। (६०) अमार्ग ही उत्तम मार्ग समझा जायगा, शास्त्रोक्त धर्म-अधर्म न माना जायगा और प्राचीन शास्त्रों को हटाकर नये २ शास्त्र तैयार होंगे। (६१) दुष्ट-बुद्धिवाले शास्त्र के लेशमात्र से दुर्विंग्ध एवं अतिअभिमानी लोग

कुबुद्धयः शास्त्रगन्धदुर्विदग्धातिगर्विताः ।
दुःशास्त्रबोधका मौढ्याद् मूढाः पण्डितमानिनः ॥६२॥
चातुर्वर्ण्यं नीचबुद्ध्या वर्णसाङ्कर्य्यमाप्नुयात् ।
चातुर्वर्ण्ये मत्स्वरूपज्ञानिनस्त्वतिदुर्लभाः ॥६३॥
श्रुतिस्मृतिपुराणागमोदितं मद्रहस्यकम् ।
न जानन्त्येव धीमूढा वराकाः स्वल्पबुद्धयः ॥६४॥
भवन्ति विप्रा दशधा कर्म्मणां दुष्क्रियावशात् ।
तथैव क्षत्रिया वैश्याः श्रुतिचोदितकर्म्मिणः ॥६५॥
तेषां भेदं युगभिदा प्रवक्ष्यामि शृणु प्रिये ! ।
देवर्षिद्विजराजन्यवैश्यशूद्रबिडालकाः ॥६६॥
पशुम्लेच्छाश्च चाण्डाला विप्रा दशविधाः क्रमात् ।
देवर्षिद्विजराजन्याश्चतुर्भेदा युगत्रये ॥६७॥
शेषभेदाश्च कृत्येन भविष्यन्ति कलौ युगे ।
षट्कर्म्मनिरता नित्यमष्टाङ्गयुतयोगिनः ॥६८॥

मूढों को असत् शास्त्रों का उपदेश करेंगे एवं मूढ लोग अपने को पंडित समझेंगे। (६२) चारों वर्ण बुद्धि की नीचता से वर्णसंकरता को प्राप्त होंगे। चातुर्वर्ण्य में ज्ञानी मेरे ही स्वरूप हैं, और वे अतिदुर्लभ हैं। (६३) श्रुति, स्मृति, पुराण और शास्त्र में कहे गये मेरे रहस्य को वे मूढ़-बुद्धि न जान सकेंगे। (६४) ब्राह्मण अपने दुष्कर्म के कारण कर्मतः दश प्रकार के हो जायँगे, उसी प्रकार क्षत्रिय और वैश्य भी हो जायँगे। (६५) हे प्रिये ! उन वेदविहित कर्म करनेवालों का भेद युग भेदानुसार कहता हूँ, सो सुनो—देव, ऋषि, द्विज, राजन्य, वैश्य, शूद्र, बिडाल (६६) पशु, म्लेच्छ और चाण्डाल ये दश प्रकार के ब्राह्मण हैं। तीन युगों में तो देव, ऋषि, राजन्य, और शूद्र, ये ही चार भेद ब्राह्मणों के थे। (६७) और शेष छः भेद कर्मानुसार कलियुग में होंगे।

१. ग नित्यं।

तत्त्वेन मद्रहस्यज्ञा देवविप्रा इति स्मृताः ।
षट्कर्म्मिणो योगयुक्ता मां यज्ञेन यजन्ति ये ॥६९॥
श्रुत्यागमोक्तमार्गेण ऋषिविप्रा इतीरिताः ।
षट्कर्म्मिणो मदर्चायां श्रद्धावन्तो मदागमे ॥७०॥
[1]वैदिकोक्तविधानेऽपि केवलं द्विजसंज्ञकाः ।
कृते युगे च त्रेतायामीदृशा बहवो द्विजाः ॥७१॥
शस्त्रास्त्रधारिणो विप्रा मदर्चाविधिवेदिनः ।
राजन्यविप्रा अपि च भवन्ति द्वापरे युगे ॥७२॥
वैश्यकृत्यादिभेदेन शेषाः षड्भेदिनो द्विजाः ।
भविष्यन्ति कलौ देवि ! कर्म्मभ्रष्टाः कुबुद्धयः ॥७३॥
कृषिगोरक्षवाणिज्यवृत्तयो वैश्यसंज्ञकाः ।
श्रद्धाविहीनाः सत्कृत्ये शूद्रनीचादिसेवया ॥७४॥

नित्य षट्कर्म में लगे हुए, अष्टाङ्ग योग करनेवाले (६८) और मेरे रहस्य को भली भाँति जाननेवाले ब्राह्मणों की 'देव' संज्ञा है। षट्कर्म और योग करनेवाले, जो वेद और शास्त्र की पद्धति से मेरा यज्ञ करतें हैं, (६९) उन्हें 'ऋषि' ब्राह्मण कहते हैं। जो षट्कर्म करनेवाले हैं, मेरे शास्त्र तथा मेरे पूजन में जिनकी श्रद्धा है (७०) और वेदोक्त विधान में जिनका विश्वास है, वे 'द्विज' संज्ञक ब्राह्मण हैं। सत्ययुग और त्रेता में उपर्युक्त प्रकार के ब्राह्मण बहुत थे। (७१) शास्त्र एवं अस्त्र दोनों को धारण करनेवाले और मेरी पूजा की विधि को जाननेवाले ब्राह्मण 'राजन्य' संज्ञक हैं। सो इस प्रकार के भी ब्राह्मण द्वापर युग में होंगे। (७२) वैश्यकर्मादि भेद से छः प्रकार के कर्मभ्रष्ट और दुष्ट बुद्धिवाले ब्राह्मण कलियुग में होंगे। (७३) खेती, गोपालन, और वाणिज्य की वृत्ति करनेवाले ब्राह्मण 'वैश्य' संज्ञक हैं। शूद्रादि नीच जनों की सेवा करने से सत्कर्म में जिनकी श्रद्धा नहीं रह गई,

१ ग. ते वैदिकविधानेऽपि ।

नियमाधीतिरहिताः केवलं स्वार्थकामुकाः ।
अनिष्टपितृदेवर्षिद्विजास्ते शूद्रसंज्ञकाः ॥७५॥
परभ्रामकशास्त्रोपदेष्टारोऽतिप्रतारकाः ।
उन्मील्य नेत्रे ज्ञानीव बिडालो भक्षणे यथा ॥७६॥
दम्भार्थं कर्मिण इति ज्ञानिनो वयमित्यपि ।
अन्तःश्रद्धाविहीनाश्च धनस्वार्थैकलिप्सवः ॥७७॥
मौनव्याजाः सर्वभक्षाः क्रूरचित्ता बिडालकाः ।
धर्म्माधर्म्मौ पुण्यपापे कृत्याकृत्ये स्वकर्म्म च ॥७८॥
नैव जानन्ति देवर्षिपितृमातृगुरूनपि ।
येन केनापि कृत्येन केवलं स्वोदरंभराः ॥७९॥
केवलं विप्रसंज्ञार्थं कुद्यर्थं तन्तुधारिणः ।
विप्रोक्तसंस्कारहीनाः पशुविप्राः प्रकीर्त्तिताः ॥८०॥

जो नियम और अध्ययन से रहित हैं, केवल अपना स्वार्थ चाहने वाले हैं और जो पितरों, देवों और ऋषियों की सेवा नहीं करते, वे ब्राह्मण 'शूद्र' संज्ञक हैं। (७५) जो दूसरे को भ्रममें डालनेवाले शास्त्रों के उपदेष्टा हैं, दूसरों को ठगनेवाले हैं, ज्ञानियों की भाँति आँख वन्द किये रहते हैं और खाने में बिल्ली की भाँति हैं, (७६) दिखावे के लिये कर्म करते हैं, अपने को ज्ञानी भी मानते हैं, भीतर से उन्हें श्रद्धा का नाम नहीं, केवल धन और स्वार्थ चाहते हैं, (७७) मौनी होने का बहाना करते हैं और खान-पान का विचार नहीं करते हैं, ऐसे क्रूरचित्त ब्राह्मण 'विडाल' कहलाते हैं। जो धर्म-अधर्म, पुण्य-पाप, कृत्य-अकृत्य तथा अपना कर्म नहीं जानते हैं (७८) और न पिता, माता तथा गुरू को जानते हैं, जिस किसी उपाय से केवल पेट भरना जानते हैं, (७९) वे ब्राह्मण केवल नाम के लिये हैं और जनेऊ केवल पेट भरने के लिये पहने हुए हैं। ब्राह्मणोचित सम्पूर्ण संस्कारों से हीन वे 'पशु' ब्राह्मण कहलाते हैं। (८०) ब्राह्मण के

[1]जनित्वा विप्रवंशेषु म्लेच्छकृत्ये कृतप्रियाः ।
श्मश्रुलत्वेऽतिसंसक्ता मद्यमांसादिभक्षणे ॥८१॥
सर्वनारीसङ्गमे च शुचिकृत्यविनिन्दकाः ।
देवर्षिपितृदेवोक्तशास्त्रश्रद्धाविहीनकाः ॥८२॥
निर्दयाः प्राणिहिंसायां कुयोनौ सङ्गमिच्छवः[2] ।
विप्रब्रुवाः पामरास्ते दुर्धियो म्लेच्छसंज्ञकाः ॥८३॥
हिंसाकर्मरता नित्यं नीचसेवनतृप्तयः ।
स्वकर्म्मलेशमपि च न कुर्वन्ति कदाचन ॥८४॥
आचाण्डालादितुर्ययोनिस्त्रीमात्रकृतसंगिनः ।
मद्यमांसादिदुर्द्रव्यभक्ष्याभक्ष्याविचारिणः ॥८५॥
[3]देवमातापितृगुरुविप्रनित्यावमानिनः ।
विप्रयोनौ कुतोऽस्माकं जनिर्जातेति कुत्सिताः[4] ॥८६॥

वंश में जन्म पाकर म्लेच्छ कर्मों में जिनकी प्रीति हुई, मूंछ दाढ़ी के सँवारने में मन लगा, जो मद्य मांसादि खाने लगे, (८१) सभी स्त्रियों में रत हुए, पवित्र कर्मों की निन्दा करने लगे, जिन्हें देव, ऋषि, पितृ और देवों के कहे हुए शास्त्र पर श्रद्धा नहीं रह गई, (८२) प्राणियों को पीडा देने में दया नहीं रही एवं कुयोनि-संगम में रूचि हुई, वे नीच और दुष्ट ब्राह्मणब्रुव 'म्लेच्छ' संज्ञक हैं। (८३) जो नित्य हिंसा में रत हैं, नीच की सेवा में सुख मानते हैं, अपने कर्म का लेश भी कभी नहीं करते, (८४) चाण्डाली आदि क्या स्त्रीमात्र होने से ही जो संगम करते हैं, मद्य-मांस का जिन्हें शौक़ है, खाने पीने का कोई विचार नहीं है, (८५) देवता, माता, पिता, गुरु और ब्राह्मणों का नित्य अपमान करते हैं, जिनको इस बात की शिकायत

१ ग. पुस्तकेऽतः पूर्वं—'केवलं विप्रसंज्ञार्थं कुद्यर्थं तन्तुधारिणः, इत्यधिकमस्ति। २ ग. संगमिप्सवः। ३ ग. देवमातृपितृगुरुविप्राणामवमानिनः। ४ ख. कुत्सिवः।

स्वधर्म्मगन्धमपि च न जानन्तः कदाचन ।
प्राणिहिंसनसन्तुष्टमतयः क्रूरनिर्दयाः ॥८७॥
निजानुरूपकृत्यज्ञजनसंसर्गलिप्सवः ।
सज्जनध्वंसिनो नित्यं द्विजाश्चाण्डालसंज्ञकाः ॥८८॥
एवं क्रियाभ्रंशिताश्च भविष्यन्ति कलौ द्विजाः ।
एवं च क्षत्रविट्शूद्रादयोऽपि बहुशः कलौ ॥८९॥
दुष्कर्म्मनिरता सर्वेऽप्यनुलोमविलोमजाः ।
क्वचित् क्वचिच्च विरला मद्भक्ता लक्षकोटिषु ॥९०॥
शूद्रादयोऽपि मद्भक्ता न नीचा ब्राह्मणाद्वराः ।
सर्ववर्णेषु ते नीचा ये ह्यभक्ता मयि प्रिये ! ॥९१॥
तस्मात् कलावीदृशानां त्वां विना नो धृतिः प्रिये ! ।
कलिपापयुगे राजा विप्रास्तदनुसारिणः ॥९२॥

है कि मेरा जन्म ब्राह्मण के घर क्यों हुआ (८६) और अपने धर्म का गन्ध जिन्हें कभी नहीं लगा, प्राणिहिंसा से जो क्रूर निर्दय (८७) नित्य सन्तुष्ट रहते हैं, अपने समान कर्मवाले लोगों के संग की इच्छा करते हैं और सदा सज्जनों की बुराई किया करते हैं ऐसे ब्राह्मण 'चाण्डाल' संज्ञक हैं। (८८) इस प्रकार कर्म-भ्रष्ट ब्राह्मण कलियुग में होंगे। क्षत्रिय, वैश्य शुद्रादि भी ऐसे ही बहुत होंगे। (८९) सब दुष्कर्म में निरत होंगे। किसी की उत्पत्ति अनुलोम से और किसी की विलोम × से होगी। मेरा भक्त तो लाखों करोड़ों में कोई विरला ही होगा। (९०) शूद्रादि जो मेरे भक्त हैं, वे नीच नहीं हैं, वे ब्राह्मणों से भी श्रेष्ठ हैं। हे प्रिये ! जो मेरे भक्त नहीं हैं, वे ही सब वर्णों में नीच हैं। (९१) हे प्रिये ! कलियुग में ऐसे लोगों का उद्धार विना तुम्हारे हो नहीं सकता। कलि

× उत्तम जाति के पुरुष से निकृष्ट योनि में जो सन्तान होती है, वह अनुलोमज कहलाती है। निकृष्ट जाति के पुरुष से उत्तम योनि में जो सन्तान होती है, वह विलोमज कहलाती है।

तेषां निन्दा न कर्त्तव्या युगरूपा हि वै द्विजाः ।
अहमेव द्विजतनुर्मद्रहस्यं यतो विदुः ॥६३॥
जनास्तेनाऽऽगमपुराणश्रुतिस्मृतिगोपितम् ।
मद्रहस्यविदो विप्रा मत्स्वरूपा न संशयः ॥६४॥
अहं विप्रतनुत्वेन मद्रहस्यं प्रकाशये ।
तस्मात् कलौ मद्रहस्यवेदिनो दुर्लभा द्विजाः ॥६५॥
श्रुतिस्मृतिपुराणागमेतिहासविदो यतः ।
युगत्रयेऽपि बहवः कलौ वेत्तास्ति वा न वा ॥६६॥
गूढस्तथाऽप्यस्ति यदि नोपदेक्ष्यति पापिनाम्[1] ।
तस्माद् द्विजा मम तनुर्न दूष्याः शुभमिच्छुभिः ॥६७॥
युगत्रयेऽपि स्वर्गादिलोकाः पूर्णाः सुकर्मभिः[2] ।
कलौ संयमिनी पापजनैः पूर्णा भृशाकुला ॥६८॥

पाप का युग है, राजा और ब्राह्मण सब उसी के अनुसार चलते हैं, (९२) उनकी निन्दा नहीं करनी चाहिये, द्विज लोग निश्चय करके युग के रूप हैं। ब्राह्मण का शरीर मैं ही हूँ, क्योंकि उसी से लोग (९३) श्रुति, स्मृति, पुराण, और शास्त्र में छिपे हुए मेरे रहस्य को जान पाते हैं। मेरे रहस्य को जाननेवाले ब्राह्मण मेरे स्वरूप हैं, इसमें सन्देह नहीं है। (९४) मैं ब्राह्मण का शरीर से ही अपने रहस्य का प्रकाश करता हूँ, अतः कलियुग में मेरे रहस्य को जाननेवाले ब्राह्मण दुर्लभ हैं। (९५) क्योंकि श्रुति, स्मृति, पुराण, शास्त्र और इतिहास को जाननेवाले तीनों युगों में बहुत से थे, परन्तु कलियुग में वैसे जानकार हैं, या नहीं, इसमें सन्देह है। (९६) यदि छिपे छिपाये कोई हैं भी, तो वे पापियों को उपदेश नहीं करते, अत एव ब्राह्मण मेरे शरीर हैं, शुभ की इच्छा करनेवाले उनको दूषण न दें। (९७) तीनों युगों में स्वर्गादि लोक पुण्यात्माओं से पूर्ण थे।

१ ग. पापिनम्। २ ग. स्व......।

भवन्त्वशून्या[1]: स्वर्गादिपुण्यलोकास्त्वयाऽनघे ! ।
व्यर्थप्रसाधना देवनार्य्यः सुकृतिदुर्लभात् ॥९९॥
मोदं त्वप्सरसस्त्वस्मिन्नपि[2] तास्त्वत्प्रसादतः ।
चातुर्वर्ण्याः सङ्कराश्च नीचास्तदबला अपि ॥१००॥
महापापयुताश्चापि मुक्तास्त्वदवगाहनात् ।
त्वदम्बुकणिकापानाद् मुच्यन्तां[3] तव दर्शनात् ॥१०१॥
किं पुनस्तीरवसतां तेषां मुक्तिः करे स्थिता ।
तनुत्यजां तव तटे मत्सारूप्यं ध्रुवं प्रिये ! ॥१०२॥
गच्छ प्रियेति मामेवमनुशास्य परः शिवः ।
लोकोपकृतये [4]वार्धिं काश्यां मां सेव सादरम् ॥१०३॥
तदाहं भर्त्रनुज्ञाता या कापि वाहिनी त्वयि ।
मिलिता पल्वलं कुल्या [5]रथ्योदमपि सुन्दरि ! ॥१०४॥

कलियुग में यमपुरी पापियों से ठसाठस भर उठती है। (९८) हे अनघे ! तुम्हारे कारण ये स्वर्गादि लोक शून्य न हों। पुण्यात्माओं के दुर्लभ होने से देवस्त्रियों की प्रसाधना (शृंगार) व्यर्थ हो जाती है। (९९) तुम्हारे प्रसाद से उस कलियुग में भी ये अप्सराएँ आनन्द करें। चारों वर्ण, संकरवर्ण, नीच, और उनकी स्त्रियाँ (१००) तथा महापापी भी तुममें स्नानकर मुक्त होवें। तुम्हारे जल के एक बिन्दु-पान करने से और तुम्हारे दर्शन से लोग मुक्त हों। (१०१) फिर तीर के बसनेवालों के लिये क्या कहना, मुक्ति तो उनकी मूठी में है। हे प्रिये ! तुम्हारे तट पर शरीर छोड़नेवाला मेरे स्वारूप्य को प्राप्त होता है, यह बात ध्रुव है। (१०२) परन्तु शिव ने मुझे आज्ञा दी कि 'हे प्रिये ! तू जा, लोकोपकार के लिये समुद्र की एवं काशी में मेरी सादर सेवा कर, (१०३) और तत्पश्चात् भर्ता ने मुझे यह आज्ञा दी कि जो कोई

१ ग.…शून्यस्वर्ग……। २ ग.…खिलास्तत्प्रसादतः। ३. ख. मुच्यन्ते। ४ ग.… काश्यां प्रेषयामास मां तदा। ५ ग. पन्था अपि हि।

'त्वन्नामरूपमेवैतु मत्संयुक्ता यथाह्यहम्'[2] ।
इत्याज्ञां शिरसा गृह्य प्रयाताऽहं नृपानुगा ॥१०५॥
तदा मामाह भगवान् शृणु देव्यपरं वरम् ।
न पर्युषितदुष्टं वा न दौर्गन्ध्यं न वा लयः ॥१०६॥
न स्पर्शदुष्टं जगतां वन्द्यश्च जनतारकम् ।
विदेशनीतमपि ते शुद्धं तोयं भविष्यति ॥१०७॥
यथाऽहं नित्यशुद्धात्मा तथा त्वं नित्यनिर्मला ।
जनानुद्धारय शुभे ! गच्छेत्याज्ञामदात् स माम् ॥१०८॥
तेनाज्ञप्ता तदाऽहश्च चलिता[3] नृपमन्वगाम् ।
लोकानां दर्शनं यत्र गङ्गोत्पत्तीति या च[4] भूः ॥१०९॥

नदी, तालाब, नहर या गली का जल तुममें मिले, (१०४) हे सुन्दरि ! वह तुम्हारे नाम और रूप को प्राप्त हो, जैसे मुझमें मिला हुआ मेरा ही रूप हो जाता है। इस आज्ञा को शिरोधार्य्य करके मैं राजा के पीछे-पीछे चली (१०५) तब भगवान् ने मुझसे कहा हे देवि ! और भी वर तुम्हें देता हूँ, सुनो, तुम्हारा जल, बासी होने, दोष युक्त होने, दुर्गन्ध होने, सूखने (१०६) और छू जाने आदि दोषों से युक्त होने पर भी संसार में वन्दना करने योग्य होगा और लोगों को तार सकेगा। विदेश ले जाने पर भी तुम्हारा जल शुद्ध बना रहेगा। (१०७) जिस भाँति मैं नित्य शुद्धात्मा हूँ, वैसी ही तुम भी नित्य निर्मला हो। हे शुभे ! जाओ और लोगों का उद्धार करो ऐसी आज्ञा मुझे भगवान् ने दी। (१०८) उनसे आज्ञा पाकर मैं राजा के पीछे २ बह चली। जहाँ लोगों को मेरा दर्शन होता है और जिसे लोग गंगोत्तरी कहते हैं। (१०९) वहाँ आने के बाद मैं चार भाग में पृथक् २ विभक्त हो गई।

१ ग. त्वन्नामरूपे मेवेत सत्संयुक्ता···। २ ख. यथास्म्यहम्। ३ ग. चालिता ४ ख. ··· श्च या बभौ।

तत्रागमात् परे एव चतुर्धा ह्यभवं पृथक् ।
नरनारायणो भूत्वा तपो यत्राऽऽचरद्धरिः ॥११०॥
श्रीमत्केदारनाथं स त्रिसन्ध्यं सेव्य संस्थितः ।
परमानन्दकन्दाख्यमहालिङ्गं परात् परम् ॥१११॥
कैलासात् स्वयमागत्य हिमशैले वरप्रदम् ।
सद्यो मुक्तिप्रदं लिङ्गं दर्शनात् सर्वदेहिनाम् ॥११२॥
रेतोदहंसतीर्थादिकोटितीर्थैः सुसेवितम् ।
भूभारहरणार्थाय महाविष्णुर्महातपाः ॥११३॥
सिद्धसाधनभावेन द्विधा भूत्वा तदाश्रमे ।
लिङ्गार्चनपरौ नाम्ना नरनारायणावृषी ॥११४॥
पूजयेतां त्रिकालं तौ श्रीमत्केदारनायकम् ।
निराहारौ यतात्मानौ तन्मनस्कौ समाहितौ ॥११५॥
ग्रीष्मे पञ्चाग्निमध्यस्थौ वर्षास्वभावकाशिनौ ।
निराहारौ च शरदि हेमन्ते जलशायिनौ ॥११६॥

जहाँ पर विष्णु भगवान् ने नरनारायण होकर तप किया था। (११०) वहीं विष्णु भगवान् परमानन्दकन्द नामक परात्पर महालिङ्ग श्री-केदारनाथ की तीनों काल सेवा करते हुए स्थित हैं। (१११) कैलास से यह लिङ्ग स्वयम् आकर हिम शैलपर वर देनेवाला हुआ और अपने दर्शन से यह सब देह धारियों को सद्यः (तुरन्त) मुक्ति देता है। (११२) रेतोद, हंसतीर्थ आदि करोड़ों तीर्थों से सेवित है। पृथ्वी के भार को हरण करने के लिये बड़े भारी तपस्वी महाविष्णुजी (११३) सिद्ध-साधकभाव से उस आश्रम में दो भागों में विभक्त हो गये, और लिङ्गार्चन में दत्त चित्त हुए। उन्हीं को नरनारायण ऋषी कहते हैं। (११४) ये दोनों निराहार होकर, चित्त को वश करके और शिवजी में मन लगाये हुए समाधि में स्थित हैं। (११५) गरमी के दिनों में पञ्चाग्नि तापते हैं, वर्षा ऋतु में खुले मैदान में रहते हैं, शरद ऋतु

किंचित्कालं पर्णभक्ष्यौ किंचिच्च तृणभक्षकौ ।
किंचित्कालं जलाहारौ किञ्चिच्च पवनाशनौ ॥११७॥
किंचिच्च कणधूमादौ किञ्चित्कालमभक्षकौ ।
षट्स्वप्येवं ऋतुषु तौ केदारेशं समर्चतुः ॥११८॥
एकरूपेण गिरीशमाराद्धुं न क्षमस्त्विवति ।
द्विधा भूत्वा महाविष्णुर्नरनारायणाख्यया ॥११९॥
असेवत् परमेशानं श्रीमत्केदारनायकम् ।
सेवातुष्टेन विभुना वाञ्छितं चापि वै हरिः ॥१२०॥
तदाप्रभृति लोके तदाश्रमं प्रथितं भुवि ।
नरनारायणावासाच्छिवपूजाप्रभावतः ॥१२१॥
लोकानां मुक्तिदं स्थानं धर्म्मकामार्थदं च तत् ।
शिवदत्तवराद् विष्णुर्लोकोपकृतयेऽकरोत् ॥१२२॥

में निराहार रह जाते हैं, हेमन्त में जलशायी होते हैं। (११६) कुछ दिनों तक पत्ते ही खाया करते हैं, कुछ दिनो तक तृणाहार करते हैं, कुछ दिनों तक पानी पीकर रहते हैं और कुछ दिनों तक हवा पीते हैं। (११७) कुछ दिनों तक धूम के कणों पर वसर करते हैं, और कुछ काल तक निराहार रह जाते हैं, इस प्रकार से वे दोनों छवों ऋतुओं में केदारेश्वर की आराधना करते हैं। (११८) जब एक रूप से शङ्कर की आराधना में समर्थ न हुए, तब नरनारायण नाम से दो स्वरूप धारण करके (११९) श्रीपरमात्मा केदारनाथ की सेवा करने लगे। सेवा से तुष्ट होकर विभु ने हरि को वाञ्छित फल दिया। (१२०) तब से वह आश्रम लोक में विख्यात हुआ नरनारायण के निवास से [1]और शिवपूजा के प्रभाव से (१२१) वह स्थान लोगों को मुक्ति देनेवाला तथा धर्म, अर्थ और काम देनेवाला भी हुआ। शिवजी से वर पाकर लोकोपकार के लिये विष्णु भगवान् ने

१ ग ददौ ।

इत्येवन्तु सनत्कुमारमुनिना प्रोक्तं द्विजाग्राय तत्
शैवं दिव्यरहस्यमात्मगृहिणीं यन्नाथशर्मोदितम्[1] ।
प्रोक्तं मद्गुरुणा च मह्यमनघं सत्यं वदे ब्राह्मणाः !
यस्त्वेतत् प्रशृणोति तस्य परमं शम्भोः पदं स्वं गृहम् ॥१२३॥

इति श्रीकाशीमूलरहस्ये ब्रह्मवैवर्त्ते खिले काशीकेदार-
माहात्म्ये चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

अथ पञ्चदशोऽध्यायः ।

ऋषय ऊचुः—

वादरायणसच्छिष्य ! त्वन्मुखाम्भोजतः परम् ।
श्रुतं रहस्यं केदारनाथस्य परमाद्भुतम् ॥ १ ॥

इस स्थान को वनाया । (१२२) जिस शैव दिव्य रहस्य को नाथशर्मा ने अपनी घरवाली से कहा, वही सनत्कुमार मुनि ने ब्राह्मणों में श्रेष्ठ वामदेवजी से कहा, (१२३) वही मेरे गुरू ने मुझ निष्पाप से कहा । हे ब्राह्मण लोगो ! मैं सत्य कहता हूं, सुनो, जो इसे ध्यान लगाकर सुनता है, उसका निवास गृह शम्भु का परम पद है ।

यह ब्रह्मवैवर्त पुराण के काशी मूल रहस्यान्तर्गत केदारखण्ड का
चौदहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

दो०—वसि चहुँ थल सुरसरि चली श्रीकाशीकेदार ।
प्राचीना मणिकर्णिका जाइ मिलीं सुखसार ॥
तँह पूज्यौ केदार तब प्रकटे कृपा-निकेत ।
क्षमा कीन्ह अपराध सब दीन्हें वर अतिहेत ॥

ऋषि लोग बोले—हे व्यासजी के उत्तम शिष्य ! सूतजी ! तुम्हारे मुख कमल से हम लोगों ने केदारनाथजी का परम अद्भुत उत्कृष्ट रहस्य सुना । (१) अब हम लोगों को आप यह बतलाइये कि महा-

१ ग.……शर्मा वदत् ।

कदा प्राप्तो महाविष्णुः केदारं पूजितुं शिवम् ।
कालभेदरहस्यं त्वमस्माकं वक्तुमर्हसि ॥ २ ॥
इति पृष्टस्तदा सूतो मुनीन्द्रैः शिवयोगिभिः ।
तदा प्राह हसन् तेषामाशयं संविदन् हृदा ॥ ३ ॥

सूत उवाच—

शृणुध्वं मुनयः सर्वे रहस्यं परमेशितुः ।
वेदागमपुराणेतिहासशास्त्रादयोऽखिलाः ॥ ४ ॥
अनादयः परेशस्य निश्वासा ह्यञ्जसा स्थिराः ।
कदाचित् कालपाकेन मलिना विशदा अपि ॥ ५ ॥
शाश्वतो भगवान् शम्भुः कल्पेकल्पे यथा पुरा ।
प्रपञ्चाख्यां महालीलां निर्गुणोऽपि करोति वै ॥ ६ ॥
या कृता तेन वै लीला तां शास्त्राणि वदन्ति हि ।
पूर्वपश्चात्कालभेदो ज्ञातुं केनाऽपि न क्षमः ॥ ७ ॥

विष्णुजी शिवजी के पूजन के लिये केदार कब आये ? इस कालभेद का रहस्य भी कहिये। (२) जब सूत से शिवयोगी मुनीन्द्रों ने ऐसा प्रश्न किया, तब सूतजी उनके आशय को समझ कर हँसते हुए बोले। (३) सूतजी ने कहा—सब मुनि लोग परमेश्वर के रहस्य को सुनें। वेद, तन्त्र, पुराण, इतिहासादि जितने शास्त्र हैं, (४) ये सब अनादि हैं। परमेश्वर के स्वाभाविक निःश्वास रूप से स्थिर हैं। कभी कालविपाक से मलिन हो जाते हैं, और कभी स्वच्छ हो जाते हैं। (५) सनातन शम्भु भगवान् निर्गुण होने पर भी पहिले कल्पों में जैसी लीला कर आये हैं, वैसी ही प्रपञ्च नामक महालीला निश्चत रूप से करते हैं। (६) जो लीला उन्होंने की है, उसी को शास्त्र कहते हैं। पहिले और पीछे के काल के भेद को समझने में कोई भी समर्थ नहीं है। (७) यही मैंने भी अपने गुरुजी से पूछा था। परन्तु गुरुजी ने मुझसे कहा कि ईश्वर की लीला अनिर्वाच्य है। इसमें शास्त्र ही हम लोगों के लिए

अहमप्येवमेवैतत् पृष्टवान् मद्गुरुं पुरा ।
ईशकृत्यमनिर्वाच्यं प्रमाणं शास्त्रमेव नः ॥ ८ ॥
पूर्वपश्चात्कालभेदं मा पृच्छेत्याह¹ मां गुरुः ।
तस्माद् भूतं भविष्यञ्च वर्त्तमानमपि द्विजाः ॥ ९ ॥
वदन्ति सूक्ष्मं शास्त्राणि तेषु शङ्कां न कारयेत् ।
इत्येवंवादिनं सूतं प्रशस्य मुनिपुङ्गवाः ॥१०॥
सत्यमुक्तं त्वया विद्वन्नित्यूचुः सूतमस्तुवन् ।
रहस्यं वद नो विद्वन् ! गङ्गावाण्योः सुभाषणम् ॥११॥
किमाह गङ्गा तत्पश्चाद् वाणीं स्वागमवैभवम् ।
शृणुध्वमिति तान् सूतः प्राह गङ्गा वचः पुनः ॥१२॥
वाणि ! शृणु यथाऽहं श्रीकेदारचरणं गता ।
महाविष्णुर्यदा शम्भुमारराध² द्विधाभवन् ॥१३॥

प्रमाण है, (८) कौन पहिले हुआ ? कौन पीछे हुआ ? कालभेद का यह प्रश्न मत करो। इसलिये हे ब्राह्मणो ! भूत, भविष्य और वर्तमान को भी शास्त्र सूक्ष्मरूप से कहते हैं। (९) उनमें शङ्का न करनी चाहिये। सूतजी की बात सुनकर मुनियों ने उनकी प्रशंसा की। (१०) और सूतजी की स्तुति करते हुए कहने लगे कि हे विद्वन् ! तुमने सच कहा, अब गङ्गा और सरस्वती का रहस्य संवाद कहो। (११) गङ्गा ने तब वाणी से अपने आगमन के माहात्म्य के विषय में क्या कहा ? सूतजी ने कहा— कि सुनिये, और तत्पश्चात् उन लोगों को गङ्गाजी की कही हुई बात सुनाने लगे। (१२) गङ्गाजी ने कहा—हे वाणी ! जिस भाँति में केदार के चरणों को प्राप्त हुई, सो सुनो। छहों ऋतुओं में महाशीत के आकर हिमालय में जब महाविष्णु दो भाग में विभक्त होकर शम्भु की आराधना करने लगे, तब उनकी प्रार्थना पर मैं अलकनन्दा नामक

१ ग. पृच्छत्याह। २ ग. पुंस्तकीयोऽयं पाठः, आ० पु०—"'मारिराध।

महाशीताकरे[1] स्थाने षट्कालं हिमभूधरे ।
तेनाहं प्रार्थिता जाताऽलकनन्दा महानदी ॥१४॥
शीतबाधानिवृत्त्यर्थं तस्याऽनुष्ठानकर्म्मणि ।
अनायासेन केदाराराधनाय च सौख्यदा ॥१५॥
तप्तोदका तदग्रेऽहं स्थित्वाऽगां पूर्वगामिनी ।
तथा मन्दाकिनीनाम्ना केदारं सेवितुं त्वगाम् ॥१६॥
लोकोद्धाराय गिरिजा तपोज्वालामुखी यतः ।
करोत्यद्यापि च तपः प्रसादाय महेशितुः ॥१७॥
तया चाकारिता द्रष्टुं नवोढा शम्भुना ह्यहम् ।
तत्रैकांशेन गत्वाऽहं तं सन्तोष्य स्थिता तया ॥१८॥
सापि मय्यवगाह्येशा ह्यदाद् मां मणिकर्णिकाम् ।
तस्याः स्थानेन तप्तोदा जाताऽहं मणिकर्णिका ॥१९॥
तत्र स्थित्वा ज्वालयाऽहं ग्राह्याऽनुज्ञां ततः परम् ।
भगीरथानुगामेत्य[2] चतस्रोऽप्येकतामगाम् ॥२०॥

महानदी हो गई। (१४) उनके अनुष्ठान कर्म में शीत की बाधा की निवृत्ति के लिये, जिसमें वे विना आयास के केदारजी का आराधन कर सकें, (१५) मैं सुखद गरम जलधारण करती हुई उनके सामने से पूर्व गामिनी होकर आगे बढ़ी। तत्पश्चात् मन्दाकिनी नाम से केदारनाथ की सेवा के लिये गई। (१६) जहाँ पर कि ज्वालामुखी गिरिजा लोकोद्धार तथा महेश्वर के प्रसाद के लिये आज तक तप करती हैं। (१७) शङ्करजी से नूतन विवाहिता मैं उनसे बुलाई गई, अतएव मैं उनसे मिलने के लिये गई। मैंने एक अंश से जाकर उनका सन्तोष किया और उन्हीं के साथ वहीं ठहर गई। (१८) उन्होंने मुझ-में स्नान करके मुझे मणिकर्णिका (कान की मणि) दी, तब उनके स्नान से मैं गरम जलवाली मणिकर्णिका हो गई। (१९) वहाँ मैं ज्वाला

१ ग. कर । २ ग. रथानुगा भूत्वा गङ्गाद्वारेति नामतः ।

ततः कुशावर्त्तभूमौ गङ्गाद्वारेति नामतः ।
मायापुरीं कनखलं प्राप्य पश्चान्नृपानुगा ॥२१॥
अनुशिष्टा जह्नुनापि पुत्रीत्वेन ततः परम् ।
युवाभ्यां सह काश्यां वै वसे [1]विश्वेशमर्चयन् ॐ ॥२२॥
श्रीमत्केदारनाथञ्च प्राचीनां मणिकर्णिकाम् ।
अभ्यर्च्य प्रथमं काश्यां विमोक्ष्यामि शिवागस[2]ः ॥२३॥
विश्वेशं मणिकर्णीं च संसेव्य निवसे स्थिरा ।
स्तब्धवेगा शनैस्तत्र काश्यां स्थित्वाऽखिलांशतः ॥२४॥
एकदेशांशतो भूपपितॄनुद्धर्त्तुमम्बुधिम् ।
मत्सङ्गता नदीः सर्वा ह्यनुज्ञाप्य पृथक् व्रजे ॥२५॥
इत्युक्त्वा रविजां वाणीं स्ववृत्तान्तं सुरापगा ।
ताभ्यां साकमनेकाभिर्नदीभिः संगता चिरात् ॥२६॥

के साथ ठहर गई, और तत्पश्चात् अनुज्ञा पाकर भगीरथ के पीछे-पीछे पृथ्वी पर जाकर चारों हम एक हो गईं। (२०) वहाँ से कुशावर्त में, जिसे गङ्गाद्वार भी कहते हैं, मायापुरी कनखल में पहुँच कर, वहाँ से राजा के रथ के पीछे चलीं। (२१) इसके बाद जह्नु ने भी पुत्री रूप से मेरा अङ्गीकार किया। अब मैं तुम दोनों के साथ काशी में विश्वेश्वर की पूजा करती हुई वसूंगी। (२२) पहिले श्रीकेदारनाथ और प्राचीना मणिकर्णिका की पूजा करके शिवापराध से विनिर्मुक्त होऊंगी। (२३) तब विश्वनाथ और मणिकर्णिका की सेवा करके स्थिर होकर रहूंगी। वहाँ मेरा वेग शान्त हो जायगा और धीरे २ बहूंगी। काशी में पूर्ण अंश से ठहरकर (२४) अपने साथवाली सब नदियों को अनुज्ञा देकर, अपने एक अंश से राजा के पितरों के उद्धार के लिये मैं पृथक् जाऊँगी। (२५) यमुना और सरस्वती से गङ्गाजी इस भाँति अपना वृत्तान्त कहकर उन दोनों को तथा अन्य नदियों को, जो आकर मिल गई थीं, साथ लिये हुए

१ ग. विश्वेशसन्निधौ। ॐ डीबभाव आर्षः। २ ग. शिवागसम्।

अविमुक्तक्षेत्रभागदक्षिणस्यां तदा दिशि ।
प्राप्य काशीमुत्तरस्थां [1]प्रणम्य सन्मुखाऽभवत् ॥२७॥
श्रीमत्केदारविश्वेशमणिकर्णीद्वयादिकाः ।
देवताः प्राणमद् भक्त्या विनयेन[2] पदे पदे ॥२८॥
श्रीमत्केदारनाथाग्रे प्राचीनां मणिकर्णिकाम् ।
[3]रेतोदाद्यखिलैस्तीर्थैर्युतां गौर्य्यघनाशिनीम् ॥२९॥
सर्वपापाधिकतरमहादेवापराधतः ।
समर्था तारितुं जीवान् वरदानाद् महेशितुः ॥३०॥
तां प्राप्य प्रथमं गङ्गा विगाह्याह्लादमभ्यगात् ।
श्रीमत्केदारनाथश्च सम्पूज्य विधिवत् तदा ॥३१॥
कृतकृत्याऽभवद् गङ्गा विमुक्ता शङ्करागसः ।
[4]ध्यायन् केदारनाथाग्रे प्रसादं प्रार्थयत् स्थिता ॥३२॥

शीघ्रता से (२६) अविमुक्त क्षेत्र की दक्षिण दिशा में पहुँची। और अपने उत्तर में स्थित काशी को प्रणाम करती हुई सम्मुख हुई। (२७) श्रीकेदारनाथ, विश्वनाथ, दोनों मणिकर्णिका आदि देवताओं को भक्ति और विनय के साथ पद पद पर प्रणाम करती हुई चली। (२८) श्रीमत्केदारनाथ के आगे जो प्राचीना मणिकर्णिका है, सो रेतोदादि सम्पूर्ण तीर्थों से युक्त, गौरी के अघ का नाश करनेवाली है, (२९) महेश्वर के वरदान से सब पापों से बढ़कर जो महादेव का अपराध है, उससे भी जीवों के तारने में समर्थ है। (३०) उसे पाकर गङ्गाजी ने पहिले स्नान किया और प्रसन्न हो गई, तब विधि के साथ श्रीमान् केदारनाथजी की पूजा की (३१) और शंकर के अपराध से विनिर्मुक्त होकर कृतकृत्य हो गई। केदारनाथ के सामने ध्यान करती हुई और प्रसाद की प्रार्थना करती हुई ठहर गई। (३२) तब

१ ग. प्रणमन्ती सम्मुखी ह्यभूत्। २ ग. नियमेन। ३ ख. रेतोदाख्या। ४ ग. ध्यायन्तीशं प्रार्थयन्ती केदाराग्रे तु संस्थिता। आ० पु०—ङीबभाव आर्षः।

तदा प्रसन्नो भगवान् प्राह गम्भीरया गिरा ।
प्रिये ! प्रसन्नस्त्वद्भक्त्या मुक्ता[1] त्वं मेऽपराधतः ॥३३॥
त्वय्यत्र [2]मत्तीर्थसंगस्थाने ये स्नान्ति मानवाः ।
मदागसोऽपि मुक्तास्ते किमुताऽन्याघसन्ततेः ॥३४॥
अन्यक्षेत्रकृताघानां काश्यां मुक्तिर्न संशयः ।
मयि काश्यां कृताघानामपि मुक्तिरिह प्रिये ! ॥३५॥
त्वत्सङ्गतमहातीर्थे गौर्य्याख्ये मत्पुरः स्थिते ।
नभोमासि विधोर्वारे राकायुक्ते विशेषतः ॥३६॥
[3]अत्र स्नानं पूजनं मे दुर्लभं प्राणिनां प्रिये ! ।
लभेत् स्नानं यदि तथा सोऽहमेव न संशयः ॥३७॥
अद्य तादृक् पुण्यदिनं प्राप्ता त्वमपि मत्पुरः ।
एवं पुण्यदिनं नृणां लभ्यते बहुपुण्यतः ॥३८॥

प्रसन्न होकर भगवान् गम्भीर वाणी से बोले—हे प्रिये ! मैं तुम्हारी भक्ति से प्रसन्न हूँ, तुम मेरे अपराध से छूट गई । (३३) यहाँ तुम्हारे और मेरे तीर्थ के संगम के स्थान में जो लोग स्नान करेंगे, वे मेरे अपराध से भी मुक्त हो जायंगे, अन्य पाप समूहों की तो कथा ही क्या है ? (३४) अन्य स्थान में किये हुए पापों से काशी में विनिर्मुक्ति होती है; काशी में भी मेरे प्रति किये हुए पापों की यहाँ मुक्ति होती है इसमें सन्देह नहीं है । (३५) हे प्रिये ! मेरे सामने गौरीनामक महातीर्थ है, जिससे तुम्हारा संगम हुआ है, वह सावन सोमवार को और विशेषतः यदि उस दिन पूर्णिमा का भी योग आ पड़े, तो (३६) स्नान और पूजन के लिए प्राणियों को दुर्लभ है । उस दिन यदि स्नान कर ले, तो वह मद्रूप हो जाय इसमें सन्देह नहीं है । (३७) आज मेरे सामने तुम्हें वही पुण्य दिन मिल गया । ऐसा पुण्य दिन मनुष्यों को बड़े पुण्य से मिलता है (३८) अतः तुम कृतार्थ हुई,

१ ग. त्वं मुक्ता । २ ग. मत्तीर्थसंस्था ये स्नास्यन्ति मानवाः । ३ ग. तत्र ।

तस्मात् कृतार्था त्वमपि ये च स्नान्त्यत्र तेऽपि हि ।
इतः परं त्वं विश्वेशं सेवस्व मणिकर्णिकाम् ॥३९॥
स्थिरा भवाऽत्र स्वल्पेनांशेन व्रज महोदधिम् ।
इत्युक्त्वान्तरधाच्छम्भुर्नत्वा गङ्गा ततोऽभ्यगात् ॥४०॥
मणिकर्ण्यादिविश्वेशसेवायै मुदिता तदा ।
एवं गङ्गा महेशाने पूर्वं जाता कृतागसी ॥४१॥
पुनर्मुक्ता महातीर्थे केदारेशप्रसादतः ।
एवं सनत्कुमारोक्तं श्रुत्वा वै शम्भुभक्तिमान् ॥४२॥
वामदेवो मुदं लेभे सोमवानपि भूपतिः ।
इमां कथां नाथशर्माप्यनवद्यामुपादिशत् ॥४३॥
तामेव मद्गुरुर्माश्च प्राह कारुणिकोत्तमः ।
किं वाऽत्र बहुनोक्तेन शृणुध्वं मुनिपुङ्गवाः ॥४४॥
कीदृशी सा महागङ्गा साक्षाच्छम्भुस्वरूपिणी ।
यस्या दर्शनतो मुक्तिर्न जाने स्नानजं फलम् ॥४५॥

और जो यहाँ स्नान करेंगे, वे भी कृतार्थ होंगे । अब इसके बाद तुम विश्वेश्वर और मणिकर्णिका का सेवन करो । (३९) यहीं तुम ठहर जाओ, और थोड़े अंश से महोदधि (समुद्र) में जा मिलो, ऐसा कह कर शङ्कर तो अन्तर्धान हो गये । तब गङ्गाजी उनको नमस्कार करके (४०) हर्ष के साथ मणिकर्णिका और आदिविश्वेश्वर की सेवा के लिये आगे बढीं । इस प्रकार पूर्व काल में गङ्गाजी से शिवजी का अपराध हो पड़ा था । (४१) फिर इस महातीर्थ में केदारेश्वर के प्रसाद से वह अपराध छूट गया । इस प्रकार सनत्कुमार की बातें सुनकर शङ्कर के भक्त (४२) वामदेव और राजा चन्द्रवान् को बड़ा आनन्द हुआ । इसी कथा को नाथशर्मा ने अनवद्या से कहा (४३) और वही करुणा करनेवालों में श्रेष्ठ मेरे गुरूजी ने मुझसे कही । हे मुनिवरो ! सुनो, बहुत क्या कहें, (४४) वह महागङ्गा साक्षात् शम्भु

विभोः पदं प्रयान्त्येव यस्यां पतितकीकसाः ।
तादृश्यपि शिवाघस्य मुक्तये प्राप तत्सरः ॥४६॥
यमुना कीदृशी याम्यलोकं शून्यमकारयत् ।
वल्लभा च महाविष्णोस्तादृश्यपि महानदी ॥४७॥
सरस्वती कीदृशी सा पराशक्तिस्वरूपिणी ।
यया देवस्त्रियः श्रेष्ठाः पुंदुर्लभविचारतः ॥४८॥
ब्रह्माणं प्राप्य बहुधा[1] वियुक्ता नायकैश्चिरम् ।
प्रसादाद् ब्रह्मणः पश्चात् समाधाय सरस्वतीम् ॥४९॥
प्राप्ताः स्वस्वपतीन् कालान्तरेण बहुयत्नतः ।
तादृक्प्रभावयुक्तापि वाणी दिव्यतरङ्गिणी ॥५०॥
एते द्वे अपि गङ्गापि यस्मिन् सरसि संगमात्[2] ।
प्राप्ताः कृतार्थतां विप्रा इत्येवं शिवभाषितम् ॥५१॥

स्वरूपा हैं। जिनके दर्शनमात्र से मुक्ति होती है, स्नान करने से क्या फल हो, यह मैं नहीं जानता। (४५) जिनमें फूल (हड्डी) पड़ने से लोग विभु के पद को प्राप्त होते हैं, ऐसी गङ्गा भी शिवापराध से छुटकारा पाने के लिये उस सर में आई। (४६) यमुनाजी, जिन्होंने यमलोक ही शून्य कर दिया था और जो महाविष्णु की प्यारी हैं, ऐसी महानदी भी आई। (४७) सरस्वतीजी तो पराशक्तिस्वरूपा हैं, जिनके कारण देवताओं की श्रेष्ठ स्त्रियों को पतिदर्शन दुर्लभ हो गया था, (४८) वे अपने २ पतियों से बहुत दिनों की बिछुड़ी हुई ब्रह्माजी के शरण गई और उनकी बड़ी प्रार्थना की। ब्रह्मदेव की कृपा से, सरस्वती को सन्तुष्ट करके (४९) बड़े यत्न से कालान्तर में अपने २ पतियों को प्राप्त हुई—ऐसी प्रभाववाली दिव्य नदी सरस्वती भी आई। (५०) ऐसी ये दोनों नदियाँ और गङ्गा जी भी इस सरोवर के संगम से कृतार्थ हुई। हे ब्राह्मणो! यह बात शङ्करजी की कही हुई है। (५१) ऐसे

१ ख. विबुधा। २ ग. संगताः।

तादृशस्य च तीर्थस्य प्राचीनस्य विशेषतः ।
गौरीकर्णमणीनाञ्च पतनाद् मणिकर्णिका ॥५२॥
रेतोदादिमहातीर्थयोगाद् वरविधानतः ।
हरंपापाख्यनाम्ना तद् गौरीतीर्थमभूत् पुरा ॥५३॥
तादृशस्य रहस्यं च केदारेशस्य चापि यत् ।
रहस्यं दुर्लभं लोके तथापि शिवभाषितम् ॥५४॥
गुरुप्रसादाद् धन्योऽहं यूयं धन्या न संशयः ।
धन्याऽनवद्या भर्त्तारं पप्रच्छैतद्रहस्यकम् ॥५५॥
धन्यस्तु वामदेवोऽपि यः स्कन्दांशमपृच्छत ।
यैरेतत् परमं गुह्यं लोकोपकृतये परम् ॥५६॥
अस्माभिरपि विज्ञातं रहस्यं शिवभाषितम् ।
तस्माज्जानथ विप्रेन्द्राः ! कृपा शम्भोर्गरीयसी ॥५७॥

तीर्थ का और विशेषतः प्राचीना का गौरीजी के कानों की मणियों के गिरने से मणिकर्णिका नाम हुआ। (५२) रेतोदादि महातीर्थों के योग से और वर के प्रभाव से इसका नाम गौरी-तीर्थ पड़ा, पहिले इसका नाम 'हरम्पाप' था। (५३) ऐसे तीर्थप्रवर एवं केदारेश्वर का रहस्य लोक में दुर्लभ है, यह बात भी शिवजी की ही कही हुई है। (५४) गुरुजी के प्रसाद से मैं भी धन्य हूँ और आपके धन्य होने में तो कोई सन्देह ही नहीं है। अनवद्या भी धन्य है, जिसने अपने भर्ता से यह रहस्य पूछा। (५५) ये वामदेव जी भी धन्य हैं, जिन्होंने स्वामी कार्तिकेय के अंश सनत्कुमारजी से पूछा। जिन्होंने इस परमगुह्य शिवभाषित रहस्य को बड़े भारी लोकोपकार के लिये प्राप्त किया। (५६) इसी से हम लोगों ने भी जाना, अतः हे ब्राह्मणो ! यह जानना चाहिये कि शिवजी की बड़ी कृपा है (५७) इस प्रकार सूतजी ने श्रेष्ठ मुनियों से आदर के साथ शिवजी का रहस्य एवं प्राचीन मणिकर्णिका की कथा कही। जिसकी

१ ख. ग. ०च्च वरदानतः। २ ग. जानीत।

इति च मुनिवरेन्द्रान् प्राह शम्भोः रहस्यं
चिरतरमणिकर्णीतीर्थमप्यादरेण ।
श्रवणमतिरभूद् यः काशीकेदारनाथम्
स पुनरिह जनन्या गर्भवासं न याति ॥५८॥
असुरसुरमुनीन्द्रैरर्चितं सद्रहस्यं
घनकलुषवनानां दाहदावाग्निरूपम् ।
सकृदपि शिवभक्त्या यः शृणोति प्रशस्तं
स पुनरपि भवाब्धौ नावगाहेद्धि सत्यम् ॥५९॥

इति श्रीकाशीमूलरहस्ये ब्रह्मवैवर्त्ते खिले काशीकेदार-
माहात्म्ये पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

अथ षोडशोऽध्यायः ।

ऋषय ऊचुः—

रोमहर्षणसम्भूत ! शिवज्ञानैकसागर ! ।
दिवोदासः कथं शम्भोरपराधी बभूव ह ॥ १ ॥

काशीकेदारनाथ की कथा सुनने की इच्छा होती है, उसे फिर माता के गर्भ में वास नहीं मिलता। (५८) यह सद्रहस्य घने पापों के बन को जलाने में दावाग्नि रूप है, और देव, दानव तथा श्रेष्ठ मुनियों से पूजित है। इसे जो एक बार भी सुन लेता है, वह संसार सागर में फिर नहीं डूबता। यह बात सत्य है।

यह ब्रह्मवैवर्तान्तर्गत खिल काशीमूलरहस्य काशी केदार-माहात्म्य का
पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

दोहा—दिवोदास को ब्रह्म वर शंकर मेरु निवास ।
भोग-नाश शिव-दोषतें बुधमिस देश निकास ॥

अत्यन्तधर्मनिरतः[1] प्रजारक्षणतत्परः ।
यः स्वयोगेन तपसा सार्वभौमत्वमागतः ॥ २ ॥
यस्य कीर्त्तिस्त्रिलोकेऽपि प्रथिता देवसंसदि ।
श्रीमत्काशीनृपत्वञ्च तेनापीशप्रसादतः ॥ ३ ॥
स्वधर्म्मतो[2] महीं पाल्य प्रापाऽन्ते[3] शिवधाम च ।
एवं तत्कीर्त्तिवैशद्यं श्रुतं पूर्वं त्वयैव हि ॥ ४ ॥
तादृशस्य शिवागोऽपि कथं जातं गतं कथम् ।
एतत्कथारहस्यं नो योग्यं श्रोतुं यदीरय ॥ ५ ॥

सो०—श्री भृगु के उपदेश, प्राचीना मज्जन कियो ।
पूज्यौ केदारेश, लह्यौ धाम शिव को अचल ॥
दोहा—पूर्व जन्म दुर्धर रह्यौ, लम्पट, आइ तवाहि ।
चोरी करत गिरयौ पुहुप, कियो शिवार्पण ताहि ॥
शिव योगी को विष दयो, मरयौ सोई विष खाइ ।
योगि दयामय पुष्प हित, दिन्ह्यो स्वर्ग पठाइ ॥
सो०—गयो मेनका पास, भोगस्वल्प नहि चित धरयो ।
भावी जानि उदास, हाथ जोरि विनयो बहुत ॥

ऋषिगण बोले—हे रोमहर्षण के पुत्र! शिवज्ञान के समुद्र! सूतजी! दिवोदास शिवजी का अपराधी कैसे हुआ? (२) जिसकी कीर्ति का तीनों लोकों में तथा देवताओं की सभा में वर्णन किया जाता है, जिसने शिवजी की कृपा से काशी का राज्य पाया (३) और अपने धर्म से पृथ्वी का पालन करके अन्त में शिवधाम लाभ किया। इस प्रकार की जिसकी उज्ज्वल कीर्ति हम लोगों ने आपसे ही सुनी है, (४) ऐसे पुरुष से शङ्कर का अपराध कैसे हुआ और वह किस प्रकार निवृत्त हुआ? यदि यह कथारहस्य हम लोगों के सुनने योग्य हो, तो वर्णन कीजिये। (५) जब मुनियों ने ऐसा पूछा, तब फिर

१ ग. धर्मनिरतं। २ ग. स्वधर्मेण। ३ ग. प्राप्तं वै।

इति पृष्टो मुनिवरैः सूतः प्रोवाच तान् पुनः ।

[1]सूत उवाच ।

शृणुध्वं शिवभक्ताग्र्या इमं प्रश्नं पुरा मुनिम्[2] ॥ ६ ॥
सनत्कुमारं पप्रच्छ वामदेवोऽपि योगिराट् ।
सनत्कुमारोदितश्च नाथशर्माऽवदत् प्रियाम् ॥ ७ ॥
मद्गुरुर्मामपि प्राह भाषितं मुनिना पुरा ।

[3]सनत्कुमार उवाच—

वामदेव ! शृणु मुने ! दिवोदासो नृपाग्रणीः ।
[4]ब्रह्मणाऽऽप्तवरः काश्यां राजाऽभूदखिलक्षितेः ॥ ८ ॥
अत्र कस्यापि देवस्य प्रभावो न भवेदिति ।
वेधसा प्राप्य च वरं [5]स्वप्रतापाविता मही ॥ ९ ॥
तदा वेधाः शिवं प्रार्थ्य निवेद्य वरमात्मनः ।
नृपाय दत्तमीशानं नीतवान् मन्दरं तदा ॥१०॥

सूतजी उनसे बोले—हे शिवभक्तों में अग्रगण्य मुनियो ! इस प्रश्न को पहिले योगिराज वामदेव ने (६) सनत्कुमार मुनि से पूछा था, उसी को नाथशर्मा ने अपनी प्रिया से कहा था और उसी बात को मेरे गुरुजी ने मुझे बतलाया था। (७) सनत्कुमारजी बोले—हे मुनि वामदेव जी ! सुनो, राजाओं में श्रेष्ठ दिवोदास ब्रह्मदेव से वर पाकर, सम्पूर्ण पृथ्वी का राजा हुआ और काशी में बसा। (८) यहाँ किसी देवता का भी प्रभाव तुम्हारे ऊपर न रहे ऐसा ब्रह्मा का वर पाकर उसने सारी पृथिवी की रक्षा की। (९) तत्पश्चात् ब्रह्मदेव ने शिवजी की प्रार्थना करके, जो वर राजा को दिया था, उसे निवेदन किया और शिवजी को मन्दराचल लिवा ले गये। (१०) शङ्कर भगवान् भक्त के

१. ख. पुंस्तकीयोऽयं पाठः, आ० पु०—नास्ति। २ ग मुनिः।
३ ख. पुस्तके नास्ति। ४ ग. ब्रह्मणः स वदात्। ५ ग. क्षमता पालिता मही।

शम्भुभक्तपराधीनः स्वभक्तं मानयन् विधिम् ।
अगच्छत् सपरिवारो मन्दरं विधिगौरवात् ॥११॥
अग्निवायुजलेशेन्द्रमुखा देवाश्च भूपतेः ।
तेजसाऽसह्यतां प्राप्य चेर्ष्यया तद्विरोधिनः ॥१२॥
तद्धर्म्ममसहन्[1] स्वस्वपदमस्येति[2] शङ्किताः ।
धर्म्मलोपोऽस्य कर्त्तव्य इति चिन्ताभ्यसूयया ॥१३॥
न ववौ वायुरिन्द्रोऽपि न ववर्षाऽग्निरुज्ज्वलन् ।
अस्मान् विना कथं त्वस्य धर्मवृद्धिर्भवेदिति ॥१४॥
तदा राजापि देवानां ज्ञात्वा योगेन वै कृतम् ।
स्वतपोयोगबलतः पूर्ववद्गां शशास ह ॥१५॥
पर्जन्यवाय्वग्निचन्द्रसूर्य्यतां प्राप्य योगतः ।
अनसूयैव देवेषु सर्वां भूमिमपालयत् ॥१६॥

पराधीन हैं। अपने भक्त ब्रह्माजी का संमान करके उनके गौरव की रक्षा के लिये परिवार के सहित मन्दराचल चले गये। (११) अग्नि, वायु, वरुण, इन्द्रादि देवता राजा के तेज को न सह सके, और ईर्ष्या से उसके विरोधी हो गये। (१२) उसके धर्म को न सह सके, और उन्हों ने अपने-अपने पदों को उसके हस्तगत समझा। इसके धर्मका लोप करना चाहिये, ऐसा सोचकर ईर्ष्या से (१३) वायु ने चलना, इन्द्र ने बरसना, और अग्नि ने जलना बन्दकर दिया। वे सोचने लगे—देखें, हम लोगों के विना इसकी धर्मवृद्धि कैसे होती है ? (१४) राजा भी देवताओं को करतूत योग द्वारा जान गया, अपने तपोबल और योगबल से पहिले की ही भाँति पृथ्वी का शासन करता गया। (१५) वह योग से मेघ, वायु, अग्नि, चन्द्र और सूर्य्य बनकर, देवताओं के प्रति ईर्ष्या के विना पृथ्वी का पालन करता था। (१६) तब तो देवता लोग आश्चर्य्य में आ गये, और चिन्तित होकर रहने

१ ग. ''' मसहन्तस्ते । २ ख. पदमन्वेति ।

तदाश्चर्य्ययुता देवाश्चिन्तया बाधिता दृढम्[1] ।
एवं स्थिते तदा राज्ञि पुरोधास्तस्य वै भृगुः ॥१७॥
शिवज्ञानवतां श्रेष्ठः शिवत्यक्तं पुरं स्मरन् ।
जगत् सर्वं शिवव्याप्तं तथापीष्टमिदं विभोः ॥१८॥
पुरं त्यक्त्वा न गन्तव्यं शिवेनेति हृदा स्मरन् ।
राजानं प्राह ते[2] भूप ! पुरञ्च शिववर्जितम् ॥१९॥
कुरु[3] तेन भवेच्छ्रेयो नो चेदचिरता तव ।
राजा[4] तदाह तं विप्रं कस्यापि चिरता नहि ॥२०॥
व्याजेनानेन सन्तर्त्तुमिच्छेत् शम्भुप्रसादतः ।
मत्तपःफलभोगस्य नान्तमस्ति महामुने ! ॥२१॥
त्वं न जानासि किं विप्र ! तस्य भङ्गः शिवागसः ।
नान्यतोऽस्तीति निश्चित्य प्रसादं काङ्क्षिणा[5] चिरात् ॥२२॥

लगे । राजा के ऐसा करने पर उनके पुरोहित भृगुजी ने, (१७) जो कि शिवज्ञानियों में श्रेष्ठ थे, शिवजी से छोड़ी हुई काशी का ख्याल किया । यद्यपि सम्पूर्ण जगत् शिवजी से व्याप्त है, तथापि यह विभु की इष्ट है । (१८) शिवजी का इस पुरी को छोड़कर जाना अच्छा नहीं हुआ ऐसा मन में विचार करके राजा से कहा कि हे राजन् ! तेरी नगरी में शिव नहीं हैं । (१९) सो इसे शिव से युक्त कर, तेरा कल्याण होगा, नहीं तो तू बहुत दिन तक न टिक सकेगा । तब राजा ने उनसे कहा कि किसी की भी तो स्थिरता नहीं है (२०) मैं इसी व्याज से शम्भु की कृपा द्वारा तरना चाहता हूँ । हे महामुनि ! मेरे तप के फल-भोग का अन्त नहीं है । (२१) हे ब्राह्मण ! क्या तुम नहीं जानते, उसका नाश शिवजी के अपराध से होगा । और दूसरी भाँति हो नहीं सकता । यही मैंने निश्चय किया है । मैं उनकी कृपा चाहनेवाला हूँ । (२२) इस पुर को शिवजी

१ ग. भृशम् । २ ग. हे भूप ! । ३ ग. कुरुषे न । ४ ग. राजाह तं तदा । ५ ख. कांक्षिणी ।

आगः कर्त्तव्यमेवेशे ज्ञात्वेष्टं पुरमीशितुः[1] ।
मद्राज्यभङ्गे भगवान् यतिष्यति कथंचन ॥२३॥
तदागसो निवृत्तिं च लब्ध्वा शम्भुप्रसादतः ।
प्राप्स्यामि शिवपादाब्जं भवतोऽनुग्रहादपि ॥२४॥
क्षमस्व गुरुनाथेति प्रार्थ्य विप्रं नृपो रहः ।
पूर्वं शिवाराधनतः प्राप्तभोगविरक्तितः ॥२५॥
क्षणभङ्गुरमालक्ष्य भोगजातं शिवास्तधीः ।
शीघ्रं शिवपदप्राप्त्यै शिवं नाऽऽकारयत् पुरे ॥२६॥
तदा सर्वमहेशानः काशीविश्लेषखेदतः ।
अतिप्रिया यतः काशी स्वात्मभूताऽऽशुमुक्तिदा ॥२७॥
भक्तानामिति तां प्राप्य विहर्त्तुमतिलालसः ।
कृतप्रयत्नो ब्रह्मादिदेवैः स्वात्मगणैरपि ॥२८॥

का इष्ट जानकर मैंने यह निश्चय किया कि अपराध करना तो मेरे वश में है। तब मेरे राज्य-भंग के लिये भगवान् किसी प्रकार से यत्न करेंगे (२३) उस अपराध की निवृत्ति शम्भु के प्रसाद से करके, मैं आपके भी अनुग्रह से शिवजी के चरण कमलों को प्राप्त हूँगा। (२४) एकान्त में राजा ने ब्राह्मणदेव से प्रार्थना की—हे गुरुनाथ ! क्षमा कीजिये, मैंने पूर्व जन्म में शिवजी का आराधन किया है, इससे मेरा चित्त भोग से हट गया है। (२५) समस्तभोगों को क्षणभङ्गुर जानकर मैंने अपनी बुद्धि शिवजी में लगा दी है। शीघ्र शिव-पद पाने की इच्छा से मैंने शिवजी को पुर में स्थान न दिया। (२६) सर्व महेशान शिवजी को काशी अत्यन्त प्रिय है, क्योंकि वह उनकी आत्मभूता है और भक्तों को शीघ्र मुक्ति देनेवाली है। (२७) उसे पाकर उसमें विहार करने की शिवजी को बड़ी लालसा हुई, इसलिए काशी के वियोग से दुःखित हो ब्रह्मादि देवों तथा अपने गणों के साथ प्रयत्न में लगे। (२८) कार्य्य सिद्धि की अपेक्षा करके

---

१ ग. परमेशितुः ।

कार्य्यसिद्धिमपेक्ष्येशस्त्वीशया[1] समशोचयत्[2] ।
स्वधर्मचारी भूपोऽयं निराकर्त्तुं कथं क्षमः ॥२९॥
ब्रह्मदत्तवरो विप्रभक्तो मद्भक्तिमान् नतः[3] ।
पूर्वजन्मनि मां सेव्य प्राप्तोऽसौ सार्वभौमताम् ॥३०॥
मद्भक्तसेवया प्राप्तमहायोगविभूतिमान् ।
भोगे जाताऽस्य विरतिस्तथापि मम सेवनम् ॥३१॥
न मुञ्चति चिरं भोगं भोजयित्वा विना नृपम् ।
क्षणं युगायते मेऽद्य काशीविश्लेषणात् प्रिये ! ॥३२॥
किं करोमि क्व गच्छामि कदा काशीं पुनर्लभे ।
इति चिन्तापरे देवे देवी प्राह सदाशिवम् ॥३३॥
मा शुचस्त्वं महादेव ! राज्ञस्त्वदपराधतः ।
अचिराद्भोगविच्छित्तिर्भविष्यति न संशयः ॥३४॥
सर्वेषां भोगिनां पुंसां त्वदागो भोगनाशकम् ।
अज्ञात्वापि कृतं चेत्तज्ज्ञात्वा किमुत नो फलेत् ॥३५॥

शिवजी जगदम्बा के साथ सोचने लगे कि यह राजा स्वधर्माचारी है, इसे कैसे निकालें ? (२९) ब्रह्माजी से इसने वर भी पाया है, ब्राह्मणों का भक्त है, और मेरा तो एकान्त भक्त है, पूर्व जन्म में मेरी सेवा करके इसने सार्वभौमता पाई है। (३०) इस महायोगविभूतिवाले ने मेरे भक्त की सेवा से यह सब पाया है। भोग से इसका चित्त हट गया। फिर भी मेरी सेवा (३१) बिना बहुत दिनों तक उत्तम भोग भोगाए राजा को नहीं छोड़ रही है, और हे प्रिये ! मुझे तो आज काशी के विरह से एक क्षण युग हो रहा है। (३२) क्या करूं, कहाँ जाऊं, फिर काशी कैसे पाऊं ? देव के ऐसी चिन्ता करने पर देवी ने सदाशिव से कहा कि हे महादेव ! आप सोच न करें, आपके अपराध से राजा के भोग का निस्सन्देह बहुत शीघ्र नाश हो जायगा। (३४). सब भोगी पुरुषों के भोग

---

१ ख. त्वाशया। २ ग समशोचत। ३ ग. भक्तिमान्नहः।

सर्वज्ञस्यापि ते खेदकारी राजा[1] वियोगतः ।
तवाऽत्यन्तप्रियां काशीं ज्ञात्वापि त्वां न चाऽऽह्वयत् ॥३६॥
तस्मात्तवापराधेन त्यक्तभोगोऽचिराद् भवेत् ।
योगिन्यादित्यगणपविघ्नेशब्रह्मविष्णुभिः ॥३७॥
शनैः प्रताय्र्य धर्म्मेण त्यक्तराज्यं नृपं कुरु ।
इति श्रुत्वा वचो देव्यास्तथैव कृतवान् हरः ॥३८॥
शिवहृत्तापसञ्जातापराधेन महीपतिः ।
चिरभोगे स्थितेऽप्येवं त्यक्तभोगोऽभवत् क्षणात् ॥३९॥
अकुर्वतां गुरोर्वाक्यं शिवागस्कारिणां मुने ! ।
ब्रह्मविष्णुपदं वापि नश्येदन्यस्य किं पुनः ॥४०॥
बुद्धो भूत्वा महाविष्णुर्धर्मतस्त्याजयत्[2] पुरीम् ।
दृष्ट्वा तद्वर्णसाङ्कर्य्यं त्यक्तराज्योऽभवन्नृपः ॥४१॥

का नाश करनेवाला तुम्हारा अपराध है । विना जाने करने से भी ऐसा होता है, और जानकर करने से भला कैसे फल न होगा ? (३५) सर्वज्ञ होनें पर भी आपको वियोग से खेद है, और काशी का राजा यह जान करके भी कि आपको काशी अत्यन्त प्रिय है, आपको नहीं बुलाता (३६) अतः आपके अपराध से वह शीघ्र ही भोग से च्युत होगा । योगिनी, आदित्य, गणेश, विघ्नेश, ब्रह्मा और विष्णु द्वारा (३७) धीरे धीरे धर्म से वञ्चित करके राजा से राज्य छुड़ा लो । देवी की ऐसी बात सुनकर हर (शिव) ने वैसा ही किया (३८) शिवजी के हृदय में ताप उत्पन्न करने के अपराध से चिरभोग में स्थित होने पर भी राजा एक क्षण में भोग से वियुक्त हो गया । (३९) हे मुनिजी ! गुरू की बात न माननेवाले और शङ्कर के अपराध करनेवाले का ब्रह्म और विष्णु का पद भी नष्ट हो जाता है, और दूसरों की क्या कथा है (४०) महाविष्णु ने बुद्धरूप होकर धर्मतः पुरी को उससे छुड़वाया, उस

१ ग. राज्यावियोगतः । २ ग. धर्ममत्याजयत् ।

तदा भृगुः कारुणिकस्तद्गुरुस्तं नृपं तदा ।
प्राचीनमणिकर्ण्यां तं स्नापयित्वा यथाविधि ॥४२॥
पूजयित्वा च केदारनाथं त्वागोनिवृत्तये ।
कृत्वा कृतार्थमाप्रैषीत् शिवधाम निरामयम् ॥४३॥
यतः शिवरहस्यज्ञगुरुः[1] शिष्यं कृतार्थयत्[2] ।
इति श्रुत्वा वामदेवः कुमारं प्राह सादरम् ॥४४॥
भगवन् ! संशयो मेऽस्ति तन्नोदय हृदि स्थितम् ।
दिवोदासः पूर्वभवे कश्चासीत् कं समाश्रयत् ॥४५॥
कोऽयं [3]शिवज्ञाननिधिर्यमुपास्येदृशोऽभवत् ।
निजयोगप्रतापेन तं किं चापि निराकरोत् ॥४६॥
एतत्सर्वमशेषेण मां बोधय कृपानिधे ! ।
इति पृष्टो वामदेवमुनिना ब्रह्मविन्मुनिः ॥४७॥

वर्णसंकरता को देखकर राजा ने राज्य छोड़ दिया। तब उसके गुरु कारुणिक भृगुजी ने उस राजा को प्राचीन मणिकर्णिका में यथाविधि नहलाया, (४२) अपराध की निवृत्ति के लिये केदारनाथजी की पूजा कराई और उसे कृतार्थ करके शिव-धाम भेज दिया। (४३) क्योंकि शिवरहस्यज्ञ गुरु ही शिष्य को कृतार्थ करता है। ऐसा सुनकर वामदेवजी ने कुमार से आदर के साथ कहा—(४४) हे भगवन् ! मेरे हृदय में एक संशय है, उसे दूर कीजिये। दिवोदास पूर्व जन्म में कौन था और किसका शिष्य हुआ ? (४५) शिव ज्ञाननिधि कौन थे, जिनकी उपासना करके वह ऐसा हो गया कि कुछ भी उसके योग के प्रताप में निराकरण करनेवाला न हुआ ? (४६) हे कृपानिधे ! यह सब पूरा-पूरा मुझे समझाइये। वामदेवजी के ऐसा पूछने पर (४७) ब्रह्मवेत्ता सनत्कुमार ने वामदेव से आदर के साथ कहा—सुनो, पूर्व काल

१ ख. रहस्यस्य, ग. रहस्यज्ञो। २ ग. कृतार्थयन्। आ० पु० अडभाव आर्षः। ३ ग. शिवज्ञानविधिः।

स्कन्दांशो वामदेवाख्यं शृणुष्वेत्याह सादरम् ।
पूर्वं काञ्चीपुरे विप्रप्रसादो नाम वै वणिक् ॥४८॥
धनाढ्यो वेदवित् प्राज्ञो देवब्राह्मणभक्तिमान् ।
एकाम्रनाथकामाक्षीभक्तिमान् पुण्यसञ्चयः ॥४९॥
स्थितस्तस्य सुतो जातो भोगिन्यां वारयोषिति ।
स्वपत्न्याश्च सुताभावात्तं पुपोष प्रियादरात् ॥५०॥
कालेन स मृतिं प्राप धनं सर्वं सुतेऽर्पयन् ।
पैतृकं धनमाप्याऽयं दुर्धरो नाम तत्सुतः ॥५१॥
यौवनं प्राप दुष्टात्मा धनमत्तोऽतिकामुकः ।
दासीसुतः पूर्वमेव उन्मत्तो गर्वितो धनी ॥५२॥
मद्यमांसरतः कामी वर्ज्यावर्ज्यविवर्जितः ।
आचाण्डाल्यो धनबलाद् भुक्तास्तेन च कुस्त्रियः ॥५३॥

में काञ्चीपुर में विप्रप्रसाद नामक एक सौदागर था, (४८) जो कि धनी, वेदज्ञ, विद्वान् और देवब्राह्मण का भक्त था। एकाम्रनाथ और कामाक्षी देवी की उपासना करके उसने पुण्य संचय किया था। (४९) एक रखेली वेश्या से उसका एक पुत्र हुआ। उसकी पाणिगृहीती के कोई सन्तान नहीं था, अतः उसी को आदर और प्रेम से उसने पाला। (५०) समय पाकर उसका देहावसान हुआ, वह सब धन लड़के के लिये छोड़ गया। उस लड़के का नाम दुर्धर था, जब उसने बाप की सब कमाई पाई (५१) और जवान हुआ, स्वभाव से दुष्ट था ही, धन के मद में चूर होकर अत्यन्त कामुक हो गया। पहिले दासी-पुत्र था, अब अभिमान और धन से उन्मत्त हो गया। (५२) मांस खाना मद्य पीना आरम्भ कर, कामान्ध हो वर्ज्यावर्ज्य के विचार से शून्य हो गया। धन के बल से बुरी स्त्रियों का सहवास किया, और चाण्डाली तक को नहीं छोड़ा। (५३) जहाँ सुन्दरी स्त्रियाँ मिलीं वहाँ वहाँ धन-व्यय

यत्र रूपवती नारी तत्र तत्र धनव्ययात् ।
प्रलोभ्य भुक्ताः कामिन्यो याः स्त्रियो वित्तलम्पटाः ॥५४॥
स्वमातरं वैश्यपत्नीमपि दुष्टोऽगमद्बलात् ।
एवं दुराचाररतः कालेन धनसंक्षयात् ॥५५॥
चौर्य्यं कृत्वाऽप्यदात् स्त्रीणां धनं नगरराष्ट्रके ।
ततः परं धनाभावात् कस्याश्चिद्वारयोषितः ॥५६॥
सेवकोऽभूत्तया भोक्तुं पुष्पाहरणकर्म्मणि ।
तस्याः प्रीत्यै पूर्वरात्रावेवोद्याने [1]प्रलीय सः ॥५७॥
पुष्पितानि च पुष्पाणि [2]चौर्य्यानीयार्पयच्च ताम् ।
एवं कतिपये जाते दिने चोद्यानपालकाः ॥५८॥
राजोद्यानेषु पुष्पाणामभावः केन हेतुना ।
[3]इति चिन्त्य तदा पूर्वरात्रावागत्य† जागरन् ॥५९॥
तदा चौरमिमं धर्त्तुमनुधावन्❀ कृतत्वराः ।
तदायं वाटिकां लङ्घ्य पतद्वाद्भुवं वनात्[4] ॥६०॥

करके, उन लालची-स्त्रियों को फुसलाया। (५४) यहाँ तक कि अपनी माता वैश्य-पत्नी के साथ भी बलात्कार किया। इस प्रकार दुराचार में रत होने से काल पाकर धन भी चुक गया। (५५) तब राज्य में, नगर में चोरी करके स्त्रियों को धन देने लगा। इसके बाद धनाभाव के कारण किसी वेश्या के यहाँ उसने उसके उपभोग के लिये फूल तोडने की नौकरी कर ली। उसकी प्रीति के लिये रात के पहिले पहर में ही बाग़ में छिप जाता, (५७) फूले हुए फूलों को चुराकर ले आता और उसे अर्पण करता था। इस प्रकार कुछ दिन बीतने पर बाग़वानो ने (५८) यह सोचा कि राजा के बाग़ में फूलों के अभाव का क्या कारण है? सो रात में पहिले पहर में ही आकर जागने लगे। (५९) तब तो,

---

१ ग. द्यानेषु लीय सः। २ ग. अपहृत्यार्पयच्च ताम्। ३ ग. इति चिन्तान्विता गत्वा तत्र रात्रावजागरन्। ४ ग बलात्। † अडभाव आर्षः। ❀ इहापि।

अपतत्पुष्पमेकं तद्धस्तगं तत्र भूतले ।
तद् दृष्ट्वा पतितं पुष्पं शिवार्पणमिति ब्रुवन् ॥६१॥
भयाद्वाटीपालकानामधावत्[१] पुरमाविशत् ।
दत्त्वा पुष्पं तद्दिने तां भुक्त्वा रात्रौ यथासुखम् ॥६२॥
श्वो गमिष्यामि चेन्मृत्युर्ममायातीति[२] निश्चयन् ।
श्वो दृष्टोऽपि च केनापि वधं प्राप्स्यामि निश्चयम्[३] ॥६३॥
इति कृत्वां मतिं चोषस्यगान्नगरतो बहिः ।
धावन् धावन् प्राणभयाद् देशादपि बहिर्गतः ॥६४॥
भिक्षामटन् शनैर्विन्ध्यमागतः पर्वतं तदा ।
तत्र कंचिन्मृगव्याधं सेव्य तेनापदूरितः ॥६५॥
ततोऽपि नीचान् संसेव्य तेषामप्यभवद्रिपुः ।
अत्यन्तःदुखी त्वन्नार्थी समागाद्धिमभूधरम् ॥६६॥

वे सब उस चोर को देखकर पकड़ने के लिये दौड़ पड़े, तो वह बाग़ को डाँककर बाहर कूद पड़ा। (६०) उसके हाथ से छूटकर एक फूल पृथ्वी पर आ पड़ा। फूल को गिरते देखकर उसने 'शिवार्पणमस्तु' कह दिया। (६१) बाग़वानों की डर से उसे वहीं पर छोड़कर बस्ती में घुस गया। उस वेश्या को लाकर फूल दिया और वह रात उसके साथ सुखपूर्वक बिताई। (६२) मन में यह निश्चय किया कि मेरी मृत्यु आ रही है, अतः कल चल दूँगा। कल जो किसी ने मुझे देख लिया तो मैं मारा जाऊंगा। इसमें सन्देह नहीं है (६३) ऐसा सोचकर वह पौ फटने के पहिले ही नगर से बाहर चला गया। प्राणों की डर से भागते २ देश के भी बाहर निकल गया। (६४) भीख माँगते खाते विन्ध्यपर्वत में पहुँचा, वहाँ पर किसी एक व्याध की सेवा करने लगा। (६५) फिर उससे भी बढ़कर नीचों की उसने सेवा की।

१ ग. नामाधावन्। २ ग. मामायातीति निश्चितम्। ३ ग. सर्वथा। ग. पुस्तकस्थोऽयं पाठः, आ० पु०—त्वन्नाथो।

श्रीमत्केदारभूभागे विक्रेतुं वणिजोऽगमन्[1] ।
तैः साकं भिक्षयन्नन्नं केवलं स्वोदरंभरिः ॥६७॥
देशाद्‌ देशं भ्रमन्नद्रिभूमौ कालं निनाय सः ।
कस्मिंश्चित् खेटके बाह्यधर्म्मशालाभुवं[2] वसन् ॥६८॥
मार्गिणो भिक्षयन् रात्रौ चौर्य्येणापि च जीवितः ।
तत्र मार्गागतः कश्चित् शिवानन्दाभिधो यतिः ॥६९॥
श्रीमत्केदारयात्रां स कुर्वन् [3]यात्यविमुक्तकम् ।
रात्रौ तद्धर्म्मशालायां सुष्वाप विजने वने ॥७०॥
दुर्धरोऽपि महापापी तं दृष्ट्वा शिवयोगिनम् ।
धनं भवेदस्य हस्ते समर्थो दृश्यते ह्ययम् ॥७१॥
भिक्षावृत्तिर्यदि भवेद्‌ ग्रामेऽसौ किं न तिष्ठति ।
भिक्षाऽपि तत्र मिलति तत्त्यक्त्वा विजनेच्छया ॥७२॥

अन्त में उनसे भी न बनी। तब अत्यन्त दुःखी और अन्नार्थी होकर हिमालय चला गया। (६६) कुछ सौदागर लोग वाणिज्य के लिये श्रीकेदारजी के क्षेत्र में जा रहे थे, उनके साथ भीख माँगकर केवल अपना पेट पालता हुआ (६७) इस देश से उस देश में पहुँचा। वहाँ टक्कर खाता हुआ उस पहाड़ी देश में दिन काटता था। किसी छोटे से गाँव के बाहर धर्मशाला में टिका हुआ (६८) दिन में बटोहियों से भीख माँगता, और रात को चोरी भी कर लेता था। उसी रास्ते कोई शिवानन्द नाम के योगी भी आ पड़े। (६९) श्रीमान् केदारजी की यात्रा करके अविमुक्त काशीपुरी को जा रहे थे। वहीं उस निर्जन वन की धर्मशाला में रात को टिक गये। (७०) महापापी दुर्धर ने उस शिवयोगी को देखकर विचार किया कि—इसके पास माल है, क्योंकि यह सम्पन्न मालूम होता है। (७१) यदि भीख माँगता होता, तो गाँव में क्यों न ठहरता? वहाँ इसे भिक्षा भी मिलती। ऐसी

१ ग. वाणजोऽगमम्। २ ख. धर्म्मदोला भुवं। ३ ख. तत्र विमुक्तये।

इहागतश्चाधनश्चेन्नायात्येव वाऽत्र वै रहः ।
एनं रात्रौ वधिष्यामि छद्मना कोऽपि नात्र वै ॥७३॥
धनं गृहीत्वा गच्छामि रात्रावेवातिदूरतः ।
इति निश्चित्य मनसा तस्य सेवापरोऽभवत् ॥७४॥
स्वामिन्नायाहि मे नाथ! धन्योऽस्म्यद्य तवागमात् ।
आज्ञाप्यतां ते का सेवा कर्त्तव्या किङ्करेण ते ॥७५॥
सुखं तिष्ठाऽहमत्रस्थो न भीरत्रास्ति केनचित् ।
एवं सुजनवत् प्रार्थ्य दुर्जनस्तं व्यमोहयत्[1] ॥७६॥
तत्र स्थितो महायोगी प्रार्थितस्तेन दुर्धिया ।
पादसंवाहनादीनि प्रीत्या कार्य्याण्यपाचरत् ॥७७॥
सर्पं हत्वा विषं गृह्य कुण्डिकोदे विमिश्रयात् ।
अस्याऽचमनतो योगी क्षणेन मृतिमाप्यते[2] ॥७८॥

जगह छोड़कर निराले के ख्याल से इधर आया है। यदि दरिद्र होता तो इस निराले में कभी न आता। किसी छल से आज रात को इसे यहीं निपटा दूँगा (७३) और माल लेकर रातों-रात दूर निकल जाऊंगा—ऐसा मनमें ठानकर उसकी सेवा में लग गया। (७४) सरकार! आइये, नाथ! आपके पादार्पण से मैं धन्य हुआ। मैं आपकी कौन-सी सेवा करूँ? मुझे अपना टहलू समझिये, (७५) आप आनन्द से यहाँ ठहरिये, मैं तो यहाँ हूँ ही, आप को यहाँ डर किसकी है? इस भांति सुजनो की-सी प्रार्थना करके उस दुर्जन ने उन्हें पञ्जे में किया। (७६) उस दुर्बुद्धि की प्रार्थना से महायोगी वहीं ठहर गये। वह प्रीति के साथ उनके पाँव दाबने लगा, तथा सेवा में लग गया। (७७) साँप मारकर उसका विष उनके कमण्डलु के जल में मिला दिया कि इसके आचमन से योगी जी एक ही छन में तो चल बसेंगे। (७८) बस, विना मेहनत के ही मैं धनी होकर अपना रास्ता लूंगा।

१ ग. व्यपोहयत्। २ ग. मृतिमाप्स्यति।

अनायासेन तं हत्वा धनी भूत्वा व्रजाम्यहम् ।
इति स्थिते दुर्धरे च योगी सुष्वाप तत्र वै ॥७९॥
दुर्धरोऽपि क्षणं स्वप्स्ये रात्रौ 'दूरगमोऽस्ति मे ।
मृतेरनन्तं त्वस्य न स्थातुमिति योग्यता ॥८०॥
इति सुष्वाप सोऽप्यत्र तदनन्तरतो मुनिः ।
जलमुक्त्यर्थमुत्थाय पूर्णोदां कुण्डिकां स्पृशन् ॥८१॥
पूर्णमस्तीति तत्तोयं किंचित् तस्मात्क्षिपत् परे ।
तत्र स्थितं दुर्धरस्य पात्रं जलयुतं निशि ॥८२॥
तस्मिन् पपात तत्तोयं किंचिद् विषयुतं तदा ।
कुण्डिकां गृह्य यतिराट् बहिर्गच्छंस्तमोगृहे ॥८३॥
स्तम्भघट्टनतः स्फुट्य सर्वं तोयं गतं भुवि ।
तदा योगी जलाभावाद् निगृह्य जलमोचनम् ॥८४॥
पुनः सुष्वाप तूष्णीं स नोक्त्वा किमपि योगिराट् ।
ततः क्षणाद् दुर्धरोऽपि जाग्रन्नुत्थाय[2] तं मुनिम् ॥८५॥

सो दुर्धर वहाँ था ही, योगीजी सो गये। (७९) दुर्धर ने सोचा,—थोड़ा सा मैं भी सो लूं, क्योंकि रातों-रात मुझे दूर निकल जाना है। इसके मरने के वाद तो हम ठहर नहीं सकते—ऐसा सोचकर वह भी सो गया। तत्पश्चात् मुनिजी लघुशंका के लिये उठे और भरे हुए कमण्डल को उठा लिये। (८१) लवालव भरा हुआ जानकर थोड़ा-सा जल गिरा दिया। वहीं दुर्धर का लोटा रक्खा हुआ था, (८२) रात का समय था, थोड़ा-सा वह विष से मिला हुआ जल उसके लोटे में गिर गया, और यतिराट् कमण्डलु लेकर बाहर चले। (८३) घर में अँधेरा था, सो खम्भे से टकराकर कमण्डलु फूट गया और सब पानी बह गया। तब योगीजी जलाभाव से लघुशंका रोककर (८४) चुपके से जाकर सो रहे। थोड़ी देर के बाद ही दुर्धर भी

१ ख. दूरगतोऽस्ति। २ ख. जाग्रत् सुसितं।

मृतो वा नेति सामीप्ये[1] तले निष्ठन् परीक्षयत्[2] ।
स[3] श्वसन्तं तदा दृष्ट्वा न मृतोऽद्यापि किं मुनिः ॥८६॥
उत्थापयामि पानीयं ग्राहयामीति चिन्तयन् ।
तृष्णार्त्तोऽहं जलं किञ्चित् पास्यामीति स्वभाजनम् ॥८७॥
गृहीत्वा ह्यपिबत् किंचित् तोयं विषविमिश्रितम् ।
तत्क्षणं मृतिमापासौ स्वदुष्कर्म्मवशात् मुने ! ॥८८॥
ततः प्रातः समुत्थाय मुनिराहूतवानमुम् ।
क्रोशन्नपि यदा तस्य प्रतिवाक्यं न निर्गलत् ॥८९॥
तत्समीपं समागत्य मृतं दृष्ट्वा महामुनिः ।
शुशोच बहुधा चित्ते मत्सेवां कृतवानिति ॥९०॥
ततः परं महायोगी ज्ञानविज्ञानसागरः[4] ।
वेदागमपुराणोक्तशैवसिद्धान्तशेखरः ॥९१॥

जाग उठा, और मुनिजी (८५) मरे कि नहीं इस बात की परीक्षा उनके निकट जाकर करने लगा। उनका श्वास चलते देखकर कहा कि, क्या अभी मुनिजी नहीं मरे ? (८६) तो अब उन्हें उठाकर पानी पिलाना चाहिये। ऐसा विचार करके पहिले अपनी प्यास मिटाने के लिए अपना लोटा उठाया, (८७) और वह विषमिश्रित पानी थोड़ा-सा पी गया। अपने पाप के द्वारा, हे मुनि ! वह उसी समय मर गया। (८८) सबेरे उठकर मुनिजी उसे जगाने लगे, बहुत पुकारने पर भी जब कोई जबाब न मिला, (८९) तब महामुनि उसके सन्निकट आये, और देखते हैं कि वह मरा पड़ा है। मन में सोचने लगे कि इसने मेरी सेवा की थी। (९०) इसके बाद, ज्ञान विज्ञान के समुद्र, वेदागमपुराणोक्त-शैवसिद्धान्त के शिरोमणि महायोगी (९१) ज्ञान-दृष्टि से

१ ग. सामीप्यतले। २ ग. परीक्षयन्, आ० पु०—अडभाव आर्पः। ३ ख. पुस्तकीयोऽयं पाठः, आ० पु०—सश्वासं तं। ४ ग. पुस्तकीयोऽयं पाठः. आ० पु०—ज्ञानविज्ञानशेखरः।

ज्ञानदृष्ट्या शिवं ध्यात्वा किमेतदिति चिन्तयन् ।
पश्यतस्तस्य तत् कर्म्म सर्वमाजन्मतोऽविदत् ॥९२॥
तथापि कृपया योगी पतितोद्धारशेखरः[1] ।
निजागः पृष्ठतः कृत्वा किञ्चित्सेवां परां विदन् ॥९३॥
शुभं भवतु तस्येति दुर्धरेऽनुग्रहं ददौ ।
तद् देहमग्निना दाह्य काशीमाप महामुनिः ॥९४॥
दुर्धरो यमदूतैश्च निर्दयं मर्दितः पथि ।
नरकाणां पात्रमेवं कोऽपि[2] प्राप्तो न भूतले ॥९५॥
[3]कल्पकोट्यर्वुदेनापि नास्तीत्यस्येति निष्कृतिः ।
एवं वदद्भिश्च मर्दद्भिर्नीतो वैवस्वतान्तिकम् ॥९६॥
आज्ञप्तश्चित्रगुप्तोऽपि यमेनाऽस्य फलाफले ।
नास्त्यत्र पुण्यलेशोऽपीत्यवदद् यमसन्निधौ ॥९७॥

शिवजी का ध्यान करके चिन्ता करने लगे कि यह हुआ क्या ? और उसको देखते-देखते जन्म से तब तक का उसका सब कर्म जान लिया। (९२) तथापि पतितों का उद्धार करनेवाले योगी कृपा करके अपने अपराध को तो भूल गये और थोड़ी सी सेवा को ही बहुत मान लिए। (९३) दुर्धर पर अनुग्रह किया कि इसका शुभ हो, और उसके शरीर का अग्नि संस्कार करके आप काशी चले गये। (९४) यमदूतों ने रास्ते में दुर्धर को खूब ही कुचला। ऐसा नारकी उनको पृथ्वी पर कोई मिला ही न था। (९५) कोटि अर्बुदकल्प में भी इसका उद्धार नहीं है, ऐसा कहकर उसको फिर मार-पीटकर यमराज के यहाँ ले गये। (९६) यम ने चित्रगुप्त को उसके फलाफल के विचार के लिये आज्ञा दी। उन्होंने यम से कहा कि इसका तो पुण्य का लेश भी नहीं है। (९७) प्रभु यमराज ने बारम्बार उनसे कहा कि अच्छी

१ ग. पतितोद्धारसागरः। २ ग. नीतो वैवस्वतान्तिकम्। ३. ग. पुस्तके—"कल्पको०" इत्ययं श्लोको नास्ति।

सम्यक् पश्येति तं प्राह पुनः पुनरपि प्रभुः ।
नास्तीति वचनं श्रुत्वा साश्चर्य्योऽभूत्तदा यमः ॥९८॥
कदाऽस्य मुक्तिर्नरकादिति प्राह स्वलेखकम् ।
कल्पकोटिशतेनापि नास्तीत्याहेति निष्कृतिः ॥९९॥
तदा यमः स्वयं लेखामानीयापश्यदस्य वै ।
अनुग्रहवशाच्छम्भोर्भक्तस्य शिवयोगिनः ॥१००॥
तदा तस्य तु लेखायां शिवयोगिप्रसादतः ।
उत्सृष्टैकस्य पुष्पस्य शिवार्पणमिति ब्रुवन् ॥१०१॥
चौर्य्याद् वाटीबहिःस्थाने पतितस्य शिवोपरि ।
काञ्चीभूमिर्लिङ्गमयी सर्वत्र तिलशो मुने ! ॥१०२॥
यत्राऽपतत् [1]पुष्पपातस्तत्र लिङ्गं स्थितं त्वधः ।
तल्लिङ्गपुष्पपतनपुण्यं दृग्गोचरं त्वगात् ॥१०३॥
यमस्तदा तं दृष्ट्वाऽमुमुवाच प्रहसन्निव ।
अस्यापि पुण्यलेशोऽस्ति चित्रं किमिति चिन्तयन् ॥१०४॥

तरह देखो। फिर भी उन्हों ने यही कहा कि कुछ भी पुण्य नहीं है। तब यम को बड़ा आश्चर्य्य हुआ। (९८) अपने लेखक से पूछा कि यह नरक से कब छूटेगा ? उन्होंने कहा—सौ कोटिकल्प में भी उसका उद्धार नहीं है। (९९) तब तो यमराज ने उसके लेखा को ले कर स्वयं देखना आरम्भ किया। यह शङ्कर के भक्त शिवयोगी के अनुग्रह का फल था। (१००) तब शिवजी के प्रसाद से यमराज ने देखा कि, 'शिवार्पणमस्तु' कहते हुए एक फूल इसके हाथ से छूटकर (१०१) जब कि यह चोरी करके बाग़ के बाहर जा रहा था, शिवजी के ऊपर गिरा। काञ्ची-भूमि लिङ्गमयी है, वहाँ सर्वत्र तिल-तिल पर लिङ्ग हैं। (१०२) जहाँ पर फूल गिरा वहीं नीचे लिङ्ग था। उसी लिङ्ग पर फूल गिरने का पुण्य दिखाई पड़ा। (१०३) तब यमराज ने

१ ख. पुष्पच्युतः, ग. पुष्पमेकं।

हसन्नमुं पुनः प्राह किञ्चित्पुण्यं तवास्ति वै ।
नरकस्तु भवद्गेहं नित्यमस्त्येव ते शृणु ॥१०५॥
किञ्चित् पुण्यस्य भोगं त्वं भुङ्क्ष्वाग्रे यदि रोचते ।
अत्यन्तलम्पटः कोऽयं नारकी त्वं सदा ध्रुवम् ॥१०६॥
इत्युक्तो यममाहाऽयं यथेच्छासि तथा कुरु ।
तथापि मे कथं जातं पुण्यं वद रवेः सुत ! ॥१०७॥
आजन्म पापकृदहं मे पुण्यमिति वक्ष्यसि ।
इति पृष्टो दुर्धरेण धर्म्मराजोऽवदत्तदा ॥१०८॥
शृणु दुर्धर ! ते पुण्यं चोरता पुष्पमेककम् ।
त्यक्तं त्वया बहिर्वाट्याः शिवार्पणमिति ब्रुवन् (?) ॥१०९॥
लिङ्गस्थितमधस्तत्र वचसा तेऽर्पितं त्वभूत् ।
त्वयाऽप्यजानता पुण्यं तव किंचिद्धि वर्त्तते ॥११०॥

उसे देखते हुए हंसी के तौर पर कहा—आश्चर्य की बात है, कि इसका भी पुण्य का लेश है ! (१०४) फिर हंसते हुए उससे कहा—कुछ तो पुण्य तेरा है ही पर नरक तो तेरा घर सदा के लिये है। सुन, (१०५) यदि तुम्हें अच्छा लगे तो उस थोड़े से पुण्य का फल तू पहिले ही भोग ले। तू अत्यन्त कामी लम्पट था, अतः सदा के लिये तू निश्चयपूर्वक नारकी है। (१०६) ऐसा कहने पर उसने यम से कहा कि, जैसी आपकी इच्छा हो, वैसा कीजिये। तथापि हे सूर्य्य के पुत्र ! कहिये, मुझसे पुण्य कैसे हुआ ? (१०७) मैंने जीवन भर पाप ही किया और आप कहते हैं कि मुझमें पुण्य है। दुर्धर के ऐसा पूछने पर यमराज ने कहा—(१०८) हे दुर्धर ! सुनो, तुम्हारा फूल चुराते समय के एक फूल का पुण्य है, जिसे तुमने बाग के बाहर शिवार्पण कहते गिराया था। (१०९) वहाँ नीचे लिङ्ग था, तुम्हारे ऐसा कहने से उसको अर्पित हो गया। तुम्हारे विना जाने भी कुछ तो तुम्हारा पुण्य है ही। (११०) उसे तुम पहिले भोग लो, पीछे से

तं भुङ्क्ष्व पूर्वं पश्चात्ते नरकोऽस्तीव शाश्वतः ।
तद्वाक्य दुर्धरः श्रुत्वा पश्चात्तापेन तापितः ॥१११॥
अहो व्यर्थगतं जन्म दुर्बुद्धेर्मे कुसङ्गतः ।
किं कृतं किं कृतमिति मयाऽनर्च्य शिवं शिवम्[1] ॥११२॥
भवत्वग्रे किं फलं मे वदेति यममानमन् ।
पप्रच्छ दुर्धरो भक्त्या तदा प्राह यमः फलम् ॥११३॥
शिवार्पितस्य पुष्पस्य फलं वक्तुं न मे क्षमम् ।
तथापि गच्छ स्वर्लोकं भोगस्ते कीदृशो भवेत् ॥११४॥
शिव एव विजानाति शिवसात्कृतिजं फलम् ।
इत्युक्त्वा प्रेषयामास स्वर्गं दुर्धरमादरात् ॥११५॥
गच्छ त्वं मेनकागेहं तया भुङ्क्ष्व सुखादिकम् ।
सा गच्छति प्रतिदिनं कैलासं सेवितुं शिवाम् ॥११६॥

तुम्हारे लिये शाश्वत नरक तो बना ही है। उनका वचन सुनकर दुर्धर को बड़ा पश्चात्ताप हुआ, (१११) कि मुझ दुर्बुद्धि का जन्म बुरी संगत के कारण व्यर्थ गया। अरे! मैंने क्या क्या नहीं किया? परन्तु मङ्गलरूप शिवजी की पूजा न की। (११२) तब दुर्धर ने यमराज को नमस्कार करके भक्ति से पूछा कि पहिले जो फल मुझे मिलेगा, वह कैसा होगा? तब यमराज ने कहा कि (११३) शिवार्पित पुष्प का फल मैं नहीं कह सकता। फिर भी तुम स्वर्ग जाओ, (११४) परन्तु शिवार्पण का फल शिव ही जानते हैं, देखें, तुम्हें क्या भोग मिलता है। ऐसा कहकर आदर के साथ दुर्धर को स्वर्ग भेज दिया (११५) और कहा कि तुम मेनका के घर जाओ, और उसके साथ सुख भोगो। वह नित्य ही जगदम्बा के सेवन के लिये कैलास जाती है, (११६) वहाँ उसे साफ २ पता लग जयगा कि इतने दिनों तक तुम्हारे भोग की अवधि है। आज्ञा पाकर वह तुमको मेरे पास भेज देगी, यह बात तुम

१ ग. शिवाम्।

तत्र ज्ञास्यति ते भोगं त्वियत्कालावधिं स्फुटम् ।
सैव मां त्वां प्रापयतीत्युक्त्वाऽऽज्ञा मे वदस्व ताम् ॥११७॥
इत्युक्त्वा प्रैषयत् कालो दुर्धरं मेनकागृहम् ।
यमाज्ञया त्वगात्[1] सोऽपि तत्क्षणात् मेनकान्तिकम् ॥११८॥
तां दृष्ट्वा सर्वसौभाग्ययुतामपि च दुर्धरः ।
तयाऽऽतिथ्यविधानेन पूजितोऽपि विधानतः ॥११९॥
पतिभावेन शृङ्गारहावभावकटाक्षकैः ।
स्रग्गन्धवस्त्रभूषाढ्यशय्यायां स्थापितोऽपि च ॥१२०॥
[2]वीणावेणुयुतोद्गीतालिङ्गितोऽपि तया रहः ।
नैव भोक्तुमना जातः किं स्वल्पेनेति चिन्तया ॥१२१॥
ईदृङ्महाभोगपात्रं जातोऽहं पापिनां वरः ।
सर्वाभीष्टप्रदे शम्भौ वाङ्मात्रकुसुमार्पणात् ॥१२२॥

मेनका से कह देना। (११७) ऐसा कहकर काल (यम) ने उसे मेनका के घर भेज दिया। यम की आज्ञा से वह तुरन्त मेनका के घर में पहुँच गया। (११८) दुर्धर ने उसे सर्व सौभाग्य से संयुक्त भी देखा, और उसने उसकी आतिथ्य के विधान से विधिपूर्वक पूजा भी की, (११९) पतिभाव करके शृंगार, हाव, भाव और कटाक्ष से भी सत्कार किया, गन्धमाल्य वस्त्रभूषण युक्त शय्या पर बिठला कर (१२०) उसे वीणा वेणुयुक्त गान भी सुनाया, एकान्त में गले भी गलाया। परन्तु दुर्धर को इस विचार से कि इस क्षणिक सुख से क्या लाभ होगा? भोग की इच्छा न हुई। (१२१) सोचने लगा कि मैं इतना बड़ा पापी हूँ तो भी मुझे इतना बड़ा सुख-भोग सम्पूर्ण अभीष्टों को देनेवाले शङ्कर को केवल वाणी द्वारा कुसुमार्पण करने से हुआ। (१२२) कौन जाने, यह मेनका कब कह बैठे कि अब तुम यमलोक जाओ? यम तो कह ही चुके हैं कि तू नरक से कभी निकल ही नहीं

१ ग. ह्यगात्। २ ग. पुस्तके वीणावेणुयुतो० इति सार्द्धश्लोको नास्ति।

कदा वदेद् मेनकेयं गच्छेति यममन्दिरम् ।
कदापि नरकात्तारो[1] मे नास्तीत्यवदद् यमः ॥१२३॥
अल्पभोगे किं मम स्यात् तत्रापि क्षणभङ्गुरे ।
इति चिन्तासमाक्रान्तस्तूष्णीको दुर्धरोऽभवत् ॥१२४॥
तदा तं मेनका दृष्ट्वा प्राह दुश्चित्तमादरात् ।
स्वर्गोऽयं सर्वभोगाढ्यः सेविकाहं मनोऽनुगा ॥१२५॥
किं नाथ ! चिन्ता ते दुस्थं न सुखं भोक्ष्यसे मया ।
प्रेषितो धर्म्मराजेन तदाज्ञा मे गरीयसी ॥१२६॥
न सुखं भोक्ष्यसि यदि मयि कोपं करिष्यति ।
यथेच्छसि तथा भुङ्क्ष्व मया साकं च देववत् ॥१२७॥
अन्येच्छा कापि तव चेत् करोमि वद तामपि ।
तवाधीना कृता चाहं स्वतन्त्रा यमशासनात् ॥१२८॥

सकता । (१२३) तब इस क्षणविनाशी अल्प भोग से मेरा क्या होता है ? ऐसी चिन्ता से ग्रस्त होकर दुर्धर चुप रह गया । (१२४) तब मेनका ने उसे दुखी देखकर आदर के साथ कहा—यह स्वर्ग है, इसमें सब भोग भरा हुआ है, और मैं तुम्हारे इच्छानुकूल वर्तनेवाली सेविका हूँ, (१२५) क्यों चिन्ता करके दुःख में पड़े हो ? हे नाथ ! मेरे साथ सुख क्यो नहीं भोगते ? धर्मराज ने तुम्हें मेरे यहाँ भेजा है, उनकी आज्ञा मेरे लिये बहुत बड़ी है । (१२६) यदि तुम मेरे साथ सुख न करोगे, तो वह मेरे ऊपर क्रोध करेंगे । जैसी तुम्हारी इच्छा हो, उस प्रकार मेरे साथ देवताओं की भाँति आनन्द करो, (१२७) और यदि कोई दूसरी इच्छा तुम्हें हो तो वह कह दो, मैं उसे भी पूरी करूँगी । मैं स्वतन्त्रा हूँ, परन्तु यमराज की आज्ञा से मैं तुम्हारे अधीन की गई हूँ । (१२८) तुम्हें जो कुछ कहकर यम ने भेजा है, वह सब मैं ज्ञानदृष्टि से जान गई । कैलास में तुम्हारे भोगकाल का पता लगाकर मैं

१ ग. नरकोद्धारो ।

यथोक्त्वा प्रैषयत् कालो ज्ञातं ज्ञानदृशा मया ।
ज्ञात्वा तद्भोगकालञ्च कैलासे तेऽवदं पुनः ॥१२९॥
मा शुचस्त्वं क्षेममेव भवेत्ते त्विति मे मतिः ।
भुङ्क्ष्व भोगान् यथाकामं गरीयः शिववैभवम् ॥१३०॥
एवमुक्तस्तया प्रीत्या दुर्धरोऽप्याह तां पुनः ।
शृणु भद्रे ! प्रवक्ष्यामि त्वं ममेष्टा न संशयः ॥१३१॥
पापिनामहमेवाग्र्यो दयालूनां त्वमग्रणीः ।
मामुद्धर दयासिन्धो ! नाभवं नारकी यथा ॥१३२॥
सख्यं सप्तपदाल्लोके मन्यन्ते साधवोऽनघे ! ।
त्वं देवयोनिर्मत्कृत्यं ज्ञातं ज्ञानदृशा त्वया ॥१३३॥
शरणं ते पन्नोऽस्मि दयासारा हि साधवः ।
एवं दीनवचः श्रुत्वा शिवभक्तापि मेनका ॥१३५॥
[1]महापापकृतस्तस्य ज्ञात्वा तद्दीनतामपि ।
शरणागतस्य सत्त्राणं कर्त्तव्यं शिवभाषितम् ॥१३६॥

तुम्हें बतला दूँगी । (१२९) सोच मत करो, मेरी समझ में तो तुम्हारा कल्याण ही होनेवाला है । तुम जैसा चाहो, वैसा भोग करो । शङ्कर की महिमा बड़ी है । (१३०) उसकी बातें सुनकर दुर्धर ने फिर उससे कहा—हे भद्रे ! मैं कहता हूँ, सुनो, तुम मेरी इष्ट हो इसमें सन्देह नहीं है । (१३१) मैं पापियों का सरदार हूँ और तुम दयालुओं में श्रेष्ठ हो । हे दयासागर ! मेरा उद्धार करो, जिसमें अब मैं नरक में न जाऊँ । (१३२) हे अनघे ! साधु लोग सप्तपद मैत्री मानते हैं । तुम देवयोनि हो, तुम मेरी करणी ज्ञानदृष्टि से जान गई । (१३३) मैं तुम्हारी शरण आया हूँ, साधुओं की सार वस्तु दया है । मेनका भी शिव-भक्त थी । उसने जब ऐसा दीन वचन सुना (१३५) और उसके महा अकृत्य तथा दीनता को जाना, तब सोचने लगी कि शङ्कर भगवान् का

१ ग. महापापकृतेस्तस्य ।

मादृश्या न[1] कृतं चेत्तच्छिवयोर्भक्तिभाक्[2] कथम् ।
एवं चिन्त्य दृढप्रज्ञा नत्वा देवौ शिवाशिवौ ॥१३७॥
शिवभक्तापराधोऽस्य वर्त्तते स कथं व्रजेत् ।
अनुग्रहोऽपि तस्यास्ति सेवातुष्टस्य छद्मना ॥१३८॥
[3]महापातकजातीनामपि नाशोऽस्त्युपायतः ।
शिवापराधस्य तु मे निष्कृतिर्नैव दृश्यते ॥१३९॥
भक्ते कृतं स्वापराधादधिकं मन्यते शिवः ।
संहर्त्तुं शिवभक्तयाग्र्यं मनः (?) पूर्वे स्थितस्त्वयम्[4] ॥१४०॥
तादृशं [5]नारकं मेऽग्रे प्रैषयत् सौरिरादरात् ।
तस्मादनुग्रहबलं लक्ष्यतेऽस्मिन् हि योगिनः ॥१४१॥
नो चेत्तादृशे पापे सौरेर्जाता कथं दया ।
किंचिदभ्युदयं ज्ञात्वा भाविनं करुणानिधिः ॥१४२॥

वचन है कि शरणागत की रक्षा करनी चाहिये (१३६)। यदि मेरे ऐसे लोग ऐसा न करेंगे, तो शिव-पार्वती की भक्ति किस काम की ? उस स्थिरबुद्धिवाली ने ऐसी चिन्ता करके शिवा को नमस्कार किया (१३७) और विचार करने लगी कि इसने शिवभक्त का भी अपराध किया है, वह कैसे निवृत्त होगा ? सेवा से सन्तुष्ट होने के व्याज से इसपर शिवजी का भी अनुग्रह है। (१३८) महापातकों का भी उपाय से नाश होता है। परन्तु शिवापराध से उद्धार तो हमें दिखाई नहीं पड़ता। (१३९) शङ्करजी अपने प्रति हुए अपराधों से भक्त के प्रति हुए अपराध को अधिक मानते हैं। इसने पहिले शिव-भक्त-शिरोमणि को मारने की इच्छा की थी। (१४०) ऐसे नारकी को सूर्य्यपुत्र ने आदर के साथ मेरे पास भेज दिया। अतः इसमें शिवयोगी के अनुग्रह का बल लखाई पड़ रहा है (१४१) नहीं तो इतने बड़े पापी पर यमराज को दया कहाँ से

१ ग. तत्। २ ग. भक्तया। ३ ग. महापातकजातानामपि। ४ ग. स्थितं तदा। ५ ग. पापिनं।

सर्वधर्म्मपरिज्ञाता पापानामपि तादृशः ।
क्व पुण्यलेशखद्योत[1]महापापान्धकारके ॥१४३॥
मग्न एव भवेत् सत्यं नाऽत्र कार्य्या विचारणा ।
तथाप्याश्चर्य्यमस्त्यत्र द्रष्टव्यं किमपि ध्रुवम् ॥१४४॥
कीदृशः शिवपुण्यस्य लेशस्य महिमा परः ।
किंचिदभ्युदयो भानोरिव गाढान्धकारहृत् ॥१४५॥
चतुराधिक्यकोटीनामशीतिनरका अपि ।
नालमस्य महापापभुक्त्यै[2] कल्पयुतावधि ॥१४६॥
तादृशोऽयं महापापी दुर्धरो निर्घृणः खलः ।
एतस्य कर्म्मणां साक्षी मृत्युः पृष्ठाग्रतो गतः ॥१४७॥
स एवाऽस्य प्राणहारी साक्षात् सेवापरो यमः ।
तेनाज्ञातं किमस्त्यत्र सवज्ञेन महात्मना ॥१४८॥

आगई ? वे सब धर्मों के जाननेवाले हैं, करुणा-निधि हैं, पापियों पर भी उनकी करुणा रहती है। उन्होंने इसके कुछ भावी अभ्युदय को जान लिया है। (१४२) नहीं तो महापाप के अन्धकार में यह जुगनू-सा पुण्य-लेश कौन चीज़ है ? (१४३) यह तो उसी में निश्चय ही लीन हो जाता। इसमें तो कुछ सन्देह ही नहीं। फिर भी, निश्चय यहाँ कोई आश्चर्य्य की बात दिखाई पड़ेगी। (१४४) गाढ अन्धकार को दूर करनेवाले सूर्य के उदय की भांति शिव-पुण्य-लेश की महिमा कितनी बड़ी है ? (१४५) दश हजार कल्पों तक चौरासी कोटि नरक भी इसके महापाप के फल-भोग के लिये यथेष्ट नहीं है। (१४६) यह दुर्धर ऐसा खल, क्रूर और पापी है कि इसके आगे-पीछे के भी कर्मों के साक्षी धर्मराज हैं। (१४७) उन्हीं साक्षात् फल देनेवाले यमराज ने इसके प्राण भी हर लिये। उन सर्वज्ञ महात्मा से कौन सी बात छिपी है ? (१४८) वही सब प्राणियों का शासन करने और धर्माधर्म का विवेचन

१ ग. ...खद्योतो... । २ ग. मुक्तौ ।

स सर्वप्राणिनां शास्ता धर्म्माधर्म्मविवेचक[1]: ।
मत्युरूपेण सर्वेषां कर्म्माणि प्राणिनां सदा ॥१४९॥
[2]गले पृष्ठेऽनिशं तिष्ठन् प्रत्यक्षं पश्यतीश्वरः ।
अस्य कर्म्माणि सर्वाणि दृष्ट्वापि दयया पुनः ॥१५०॥
अनिष्पात्य पुरः सर्वनरकेषु दुराशयम् ।
प्रथमं पुण्यभोगस्य कल्पनं केन हेतुना ॥१५१॥
[3]द्रष्टुमप्यत्र वै स्वर्गे नाधिकारोऽस्य वै खलु ।
किं [4]वा स हृदि जानाति सर्वधर्मरहस्यवित् ॥१५२॥
मयि प्रेषितवानेनं[5] भोगाय च दुराशयम् ।
तस्मात् पापिन्यपि महाविशेषोऽस्तीति मन्महे ॥१५३॥
शिवपुण्यं स्वल्पमपि तारयेन्नात्र संशयः ।
इति बहुविचिकित्सासंयुतं मेनकाया
हृदयगतरहस्यं शम्भुभक्तप्रभावम् ।

करनेवाले हैं । वही ईश्वर मृत्युरूप से सदा सब प्राणियों के आगे-पीछे के कर्मों को (१४९) बैठे-बैठे बराबर देखा करते हैं । इसके सब कर्मों को देखकर भी (१५०) उन्होंने इस दुराशय को पहिले ही नरक में न डाल कर पहिले इसके पुण्यभोग की ही कल्पना किस लिए की ? (१५१) अभी तो इसे स्वर्ग के दर्शन का भी अधिकार नहीं है । वे सब धर्मों के रहस्य के जाननेवाले क्या भीतर-ही-भीतर जानते तो नहीं हैं (१५२) जिससे कि इस दुष्टात्मा को मेरे यहाँ भोग के लिये भेज दिया । अतः मैं यह मानती हूँ कि पापियों में भी बड़ी विशेषता होती है । (१५३) थोड़ा सा शिव-निमित्त किया हुआ पुण्य भी सब पापों से तार देता है । इसमें संशय नहीं है । बहुत से संशयों से युक्त मेनका का हृदयगत यह रहस्य एवं शम्भु के भक्त का प्रभाव जो मनुष्य एक बार भी शिवभक्ति

१ ग. विचारकः । २ ग. गलपृष्ठे । ३ ग. दृष्टमप्यत्र ४ ग. तद्धि । ५ ग. प्रेषितवानिमम् ।

सकृदपि शिवभक्त्या यः शृणोति प्रसङ्गात्
सकलकलुषचित्तोऽप्याश्रयेद् ईशपादम् ॥१५४॥

इति श्रीकाशीमूलरहस्ये ब्रह्मवैवर्त्ते खिले काशीकेदारमाहात्म्ये षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः ।

ऋषय ऊचुः—

व्यासप्रसादसत्पात्रभूत ! सूत ! महामते ! ।
पातकाशेषसङ्घघ्नं रहस्यं वद शूलिनः ॥ १ ॥
[1]दिव्यस्त्री मेनका पश्चाद् दुर्धरं विचिकित्सया ।
किमकार्षीद् दुर्धरं साऽप्युपायात् कथमुद्धरत् ॥ २ ॥

के साथ प्रसंगात् सुन पाता है, वह सब प्रकार से कलुषित हृदय होने पर भी शङ्कर के पद को प्राप्त होता है। (१५४)

यह ब्रह्मवैवर्त के खिलभाग काशीमूल रहस्य के अन्तर्गत काशीकेदारमहात्म्य का सोलहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

दो०—दयावन्त तव मेनका, वेगि गई कैलास।
सुन्यौ तहाँ नारद कथित, दशमुख-कथा-विलास॥
अचरज महिमा गौरि की, गौरी-तीर्थ-प्रभाव।
मन हीं मन सोचत चली, पतितोद्धरण उपाव॥

हे महाबुद्धिमान् सूतजी ! आप व्यासजी की कृपा से सत्पात्र हो गये हैं, आप सब पापों को हरनेवाले शिवजी के रहस्य को हम लोगों से कहिये। (१) दिव्यस्त्री मेनका ने सन्देह में पड़कर पीछे से दुर्धर का क्या किया और किस उपाय से उसका उद्धार किया ? (२)

१ ग. देवस्त्री ।

अहो महाश्चर्य्यसारं [1]स्तोकमप्यतिवैभवम् ।
शिवपुण्यं पुनस्तादृक् शिवयोगिप्रसादजम् ॥ ३ ॥
[2]अजानन्नीदृशं लोका व्यर्थकार्य्यप्रसङ्गतः ।
निरर्थकं जन्म वृथा कुर्वन्त्यज्ञानतः खलु ॥ ४ ॥
क्षणमात्रमपीशस्य चरितं शृणुयाद् यदि ।
तत्क्षणं [3]चित्तकालुष्यं प्रसह्य प्रणुदेद् ध्रुवम् ॥ ५ ॥
तादृशस्यापि पापस्य दुर्धरस्य कृतार्थता ।
प्राप्ता हि किं पुनः शम्भोर्भक्तानां पुण्यकारिणाम् ॥ ६ ॥
करस्थेव न सन्देहः सद्गतिः शम्भुभक्तितः ।
त्वमस्माकं समुद्धर्त्ता रहस्यस्योपदेशतः ॥ ७ ॥
शम्भोर्भक्तस्य महिमा केन वा वर्णितुं क्षमः ।
अपराधकृतश्चापि स्वस्मिन् तद्दुर्धरस्य स[4]ः ॥ ८ ॥

अहो ! बड़े आश्चर्य्य की बात है कि थोड़े से भी शिवपुण्य का बड़ा प्रभाव है और शिवयोगी के प्रसाद का भी फल अकथनीय है। (३) इसको बिना जाने संसारी व्यर्थ कार्य्यों में फंसकर निश्चयपूर्वक अपने जन्म को व्यर्थ खो देते हैं। (४) एक क्षण भी यदि शम्भु-भगवान् का चरित सुनें, तो क्षणमात्र में हठात् चित्त का कल्मष दूर हो जाय। (५) ऐसा भारी पापी दुर्धर भी कृतार्थ हुआ, फिर शङ्कर के भक्त पुण्यात्माओं का कहना ही क्या ? (६) शम्भु-भक्ति से सद्गति निस्सन्देह अपनी मुट्ठी में आ जाती है। आप हम लोगों का उद्धार करनेवाले हैं, क्योंकि आपने शिवरहस्य का उपदेश किया है। (७) शम्भु के भक्त की महिमा का कौन वर्णन कर सकता है ? दुर्धर ने उनका इतना अपराध किया था (८) तो भी उसपर उन्होंने दया ही की। शङ्कर के भक्तों का सार दया है। उस थोड़े से पुण्य के प्रभाव से,

१ ख. ग. पुस्तकीयोऽयं पाठः, आ० पु०—"तोकमप्यतिवभवम्" इति। २ ग. अविज्ञायेदृशं। ३ ग. चित्तकाल्मष्यं। ४ ग. च।

दयामेवाकरोद् योगी क्षमासारा हि शाम्भवाः ।
किञ्चित्पुण्यं दयां प्रादात् तादृशस्य च योगिनः ॥ ९ ॥
वाचोक्तमेकपुष्पस्य पतनाच्छिवसादभूत् ।
तदेव बीजं सर्वाघध्वंसने दुर्धरस्य हि ॥१०॥
शिवयोगिप्रसादोऽपि तत्पुण्यस्यैव वैभवम्[1] ।
तादृक्प्रसादमहिमा यमस्यापि प्रसादकृत् ॥११॥
यमप्रसादात् स्वर्गस्थमेनकाया[2] अभूद् दया ।
एवं पारंपर्य्यतया दुर्धरस्योद्धृतिस्त्वभूत् ॥१२॥
तस्माच्छिवपुण्यस्य लेशोऽपि यदि मानवैः ।
प्रसङ्गादपि सम्प्राप्तस्तारयेदपि पापिनम् ॥१३॥
वद विद्वन् ! ततः पश्चात् मेनका वा किमाचरत् ।
उद्धारो वा कथं जातो दुर्धरस्याऽकृतात्मनः ॥१४॥

सूत उवाच—

शृणुध्वं मुनयः सर्वे मेनका देवकन्यका ।
एवं व्यचारयच्चित्ते कथमेतं समुद्धरे ॥१५॥

जो कि (९) उसने वाणी-द्वारा फूल गिरते समय शिवार्पण कहकर किया था, योगी के हृदय में दया हुई। वही दुर्धर के सम्पूर्ण पापों के नाश का बीज हो गया। (१०) उसी के प्रसाद से यमराज को भी दया आगई (११) और यम के प्रसाद से स्वर्ग की मेनका को दया हुई। इस परम्परा से दुर्धर का उद्धार हो गया। (१२) इसलिये शिवपुण्य का लेश भी यदि मनुष्य को प्रसंग से भी प्राप्त हो जाय, तो पापी भी तर जाता है। (१३) हे विद्वन् ! कहो कि इसके बाद मेनका ने क्या किया, और अकृतात्मा दुर्धर का कैसे उद्धार हुआ ? (१४)

सूतजी बोले—हे मुनि लोगो ! सुनो, देव-कन्या मेनका विचार

---

१ ग. वैभवः। २ ग. मेनकायामभूद्।

पापोऽप्ययं महायोगिप्रसादोऽस्त्यस्य दुर्लभः ।
नोचेदयं मत्समीपं कथमायाति मूढधीः ॥१६॥
धर्म्माधर्म्मविवेक्तुश्च सौरेरपि महात्मनः ।
आकस्मिका भोगदात्री स्वर्गस्त्रीषु कथं दया ॥१७॥
स्वयं लेखामस्य दृष्ट्वा पुण्यलेशं विचार्य्य च ।
चित्रगुप्तवचस्त्यज्य पुण्यभोगः पुरस्कृतः ॥१८॥
कृतश्चेन्नारकी त्वग्रे गतिर्नैवास्य कल्पकैः ।
तस्मादुपकृतिः कार्य्या मयाप्यस्येत्यचिन्तयत् ॥१९॥
शिवभक्तापराधस्य कर्त्तव्यादौ च निष्कृतिः ।
ततः परं त्वस्य शुभं केनोपायेन वा भवेत् ॥२०॥
इति निश्चित्य तं प्राह वसाऽत्रेति च सान्त्वयन्[1] ।
जगाम देवीसेवायै कैलासं मेनका जवात् ॥२१॥

करने लगी कि इसका उद्धार कैसे हो ? (१५) यह तो पापी है, परन्तु इसपर योगी की दुर्लभ कृपा है, नहीं तो यह मूढ़-बुद्धि मेरे पास कैसे आता ? (१६) धर्माधर्म की विवेचना करनेवाले महात्मा सूर्य्य-पुत्र में स्वर्ग की स्त्रियों को आकस्मिक भोग देनेवाली दया कहाँ ? (१७) इसके लेखा को स्वयम् देखा, इसके पुण्य लेश का विचार किया और चित्रगुप्त की बात को हटाकर इसके पुण्य-भोग को ही पहिले रक्खा। (१८) यदि नारकी गति को पहिले रखते तो कल्पों में भी इसका उद्धार न होता । अतः मुझे भी इसका उपकार करना चाहिये, ऐसा विचार किया । (१९) पहिले इसके शिवभक्तापराध का उपाय करना चाहिये इसके बाद सोचना चाहिये कि इसका कल्याण किस उपाय से होगा ? (२०) तब उसको दिलासा देती हुई मेनका ने उससे कहा—'तुम यहीं रहो' स्वयम् देवी की सेवा के लिये वेग से कैलास को चली गई । (२१) वहां देवी की सेवा के लिये शिवयोगी

१ ग. निर्भयः, आ० पु०—डीबभाव आर्षः ।

तत्र देवीसेवनार्थमागताः शिवयोगिनः ।
दुर्वासा गौतमः कण्वो दधीचिर्भृगुरङ्गिराः ॥२२॥
उपमन्युर्नारदश्च एतेऽष्टौ ब्रह्मवित्तमाः ।
आदौ शैलादिविघ्नेशस्कन्दान् सेव्य ततः परम् ॥२३॥
भगवन्तं चिरं सेव्य देवीसन्निधिमाययुः ।
नत्वा स्तुत्वा चिरं देवीं स्थितास्तत्र तदाज्ञया ॥२४॥
मेनकापि[1] च तान् नत्वा देवीं च समनर्त्तत ।
नृत्यं दृष्ट्वा चिरं देवी [2]हसन्त्याह द्विजांस्ततः ॥२५॥
कुतोऽभ्यागमनं विप्राः किमाश्चर्य्यं जगत्सु वै ।
इति पृष्टा अथोचुस्ते तां नत्वा शिवयोगिनः ॥२६॥
नारदः प्रथमं प्राह स्वेन दृष्टं तदद्भुतम् ।
शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि त्वद्भक्तानाञ्च वैभवम् ॥२७॥

आये हुए थे। दुर्वासा, गौतम, कण्व, दधीचि, अंगिरा (२२) नारद और उपमन्यु ये आठों ब्रह्मवादियों में श्रेष्ठ उपस्थित थे। पहिले उन लोगों ने शैलादिगणेश और स्वामिकार्तिकेय की सेवा की। उसके बाद (२३) भगवान् की देर तक सेवा करके देवी के पास आये, देवी को नमस्कार करके बहुत देर तक स्तुति करते रहे। फिर, देवी की आज्ञा पाकर वहीं ठहर गये। (२४) मेनका ने भी उन लोगों को नमस्कार करके देवी के आगे अपना नाच आरम्भ कर दिया। देवी बहुत देर तक तो नाच देखती रहीं, फिर ब्राह्मणों से हँसती हुई बोलीं—(२५) हे ब्राह्मणो ! कहाँ से आ रहे हो और जगत् में आप लोगों ने क्या आश्चर्य्य देखा ? ऐसा पूछने पर शिवयोगियों ने प्रणाम करके कहा। (२६) नारद बोले—मैंने स्वयम् अद्भुत देखा है, हे देवि ! तुम्हारे भक्तों की महिमा कहता हूँ, उसे सुनो। (२७) तुम्हारे और शम्भु के अपराध

१ ग. मेनका चाऽपि। २ ग. पुस्तकीयोऽयं पाठः, आ० पु०—'द्विजानाह ततो हसन्,' इति।

गतिः कदाचिद्भवति त्वयि शम्भौ कृतागसाम् ।
न शुभं क्वापि पश्यामि युष्मद्भक्तकृतागसाम् ॥२८॥
ब्रह्मदत्तवरः श्रेष्ठो[1] दशास्यो रक्षसां वरः ।
कैलासमपि सञ्चाल्य कृतागा युवयोश्च सः ॥२९॥
तदागोविनिवृत्त्यर्थं युवां सन्तोष्य गानतः ।
उपदिष्टो रहस्यश्च काश्यां केदारसन्निधौ ॥३०॥
त्वत्तीर्थस्नानतः श्रीमत्केदारेशस्य च सेवया ।
युष्मदागोविमुक्तोऽपि नन्दीशापाल्लयं गतः ॥३१॥
नन्दिनं निन्द्य तच्छापं युवाभ्यामप्यनोद्यकम् ।
अवाप्य, सकुलो नष्टस्त्वद्भक्तोऽपि चिराच्छिवे ! ॥३२॥
दुर्वासायं ‡ महायोगी युष्मद्भक्तशिरोमणिः ।
अनेन दत्तामिंद्राय त्वत्प्रसादां स्रजं पराम् ॥३३॥

करनेवाले को चाहे कभी गति मिल भी जाय, पर तुम्हारे भक्त के अपराध करनेवाले का तो कभी भी कल्याण नहीं होता। (२८) राक्षसों में श्रेष्ठ दशमुख (रावण) ने ब्रह्मदेव से श्रेष्ठ वर प्राप्त किया। कैलास को उठाकर उसने तुम्हारा और शङ्कर का अपराध किया। (२९) उस पाप से छूटने के लिये उसने आप लोगों को गान से सन्तुष्ट किया और आप लोगों ने उसे रहस्य का उपदेश कर दिया। वह आपके उपदेशानुसार काशी में केदार के समीपवर्ती तुम्हारे तीर्थ में स्नान करके (३०) और श्रीमान् केदारनाथजी की सेवा करके आप लोगों के अपराध से छूट गया। परन्तु नन्दी के शाप से नष्ट हुआ। (३१) उसने नन्दी भगवान् की निन्दा की और शाप पाया। उसे तो आप लोग भी न हटा सके, और वह आप लोगों का भक्त होता हुआ भी शीघ्र ही कुल के सहित नष्ट हो गया। (३२) ये दुर्वासा महायोगी आप लोगों के भक्तों में शिरोमणि हैं। इन्होंने आपकी प्रसादरूप एक

१ ग. वरश्रेष्ठो। ‡ सन्धिरार्षः।

न धृत्वा शिरसा गर्वात् प्राक्षिपद् गजमस्तके ।
मदान्धेन गजेनापि सा क्षिप्ता भूतले पुनः ॥३४॥
न पूजितो मुनिरयं वाचाऽपीन्द्रेण गर्वतः ।
तदाऽस्य शापतो भ्रष्टो गतश्रीकोऽतिदुःखितः ॥३५॥
दिवान्धवद् दैत्यभीतः स्थितो मन्दरकन्दरे ।
पुनः पतित्वा पादेऽस्य प्रसादादुपदिष्टवान् ॥३६॥
चिरदुःखी तव क्षेत्रमागत्य तव तीर्थके ।
श्रीमत्केदारपुरतः कृत्वा स्नानं यथाविधि ॥३७॥
काश्यां स्वनाम्ना लिङ्गं च[1] स्थाप्य पूज्य ततः परम् ।
तवाऽपराधाद् भक्तस्याऽपराधाच्च विमुक्तवान् ॥३८॥
ततोऽसुरान् विजित्याप स्वर्गं पूर्ववदम्बिके ! ।
गौतमोऽयं महायोगी युष्मद्भक्ताग्रणीस्तराम् ॥३९॥

बड़ी माला इन्द्र को दी । (३३) उन्होंने अभिमान से उसे शिर पर न चढ़ाकर हाथी के शिर पर डाल दिया । उस मदान्ध हाथी ने उसे पृथ्वी पर फेंक दिया । (३४) इन्द्र ने गर्व से इस मुनि की पूजा वाणी से भी न की, तब इनके शाप से इन्द्र की श्री जाती रही और वे भ्रष्ट होकर अति दुःखित हुए । (३५) दिन के अन्धों (उल्लुओं) की भाँति दैत्यों के भय से मन्दर को कन्दरा में छिपकर जा बैठे । फिर जाकर इनके पैरों पड़े, इन्होंने कृपा करके उपदेश दिया, (३६) तब बहुत दिनों के दुखी वे तुम्हारे तीर्थ और क्षेत्र में आये । श्रीकेदारनाथ के सामने विधिपूर्वक स्नान किया । (३७) काशी में अपने नाम का लिङ्ग स्थापन करके पूजन किया । इसके बाद तुम्हारे और भक्त के अपराध से छूटे । (३८) हे अम्बिके ! इसके पश्चात् असुरों को जीतकर पूर्व की भाँति उन्होंने स्वर्ग प्राप्त किया । ये महायोगी गौतमजी तुम्हारे भक्तों के बड़े नेता है । (३९) इनके अपराध से इन्द्र की सहस्रयोनियां हो गईं, स्वयम् नपुंसक हो

१ ग. संस्थाप्य सम्पूज्य यत्नतः ।

अस्यापराधतस्त्विन्द्रो योनिसाहस्रदेहभाक् ।
क्लीबोऽभूद् मुष्कनाशाच्च हास्यपात्रं दिवौकसाम् ॥४०॥
पुनरेनं रहः पादे पतित्वा प्रार्थयद्भृशम् ।
नष्टोऽहं बुद्धिदौर्बल्यात् क्षमासारा हि साधवः ॥४१॥
शिवयोरपराधेऽपि तारणं त्वादृशैः[१] खलु ।
तयोरत्यन्तभक्तं त्वामपराध्य क्षयं गतः ॥४२॥
मामुद्धर दयासिन्धो ! पतितं शरणागतम् ।
एवं दीनं तदा योगी दयया पालयन् मुनिः ॥४३॥
शिवयोरपराधो वा तद्भक्तानाञ्च वा ध्रुवम् ।
विनश्यतीति निश्चित्य त्वत्तीर्थमुपदिष्टवान् ॥४४॥
काश्यां केदारपुरतः स्नाहि गौरीसरोवरे ।
श्रीमत्केदारनाथं त्वं पूजयाऽऽगोनिवृत्तये ॥४५॥

गये, उनकी नासा के स्थान पर मुष्क हो गया। इस प्रकार वे देवताओं की हँसी के पात्र हो गये। (४०) फिर एकान्त में इन्हींके चरणों में गिरकर उन्होंने बड़ी प्रार्थना की, कि मैं बुद्धि की अल्पता के कारण नष्ट हो गया, साधुओं की सार वस्तु क्षमा है, (४१) शङ्कर पार्वती के अपराधी को भी आप ऐसे महात्मा तार सकते हैं, सो आप ऐसे उनके भक्त का अपराध करने से मेरा सत्यानाश हो गया। (४२) हे दयासिन्धो ! मैं पतित हूँ, आपके शरण आया हूँ, मेरा उद्धार कीजिये, इस प्रकार से दीनता को प्राप्त हुए इन्द्र की मुनि ने दया से रक्षा की। (४३) शङ्कर, पार्वती या उनके भक्त के अपराध से निश्चय पूर्वक विनिर्मुक्त होने का उपाय तुम्हारे तीर्थ का उपदेश किया। (४४) पाप की निवृत्ति के लिये काशी में केदारजी के सामने गौरी कुण्ड में स्नान करो और श्रीमान् केदारनाथ की पूजा करो। (४५) इससे तुमको फिर पंस्त्व मिल जायगा और स्वर्ग के मालिक हो जाओगे। इनकी

१ ग. त्वादृशः।

तेन त्वं पुंस्त्वमासाद्य स्वर्गनाथो भविष्यसि ।
एवमस्य वचः श्रुत्वा तथैव कृतवान् मुदा ॥४६॥
त्वत्तीर्थकेदारसेवां प्राप्याऽऽप सुरनाथताम् ।
शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि बाणस्त्वद्भक्तशेखरः ॥४७॥
सोऽप्यमुं कण्वयोगीन्द्रमनादृत्याऽत्यजच्छ्रियम् ।
युष्मद्भक्तं यदुवरं कृष्णं 'द्विष्यायुधद् यदा ॥४८॥
तदाऽयं बोधयामास रहः श्रेयोर्थमादरात् ।
महापाशुपतं कृष्णं द्विषमापौत्रमुत्सृज ॥४९॥
शिवस्त्राता नहि भवेद्भक्तद्वेषवतां ध्रुवम् ।
इत्युक्तमेनं धिक्कृत्य निन्द्य तेनाऽयुधद्बली ॥५०॥
हस्तद्वयावशिष्टोऽभूद् यदा साहस्रबाहुमान् ।
तदा शुक्रेणोपदिष्टः कण्वं प्रार्थय दुर्मते ! ॥५१॥

ऐसी वाणी सुनकर उन्होंने प्रसन्नता पूर्वक वैसा ही किया। (४६) और तुम्हारे तीर्थ तथा केदार की प्राप्ति से पुन देवताओं के आधिपत्य को प्राप्त हुए। हे देवि ! मैं कहता हूँ, सुनो, बाण तुम्हारे भक्तों का शिरोमणि था। उसकी भी लक्ष्मी इन कण्वयोगीन्द्र के अनादर से नष्ट हो गई। जब आपके भक्त यदुवर कृष्णजी से द्वेष करके लड़ने को तैयार हुआ। (४८) तब उन्होंने उसे एकान्त में आदर के साथ कल्याण की बात कही कि कृष्ण महापाशुपत हैं, उनसे द्वेष मत कर और उनके पौत्र को छोड़ दे। (४९) भक्त से द्वेष करनेवाले की रक्षा शङ्कर भगवान् नहीं करते। इनके ऐसा कहने पर उस बलवान् ने इनकी निन्दा की, इनको धिक्कारा और इनसे लड़ गया। (५०) इस लिए उस हजार बाहुवाले के केवल दो बाँह बच गईं। तब शुक्रजी ने कहा कि अरे दुर्बुद्धि ! कण्वजी की प्रार्थना कर। (५१) शिव-भक्त के अपमान से तेरी यह दशा हुई है।

१ ग. द्वेषाद् युयोध सः ।

शिवभक्तावमानेन ज्ञाता ते चेदृशी दशा ।
इतः परं वा ते श्रेयो भवेत्तस्य क्षमापणात् ॥५२॥
इति शुक्रवचः श्रुत्वा मनसा शरणागतः ।
अज्ञानादवलेपाच्च त्वामनिन्दं शिवप्रियम् ॥५३॥
क्षमस्व करुणासिन्धो! क्षमासारा हि साधवः ।
शिवप्रसादो मे भूयात्त्वदनुग्रहतस्त्विवति ॥५४॥
युद्धभूमौ स्थितोऽप्येवं मनसा प्रार्थयद् द्विजम् ।
तदाऽयमपि तज्ज्ञात्वा योगी तस्य हृदाशयम् ॥५५॥
दुःखितोऽयमिति ज्ञात्वा मनसेशमचिन्तयत् ।
बाणस्यानुग्रहं प्रेप्सुर्भगवन्तं व्यजिज्ञपत् ॥५६॥
यावदस्य दया तस्मिन्नायाता तावदीशितुः ।
[1]कोप एव स्थितस्तस्मिन् ततः क्षान्तो दयानिधिः ॥५७॥
हस्तद्वयावशिष्टं तं कृष्णाच्छीघ्रं व्यसजत् ।
तदाह भगवान् बाणं मद्भक्तागो दुरत्ययम् ॥५८॥

उनके क्षमा करने से अब तुम्हारा कल्याण होगा । (५२) ऐसा शुक्रजी का वचन सुनकर मन से शरण में गया और प्रार्थना की कि हे शिवप्रिय! अज्ञान तथा अभिमान से मैंने तुम्हारी निन्दा की । (५३) हे करुणा सिन्धो! अब आप क्षमा करें, साधुओं का सार क्षमा है, तुम्हारे अनुग्रह से शङ्कर भगवान् मेरे ऊपर कृपा करें । (५४) लड़ाई के मैदान में खड़ा २ इस भाँति मन से कण्वजी की प्रार्थना करने लगा। तब इन योगीजी ने भी उसके हृदय की बात जानकर (५५) और उसे दुख में पड़ा हुआ समझकर मन से उसके कल्याण की इच्छा की, और उसके अनुग्रह के लिये भगवान् से निवेदन किया । (५६) जब तक उसके ऊपर इनकी दया न हुई, तब तक शङ्कर भगवान् का उसपर क्रोध ही था, दयानिधि ने उसे क्षमा की । (५७) उसके दो हाथ बच गए थे उसी

१ ग. कोपोपविष्टः ।

काश्यां गौरीसरःस्नानान् मल्लिङ्गस्य च पूजनात् ।
केदारेशस्य कृपया मुक्तागा मामुपैष्यसि ॥५९॥
इति श्रुत्वा वचः शम्भोः काश्यां लिङ्गं स्वनामतः ।
स्थाप्य केदारकृपया त्वत्तीर्थस्नानतः शिवे ! ॥६०॥
प्रापाऽयं मुख्यगणतां त्वद्भक्तमहिमेदृशः ।
भूयः शृणु त्रिलोकेश ! उपमन्युस्त्वयं मुनिः ॥६१॥
चन्द्रेणावमतः पूर्वं शप्तोऽनेन निशाकरः ।
गतश्रीकोऽभवल्लोकदर्शनाऽद्वमतामपि ॥६२॥
शिवप्रसादात् क्षीराब्धिं पातुमाप[1] यदा ह्ययम् ।
तदा चन्द्रो हसच्चैनं कियत्पासीति गर्वतः[2] ॥६३॥
[3]मामाश्रयाऽमृतांशुन्त्वं[4] पाययाम्यागलं त्विति ।
विप्राशा [5]बहुला लोके नो तृप्ता[6] त्रिजगत्स्वपि ॥६४॥

अवस्थामें उसे कृष्ण से छुड़ा दिया। (५८) तब भगवान् ने बाण से कहा कि। मेरे भक्त का अपराध उल्लंघन योग्य नहीं है। (५९) काशी में गौरी तीर्थ के स्नान तथा मेरे लिङ्ग के पूजन के प्रभाव से केदारेश्वर की कृपा द्वारा मुक्तपाप होकर मुझको प्राप्त होगे। (६०) शङ्कर की ऐसी बात सुनकर काशी में अपने नाम का लिङ्ग स्थापन करके, हे शिवे! केदारेश्वर की कृपा तथा तुम्हारे तीर्थ के स्नान से (६१) वह गणों में मुख्य हो गया। तुम्हारे भक्त की ऐसी महिमा है। हे त्रैलोक्य की रानी! और भी सुनो, इन उपमन्यु मुनिजी का चन्द्रमा ने अपमान किया, और इन्होंने उनको शाप दे दिया कि तुम हत-श्री हो जाओ, और कोई तुम्हारा दर्शन न करे। (६२) शिवके प्रसाद से जब ये क्षीरसमुद्र के पीने के लिये आये, तब चन्द्रमा गर्व से इन्हें देखकर हँसे कि ये कितना पीवेंगे ? (६३) और बोले कि तुम मेरे

१ ख. व पिबति स्म यथा। २ ख. गर्वितः। ३ ग. त्वां पाययित्वा गलतो मामाश्रयामृतं शृणु। ४ ख. त्वां। ५ ग. बहुली। ६ ख. ग. ह्यतृप्ता।

त्वं कियान् सागरः कीदृक् त्वं पातुमभिमन्यसे ।
शिवोऽपि तादृशोन्मत्तस्त्वामदात् पितरं च मे ॥६५॥
मदुत्पत्तिर्यतः सिन्धोः स किं ते वशगो द्विज ! ।
गच्छ गच्छ कियत् पासि पश्येऽहं तव चापलम् ॥६६॥
इत्येवं हसितस्तेन तदातमवदत् क्रुधा ।
विप्राणामधिपोऽपि त्वं[1] गर्विष्ठोऽसि सुदुर्मते ॥६७॥
महिमा शिवभक्तानां न ज्ञातः किं त्वयाऽधम ! ।
अङ्गुष्ठमात्रदेहस्तु कुम्भभूः शिवयोगिराट् ॥६८॥
अब्धिश्चुलुकितः पीतस्तेनासौ पुनरुज्झितः ।
जलमोचनमार्गेण अशुचिश्च सरित्पतिः ॥६९॥
अद्यापि पश्य विन्ध्याद्रिं [2]हतसर्वोच्छ्रयं यतः ।
तथा चेल्वलवातापी पश्य क्षणहतौ यतः ॥७०॥

पास आओ, मैं अमृतांशु हूं, तुम्हें गले तक पिला दूँ । ब्राह्मण की आशा संसार में बड़ी होती है, तीनों जगत् से तृप्त नहीं होती । (६४) कितने बड़े तुम हो, और कितना बड़ा समुद्र है, उसे तुम पीना चाहते हो । शिवजी भी वैसे ही पागल हैं कि मेरे पिता को तुम्हें दे दिया । (६५) जिस समुद्र से मैं उत्पन्न हुआ हूँ, हे ब्राह्मण ! वह क्या तुम्हारे वश में आनेवाली वस्तु है ? जाओ, तुम क्या पीयोगे ? मैं तुम्हारी चपलता देखता हूं । (६६) इस प्रकार उनके हँसने पर ये उनसे क्रोध से बोले—ब्राह्मणों के राजा होने पर भी हे दुर्बुद्धि ! तू अभिमानी है, (६७) हे अधम ! तूने शिवभक्तों की महिमा नहीं जान पाई । शिवयोगियों के सरदार घड़े से उत्पन्न होनेवाले अगस्तजी अँगूठे इतने बड़े थे । (६८) वे चिल्लू में लेकर समुद्र को पी गये । फिर उसे लघु शङ्का की भाँति छोड़ दिया, वह समुद्र अपवित्र हो गया । (६९) देखो, आज तक विन्ध्याचल पर्वत जिस कारण से सम्पूर्ण उन्नतियों

१ ग. विप्राणमधिपोऽसि । २ हतसर्वोच्छ्रियं ।

एवमन्येऽपि वहवः सन्ति लोकोपकारिणः ।
साधवः शिवहृत्पद्मास्त्वं न जानासि मौढ्यतः ॥७१॥
अत्रेः सुतोऽहमिति च शिरोभूषेति शूलिनः ।
अमृतांशुस्त्वहमिति क्षीरोदोद्भूत इत्यपि ॥७२॥
त्रैलोक्यदक्षिणाभिख्यराजसूयकृदित्यपि ।
त्रैलोक्याह्लादकारीति ताराधिपतिरित्यपि ॥७३॥
सगर्वोऽसि गुरोर्दारागमनेऽपि न ते भयम् ।
तदैव त्वां हतं कुर्यात् परमेशः कृपानिधिः ॥७४॥
गौरीप्रियाऽनसूया तां प्रार्थ्य त्वां तारयत् सुतम् ।
[1]मल्लङ्घने फलं तेऽद्य भवेदित्यगमद्द्विजः ॥७५॥
तस्मिन् काले गणाधीशस्त्वारुहन् मूषकं द्रुतम् ।
विहर्त्तुमागतो मेरौ तं दृष्ट्वाऽप्यहसत् शशी ॥७६॥

से रहित हुआ पड़ा है, और जिस कारण से इल्वल और वातापी बात की बात में मारे गये। (७०) इस प्रकार के लोकोपकारी और भी बहुत से साधु हैं, जिनके हृदय-कमल में शिवजी विराजमान हैं, क्या तुम मूढ़तावश उनको नहीं जानते। (७१) मैं अत्रि का पुत्र हूँ, शङ्कर के मस्तक का गहना हूँ, मैं अमृतांशु हूँ, क्षीर सागर से मेरी उत्पत्ति है, (७२) जिसकी त्रैलोक्य-दक्षिणा है, ऐसा राजसूय यज्ञ मैंने किया है, मैं त्रैलोक्य को आनन्द पहुँचाता हूँ, मैं नक्षत्रों का स्वामी हूँ (७३) ऐसा तुम्हें अभिमान है, गुरुतल्पग होने में भी तुमको डर नहीं है। कृपानिधि परमेश्वर तभी तुम्हें समाप्त कर दिये होते। (७४) परन्तु भगवती अनुसूया गौरी को प्रिय हैं, उन्होंने गौरी की प्रार्थना करके लड़के का प्राण बचाया। सो मेरे अनादर का फल तुम्हें आज ही मिले। ऐसा कहकर ब्राह्मण देवता तो चले गये। (७५) उसी समय में गणेश जी चूहे पर चढ़े हुए, जल्दी जल्दी से मेरु पर्वत पर विहार करने के

१ ख. मद्धेलने।

बालक्रीडारतोऽत्यन्तं गणैः सार्कं गिरेस्तटे ।
[1]धाव्यमाने मूषके च स्खलन्भूमावातरत्[2] ॥ ७ ॥
भूमौ स्थितं गणेशानं स्खलन्नाखोश्च पातनम् ।
दृष्ट्वाऽहसत्तदा चन्द्रः [3]स्वरथस्थोऽतिगर्वितः ॥७८॥
तदा गणेशो भगवानसहन् निजहेलनम्[4] ।
चन्द्रं प्राह सगर्वं स निर्दहन्निव चक्षुषा ॥७९॥
अद्यप्रभृति मूढस्त्वमप्रकाशो भविष्यसि ।
भक्षितो देवतैः पश्चात् क्षयिष्यस्यचिरादिति ॥८०॥
[5]तत्रावलोकनमपि यः करोति जगत्त्रये ।
स भवेद्द दुर्यशोभागी सत्यं सत्यं मदाज्ञया ॥८१॥
इत्युक्त्वा देवताः सर्वास्त्वाज्ञापयत[6] ते सुतः ।
स्तोकं स्तोकं विभज्यैनं भक्षध्वमिति चाज्ञपत् ॥८२॥

लिये आये, उन्हें देखकर चन्द्रमा ने हँस दिया। (७६) गणेश जी गणों के साथ लड़कपन के खेल में मग्न थे, चूहा पहाड़ के किनारे दौड़ चला, सो उस पर से लरखराते हुए उतरे। (७७) चूहे के गिरा देने से लरखरा कर गणेशजी का पृथ्वी पर आ जाना देखकर अत्यन्त अभिमान से अपने रथ पर चढ़े हुए चन्द्रमा हंस पड़े। (७८) इस अपमान को गणेश जी ने नहीं सहा, क्रोध से उनकी आखें ऐसी लाल हो गईं मानों दृष्टि से ही भस्म किया चाहते हैं, और गर्व के साथ चन्द्रमा से बोले—(७९) हे मूढ़ ! आज से तू प्रकाश रहित हो जायगा, देवता लोग तुम्हें खा जावेंगे और तुरन्त तेरा क्षय हो जायगा। (८०) तीनों लोक में जो तुझे देखेगा, उसको अपयश अवश्य लगेगा। यह बात मेरी आज्ञा से अवश्य सत्य होगी। (८१) ऐसा कहकर तुम्हारे बेटे ने सब देवताओं को आज्ञा दी कि

१ ग. धावमाने। २ ग. भूमावतारयद्। ३ ग. स रथस्थो०। ४ ग.……स हसन्निव हेलनम्। ५ ग. तवा। ६ ख. त्वज्ञापयति।

वह्निस्तदा कलामेकामभक्षयत वै पुरः[1] ।
सूर्य्यस्त्वेकां कलां विश्वेदेवास्त्वेकां तृतीयकम् ॥८३॥
जलाधिपश्च चतुर्थीं च वषट्कारस्तु पञ्चमीम् ।
षष्ठीमिन्द्रस्तथा देवऋषयः सप्तमीं कलाम् ॥८४॥
अजैकपाच्चाष्टमीं तु नवमीं तु परेतराट्[2] ।
समीरणस्तु दशमीमदादेकादशीं तव[3] ॥८५॥
द्वादशीं पितरः सर्वे विभज्य सहसाऽपिबन् ।
त्रयोदशीं वित्तनाथं सखायं पितुरर्पयत् ॥८६॥
पित्रे ददौ महेशाय कलां चापि चतुर्दशीम् ।
ब्रह्मणे प्रददौ पश्चात् कलां पञ्चदशीं मुदा ॥८७॥
षोडशीं दातुमारब्धे विष्णवे विघ्ननायके ।
विष्णुर्दृष्ट्वा तदा स्वांशां कलां नागृह्णादादरात् ॥८८॥

इसको टुकड़े टुकड़े करके खा जाओ। (८२) तब अग्नि ने सबसे पहिले एक कला की स्वाहा कर दी, सूर्य्य ने दूसरी कला खा ली। विश्वेदेव ने तीसरी, (८३) समुद्र ने चौथी, वषट्कार ने पाँचवीं, इन्द्र ने छठीं, देवर्षियों ने सातवीं, (८४) अजैकपात् ने आठवीं, यम ने नवीं, पवन ने दशवीं कला खाली। ग्यारहवीं कला आपको मिली (८५) और पितरों को बारहवीं मिली। इस प्रकार विभाग करके सब लोग चन्द्रमा को एकाएक पी गये। तेरहवीं कला कुबेर को पिता का सखा समझ कर गणेशजी ने दे दी। (८६) अपने पिता शिवजी को चौदहवीं कला दी, पीछे से ब्रह्माजी को प्रसन्नता के साथ पन्द्रहवीं कला दे डाली। (८७) जब विघ्ननायकजी सोलहवीं कला विष्णु भगवान् को देने लगे, तब उन्होंने अपने हिस्से की कला को आदर के साथ देख लिया; परन्तु ग्रहण नहीं किया। (८८) भक्तिपूर्वक नमस्कार करके गणेशजी की

१ ग. पुनः। २ ग. पुस्तकीयोऽयं पाठः, आ० पु०—"परेशराट्" इति।
३ ग. मव।

नत्वा श्रीगणनाथञ्च प्रार्थयामास भक्तितः ।
स्वामिन्! चन्द्रं विना लोके कस्यापि न सुखं विभो! ॥८९॥
भवत्कोपस्य पात्रोऽयं कियानल्पो जलाकृतिः ।
कलामात्रावशिष्टोऽस्ति केवलं जीवधारणे ॥९०॥
एनं जीवय सर्वेशं त्वं गतिस्त्वपराधिनाम् ।
एवं विष्णुप्रार्थितोऽपि प्रहसन् बाललीलया ॥९१॥
[1]मद्भक्तं हेलयदसौ मद्धेलातो वरं हि तत् ।
स प्रसन्नो यदि भवेत्तदैनं जीवयाम्यहम् ॥९२॥
नो चेद्गच्छतु दुष्टात्मा त्वन्यः कश्चिद् भवेद्विधुः ।
तदा चन्द्रस्त्वतितरां भीतोऽभूदुपमन्युतः ॥९३॥
अहो वैभवमाश्चर्य्यं महतां शिवयोगिनाम् ।
इति बिभ्यद् रमेशेन सार्कं क्षीरोदधिं ययौ ॥९४॥
उपमन्योः पदद्वन्द्वे ह्यपतच्छरणं ब्रुवन् ।
अज्ञानाद् मम दुर्बुद्धिं सहस्व करुणानिधे! ॥९५॥

प्रार्थना करने लगे—हे स्वामी! हे विभु! चन्द्रमा के विना संसार में किसी को सुख नहीं मिलेगा। (८९) यह जलस्वरूप और अल्प है, आपके क्रोध का पात्र नहीं है, अब केवल इसकी एक कला बच गई है, इसी से जीता है। (९०) हे सर्वेश! इसे आप जिलाइये, आप ही अपराधियों की गति हैं। इस प्रकार की विष्णु की प्रार्थना सुनकर गणेशजी बाल-लीला से हँसते हुए बोले—(९१) इसने मेरे भक्त का अपमान किया है, जो कि मेरे अपमान से भी बढ़कर है। वह यदि प्रसन्न हो जाय, तो मैं इसे जिला दूँ, (९२) नहीं तो इस दुष्टात्मा को जाने दो, किसी दूसरे को चाँद बना दिया जायगा। तब तो चन्द्रमा उपमन्यु से बहुत डरे (९३) अहो महान् शिवयोगियों का माहात्म्य विस्मयावह है, इस प्रकार डरते २ विष्णु के साथ क्षीर समुद्र में गये। (९४) वहाँ

१ ग. असावहेलयद्भक्तं, आ० पु०—अडभाव आर्षः।

उज्जीवय दयाब्धे ! मां दयासारा हि साधवः ।
इत्येवं शरणं प्राप्तं हसन्नाह शिवास्तधीः ॥९६॥
आगता त्वां मतिरियं गच्छ श्रेयो भवेत्तव ।
सर्वकर्त्ता गणेशानः कृपां त्वयि करोतु सः ॥९७॥
इतः परं त्वं भक्तेभ्यः शम्भोर्विभ्यत् समाचर ।
इति तद्वाक्यसञ्जीवीं[1] प्रगृह्य हरिणा सह ॥९८॥
पुनरायाद् गणेशाग्रे कलाशिष्टोऽतिदैन्यवान् ।
तदैनं प्राह विघ्नेशो मद्भक्तागो दुरत्ययम् ॥९९॥
मदागसोऽपि शिवयोरागसोऽपि विधो ! शृणु ।
श्रीमत्काश्यां मज्जनन्यास्तीर्थमस्ति पुरातनम् ॥१००॥
श्रीमत्केदारलिङ्गस्य पुरतः सर्वपापहम् ।
तत्र स्नानाच्च केदारनाथपूजाप्रभावतः ॥१०१॥

उपमन्यु के चरणों में 'शरणागत' कहते हुए गिर पड़े और बोले—हे दयानिधे ! अज्ञान से मुझे दुष्टबुद्धि हुई, उसे आप क्षमा करें। (९५) हे दयासागर ! मुझे जिलाइये, साधुवों की सार वस्तु दया है। इस भाँति शरण में आये हुए चन्द्रमा से शिवानुरागी ने हँसते हुए कहा—(९६) तुम्हारी ऐसी बुद्धि हुई तो जाओ तुम्हारा कल्याण होगा, सर्वकर्ता गणेशजी तुमपर दया करें। (९७) अब तुम शम्भु के भक्तों से डरकर रहना। चन्द्रमा इस प्रकार की जान डालनेवाली उनकी वाणी को ग्रहण कर, विष्णु के साथ, (९८) बँची हुई उस एक कला को धारण किये हुए, अतिदीनता से गणेशजी के सामने आये। तब उनसे गणेशजी ने कहा—हे विधो ! सुनो, (९९) मेरे अपराध तथा शङ्कर-पार्वती के अपराध से भी मेरे भक्त का अपराध बढ़कर है। श्रीकाशी पुरी में मेरी मां का एक प्राचीन तीर्थ है, (१००) वह सब पापों को हरनेवाला तीर्थ श्रीमत्केदार-लिङ्ग के

१ ग. सन्दोहं ।

मदागसोऽपि मद्भक्तागसोऽपि त्वं विमोक्ष्यसि ।
लिङ्गं स्थाप्य स्वनाम्ना त्वं पुनरायाहि [1]पूज्य तम् ॥१०२॥
ततो भवित्री ते वृद्धिर्दिनपञ्चदशावधि ।
ततः पुनर्यथापूर्वं देवानां भक्ष्यं भव ॥१०३॥
एवं ते जीवनं वृद्धिक्षयरूपेण तिष्ठतु ।
तथापि मद्दिने त्वं वै द्रष्टुं योग्यो न कस्यचित् ॥१०४॥
जनता मद्दिने दृष्ट्वा त्वां भवेदपवादिनी ।
मद्भक्तहेलनात् [2]प्राप्तचिह्नं तिष्ठतु ते सदा ॥१०५॥
इत्युक्त्वा विष्णुना सार्कं प्रैषयत् काशिकां विधुम् ।
चिरं क्रीडां विधायाद्रौ[3] पश्चादागात् स्वधाम सः ॥१०६॥
चन्द्रोऽपि काश्यामुक्तागाः पुनः प्राप स्वकं पदम् ।
एवं त्वद्भक्तमहिमा देवि ! को वर्णितुं क्षमः ॥१०७॥

सामने है। वहां के स्नान और केदारनाथजी की पूजा के प्रभाव से (१०१) मेरे और मेरे भक्त के अपराध से तुम दूर जाओगे। अपने नाम से लिङ्ग स्थापन करके और उसकी पूजा करके तुम फिर यहाँ आओ। (१०२) तब तुम्हारी पन्द्रह दिन तक बराबर वृद्धि होती रहेगी। इसके बाद फिर पहिले की भाँति देवों के भक्ष्य होगे। (१०३) इसी प्रकार तुम घटते बढ़ते जीते रहो, फिर भी मेरे दिन तुम्हें कोई न देखे। (१०४) मेरे जन्म-दिन में जो तुम्हें देखेगा उसे अपवाद लगेगा। मेरे भक्त के अपमान से जो कलङ्क तुम्हें लगा है, वह सदा बना रहेगा। (१०५) यह कहकर विष्णु के साथ चन्द्रमा को काशी भेज दिया। फिर, बहुत देर तक पहाड़ पर खेलते रहे। तत्पश्चात् अपने धाम को चले गये। (१०६) चन्द्रमा का भी अपराध काशी में छूट गया और वह अपने पद को प्राप्त हुआ। हे देवि ! इस प्रकार की तुम्हारे भक्तों की महिमा का कौन वर्णन कर सकता है। (१०७) हे

१ ग. पूज्यताम्। २ ग. पापचिह्नं। ३ ग. विधायाऽत्र।

तव पूर्वतनोर्हेतुर्देवि ! दक्षः शिवप्रियः ।
अधिक्षिप्य दधीचिं वै सभायां कां गतिं गतः ॥१०८॥
त्वद्भक्तनिन्दासञ्जातदोषध्वस्तक्रतुः क्षणात् ।
[1]स्वसहायानपि रविप्रभृतीन् दन्तभङ्गतः ॥१०९॥
विमानयित्वा स्वं शीर्षमपि च्छागमवाप्य च ।
तदागो विनिवृत्त्यै स काश्यां लिङ्गं स्वनामकम् ॥११०॥
स्थापितुं पूर्वमेवासौ माधवस्योपदेशतः ।
[2]त्वत्तीर्थे स्नाप्य केदारनाथं पूज्य यथाविधि ॥१११॥
मुक्तोऽपराधाल्लिङ्गञ्च स्थाप्य पूज्याऽऽगतः पुनः ।
छागवक्त्रेण संस्कृत्य श्रुत्या चमकसंज्ञया ॥११२॥
पुनः प्राप पदं देवि ! त्वया विदित एव सः ।
त्वद्भक्तमहिमा चैवंविधः कृत्स्नः सुविस्मितः ॥११३॥

देवि ! तुम्हारे पूर्व शरीर के जनक दक्ष प्रजापति शिव के प्रिय थे, सभा में दधीचि पर अधिक्षेप करके किस गति को प्राप्त हुए ? (१०८) तुम्हारे भक्त की निन्दा से जो पाप हुआ, उससे उनका यज्ञ एक क्षण में नष्ट हो गया, और उनके सहायक सूर्य्य आदि का दन्त-भङ्ग आदि अपमान हुआ । (१०९) और स्वयम् दक्ष को बकरे का सिर मिला । उस पाप को हटाने के लिये उन्होंने काशी में अपने नाम से लिङ्ग स्थापन किया, उसके पहिले वे रमापति के उपदेश से तुम्हारे तीर्थ में स्नान और केदारनाथ का यथाविधि पूजन कर चुके थे । (१११) अपराध से छूटकर लिङ्ग की प्रतिष्ठा और पूजा करके फिर लौटे और बकरे के मुख से ही 'चमक' नामवाली श्रुतियों से स्तुति की । (११२) तब फिर अपने पद को प्राप्त हुए, सो सब तुमको मालूम ही है कि तुम्हारे भक्त की महिमा ऐसी है कि बिल्कुल आश्चर्य्य में डाल देती है । (११३) ये महायोगी भृगु आपके भक्तों में अग्रसर और

१ ग. स । २ तत्तीर्थे ।

अयं भृगुर्महायोगी त्वद्भक्ताग्रेसरः कृती।
अस्मिन् कृतापराधश्च हरिः पत्नीवधात् पुरा ॥११४॥
अनेकजन्मनां पात्रमभूदस्यापराधतः।
पुनस्ते कृपया त्वेनं समाधाय दशाकृतेः ॥११५॥
दापयित्वा वरं शेषजन्मनां वारणं कृतम्।
स्त्रीवियोगकृतं त्वागस्त्वेकजन्मनि साधितम् ॥११६॥
भक्तापराधशान्त्यर्थे विष्णुस्त्वदुपदेशतः।
काश्यां त्वत्तीर्थस्नानात् केदारेशस्य पूजनात् ॥११७॥
लिङ्गस्थापनतो नाम्ना मुक्तवांश्च शिवागसः।
रामो दाशरथिर्भूत्वा भूमौ पत्नीवियोगजम् ॥११८॥
दुःखं भुक्त्वा तदन्तेऽसौ त्वत्तीर्थस्नानमाचरन्[1]।
पूज्य केदारनाथं च लिङ्गं स्थाप्य स्वनामतः ॥११९॥
पुनर्मे शिवभक्तानामागो मा भूदितीच्छया।
स्वपदं प्राप देवेश! त्वया विदितमेव तत् ॥१२०॥

पुण्यात्मा हैं, पहिले किसी समय में विष्णु इनकी पत्नी को मारकर इनके अपराध के भाजन हुए थे। (११४) इनके अपराध से उन्हें अनेक जन्म भुगतने पड़े। फिर तुम्हारी कृपा से दश अवतार में उनका दोष शान्त हुआ। (११५) उन्हें और जन्म न होने का वर मिला। स्त्री वियोगवाला दोष एक ही जन्म में निपट गया। (११६) भक्त के अपराध की शान्ति के लिये विष्णु ने तुम्हारे उपदेश से, काशी जाकर तुम्हारे तीर्थ में स्नान किया, केदारेश्वर का पूजन किया (११७) और अपने नाम से लिङ्ग स्थापन करके शिवजी के अपराध से विनिर्मुक्त हुए। दाशरथि राम होकर उन्होंने पत्नी-वियोग का दुःख सहा। (११८) दुःख-भोग के बाद उन्होंने तुम्हारे तीर्थ में स्नान किया। केदारनाथ का पूजन करके अपने नाम से लिङ्ग-स्थापन किया। (११९) इस

१. ग. स्नानमाचरत्।

अस्य शृणु महादेवि ! मुनेरङ्गिरसः कृतिम् ।
नहुषो नाम राजाऽभूत् सार्वभौमो भुवस्तले ॥१२१॥
कृतं तेन क्रतुशतमेकोनं चोक्तदक्षिणम् ।
स्वधर्म्मतः प्रजाः सर्वा रक्षितास्तेन भूभुजा ॥१२२॥
यस्य यज्ञे वसोर्धारा गजशुण्डोपमाऽपतत् ।
पतितामाज्यधारां [1]तामग्नौ वा द्वादशाब्दिकाम् ॥१२३॥
एवमेकोनशतसंख्येषु सर्वक्रतुष्वपि ।
पिबन् पिबंश्च ता धारास्त्वजीर्णादभवच्च रुक् ॥१२४॥
सर्वलोकप्रदहनशक्तस्यापि विभावसोः ।
अजीर्णरोगशान्त्यर्थं स गतो ब्रह्मणोऽन्तिकम् ॥१२५॥
भगवन्नाहुषे यज्ञे वसोर्धाराः पिबन् ❀ मम ।
रोगोद्भूतस्तस्य शान्तिं वद येनाऽभवं सुखी ॥१२६॥

इच्छा से कि फिर मुझसे शिव-भक्तों का अपराध न हो पड़े। हे देवेशि ! तब वे अपने पद को प्राप्त हुए, आप तो सब जानती ही हैं। (१२०) हे देवि ! अब अङ्गिरा मुनि की करणी सुनिये। पृथ्वी में नहुष नामक एक सार्वभौम राजा हुआ। (१२१) उसने निन्नानव्बे यज्ञ जितनी दक्षिणा का विधान है उतनी देकर किये। अपने धर्म से उसी राजा ने सब प्रजाओं का पालन किया, (१२२) जिसके यज्ञ में हाथी की सूँड़ सी मोटी वसोर्धारा गिरती थी, बारह बरस तक वह धारा बराबर अग्नि के मुख में पड़ती रही। (१२३) इस प्रकार बराबर निन्नानव्बे यज्ञों में धारा पीते-पीते अग्नि को अजीर्ण का रोग हो गया। (१२४) भगवान् विभावसु सब लोकों के जलाने में समर्थ हैं, फिर भी उन्हें अजीर्ण हुआ और उसकी शान्ति के निमित्त वे ब्रह्मा-जी के पास गये (१२५) और बोले—हे भगवन् ! नहुष के यज्ञ में वसोर्धारा (घी की धारा) पीते २ मुझे तो रोग हो गया। अब आप जैसे

---

१ ग. तामग्निस्तु द्वादशाधिकाम्। ❀ षष्ठ्यार्थे प्रथमा।

तदा ब्रह्मापि तच्छ्रुत्वा चित्रितोऽभून्नृपकृतौ ।
महाप्रतापो यद् यज्ञे वह्निरप्याज्यपः सरुक् ॥१२७॥
इति प्रशस्य राजानं प्राहाऽजीर्णहरौषधम् ।
खाण्डवं नामोपवनं भूमावस्ति शतक्रतोः ॥१२८॥
तत्राऽस्त्यजीर्णशान्त्यर्थमौषधं लोकदुर्लभम् ।
तद् वनं भक्षसि यदि नीरोगी भवसीति च ॥१२९॥
त्वया न शक्यं तद् दग्धुं तथापि यत दाहने ।
फलितं चेत्तु ते रोगो नश्यतीत्यवदद् विधिः ॥१३०॥
तच्छ्रुत्वा तद् वनं [1]दग्धुमारब्धस्तत्क्षणं वृषा ।
मेघानाज्ञाप्य धाराभिः प्रशामयत पावकम् ॥१३१॥
एवञ्च शतवारं स प्राप्य मेघैः पराजयम् ।
पुनर्ब्रह्माणमागत्य स्वदुःखं प्राब्रवीच्च तम् ॥१३२॥

उसकी शान्ति हो, वह उपाय बतलाइये, जिससे मैं सुखी होऊं । (१२६) तब ब्रह्माजी भी राजा के यज्ञ की व्यवस्था सुनकर बड़े चकित हुए कि राजा महाप्रतापी है, जिसके यज्ञ में आज्य (घी) पीने से अग्नि को भी रोग हो गया । (१२७) इस भाँति राजा की प्रशंसा करके अजीर्ण नाश करनेवाली दवा बतलाई कि खाण्डव नाम का इन्द्र का उपवन पृथ्वी पर है, (१२८) उसमें अजीर्ण को शान्त करनेवाली लोक दुर्लभ ओषधि है । यदि उस वन को खा जाओ तो निश्चय करके नीरोग हो जाओगे । (१२९) तुम उसे जला नहीं सकते, फिर भी जलाने का प्रयत्न करो । यदि काम पूरा हो जाय, तो तुम्हारा रोग शान्त हो जायगा, ऐसा ब्रह्माजी ने कहा । (१३०) यह सुनकर अग्नि ने उसी समय उस वन के जलाने में हाथ लगा दिया और तुरन्त ही इन्द्र ने मेघों को आज्ञा देकर आग बुझा दी । (१३१) इस भाँति सैकड़ों बार अग्नि को मेघों से हार खानी पड़ी । तब फिर अग्नि ने ब्रह्माजी के

१ ग. दग्धुं प्रारब्धः ।

तदा ब्रह्माऽवदद् वह्निमुपायं रोगशान्तये ।
नरनारायणौ देवौ विष्णोरंशौ हि भूतले ॥१३३॥
वर्त्तेते भूभरं हर्त्तुं नरौ कृष्णार्जुनाभिधौ ।
तौ प्रार्थय वनं दग्धुं तौ ते साह्यं करिष्यतः ॥१३४॥
तथैवाऽग्निश्च तौ प्रार्थ्य मुक्तो दग्ध्वा वनं रुजः ।
एवं प्रभावो नहुषः कालेन दिवमाप सः ॥१३५॥
[1]इन्द्रोऽप्यात्मसमं तं च पूज्याऽवासयदन्तिके ।
ततः काले वृत्रहत्याऽऽवृतश्चागाददृश्यताम् ॥१३६॥
इन्द्रस्यादर्शनाद् देवाः स्वर्गं दृष्ट्वा ह्यराजकम् ।
यावदिन्द्रागमस्तावन्नहुषं देवपं व्यधुः ॥१३७॥
तदा शचीसङ्गमैच्छन्नहुषो गर्वितः श्रिया ।
शची त्वविधवा साध्वी भर्त्तृशोकेन वर्त्तते ॥१३८॥

पास आकर उन्हें अपना दुःख सुनाया । (१३२) तब ब्रह्माजी ने रोग शान्ति के लिये अग्नि को उपाय बतलाया (१३२) कि नरनारायण देव विष्णु के अंश पृथ्वी में (१३३) उसके भार हरण के लिये कृष्ण-अर्जुन के नाम से मौजूद हैं । उनसे वन-दाह के लिये प्रार्थना करो, वे तुम्हारी सहायता करेंगे । (१३४) तब अग्नि ने उन दोनों की प्रार्थना करके वन जला पाया और रोग से विनिर्मुक्त हुए । ऐसे प्रभाववाले नहुष समय पाकर स्वर्ग पधारे । (१३५) इन्द्र ने भी अपने समान उनकी पूजा करके उन्हें अपने निकट बसाया । उसके बाद किसी काल में वृत्र की हत्या से अभिभूत होकर इन्द्र अदृश्य हो गये । (१३६) इन्द्र के न दिखाई पड़ने से देवताओं ने देखा कि स्वर्ग में राजा नहीं रह गया, सो जब तक इन्द्र न आवें तब तक के लिये नहुष को राजा बनाया । (१३७) तब ऐश्वर्य के मद से राजा शची को पाने की इच्छा करने लगा । साध्वी शची बिना पति के

१ ग. इन्द्रोऽप्यात्मसमुतं ।

तामिच्छन्तं बलादेनं प्राह वाक्पतिरादरात् ।
पतिव्रता शची राजन् नाहन्त्यन्येन सङ्गमम् ॥१३९॥
इन्द्रस्य दर्शनाभावात् स्थापितस्त्वञ्च दैवतैः ।
तदिच्छां मा कुरु [1]त्वन्या बह्व्यः सन्ति ततोऽधिकाः ॥१४०॥
तासु भुङ्क्ष्व सुखं यावदागमो देवभूपतेः ।
इत्युदन्तमनादृत्य बलाद्भोक्तुं कृतत्वरः ॥१४१॥
तदा जीवः स्वपितरं प्रेषयन्नहुषान्तिकम् ।
पातिव्रत्यं यथा शच्या न नश्ये त्त्वं तथा कुरु ॥१४२॥
मदुक्तिं नाऽश्रृणोत् कामी स्वाधिपत्येन गर्वितः ।
इत्युक्तोऽयं तदा वाचस्पतिना निजसूनुना ॥१४३॥
तदाऽयं नाहुषं गत्वा बहुशस्तं समादधत् ।
यदाऽयं नाश्रृणोद्वाक्यं त्वद्भक्तस्यास्य योगिनः ॥१४४॥

दुखी थीं, (१३८) उनकी यह बलपूर्वक इच्छा करने लगा। तब बृहस्पतिजी ने इससे आदर के साथ कहा—हे राजन्! शची पतिव्रता है, उसका अन्य से संगम अनुचित है। (१३९) इन्द्र के न दिखाई पड़ने से देवताओं ने तुम्हें स्थापित किया है। तुम उसको पाने की इच्छा न करो। उससे अच्छी अच्छी बहुत सी स्त्रियाँ हैं। (१४०) जब तक इन्द्र नहीं आते, तब तक उन लोगों के साथ सुख करो। ऐसी बात सुनकर नहुष ने उनका अनादर किया और बल से भोग के लिये जल्दी की। (१४१) तब बृहस्पतिजी ने अपने पिता को नहुष के पास भेजा और कहा कि जिस भाँति शची का पातिव्रत नष्ट न हो ऐसा उपाय कीजिये। (१४२) उसे अपने मालिकपने का बड़ा अभिमान हो गया है, उसने मेरी एक बात नहीं सुनी। अपने पुत्र बृहस्पतिजी की ये बातें सुनकर, (१४३) इन्होंने नहुष के पास जाकर उनको बहुत समझाया। जब उसने तुम्हारे भक्त इस योगी की बातें न सुनीं, (१४४)

१ ग. त्वल्पां।

अश्रेयस्तेऽचिराद्भावीत्युक्त्वाऽगान्निजाश्रमम् ।
शिविकावाहनव्याजादगस्त्याच्छिवयोगिनः ॥१४५॥
[1]शप्तो हतः पुनर्भूमिं प्रापाऽजगरदेहवान् ।
वर्षायुतं सर्पदेहदुःखं भुक्त्वा ततः परम् ॥१४६॥
हिमाद्रिकन्दरे भीमं शिवभक्तं † दशत् क्षुधा ।
तदा तत्सोदरो ज्ञात्वा सर्पग्रस्तं कनीयसम् ॥१४७॥
आगत्य नहुषं प्राह [2]शापाप्ताहितनुं नृपम् ।
कोऽसि त्वं केन पापेन महाहित्वं गतो वद ॥१४८॥
विना शिवापराधेन भक्तानां वा त्वमीदृशः ।
न भवेः कृमितोऽप्येवं प्राणिहिंसां करोषि भोः ॥१४९॥
अहं पाण्डुसुतो धर्म्मो भीमो मेऽवरजो धृतः ।
त्वया विसृज तं श्रेयो भवेत्तेऽपि शिवाज्ञया ॥१५०॥

तब ये, यह कहकर कि बहुत शीघ्र तेरा अकल्याण होनेवाला है, अपने आश्रम को चले गये। नहुष पालकी को ढोने के व्याज से शिवयोगी अगस्त द्वारा शापित होकर वह (१४५) मारा गया और पृथ्वी में गिरकर अजगर हो गया। दस हजार वर्ष तक उसने सर्प-देह का दुःख भोगा। उसके बाद (१४६) हिमालय की कन्दरा में शिव-भक्त को मारे भूख के खा गया। तब उनके भाई को मालूम हुआ कि छोटे भाई को अजगर खा गया (१४७) तब वे आकर शाप से अजगर बने हुए राजा से बोले—तू कौन है? और किस पाप से अजगर हुआ? सो बतला। (१४८) शिव वा उनके भक्तों के अपराध के विना तू ऐसा कृमि न होता। अरे! तू इतने पर भी प्राणिहिंसा करता है! (१४९) मैं पाण्डु का बेटा धर्मराज हूं, भीम मेरा छोटा भाई है, उसे तूने पकड़ लिया है। सो ग्रसे हुए भीम को छोड़ दे, इसके छोड़ने से शङ्कर की आज्ञा से तेरा भी कल्याण होगा। (१५०) इस प्रकार बात चीत में उनके मुख

१ ग. स मोहितः। २ ग. शापप्राप्ततनुं। † अडभाव आर्षः।

इति तन्मुखतः शम्भोर्नामवार्त्तामिषोद्गतम् ।
श्रुतमात्रेणाप्तपूर्वज्ञानः सन् [1]तं समुत्सृजत् ॥१५१॥
ग्रस्तं भीमं समुत्सृज्य प्राह धर्म्मं रुदन्मुहिः ।
शृणु धर्म ! वदेऽहं वै नहुषस्ते कुलाग्रणीः ॥१५२॥
यथोक्तइष्टयज्ञोऽहमिन्द्रो भूत्वाऽतिगर्वितः ।
अगस्त्याङ्गिरसौ शैवश्रेष्ठौ द्वेष्येदृशोऽभवम् ॥१५३॥
तयोः प्रसादं सम्पाद्य [2]वत्स ! त्वं मां समुद्धर ।
इत्युक्तस्तेन धर्म्मोऽपि प्राथ्र्याङ्गिरसमादरात् ॥१५४॥
अस्य प्रसादं सम्पाद्य कुम्भजस्यापि पाण्डुजः ।
शिवापराधदोषघ्नं तद्भक्तानां विशेषतः ॥१५५॥
काश्यां गुप्तं च ते तीर्थं केदारश्चोपदिष्टवान् ।
सर्पदेहात्तमुन्मुच्य तत्तीर्थे स्नाप्य भक्तितः ॥१५६॥

से 'शम्भु' नाम निकल पड़ा, सुनते ही उसे पूर्वजन्म का ज्ञान हो आया और उसने तुरन्त भीम को छोड़ दिया। (१५१) ग्रसे हुए भीम को छोड़कर वह सर्प रोते रोते धर्मराज से बोला कि हे धर्म ! मैं तुमसे कहता हूँ सुनो, मैं तुम्हारे कुल का सरदार नहुष हूं। (१५२) मैंने यथोक्त यज्ञ किया और इन्द्र होकर अति अभिमानी हो गया। अगस्त्य और अङ्गिरा इन दो श्रेष्ठ शैवों का द्वेष करने से मेरी यह दशा हुई। हे बेटा ! उन दोनों को राजी करके मेरा उद्धार कर। उनकी ऐसी बात सुनकर राजा युधिष्ठिर ने अङ्गिरा की आदर के साथ प्रार्थना की। (१५४) पाण्डु-पुत्र ने इनको और अगस्त्यजी को प्रसन्न कर लिया। तब उन लोगों ने शिव के अपराध और विशेषतः उनके भक्त के अपराध को दूर करनेवाले (१५५) काशी के गुप्त केदार-तीर्थ का उपदेश किया। सर्प-

१ ग. तमवासृजत। २ क. ख. पुस्तके—"वत्स ! त्वं मां समुद्धर। इत्युक्तस्तेन धर्म्मोऽपि प्राथ्र्याङ्गिरसमादरात्॥ अस्य प्रसादं सम्पाद्य" इति पाठो नास्ति।

कथं प्राप्ताः पदं श्रेष्ठं देवविप्रद्रुहोऽपि ते ।
केदारेशं पूजयित्वा मोचितस्तु शिवागसः ।
संस्थाप्य नाहुषं लिङ्गं स्वनाम्नाप्यविमुक्तके ॥१५७॥
स्वर्लोकं प्रापयामास धर्म्मराजः शिवास्तधीः ।
अन्येऽपि बहवो देवि ! देवमानुषभोगिनः ॥१५८॥
अज्ञात्वापि च ते तीर्थवैभवं स्नानमाचरन् ।
मुक्ताः शिवागसो देवि ! केदारेशप्रसादतः ॥१५९॥
शूरपद्मादयो दैत्या हिरण्याद्याश्च दुर्धियः ।
कथं प्राप्ताः पदं श्रेष्ठं देवविप्रद्रुहोऽपि ते ॥१६०॥
त्वत्तीर्थवैभवान्मुक्ता नो चेत्तेषाञ्च का गतिः ।
तस्माद् देवि ! स्वरूपं ते काशिका सर्वपापहा ॥१६१॥
विश्वेशमणिकर्ण्यादिदेवतीर्थैरनोदितं ।
शिवागोऽपि भवत्तीर्थं [1]नाशयत्यखिलाघहम् ॥१६२॥

देह से उनको निकाल कर तुम्हारे तीर्थ में भक्तिपूर्वक स्नान कराया । (१५६) केदारेश्वरजी की पूजा करके शिवापराध से मुक्त कराया । नहुष के नाम से और अपने नाम से भी अविमुक्त काशी क्षेत्र में लिङ्ग स्थापन किया । (१५७) शिवानुरागी युधिष्ठिर ने उन्हें स्वर्ग लोक की प्राप्ति करा दी । हे देवि ! और कितने देव, मनुष्य एवं नाग तुम्हारे तीर्थ के माहात्म्य को विना जाने ही केदारेश्वर के प्रसाद से शिवापराध से छूट गये । (१५९) शूर, पद्म आदि और हिरण्य आदि दुष्ट दैत्यों ने हे देवि ! ब्राह्मणद्रोही होने पर भी श्रेष्ठ पद को कैसे प्राप्त किया ? (१६०) तुम्हारे ही तीर्थ के प्रभाव से वे मुक्त हुए, नहीं तो उनकी क्या गति होती ? इसलिये सब पापों का नाश करनेवाली काशी तुम्हारा ही स्वरूप है । (१६१) विश्वेश्वर मणिकर्णिकादि देव तीर्थों से भी जो नहीं छूटता, सब पापों को हरनेवाला आपका तीर्थ ऐसे शङ्करापराध का भी

१ ग. नाशयत्यखिलं त्वघम् ।

केदारनाथोऽपि तथा तारयत्यखिलं जगत् ।
एवं त्वद्भक्तमहिमा वर्णितुं केन वै क्षमः ॥१६३॥
अकर्त्तुं कर्त्तुमपि चान्यथाकर्त्तुमपीश्वरः ।
अनुग्रहोऽपि तादृक् च निग्रहोऽपि शिवात्मनाम् ॥१६४॥
इतोऽप्यधिकमाश्चर्य्यं न जाने भुवनत्रये ।
इत्युक्त्वा नारदो देवीं नत्वा द्विजवरैः सह ॥१६५॥
अनुज्ञातास्तया सर्वे स्वं स्वं स्थानं प्रपेदिरे ।
मेनकाऽपि शिवां नत्वा श्रुत्वाऽद्भुतकथा अपि ॥१६६॥
अनुज्ञाता ययौ स्वर्गं श्लाघयन्[1] शिवयोगिनः ।
तीर्थं केदारलिङ्गञ्च काशीं विश्वेशरादिकान् ॥१६७॥
देवांश्च मणिकर्णीं च मुहुर्मुहुरनन्यधीः ।
अयमेवोपाय इतिं दुर्धरस्योद्धृतिं प्रति ॥१६८॥

नाश करता है। (१६२) उसी भाँति केदारनाथ भी सम्पूर्ण जगत् को तार देते हैं। इस प्रकार आपके भक्त की महिमा को रोकने में कौन समर्थ है? (१६३) शिव ही हैं आत्मा जिनकी ऐसे लोग करने, न करने और अन्यथा करने में भी समर्थ हैं। और वैसा ही उनका निग्रहानुग्रह भी है। (१६४) तीनों लोक में इससे बढ़कर कोई आश्चर्य्य मुझे नहीं मालूम होता। ऐसा कहकर नारदजी ने देवी को और श्रेष्ठ ब्राह्मणों के साथ नमस्कार किया। (१६५) और उनकी अनुज्ञा पाकर सब अपने अपने स्थानों को चले गये। मेनका ने भी यह अद्भुत कथा सुनकर भगवती को नमस्कार किया (१६६) और आज्ञा पाकर शिव योगियों की प्रशंसा करती हुई स्वर्ग गई। तीर्थ, केदार-लिङ्ग, काशी और विश्वेश्वरादिक देवता (१६७) तथा मणिकर्णिका का ही ध्यान करती हुई और प्रशंसा करती हुई गई, और यह निश्चय किया कि यही उपाय दुर्धर के उद्धार का है। (१६८)

---

१ ग. श्लाघित्वा।

कृतार्थञ्च करोम्येनमहो महदनुग्रहात् ।
अपराधिनमप्येनमन्वगृह्णाच्छिवास्तधीः ॥१६९॥
तस्य प्रसादादेवास्य[1] लभेज्जन्म कृतार्थताम् ।
[2]इति चिन्त्य समायाता तुष्टा गेहञ्च मेनका ॥१७०॥
आश्वासयद् दुर्धरञ्च माभैरिति [3]वदन् मुदा ।
इति सकलजनानां पावनीं शम्भुभक्तः[4]
प्रभवशुभकथां यः [5]कर्णपात्रीकरोति ।
अमृतरसमयीं श्रीकाशीकेदारतीर्थ-
प्रचुरमहिमगन्धां स प्रयातीशधाम ॥१७१॥
देव्याः सन्निधिमागतान् मुनिवरान् स्मृत्वा मुहुर्मेनका
किं भाग्यं प्रवदे महत्तरमिदं तद्दुर्धरस्येष्टदम् ।
मत्प्राप्ते समयं सभाभुवि महादेव्यास्तदानीं पुन-
स्तेषामागमनं शिवागमविदां तत्तत्कथालापनम् ॥१७२॥

बड़ों के अनुग्रह से इसे कृतार्थ करूंगी, शिवानुरागी महात्मा इस अपराधी पर अनुग्रह करेंगे। (१६९) उनके प्रसाद से इसका जन्म कृतार्थ होगा। ऐसा सोचकर मेनका तुष्ट हो घर आई। (१७०) प्रसन्नतापूर्वक 'मत डरो' ऐसा कहकर उसने दुर्धर को आश्वासन दिया। यह सकल लोकों को पवित्र करनेवाली, शम्भु-भक्तों की कथा है, इस अमृत रसमयी, और केदार महिमा के गन्ध से सुगन्धित कथा को जो श्रवण पुट से पीता है, वह शङ्कर के धाम को प्राप्त होता है। (१७१) देवी के पास आये हुए मुनिश्रेष्ठों का बार बार स्मरण करके, कहने लगी कि इष्ट देनेवाले दुर्धर के बड़े भारी भाग्य को क्या कहूं? ज्यों ही मैं महादेवी की सभा में गई त्यों‌ही शिवागम को जाननेवाले श्रेष्ठ मुनि लोग भी आ गये, और

१ ग. प्रसादादेवाऽयं। २ ग. विचिन्त्यैवं। ३ ग. पुनः पुनः। ४ ग. शंभुभक्तेः। ५ ग. कर्णपात्रीं।

सर्वं सङ्घटितं त्विति प्रमुदिता सञ्चिन्त्य सञ्चिन्त्य च
प्रोद्भिन्नोद्गमरोमराजिपुलका स्वान्तेऽतिसंतुष्टिता[1] ।
श्रीमच्छम्भुपदारविन्दभजनासक्ता शिवज्ञानिनां
सत्सङ्गप्रभवप्रसादमपि सा ध्यायन्हृदा दुर्धरे[2] ॥१७३॥

शिवप्रसादादपि चोत्तमस्त-
द्भक्तप्रसादस्त्विति निश्चयन्ती ।
सम्बोधयामास च दुर्धरं सा
कायेन वाचा मनसा दृढं तम् ॥१७४॥

इति श्रीकाशीमूलरहस्ये ब्रह्मवैवर्त्ते खिले काशीकेदारमाहात्म्ये
सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

कथा भी कहने लगे। (१७२) सभी बातें इकट्ठी हो गईं ऐसा सोच-सोचकर प्रसन्न हो जाती थी। उसके शरीर में पुलकावली हो गई, अन्तरात्मा सन्तुष्ट हो गया और वह हृदय में श्रीमान् शम्भु के चरणारविन्द के भजन में लगी हुई शिवज्ञानियों के सत्संग के आनन्द का भी ध्यान करती थी। (१७३) शिवजी की कृपा से भी उत्तम उनके भक्त की कृपा है, अपने मन में मनसा वाचा कर्मणा ऐसा निश्चय दृढ़ करती हुई, उसने दुर्धर का प्रबोध किया। (१७४)

यह ब्रह्मवैवर्त के खिल ग्रन्थ काशीमूलरहस्यान्तर्गत केदारमाहात्म्य
का सत्रहवां अध्याय समाप्त हुआ।

१ ग. सन्तुष्टता। २ ग. दध्यौ, आ० पु०—क्लीबभाव आर्षः।

अथाष्टादशोऽध्यायः ।

ऋषय ऊचुः—

शिवज्ञानामृतमहापारावारमहामते ! ।
व्यासशिष्य ! कथं पश्चाद् दुर्धरोद्धारणं त्वभूत् ॥ १ ॥
का गतिः कल्पिता तस्य तया मेनकया वद ।
रहस्यं शिवभक्तानां शिवयोश्चाऽद्भुतं परम् ॥ २ ॥
श्रोतुं योग्या यदि वयं श्रावयस्व सुधा गिरा ।

सूत ऊवाच—

शृणुध्वं शिवभक्ताग्र्या नाथशर्मानवद्ययोः ॥ ३ ॥

दोहा—चढ़ि विमान दुर्धर सहित, काशी कियो पयान ।
पै काशी रक्षकन्ह, दियो दुर्धरहिं न जान ॥
करि बिनती तब मेनका, तिनते पाइ उपाय ।
मिलियो जिहिं दल जल दयो, दुर्धर के सिर नाय ॥
स्थावर जंगम योनि बहु, प्रकटे तनते तासु ।
निकसी जोति पुनीत पुनि, भस्म किये सब आशु ॥
तब ताको लै मेनका, काशी कीन्ह प्रवेश ।
डारि दयो मुनि-चरन महँ, पाइ तासु आदेश ॥
विधिवत् न्हायो गौरि सर, तनते निकस्यौ तासु ।
पुण्य हंस मुनि वचन ते, तेहि तन कीन्ह निवास ॥
मुनि आज्ञा केदार को, पूजन दुर्धर कीन्ह ।
योगी के अस्तुति करत, शम्भु दरस तेहि दीन्ह ॥
सो दुर्धर शिव की कृपा, प्रतिष्ठान पुर ईश ।
दिवोदास पुनि सोइ भयेउ, तेज पुञ्ज अवनीश ॥

ऋषि लोग बोले—हे महामते ! आप शिवज्ञानामृत के महा समुद्र हैं। हे व्यास जी के शिष्य ! पीछे दुर्धर का उद्धार कैसे हुआ ? (१) मेनका ने उसके लिये क्या किया ? सो बतलाइये। यह शिवभक्तों का और शिवजी का परमाद्भुत रहस्य है। (२) यदि हम लोग

संवादं वामदेवाय कुमारेणोदितं पुरा ।

सनत्कुमार उवाच—

शृणु गर्भाप्तविज्ञानिन् ! मेनकाऽप्सरसां वरा ॥ ४ ॥
दुर्धरं [1] यानमारोप्यं प्राप्ता तेनाऽविमुक्तकम् ।
नन्दनोद्भवपुष्पाणि पारिजातादिकानि च ॥ ५ ॥
प्रगृह्य बहुशः शीघ्रं केदारेशं प्रपूजितुम् ।
काशीमाप विमानेन सर्वप्राणिविमुक्तिदाम् ॥ ६ ॥
आकाशसंस्थिताः शम्भोर्गणाः काश्यभिरक्षकाः ।
दुर्धरेण सहाऽऽयातां दृष्ट्वा यानेन मेनकाम् ॥ ७ ॥
प्रोचुर्धिक्कृत्य कोऽयं ते विमाने शिवपातकी ।
एनं विसृज्य गच्छ त्वं यदीच्छसि न चेद्व्रज ॥ ८ ॥

इसको सुनने के योग्य हों, तो अमृतमयी वाणी से हम लोगों को सुनाइये । सूतजी ने कहा—कि 'हे शिव-भक्तों के अग्रगण्य ! नाथशर्मा और अनवद्या का (३) सम्बाद, जिसे कि सनत्कुमार ने वामदेव से पहिले कहा था, सुनो । सनत्कुमारजी बोले—हे वामदेवजी ! अप्सराओं में श्रेष्ठ मेनका (४) दुर्धर को विमान पर बैठाकर अविमुक्त (काशी पुरी) में पहुँची । उसने केदारेश की पूजा के लिये नन्दन वन से बहुत से पारिजातादि के फूल ले लिये । (५) तदन्तर सब प्राणियों को मुक्ति देनेवाली काशी में विमान से गई । (६) काशी की रक्षा करनेवाले बहुत से शङ्कर के गण आकाश में स्थित थे । उन लोगों ने देखा कि विमान पर चढ़ी मेनका दुर्धर के साथ चली आ रही है । (७) अतः उन लोगों ने धिक्कारपूर्वक पूछा—यह पापी तुम्हारे विमान पर कौन है ? यदि आना चाहती हो, तो इसे छोड़कर चली आओ; नहीं तो, चली जाओ । (८) जिन खलों ने शिव या उनके भक्तों का अपराध किया है, उन्हें इस नगरी में प्रवेश करने का क्या इसे देखने तक का भी अधिकार

[1] ख. सा ।

शिवापराधिनो वाऽत्र तद्भक्तानां कृतागसः[1] ।
न योग्या हि प्रवेष्टुं वा द्रष्टुं वा नगरीं खलाः ॥ ९ ॥
अयं महापराधी च शिवभक्तस्य योगिनः ।
यमेन प्रापितस्तेऽग्रे कस्माद्वा कारणान्तरात् ॥१०॥
नो चेदयं कल्पकोटिभोगी नरकयातनाम् ।
तस्मादेनं विसृज्य त्वं गच्छ काशीं निषेवितुम् ॥११॥
एवमुक्त्वा गणैर्व्योम्नि धिक्कृताऽतीव मेनका ।
तदा सा तान्नमस्कृत्य प्राह गद्गदया गिरा ॥१२॥
भगवतश्च विज्ञप्तिं मे श्रुत्वा पान्तु मां त्वमुम् ।
अयोग्य एवायमत्र प्रवेष्टुं नात्र संशयः[2] ॥१३॥
तथापि शरणं प्राप मामयं यमचोदितः[3] ।
अहमप्येनमवदं माभैरित्यज्ञताबलात् ॥१४॥
शिवाज्ञावशगः सौरिर्धर्माधर्मविवेचकः[4] ।
नरकाणां पात्रमेनं मदग्रे प्रेषयत् कथम् ॥१५॥

नहीं है । (९) इसने शिवभक्त योगी का बड़ा भारी अपराध किया है । यम ने इसे तेरे पास किसी दूसरे कारण से भेज दिया होगा । (१०) यह तो कोटि कल्पों तक नरक की यातना भोगनेवाला है । इसलिये तू इसे छोड़कर काशीसेवा के लिये जा सकती है । (११) इस प्रकार गणों ने आकाश में मेनका को बहुत फटकारा । तब वह डर से हाथ जोड़कर गद्-गद् स्वर से उन लोगों से बोली—(१२) हे महात्माओ ! मेरी विनती सुनकर आप लोग मेरी और इसकी—दोनों की रक्षा करें, यह इस स्थान में प्रवेश करने के अयोग्य है इसमें सन्देह नहीं है । (१३) तथापि यमराज की प्रेरणा से यह मेरे शरण आया है । मैंने भी अपने अज्ञान से इसे अभय दे दिया है । (१४) यमराज शिवजी के आज्ञाकारी हैं, धर्माधर्म की विवेचना उन्हीं के सुपुर्द है, यदि यह

१. ग. शिवस्य० । २ संशयम् । ३ ग. यमचोदितम् । ४ ग. …विवेचकम् ।

अहमज्ञापि यूयन्तु [1]सर्वज्ञाः शिवरूपिणः ।
ज्ञात्वेमं संशयं ब्रूत मामज्ञां ज्ञानचक्षुषा ॥१६॥
इत्युक्तास्ते शिवगणास्तया तद्व्योमपालकाः ।
तदा ज्ञानदृशा ज्ञात्वा ते तामूचुस्तदुद्धृतिम् ॥१७॥
शृणु भद्रे ! प्रवक्ष्यामो[2] यस्यानुग्रहनिग्रहौ ।
[3]अमोघौ स तु वै काश्यां ध्यायन्नास्ते शिवं सदा ॥१८॥
शिवानन्दाभिधो योगी यस्याऽयं द्रोहमाचरत् ।
[4]विषमिश्रेण तोयेन [5]ततो येन हतः स्वयम् ॥१९॥
अनेन कृतपापानां तत्पूर्वेषामसंख्यया ।
शिरोरत्नमभूत् पापं कृतं तच्छिवयोगिने ॥२०॥
तथापि त्वाम्य तद्योगी दयालुः स्वाग्रतो मृतम् ।
[6]अन्वगृह्णाच्छुभं भूयादिति देहं त्वदाहयत् ॥२१॥

नरकों का पात्र है, तो इसे उन्होंने मेरे पास क्यों भेजा ? (१५) मैं अज्ञ हूँ, लेकिन आप लोग तो शङ्कर रूप एवं सर्वज्ञ हैं। इस संशय को ज्ञान-दृष्टि से देखकर मुझ अज्ञ से बतलाइये। (१६) जब मेनका ने व्योम-पालक शिव-गणों से ऐसा कहा, तो उन लोगों ने ज्ञानदृष्टि से सब ज़ानकर उसे दुर्धर के उद्धार का उपाय बतलाया। (१७) हे भद्रे ! हम लोग कहते हैं, सुनो, जिनका निग्रहानुग्रह अमोघ है, वह तो यहीं काशी में सदा शिवजी का ध्यान करते हुए रहते हैं। (१८) उनका नाम शिवानन्द योगी है, उन्हीं का इसने द्रोह किया था—उन्हीं को इसने विष मिला हुआ जल देना चाहा था। लेकिन् उसी से उलटा स्वयम् मर पड़ा। (१९) यद्यपि उसके पहिले भी इसने असंख्य पाप किये थे, परन्तु शिवयोगी के विषय में किया हुआ पाप और सब पापों का शिरोरत्न हो गया। (२०) तथापि उस दयालु योगी ने अपने सामने इसे

१ ग. सर्वे हि। २ ग. प्रवक्ष्यामि। ३ ग. समाधो। ४ ग. विषमिश्रितोयेन। ५ ग. तत्तोयेन। ६ ग. अनुग्रहा०।

गच्छ त्वमग्रे स्थाप्याऽमुं काश्यां योगिनमानम ।
वद वृत्तान्तमखिलं तदाज्ञानुसृताऽऽचर ॥२२॥
न याति दृक्पथं योगी तव काश्यां कथञ्चन ।
तथाप्युपायं ते ब्रूमो येन त्वं द्रक्ष्यसि द्विजम् ॥२३॥
नभोमासि विधोर्वारे पौर्णमास्यां विशेषतः ।
श्रीमत्केदारसेवार्थमागच्छन्ति त्रिलोकगाः ॥२४॥
कार्तिके [1]पौर्णमास्यां वा वारे वा शशिनस्तथा ।
सहोमासि तथार्द्रायां सहस्ये पुण्यऋक्षके ॥२५॥
तपस्यपि मघे ऋक्षे [2]भगदेवेऽथ फाल्गुने ।
चित्राऋक्षे चैत्रमासि विशाखर्क्षे च माधवे ॥२६॥
शुक्रे ज्येष्ठर्क्षके पूर्वायुते मासि शुचावपि ।
मासि प्रौष्ठपदे चैव भद्रायामुत्तरे तथा ॥२७॥

मरा हुआ देखकर अनुग्रह पूर्वक यह कहकर कि इसका शुभ हो, इसका दाह कराया। (२१) तू इसे यहीं ठहराकर काशी में जा, योगी को नमस्कार कर और सब वृत्तान्त उनसे निवेदन कर। फिर, जो वह कहें, वही करना। (२२) वे योगी तुझे काशी में किसी भाँति दिखलाई नहीं पड़ेंगे। फिर भी तुझे उपाय बतलाता हूँ, जिससे तू उस ब्राह्मण को देख पावेगी। (२३) श्रावण के सोमवार को और विशेष करके पूर्णिमा के दिन श्रीमान् केदारनाथ की सेवा के लिये तीनों लोकों के निवासी आते हैं। (२४) कार्त्तिकी पूर्णिमा को सोमवार के दिन, अगहन के आर्द्रा नक्षत्र में, पौष के पुष्य नक्षत्र में, (२५) माघ के मघा नक्षत्र में, फाल्गुन के पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र में, चैत्रमास के चित्रा नक्षत्र में, वैशाख के विशाखा नक्षत्र में (२६) ज्येष्ठ के ज्येष्ठा नक्षत्र में, आषाढ़ के पूर्वा नक्षत्र में, भाद्रपद के उत्तरा भाद्रपद नक्षत्र में (२७) और आश्विन शुक्ल के पन्द्रहों दिनों में, देव, तिर्यक् और मनुष्य सब काशी

१ ग. पूर्णिमायां । २ ग. भगदेवे च फाल्गुने ।

[१]शुक्लाश्विनदिनेष्वेवं दिनपञ्चदशावधि ।
देवनिर्यङ्नराः सर्वे काशीमायान्ति सेवितुम् ॥२८॥
विश्वेशादीन् नमस्कृत्य श्रीमत्केदारसन्निधिम् ।
आयान्ति सेवितुं भद्रे ! तत्र द्रक्ष्यसि योगिनम् ॥२९॥
नभोराकासोमदिनमद्य ते पुण्यतोऽस्ति हि ।
अवश्यन्तु शिवानन्दयोगी केदारमेष्यति ॥३०॥
अदृश्योऽपि स सर्वेषां तव दृग्गोचरो भवेत् ।
परोपकारकृतिनामदृश्यो न स योगिराट् ॥३१॥
तस्मात्त्वमीदृशं पापभाजनं तारितुं यत ।
त्वत्प्रतिज्ञाऽपि सत्या हि तस्यानुग्रहतो भवेत् ॥३२॥
इत्याज्ञां शिरसा गृह्य गणानां तत्र मेनका ।
सयानं तत्र तं स्थाप्य गता काशीं मनोजवा ॥३३॥
विश्वेशादीन् नमस्कृत्य श्रीमत्केदारमागता ।
तत्राऽभूत्तद्दिने सर्वनेत्रप्रियमहोत्सवः ॥३४॥

की सेवा करने आते हैं। (२८) वे लोग विश्वेश्वरादि को नमस्कार करके, हे भद्रे ! केदारजी के पास सेवा के लिये आते हैं, वहाँ तू शिवयोगी को देख सकेगी। (२९) आज तेरे पुण्य से श्रावणी पूर्णिमा के दिन सोमवार है, अवश्य ही शिवानन्द योगी केदारजी में आवेंगे। (३०) सबके लिए अदृश्य रहते हुए भी वे तुझे दिखाई पड़ेंगे। क्योंकि परोपकार करनेवालों के लिये वे योगिराज अदृश्य नहीं रहते। (३१) इसलिये तू ऐसे पापी के तारने का प्रयत्न कर, उन्हीं के अनुग्रह से तेरी प्रतिज्ञा सत्य होगी। (३२) तब मेनका ने उन गणों की आज्ञा को शिरोधार्य्य करके विमान के साथ उसको तो वहीं छोड़ा, और स्वयम् मन-ऐसी वेगवाली हो काशी गई। (३३) विश्वेश्वरादि को नमस्कार करके श्रीमत्केदारनाथ में पहुँची। उस दिन वहाँ सबके नेत्रों को सुख देनेवाला

१ ग. शुक्लाश्विने ।

श्रीमत्केदारनाथञ्च नत्वा स्तुत्वा प्रपूज्य च ।
शिवानन्दं मुनिं द्रष्टुमुद्युक्ता सर्वतोऽभ्रमत् ॥३५॥
तत्र मध्याह्नसमये प्राचीने मणिकर्णिके ।
तटेऽपश्यच्छिवानन्दयोगिनं सूर्यवर्चसम् ॥३६॥
मणिकर्णीस्नानपूर्वकृतविश्वेशदर्शनम् ।
कृतनित्यमहायात्रं गौरीतीर्थं समागतम् ॥३७॥
शिवाघादिमहापापानां ध्वंसकं मज्जतां सकृत् ।
तत्र स्नातुं समायातमनुमानाच्च तेजसा ॥३८॥
ज्ञात्वा तच्चरणद्वन्द्वे प्रणनाम च मेनका ।
प्रणमन्तीञ्च तां दृष्ट्वा प्रहसन् शिवयोगिराट् ॥३९॥
प्राहैनां स्वागतं भद्रे ! शुभं सर्वत्र ते वद ।
इति स्पृष्टा मेनकाऽपि तद्दर्शनमहोत्सवा ॥४०॥

महोत्सव था । (३४) श्रीमत्केदारनाथ की पूजा, स्तुति और नमस्कार करके शिवानन्द मुनि को देखने के लिये चारों ओर घूमने लगी । (३५) वहाँ मध्यान्ह में प्राचीन मणिकर्णिका के तट पर सूर्य्य के तुल्य प्रकाशवाले शिवानन्द योगी को उसने देखा । (३६) वे मणिकर्णिका में स्नान, विश्वेश्वर का दर्शन एवं नित्य की महायात्रा समाप्त करके गौरी-तीर्थ में आये थे। (३७) इस तीर्थ में एक बार भी स्नान करने से शिवापराधादि महापातक नष्ट होते हैं, इस लिए वे इसमें स्नान के लिये आये थे। (३८) मेनका ने उनके तेज से तथा अनुमान से उन्हें पहिचान लिया और उनके दोनों चरणों में प्रणाम किया। उसको प्रणाम करती हुई देखकर शिवयोगिराज हँसते हुए बोले—(३९) हे भद्रे ! तेरा स्वागत हो, अपना सब कुशल वृत्त कह। मेनका के लिये उनका दर्शन—महोत्सव था, उनके ऐसा पूछने पर वह बोली—(४०) हे शिवानन्द ! हे दया-निधे ! हे विभो ! आपका अनुग्रह अमोघ है, आपके अनुग्रह से मेरा

१ ग. सर्वतोऽभ्रमम् । २ ग. ......दर्शना । ३ ग. समागताम् ।

अमोघानुग्रह ! विभो ! शिवानन्द ! दयानिधे ! ।
त्वदनुग्रहतश्चाहं सर्वत्र कुशला ध्रुवम् ॥४१॥
ममागमनकार्यं त्वं ज्ञात्वा मेऽनुग्रहं कुरु ।
एवमुक्तस्तया योगी सर्वज्ञः प्राह तां हसन् ॥४२॥
ज्ञातं ज्ञानदृशा सर्वं त्वदागमनमादितः ।
एतत्तीर्थञ्च किंचित्त्वं केदारार्पितपत्रकम्[1] ॥४३॥
गृहीत्वा व्रज तद् देहे दुर्धरस्य क्षिपाऽधुना ।
न रोत्स्यन्ति गणास्तं[2] त्वमानयाऽऽशु च मेऽन्तिकम् ॥४४॥
इत्याज्ञां शिरसा धृत्वा तस्य सापि तथाऽकरोत् ।
तीर्थप्रसादप्रक्षेपात् तद् देहेऽत्यद्भुतं त्वभूत् ॥४५॥
काकाः श्येनास्तथा गृध्रा [3]घूकाद्याः पक्षिजातयः ।
वृकाः श्वानः शशा व्याघ्राः सिंहशार्दूलगर्दभाः ॥४६॥
महिषा हस्तिनोऽश्वाश्च [4]शलल्यः क्रोडमूषकाः ।
बलीवर्दाश्च मार्जाराः [5]खड्गोष्ट्रहरिणादयः ॥४७॥

सर्वत्र निश्चय करके कुशल है। (४१) मेरे आने का कारण जानकर आप अनुग्रह कीजिये। उसके ऐसा कहने पर सर्वज्ञ योगी ने हँसते हुए उससे कहा कि (४२) मैंने ज्ञान-दृष्टि से तुम लोगों के आगमन की व्यवस्था आरम्भ से जान ली। इस तीर्थ का जल और केदारजी में चढ़े हुए कुछ बिल्वपत्र (४३) ले जाकर दुर्धर के देह पर फेंक दे, तब उसे गण लोग न रोकेंगे और उसे मेरे पास ले आ। (४४) उनकी आज्ञा को शिरोधार्य्य करके उसने वैसा ही किया। तीर्थ के प्रसाद को उसके ऊपर फेंकने से यह बड़ा आश्चर्य हुआ (४५) कि कौवे, बाज, गीध, खूसर आदि पक्षी, भेडिया, कुत्ता, खरगोश, व्याघ्र, सिंह, शार्दूल, गदहा, (४६) भैंसा, हाथी, घोड़ा, साही, सूअर, चूहा, बैल, बिल्ली,

१ ग. ··· पात्रकम्। २ ख. गणास्त्वां तमानयाऽऽशु भवान्तिकम्।
३ ग. यूकाद्याः। ४ ग. शलभ्यः ५ ग. खरोष्ट्रहरिणादयः।

अश्वतर्यश्चेति घोरचतुष्पाज्जातयोऽखिलाः ।
सर्पवृश्चिकदंशादिविट्क्रम्यन्तास्त्वसंख्यकाः ॥४८॥
स्थावराः कलिवृत्तादितृणान्ता गुल्मवीरुधः ।
इत्याद्या [1]निःसृता देहात् कज्जलाकारिणोऽखिलाः॥४९॥
ब्रह्मराक्षसवेतालपिशाचाः कोटिशस्तथा ।
हाहेति चक्रुशुर्देहान्निःसृता दुर्धरस्य वै ॥५०॥
दग्धशैलोपमाः सर्वे [2]क्रूरा लोकभयङ्कराः ।
आकाशे सङ्घशो भूत्वा रुदन्ति बहुकातराः ॥५१॥
एतस्मिन्नन्तरे विप्र ! वामदेवाद्भुतं शृणु ।
विद्युल्लेखा दुर्धरस्य देहादाकाशमुद्गता ॥५२॥
[3]अण्डजस्वेदजोद्भिज्जजरायुजपिशाचकम् ।
सङ्घमत्यन्तकृष्णं सा लेखा निरदहत्[4] क्षणात् ॥५३॥
दग्ध्वा सङ्घं पुनस्तस्य देह एव लयं गता ।
त्वङ्भस्मनो वायुनीतान्नीलमद्यापि वै नभः ॥५४॥

गैंडा, ऊँट, हरिणादि, (४७) खच्चरादि सब चौपाये, साँप, बीछी, दंश, मल के कीड़े तक जितने कीट हैं वे सब, (४८) स्थावर विभीतक वृक्ष से लेकर तृण तक, गुल्म, वीरुध इत्यादि कालिख की भाँति काले-काले उसके देह से निकलने लगे। (४९) ब्रह्मराक्षस, वेताल और करोड़ों पिशाच हा हाकार करते हुए दुर्धर के शरीर से निकल पड़े। (५०) वे सब जले हुए पर्वत की भाँति काले, क्रूर और भयंकर थे। आकाश में झुण्ड के झुण्ड कातर स्वर से रोने लगे। (५१) हे ब्राह्मण! वामदेव ! इसके बाद का आश्चर्य्य सुनो, बिजली की रेखा-सी कोई वस्तु दुर्धर के शरीर से निकलकर आकाश में गई और उसने (५२) अण्डज, स्वेदज, जरायुज और पिशाचों के समूहों को जो, कि अत्यन्त काले थे, एक क्षण में जला डाला। (५३) वह रेखा उन सबको

१ ग. निर्गताः । २ ख. क्रूता । ३ ग. अथाण्डज० । ४ ... हति ।

ततः शिवगणाः सर्वे पश्यंस्तत्र तदद्भुतम् ।
प्रशस्य मेनकामाहुर्धन्या त्वमिति चित्रिताः ॥५५॥
मेनका तान्नमस्कृत्य पप्रच्छ शिववल्लभान् ।
चित्रं किमेतन्मां ब्रूतेत्यार्थयद्बहुशो गणान् ॥५६॥
तदा ते मेनकां प्राहुः शिवविज्ञानसागराः ।
शृणु भद्रे ! प्रवक्ष्यामोऽधमस्य तनुतो बहिः ॥५७॥
निर्गतानि च रूपाणि एकैकस्य शतं शतम् ।
[1]जन्मान्यनेकभावीनि भोक्तव्यानि स्थितानि हि ॥५८॥
अस्यान्तःकरणं प्राप्य वासनारूपवन्ति च ।
त्वयानीतमहातीर्थप्रसादस्पर्शमात्रतः ॥५९॥
किञ्चित्पानाच्च पापानि रूपवन्ति बहिःसरन् ।
अशक्यत्वादस्य देहे स्थातुं दग्धतनूनि च ॥६०॥

जलाकर फिर उसके शरीर में लीन हो गई । उस भस्म को हवा ले गई, अतः आज तक आकाश नीला है । (५४) तब तो यह अद्भुत देखकर शिव के गण आश्चर्य्य से उस मेनका की प्रशंसा करते हुए कहने लगे— हे मेनके ! तू धन्य है । (५५) मेनका ने शंकर के उन प्यारे गणों को नमस्कार किया और बहुत प्रार्थना करके पूछा, कि यह क्या आश्चर्य्य हुआ ? मुझे इसका रहस्य बतलाइये । (५६) तब उन शिव-विज्ञान-सागरों ने मेनका से कहा कि हे भद्रे ! हम कहते हैं, सुनो—इस अधम के शरीर से जो जो रूप निकले हैं, (५७) उन २ योनियों में सौ सौ जन्म इसके होनेवाले थे और उनका भोग इसे भोगना था । (५८) वे सब वासनारूप से इसके अन्तःकरण में ठहरे हुए थे, तुम्हारे लाये हुए महातीर्थ के प्रसाद स्पर्शमात्र से (५९) और थोड़ा-सा पानकर लेने से पापों का इसके शरीर से रहना असम्भव हो गया, वे जलने लगे। (६०) अतः रूपधारी पाप झुण्ड के झुण्ड इसके शरीर से बाहर निकल गये।

१ ख. जन्मान्येकेन भावेन ।

तत्तद्देहत्वमापद्य बहिर्याताश्च[1] सङ्कशः ।
इमं पुनः कदाचिच्च लीय कुत्राऽपि मायया ॥६१॥
व्याजेन केनापि बुद्धिं भ्रंशयन्निति बुद्धिराट् ।
विद्युल्लेखामिषेणास्य देहान्निर्गत्य वै त्वरन् ॥६२॥
तानि पापानि सर्वाणि भस्मीकृत्यैनमन्वगात् ।
एतद्रहस्यं जानाति शिवानन्दाख्ययोगिराट् ॥६३॥
एवं ज्ञात्वा वयमपि त्वामग्रे प्रेष्य तत्परम्[2] ।
तस्यैवानुज्ञया त्वस्य दुर्धरस्योद्धृतिः कृता ॥६४॥
गच्छैनं गृह्य काशीं त्वं शिवानन्दपदे क्षिप ।
अस्य श्रेयो भवेदग्रे तस्यैवानुग्रहाच्छुभे ! ॥६५॥
इत्याज्ञां शिरसा गृह्य गणानां मेनका तदा ।
आनीय दुर्धरं [3]काश्यामाक्षिपद् योगिनः पदे ॥६६॥
स्वामिन्नेष समायातस्त्वदनुग्रहतस्त्विह ।
इतः परं तवाधीनस्त्वयं चाहमपि प्रभो ! ॥६७॥

फिर इसी में माया से लीन होकर कहीं छिपे न बैठे रह जायँ (६१) और किसी बहाने से इसकी बुद्धि फिर भ्रष्ट न कर दें—ऐसा सोचकर पुण्यराट् ने बिजली की रेखा के व्याज से इसकी देह से निकलकर (६२) उन सब पापों को भस्म कर दिया और फिर इसी में समा गये । इस रहस्य को शिवानन्द नामी योगिराज जानते हैं । (६३) यही बात जानकर हम लोगों ने पहिले तुझे भेजा और फिर उन्हीं की आज्ञा से इसका उद्धार कराया । (६४) अब इसे लेकर तू काशी जा और शिवानन्द के चरणों पर गिरा दे । हे शुभे ! उन्हीं के अनुग्रह से इसका आगे भी शुभ होगा । (६५) गणों की आज्ञा शिरोधार्य्य करके मेनका तब दुर्धर को काशी ले गई और उसे योगी के चरणों में डालकर (६६) बोली—हे स्वामी ! यह तुम्हारे अनुग्रह से यहाँ तो आ गया,

१ ग. बहिर्यातानि । २ ग.···तत्पराम् । ३ ग. काश्यां प्राक्षिपत । ४ ग. स्विति ।

पादयोः पतितं दृष्ट्वा दुर्धरं योगिनायकः ।
स्नापयामास विधिवद् गौरीतीर्थेऽखिलाघहे ॥६८॥
स्नानमात्रेण तद्देहादद्भुतं त्वभवत् पुनः ।
[1]स्वच्छः श्वेतो हंस एको निर्गतस्तत्तनोर्बहिः ॥६९॥
शिवानन्दपदद्वन्द्वे नत्वा प्राह कृताञ्जलिः ।
स्वामिन्नद्य गता भीतिश्चिरकालस्थिता मयि ॥७०॥
अस्यान्तःकरणं प्राप्य दुष्टसंघैश्च मर्दितः ।
तवानुग्रहतो मुक्तो दुष्टैर्निविडमर्दनात् ॥७१॥
भवत्याज्ञा यदि तव पुनरस्मिन् वसाम्यहम् ।
नो चेत्त्वय्यवकाशं मे देहि सर्वाश्रय ! प्रभो ! ॥७२॥
इति तद्गिरमाकर्ण्य योगी प्राह हसन् द्विजम् ।
कस्त्वं वद यथावृत्तं दृश्यसे हंसदेहवान् ॥७३॥

इसके बाद यह और हम भी तुम्हारे अधीन हैं। (६७) योगिनायक ने दुर्धर को पैरों पर गिरा हुआ देखकर, अखिल पापों को हरनेवाले गौरी-तीर्थ में उसे विधिवत् नहलाया। (६८) नहाते ही उसकी देह से फिर एक अद्भुत बात हुई। एक स्वच्छ श्वेतवर्ण हंस उसकी देह से बाहर निकला (६९) और शिवानन्द के दोनों चरणों को नमस्कार करके हाथ जोड़कर बोला—हे स्वामी ! मैं बहुत दिनों से इसमें रहता हूँ, पर आज मेरे भय की निवृत्ति हुई। (७०) इसके अन्तःकरण में आकर मेरा बड़े २ दुष्टों से संग हुआ, और उन सभी ने मुझे बड़ी पीड़ा पहुँचाई। आपके अनुग्रह से मैं दुष्टों की पीड़ा से छूट गया (७१) यदि आपकी आज्ञा हो तो फिर मैं इसी में रहूँ, नहीं तो आप सर्वाश्रय हैं, मुझे अपने में स्थान दे दीजिये। (७२) उसकी बात सुनकर योगी हँसते हुए उस चिड़िया से बोले—तुम कौन हो ? अपना हाल कहो, तुम्हारी देह तो हंस की-सी

१ ग. स्वच्छश्चित्रो ।

ज्ञात्वा त्वामवकाशञ्च वदामि वसितुं चिरम् ।
इत्युक्तस्तु तदा हंसः प्राह योगिनमानमन् ॥७४॥
दुर्धरोऽयं महापापी वक्तुमस्याघमक्षमः ।
वेश्यार्थं चोरता पुष्पमनेनैकं समुज्झितम् ॥७५॥
[1]पुष्पं शिवार्पणमिति ब्रुवता धावता भिया ।
तदा शिवाज्ञया चाहमस्य देहमुपाश्रितः ॥७६॥
शिवपुण्यमहं नाम्ना हंसरूपं ममैच्छिकम् ।
त्वदनुग्रहतेजो मद्बाधकानदहत् क्षणात् ॥७७॥
इदानीं सुखितस्त्वग्रे किं वेत्यस्ति च भीर्हृदि ।
चपलोऽयं मम रिपून् क्षणादाऽऽपादयिष्यति ॥७८॥
तस्मात्तवाज्ञानुसाराद् वर्त्तामि वद मे प्रभो ! ।
इत्युक्तवन्तं तं हंसं शिवानन्दोऽब्रवीद्वचः ॥७९॥

मालूम होती है। (७२) तुम्हें जान लें, तो तुम्हें बहुत दिन तक रहने के लिये स्थान बतलावें। इस बात को सुनकर हंस योगी को नमस्कार करके बोला—(७४) यह दुर्धर महापापी है, इसके पापों को कहने में मैं असमर्थ हूँ। इसने वेश्या के लिये फूल चुराये, उन फूलों में से एक फूल गिर गया। (७५) यह डर से भागता हुआ उस फूल के लिये शिवार्पण बोलता गया, तब मैं शङ्कर की आज्ञा से इसके देह में ठहर गया। (७६) मेरा नाम शिवपुण्य है। मैं अपनी इच्छा से हंस की देह बनाये हुए हूँ। तुम्हारे अनुग्रह के तेज ने मेरे बाधकों का क्षण भर में नाश कर दिया। (७७) इस समय तो मैं सुखी हूँ, आगे क्या होगा ? यही डर मेरे भीतर है। यह (दुर्धर) चपल है, क्षण भर में मेरे शत्रुओं को इकट्ठा कर लेगा। (७८) इसलिये तुम्हारी आज्ञा के अनुसार मैं बर्तूंगा। हे प्रभो ! आप मुझसे कहें। पुण्य-हंस के ऐसा कहने पर शिवानन्द जी बोले—(७९) हे शिवपुण्यों में श्रेष्ठ ! तुम

१ ख. पुण्यं ।

मा भैस्त्वं शिवपुण्याग्र्य ! दुर्धरे सुखमावस ।
तव प्रसादादेवायमुद्धृतो बहुपातकी ॥८०॥
पूर्वजन्मन्ययं विप्रो धर्मभ्रष्टोऽतिपातकी ।
सर्वभक्षः सर्वनारीगामी द्रोहपरः सताम् ॥८१॥
दशार्णदेशे म्लेच्छैश्च मिलितः स्वोदरंभरिः ।
म्लेच्छस्त्रिया रन्तुमयं रात्रौ प्राप रहःस्थलम् ॥८२॥
ग्रामाद्बहिररण्येऽभूच्छून्यसोमेश्वरालयः ।
गर्भगृहे लिङ्गपार्श्वे रहःस्थाने तदालये ॥८३॥
म्लेच्छया रन्तुमिच्छंस्तत् स्थानं चेलाञ्चलेन वै ।
पुञ्जीकृत्य च धूलिं स प्राक्षिपद्द्वारबाह्यतः ॥८४॥
तस्याः प्रीत्यै समानीतं गन्धताम्बूलमाल्यकम् ।
हस्तेन लिङ्गमामृश्य लिङ्गोपरि दधौ तदा ॥८५॥
सुचिक्कणशिलास्तीति धिया तमसि हृष्टधीः ।
स्थाप्य लिङ्गोपरि च तद् द्रव्यं गन्धादिकं पुनः ॥८६॥

डरो मत, सुख से दुर्धर में बसो, तुम्हारे प्रसाद से इस बड़े भारी पातकी का उद्धार हुआ। (८०) पूर्व जन्म में यह ब्राह्मण था, परन्तु धर्मभ्रष्ट होकर अत्यन्त पापी हो गया था। यह सर्वभक्षी एवं सर्वनारी-गामी हो गया और भलों से तो परमद्रोह रखता था। (८१) दशार्ण देश में म्लेच्छों से मिलकर अपना पेट पालन करता था। म्लेच्छ स्त्री के सहवास के लिये रात को (८२) गाँव से बाहर बन में सोमेश्वर के सूने मन्दिर में जगह मिली। उसी मन्दिर के भीतर लिङ्ग के पास ही (८३) उस म्लेच्छ स्त्री से इसने रमण करना चाहा, सो कपड़ों की छोर से वहाँ की गर्द बटोरकर बाहर फेंक दी। (८४) उसकी प्रीति के लिये इतर, माला और पान लाया था, उसे हाथ से टटोल कर लिङ्ग के ऊपर रख दिया। (८५) अन्धकार में उसे वही चिकना पत्थर मालूम पड़ा, अतः प्रसन्न हुआ और इतर इत्यादि उसी

बहिःस्थितां म्लेच्छनारीं हस्ते गृह्यान्तरा ऽनयत् ।
तयां रन्तुं समारब्धस्तस्यै तद्द्रव्यमर्पयत् ॥८७॥
अज्ञात्वापि च तद्द्रव्यं निहितं शिवसादभूत् ।
तत्पुण्यशेषतश्चायं काश्यां वैश्यसुतस्त्वभूत् ॥८८॥
वेश्याया जातिसाङ्कर्यात् भ्रष्टबुद्धिरभूत् पुनः ।
तथापि शिवपुण्यस्य महिमानन्तु वेत्ति कः ॥८९॥
तत्पुण्यशेषतः पुष्पमेकं वाचा समर्पयत् ।
तेन त्वमप्यस्य तनौ मूलभूतः शिवाज्ञया ॥९०॥
महापापोऽपि तत्सङ्गाद् यमोऽप्यस्मिन् दयां व्यधात् ।
इदानीमस्य पापौघो हतस्तीर्थप्रसादतः ॥९१॥
यः कश्चिदस्मिन् तीर्थाग्र्ये स्नात्वा ऽज्ञात्वाऽपि वैभवम् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो स भवेत्[1] श्रेयसाम्पदम्[2] ॥९२॥

पर रक्खा। (८६) वह म्लेच्छ की स्त्री बाहर खड़ी थी उसका हाथ पकड़ कर भीतर ले गया, उसके साथ सहवास करने के समय वे सब चीजें उसी को दे दीं। (८७) विना जाने भी रखने से वे चीजें सब शिवार्पण हो गईं। उसी पुण्य के शेष से यह काशी में वैश्य का पुत्र हुआ। (८८) इसकी मा वेश्या थी। सो वर्णसंकरता के कारण इसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई। तथापि शिवपुण्य की महिमा कौन कह सकता है ? (८९) उसी पुण्य के शेष से उसने एक फूल वाणी द्वारा शिवार्पण किया। उसी कारण शंकर की आज्ञा से तुम इसके शरीर के मूलभूत हुए। (९०) इसके महापापी होने पर भी तुम्हारे संग के प्रभाव से यमराज ने इसपर दया की। अब इसके पाप के समूह तीर्थ के प्रसाद से नष्ट हो गये। (९१) जो कोई इस तीर्थ के सामने इसके वैभव को न जानकर भी स्नान करता है, वह सब पापों से विनिर्मुक्त होकर मोक्ष का भागी होता है। (९२) श्रीमान् केदारजी के प्रसाद से फिर पीछे

---

१ ख. भवतु। २ ग. सम्पदम्।

न भवेत् पापधीः पश्चाच्छ्रीमत्केदारवैभवात् ।
प्रारब्धवशतः पापं प्राप्तं यद्यपि तेन वै ॥९३॥
न स्पृशेत्तं यथा ज्योतिस्तमस्तोमोऽतिदूरभाक् ।
तस्मादयमितोऽप्यग्रे श्रेयसां भाजनं भवेत् ॥९४॥
त्वदाधारतया शम्भोः पदं प्राप्स्यत्यसंशयम्[1] ।
त्वमस्मिन्नेव संस्थित्वा श्रेयसां संग्रहं कुरु ॥९५॥
समुद्धरैनं हंसाग्र्य ! शिवपुण्यवतां वर ! ।
इति पुण्यं शिवानन्दयोगिनोक्तं महेशितुः ॥९६॥
प्रहसन् प्राह योगीन्द्रं सत्यं प्राह भवानिति ।
यस्मिन् प्राणिनि योगीन्द्र ! मत्प्रवेशलवोऽप्यभूत् ॥९७॥
तत्र प्राप्तमहाघौघमपि [2]नोच्चे चिरात् क्रमात् ।
इति प्रतिज्ञा मे ब्रह्मन् ! सत्यं वच्मि शिवाज्ञया ॥९८॥

से पापबुद्धि नहीं होती। यदि प्रारब्धवश उससे पाप हो भी जाय (९३) तो भी उसको स्पर्श नहीं करता, जैसे कि अन्धकार का समूह ज्योति से दूर रहता है इसलिये यह इसके बाद यह कल्याण का भाजन होगा। (९४) तुम्हारे आधार से यह अवश्य शम्भु के पद को प्राप्त होगा, इसमें सन्देह नहीं है। तुम इसके भीतर ठहरकर कल्याण-संग्रह करो। (९५) हे हंसों में श्रेष्ठ ! तुम शिवपुण्यवालों में उत्तम हो, इसका उद्धार करो। इस प्रकार से शिवानन्द योगी का वचन सुनकर शिवपुण्य ने (९६) योगी से हँसते हुए कहा कि, आपने सच कहा। हे योगीन्द्र ! जिस प्राणी में जरा सा भी मेरा प्रवेश हो जाता है, (९७) उसके बड़े भारी पाप को भी मैं धीरे २ क्रम से दूर करता हूँ। हे ब्राह्मण ! यह मेरी प्रतिज्ञा है। मैं शिव की आज्ञा से सच बोलता हूँ। (९८) आप सब जानते हैं, क्योंकि आप रहस्यज्ञ हैं। निश्चय करके तुम्हारे अमोघ

१ ग. संशयम्। २ ग. नोत्स्ये।

जानात्येव भवान् 'सर्वं रहस्यज्ञोऽसि वै यतः।
त्वदमोघानुग्रहेण दुर्धरस्तारितो ध्रुवम् ॥९९॥
तवाज्ञाकार्यहं सत्यं शिवज्ञानी यतो भवान्।
इत्युक्त्वा तं नमस्कृत्य स हंसः शिवसत्क्रियः ॥१००॥
तत्रैव दुर्धरतनौ सर्वाश्चर्यस्तिरोदधे।
दुर्धरो नैव जानाति योगिहंससुभाषणम् ॥१०१॥
योगिनः कृपया योषिदपि जानाति मेनका।
ततो मेनकया योगी दुर्धरेण सहाभ्यगात् ॥१०२॥
श्रीमत्केदारलिङ्गस्य समीपं तीर्थराजतः।
नन्दनातीतकुसुमैर्दुधरस्यैव हस्ततः ॥१०३॥
अथार्पयद् महालिङ्गं श्रीमत्केदारनायकम्।
स्वयमप्यर्चयामास मेनका कुसुमैः पृथक् ॥१०४॥
पूजयित्वा विधिवत्तेन प्रक्रमवन्दनैः।
स्वयमप्रार्थयद् योगी सानन्दाश्रुः परात्परम् ॥१०५॥

अनुग्रह से दुर्धर तर गया। (९९) मैं तो सचमुच आपका हुकुम वजानेवाला हूँ, क्योंकि आप शिवज्ञानी हैं। ऐसा कहकर और उनको नमस्कार करके सबका आश्चर्य्य बढ़ानेवाला वह हंसरूप शिव-पुण्य (१००) उसी दुर्धर के शरीर में समा गया। दुर्धर योगी और ंस के संवाद को न जान सका। (१०१) योगी की कृपा से स्त्री होने पर भी मेनका जान गई। शिवानन्द योगी तब मेनका और दुर्धर के साथ (१०२) तीर्थराज से उठकर श्रीमत्केदार-लिङ्ग के समीप गये। नन्दन से लाये हुए फूलों को दुर्धर के ही हाथों से (१०३) श्रीमत्केदारनाथ के लिङ्ग पर चढ़वाते हुए उन्होंने तथा मेनका ने फूलों से अलग २ पूजा की। (१०४) परिक्रमा और नमस्कार-पूर्वक विधि से की हुई पूजा को उससे शिव-अर्पण करवाकर,

१ ख. पुस्तकीयोऽयं पाठः, आ. पु.—"सर्वे" इति।

तदा वृषाधिरूढः सन्नुमया शङ्करः प्रभुः ।
विघ्नेशस्कन्दगणपैर्योगिने दर्शनं ददौ ॥१०६॥
मेनकादुर्धरौ नैव ज्ञातावीश्वरमायया ।
तदा योगी दण्डवत्तं प्रणम्योत्थाय साञ्जलिः ॥१०७॥
अभूदाश्चर्य्यसम्पूर्णहृत्पद्मो विस्मरंस्तनुम् ।
तदा महेशस्तं प्राह शृणु मत्प्रिय ! सन्मते[1] ! ॥१०८॥
अयञ्च दुर्धरस्तेऽनुग्रहपात्रमभूद्यतः ।
[2]तस्मादयं त्वग्रंजनौ प्रतिष्ठानाधिपो भवेत् ॥१०९॥
गौतमीतीरभागेऽस्ति प्रतिष्ठानाभिधं पुरम् ।
तस्याऽधिपो मां सम्पूज्य पुत्रमिच्छति मां सदा ॥११०॥
तस्य पुत्रत्वमापद्य[3] भूत्वा राजा मदन्तिकम् ।
श्रीमत्केदारलिङ्गञ्च काश्यां सेव्याऽयमादरात् ॥१११॥

आनन्दाश्रु से पूर्ण होकर योगी ने परात्पर की स्वयम् प्रार्थना की । (१०५) तब बैल पर चढ़े हुए प्रभु शङ्कर ने उमा, विघ्नेश, स्वामी कार्त्तिकेय तथा गण-राजों के साथ योगीश को दर्शन दिया । (१०६) दुर्धर और मेनका ने ईश्वर की माया से कुछ न जाना । योगी ने दण्डवत् प्रणाम किया और हाथ बाँधकर खड़े हो गये । (१०७) उनका हृदय आश्चर्य्य से भर गया और शरीर की दशा विस्मृत हो गई । तब महेश्वर ने उनसे कहा—हे मेरे प्रिय ! और सुमति ! तुमसे मैं कहता हूँ, सुनो—(१०८) चूंकि यह दुर्धर तुम्हारा कृपापात्र हो गया, इसलिये यह अगले जन्म में प्रतिष्ठान का राजा होगा । (१०९) गौतमी के तीर में प्रतिष्ठान नामक एक पुर है । वहाँ का राजा मेरी पूजा करके मुझे पुत्ररूप में चाहता है, (११०) सो यह उसका पुत्र होकर राजा होगा और यहां काशी में आदर के साथ मेरे केदार-लिङ्ग की सेवा के लिये आवेगा । (१११) विश्वेश्वर, मणिकर्णिकादि

१ ग. मद्प्रिय ! महामते ! । २ ख. तस्मादयमिदानीं ते । ३ ग. पुत्रत्वमासाद्य ।

विश्वेशमणिकर्ण्यादिदेवान् ¹संसेव्य वै चिरम् ।
धनादिकैर्द्विजान् पूज्य भवेत् केदारभक्तिमान् ॥११२॥
देवालयादिश्रीकार्यं कृत्वा विभवविस्तरैः ।
मद्भक्त्या च चिरं राज्यं कृत्वा चायं ततः परम् ॥११३॥
मदाज्ञया ²भवेदेष श्रीमत्काशीपतिर्नृपः ।
तपस्वी योगसिद्धश्च सार्वभौमश्च धर्मवित् ॥११४॥
नाम्ना दिवोदास इति देवानप्यतिरेचयन् ।
मद्भक्त्या तीव्रतपसा स्थितमेनं पितामहः ॥११५॥
मदाज्ञाप्रेरितश्चैनं वरेण छन्दयिष्यति ।
तस्मादभीष्टांश्च वरान् प्राप्यायं मत्पुरीपतिः ॥११६॥
भविष्यति ततः सर्वे देवा अप्यस्य तेजसा ।
सुनिरस्ता लज्जिताः स्युरयं योगबली भवेत् ॥११७॥
स्वयमादित्येन्द्रशशी वायुर्वह्निर्भवन् महीम् ।
प्रशास्यति कियत्कालं मम प्रेमापराधतः ॥११८॥

देवताओं की बहुत दिन सेवा करके, धनादिक से ब्राह्मणों की पूजा करके श्रीकेदारजी में भक्ति करेगा। (११२) अपने ऐश्वर्य्य के विस्तार के समान मन्दिरों की शोभा बढ़ावेगा, और मेरी भक्ति के साथ बहुत दिनों तक राज्य करके (११३) यह मेरी आज्ञा से काशी का राजा होगा। राजा होने पर भी तपस्वी, योगसिद्ध, धर्मवित् सार्वभौम होगा। (११४) इसका नाम दिवोदास होगा। यह देवताओं से भी बढ़ जायगा। मेरी भक्ति तथा तीव्र तप में स्थित होने से (११५) मेरी आज्ञा से प्रेरित होकर ब्रह्मा इसे वर देंगे। अभीष्ट वरों को पाकर यह मेरी पुरी का राजा होगा। (११६) सब देवता लोग भी इसके तेज से बिल्कुल दब जायँगे और लज्जित होंगे। यह योग से बलवान् होगा। (११७) स्वयम् ही सूर्य्य, चन्द्र, इन्द्र, वायु

१ ग. यं सेव्य। २ ग. पुस्तकीयोऽयं पाठः, आ. पु.... 'भवेदेवं, ।

ततो मत्कृपया धाम ममायास्यति शाश्वतम् ।
इदानीं मेनकासार्धं प्रेषयैनं दिवं मुदा ॥११९॥
स्वर्गस्थभोगान् संभुज्य चिरं मेनकया सह ।
यावद्भोगस्य[1] विरतिस्तावद् भुक्त्वा ततः परम् ॥१२०॥
प्रतिष्ठानपुराधीशसुतो भवतु भूतले ।
देवदेहेन मत्पूजा सद्यः फलकरी क्वचित् ॥१२१॥
मानुषत्वेन मत्पूजा शीघ्रं मद्धामदायिनी ।
ततोऽपि काश्यां विश्वेशलिङ्गादीनाञ्च सेवनम् ॥१२२॥
मुक्तिदं नात्र सन्देहो विना मयि कृतागसः ।
कृतागसां मयि मुने ! विना केदारनायकम् ॥१२३॥
प्राचीनां[2] मणिकर्णीं च गतिर्नान्यत्र हि ध्रुवम् ।
इदं रहस्यं सर्वेऽपि न जानन्ति मदाज्ञया ॥१२४॥

और अग्नि होकर मेरे प्रेम के अपराध से कुछ दिनों तक पृथ्वी का राज्य करेगा। (११८) और उसके बाद मेरी कृपा से मेरे शाश्वत धाम को प्राप्त होगा। इस समय इसे आनन्द से मेनका के साथ स्वर्ग भेज दो। (११९) यह मेनका के साथ बहुत दिनों तक स्वर्गस्थ भोगों को भोगे। जब तक इसको भोग सें विरति न हो, तब तक वहीं रहे, उसके बाद यह पृथ्वी में जाकर (१२०) प्रतिष्ठान पुर के राजा का पुत्र हो। देवदेह से मेरी पूजा कहीं सद्यःफल देनेवाली होती है। (१२१) परन्तु मनुष्य देह से मेरी पूजा शीघ्र ही मेरे धाम को देनेवाली होती है। तिस पर भी काशी विश्वेश्वरादिक लिङ्गों की सेवा, (१२२) यदि कर्त्ता मेरा अपराध न किये हो, तो निस्सन्देह मुक्ति देनेवाली है। हे मुने ! मेरा अपराध करनेवाले के लिए केदारनाथ (१२३) और प्राचीन मणिकर्णिका को छोड़कर दूसरी गति नहीं है, यह बात ध्रुव है। इस रहस्य को मेरी आज्ञा से सब लोग नहीं जानते, (१२४)

१ ख. यावद्भोगेन। २ ग. पुस्तकीयोऽयं पाठः, आ० पु०—"प्राचीना मणिकर्णी" इति।

त्वादृशा एव जानन्ति मद्भक्ताश्च क्वचित् क्वचित् ।
यस्यैवं निश्चयो नास्ति स मद्भक्तोऽप्यभाग्यवान् ॥१२५॥
मम केदारलिङ्गे यः पत्रं वा पुष्पमेव वा ।
एकद्वित्रिचतुर्वाऽपि चुलुकोदकमेव वा ॥१२६॥
अर्पयेत् स समस्ताघमुक्तसर्वाधिपो भवेत् ।
भोगेच्छुश्चेत् सर्वमेव भोगान् भुक्त्वाऽथ मां व्रजेत् ॥१२७॥
त्वादृशश्चेत् स एवाहं सत्यं नास्त्यत्र संशयः ।
श्रीमत्केदारभूभागे[1] एकं वा दीपमर्पयन् ॥१२८॥
[2]ह्रस्वां शिलामिष्टकां वा दद्दालयकर्मणि ।
चुलुकोदं ग्रासमल्पमेकं वा प्राणिने ददत् ॥१२९॥
श्रीमत्केदारमुद्दिश्य स मामेव न संशयः ।
किं पुनर्भक्तियुक्तानां मत्सेवानुरतात्मनाम् ॥१३०॥

तुम्हारे ऐसे कोई कोई मेरे भक्त इसे जानते हैं। जिसको इस बात पर निश्चय नहीं हैं, वह मेरा भक्त होने पर भी अभागा है। (१२५) मेरे केदार लिङ्ग पर जो एक, दो, तीन या चार पत्र-पुष्प, अथवा एक चिल्लू जल (१२६) अर्पण करता है, वह सब पापों से छूटकर सब कुछ का मालिक हो जाता है। यदि भोग की इच्छावाला हो तो सब देवताओं के भोगों को भोगकर मेरे पास जावे, (१२७) और जो तुम्हारे ऐसा हो तो वह मैं ही हूँ, इसमें सन्देह नहीं है। श्रीमान् केदार के भूभाग में एक दीपक भी अर्पण करे, (१२८) एक छोटा पत्थर या ईंट मन्दिर के लिये देवे, अथवा एक चिल्लू पानी या एक ग्रास भोजन प्राणियों को मेरे उद्देश्य से दे; (१२९) तो वह मुझे प्राप्त होता है—इसमें संशय नहीं है। फिर मेरे भक्तों और मेरी सेवा में लगे हुए लोगों के लिये कहना ही क्या है? (१३०) हे ब्रह्मन्! मेरा पद उनके हस्तगत है, इसका मैं साक्षी हूँ और उसी भांति आप भी साक्षी हैं।

१ ग. भूम्यग्रे। २ ग. शिला दत्ता चेष्टका वा।

करस्थं मत्पदं ब्रह्मन्नहं साक्षी यथा भवान् ।
इत्युक्त्वाऽन्तर्धाच्छम्भुः शिवानन्दमुनेः पुरः ॥१३१॥
शिवानन्दोऽपि साष्टाङ्गं प्रणम्याऽऽनन्दभूरभूत् ।
[1]ततस्त्वेनां मेनकाञ्च दुर्धरं प्राहिणोद्दिवम् ॥१३२॥
विश्वेश्वरादीन्नमस्कृत्य स्नात्वा श्रीमणिकर्णिकाम् ।
गच्छेतां वै युवां स्वर्गं श्रेयोऽग्रेऽस्य भविष्यति ॥१३३॥
त्वया साकं भुक्तभोगो यावदिच्छा ततस्त्वयम् ।
शिवानुग्रहपात्रञ्च भविष्यति शिवाज्ञया ॥१३४॥
इत्याज्ञां शिरसा गृह्य योगिनो दुर्धरश्च सा ।
नमस्कृत्यागच्छतां स्वं यानमारुह्य निर्भयौ ॥१३५॥
दिवोदासः स एवाभूच्छिवयोगिप्रसादतः ।
काश्यां यशस्वी योगी च सार्वभौमश्च धर्म्मवित् ॥१३६॥

ऐसा कहकर शिवानन्द मुनि के सामने ही शङ्कर भगवान् अन्तर्धान हो गये, (१३१) और शिवानन्द भी उनको साष्टाङ्ग प्रणाम करके आनन्द के स्थल हो गये । तब उस मेनका और दुर्धर को यह कहकर स्वर्ग भेज दिया कि (१३२) विश्वेश्वरादि को नमस्कार कर और मणिकर्णिका में स्नान करके तुम दोनों स्वर्ग जाओ, आगे इसका कल्याण ही होगा । (१३३) जब तक इसकी इच्छा हो तब तक यह तेरे साथ भोग भोगे । उसके बाद शिवजी की आज्ञा से उनके अनुग्रह का पात्र होगा । (१३४) योगी की यह आज्ञा शिरोधार्य्य करके दुर्धर और मेनका ने नमस्कार किया और विमान पर सवार हो निर्भय स्वर्ग को गये । (१३५) वही शिवयोगी के प्रसाद से दिवोदास हुआ । वह यशस्वी, योगी, सम्पूर्ण पृथ्वी का मालिक, धर्म को जाननेवाला, (१३६) शिवज्ञान के रहस्य को जाननेवाला, शिवतत्त्वार्थ का जानकार बुद्धिमान् काशी में राजा हुआ । जिसने कि शिवजी को भी लीला के लिये आदर के साथ

१ ग. ततस्त्वेतां ।

शिवज्ञानरहस्यज्ञः शिवतत्त्वार्थवित् सुधीः ।
दिवि देवोऽपि लीलार्थमगाद् मन्दरमादरात् ॥१३७॥
स्वभक्तोत्कर्षसिद्ध्यर्थं लोकानां भक्तिहेतवे ।
विश्वनाथोऽपि नगरीं हित्वाऽगान्मन्दरें भयात् ॥१३८॥
एवं वदन्तु लोका मे भक्तोत्कर्षो भवत्विति ।
लीलां चकार भगवान् प्रेषयन् योगिनीमुखान् ॥१३९॥
स्वभक्तोद्धारणं शीघ्रं कर्त्तुं ²तं कीर्त्तिमानपि ।
आत्मनोऽपि ³निराकर्त्तुं भक्तः शक्तो⁴ भवत्विति ।१४०॥
भक्तोत्कर्षाभिमानी स भगवानात्मनोऽपि हि ।
एवमासीद्दिवोदासो वामदेव ! महामुने ! ॥१४१॥
यस्य वंशोद्भवा भूपाः कीर्त्तिमन्तो जगत्त्रये ।
प्रतर्दनादयो भूपाः काशिराजादयोऽपरे ॥१४२॥
यज्वानश्च वदान्याश्च लोकविख्यातकीर्त्तयः ।
काश्यां केदारनाथस्य महिमाऽतीव गोपितः ॥१४३॥

मन्दर पर्वत पर पहुँचा दिया। (१३७) अपने भक्त की बड़ाई के लिये, और लोगों की भक्ति के लिये, विश्वनाथ भी नगरी छोड़कर भय से मन्दर पर चले गये। (१३८) भगवान् ने विचार किया कि लोग मेरे विषय में ऐसा कहें और भक्त की बड़ाई हो। योगिनी आदिकों को भेजकर भगवान् ने लीला कर दी। (१३९) और यह सब अपने भक्त के उद्धार और उसे किर्तिमान् करने के लिये किया कि भक्त मुझे भी निकालने में समर्थ हैं। (१४०) भगवान् अपने से विशेष भक्त के उत्कर्ष में प्रसन्न होते हैं। हे वामदेव महामुनि ! दिवोदास ऐसे थे, (१४१) कि जिसके वंश में उत्पन्न राजाओं की तोनों लोकों में कीर्ति थी। प्रतिर्दन आदि और दूसरे काशिराज आदि राजा, (१४२) बड़े याज्ञिक, बड़े उदार थे, उनकी कीर्ति लोक में विख्यात हुई। काशी में

१ ग. मन्दरं। २ ग. कीर्तियुजं तथा। ३ ग. तिरस्कर्तुं। ४ ग. सक्तो।

शिवेनैव रहस्यं तद्वैभवं तीर्थलिङ्गयोः ।
सर्वलिङ्गानि तीर्थानि काश्यां सन्ति पदे पदे ॥१४४॥
किन्तु केदारमहिमा तीर्थस्य च सुदुर्लभः ।
देशान्तरकृताघानां शास्ता वैवस्वतो यमः ॥१४५॥
काश्यां कृताघजीवानां प्रशास्ता कालभैरवः ।
शिवाघकारिणां काश्यां कदाऽप्यस्ति न निष्कृतिः ॥१४६॥
तादृग्विधानामप्यत्र निष्कृतिर्हि[1] शिवाज्ञया ।
तस्मात्तीर्थस्य लिङ्गस्य रहस्यं दुर्लभं नृणाम् ॥१४७॥
श्रीमत्केदारनाथस्य प्रसादादेव मेऽस्फुरत् ।
श्रुतं त्वयापि सम्यक् तद् राज्ञा सोमव्रतापि च ॥१४८॥
काश्या मूलरहस्यं हि गोपनीयं प्रयत्नतः ।
[2]सर्वाघतारकं नृणां शिवो जानाति नेतरः ॥१४९॥

केदारनाथ की महिमा (१४३) और तीर्थ तथा लिङ्ग का वैभव शिवजी ने ही गुप्त कर रक्खा है। काशी में पद पद पर सब लिङ्ग और तीर्थ भरे पड़े हैं। (१४४) किन्तु केदार और उनके तीर्थ की महिमा परम दुर्लभ है। देशान्तर में पाप करनेवालों का शासन करनेवाले सूर्य्य के पुत्र यम हैं, (१४५) परन्तु काशी में पाप करनेवालों का प्रशासन करनेवाले काल भैरव हैं। काशी में शिवापराध करनेवालों का कभी भी उद्धार नहीं होता, (१४६) पर शिव की आज्ञा से ऐसे लोगों की भी यहाँ निष्कृति (उद्धार) हो जाती है। इसलिये इस तीर्थ और लिङ्ग का रहस्य मनुष्यों को दुर्लभ है। (१४७) श्रीमत्केदारनाथ के प्रसाद से ही मुझे इस कथा का स्मरण हुआ। तुमने और राजा चन्द्रवान् ने भी इसे भलीभांति सुना। (१४८) इस काशी मूल रहस्य की प्रयत्न के साथ रक्षा करनी चाहिये। यह मनुष्य के सम्पूर्ण पापों को हरनेवाला है। इसे शिवजी जानते हैं और कोई नहीं जानता। (१४९) उनके अनुग्रह से

१ ग. हि। २ ग. सर्वाघतारको।

तदनुग्रहतो लोके तद्भक्तेषु क्वचित् क्वचित् ।
प्रकाशितं च तेनैव लोकोद्धृत्यै महामुने ! ॥१५०॥
काशीयं सर्वजन्तूनां [1]मुक्तिदात्री तनुत्यजाम् ।
अमोघभोगदा चात्र स्वल्पधर्म्मकृतामपि ॥१५१॥
सकृदागत्य यातानां देशान्तरतनुत्यजाम् ।
अन्यजन्मनि वा [2]तस्मादन्यजन्मनि वा पुनः ॥१५२॥
[3]संप्राप्य [4]स्वभुवं [5]चात्र मुक्तिदा देहपाततः ।
युगत्रयेऽपि च जनाः केनापि गतिमाप्नुयुः ॥१५३॥
धर्माधिक्यबलात्तेषु युगेषु गतिरञ्जसा ।
केवलं धर्महस्वत्वात् कलौ काशी गतिर्नृणाम् ॥१५४॥
न यज्ञेषु न दानेषु न नित्यविधिकर्मसु ।
श्रद्धा नैवास्ति मर्त्येषु चातुर्वर्ण्येष्वपि द्विज ! ॥१५५॥

उनके भक्तों में कोई कोई जानता है। हे महामुने ! उन्हीं लोगों ने लोकोद्धार के लिये इसे प्रकाशित किया है। (१५०) यह काशी में मरनेवाले जन्तुओं को मोक्ष देनेवाली है। यहाँ पर थोड़ा-सा भी धर्म करनेवाले को यह अमोघ भोग देती है। (१५१) जो लोग एक बार काशी आकर चले गये और अन्यत्र शरीर छोड़ा। उन्हें दूसरे जन्म में अथवा उसके भी बाद के जन्म में, काशी प्राप्त होती है, (१५२) और यहाँ शरीर छोड़कर मुक्त होते हैं। तीन युगों में तो लोग किसी उपाय से मोक्ष पा जाते थे, (१५३) उन लोगों में धर्माधिक्य का बल था और युगों की गति भी सरल थी। धर्म के ह्रास से कलियुग में केवल काशी ही मनुष्यों की गति है। (१५४) वह यज्ञ से, दान से और नित्य विधि कर्म से नहीं होती। हे ब्राह्मण ! मनुष्यों को चातुर्वर्ण्य में भी श्रद्धा नहीं रही, (१५५) इसलिये कलियुग में धर्म-विपर्यय से लोगों

१ ग. मुक्तिदाऽत्र। २ ग. तस्मादिह। ३ ख. ग. प्राप्य। ४ ग. स्वां भुवं। ५ ख. चित्र०।

तस्मादगतिका जीवाः कलौ धर्मविपर्ययात् ।
येषां क्वापि गतिर्नास्ति तेषां वाराणसी गतिः ॥१५६॥
शिवापराधः सहसा घटते प्राणिनां कलौ ।
स नाशयत्यनायासात्तां सद्गतिमपि क्षणात् ॥१५७॥
तस्माच्छिवापराधश्च तद्भक्तानाञ्च वै कलौ ।
यत्नतः परिहर्त्तव्यः स्वात्मसद्गतिमिच्छता ॥१५८॥
दयालुः शङ्करः सर्वप्राणिसंरक्षणोत्सुकः ।
प्रकाश्यैतद्रहस्यञ्च तादृशस्यापि तारणम् ।
अपालयद् मुने ! लोकं लोकानुग्रहतत्परः ॥१५९॥
जगज्जालं सर्वं परमशिवकुक्षौ विनिहितं
सदाऽपश्यंस्तत्तद्गतमनननिष्ठाः[1] सुकृतिनः ।
शिवज्ञानानन्दामृतजलधिसंमग्नमनसोऽ-
प्यकाण्डादायातं क्षणकृतशिवागस्त्वनुभवन् ॥१६०॥

की गति नहीं रह गई । जिनकी कहीं गति नहीं है, उनकी वाराणसी गति है । (१५६) कलियुग में सहसा प्राणियों से शिवापराध भी हो जाता है । वह अनायास उस सद्गति को भी क्षण में नष्ट करदेता है । (१५७) इसलिये कलियुग में उनके भक्तों को शिवापराध से यत्न-पूर्वक बचना चाहिये यदि उनको अपनी सद्गति की इच्छा हो । (१५८) शङ्कर दयालु है। सब प्राणियों की रक्षा के लिये उत्सुक रहते हैं । हे मुने! लोक के अनुग्रह में तत्पर शिवजी ने ऐसे लोगों को भी तारने के लिये इस रहस्य को प्रकाशित किया । (१५९) यह सब जगत्-जाल शिवजी को कुक्षि में रक्खा हुआ है, इसे उनके मनन करनेवाले सुकृती लोग सदा देखा करते हैं । क्षण भर का किया हुआ शिवापराध बे समय टूटपड़ता है, इस बात का अनुभव करते हुए वे शिव के ज्ञानानन्द-अमृत-समुद्र में मन

१ ख.…हृदयनिष्ठाः, ग.…ममलनिष्ठाः ।

सती साक्षाद् गौरी त्रिदशतटिनी नैगमगणो
दिवोदासो राजा परमशिवभक्तेष्वतिवरः ।
दशग्रीवो देवाधिपचरणसेवारतमतिः
शिवं जानन्तोऽपि प्रकुरुत शिवागश्चपलतः ॥१६१॥
जनैरल्पप्रज्ञैः किमुत गिरिशे भक्तिविमुखैः
शिवागो नो भूयादिति वदितुमास्यं प्रभवति ।
अवश्यं त्वज्ञानादपि च[1] बहुमानादपि भवेत्
शिवागस्तच्छान्त्यै गिरिशविहिता निष्कृतिरियम् ॥१६२॥
शिवापराधात् परमो न चान्यः
सत्यं वदे त्वं हृदि सन्निधत्स्व ।
तद्दोषशान्तिर्बहुकल्पभोगै-
र्न चान्यथेति प्रवदन्ति वेदाः ॥१६३॥
एतद्रहस्यं वरकाशिभूमौ
शिवेन दत्तं हृदि यो निधाय ।

को मग्न रखते हैं। (१६०) सती, साक्षात् गौरी, गंगा, नैगमेयगण, और दिवोदास राजा परम शिव भक्तों में अतिश्रेष्ठ हैं। दशग्रीव रावण की शिवजी की चरणसेवा में मति लगी रहती थी। ऐसे लोग भी शिव को जानते हुए, चपलता से शिवापराध कर बैठे। (१६१) अल्प बुद्धि मनुष्य, अथवा शङ्कर की भक्ति से विमुख लोग क्या ऐसा कह सकते हैं कि शिवा-पराध न होगा ? अवश्य ही अज्ञान से और बहुमान से शिवापराध हो जाता है, उसकी शान्ति के लिये शिवजी की कही हुई यह निष्कृति है। (१६२) शिवापराध से बढ़कर कोई पाप नहीं है। मैं सच कहता हूँ, इसे हृदय में धारण करो। उसकी शान्ति अनेक कल्प भोग करने से होती है, दूसरे प्रकार से नहीं होती—ऐसा वेद कहते हैं। (१६३) यह रहस्य काशी में शिवजी ने दिया है, इसे हृदय में धारण करके, केदार

१ ग. चपलभावादपि ।

केदारगौरीसरसोः सुसेवां
कृत्वा शिवं याति विधूतपापः ॥१६४॥

इति श्रीमूलरहस्ये ब्रह्मवैवर्त्ते खिले काशीकेदार-महात्म्ये
अष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

अथैकोनविंशोऽध्यायः ।

ऋषय ऊचुः—

बादरायणशिष्याग्र्य ! शिवज्ञानामृतोदधे ! ।
पाद्मे कल्पे समायातः केदारः काशिकामिति ॥ १ ॥

और गौरी-सर की सेवा करे, और पाप रहित होकर शिव को प्राप्त हो (१६४)

यह ब्रह्मवैवर्त के खिलग्रन्थ काशीमूल रहस्यान्तर्गत काशीकेदार-
माहात्म्य का अठारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

दोहा—पद्म कल्प विश्वेश कछु, दिन मन्दर पर जाय ।
रहे वहुरि काशी पुरी, गये सपुत्र सहाय ॥
मँगवाये काशी पुरी, जेते तीरथ लिङ्ग ।
लाये नन्दि केदार हीं, रहे जो हिमवत श्रृङ्ग ॥
शिव सिख मान्धाता कियो, काशी पुरी निवास ।
तदपि नित्य केदार हित, जात जहाँ हिमवास ॥
भये वृद्ध विनती करी, देखौं जिमि केदार ।
भोजन करि दर्शन करहु, भइ नभ गिरा उदार ॥
शिव भक्तन्ह पूछ्यौ नृपति, कहहु करउँ का आज ।
नभ वाणी निज व्रत युगल, विषम सुनहु मुनिराज ॥

ऋषि लोग बोले—हे व्यासजी के शिष्यों में अग्रगण्य ! आप शिवज्ञानामृत के समुद्र हैं। केदारजी पाद्म कल्प में काशी आये। (१) नन्दि भगवान् विश्वेश्वर की आज्ञा से पहिले केदार क्षेत्र को (हिमालय) से ले आये। महादेव तो केदार क्षेत्र में थे, उन्हें

विश्वेशाज्ञासमानीतः केदाराद् नन्दिना पुरा ।
केदारस्थं महादेवमानयत् केन हेतुना ॥ २ ॥
लोकोपकृतये वाऽन्यकारणाद्वा वदाऽधुना ।
इति पृष्टस्तदा सूतः प्राह तान् तद्रहस्यकम् ॥ ३ ॥

सूत उवाच—

शृणुध्वं मुनयः सर्वे रहस्यं परमेशितुः ।
इदमेव पुरा वामदेवायाह कुमारभूः ॥ ४ ॥
अनवद्यासमापृष्टो नाथशर्माप्युपावदत् ।
परमात्मा परानन्दः एकोऽजः शाश्वतोऽव्ययः ॥ ५ ॥
यतो वाचो निवर्त्तन्ते अप्राप्य मनसा सह ।
स्तब्धो वृत्त इवोत्तिष्ठन् पूर्णो व्याप्याखिलं जगत् ॥ ६ ॥
अस्ति ब्रह्मेति विदुषामनुमानश्रुतीरितः ।
नास्त्येव नास्तिकानां यो बौद्धादीनां सुदुर्धियाम् ॥ ७ ॥
नित्यशुद्धो नित्यबुद्धो नित्यमुक्तो निराश्रयः ।
निरञ्जनो निष्कलङ्को निष्क्रियश्च निराश्रितः ॥ ८ ॥

किस कारण से ले आये। (२) उनको लाने में कारण लोकोपकार ही था या कोई और कारण ? सो हमें बतलाइये। ऐसा पूछने पर सूतजी ने उन लोगों को वह रहस्य बतलाया। (३) सूतजी बोले—सब मुनि लोग परमेश्वर के इस रहस्य को सुनें। इसे पहिले वामदेव से सनत्कुमार ने कहा था (४) और नाथशर्मा ने अनवद्या से उसके पूछने पर कहा था। परानन्द परमात्मा—एक, अज, नित्य और अव्यय है। (५) जिसे न पाकर वाणी मन के साथ लौट आती है, पहिले वह अखिल जगत् में व्याप्त होकर पूर्ण ठूंठे पेड़ की भाँति स्तब्ध ठहरा हुआ था। (६) 'ब्रह्म है' यह विद्वानों को अनुमान और श्रुति से सिद्ध है। और नास्तिकों तथा दुर्बुद्धि बौद्धों के लिये नहीं है। (७) नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, निराश्रय,

स ऐक्षत बहुस्यामित्यात्मशक्त्या युतः शिवः ।
इच्छाज्ञानक्रियाभेदा जाता शक्तिस्तदीशितुः ॥ ६ ॥
नैकाकी रमते [1]त्वात्मतया रन्तुं द्विधाऽभवत् ।
शिवो भक्त्यात्मना देवो य आदिः स सदाशिवः ॥१०॥
[2]पञ्चकृत्वस्तनुः शक्त्या स्वांशलेशात्ततस्त्वभूत् ।
स एवाप्राकृतमहाकैलासस्य सदाशिवः ॥११॥
स्वांशेश्वराभिधेनायं तिरोधत्तेऽण्डसंघकान् ।
सृष्ट्वा सृष्ट्वा स्वेच्छयेश इच्छामात्रा सृतिः[3] प्रभोः ॥१२॥
अनेककोटिब्रह्माण्डसृष्टिस्थितिलया यतः ।
स्त्रीपुंक्लीबं न लिङ्गं यच्छ्रुतिमौल्यानुमानिकम् ॥१३॥
जन्माद्यस्य यतः सर्वजगतः श्रुतिसम्मतम् ।
सत्यं ज्ञानमनन्तं च ब्रह्मसर्वगुहाहितम् ॥१४॥

निरञ्जन, निष्कलङ्क, निष्क्रिय, निराश्रित (८) ने इच्छा की कि मैं बहुत हो जाऊं। इस प्रकार शिव शक्ति से युक्त हुए। उस ईश की शक्ति का इच्छा, ज्ञान और क्रियारूप से भेद हुआ। (९) वह आत्मा एकाकी रमण नहीं करता, इसलिये आत्मा अपने साथ रमण करने के लिये दो प्रकार का हो गया। वह आदिदेव सदाशिव—शिव एवं शक्ति रूप हो गया। (१०) अपने अंश के लेश से शक्ति के शरीर को पाँच प्रकार का करके, तब स्वयम् हुए। वही अपाकृत महाकैलास के सदाशिव हैं। (११) अपने ईश्वर नामवाले अंश से इन ब्रह्माण्ड समूहों की रचना करके अपनी इच्छा से लय किया करते हैं। प्रभु की इच्छा-मात्र ही मार्ग है। (१२) जिससे अनेक कोटि ब्रह्माण्डों की सृष्टि, स्थिति और लय हुआ करते हैं, वह न पुरुष है, न स्त्री है और न क्लीब (नपुंसक), न उसका कोई लिङ्ग (चिन्ह) है, यह श्रुतिमूलक अनुमान है। (१३) सब जगत् का जन्मादि जहाँ से होता है, यह बात

१ ग. ह्यात्मतया। २ ग. पञ्चीकृत्य तनुं। ३ ग.'''श्रुतिः।

यो वेद निहितं व्योम्नि सर्वान् कामान् सहाऽश्नुते ।
तस्माद्वात्मन एतस्मादाकाशो हि ततो मरुत् ॥१५॥
ततस्ततोऽग्निरब्भूमिरोषध्यन्नपुमान् क्रमात् ।
नामरूपविचित्राणि ब्रह्माण्डान्यभवंस्ततः ॥१६॥
देवतिर्यङ्मनुष्यादिसृष्टिपूर्णान्यनेकशः ।
तत्तदण्डेषु ब्रह्मादित्रिमूर्त्यात्म स्वयं त्वभूत् ॥१७॥
लये तेषां [1]तिरोधातुमीश्वरात्मा स्वयंत्वभूत् ।
अनुग्रहात् पुनः सृष्ट्यै स्वयं चाऽभूत् सदाशिवः ॥१८॥
अनुग्रहात्मकः शम्भुरास्ते लीलासदाशिवः ।
अप्राकृतमहाकैलासाख्यं तस्याऽऽलयं विदुः ॥१९॥
तस्येच्छयाऽनेककोटिब्रह्माण्डप्लवविप्लवः ।
क्लृप्तायुर्ब्रह्मणस्त्वन्तः कल्प इत्युच्यते बुधैः ॥२०॥

वेद सम्मत है। ब्रह्म सत्य, ज्ञान और अन्तरूप है और सबकी बुद्धि रूपी गुहा में छिपा है। (१४) जो आकाश में उसे छिपा हुआ जानता है, वह सब कामों का उपभोग करता है। उस आत्मा से आकाश उत्पन्न हुआ, उससे मरुत् (वायु) उत्पन्न हुआ, (१५) तब उससे अग्नि, जल, भूमि, औषधि अन्न और पुरुष क्रम से उत्पन्न हुए। उनसे विचित्र नामरूपवाले ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुए। (१६) देव, पशु, मनुष्यादि की सृष्टि अनेक प्रकार से भरी हुई है। उन उन ब्रह्माण्डों में आत्मा स्वयम् ब्रह्मादिरूप से त्रिमूर्ति हो गया। (१७) उनके लय के समय तिरोधान के लिये स्वयम् ईश्वरात्मा हो गया। अनुग्रह करके फिर सृष्टि के लिये स्वयम् सदाशिव हो गया। (१८) शम्भु सदाशिव अनुग्रहात्मक हैं, उनकी यह लीला है। अप्राकृत महाकैलास उनका घर है। (१९) उन्हीं की इच्छा से अनेककोटिब्रह्माण्ड का प्लव-विप्लव हुआ करता है। ब्रह्मदेव की कल्पित आयु को पण्डित लोग

१ ख. तिरोधर्तं ।

त्रिपरिच्छेदशून्योऽपि कालात्मा खेलते विभुः ।
प्रतिकल्पं ब्रह्मविष्णुरुद्राद्या लीलयाऽभवन् ॥२१॥
उत्पत्तिभेदमाश्रित्य कल्पनाम्नाऽभवन् पृथक् ।
पाद्मवाराहादिभेदाः कल्पास्तत्कालसंज्ञकाः ॥२२॥
एवं कल्पभिदा सृष्टिर्लीलाशम्भोः परात्मनः ।
कल्पे कल्पे पुनर्धाता यथापूर्वमकल्पयत् ॥२३॥
शम्भोरनुग्रहाद्धातृन्[1] वेदाश्च प्रतिभान्ति हि ।
वेदाश्रयाच्च ब्रह्माद्याः स्वस्वकार्यजुषोऽभवन् ॥२४॥
एषा परात्मनो[2] लीला मनोवाचामगोचरा ।
कस्मिंश्चित् पौर्विके पाद्मे कल्पे देवः परात्परः ॥२५॥
काशीलीलाविनोदात्मा विश्वेशो मन्दरं गतः ।
विहृत्य तत्र कतिचित् कालमायात् पुरीं तदा ॥२६॥

अन्त कल्प कहते हैं । (२०) देश, काल वस्तु तीनों से परिच्छेद शून्य होने पर भी कालात्मा विभु खेल करते हैं, और प्रतिकल्प में ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र आदि रूप लीला से धारण किया करते हैं । (२१) उत्पत्ति भेद का आश्रयण करके कल्प नाम से पृथक् होते हैं, वे ही कल्प पाद्म, वाराहादि भेद से काल संज्ञक हैं । (२२) इस प्रकार से परात्मा शम्भु की काल-भेद से सृष्टि लीला है । जैसी पहिले कल्पना की थी, वैसी ही कल्पना कल्प कल्प में फिर करते हैं । (२३) शम्भु के अनुग्रह से वेद ब्रह्मदेवों को प्रतिभासित होते हैं । और वेद का आश्रयण करके ब्रह्मादिक अपने २ कार्य्य में लग जाते हैं । (२४) यह परमात्मा की लीला मन वाणी के अगोचर है । पूर्व के किसी पाद्म कल्प में परात्पर परात्मा (२५) काशी में लीला विनोद करने वाले विश्वेश्वर मन्दर पर गये । कुछ दिनों तक वहाँ विहार करके

१ ख.…धातुर्वेदाश्च, ग. शम्भोरनुग्रहाद्धि त्रिवेदाश्च…। २ ख.…परात्मनः शम्भोर्मनो… ।

त्रैलोक्यगततीर्थानि क्षेत्राणि[1] प्रतिमाश्च याः ।
[2]देवमूर्त्तीस्तथा काश्यां लिङ्गान्यपि समानयत् ॥२७॥
[3]शैलादितनयं प्रेष्य निजधामन्यविमुक्तके ।
[4]शैलाद्यानीय काश्यां संस्थापयत् च शिवाज्ञया ॥२८॥
तथा केदारनाथोऽपि तीर्थसङ्घैः समन्वितः ।
नन्दिकेशप्रार्थनया काशीं [5]यातुमना † भवत् ॥२९॥
एकां कलां स्थाप्य तत्र शिष्टाभिः काशिकामगात् ।
यस्मिन्ननुग्रहः पूर्णो ददौ तस्यैव दर्शनम् ॥३०॥
स्थानमात्रस्य पूज्यत्वं स्थितं कल्पशतावधि ।
एवं स्थिते लोकभाग्यात् सदयोऽभूज्जनोद्धृतौ ॥३१॥
तस्मिन् काले ततः पूर्वं [6] चिरकालाद्धिमाचले ।
तपस्यन् संस्थितस्तत्र मान्धाता नाम भूपतिः ॥३२॥

फिर काशी लौट आये। (२६) त्रैलोक्य में जितने तीर्थ, क्षेत्र, प्रतिमा, देवमूर्ति और लिङ्ग हैं, उन्हें काशी ले आये। (२७) शिलादि पुत्रों को अपने अविमुक्त धाम में भेजकर, शैलादि को काशी में लाकर शिवजी की आज्ञा से स्थापन किया। (२८) तब केदारनाथजी ने भी तीर्थों के साथ नन्दिकेश की प्रार्थना से काशी जाने की इच्छा की। (२९) एक कला को तो वहीं स्थापन किया और शेष कलाओं से काशी आये। जिसपर पूर्ण अनुग्रह हुआ, उसी को दर्शन दिया। (३०) स्थानमात्र ही वहाँ पूज्य है; उस स्थान में सौ कल्प तक रहे। इस भांति वहाँ रहते हुए उन्हें लोगों के भाग्य से उनके उद्धार के लिये दया आई। (३१) उस समय मान्धाता नामक राजा बहुत दिनों से हिमाचल में तप कर रहे थे। (३२) ये सूर्य्यवंश के रत्न थे।

१ ग. क्षेत्रञ्च। २ ग. पाठः, आ० पु०—देवतामूर्त्तयः। ३ ख. ग. शिलादतनयं। ४ ग. शिलादतनय नन्द्यस्थापयच्च···। ५ ग. यातुं मनोऽकरोत्। ६ ख. चिरलोकाद्धिमाचले। † अडभैव आर्षः।

सूर्यान्वयश्चिरं राज्यं कृत्वा पुत्रास्तराज्यधूः[1] ।
सार्वभौमो महायोगी सर्वयज्वाऽतिदानवान् ॥३३॥
पञ्चाशत्कन्यका येन दत्ता सौभरियोगिने ।
यो निर्भिद्य पितुः कुक्षिं निर्गतस्तन्मृतिं विना ॥३४॥
यस्य गाथा पुराणेषु प्रथिता देवसंस्कृता ।
स सर्वभोगविरतः केदारेशं समाश्रयत् ॥३५॥
ध्यात्वा तत्र चिरं देवं युगानां शतमर्पयत् ।
त्वल्लिङ्गदर्शनं भूयाद् ममाऽत्रेति निरन्तरम् ॥३६॥
तदाह भगवान् शम्भुः श्रीमत्केदारनायकः ।
राजर्षिं तं नभोवाण्या प्रेम्णा भक्तशिरोमणिम् ॥३७॥
राजर्षे ! शृणु मान्धातः ! तवाऽदेयं न किञ्चन ।
तथापि कारणं वक्ष्ये येनाहं नाऽत्र लिङ्गवान् ॥३८॥

इन्होंने सार्वभौम राज्य बहुत दिनों तक किया, तत्पश्चात् राज्यभार पुत्र को दे दिया । ये महायोगी विधिपूर्वक यज्ञों के करनेवाले और अतिदानी थे। (३३) इन्होंने पचास कन्यायें सौभरि योगी को दीं थीं, पिता के कुक्षि को भेद कर जन्म ग्रहण किया था, तो भी पिता की मृत्यु नहीं हुई थी। (३४) जिसकी देव-संस्तुत गाथाएँ पुराणों में प्रसिद्ध हैं, जिसने सब भोगों से विरत होकर केदारेश्वर का आश्रयण किया । (३५) वहाँ बहुत दिनों तक ध्यान करते रहे और सौ युगों तक निरन्तर प्रार्थना की कि आपके लिङ्ग का मुझे यहाँ दर्शन हो । (३६) तब श्रीमत्केदारनायक भगवान् शम्भु ने उस भक्तशिरोमणि राजर्षि से आकाशवाणी द्वारा सप्रेम कहा—(३७) हे राजर्षि मान्धाता! मेरे पास तेरे लिये कुछ भी अदेय नहीं है, तथापि जिस कारण से मैं यहाँ लिङ्गधारी नहीं हूँ, वह कारण तुम्हें बतलाता हूँ । (३८) मेरे अपराध करनेवाले ब्रह्मा की यहाँ शिक्षा हुई है । पापचेता ब्रह्मा के उस पाप की निवृत्ति

[1] क. पुत्रास्तराज्यभूः ।

[1]मदागस्कारिणो धातुः शिक्षा जाताऽत्र वै पुरा ।
तदागोविनिवृत्त्यर्थं ब्रह्मणः पापचेतसः ॥३९॥
काश्यामदां मे लिङ्गस्य दर्शनं भूगतं क्वचित् ।
तदारभ्य प्रतिज्ञातं न लिङ्गस्याऽत्र दर्शनम् ॥४०॥
पापिनोऽप्यत्र मल्लिङ्गदर्शनात्तत्क्षणं भुवि ।
अनायासात्तनुं त्यक्त्वा यान्ति मत्पदमञ्जसा ॥४१॥
शून्यलोकभयान्नाऽत्र दर्शयिष्यामि वै मुने !
तस्मात्त्वं याहि मे काशीं तत्रैव त्वं तपः कुरु ॥४२॥
मल्लिङ्गदर्शने तृष्णा यदि तेऽस्ति व्रजाऽचिरम् ।
इत्युक्तो देवदेवेन ऋषिः शम्भुं व्यजिज्ञपत् ॥४३॥
स्वामिंस्तत्र भवल्लिङ्गं कुत्रास्ते वद मे प्रभो ! ।
तदाह देवदेवोऽपि ऋषिमुद्धर्तुमिच्छया ॥४४॥
तपश्चर त्वं काश्यां वै कालेनाऽस्मत्प्रसादतः ।
यदा द्रक्ष्यसि मल्लिङ्गं तदा मुक्तो भविष्यसि ॥४५॥

के लिये (३९) काशी में मैंने अपने लिङ्ग का कहीं पर पृथ्वी के भीतर ब्रह्मा को दर्शन दिया। तब से मैंने प्रतिज्ञा कर ली है कि यहाँ पर लिङ्ग का दर्शन न होगा। (४०) यहाँ पापी भी मेरे लिङ्ग के दर्शन से उसी क्षण पृथ्वी में अनायास शरीर छोड़कर सीधे मेरे पद को जाते हैं। (४१) हे मुने! लोक के शून्य हो जाने के भय से यहाँ मैं दर्शन नहीं देता, इसलिये तुम मेरी काशी में जाओ और वहीं तप करो। (४२) मेरे लिङ्ग के दर्शन की यदि तुम्हें तृष्णा हो तो तुरन्त जाओ। जब देवदेव ने ऐसा कहा तब ऋषिजी ने शङ्कर भगवान् से विनय की—(४३) हे स्वामिन्! वहाँ आपका लिङ्ग कहाँ पर है? हे प्रभो! मुझे बतलाइये। तब देवदेव भी ऋषि के उद्धार की इच्छा से बोले—(४४) तुम काशी में जाकर तप करो, काल पाकर मेरे प्रसाद से, जब मेरे लिङ्ग का दर्शन पा जाओगे,

१ ख. महागस्कारिणे ।

शिवं तदा ऋषिः प्राह स्वामिन् ! मेऽनुग्रहं कुरु ।
त्वामदृष्ट्वा प्रतिदिनं नहि स्थास्यामि कुत्रचित् ॥४६॥
'तस्मान्मनोगतिं मे त्वं यदि दास्यसि' याम्यहम् ।
इत्युक्तः स दयालुस्तं॰ भक्तमाह तथास्त्विवति ॥४७॥
तदा स ऋषिवर्यश्च नत्वाऽऽकाशगिरं शिवम् ।
आयातः काशिकां शम्भोराज्ञया तपसे ऋषिः ॥४८॥
शिवप्रसादात् केदारस्थानमेवाप तापसः ।
तत्रस्थस्तपसा देवमाराध्याऽप्रार्थयत् पुनः ॥४९॥
स्वामिन् ! दर्शय ते लिङ्गं कुत्रासीत्यर्थयन् स्थितः ।
नित्यं केदारमायाति द्रष्टुं हिमगिरौ शिवम् ॥५०॥
गङ्गोत्पत्तिजले स्नात्वा दृष्ट्वा ज्वालामुखीं ततः ।
दिव्यक्षेत्राणि सर्वाणि परिक्रम्य क्षणेन सः ॥५१॥

तब मुक्त होओगे । (४५) तदनन्तर ऋषि ने शिवजी से कहा—हे स्वामिन् ! अनुग्रह करो । विना प्रतिदिन तुम्हारा दर्शन किये मैं कहीं न रहूँगा । (४६) इसलिये यदि मन की भांति मुझे वेग दो तो मैं जाऊँ । ऐसा कहने पर उस दयालु ने भक्त से कहा—'ऐसा ही हो' । (४७) तब ऋषिश्रेष्ठ आकाशवाणी रूप शिव को नमस्कार करके शम्भु की आज्ञा से तप के लिये काशी चले आये । (४८) इसलिये वह तपस्वी शिवजी के प्रसाद से केदार स्थान को प्राप्त होकर, वहाँ ठहर गये और तप से आराधना करके फिर प्रार्थना करने लगे । (४९) हे स्वामिन् ! मुझे लिङ्ग का दर्शन दीजिये, वह कहाँ है ? ऐसी प्रार्थना करते हुए टिक गये और नित्य हिमालय में शिवदर्शन के लिये केदारक्षेत्र जाने लगे । (५०) गङ्गोत्तरी में स्नान करके ज्वालामुखी का दर्शन करते थे, और सम्पूर्ण दिव्यक्षेत्र की एक क्षण में प्रदक्षिणा कर लेते थे । (५१) फिर पितरों का तर्पण करके बदरिकाश्रम में श्रीकेदारनाथ की पूजा

१ ग. यस्माद्। २ ग. धास्यसि ।

पितॄणां तर्पणं कृत्वा बदर्यां वै ततः परम् ।
श्रीमत्केदारनाथस्य पूजां कृत्वा विधानतः ॥५२॥
नमस्कृत्वा शिवं पश्चादायाति मणिकर्णिकाम् ।
स्नात्वा मध्याह्नसमये काश्यां विश्वेशमर्च्य च ॥५३॥
ततः केदारमागत्य स्वस्थाने ऋषिरावसत्[1] ।
एवं प्रतिदिनं योगी मान्धाता ऋषिसत्तमः ॥५४॥
केदारयात्रां प्रतिवासरं कुर्वन् स्थितः सुखी ।
न दृष्टवान् महालिङ्गं केदारं माययेशितुः ॥५५॥
एवं गते तदा काले कतिचिद् (?) मुनिसत्तमः ।
अदृष्ट्वा लिङ्गमीशानं प्रार्थयामास शङ्करम् ॥५६॥
स्वामिन् ! वृद्धोऽहमधुना बलहीनो दिने दिने ।
शीघ्रं दर्शय मे[2] लिङ्गं येनाहं मुक्तिमाप्नुयाम् ॥५७॥
एवं प्रार्थ्य महेशानं प्रणम्य च पुनः पुनः ।
गन्तुं केदारयात्रायै प्रातः स्नात्वा कृतत्वरः ॥५८॥

विधान से करते थे। (५२) तत्पश्चात् शिवजी को नमस्कार करके मणिकर्णिका आते थे, और वहाँ मध्याह्न स्नान करके विश्वेश्वर का पूजन करते थे। (५३) उसके बाद केदारजी में आकर अपने स्थान में निवास करते थे। इस प्रकार ऋषियों में श्रेष्ठ योगी मान्धाता (५४) नित्य प्रति केदारयात्रा करते हुए सुख से रहने लगे। परन्तु ईश्वर की माया से उन्होंने केदारजी को न देख पाया। (५५) इस प्रकार कुछ दिन बीतने पर मुनिसत्तम ने लिङ्ग का दर्शन न पाने से ईशान शङ्कर की फिर प्रार्थना की। (५६) हे स्वामिन् ! अब मैं बूढ़ा हो गया, दिन दिन बलहीन होता जा रहा हूँ, अब शीघ्र मुझे लिङ्ग का दर्शन दीजिये, जिससे मुझे मुक्ति मिले। (५७) इस प्रकार महेश्वर की प्रार्थना करके बारंबार नमस्कार किया, और प्रातःकाल स्नान करके

१ क. स ऋषिर्वसत्। २ ग. ते।

तदाहाऽऽकाशवाणी तं शृणु विप्र! महामते!।
अशक्तस्त्वं कृताहारो व्रज ते नास्ति दूष्यता ॥५९॥
भक्तिप्रियोऽहं नियमो न मे प्रीतिकरस्तथा।
कृत्वा पाकं मां निवेद्य भक्त्वा यात्रां ततः[1] कुरु ॥६०॥
इत्याकाशवचः श्रुत्वा चित्रितोऽभून्महामुनिः।
अनुग्रहः कीदृशोऽयं शिवस्य परमात्मनः ॥६१॥
कथं शिवाज्ञामुल्लङ्घे[2] नियमं वा कथं त्यजे।
[3]नियमो मम सर्वस्वं कथं त्यक्ष्येऽखिलप्रदम् ॥६२॥
आतिथ्यं काशिकायां वै दुर्लभं देहिनामिति।
पुरा विष्णुं महादेवः काश्यामातिथ्यवैभवम् ॥६३॥
पृच्छन्तं प्राह तत्त्वेन शृणु विष्णो! वदामि ते।
पूर्वं देव्यपि मामेवमपृच्छद्धर्मसंग्रहम् ॥६४॥

केदारयात्रा के लिये जल्दी की। (५८) तब आकाशवाणी ने उससे कहा कि हे महामति विप्र! सुनो, तुम अशक्त हो, तुम्हारे भोजन करके यात्रा करने में भी कोई दोष नहीं है। (५९) मुझे भक्ति प्रिय है, नियम उतना प्रिय नहीं है। रसोई बनाकर, मुझे निवेदनकर भोजन करो। तब यात्रा करो। (६०) इस आकाशवाणी को सुनकर महामुनि आश्चर्य्य में आ गये, सोचने लगे कि परमात्मा शिव का यह कैसा अनुग्रह है। (६१) शङ्कर की आज्ञा कैसे उल्लंघन करूँ? इधर अपना नियम कैसे छोड़ूं? नियम ही मेरा सर्वस्व है। यही सब कुछ देनेवाला है, इसे कैसे छोड़ दूँ? (६२) काशी में देहधारियों को आतिथ्य दुर्लभ है। पूर्वकाल में महादेव ने विष्णु के पूछने पर उनसे काशी के आतिथ्य की महिमा (६३) कही थी—हे विष्णु! मैं साररूप में कहता हूँ, सुनो। पहिले देवी ने भी मुझसे यह धर्म-संग्रह पूछा था (६४) कि काशी में किये हुए पूजा और आतिथ्यादि का क्या माहात्म्य है? हे माधव! मैंने सूक्ष्मरूप से जो

१ ग. तपः। २ ग. लङ्घिष्ये। ३ ग. नियमं……।

काशीकृतं समुद्दिश्य पूजातिथ्यादिवैभवम् ।
तदाहं सूक्ष्मतोऽवोचं देव्यै तच्छृणु माधव ! ॥६५॥
कश्चिच्चौरः [1]प्रभूतं संचोर्य वित्तं विदेशतः ।
समायातः काशिकायां केदारेशवने निशि ॥६६॥
तत्पुण्यशेषाच्चौरैश्च विवादोऽभूत्तदा निशि ।
चौर्य्यद्रव्यविभागार्थं वने जीर्णशिवालये ॥६७॥
स्वचेलाञ्चलवर्त्या च मन्ददीपं प्रकाशयत्[2] ।
द्रव्यं विभज्य ते चौरा गता रात्रौ यथायथम् ॥६८॥
यस्य चेलाञ्चलदशावर्त्त्या दीपोऽलसच्च सः ।
कलिङ्गराजोऽभूच्चौरोऽप्यजानन् पुण्यवैभवम् ॥६९॥
[3]जातिं स्मरन् स्वदेशस्थसर्वदेवालयेष्वपि ।
असंख्येयमहादीपमालापूजाप्रभावतः ॥७०॥
भुक्त्वा भोगान् पुत्रपौत्रैः कृतदानाखिलक्रतुः ।
काशीं प्राप्य विमुक्तोऽभूदल्पपुण्यप्रभावतः ॥७१॥

देवी से कहा था, उसी को तुम भी सुनो, (६५) कुछ चोर विदेश से बहुत माल चुराकर सब-के-सब रात को काशी के केदारवन में आये। (६६) पुण्यशेष से चोरों में रात को झगड़ा हुआ। चोरी के माल के विभाग के लिये वन के पुराने शिवालय में अपने दुपट्टे का अंचल फाड़कर एक ने धीमा दीप जलाया, और माल बाँटकर वे रातोरात जहाँ तहाँ चलते बने। (६८) जिसके दुपट्टे के अंचल के किनारे की बत्ती से वह दीप जला था, वह चोर होने और पुण्य-वैभव के न जानने पर भी कलिङ्ग देश का राजा हुआ (६९) और पूर्व जन्म का उसे स्मरण रहा। इसलिए उसने अपने देश के सब देवालयों में असंख्य दीपों की महामाला चढ़ाई और पूजन किया। उसके प्रभाव से (७०) पुत्र-पौत्रों

१ ग० प्रभूतो वै चौर्य्यवित्तः । २ ग० प्रकाश्य च । ३ ग० जातिस्मरः स्वदेशस्थः··· ।

किं पुनर्भूभृतां भूरिदेवविप्रौघरक्षिणाम् ।
ज्ञातधर्मरहस्यानां मुक्तिः करगता[1] हरे ! ॥७२॥
इति देववचः काश्यामहं किं नियमं त्यजे ।
एवं भीतः कथं कुर्वे नियमत्यागमञ्जसा ॥७३॥
आतिथ्यं नित्यनियमस्यान्ते धर्मो विधीयते ।
इत्येवं चिन्तयामास वामदेव ! तदा ऋषिः ॥७४॥
नियमो मेऽस्ति यात्रान्ते भोजनस्य दिने दिने ।
अतिथिं पूज्य पश्चान्मे भोजनस्य सुखं भवेत् ॥७५॥
एवं मान्धातृवृत्तान्तं स्कन्दांशोदीरितं तदा ।
श्रुत्वाऽनवद्या स्वं नाथमपृच्छत मुनीश्वराः ॥७६॥
मम नाथं ! दयासिन्धो ! काश्यां धर्मकृतां फलम् ।
वद मे कीदृशं धर्मरहस्यं जनतारकम् ॥७७

के साथ सब सुखों को भोगते हुए उसने बहुत दान किया और सब यज्ञ किये । उसी अल्प पुण्य के प्रभाव से काशी को प्राप्त कर मोक्ष भी पाया । (७१) फिर, राजाओं के लिये कहना ही क्या ? जिनसे बहुत से देव ब्राह्मणों की रक्षा होती है । हे हरे ! जिनको धर्म का रहस्य मालूम है, उनके तो हाथ में मुक्ति है (७२) ऐसा शिवजी का वचन है, तो क्या मैं काशी में अपना नियम छोड़ दूँ ? इस भांति डरकर सीधे सीधे मैं अपना नियम कैसे छोड़ दूँ । (७३) नित्य नियम के अन्त में आतिथ्य को धर्म कहा गया है । हे वामदेव ! तब वह ऋषि इस प्रकार से चिन्ता करने लगा—(७४) मेरा नित्य का नियम है कि मैं यात्रा के अन्त में भोजन किया करता हूँ । अतिथिपूजन के बाद ही भोजन करने में मुझे सुख मिलता है । (७५) सनत्कुमार के कहे हुए मान्धाता के ऐसे वृत्तान्त को सुनकर हे मुनीश्वरो ! अनवद्या ने अपने नाथ से पूछा—(७६) हे मेरे नाथ ! हे दयासिन्धो ! काशी में धर्म करने-

१ ख. करतला ।

किं वाऽकरोच्च मान्धाता नियमं प्रति तद्वद ।

नाथशर्मोवाच—

शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि काश्यां धर्मरहस्यकम् ।
स्वल्पं कृतं महामेरुतुल्यं नास्त्यत्र संशयः ॥७८॥
ब्राह्मणाद्यैश्च वर्णैयैराचाण्डालादिपुल्कसैः ।
अनुलोमैर्विलोमैश्च म्लेच्छैर्वा हूणयावनैः ॥७९॥
कृतो धर्मः [1]स्वल्पमपि ज्ञात्वाऽज्ञात्वाऽप्यमोघकृत् ।
चुलुकोदं बिल्वमेकं [2]स्वल्पाश्च तिलतण्डुलाः ॥८०॥
दानान्यपि स्वस्ववित्तानुसारेण कृतानि वै ।
दूर्वापत्रं पुष्पजातं शिवेऽर्पितममोघकृत् ॥८१॥
गोभूतिलहिरण्यादिगजवाजिरथादितः ।
गृहादिधनधान्यादिवस्त्रभूषणवन्ति च ॥८२॥

वालों का फल और जन को तारनेवाला धर्म-रहस्य क्या है ? वह मुझसे कहो (७७) और मान्धाता ने जो नियम कर रक्खा था, वह भी कहो । नाथशर्मा ने कहा—हे देवि ! मैं काशी का धर्म-रहस्य कहता हूँ, सुनो, यहाँ किया गया थोड़ा भी धर्म महामेरु के समान हो जाता है इसमें संशय नहीं है । (७८) ब्राह्मणादि वर्ण चाण्डाल पुल्कस तक, अनुलोम, विलोम जाति, म्लेच्छ, हूण और यवन जो कोई (७९) जाने या बिना जाने थोड़ा भी धर्म करता है, वह धर्म अमोघ हो जाता है । एक चिल्लू जल, एक बेल-पत्र, थोड़े से तिल-चावल और अपने अपने वित्त के अनुसार किया हुआ दान दूर्वा-पत्र और फूल शिवार्पण करने से अमोघ हो जाता है । (८१) गो, भूमि, तिल, स्वर्ण, हाथी, घोड़ा, रथादि से पूर्ण, धन, धान्य, वस्त्र, भूषणवाले गृह (८२) और गंगा के किनारे में सीढ़ीवाले मठ, मन्दिर आदि काशी में जो जी खोल-

१ ग. स्वल्पशोऽपि । २ ग. पुस्तकीयोऽयं पाठः, आ० पुं०—'स्वल्पमपि' इति ।

[1]मठदेवालयादीनि गङ्गासोपानवन्ति च ।
काश्यां ये वै प्रकुर्वन्ति वित्तशाठ्यविवर्जिताः ॥८३॥
तेषां पुण्यं प्रवक्ष्यामि सत्यं[2] विश्वेशभाषितम् ।
स्वर्गादिशिवलोकान्तमनुभूय चिरं सुखम् ॥८४॥
पुनरावृत्तिरहितं मोक्षं यान्ति ततस्ततः ।
यदि पुण्यं किंचिदपि काश्यां लब्धं[3] तु यैर्जनैः ॥८५॥
ते तत्पुण्यमवष्टभ्य न यान्ति जननं भुवि ।
स्वर्गादिपुण्यभोगान् वै आब्रह्महरलोकगान् ॥८६॥
भुक्त्वा क्रमेण सद्भोगानन्ते शिवपदं व्रजेत् (?) ।
शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि रहस्यं काशिधर्मजम् ॥८७॥
देवा मुनीन्द्रा राजानो वाञ्छन्त्यनुदिनं भुवि ।
चतुर्वर्गप्रदः काश्यां कदा धर्म्मो भवेद्धि नः ॥

कर बनवाते हैं; (८३) उनके पुण्य को मैं कहता हूँ। यह ईश्वर का कहा हुआ सत्य है, वे लोग स्वर्ग से लेकर शिवलोक तक का सुख बहुत काल भोगकर (८४) क्रमशः पुनरावृत्ति रहित मोक्ष-पद को प्राप्त होते हैं। जिन लोगों ने थोड़ा सा भी पुण्य काशी में कमाया (८५) वे उस पुण्य के बल से पृथ्वी में फिर उत्पन्न नहीं होते। स्वर्गादिपुण्यभोग से लेकर ब्रह्मलोक और शिवलोक के सुख को (८६) क्रम से भोगते हुए अन्त में शिवपद को प्राप्त होते हैं। हे देवि ! मैं काशी में पुण्य करने का रहस्य कहता हूँ, सुनो। (८७) देवता, मुनीन्द्र और राजा लोग प्रतिदिन चाहा करते हैं कि पृथ्वी पर काशी में हमको धर्म कब प्राप्त होगा ? ऐसी ही सदा उन लोगों की स्पृहा रहती है। अब शङ्कर की आज्ञा भी सुनो। (८८) काशी में अन्न देनेवालों के एक एक कण के विषय में देवी के साथ शङ्कर चिन्ता करते हैं कि पहिले कण का फल तो मैं धर्म दे दूँगा, और दूसरों के बदले में अलभ्य अर्थ, काम और

१ ग. शुभ··· । २ ग. स्वल्पं । ३ ग. लभ्यं ।

इति वाञ्छन्ति सततं शिवाज्ञामपि वै शृणु ॥८८॥
काश्यामन्नप्रदानां कणकणविषये शङ्करश्चिन्तयानो
देव्याः साकं प्रदास्ये प्रथमकणफलं धर्ममन्यैरलभ्यम् ।
अर्थं कामं च मोक्षं प्रतिकणगणनायां चतुष्कं ततोऽन्यत्
किं दास्यामीति चिन्तत्यनुदिनमतुलो देवि ! काशीप्रभावः ॥८९॥
देवि ! किं बहुनोक्तेन चतुर्वर्गप्रदा भुवि ।
काशीं विना जगत्यन्या नास्ति नास्ति कलौ ध्रुवम् ॥९०॥

नाथशर्मोवाच—
एवं काशीधर्मसारं मान्धाता मनसा स्मरन् ।
शिवाज्ञां मनसा स्मृत्वा भुक्त्वा यात्रां च कुर्विति ॥९१॥
किं वा करिष्ये धर्मः को नियमो वा शिवस्य वाक् ।
काशीस्थान् महतः शम्भुभक्तान् पृष्ट्वा करोमि हि ॥९२॥
ते सर्वज्ञाः शिवेऽत्यन्तभक्ताः प्राणिदयापराः ।
नियमो मे यथा भङ्गं न प्राप्नोति तथा पुनः ॥९३॥

मोक्ष दूँगा। इस प्रकार चार कणों का बदला तो चुका दूँगा, लेकिन शेष कणों के लिये क्या दूँ ऐसी प्रतिदिन चिन्ता किया करते हैं। हे देवि ! ऐसा काशीका प्रभाव है। (८९) हे देवि ! बहुत कहने से क्या ? कलियुग में चारों फलों को देनेवाली भूमि काशी को छोड़कर जगत् में दूसरी नहीं है, इसमें सन्देह नहीं है। (९०)

नाथशर्मा बोले—काशी की ऐसी धर्मप्रधानता का मन में स्मरण करके, और शिवजी की इस आज्ञा का स्मरणकरके कि भोजन के बाद यात्रा करो (९१) मान्धाता संशय में पड़ गये और सोचने लगे कि मैं क्या करूँ ? नियम और शिवजी की वाणी में से किसको धर्म मानूँ ? अब काशी में रहनेवाले शङ्कर के महाभक्तों से पूछकर काम करूँ। (९२) वे सर्वज्ञ हैं, शिवजी के अत्यन्त भक्त हैं और सब प्राणियों पर उनकी दया रहती है।

१ ग. प्रतिफल……।

शिवाज्ञामपि वक्ष्यामि यथा प्रोक्तं नभोगिरा ।
नित्यं केदारयात्रा मे कर्त्तव्येति दृढव्रतः[1] ॥९४॥
केदारपूजां कृत्वादौ ततस्तीर्थाटनादिकम् ।
कृत्वा काशीं समागत्य मणिकर्णीं विगाह्य च ॥९५॥
नित्ययात्रादिकं कृत्वा विश्वेशादीन्नमस्य च ।
प्राचीनमणिकर्ण्यां वै ततः स्नानं समाचरन् ॥९६॥
श्रीमत्केदारनाथञ्च सम्पूज्य विधिवत्ततः ।
भिक्षां दत्त्वा भिक्षुकाणामतिथिश्चापि तर्पयन् ॥९७॥
पश्चादाहारनियमो मासमासोक्तधर्मतः ।
आचरन् भक्षणं मे वै कृत्यं योग्यानुसारतः ॥९८॥
एवं नियमसन्त्यागः[2] सहसा त्यक्तुमक्षमः ।
आकाशवाणी देवस्य जाता नियमभङ्गिनी ॥९९॥

उनसे पूछूँ कि किस उपाय से नियम-भङ्ग न हो ? (९३) और फिर शङ्कर की आज्ञा भी उन्हें सुनाऊं कि इस प्रकार से आकाशवाणी हुई है। नित्य केदार-यात्रा करने का मेरा दृढ़ व्रत है। (९४) पहिले केदारजी की पूजा करके, तब तीर्थयात्रा करनी, फिर काशी आकर मणि-कर्णिका में स्नान करना, (९५) नित्य यात्रादिक करके विश्वेश्वरादिक को नमस्कार करना, उसके बाद प्राचीन मणिकर्णिका में नहाना (९६) फिर विधान के साथ केदारजी का पूजन करना, भिक्षुकों को भिक्षा देकर अतिथियों को तृप्त करना (९७) तत्पश्चात् भोजन करना—यह मेरा नियम है। मास मास में निर्दिष्ट धर्म के अनुसार यथायोग्य परिवर्तन करके मैं भोजन करता हूँ। (९८) ऐसे नियम का मैं सहसा त्याग नहीं कर सकता, और देवदेव की आकाशवाणी नियमभङ्ग करनेवाली हुई। (९९) इसलिये इस सन्देह

१ ग. दृढव्रतम्। २ ग. नियमसन्त्यागं सहसा कर्तुमक्षमः ।

तस्मादेतस्य जातस्य[1] सन्देहस्य च निर्णयः ।
शिवभक्तान् विनाऽन्यत्र न सिद्ध्यति कदाचन ॥१००॥
इति कृत्वा मतिं योगी मान्धाता शिववल्लभान् ।
मुनीन् प्राप्य यथान्यायं प्रणनाम पृथक् पृथक् ॥१०१॥
ते सर्वे तं समालिङ्ग्य कुशलप्रश्नपूर्वकम् ।
मध्ये निवेशयामासुरेनं भक्ताग्र्यमादरात् ॥१०२॥
मान्धाता तान् तदाऽपृच्छत् कृताञ्जलिपुटो नमन् ।
नियमं स्वं शिवाज्ञां च प्रोच्य सन्देहमात्मनः ॥१०३॥
ते सर्वे शिवविज्ञानसागरास्तुष्टमानसाः ।
मान्धातारं सम्प्रशस्य[2] प्रोचुः सन्देहनोदनम् ॥१०४॥
इति परमशिवोक्तां तादृगाकाशवाणीं
नियमपि तदा मान्धातुरन्यैरलभ्यम् ।

का निर्णय विना शिवभक्तों के और कहीं नहीं हो सकता। (१००) ऐसा विचार करके योगी मान्धाता ने शङ्कर के प्यारे मुनियों के पास जाकर पृथक् पृथक् प्रणाम किया। (१०१) उन लोगों ने कुशल प्रश्नपूर्वक उन्हें गले लगाया, और भक्तों के शिरोमणि मान्धाता को आदर से बीच में बैठाया। (१०२) मान्धाता ने उन लोगों को प्रणाम करके हाथ जोड़कर पूछा। अपना नियम, शङ्कर की आज्ञा और अपना सन्देह उनके सामने वर्णन किया। (१०३) वे सब-के-सब शिवविज्ञान के समुद्र थे और उनका मन सन्तुष्ट था। वे लोग मान्धाता की प्रशंसा कर सन्देह हटानेवाली वाणी बोले—(१०४) इस प्रकार से परमशिव की कही गई आकाश वाणी और मान्धाता का ऐसा नियम, जो दूसरे को प्राप्त नहीं हो सकता, एक वार भी शङ्कर की भक्ति के साथ जो सुनता है, उसका अपार

१ ग. सन्देहजातस्य च विनिर्णयः। २ ग. प्रशंसन्तः।

श्रवणदलितपापापारशैलप्रकर्षां
सकृदपि शिवभक्त्याऽऽकर्ण्य यातीशधाम ॥१०५॥

इति श्रीकाशीमूलरहस्ये ब्रह्मवैवर्तें खिले काशीकेदारमाहात्म्ये
एकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

अथ विंशोऽध्यायः ।

ऋषय ऊचुः—

'पाराशर्योपदेशाप्तशिवज्ञानामृताम्बुधे ! ।
सूत ! किं कृतवान् पश्चान्मान्धाता शिवसक्तधीः' ॥ १ ॥

पहाड़ सा पाप नष्ट हो जाता है और वह शङ्कर के धाम को प्राप्त होता है ।

यह ब्रह्मवैवर्त के खिलग्रन्थ काशी मूल रहस्यान्तर्गत केदारमाहात्म्य का उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

दो०—हरखित शिव योगी कह्यौ, है नभ गिरा प्रमान ।
नृपति सीख सोइ शीश धरि, खिचड़ी करी सुजान ॥
आधी शिवहिं समर्पि तव, अतिथि हेतु अकुलाइ ।
भिक्षुरूप करुणायतन, शंकर पहुँचे जाइ ॥
सो०—खिचड़ी भई पाषाण, नृपति चकित अचरज लखि ।
अतिथिहु अन्तर्धान, प्रकट भये केदार तव ॥
दो०—मान्धाता अस्तुति कह्यौ, लह्यौ सुभग वरदान ।
होत यातना भैरवी, तजे छेत्र येहि प्रान ।

ऋषि लोग बोले—हे सूतजी ! पराशर के पुत्र व्यासजी के उपदेश से आपने शिवज्ञान रूपी अमृत का समुद्र प्राप्त किया है । आप बतलाइये कि शिवजी के भक्त मान्धाता ने पीछे क्या किया ? (१)

१. ग. पाराशर्योपदेशात्मन् ! ......। २ ग. शिवशक्तधीः ।

ते 'चापि 'शिवभक्ताग्र्यवर्यास्तं किं समादिशन् ।
कीदृग्विधास्ते मुनयः शिवज्ञानवतां वराः ॥ २ ॥
काश्यां वसन्तः सेवां वै काम्कुर्वन् महेशितुः ।
निष्ठा वा कीदृशी तेषां 'यान् प्रष्टुमगमदृषिः ॥ ३ ॥
तादृशानाञ्च भक्तानां महिमानं वदस्व नः ।
एषां नामान्यपि जनान् श्रुतान्याशु पुनन्ति हि ॥ ४ ॥
इति पृष्टस्तदा सूतो मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ।
तदा प्राह पुनस्तेषां रहस्यं शिवयोगिनाम् ॥ ५ ॥

सूत उवाच—

शृणुध्वं मुनयः सर्वे शिवभक्तान् मुनीश्वरान् ।
मान्धाता यानुपागत्य संशयं पर्यपृच्छत ॥ ६ ॥
ते त्रैलोक्यं तृणीकृत्य कुत्सयन्तः सुखानि च ।
वाचाऽपि मनसा चाऽपि कायेनाऽपि त्रिधा सदा ॥ ७ ॥

और उन शिवभक्तों के शिरोमणियों ने उनको क्या उपदेश दिया? शिवज्ञानियों में श्रेष्ठ वे मुनि लोग कैसे थे? (२) काशी में बसकर वे महादेव की कौन सी सेवा करते थे? और उनकी कैसी निष्ठा थी, जो कि उनसे पूछने के लिये मान्धाता ऋषि तक गये। (३) ऐसे भक्तों की महिमा आप हमसे कहें। सुने गये इनके नाम लोगों को शीघ्र पवित्र करते हैं। (४) जब तत्त्वदर्शी मुनियों ने सूतजी से ऐसा पूछा, तब उन्होंने उन शिवयोगियों का रहस्य बतलाया। (५)

सूतजी बोले—हे मुनिगण! आप लोग सुनें। जिनके पास जाकर मान्धाता ने अपना सन्देह पूछा था। वे शिवभक्त लोग मुनीश्वर थे। (६) उन लोगों ने तीनों लोकों को तिनका समझ रक्खा था, सुखों के ऊपर वे निन्दा की दृष्टि रखते थे, मनसा वाचा कर्मणा सदा (७) शिवजी की एकता में लगे हुए एवं अपने कर्म में परायण थे। उनको

१ ग. वापि। २ शिवभक्ताग्रवर्याः। ३ ग. यत।

[1]शिवैकतानसंसक्तस्वस्वकार्यपरायणाः ।
तेषां चर्यां मनःशुद्धिं नियमञ्च वदेत कः ॥ ८ ॥
तथापि वक्ष्ये शृणुत तेषां नामानि भूसुराः ! ।
मान्धाताऽपि च तान् गत्वा किं वा वै ते वदन्ति च ॥ ९ ॥
मया वा किञ्च कर्त्तव्यं शिव एव परा गतिः ।
[2]सत्यं वदन्तु विप्रेन्द्रा ममोद्धारो यथा भवेत् ॥१०॥
इति संशयमापन्नः पुनः पुनरचिन्तयत् ।
तदा तत्र स्थितान् सिद्धान् शिवज्ञानैकभाजनान् ॥११॥
पृच्छामि संशयमिति समायाद् योगिसंसदि ।
शिवज्ञानी शिवनिधिः शिवबुद्धिः शिवास्तधीः ॥१२॥
शिवापराधसंहर्त्ता शिवज्ञानैकचिद्घनः ।
शिवानन्दाब्धिलहरी शैववेदान्तसारवित् ॥१३॥
शिवभक्तमनोग्राही शिवतत्त्वार्थबोधकः ।
शिवार्थदेहसन्त्यागी शिवपूजानिरन्तरः ॥१४॥

चर्य्या, मनःशुद्धि, और नियमों को कौन कह सकता है ? (८) फिर भी मैं उनके नाम गिनाता हूँ, आप लोग सुनें। मान्धाता उन लोगों के पास गये कि ये मुझको क्या उपदेश देते हैं ? (९) मुझे क्या करना चाहिये ? मेरी तो परम गति शङ्कर हैं । ये ब्राह्मणों में श्रेष्ठ मुझे ठीक ठीक बतलावेंगे, जिससे मेरा उद्धार होगा । (१०) इस प्रकार संशय में पड़कर बार बार चिन्ता करने लगा कि मैं वहाँ रहनेवाले शिवज्ञानी सिद्धों से (११) अपना सन्देह कहूँ । ऐसा स्थिर करके योगियों की सभा में आया । वहाँ शिवज्ञानी, शिवनिधि, शिव में ही बुद्धि लगाये हुए, (१२) शिवापराध को हरनेवाले, चिद्घन शिवज्ञानी, शिवानन्द समुद्र में लहर लेनेवाले, शिववेदान्त के सार को जाननेवाले (१३) शिव के तत्त्वार्थ को

१ ग. शिवैकज्ञान......। २ ग. पुस्तके—"सत्यं वदन्तु" इति श्लोकार्धं नास्ति ।

शिवपादाब्जनिध्याता शिवभक्तैकपूजकः ।
शिवपुण्यकृतां स्तोता शिवपूजाप्रसूनहृत् ॥१५॥
शिवपूजनसेवैकसर्वसाम्राज्यतृप्तिमान् ।
शैवागमाचारतन्त्रसंहश्रुतिविधानवित् ॥१६॥
शिवलिङ्गार्चनार्यैकमनोदेहसमर्पणः ।
शिवभक्तमनोह्लादकारी व्रतपरायणः ॥१७॥
शैवतन्त्रमृतेऽन्योक्तसर्वतन्त्रविभञ्जनः ।
शैवस्मृतिपुराणागमेतिहाससदारुचिः ॥१८॥
शिवध्यानाग्निनिर्दग्धप्रपञ्चतृणतूलधीः ।
शिवाराधनसंसक्तनिरस्तात्माभिमानधीः ॥१९॥
शिवैकनिश्चयज्ञाननिरस्ताखिलदेवधीः ।
शिवाभिषेकसंसक्तनिरन्तरघटोदहृत् ॥२०॥

समझकर शिवभक्तों के मन को हरनेवाले, शिव के लिये प्राण त्यागने वाले, निरन्तर शिव की पूजा करनेवाले, (१४) शिव के चरण कमलों का ध्यान करनेवाले, शिवभक्तों की ही पूजा करनेवाले, शिव-पुण्य करनेवालों की स्तुति करनेवाले, शिवपूजा के लिये फूल तोड़नेवाले, (१५) केवल शिव की पूजा तथा सेवा से सम्पूर्ण साम्राज्य की तृप्तिवाले, शैवशास्त्र, आचार और तन्त्र के साथ वेद एवं विधान को जाननेवाले, (१६) शिव लिङ्गार्चन के लिए अपना मन और देह समर्पण करनेवाले, शिवभक्त के मन को प्रसन्न करनेवाले, शिवव्रतपरायण, (१७) शिवतन्त्र को सत्य मानने तथा अन्योक्त तन्त्रों का खण्डन करनेवाले, शिव के स्मृति, पुराण, आगम और इतिहास में सदा रुचि रखनेवाले, (१८) शिव के ध्यान रूपी अग्नि से प्रपञ्च रूपी तृण और रूई के ढेर को भस्म करनेवाले, शिवाराधन में लगे हुए, अपनी अभिमान बुद्धि को निरस्त करनेवाले, (१९) शिव का ही निश्चय ज्ञान रखने एवं

१ ग.......सत्वश्रुति विधानवित्। २ ग. शैवतन्त्र कृतान्योक्त...... ।

शिवार्थबिल्वाहरणतुदत्कण्टकपाणियुक् ।
शिवभक्तैकसत्कारदेहार्थस्त्रीसुतालयः ॥२१॥
शिवक्षेत्राखिलादर्शनाभोजनधृतव्रतः[1] ।
[2]शिवनामऋतान्याखिलनामबधिरव्रती ॥२२॥
शिवब्रह्मानन्दरसपानोन्मत्तमहाव्रती ।
इत्याद्या मुनयः शैवसत्वसिद्धान्तसागराः ॥२३॥
श्रुतिस्मृतिपुराणागमेतिहासकरामलाः ।
विश्वेशादिमहालिङ्गसेवानिर्धूतकल्मषाः ॥२४॥
कोटिसंख्याः स्थितास्तत्र मान्धाता ऋषिराप्य तान् ।
साष्टाङ्गं प्रणिपत्याह शिवाज्ञामानुपूर्व्यतः ॥२५॥
तदा ते मुनयः सर्वे साश्चर्यास्तं प्रतुष्टुवुः ।
धन्यस्त्वं कृतकृत्यस्त्वं यस्मिन् जाता कृपेदृशी ॥२६॥

अन्य देवों की ओर से बुद्धि को हटा लेनेवाले, शिवाभिषेक में लगे हुए, अतः रात दिन घड़े से पानी भरनेवाले, (२०) शिवजी के लिये बेलपत्र तोड़ने में काँटों से भरे हुए हाथवाले, शिवभक्त के सत्कार के लिये ही देह, स्त्री, लड़के और घर रखनेवाले, (२१) अखिल शिवक्षेत्र के विना दर्शन किये भोजन न करनेवाले, शिव-नाम को छोड़कर शेष सब नामों को न सुनने का व्रत धारण करनेवाले, (२२) शिव ब्रह्मानन्द रसपान करके उन्मत्त रहने का महाव्रत धारण करनेवाले इत्यादि वे सब मुनि लोग शैवसिद्धान्त के समुद्र थे। (२३) उनको श्रुति, स्मृति, पुराण. आगम और इतिहास सब हस्तामलक थे। विश्वेश्वरादिक महालिङ्गों की सेवा से उनके अखिल कल्मष छूट गये थे। (२४) वे करोड़ों की संख्या में थे। मान्धाता ऋषि ने उनको पाकर साष्टाङ्ग प्रणाम किया और शङ्कर की आज्ञा आरम्भ से अन्त तक जैसी थी वैसी कह सुनाई। (२५) तब तो मुनि लोग आश्चर्य्य में आकर उनकी

१ ग.……भोजने धृतव्रतः। २ ग.……कृतान्याखिल……।

शम्भोराज्ञा बलवती तथा कुर्विति ते जगुः ।
वयमप्याऽऽगमिष्यामो यात्रायां भवता सह ॥२७॥
कुरु शीघ्रं महेशस्य नैवेद्यं भुङ्क्ष्व च द्रुतम् ।
[1]मनोवेगा वयमपि [2]त्वया यात्वाऽऽगमामहे ॥२८॥
[3]गुरुशम्भोर्बलादस्मच्छिष्या अपि मनोजवाः ।
क्षणेन यास्यामः पुनः कृत्वा यात्रां त्वया पुरीम् ॥२९॥
इति तैः सह केदारस्थानमाप ऋषिः पुनः ।
उषस्यन्नं चापमासि मुद्गदालीयुतं क्षणात् ॥३०॥
पक्त्वा[4] घृतेन संसिच्य वस्त्रे [5]न्युप्तं निवेदितुम् ।
विनाऽऽतिथ्यं न भुङ्क्तेऽसौ अर्धमातिथ्यकारणात् ॥३१॥
विभज्य रेखया मध्ये शिवायार्धं न्यवेदयत् ।
विचेतुमतिथिं चोदमानेतुं निर्गतो बहिः ॥३२॥

प्रशंसा करने लगे । उन लोगों ने कहा आप धन्य है, आप कृतकृत्य हैं, जो आप पर भगवान् की ऐसी कृपा हुई है । (२६) शम्भु की आज्ञा बलवती है, सो जैसी हुई है, वैसा ही करिये । हम लोग भी आपके साथ यात्रा करने के लिये आवेंगे । (२७) जल्दी करिये, महेश्वर का नैवेद्य पाकर चलिये, हमलोगों का भी मन के समान वेग है, आपके साथ यात्रा कर आवें । (२८) गुरु रूप शम्भु के बल से हमारे शिष्यों का भी वेग मन के समान है । एक क्षण में यात्रा करके तुम्हारे साथ पुरी में लौट आवेंगे । (२९) इस प्रकार उन लोगों के साथ केदार-क्षेत्र को जाने के लिये मान्धाता ऋषि ने धनुर्मास में उषा काल के समाप्त होते-होते तुरन्त मूँग की दाल की खिचड़ी बनाई । (३०) फिर उसमें घी मिला कर नैवेद्य लगाने के लिये कपड़े से उसे ढक दिया । बिना अतिथि के वे भोजन नहीं करते थे, सो अतिथि के लिये (३१) आधी खिचड़ी रेखा

१ ख. मनो वेति । २ ख. त्वयि यात्वागमामहे । ३ ग. गुरोर्शम्भोर्बलात् । ४ ग. पक्वं । ५ ग. लिप्तं ।

जलं गृह्य तथाऽऽतिथ्ये ऋषीन् शिष्यांश्च चार्थयत्[1] ।
ते चोचुर्न वयं नित्ये यात्रापूर्वमदामहे ॥३३॥
त्वं [2]भुङ्क्ष्व निर्गच्छ शीघ्रं कालं मा त्वं विलम्बय ।
इति तेषां वचः श्रुत्वा चिन्ताग्रस्तमना † भवत् ॥३४॥
विनाऽऽतिथ्यं कथं भक्ष्ये शिव एव गतिर्मम ।
एतावन्तं कालमहं विनाऽऽतिथ्यं न भक्षये ॥३५॥
अनातिथ्यं कथं भक्ष्ये शिवाज्ञा त्वीदृशी कथम् ।
इति चिन्तावति मुनौ केदारेशः कृपानिधिः ॥३६॥
भिक्षुरूपी ऋषिं प्राह देह्यातिथ्यं ममेति च ।
अहो ! श्रीभगवानेव दधाद् मयि कृपामिति ॥३७॥
सन्तुष्टचित्तस्तं दातुमन्नमन्नान्तिकं ययौ ।
आतिथ्यभागमुद्धर्त्तुमन्नं[3] प्रसृतवान् करम् ॥३८॥

खींचकर छोड़ दी, और आधी का शिवजी को नैवेद्य लगा दिया। तत्पश्चात् अतिथि खोजने तथा जल लाने के लिये बाहर गये। (३२) जल लाकर आतिथ्य के लिये ऋषियों तथा उनके शिष्यों से प्रार्थना की। उन लोगों ने कहा कि हमलोग यात्रा के पूर्व कभी भोजन नहीं करते। (३३) तुम खाओ और शीघ्र आओ, अतिकाल मत करो। उन लोगों की ऐसी बात सुनकर वे अतिचिन्तित हुए। (३४) बिना अतिथि को दिये मैं कैसे भोजन करूँ? शिव ही मेरे शरण हैं। इतने दिन बीत गये मैंने बिना अतिथि को दिये कभी भोजन नहीं किया। (३५) आज अतिथि के बिना मैं कैसे भोजन करूँ? शिवजी की ऐसी आज्ञा कैसे हो गई। मुनि के ऐसी चिन्ता करने पर कृपानिधि केदार ने (३६) भिक्षु का रूप धारण करके ऋषि से कहा कि मुझे आतिथ्य दो (मेरी मेहमानी करो)। मुनिजी के मन में आया कि लो! श्री भगवान ने ही मेरे ऊपर कृपा की। (३७) प्रसन्नमन होकर अन्न देने के लिये खिचड़ी के निकट गये,

१ ग. सोऽर्थयत्। २ ख. भुङ्क्ष्वे। ३ ग. मुद्धर्तुमन्ने। † सन्धिरार्षः।

भागद्वयं घनीभूय शिलासारमभूत्तदा ।
नोद्धर्त्तुं शक्यते, योगी किमेतदिति विस्मितः ॥३९॥
अन्नं देहीति भिक्षुस्तमपृच्छत पदे पदे ।
बहिःस्थितास्ते ऋषयो यात्रार्थं त्वरयति तम् ॥४०॥
भिक्षोः प्रतिश्रुतं मेऽद्य व्यर्थं जातं करोमि किम् ।
को वाऽपराधो दुर्ज्ञेयो मया[1] जातः परात्मनि ॥४१॥
इत्यपारमहाचिन्तापरे मान्धातरि प्रभुः ।
पश्यतामेव सर्वेषां भिक्षुरन्ने तिरोदधे ॥४२॥
किमेतदिति साश्चर्यं पश्यन्ति ऋषिसत्तमाः ।
मान्धाताऽपि भवच्चित्रपुत्रिकेव गतस्मृतिः ॥४३॥
तदाऽऽकाशे [2]महाशङ्खध्वानघण्टारणद्रथः ।
क्वणत्कनकताटङ्करुद्रकन्यागणस्थितः ॥४४॥

देवेन्द्रों अतिथि का भाग उठाने के लिये अन्न में हाथ लगाया (३८) तो देखा कि दोनों भाग ठोस होकर एक दम पत्थर हो गये हैं, जब उठा न सके तो बड़े चकित हुए कि यह क्या हुआ! (३९) उधर बार-बार भिक्षु कह रहा था कि 'लाओ अन्न लाओ', और बाहर खड़े हुए ऋषि लोग अलग यात्रा के लिये जल्दी कर रहे थे। (४०) बड़ी चिन्ता हुई कि भिक्षु से मैंने प्रतिज्ञा की थी, सो व्यर्थ गई। अब मैं क्या करूँ? परमात्मा का कौन सा दुर्ज्ञेय अपराध मुझसे हो पड़ा? (४१) इस प्रकार मान्धाता के अपार चिन्ता में पड़ जाने पर, सबके देखते-देखते वह भिक्षुरूपी प्रभु अन्न में समा गये। (४२) वे ऋषिसत्तम आश्चर्य्य से देखने लगे कि यह क्या होगया? मान्धाता चित्र में लिखी हुई पुतली की भाँति स्तब्ध रह गये। (४३) तब तो आकाश में महाशङ्ख ध्वनि तथा घण्टा के शब्द से युक्त और ताटंक (तरकी) के रुमझुन शब्दवालीं रुद्रकन्याओं (४४) और शङ्कर के रूपवाले रुद्रगणों

१ ग. मम। २ ग. महाशङ्खध्वनिघण्टारणद्रथः।

शिवसारूप्यगणपैश्छत्रचामररञ्जितः ।
सहस्रसूर्यचन्द्रांशुतेजाः शीतलरुक् तथा ॥४५॥
अदृश्यत ततस्तेषां क्षणादग्रेऽप्यवातरत् ।
ऋषिमाहुः शिवगणाः पश्यर्षे ! रथमारुह ॥४६॥
वयं शिवाज्ञया याता महाकैलासतः क्षणात् ।
त्वान्नेतुं शिवभक्ताग्र्यं केदारेशविभोः पदम् ॥४७॥
इति वाचं समाकर्ण्य मान्धाता शिवसक्तधः ।
शिवप्रसादं प्रत्यक्षमाकाङ्क्षन्नोत्तरं ददौ ॥४८॥
तदा दयालुर्भगवानारूढनिजवाहनः[1] ।
उमार्धदेहः सगणः सस्कन्दगणनायकः ॥४९॥
कोटिसूर्यप्रतीकाशः कोटिशीतांशुशीतलः ।
नन्दीवेत्रकरोत्सारिताशेषसुरनायकः ॥५०॥

से भरा हुआ छत्र एवं चामर सहित रथ, जो कि सहस्र सूर्य्य के समान तेजस्वी होता हुआ भी शीतल कान्तिवाला (४५) दिखाई पड़ा, और क्षण-भर में उन लोगों के सामने नीचे उतरा। शिवगणों ने ऋषि से कहा कि हे ऋषे ! इस रथ को देखो और इसपर सवार होओ। (४६) हम लोग शिवजी की आज्ञा से अभी कैलास से चले आ रहे हैं, तुम उस विभु शिवकेदार के भक्तों में श्रेष्ठ हो हम लोग तुम्हें शिवपद में पहुँचाने के लिये लेने आये हैं। (४७) मान्धाता का मन तो शिवजी में लगा था, उन्होंने इस बात को सुनकर, साक्षात् शिव की कृपा की चाह होने के कारण कोई उत्तर नहीं दिया। (४८) तब तो आधे शरीर में उमा को धारण किये हुए महाप्रभु दयालु भगवान् अपने बैल पर सवार हो स्वामिकार्तिकेय, गणेश और गणों के साथ (४९) कोटि सूर्य्य के समान प्रकाशवाले और कोटि चन्द्रमा के समान शीतल शिवजी, जिनके आगे आगे नन्दी हाथ में बेंत लिये हुए

[1] ग. पुस्तकीयोऽयं पाठः, आ० पु०—'रूढनिजवृषभः' इति।

[1]वाणीनखरणद्वीणासामगीतिरमाध्वनिः ।
सस्त्रीकब्रह्मविष्ण्वादिदेववृन्दजयध्वनिः ॥५१॥
[2]लिङ्गभूतान्नतः सद्यो विनिर्गत्य महाप्रभुः ।
प्राह गम्भीरया वाचा मान्धातारमचञ्चलम् ॥५२॥
मुने ! शृणु प्रसन्नोऽस्मि भक्त्या च तपसा तव ।
प्रार्थितं वृणु दास्येऽहं वरमन्यैः सुदुर्लभम् ॥५३॥
इति श्रुत्वा वचो भूमौ दण्डवत् ह्यनमदृषिः ।
दिव्यदृष्ट्या [3]महादेवदत्तयाऽपश्यदीश्वरम् ॥५४॥
स्तोतुमारभदीशानमानन्दाश्रुपरिप्लुतः ।

[4]मान्धातोवाच—

धन्योऽहं जगतीतले मम समो नान्योऽस्ति देवप्रभो !
येन त्वत्करुणाकटाक्षलहरीपात्रत्वमाप्तं चिरात् ।

को हटाते चल रहे थे, (५०) सरस्वती की बजाई हुई वीणा में जिनके लिए सामगान की ध्वनि हो रही थी, ब्रह्मा, विष्णु आदिक देवता अपनी स्त्रियों के साथ जिनका जय जयकार कर रहे थे, (५१) उस लिङ्ग भूत अन्न से प्रकट हुए, और निश्चल होकर खड़े हुए मान्धाता से गम्भीर वाणी से बोले—(५२) हे मुने ! मैं तुम्हारी भक्ति और तप से प्रसन्न हूँ, तुम्हारे माँगने से मैं ऐसा भी वर दे सकता हूँ जो दूसरों के लिये दुर्लभ हो। ऐसी बात सुनकर ऋषि ने पृथ्वी में लोटकर दण्डवत् प्रणाम किया। महादेव की दी हुई दिव्य-दृष्टि से ईश्वर का (उनका) दर्शन पाया (५४) और आनन्द के आँसुओं से भींगे हुए वे उनकी स्तुति करने लगे। मान्धाता बोले—हे देव ! हे प्रभो ! मैं इस जगतीतल में धन्य हूँ, मुझ सा दूसरा कोई नहीं है, क्योंकि मैं आपके करुणा-कटाक्ष की लहर का

१ ख. वाणी नखस्थूल सामगीति रमाध्वनिः, ग. नखक्वणिद्वीणा......। २ ग. लिङ्गाभ्यन्तरतः। ३ ग. महादेवं मान्धाता............। ४ ख. पुस्तकीयोऽयं पाठः, आ० पु०—नास्ति।

ब्रह्माद्यैरपि दुर्लभं परशिवः कस्य प्रसीदेन्मयि
प्रत्यक्षं प्रणयप्रसादसुमुखः प्राचीनपुण्यादभूत् ॥५५॥
अर्कद्रोणप्रसून[1]तृणविपिनगतानेकजातैः पलाशै-
[2]रप्यन्तर्भक्तियुक्तान् प्रभवति सकलाभीष्टलक्ष्म्यै च मुक्त्यै ।
[3]उत्कृष्टैर्द्रव्यजातैरपि च न लभते [4]भक्तिहीनात् सपर्यां
[5]लक्षैरप्यात्मनाथः[6] स तु मयि कृपया पामरेऽप्यार्द्रचित्तः ॥५६॥
नाऽहं त्वद्भक्तिलेशं क्षणमपि मनसाऽप्याद्रिये नित्यमूढः
पद्माजानिः [7]स्वयम्भूरमरपतिमुखैरप्यगम्यप्रभावम् ।
केनेश ! त्वत्प्रसादो मयि [8]समविलसद् ज्ञानहीने वराके
तस्माज्जाने त्वमीश ! त्वदनुचरमहत्सङ्गपुण्यात् प्रसन्नः ॥५७॥

पात्र बहुत दिनों से हूँ। परशिव का प्रसाद ब्रह्मादि के लिए भी दुर्लभ है। मनुष्य को कैसे प्राप्त हो, सो आप मेरे सामने प्रेम प्रसाद से सुमुख होकर प्रसन्न हुए हैं, यह बात प्राचीनपुण्य से हुई है। (५५) मदार, द्रोण के फूल, दूर्वा और जंगल में उत्पन्न होनेवाले अनेक जाति के पत्तों से भी जिन लोगों के भीतर भक्ति है, उन लोगों को अभीष्ट लक्ष्मी तथा मुक्ति की प्राप्ति होती है। और भक्ति रहित लोगों को उत्तम उत्तम वस्तुओं से लाख पूजन करने पर भी फल की प्राप्ति नहीं होती, उन आत्मनाथ ने मुझ पामर पर भी कृपा करके करुणा-दृष्टि की। (५६) मैं सदा का मूढ़ हूँ, मैंने मन से भी आपके भक्तिलेश का एक क्षण के लिये भी आदर नहीं किया, जिस भक्तिलेश का प्रभाव विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्रादि मुख्य देवताओं से भी अगम्य है। हे ईश! आपकी कृपा मुझ ज्ञानहीन तुच्छ पर कैसे हुई ? अतः मेरी समझ में यह आता है कि हे ईश! आपके अनुचरों के सत्संग के पुण्य से आप मुझपर

१ ग. प्रसूनैस्तृण··· २ ख. रत्यन्तं···। ३ ग. उत्कृष्टैर्द्रव्यसंघै···। ४ ग. भक्तिहीनः। ५ ख. लक्ष्मी०। ६ ग···०त्मनाथं। ७ ग···सुरपतिमुमुखे। ८ ग. विलसति यत्।

त्वद्भक्तानाञ्च सङ्गः कुमतिमपि विभो ! किं किमुत्पादयेन्न
धर्मार्थौ काममोक्षौ स्वकरतलगतौ का ततोऽन्याऽस्ति सिद्धिः ।
तस्मादेतान् [1]प्रसन्नस्त्वहमखिलमुनीन् त्वत्सपर्याविधिज्ञान्
तेषां त्वं प्रीतये [2]मामुपदिश सततं दर्शनं लिङ्गमूर्त्तेः ॥५८॥
एते भक्ताग्र्यवर्यास्तव मुनिनिकरा द्रष्टुमिच्छन्ति चित्ते
ब्रह्माद्यैरप्यलभ्यं निजजनसुलभं रूपमप्राकृतं ते ।
पश्यन्त्वेते वरं मे प्रथमतरमिमं देहि मे तैर्यथाऽऽज्ञा
मे भूयात्तां तथाहं [3]त्वकरवमितरं नैव याचेऽपि मुक्तिम् ॥५९॥
इत्थं भक्तोपकारप्रबलदृढमहाबद्धदीक्षं स्वभक्तं
मान्धातारं पुरारिः प्रणयसुलभः प्रेमदृष्ट्याऽभिवीक्ष्य ।
मद्भक्तेषु प्रवीणस्त्वमसि शुभमते ! येन सर्वान् पुनासि
त्वत्प्रीत्यै सर्वभक्तानहमदिशमहो ! दिव्यदृष्टिं ह्यलभ्याम् ॥६०॥

प्रसन्न हुए हैं। (५७) हे विभो ! आपके भक्तों के संग से दुर्बुद्धि को भी क्या क्या नहीं मिल जाता ? धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सब हाथ में आ जाता है। फिर दूसरी सिद्धियों की गणना ही क्या है ? इसलिये मैं इन सब मुनियों से, जो कि आपके पूजन की विधि को जाननेवाले हैं, प्रसन्न हूँ। इन्हीं लोगों को प्रीति के लिये आपने नयी लिङ्ग-मूर्ति के दर्शन के लिये मुझे आदेश दिया था। (५८) ये मुनि लोग आपके भक्तों में श्रेष्ठ हैं ! ये आपको मन में देखने की इच्छा करते हैं। इसलिए ये आपके अप्राकृत रूप को, जो कि ब्रह्मादिकों के लिये दुर्लभ और आपके भक्तों के लिये सुलभ है, देखें, यह मेरा सबसे प्रथम वर है, सो मुझे दीजिये। इन लोगों की जैसी आज्ञा मुझे होगी, वैसा ही मैं करूँगा, दूसरा वर-मुक्ति भी मैं नहीं माँगता। (५९) इस प्रकार से भक्तों के उपकार के लिये प्रबल और दृढ़

१ ग. प्रसन्नो भव निखिल०... । २ ग. मय्युपदिश सततं । ३ त्वकरवमिति भो नैव... ।

इत्युक्त्वा भक्तवश्यः सकलमुनिगणानात्मभक्तान् महेशः
स्वं रूपं दिव्यमत्यद्भुतमदिशदहो ब्रह्मविष्ण्वाद्यलभ्यम् ।
दृष्ट्वा ते चित्रचित्ताः परमशिवमहद्रूपमप्राकृतं तत्
साष्टाङ्गं प्रणमन्तो जयजयमुखरा हर्षवार्धौ निमग्नाः ॥६१॥
[1]श्रुत्यन्तैरागमोक्तैरखिलशिवपुराणेतिहासोक्तमन्त्रैः
श्रीरुद्रैर्ब्रह्मपञ्चश्रुतिभिरमितशैवोक्तसत्प्राकृताद्यैः ।
श्रीमत्पञ्चाक्षरीभिः सकलदुरितहृन्नामसाहस्रकैस्ते
सम्यक् संस्तुत्य सर्वे परमशिवमथो प्रार्थयन् मोक्षलक्ष्मीम् ॥६२॥
तत्काले दिव्यघण्टारणरणितविमानावलिः खे शिवाज्ञा–
सम्प्राप्ता रुद्रकन्याशतशतकरधृक्चामरच्छत्रशोभा ।

महादीक्षा लिये हुए मान्धाता को प्रेम भरी सुन्दर दृष्टि से देखकर शङ्करजी ने कहा कि हे शुभमते ! तुम मेरे भक्तों में बड़े प्रवीण हो क्योंकि तुम सबको पवित्र करते हो, तुम्हारी प्रीति के लिये मैं सब भक्तों को अलभ्य दिव्यदृष्टि देता हूँ। (६०) ऐसा कहकर भक्तवत्सल महादेवजी ने सब मुनियों को अपना अत्यद्भुत दिव्य रूप, जो कि ब्रह्मा, विष्णु आदि को भी दुर्लभ है, दिखलाया । परम-शिव के अत्यद्भुत और अप्राकृत रूप को देखकर वे लोग चकित हो गये, और साष्टांग प्रणाम करके जय जयकार करते हुए आनन्द-समुद्र में डूब गये । (६१) सब लोग वेदान्त तथा आगम में कहे गये मन्त्रों से, सम्पूर्ण शिवपुराण इतिहास में कहे गये मन्त्रों से, रुद्री से, ब्रह्मपञ्चक श्रुतियों से, शैवों के बनाये हुए सुन्दर प्राकृत स्तोत्रों से, पञ्चाक्षरी से और सम्पूर्ण पापों को हरनेवाले शिवसहस्रनाम से परम-शिव की स्तुति करने लगे । तत्पश्चात् मोक्ष-लक्ष्मी की प्रार्थना की । (६२) उसी समय दिव्य घण्टा के शब्दों से शब्दायमान विमानों का ताँता शिवजी की आज्ञा से आकाश में बँध गया, जिनमें

---

१ ग. श्रत्युक्तै०......।

शिष्यैस्तत्तत्प्रशिष्यैः सह शिवमुनयः प्राकृतान् त्यज्य[1] देहा-
नारुन्न्[2] दिव्यदेहाः[3] परशिवकृपया यानवर्येष्वथ द्राक् ॥६३॥
तानाह श्रीमहेशः शृणुत मुनिवराः! भोगलिप्सा च येषां
ते मे धाम्नि प्रकृष्टं सुखमनुभवताऽनन्तरं स्यात मुक्ताः।
येषामिच्छा न भोगे मम [4]परमकृपाध्यानतृप्ताः सदेति[5]
प्रोच्य श्रीतारकाख्यं मनुमखिलमुनीनाह केदारनाथः ॥६४॥
इत्थं वैमानिकास्ते परमशिवमहातारकेनोपदिष्टा
भोगं मोक्षं च युग्मं [6]युगपदभिलभन् [7]भक्तवश्यप्रसादात्।
पश्चादाऽऽहात्मभक्तं त्वतुलितदययाऽपर्णयेशः कराभ्या-
मास्पृश्यन् वत्स! मान्धातरिति मम परा त्वं तनुर्याहि धाम ॥६५॥

सौ-सौ रुद्रकन्यायें छत्र-चामर हाथों में ली हुई विराजमान थीं, और शिवमुनि लोग अपने शिष्य-प्रशिष्यों के साथ, भौतिक शरीरों को छोड़ दिव्य शरीर धारण करके, परशिव की कृपा से उन विमानों पर तुरन्त सवार होगये। (६३) श्रीमहेश ने तब उन लोगों से कहा—सुनो, जिन लोगों की भोग की लालसा हो, वे मेरे धाम में उत्तम सुखों को भोगकर पीछे से मुक्त हों, और जिनको भोग की इच्छा न हो, वे मेरी पर-महिमा के ध्यान से ही सदा तृप्त हों। वे सब तारक मन्त्र ग्रहण करें। ऐसा कह कर सब मुनियों से केदारनाथ ने तारक मन्त्र कहा। (६४) इस प्रकार उन विमानवालों ने परम-शिव से तारक मन्त्र पाकर, भक्तवत्सल भगवान् की कृपा से भोग और मोक्ष दोनों को एक साथ ही प्राप्त किया। तत्पश्चात् अपने भक्त से, अतुलित दया से करपल्लवों को उसके शरीर पर फेरते हुए, कहा कि 'हे वत्स! मान्धाता! तुम मुझ में एकाग्र चित्त से लगे हो,

१ ग. सत्य। २ ग. नारोहन्। ३ ग. दिव्यदेहान्। ४ ग. पुस्तकीयः पाठः, आ० पु०—"परममहिमध्यानतृप्ताः" इति। ५ ग. सदा ते। ६ ग. युगपदपि लभन्। ७ ग. भक्तवश्यप्रसादात्।

किं तेऽन्यत् प्रार्थ्यमस्ति प्रवद शुभमते! नास्त्यदेयं हि तेऽस्ती-
त्याकर्ण्येशस्य वाचं पुनरपि विनमन् प्रार्थयामास शम्भुम्।
काश्यां शम्भो! प्रजानां सकलुषमनसां भैरवाज्ञा बलीया
सा माभूदत्र तेऽन्तर्गृहमृतजनतायाः प्रसादं कुरुष्व ॥६६॥
इत्थं तं याचमानं पशुपतिरवदत् प्रार्थना दुर्लभा ते
भक्तस्त्वं मे तथापि प्रियतम! तव या प्रार्थना सा तथाऽस्तु।
इत्युक्त्वा भैरवं माधवमपि भगवान् दण्डपाणिं च ढुण्ढि-
माहूयाऽन्यांश्च देवानदिशदथ वरं काशिकेदारभूमेः ॥६७॥
माभूदत्र प्रजानामतितरमसहा भैरवी यातना मे
गेहेऽन्तर्भूप्रदेशे विघटितवपुषां तारकस्योपदेशात्।
पापिष्ठा अप्यवश्यं मम वरकृपया तत्क्षणं यान्तु धाम
दिव्यं मे सत्यमेतच्छृणुत दिविषदो भैरवाद्या वचो मे ॥६८॥

अतः तुम सशरीर मेरे धाम को प्राप्त होओ। (६५) हे महामते! और तुम क्या चाहते हो, सो कहो, तुम्हारे लिये मुझे कुछ भी अदेय नहीं है। ऐसी ईश की वाणी सुनकर, फिर नमस्कार करके शम्भु से प्रार्थना की—कि काशी में जो आपकी पापात्मा प्रजा है, उनके लिये भैरवजी की आज्ञा बड़ी ही बलवती है, जो लोग आपके अन्तर्गृह में शरीर छोड़ें, उनके ऊपर वह आज्ञा न चले। आप ऐसी कृपा करें। (६६) इस प्रकार से जब उन्होंने वर माँगा, तो पशुपति ने कहा—तुम्हारी प्रार्थना दुर्लभ है, तथापि तुम मेरे बड़े प्यारे भक्त हो, अतः जैसा तुम माँगते हो वैसा ही हो। ऐसा कह करके उन्होंने भैरव, विष्णु भगवान्, दण्डपाणि, और ढुण्ढिराज तथा अन्य-देवताओं को बुलाकर काशीकेदारक्षेत्र के विषय में कहा (६७) कि यहाँ रहनेवाली प्रजा को अत्यन्त असह्य भैरवी यातना न हो, मेरे

१ ग. मृतवपुषां त्वं। २ ग. इत्यन्तं। ३ ग. तं पुनरपि। ४ ग. गेहान्तर्भूप्रदेशे। ५ ग. भैरवाज्ञावरं मे।

इत्युक्त्वा भक्तवश्यः सुरगणविनुतो विश्वनाथः परात्मा
केदाराल्लिङ्गमूर्त्तेरभिनवनवरत्नाकृतेरेत्य भक्तम् ।
[1]संतोष्यन् श्रीमहेशः सकलभुवनगा मूर्त्तयो यस्य भेदा-
स्तत्तत्कालोचितास्तानवति निजजनान् तत्तदिष्टप्रदानात् ॥६९॥

सूत उवाच—

इति सकलमुनीनां प्रापणं शम्भुधाम्नि
त्वतुलितवरदानं काशिकेदारभूमेः ।
सकृदपि कलुषघ्नं यः शृणोतीशभक्त्या
परमशिवरहस्यं सत्यमीशं स याति ॥७०॥

इति श्रीकाशीमूलरहस्ये ब्रह्मवैवर्त्ते खिले काशीकेदार-
माहात्म्ये विंशोऽध्यायः ॥२०॥

अन्तर्गृह में शरीर छोड़नेवालों को, तारक के उपदेश से, यदि वे पापी भी हों तो भी मेरे वर की कृपा से उसी क्षण मेरे दिव्य धाम की प्राप्ति हो यह मेरी सच्ची आज्ञा है । हे भैरवादिक देवताओं ! आप लोग मेरा वचन सुनें । (६८) ऐसा कह कर भक्तवत्सल, देवताओं से सेवित, विश्वनाथ, परमात्मा, श्रीमहेश ने नयी नवरत्नमयी केदार मूर्त्ति से आकर भक्त का सन्तोष किया । जितनी भुवन में मूर्तियाँ हैं, वे सब उन्हीं के भेद हैं । जिस काल में जैसा उचित होता है, वैसी मूर्ति धारण करके अपने भक्तों के अभीष्ट को पूरा करके, उनकी रक्षा करते हैं । (६९) सूतजी बोले—यह काशीकेदार क्षेत्र विषयक अतुलित वरदान, सम्पूर्ण मुनियों को शिवजी के धाम में पहुँचानेवाला है, सब पापों को नाश करनेवाला है और सत्य परम रहस्य है, इसे जो एक बार भी शिवजी की भक्ति के साथ सुनता है, वह ईश को प्राप्त होता है । (७०)

यह ब्रह्मवैवर्त के खिलभाग-काशीमूलरहस्यान्तर्गत काशीकेदार-
माहात्म्य का बीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥

१ ग. सन्तोष्य ।

अथैकविंशोऽध्यायः

[१]ऋषय ऊचुः—

सूत ! शैवज्ञाननिधे ! कृतार्थाः स्मः त्वया वयम् ।
आश्चर्यादपि चाश्चर्य्यं रहस्यं काशिवैभवम् ॥ १ ॥
ततोऽपि महदाश्चर्य्यं तत्र केदारवैभवम् ।
गते ऋषिगणे शम्भोर्धाम पश्चाद् दयानिधिः ॥ २ ॥
राजर्षिणा च मान्धात्रा भक्ताधीनः किमर्थितः ।
स मान्धाता कथं प्राप शम्भोर्धाम परात्परम् ॥ ३ ॥
तत्सर्वं विस्तरेणास्मान् वक्तुमर्हसि सुव्रत ! ।
इति पृष्टस्तदा सूतः प्राह तान् मुनिसत्तमान् ॥ ४ ॥

दोहा—दूजो वर ऋषि ने लयो, गये शैव शिव-लोक ।
तीजो वर माँगत कियो, विधि हरि सादर रोक ॥
चढ़ि विमान ऋषि ने कियो, श्रीशिव-लोक पयान ।
सेवत पुनि इक अंश तें, श्रीकेदार सुजान ॥
पुनि वर वो केदार को, दिव्य महातम भूरि ।
तथा अनेकन लिङ्ग को, रहे जो चहुँदिसि पूरि ॥

ऋषियों ने कहा—हे सूत ! आप शिव-ज्ञान के समुद्र हैं। आपके कारण हम लोग कृतार्थ हो गये। यह काशीमाहात्म्य का रहस्य आश्चर्य्य से भी आश्चर्य्य है। (१) उसमें भी काशीकेदार का वैभव तो अति आश्चर्य्यमय है। ऋषिगणों के शिवधाम पहुँचने के बाद, भक्तवत्सल दयानिधि से (२) राजर्षि मान्धाता ने क्या माँगा, और उसने शम्भु के परात्पर धाम को कैसे पाया ? (३) हे सुव्रत ! हम लोगों से सविस्तर कहो। ऐसा पूछने पर सूतजी ने मुनियों से कहा। (४) सूतजी बोले—हे ब्रह्म ज्ञानियों में श्रेष्ठ ! सुनो, ऋषिसत्तम

१ क. ग. मुनय ऊचुः ।

सूत उवाच—

शृणुध्वं ब्रह्मविच्छ्रेष्ठा मान्धाता ऋषिसत्तमः ।
भूयस्तं प्रार्थयामास भगवन्तं परात्परम् ॥ ५ ॥
स्वामिन् ! पूर्वं त्वं हि श्रीमत्केदारे लिङ्गरूपिणः ।
स्वात्मनो दर्शनं मुक्त्यै लोकानामादिशः खलु ॥ ६ ॥
त्वद्दर्शनक्षणे लोका मुक्तास्तेन जगत्त्रयम् ।
शून्यं भवेदिति निजं लिङ्गं तत्र तिरोदधः ॥ ७ ॥
अत्र ते लिङ्गरूपं तद्दर्शितमप्यनुग्रहात् ।
तस्मादत्र भवल्लिङ्गं दर्शनात्तत्क्षणं जनाः ॥ ८ ॥
मुक्ता भवन्तु काश्यां वै मय्यनुग्रहवान् भव ।
इत्येवं प्रार्थितं शम्भुं प्रसादाभिमुखं सुराः ॥ ९ ॥
ब्रह्मविष्णुमुखा देवमूचुः प्राञ्जलयो भिया ।
भगवन् ! वरमेनं त्वं यदि दास्यसि दुर्लभम् ॥१०॥
लोकाः सर्वे क्षणादत्र मुक्ता यान्ति त्वदालयम् ।
शून्यमद्यैव हि जगत् भविष्यति न संशयः ॥११॥

मान्धाता ने परात्पर भगवान् से फिर प्रार्थना की (५) कि हे स्वामिन् ! पहिले आपने लोगों की मुक्ति के लिये श्रीमत्केदार, लिङ्ग रूपी अपने दर्शन का आदेश दिया था (६) आपका दर्शन करते ही लोग मुक्त हो जाते थे, सो तीनों लोक शून्य न हो जाँय, इसलिये आपने अपने लिङ्ग का अन्तर्धान कर लिया। (७) मुझपर आपका अनुग्रह हुआ इसलिये मैंने यहाँ उस लिङ्ग का दर्शन पाया। अब आपके लिङ्ग के दर्शन से उसी समय लोग (८) यहाँ काशी में मुक्त हो जाय, ऐसा अनुग्रह मुझपर कीजिये। जब ऐसी प्रार्थना की तो शम्भु को कृपा करते देखकर (९) ब्रह्म, विष्णु आदि देवता लोग हाथ जोड़ कर डरते हुए बोले—हे भगवान् ! यदि आपने यह दुर्लभ वर दे डाला, (१०) तो यह सम्पूर्ण लोक क्षणभर में मुक्त होकर अपने धाम को पहुँच जायगा। अतः

किं कार्यं भैरवस्यात्र सौरेर्वा सौरिमन्दिरे ।
ब्रह्मणो वाऽथ विष्णोर्वा वज्रिणो वा सुपर्वणाम् ॥१२॥
सृष्टिस्थितिविनाशैस्ते लीला 'जगदिति प्रथा' ।
विक्षेपावरणाख्यात्मशक्त्या त्वं सर्वदेहवान् ॥१३॥
सुकर्मदुष्कर्मभेदाद्देवतिर्यङ्नरात्मतः ।
अलिप्तोऽपि भवानेव लीलां वितनुते प्रभो ! ॥१४॥
सा लीला ते विनष्टाऽद्य भक्तस्य वरदानतः ।
एवं मुक्तिर्यदि भवेत् किमर्थं लोकसंग्रहः ॥१५॥
काश्यां मुक्तिस्तनुत्यागात् 'कश्चापि लभते न वा ।
'सापि सन्मार्गवर्त्तिनां' नोचेच्छास्ताऽत्र भैरवः ॥१६॥
एवं त्वया कृता लोके व्यवस्था प्राणिनां भुवि ।
धर्माधर्मद्वयोः कर्मभूमौ च कृतयोः फलम् ॥१७॥

आज ही जगत् शून्य हो जायगा इसमें संशय नहीं है । (११) फिर यहाँ भैरव का क्या काम रह जायगा, यमराज ही यमपुर में क्या करेंगे एवं ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र अथवा अन्य देवताओं के लिए क्या काम रह जायगा ? (१२) सृष्टि, स्थिति, और प्रलय से ही आपका लीला रूपी यह जगत् बना है, और ऐसी ही प्रथा चल रही है । अपनी आवरण और विक्षेप शक्ति के द्वारा सब देहधारी आप ही हैं । (१३) सुकर्म दुष्कर्म भेदानुसार देव, तिर्यक् और नररूप से अलिप्त होने पर भी हे प्रभो ! आप ही लीला कर रहे हैं । (१४) वह आपकी लीला इस भक्त को वरदान देने से नष्ट हो रही है । यदि इस प्रकार से ही मुक्ति हो जाय, तो यह लोक संग्रह किसलिये है । (१५) काशी में मुक्ति मिलती है, सो भी शरीर त्यागने से । अतः किसी को प्राप्त होती है और किसी को नहीं भी प्राप्त होती । वह भी सदाचारी को

१. ग. जगदितो वृथा । २ क. वृथा । ३. केनापि लभ्यते न वा । ४ ख. सोऽपि । ५ ग. सन्मार्गवृत्तीनां ।

प्राणिनां [1]पुण्यभूमौ तद्भोगाय स्वर्गनारकौ ।
कृप्तौ भोगौ पुनर्जन्म भोगान्ते प्राणिनां खलु ॥१८॥
तेन सृष्टिस्थितिलयाः कल्पान्ते कर्मशेषतः ।
ब्रह्मविष्णुमुखा देवाश्चापि पूर्वाप्तकर्मतः[2] ॥१९॥
मुक्तियोग्या मुक्तिमापुः कर्मयोग्या जनिं पुनः ।
एषां लोकानां विधृत्यै चैष सेतुर्विधारणः[3] ॥२०॥
[4]तवाज्ञानिर्णयात् शम्भो ! वयं तदनुसारिणः ।
सर्वज्ञोऽपि [5]भवानस्मास्वाज्ञाऽस्ति समयोचिता ॥२१॥
विज्ञप्तिरपि वक्तव्या तेन वक्ष्यामहे वयम् ।
यदि त्वं भक्तसन्तुष्ट्यै[6] लिङ्गदर्शनतत्क्षणे[7] ॥२२॥

मिलती है, यदि सदाचारी न हो तो उसका शासन करनेवाले भैरवजी हैं। (१६) इस प्रकार की प्राणियों की व्यवस्था आपने पृथ्वी पर कर रक्खी है। धर्म और अधर्म ये दोनों कर्मभूमि में किये हुए कर्म के फल हैं। (१७) पुण्यभूमि में जो प्राणी कर्म करते हैं, उनके भोग के लिये स्वर्ग और नरक हैं। (१८) भोग हो चुकने पर, अर्थात् भोगान्त में फिर प्राणियों का जन्म होता है। (१८) उसी से सृष्टि, स्थिति, लय हुआ करते हैं। पूर्व कर्मों के अनुसार ही ब्रह्म, विष्णु आदि देवता हुए हैं। (१९) कल्पान्त में कर्म के शेष होने से मुक्ति के योग्य लोगों को मुक्ति मिलती है और कर्मयोग्य लोगों को जन्म मिलता है। इन लोकों को धारण करने के लिये इसी सेतु का पालन है। (२०) आपकी आज्ञा का निर्णय हो जाने से हे शम्भो ! हम लोग तदनुसार चलेंगे। आप सर्वज्ञ हैं, हम लोगों को समयोचित आज्ञा होनी चाहिये। (२१) परन्तु अपने को जो कहना है, वह कह देना चाहिये,

---

१ ग. कर्म्मभूमौ । २ क. ग. पुस्तकीयोऽयं पाठः, आ० पु०—"पूर्वाऽत्र कर्मतः" । ३ ख. विधानतः । ग. विधारितः । ४ ग. तवाज्ञानिर्णयः । ५ भवान-स्मांश्चाज्ञाऽस्ति। ६ ख. भक्तसन्तुष्टः । ७ ग. लिङ्गदर्शनतः क्षणात् ।

काश्यां केदारनाथाग्रे भोगमोक्षौ नृणां दिशेः ।
कस्य वा भूतले भोगमोक्षेच्छा नास्ति भूतये ॥२३॥
कायक्लेशादितपसे योगसिद्ध्यै विभूतये ।
दानाय यागाय पुनः सपर्यायै च कर्मणे ॥२४॥
सत्सेवनाय पूजायै लोकोपकृतये पुनः ।
पुण्यक्षेत्रसुयात्रायै तेषु वै मृतये पुनः ॥२५॥
पुण्यतीर्थावगाहाय नित्यनैमित्यकर्मणे ।
वर्णाश्रमव्यवस्थातिक्रमभीत्यै स्वकर्मणे ॥२६॥
शास्त्रमर्यादां विलङ्घ्य[1] न वर्त्तव्येति (?) भीतये ।
इत्यादिकार्यजाताय तवाऽऽज्ञानिर्मिता यदि ॥२७॥
को वा परिश्रमं कुर्यात् स्वस्वोद्धाराय[2] भीतितः ।
स्वर्गमोक्षौ करस्थौ चेदनायासात्तवाऽऽज्ञया ॥२८॥

इसी लिये हम लोग कह रहे हैं। यदि आपने भक्त के सन्तोष के लिये लिङ्ग-दर्शन करते ही काशी में केदारजी के सामने मनुष्यों के लिये भोग-मोक्ष की व्यवस्था कर दी, तो किसको पृथ्वी पर भोग और मोक्ष की इच्छा नहीं है। (२३) फिर, शरीर को कष्ट देकर तप के लिये, योग सिद्धि के लिये, विभूति के लिये, दान, यज्ञ, पूजा और कर्म काण्ड के लिये, (२४) भलों की सेवा एवं पूजा और लोकोपकार के लिये, पुण्यक्षेत्र में यात्रा तथा उसमें प्राण छोडने के लिये, (२५) पुण्यतीर्थ में स्नान के लिये, नित्य-नैमित्तिक कर्मों के लिये, वर्णाश्रम व्यवस्था के अति-क्रमण की भीति के लिये, अपने कर्मों के लिये, (२६) शास्त्रमर्य्यादा-लंघन के भय से तथा और भी ऐसे आपसे आज्ञप्त कार्य्यों के लिये, (२७) जिन्हें लोग अपने पतन के भय से सपरिश्रम करते हैं, कोई परिश्रम नहीं करेगा। क्योंकि आपकी आज्ञा से स्वर्ग और मोक्ष तो उनके हाथ में आ जायँगे। (२८) काशी के केदार क्षेत्र के

१ ग. मुल्लङ्घ्य। २ ग. स्वस्योद्धाराय।

लिङ्गदर्शनमात्रेण काश्यां केदारभूतले ।
पापाद्भीतिर्गता भूमौ कर्मभूरिति नाम च ॥२९॥
द्रष्टव्या भवता लीला सृष्टिस्थितिलयात्मिका ।
तस्मात्त्वया वारिताऽत्र कालभैरवयातना ॥३०॥
सैवाऽलं लोकमुद्धर्त्तुं केदारान्तर्गृहस्थितौ ।
मृतानामत्र जीवानामपुनर्भवमञ्जसा ॥३१॥
काश्यां पापकृतः के ते भैरवीं यातनां विना ।
गच्छन्ति वद ते धाम न केऽपि भवदाज्ञया ॥३२॥
यदि देयो वरो भूयो भुक्त्यै तुष्ट्यै प्रभो! त्वया ।
दिश ब्रह्मादिविष्णूनां लोकान् कल्पार्बुदावधि ॥३३॥
पुनरावृत्तिरहितं तव धाम दिशेर्यदि ।
भोगानपि यथाकामं भुक्त्वा तत्रैव मोक्षिणः ॥३४॥
एतादृशे ह्यनायासानन्दे कस्य रुचिर्नहि ।
[1]प्रपञ्चनाम्नी लीला ते लयं याति क्षणाद् ध्रुवम् ॥३५॥

लिङ्ग दर्शन से ही पृथ्वी में पाप का भय जाता रहेगा और कर्म-भूमि नाम भी चला जायगा। (२९) आपको सृष्टि, स्थिति और लय की लीला देखनी है, इसलिये आपने यहाँ कालभैरव-यातना बन्द कर दी है। (३०) लोक के उद्धार के लिये इतना ही बहुत है कि केदार के अन्तर्गृह क्षेत्र में मरे हुए प्राणियों की सीधे मुक्ति हो। (३१) ऐसे पापी काशी में कौन हैं? जो विना भैरवी यातना भोगे आपके धाम को जा सकते हैं? आपकी आज्ञा से कोई भी नहीं जा सकता। (३२) हे प्रभो! यदि भोग और तुष्टि के लिये आपको वर देना ही है, तो ब्रह्म-लोक, विष्णुलोक में अर्बुद (अरब) कल्प तक वास के लिये वर दीजिये। (३३) यदि आवागमन रहित अपना धाम दीजियेगा, जहाँ कि इच्छा-नुसार भोगों को भोगकर के वहीं मुक्त भी हो जायंगे, (३४) तो कहिये

१ ख. प्रवञ्चनाम्ना।

स्वतन्त्रस्त्वमनेकाण्डसृष्टिस्थितिलये प्रभुः ।
वयं के पामरा वक्तुं [1]सर्वज्ञ ! त्वां परात्परम् ॥३६॥
क्षमस्वागः प्रभोऽस्माकं त्वदग्रेऽधिकभाषणात् ।
इत्युक्त्वा प्राणमन् देवाः प्रभुं केदारभूतले ॥३७॥
तदा प्रसन्नो भगवान् भक्तमाह दयार्द्रधीः ।
मान्धातः! शृणु मद्भक्त ! युक्तं दास्यामि ते वरम् ॥३८॥
दर्शनक्षणमुक्तिश्च न देया कारणान्तरात् ।
तथापि मुक्तिं दास्यामि दर्शनान्ते युगत्रये ॥३९॥
चतुर्युगेष्वपि वरस्तथा दातुं न शक्यते ।
युगत्रयेष्वपि जना [2]धर्मिष्ठास्तारतम्यतः ॥४०॥
कलौ तु धर्मिणो लोकाः स्वल्पाः पापाधिकास्तराम् ।
मल्लिङ्गदर्शनात् सर्वे यान्ति चेद्धाम अञ्जसा ॥४१॥

ऐसे विना परिश्रम के आनन्द के लिये किसकी रूचि न होगी ? और आपकी प्रपञ्च नामवाली लीला का निश्चय क्षण भर में लय हो जायगा। (३५) आप अनेक ब्रह्माण्डों की सृष्टि, स्थिति और लय में स्वतन्त्र प्रभु हैं। आप परात्पर सर्वज्ञ हैं। हम लोग पामर हैं, आपसे कुछ कहने के योग्य नहीं हैं। (३६) आपके सामने जो अधिक बोल गये, इस अपराध को क्षमा कीजिये। यह कहकर देवताओं ने केदारक्षेत्र में प्रभु को प्रणाम किया। (३७) तब दयालु भगवान् ने प्रसन्न होकर भक्त से कहा—हे मान्धाता ! तू मेरा भक्त है, सुन, मैं तुझे उचित वर देता हूँ। (३८) दर्शन करते ही मुक्त होने का वर कारणान्तर से देने योग्य नहीं है, तथापि तीनों युगों में दर्शन करने के पश्चात् मुक्ति दूँगा। (३९) परन्तु चारों युगों के लिये ऐसा वर नहीं दे सकता। तीनों युगों में मनुष्य तारतम्य से धर्मात्मा होते हैं, (४०) लेकिन कलियुग में धर्मात्मा कम हैं, पापी ही अधिक हैं। यदि मेरे लिङ्गदर्शन से सीधे

१ ग. सर्वज्ञं । २ ग. मन्निष्ठाः ।

कर्मशेषलयाल्लोकसृष्टिलोपो भवेद्ध्रुवम् ।
तस्माद् वक्ष्यामि सत्यं ते काश्यां मल्लिङ्गदर्शनात् ॥४२॥
देशान्तरमृतस्यापि मुक्तिर्भवतु नान्यथा ।
एवं मम रहस्योक्तौ यस्यास्ति दृढनिश्चयः ॥४३॥
तस्यैव पुनरावृत्तिर्भोगमोक्षौ करस्थितौ ।
नेतरस्य शृणु मुने! मृतस्यात्र तु नान्यथा ॥४४॥
इत्युक्त्वा भगवान् शम्भुर्मान्धातारं स्थितं पुरः ।
दर्शनक्षणमुक्तिं तु निवार्य्यान्यं वरं ददौ ॥४५॥
शृणु भक्ताऽत्र मे लिङ्गरूपं युगचतुष्टये ।
मुद्गदाल्यात्मकं लिङ्गं नवरत्नमयं कृते ॥४६॥
त्रेतायां शातकुम्भं स्यात् द्वापरे राजतं भवेत् ।
कलौ शिलामयं लिङ्गं भविष्यति शुभप्रदम् ॥४७॥

मेरे धाम को चले जायँ, (४१) तो कर्मशेष के लय से निश्चय लोक-सृष्टि का नाश हो जायगा, इसलिये मैं सत्य कहता हूँ कि काशी में मेरे लिङ्ग के दर्शन के (४२) बाद यदि देशान्तर में भी मरे तो भी मुक्ति हो, अन्यथा न हो। इस भाँति मुझसे कथित रहस्य में जिसका दृढ़ निश्चय हो जाय, (४३) उसी के आवागमन की निवृत्ति हो। भोग और मोक्ष दोनों उसी के करतल गत हों और दूसरे के नहीं। हे मुने! सुनो, यहाँ पर शरीर छोड़नेवालों के लिये अन्यथा न हो। (४४) भगवान् शम्भु ने ऐसा कहकर सामने खड़े हुए मान्धाता को दर्शन करते ही मुक्ति होने के वर को छोड़कर दूसरा वर दिया। (४५) और कहा कि हे भक्त! सुनो चारों युगों में मेरे चार रूप होंगे। यह जो मूँग और चावल की खिचडी का लिङ्ग है, वह सत्ययुग में नवरत्नमय रहेगा, (४६) त्रेता में सोने का हो जायगा, द्वापर में चाँदी का रहेगा, और कलियुग में शिलामय होकर शुभप्रद होगा। (४७) तुमने अतिथि के भाग की कल्पना करके जो रेखा कर दी है, उन दोनों भागों का बना हुआ

त्वयाऽतिथ्यायार्धभागकृतया[1] रेखया युतम् ।
भागद्वयात्मकं लिङ्गं सत्यं हरिहरात्मकम् ॥४८॥
शिवशक्त्यात्मकमपि नात्र कार्या विचारणा ।
भागमन्नेन पूर्णत्वादन्नपूर्णाऽत्र तिष्ठतु[2] ॥४९॥
[3]अन्नपूर्णात्मकं लिङ्गं मद्भागेन सुसंयुतम् ।
तस्मादत्रान्नपूर्णा हि केदारे मयि तिष्ठति ॥५०॥
अन्नपूर्णांशसहितं मल्लिङ्गं यस्तु सेवते ।
तस्यान्नपूर्णा सततं गृहमाश्रित्य तिष्ठति ॥५१॥
बहवः प्राणिनस्तस्य[4] जीवन्त्यन्नप्रदानतः ।
यस्यान्नपूर्णा स्ववशा तस्य किं नाम दुर्लभम् ॥५२॥
मत्प्रसादादन्नपूर्णायाः प्रसादप्रभावतः ।
ऐहिकामुष्मिकं तस्य करस्थं मुक्तिरन्ततः ॥५३॥
मदग्रतीर्थमार्गेण पातालान्नागकन्यकाः ।
षष्टिसाहस्रसंख्याका नित्यमागत्य संघशः ॥५४॥

लिङ्ग हरिहरात्मक (४८) और शिव शक्त्यात्मक होगा इसमें विचार नहीं करना चाहिये। अन्न से पूर्ण भाग होने से इसमें अन्नपूर्णा रहेंगी। (४९) अन्नपूर्णात्मक लिङ्ग मेरे भाग से संयुक्त हो गया है, इसलिये अन्नपूर्णा मुझ केदार में ठहरी हुई हैं। (५०) जो अन्नपूर्णासहित मेरे लिङ्ग की सेवा करेगा, उसके घर में सदा अन्नपूर्णा का निवास होगा। (५१) बहुत से प्राणियों का उसके अन्न से पोषण होगा। जिसके वश में अन्नपूर्णा है, उसको क्या दुर्लभ है ? (५२) मेरे प्रसाद तथा अन्नपूर्णा के प्रसाद से उसके यह लोक और परलोक हस्तगत हो जाते हैं, और अन्त में वह मोक्ष पाता है। (५३) मेरे सामने के तीर्थ द्वारा पाताल से साठ हजार नाग-कन्यायें यूथ बाँधकर नित्य आती हैं। (५४)

१ क. ··· कृपया। २ ग. तिष्ठति। ३ ग. पुस्तके—"अन्नपूर्णात्मकम् ···" श्लोकोऽयं नास्ति। ४ ग. तस्याः।

सम्पूज्य मां पुनर्यान्ति स्वस्वाभीष्टं लभन्ति च ।
स्वर्गस्थाश्चाप्सरा(१) नित्यं स्वाभीष्टफलसिद्धये ॥५५॥
नित्यं मां पूज्य गच्छन्ति देवैः साकं सयोषितैः (१) ।
तस्मात् केदारलिङ्गं मे काश्यां सवार्थसिद्धिदम् ॥५६॥
तल्लिङ्गं दर्शनस्पर्शपूजनाच्च[1] त्रिवर्गदम् ।
गोपीनीयं प्रयत्नेन रहस्यं काशिभूतले ॥५७॥
यथाहं विश्वनाथोऽत्र केदारेशस्ततोऽधिकः ।
यथा मे मणिकर्ण्यत्र प्राचीनाऽपि ततोऽधिका ॥५८॥
दण्डपाणिर्वसन्त्यत्र ढुण्ढिमाधवभैरवैः ।
मृतानामन्त्यभूषायै कृत्वा मामिव तत्क्षणम् ॥५९॥
मत्तारकोपदेशेन मुक्तान् कुर्वन्तु प्राणिनः ।
न यातना भैरवस्य मृतानां परितोऽत्र मे ॥६०॥

और मेरी पूजाकर चली जाती हैं। इससे उनके अभीष्ट की प्राप्ति होती है। स्वर्ग की अप्सराएं अपने अभीष्ट की सिद्धि के लिये नित्य देवताओं और देवियों के साथ आकर मेरी पूजा करके चली जाती हैं। इस लिये काशी में मेरा केदारलिङ्ग सम्पूर्ण कामनाओं को देनेवाला है। (५६) उस लिङ्ग के दर्शन, स्पर्श और पूजन से त्रिवर्ग की प्राप्ति होती है। काशी भूतल का यह रहस्य प्रयत्नपूर्वक गोपनीय है। (५७) मैं जिस भाँति विश्वनाथ में हूँ, उससे बढ़ कर केदार में हूँ। जैसी मेरी मणिकर्णिका यहाँ है, उससे बढ़कर यहाँ की प्राचीना मणिकर्णिका है। (५८) यहाँ ढुण्ढिराज, माधव, और भैरव के साथ दण्डपाणि रहते हैं। यहाँ मरनेवालों की अन्तकाल में शोभा बढ़ाकर उन्हें मेरे ऐसा बना देते हैं (५९) और मेरे तारक के उपदेश से प्राणियों को मुक्तकर देते हैं। मेरे चारों ओर की भूमि में मरनेवालों को भैरवी यातना नहीं होती। (६०) अपने भक्त मान्धाता से ऐसा कहकर कृपा के समुद्र

१ ग.……पूजनं च ।

इत्युक्त्वा[1] निजभक्तं तं मान्धातारं कृपानिधिः ।
गच्छ त्वं धाम मेत्युक्त्वा † तस्मिंल्लिङ्गे तिरोदधे ॥६१॥
देवाः सर्वे ऋषिं स्तुत्वा याता लोकान् यथायथम् ।
मान्धाताऽपि तदा देहं तत्क्षणं पार्थिवं त्यजन् ॥६२॥
यानमारुह्य गणपैः समानीतं[2] शिवाज्ञया ।
नत्वा काशीं विश्वनाथं केदारेशं च भैरवम् ॥६३॥
दण्डपाणिं ढुण्ढिराजं माधवं चान्यदेवताः ।
मणिकर्णीद्वयमपि साष्टाङ्गं प्रणिपत्य च ॥६४॥
काशीतपःप्रभावं संप्रशस्य च पुनः पुनः ।
पार्थिवं देहमुत्सृज्य शिवसारूप्यभाग् भवन्[3] ॥६५॥

शिवजी ने आज्ञा दी कि तू मेरे धाम को प्राप्त हो और स्वयम् उसी लिङ्ग में समा गये। (६१) सब देवता लोग भी ऋषिजी की स्तुति करके अपने-अपने लोकों को चले गये। मान्धाता ने भी उसी समय अपना पाञ्चभौतिक शरीर त्याग दिया। (६२) गणराजों ने उन्हें विमान पर चढ़ाया और शिव की आज्ञा से ले गये। उन्होंने काशीविश्वनाथ, केदारनाथ, भैरव, दण्डपाणि, ढुण्ढिराज, माधव तथा अन्य देवताओं को, और दोनों मणिकर्णिकाओं को भी साष्टाङ्ग प्रणाम किया। (६४) काशी में किये गये तप के प्रभाव की बारबार प्रशंसा करते हुए पाञ्चभौतिक शरीर को छोड़कर शिव सारूप्य को प्राप्त हुए। (६५) काशी की प्रदक्षिणा करके विमान द्वारा आकाश में गये। तत्पश्चात् हिमाचल

१ ग. पुस्तके इतः पूर्वम्—
" सोमव्रतं प्रतिसोमं मम प्रीतिकरं परम् ।
असक्तैः श्रावणे कार्यं शुक्लपक्षे विशेषतः ॥
तदभावे एकदापि कर्त्तव्यं मुक्तिकाङ्क्षिभिः ।" इत्यधिकमस्ति ।
† सन्धिरार्षः । २ ग. समानीय । ३ क. शिवसारूप्यमागमत, ग. शिवसायुज्यसादभूत ।

पञ्चक्रोशं परिक्रम्य विमानेन ययौ दिवि।
श्रीमत्केदारनाथाग्रे गत्वाऽसौ[1] हिमवद्गिरौ ॥६६॥
नत्वा प्रार्थयदीशानं वासायांशेन तत्पुरः।
तदाहाऽऽकाशवाणी तं मान्धातः! शृणु मत्प्रिय!॥६७॥
वसांशेनाऽत्र मे भूमौ सेवयन् मामहर्निशम्।
शेषांशैर्गच्छ मद्धाम शाश्वतं भोगमोक्षदम् ॥६८॥
तदाप्रभृति मान्धाता केदारेऽद्यापि वर्तते।
अंशेन सेवयन् देवं कीर्तिदेहेन सर्वतः ॥६९॥
शेषांशैः शिवसायुज्यं वामदेव! ययौ कृती।
तदाप्रभृति केदारे काश्यां तल्लिङ्गदर्शनम् ॥७०॥
तत्पूर्वं गुप्तलिङ्गं तत्कालपाकात् कदाचन।
प्रसादाद् यस्य कस्यापि भवेद्वाथ[2] न वा भवेत् ॥७१॥
जनानां पुण्यपाकेन प्रकाश्याऽऽस्ते परात्परः।
शिवकेदारनाथेति सकृद्वा द्वि त्रि वा वदेत् ॥७२॥

में केदारनाथ के सामने गये (६६) और नमस्कार करके एक अंश से उनके सामने रहना चाहा। तब आकाशवाणी हुई कि हे मान्धाता! सुन, तू मेरा प्रिय है। (६७) तू एक अंश से यहाँ बसकर रात दिन मेरी सेवा कर और शेष अंश से मेरे नित्य धाम, जो भोग और मोक्ष—दोनों देता है, को जा। (६८) तब से लेकर आज तक मान्धाता केदार में वर्तमान हैं। एक अंश से कीर्तिदेह के द्वारा देवदेव की सेवा सब जगह किया करते हैं। (६९) हे वामदेव! वह पुण्यात्मा शेष अंशों से शिवजी के सायुज्य को प्राप्त हुआ। तब से काशीकेदारक्षेत्र में उस लिङ्ग का दर्शन होता है। (७०) इसके पहिले वह लिङ्ग गुप्त था, कभी किसी को शिवजी की कृपा से समय पाकर दर्शन हो जाता था, और किसी को नहीं भी होता था। (७१) भक्तों के पुण्य पाक से

१ ग. गत्वा स। २ ग. वाद्य।

यः कश्चित् सकलाघौघं भस्मीकृत्य व्रजेच्छिवम् ।
एवं मान्धातृवरदः काश्यां केदारनायकः ॥७३॥
लोकोद्धाराय दयया तीर्थैः सह विराजते ।
वामदेव ! मया ज्ञातं प्रसादादेतदीशितुः[1] ॥७४॥
रहस्यमतिगोप्यं च शिवभक्त्यैकसारवत् ।
ॐकारादीनि लिङ्गानि काश्यां सन्ति बहून्यपि ॥७५॥
तथापि केदारनाथमहिमात्यद्भुतो द्विज ! ।
तीर्थस्यापि तथात्यन्तमहिमात्यद्भुतो मुने ! ॥७६॥
न जानन्ति जना लोके रहस्यं तच्छिवाज्ञया ।
येषु देवानुग्रहोऽस्ति त एवैतत् समाविदन् ॥७७॥
श्रीमत्केदारनाथस्य सेवा प्राप्ता च यैर्भुवि ।
पत्रपुष्पफलोदादिधूपदीपनिवेदनैः ॥७८॥

परात्पर शिवजी प्रकट होकर ठहरे हुए हैं । 'शिव केदारनाथ' यह शब्द जो कोई एक वार, दो बार या तीन बार कहता है । (७२) सब पापों को भस्म करके कल्याण को प्राप्त होता है । इस प्रकार से मान्धाता के वर देनेवाले केदारजी (७३) काशी में दया करके तीर्थ के साथ विराजमान हैं । हे वामदेव जी ! मैंने ये सब बातें शिवजी की कृपा से जान पाई (७४) और शिवभक्तिसार का रहस्य भी इसी भाँति जाना । काशी में ओंकारादि बहुत से लिङ्ग हैं । (७५) फिर भी हे द्विज ! केदारनाथ की महिमा अति अद्भुत है । हे मुनिजी ! तीर्थ की महिमा भी अत्यन्त और अति अद्भुत है । (७६) शिव की आज्ञा से इस रहस्य को लोग नहीं जानते । जिनपर देव का अनुग्रह होता है, वे ही इसको जान पाते हैं । (७७) श्रीमत्केदारनाथ की सेवा करने का सुअवसर पृथ्वी में जिसे मिल जाता है और जो एक बार भी पत्र, पुष्प, फल, जल, धूप, दीप और नैवेद्य से पूजन कर पाता है, (७८)

१ ख. प्रसादादेव चेशितुः ।

सकृदप्याजन्ममध्ये तेषां जन्मभयं गतम् ।
तैरेवोद्घाटिता भूमौ मुक्तिद्वारकपाटिका ॥७९॥
[1]किं पुनस्तद्रहस्यज्ञो जानन् सेवेत[2] शङ्करम् ।
[3]तस्य हस्तगतः शम्भुर्भोगमोक्षौ च हि ध्रुवम् ॥८०॥
काशी सर्वाऽपि विश्वेशरूपिणी नाऽत्र संशयः ।
मणिकर्णी [4]सर्वपापहन्त्री नास्त्यत्र संशयः ॥८१॥
विश्वेशादीनि लिङ्गानि तारकाणि न संशयः ।
ज्ञानवाप्यादितीर्थानि पावनानि न संशयः ॥८२॥
ॐकारादीनि लिङ्गानि मुक्तिदानि न संशयः ।
योगिनीनां चतुःषष्टिरिष्टदा नाऽत्र संशयः ॥८३॥
षट्पंचशद्गणेशाश्च सिद्धिदा नाऽत्र संशयः ।
द्वादशादित्यसंघोऽपि पापघ्नो नाऽत्र संशयः ॥८४॥

उसे जन्म मरण का भय नहीं रह जाता । उन्हीं लोगों ने इस पृथ्वी पर मुक्ति के द्वार का किवाड़ खोल पाया है । (७९) फिर उनके रहस्यज्ञों का कहना ही क्या ? जिन्होंने जान बूझकर शङ्कर की सेवा की है । शङ्कर तो उनके हाथ में हैं, उनके लिए भोग और मोक्ष दोनों ध्रुव है । (८०) सम्पूर्ण काशी विश्वेश्वर रूप है—इस में सन्देह नहीं है । मणिकर्णिका सब पापों का नाश करने वाली है—इसमें भी संशय नहीं है । (८१) विश्वेश्वरादि लिङ्गों के तारक होने में भी कोई सन्देह नहीं है । ज्ञान-वापी आदि तीर्थों के पवित्र होने में भी सन्देह नहीं है । (८२) ओंकारादि लिङ्ग भी निस्सन्देह मुक्ति देनेवाले हैं । यहाँ चौसठ योगिनियाँ कामना पूरी करती हैं—इसमें भी सन्देह नहीं है । (८३) यहाँ पर छप्पन विनायक सिद्धि देनेवाले हैं— इसमें भी सन्देह नहीं है । बारहों आदित्य भी निस्सन्देह पाप हरण करनेवाले हैं । (८४) कार्त्तिक

१ ग. पुनस्तद्रहस्यज्ञा ज्ञात्वा । २ ख. ग. सेवन्ति । ३ ख. तेषां । ४ ग. सर्वपापं हन्ति ।

पंचनद्यः कार्तिकेऽपि सर्वपापहरा ध्रुवम् ।
पंचतीर्थमपि श्रीमद्वैशाखे सर्वपापहम् ॥८५॥
माघे श्रीशूलटङ्काग्रे गङ्गा सर्वाघहारिणी ।
काश्यामन्नप्रदानादिदानान्यघहराणि[1] वै ॥८६॥
पूजा सर्वेषु लिङ्गेषु तीर्थेषु कलुषापहा ।
पञ्चक्रोशमहायात्रा सर्वपापहरा ध्रुवम् ॥८७॥
दण्डधृग् माधवो ढुण्ढिभैरवाद्याखिलाघहाः[2] ।
विष्णुभेदाः पञ्चशतं मूर्त्तयोऽप्यघनाशनाः ॥८८॥
दुर्गाद्येत्रप्रमुख्याश्च मूर्त्तयोऽप्यघनाशनाः ।
काशीस्थितानि लिङ्गानि तीर्थान्यपि च मूर्त्तयः ॥८९॥
सर्वपापहरा नेति[3] प्रवक्तुं केन शक्यते ।
प्रमाणं तत्र विश्वेशः शास्त्राणि च न संशयः ॥९०॥

में पञ्चगङ्गा निश्चय करके सब पाप नष्ट करती हैं, और वैशाख में पञ्चतीर्थी से सब पाप नष्ट होते हैं। (८५) माघ में श्रीशूलटङ्क के सामने गङ्गा सब पापों को हरती हैं। काशी में अन्नदान से भी पाप नष्ट होता है। (८६) सब लिङ्गों और तीर्थों की पूजा से पाप नष्ट होते हैं। पञ्चक्रोश-महायात्रा निश्चय सब पापों को नष्ट कर देती है। (८७) दण्डपाणि, माधव, ढुण्ढिराज, भैरव आदि सम्पूर्ण पापों का संहार करते हैं। विष्णु की पाँच सौ मूर्तियाँ पापनाशिनी हैं। दुर्गाद्येत्रादि की मूर्तियाँ पापनाशिनी हैं। काशी में स्थित जितने लिङ्ग हैं, जितने तीर्थ हैं और जितनी मूर्तियाँ हैं, (८९) वे सब पापों को हरनेवाली हैं, इनका वर्णन कौन कर सकता है? इसमें विश्वनाथ और शास्त्र प्रमाण हैं। संशय का कोई अवसर नहीं है। (९०) यहाँ पर गङ्गा, मणिकर्णिका तथा अन्य श्रेष्ठ देवतागण विराजमान हैं। तथापि विश्वनाथ का विलास

१ ग. ··· सर्वपापहराणि। २ ग.··· श्च पापहाः। ३ ग. ते हि।

गङ्गा च मणिकर्णी च [1]तथाऽन्ये देवतोत्तमाः ।
तथापि विश्वनाथस्य विलासोऽनेकरूपकः[2] ॥९१॥
ॐकारादिभिदा[3] लिङ्गरूपी भूत्वा पृथक् पृथक् ।
द्विचत्वारिंशता स्वात्मभेदेन विविधाकृतिः ॥९२॥
तत्र तत्रानेकचित्रविचित्रमहिमायुतः[4] ।
काश्यां विलासबाहुल्यमनुभुङ्क्तेऽम्बया युतः ॥९३॥
क्वचिद् भक्तसमुद्धारः क्वचिदैश्वर्यदप्रभुः ।
क्वचिद् विष्णोः सर्वलोकप्रभुत्वे वरदायकः ॥९४॥
क्वचिद् ब्रह्मतपस्तुष्ट्या[5] ब्रह्मणे वरदायकः ।
क्वचिदिन्द्रस्य वरदः क्वचिदग्नेर्वरप्रदः ॥९५॥
क्वचिच्च निर्ऋतेस्तुष्टः क्वचित्पाशीवरप्रदः ।
क्वचिद् वायोश्च वरदः क्वचिद्वैश्रवणेष्टदः ॥९६॥
क्वचिदीशानवरदः क्वचिच्चन्द्रवरप्रदः ।
क्वचित् सूर्यस्य वरदः क्वचिन्नक्षत्रसन्ततेः ॥९७॥

अनेकरूप है। (९१) ओंकारादि नामों के भेद से पृथक् पृथक् लिङ्ग रूप होकर, स्वयम् अपने बयालीस भेद करके उन्होंने अनेक प्रकार की आकृति धारण कर रक्खी है। (९२) प्रत्येक स्थान में उनकी चित्र विचित्र महिमा है। काशी में महिमा से युक्त होकर शिवजी विलास बाहुल्य का आस्वादन करते हैं। (९३) कहीं तो भक्त का उद्धार करते हैं, कहीं ऐश्वर्य्य देते है, कहीं विष्णु को सब लोकों के प्रभुत्व का वर मिल रहा है। (९४) कहीं तप से सन्तुष्ट होकर ब्रह्मदेव को वरदान देते हैं, कहीं इन्द्र को वर देते हैं, कहीं अग्नि को बर देते हैं, (९५) कहीं राक्षसों से सन्तुष्ट हैं, कहीं वरुण को वरदान मिल रहा है। कहीं वायु को वरदान दे रहे हैं। कहीं कुवेर को अभीष्ट देते हैं। (९६) कभी इशान

१ ग. तथान्यदवतात्तमाः। २ ग. ...रूपतः। ३ ख. ओंकारादिभिधा। ४ ग. महिमान्वितः। ५ ग. तुष्ट्यै।

क्वचिद् ध्रुवस्य वरदः क्वचित् सप्तर्षिसंततेः ।
क्वचिद्ग्रहाणां वरदः क्वचिदष्टदिशेशकान्[1] ॥९८॥
क्वचित् तक्षककर्कोटमुख्यनागवरप्रदः ।
क्वचिच्छ्रीमदनन्तस्य वरदः शेषरूपिणः ॥९९॥
क्वचिद् वसिष्ठदुर्वासोविश्वामित्रादिभूसुरान् ।
तथा दिवोदासहरिश्चन्द्रमुख्यान् नृपान् प्रति ॥१००॥
[2]तथान्यवर्णान् तद्भेदान् देवतिर्यङ्नरान् प्रति ।
देवनागमनुष्याणां स्त्रियोऽप्यप्सरसोऽपि च ॥१०१॥
नदीनां च वरव्याजाद्भिन्नभिन्नविलासतः ।
बहुरूपी विश्वनाथो काश्यां लिङ्गात्मनाऽभवत् ॥१०२॥
तत्र तत्र यदुक्तं तत् प्रमाणं शास्त्रसंमतम् ।
इति सकलमुनीन्द्रभाषितं तद्
हृदि विनिधाय मुदा स वामदेवः ।

को वर देते हैं, कहीं चन्द्रमा को वर देते हैं, कहीं सूर्य्य को वर देते हैं, कहीं नक्षत्र मण्डल को वर देते हैं, (९७) कहीं ध्रुव को बर देते हैं, कहीं सप्तर्षियों तथा ग्रहों को वर देते हैं, और कहीं आठो दिग्गजों को वर देते हैं। (९८) कहीं तक्षक, कर्कोटक आदि नागों को वर देते हैं और कहीं शेष रूपी श्रीअनन्त को वर देते हैं, (९९) कहीं वशिष्ठ, विश्वामित्र, दुर्वासा आदि ब्राह्मणों तथा दिवोदास, हरिश्चन्द्रादि राजाओं (१००) एवं दूसरे वर्ण और उनके भेदों को, देव, पशु तथा मनुष्यों को, देव, नाग और मनुष्यों की स्त्रियों तथा अप्सराओं को (१०१) तथा नदियों को वर देने के बहाने से भिन्न २ विलास द्वारा विश्वनाथ बहुरूपी होकर काशी में लिङ्ग रूप हो गये। (१०२) जिन स्थानों पर जैसा कहा गया है, वही शास्त्र सम्मत प्रमाण है। इस प्रकार से सकल मुनीन्द्रों से कहा गया जनतारक रहस्य को हृदय में धारण करके प्रसन्नता-

१ ख. ··· दिशेश्वरान्। २ ग. तथास्य।

पुनरपि च मुनिं स प्रष्टुमैच्छद्
विशदतया जनतारकं रहस्यम् ॥१०३॥

इति श्रीकाशीमूलरहस्ये ब्रह्मवैवर्त्ते खिले काशीकेदार-
माहात्म्ये एकविंशोऽध्यायः ॥२१॥

अथ द्वाविंशोऽध्यायः ।

ऋषय ऊचुः—

सूत ! सर्वज्ञ ! सद्बुद्धे ! वदास्माकं ततः परम् ।
किं वा प्रष्टुमनाश्चासीद् वामदेवो महामुनिः ॥ १ ॥
पृष्टः सनत्कुमारोऽपि रहस्यं वा किमाह तम् ।
तद्वदस्व महाबुद्धे ! येन यामः कृतार्थताम् ॥ २ ॥

पूर्वक वामदेवजी ने फिर भी सनत्कुमार जी से साफ़ साफ़ पूछना चाहा । (१०३)

यह ब्रह्मवैवर्त के खिलभाग काशीमूलरहस्यान्तर्गत केदार
माहात्म्य का इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

दोहा—वामदेव मुनि तें कह्यो, मुनिवर सनतकुमार ।
प्रबल पाप नाशन परम, महातम श्रीकेदार ॥
पूजन दर्शन पर्शन, आदि अनेक प्रकार ।
कर्मन के ते विविध फल, जे भेदहिं भवभार ॥
लिङ्ग नाम तिनि बहु भने, जे थापित चहुँ ओर ।
जिन्ह शुभ दर्शन तें तुरत, पाप नशें घनघोर ॥

ऋषि लोग बोले—हे सर्वज्ञ सद्बुद्धि सूतजी ! हम लोगों से कहिये कि महामुनि वामदेवजी को क्या पूछने की इच्छा थी ! (१) और पूछे जाने पर सनत्कुमारजी ने उन्हें कौन रहस्य बतलाया ? हे महाबुद्धे ! वह सब हम लोगों को बतलाइये, जिसमें हम लोग कृतार्थ हो जायँ । (२)

सूत उवाच—

शृणुध्वं मनुयः ! सर्वे कुमारमुनिसत्तमः[1] ।
वामदेवं पुनः प्राह प्रष्टुमिच्छन्तमादरात् ॥ ३ ॥
वामदेव ! शृणु मुने ! शृणु तत्त्वार्थवित्तम ।
त्वमेव हृदि जानीयाः पापेषु प्रवरं हि किम् ॥ ४ ॥
पुनरुत्ताररहितं तज्ज्ञात्वा वद सत्यतः ।
तदा प्राह महायोगी विचार्य बहुधा चिरम् ॥ ५ ॥
सनत्कुमारयोगीन्द्रं परिशोध्याऽघसन्ततिम् ।
भगवन् ! मम चित्ते वै भात्येवं तद्वदे शृणु ॥ ६ ॥
शिवागसः परं लोके किंचिन्नैवाधिकं त्विति ।
केनापि तस्य पापस्य निष्कृतिः पुण्यकोटिभिः ॥ ७ ॥
न पश्यामि मुनिश्रेष्ठ ! प्रायश्चित्तायुतैरपि ।
तस्माच्छिवापराधाच्च नान्यद्गुरुतरं ध्रुवम् ॥ ८ ॥

सूत जी बोले—हे मुनि बृन्द ! आप लोग सुनें। मुनियों में सर्वश्रेष्ठ सनत्कुमारजी, जिस बात को पूछने की उनकी इच्छा थी, उसे जानकर वामदेव जी से बोले—(३) हे तत्त्वार्थ को जाननेवाले वामदेव जी ! सुनिये। हृदय में आप भी इस बात को जानते हैं कि सब पापों में बड़ा कौन पाप है ? (४) जिसका कोई प्रतीकार नहीं है। उसी को समझकर मुझे ठीक ठीक बतलाइये। तब महायोगी बार बार बहुत कुछ विचारकर, (५) जितने पाप रहैं उन सब का ख्यालकर सनत्कुमार योगीन्द्र से बोले—हे भगवन् ! जो बात मेरे मन में आती है, उसे कहता हूँ, सुनिये; (६) शिवापराध से बढ़कर इस लोक में कोई पाप नहीं है, करोड़ों पुण्य करने से भी उससे छुटकारा (७) मुझे नहीं दिखलाई पड़ता। दश हजार प्रायश्चित से भी वह नहीं छूट सकता। इसलिये निश्चयपूर्वक शिवापराध से बढ़कर कोई भी पाप

१ ग. कुमारो मुनिसत्तमः ।

तादृशस्यापि पापस्य निष्कृतिर्भवतः श्रुता ।
अहो शम्भोर्दया लोके रहस्यमपि चादिशत् ॥ ६ ॥
इति ब्रुवन्तं तं प्राह वामदेवं महामुनिः ।
शृणु वक्ष्यामि ब्रह्मर्षे ! रहस्यं परमात्मनः ॥१०॥
कलौ पापयुगे लोकाः स्वल्पा वै पापभीरवः ।
अनृतादिमहापापान्यधिकृत्य[1] जिजीषवः ॥११॥
तेषां विचारो नास्त्येव योग्यायोग्येषु कर्मसु ।
युगत्रये तथा नास्ति धर्मलोपो जनेषु वै ॥१२॥
कलौ भविष्यन्ति जनाः शिश्नोदरपरायणाः ।
धर्मलिङ्गप्रतिच्छन्ना वहिरन्तस्तु कौटिलाः[2] ॥१३॥
विना शिवप्रसादेन त्वेषां वै सद्गतिः कुतः ।
शास्त्ररहस्यं सर्वत्र प्रमाणं पापनिष्कृतौ ॥१४॥

नहीं है (८) ऐसे पाप की भी निष्कृति आपके मुख से सुनी। लोक में शङ्कर की दया धन्य है, जिसने कि अपना रहस्य भी कह दिया। (९) ऐसा कहते हुए वामदेवजी से महामुनि ने कहा—हे ब्रह्मर्षे! मैं परमात्मा का रहस्य कहता हूँ, सुनिये, (१०) कलि पापयुग है, इसमें पाप से डरनेवाले लोग थोड़े ही हैं। जो लोग झूठ आदि महापापों का आचरण करके भी जीने की इच्छा करते हैं, (११) उन्हें उचित अनुचित कर्म करने का विचार ही नहीं है। शेष तीन युगों में ऐसा धर्म-लोप लोगों में नहीं था। (१२) कलियुग में लोग केवल इन्द्रिय और जिह्वा के सुख में निरत होंगे। ऊपर से धर्म का स्वांग रचे रहेंगे, किन्तु भीतर से उनमें कुटिलता रहेगी। (१३) शङ्कर के प्रसाद के विना उन लोगों की सद्गति कैसे हो? शास्त्र का रहस्य ही सब जगह पाप की निष्कृति में प्रमाण है। (१४) उसमें भी परमेश्वर का

१ ग. पुस्तकीयोऽयं पाठः, अ० पु०—"अनृतादिमहापापावधिकृत्वा" इति ।
२ ग. कुटिलाः ।

तत्राऽपि परमेशोक्तं शास्त्रं सर्वाघतारकम् ।
गङ्गा च मणिकर्णी च प्रमाणं द्वे इमे द्विज ! ॥१५॥
तथापि विश्वनाथेन निजे च निजभक्तके ।
काश्यां वाऽत्र कृताघानां नोक्ता कुत्रापि निष्कृतिः ॥१६॥
स एव सर्वशास्त्रस्य कर्त्ता नास्त्यत्र संशयः ।
स एव केदारनाथो भूत्वा सर्वदयापरः ॥१७॥
रहस्यमेतच्छ्रीगौर्य्यै निजाघहमुपादिशत् ।
इदं रहस्यं केनापि ज्ञातुं शक्यं न वै मुने ! ॥१८॥
एकः स एव जानाति तेनैव प्रकटीकृतम् ।
तस्मात् प्राचीनतीर्थेयं[1] मणिकर्णी शिवाघहृत् ॥१९॥
श्रीमत्केदारनाथोऽपि तथैव स्वैनसां हरः ।
तत्रापि स्वस्य परितो भूमौ चान्तर्गृहावधि ॥२०॥
निवारिता यातनाऽपि भैरवी काशिकावनौ ।
तस्मात्केदारमहिमा काश्यामत्यद्भुतो मुने ! ॥२१॥

कहा हुआ शास्त्र सब पापों से तारनेवाला है। हे ब्राह्मण ! गङ्गा और मणिकर्णिका ये दोनों भी प्रमाण हैं। (१५) तथापि विश्वनाथ ने काशी में अपने और अपने भक्तों के विषय में किये गये अपराधों की कहीं भी निष्कृति नहीं कही। (१६) वे ही सब शास्त्रों के कर्त्ता हैं इसमें भी सन्देह नहीं है। वे ही केदारनाथ होकर सब पर दया करते हैं। (१७) अपने अपराध का नाश करनेवाला यह रहस्य उन्होंने श्रीगौरीजी को बतलाया। हे मुने ! इस रहस्य को कोई जान भी नहीं सकता। (१८) केवल वही जानते हैं, उन्होंने ही इसे प्रकट किया है। इसलिये यह प्राचीना मणिकर्णिका शिवापराध को हरनेवाली है। (१९) श्रीमान् केदारनाथ भी अपने विषय में किये गये अपराधों को दूर करनेवाले हैं। और उसमें भी उन्होंने अपनी चारों ओर की अन्तर्गृह के भीतर की (२०) काशी

१ ग. प्राचीनतीर्थाख्या ।

श्रीमद्विश्वाधिनाथस्य कृपानेकविचित्रता ।
शिवे वा शिवभक्ते वा काश्यां वा दूषणं कृतम् ॥२२॥
तत्पापमुक्तिः केदारे गौरीतीर्थे भवेद् ध्रुवम् ।
सत्यं वच्मि न चेत् कल्पायुतैर्भोगेन[1] मुच्यते ॥२३॥
[2]एतद्रहस्यं देवेन देव्यै प्रकटितं मुने ! ।
एतज्ज्ञात्वा भक्तिपूर्वं मुच्यन्ते पामरा अपि ॥२४॥
तस्मात् केदारनाथस्य काश्यां सेवा सुदुर्लभा ।
चुलुकोदं[3] फलं पुष्पमपि यैः सुसमर्पितम् ॥२५॥
[4]तेषामनर्गला जाता मुक्तिद्वारकपाटिका ।
श्रीमत्केदारनिकटे दीप एकः समर्पितः ॥२६॥
ज्ञानदीपस्तस्य हृदि गुरुवाचा प्रकाशते ।
श्रीमत्केदारनाथाग्रे धूपसौगन्ध्यकृच्च यः ॥२७॥

की भूमि में भैरवी यातना भी बन्द कर रक्खी है। इसलिये हे मुने ! काशी में केदारजी की महिमा अति अद्भुत है। (२१) श्रीमान् विश्वनाथ की कृपा में बहुत सी विचित्रताएँ हैं। शिव वा शिवभक्त का अपराध, जो काशी में हो पड़ता है, (२२) केदार और गौरीतीर्थ में उस पाप से मुक्ति निश्चय होती है। मैं ठीक कहता हूँ, नहीं तो वह पाप दस हजार कल्प भोगने से भी नहीं मिटता। (२३) हे मुने ! इस रहस्य को देवदेव ने देवी से कहा था, इसे भक्तिपूर्वक जानकर पामर भी मुक्त होते हैं। (२४) इसलिये केदारनाथ की सेवा काशी में दुर्लभ है। एक चुल्लू पानी, फल, फूल भी जिसने चढ़ाये, (२५) उसके लिये मुक्ति के दरवाजे के किवाड़ खुल जाते हैं। श्रीमान् केदारजी के लिए जिसने एक दीप चढ़ाया, (२६) उसके हृदय में गुरु की वाणी से ज्ञानदीपक का प्रकाश होता है। जो श्रीमान् केदारनाथजी के सामने धूप जलाता है, (२७)

१ ग. भोगैर्न। २ ग. पुस्तके—"एतद्रहस्यम्" इति श्लोकार्द्धं नास्ति। ३ ग. चुल्लुकोदं पत्रपुष्पमपि। ४ ग. पुस्तकीयोऽयं पाठः,—आ० पु०—"तैरवानर्गला"।

वासनाकर्मबन्धश्च तस्य नश्यत्यनादिमान् ।
श्रीमत्केदारनाथस्य नैवेद्यं येन केन वा ॥२८॥
करोति भोज्यद्रव्येण स एव शिववेदिता ।
श्रीमत्केदारनाथस्य ताम्बूलं वा निवेदयेत् ॥२९॥
आमूलं तस्य दुष्कर्म मूलं पापं विनश्यति ।
श्रीमत्केदारनाथस्य मन्त्रपुष्पं समर्चति ॥३०॥
आमन्त्रितः स मोक्षाय शिवेन हि न संशयः ।
नीराजनविधिं श्रीमत्केदारे यः समाचरेत् ॥३१॥
नीराजितो मोक्षलक्ष्म्या स प्रेम्णा नाऽत्र संशयः ।
छत्रचामरराजोपचारादिभिरुमापतिम् ॥३२॥
यो रुद्रकन्यासंघानां सेवापात्रं स सेवते[1] ।
नृत्यगीतादिराजोपचारैः केदारमर्चति ॥३३॥
मोक्षलक्ष्मीनर्त्तनस्य स पात्रं नात्र संशयः ।
रुद्रैः महाभिषेकोक्तमन्त्रैः समभिषेक्ष्यति ॥३४॥

उसके अनादि कर्म की वासना का गन्ध भी नष्ट हो जाता है । श्रीमान् केदारनाथजी के सामने जो किसी प्रकार के भोग्य द्रव्य का नैवेद्य चढ़ाता है, (२८) वही शङ्कर को जाननेवाला है । जो श्रीकेदारनाथजी में पान चढाता है, (२९) उसके दुष्कर्म और मूलपाप जड़ से नष्ट हो जाते हैं । जो श्रीमत्केदारनाथजी में मन्त्र के साथ फूल चढ़ाता है, (३०) उसको शिवजी मोक्ष के लिये बुला लेते हैं—इसमें सन्देह नहीं है । जो श्रीकेदारजी की आरती करता है, मोक्षलक्ष्मी निस्सन्देह प्रेम से उसकी आरती करती है । जो छत्र, चामर आदि राजोपचार से शिवजी की सेवा करता है (३२) वह रुद्र कन्याओं के समूह का सेवापात्र बन जाता है । नृत्य, गीत आदि राजोपचार से जो केदार की पूजा करता है, (३३) उसके सामने मोक्षलक्ष्मी का नृत्य होता है—इसमें सन्देह

१ ग. पुस्तकीयोऽयं पाठः, आ० पु०—'सेवति' ।

मोक्षसाम्राज्यलक्ष्म्यै च सोऽभिषिक्तो न संशयः ।
यो महापूजया रात्रौ केदारेशं समर्चति ॥३५॥
स महद्भिः शिवगणैर्महापूज्यः शिवान्तिके ।
यः केदारालये खण्डस्फुटिताद्यकरोन्नवम् ॥३६॥
स चन्द्रखण्डमौलिः स्यादपरश्चन्द्रमौलिनः ।
योऽन्नं स्वल्पं जलं वात्र केदारे भिक्षवे दिशेत् ॥३७॥
सोऽनल्पशङ्करदयामृतसिन्धौ निमज्जति ।
बहुना वा किमुक्तेन वामदेव ! मुने ! शृणु ॥३८॥
[1]पत्रपुष्पफलतोयनिवेद्यधूपदीपमुखवासनकाद्यैः ।
चन्दनाक्षतफलादिविशेषैर्येन केन विधिनापि सकृद्वा ॥३९॥
पूजनं लभेदिह केदारेशलिङ्गवपुषो मनुजस्य ।
तेन चाप्तमपुनर्भवधाम शङ्करस्य नहि तत्र विवक्षा ॥४०॥

नहीं है। जो रुद्रमहाभिषेक के मन्त्रों से अभिषेक करता है, (३४) उसका अभिषेक मोक्ष-साम्राज्य की लक्ष्मी करती हैं—इसमें कोई सन्देह नहीं है। जो रात को केदारनाथ की महापूजा करता है, (३५) वह शिवजी का समीपवर्ती होकर महागणों से पूजित होता है। जो टूटे फूटे केदारमन्दिर की मरम्मत कराता है, (३६) उसके मस्तक पर द्वितीया के चन्द्रमा विराजमान होते हैं, वह दूसरा चन्द्रमौलि बन जाता है। जो थोड़ा सा अन्न या जल केदारजी में भिक्षुकों को देता है, (३७) वह शङ्करजी के बड़े भारी दयामृत समुद्र में निमग्न होता है। हे वामदेव मुने! सुनो, बहुत कहने से क्या? (३८) पत्र, पुष्प, फल, जल, नैवेद्य, धूप, दीप, मुखशुद्धि, चन्दन, अक्षत, फलादि से अथवा जिस किसी प्रकार से एक बार भी यदि कोई (३९) केदारनाथलिङ्ग का पूजन कर पावे, तो वह मनुष्य आवागमनरहित शङ्कर के धाम को प्राप्त होता है, इसमें बोलने की कोई जगह नहीं है। (४०) यह काशी-

१ ग. पत्रपुष्पफलनैवेद्यैर्धूपदीप ……… ।

छन्दःसारमयं महोपनिषदां सिद्धान्तसारामृतं
देवानामपि दुर्लभं त्रिजगतामुद्धारणे दीक्षितम् ।
स्वल्पेनापि च पूजनेन पुनरावृत्तिं विना मोक्षदं
श्रीकाशीनगरी विभूषणमिदं केदारलिङ्गं परम् ॥४१॥
विश्वेशस्त्रिपुरान्तकः पशुपतिः केदारलिङ्गात्मना
पाशांश्चैव पशो पतिस्त्रिविधया[1] संभिद्य बुध्याजनान्
उद्धर्तुं गुरुभावमेत्य जनतां संबोध्य चान्ते तराम्
स्वस्मिन् धामनि भूप्रदेशपरितः स तारकादेशकृत् ॥४२॥
श्रीकाशी च विमुक्तिदऽखिलजनाधारा हि मोक्षश्रियः
[2]सद्भूषा नितरां तथापि जनता श्रीभैरवाज्ञावशा[3] ।
कृत्याकृत्यविवेकशासनविधेर्मुक्तो हि कोऽत्र शृणु
श्रीकेदारमहीविसृष्टतनुका[4] नास्त्येव तच्छासनम् ॥४३॥

केदारलिङ्ग वेदसारमय है, महोपनिषदों का सिद्धान्तसार अमृतरूप है, देवों के लिये भी दुर्लभ है, तीनों जगत् के उद्धार के लिये मानो इसने व्रत धारण कररक्खा है, थोड़े से पूजन से भी आवागमनरहित मोक्ष प्रदान करता है और यह काशीपुरी का परम भूषण है। (४१) विश्वेश्वर, त्रिपुरान्तक, पशुपति केदारलिङ्ग के रूप से जनों के त्रिविध-पाश का भेदन करके ज्ञानद्वारा लोगों का उद्धार करने के लिये अपने अन्तर्गृह में अन्तकाल के समय उनको तारकोपदेश करते हैं, उनके गुरु होकर उपदेश करने से लोग उनके धाम को प्राप्त होते हैं। (४२) श्रीकाशी मुक्ति देनेवाली है, सब लोगों की आधार है, मोक्षलक्ष्मी की तो अद्भुत भूषण है, फिर भी वहां के लोग श्रीभैरव की आज्ञा के वशवर्ती हैं। उनके भले बुरे कर्म की विवेचना होती है, उनका शासन होता है। परन्तु इन बातों से परे वे लोग हैं, जिन्होंने अपना शरीर केदारक्षेत्र में

१ ख. त्रिविधय। २ क. सद्भूषावितरां। ३ ख. श्रीभैरवाज्ञा न का। ४ ग.…तनुके।

पापी वा सुकृती तु वा द्विजवरा राजन्यविट्शूद्रकाः
चान्ये वापि [1]विलोमपुल्कसमहाम्लेच्छाश्च चाण्डालकाः।
अन्ये स्वेदजरायुजाण्डजगणाश्चोद्भिज्जजाता अपि
श्रीकेदारमहीविसृष्टतनवो मोक्षं प्रयान्त्यञ्जसा ॥४४॥
भस्माक्ताखिलदेहिनश्च [2]निटिले भस्मत्रिपुण्ड्राङ्किताः
रुद्राक्षाभरणाश्च रुद्रजपिनः पञ्चाक्षरीजापकाः।
सेवन्ते शिवयोगिनः प्रतिदिनं ते प्राण्यदृग्गोचराः[3]
श्रीकेदारभुवि त्यजामतनुमित्याराधयन्साम्बिकम्[4] ॥४५॥
सत्यं ब्रुवे त्वं[5] शृणु वामदेव !
त्वमप्यहं त्वेष नृपश्च धन्याः।
लब्धात्मतत्त्वा गुरुणा यतो वयं
केदारनाथस्य कृपाकटाक्षात् ॥४६॥

त्याग किया है। उनका शासन नहीं होता। (४३) चाहे पापी हो, चाहे पुण्यात्मा, ब्राह्मण हो चाहे क्षत्रिय, वैश्य हो वा शूद्र, विलोम जाति के पुल्कस हों या चाण्डाल या महाम्लेच्छ हों, चाहे स्वेदज, जरायुज, अण्डज और उद्भिज भी क्यों हों, परन्तु श्रीकेदारक्षेत्र में शरीर त्याग करने से सीधे सीधे मोक्ष को प्राप्त होते हैं। (४४) सब देह में विभूति और मस्तक में त्रिपुंड्र धारण किये, रुद्राक्ष के आभूषण धारण किये, रुद्री का पाठ करनेवाले, पञ्चाक्षरी का जप करनेवाले और प्राणियों को दिखाई न पड़नेवाले शिवयोगी लोग अम्बिका के सहित अशरीरी शिवजी की उपासना करते हुए प्रतिदिन श्रीकेदारक्षेत्र में शरीर छोड़नेवाले लोगों की ही उपासना करते हैं। (४५) हे वामदेवजी ! मैं तुमसे ठीक कहता हूँ, तुम, मैं और यह राजा तीनों धन्य हैं, क्योंकि

१ ग. पुक्कस०। २ क. पुस्तकीयोऽयं पाठः, आ०पु०—"भटिले" इति, ग. निखिला, ख. विटले। ३ ग. प्राप्य दृग्गोचराः। ४ ग. त्यजामतनुमीत्याराधयन्तोम्बिकाम्। ५ ग. त्वां।

शिव ! केदार ! केदार ! केदारेशेत्ययंध्वनिः ।
मोक्षलक्ष्मीपुरद्वारकपाटोद्धाटनध्वनिः ॥४७॥
सत्यं ब्रवीमि सकलश्रुतिसारमेकं
काश्यां रहस्यमिदमात्मविदां सुगोप्यम् ।
शृण्वन्ति ये प्रतिदिनं शिवदत्तचित्ता-
स्ते यान्ति धाम शिवयोरपुनर्निवृत्तिम् ॥४८॥
केदारेशं समाराद्धुं यस्येच्छा जायते भुवि ।
स मुक्त एव नास्त्यत्र शृणु तद्वैभवं वदे ॥४९॥
आसनादिमहापूजा षोडशोक्तविधानतः ।
केदारेशाय वै यस्य प्रारब्धो मन्त्रसुध्वनिः ॥५०॥
स्वर्गलक्ष्मीमोक्षलक्ष्म्यौ तं वरीतुं परस्परम् ।
अहंपूर्विकयाऽऽश्लिष्टुं[1] जानीयात् कलहध्वनिम् ॥५१॥

हम लोगों ने श्रीकेदारनाथ के करुणाकटाक्ष से गुरुद्वारा आत्मतत्त्व प्राप्त किया है। (४६) शिव, केदार, केदार, केदारनाथ, ऐसी जो ध्वनि है, वह मोक्षलक्ष्मी के नगर के फाटक को खोलवानेवाली ध्वनि है। (४७) मैं सत्य कहता हूँ, यह सम्पूर्ण श्रुतियों का एकमात्र सार है, यह काशी का रहस्य है, आत्मज्ञानियों को इसे गुप्त रखना चाहिये। जो इसे शिवजी में चित्त लगाकर नित्य सुनेंगे, वे आवागमन रहित हर-पार्वती के धाम को प्राप्त होंगे। (४८) इस पृथ्वी में जिसे केदारेश्वर के आराधन की इच्छा उत्पन्न होती है, वह मुक्त ही है। मैं उसकी महिमा कहता हूँ, सुनो—(४९) षोडशोपचार से जो पूजा की जाती है, उसे महापूजा कहते हैं। सो केदारेश्वर को महापूजा में जो मन्त्रध्वनि हुई (५०) उस ध्वनि को स्वर्गलक्ष्मी और मोक्षलक्ष्मी की कलहध्वनि समझो, जो कि उसको वरने के लिये 'मैं पहिले वरूँगी' 'मैं पहिले वरूँगी' ऐसा कहने से होनेवाली है। (५१) पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय

[1] ग. पूर्विकयाश्लिष्टं ।

पाद्यार्घ्याचमनीयादिमधुपर्कमनुध्वनिः ।
स्वस्वलोकाक्रमभयाद् देवानां कलहध्वनिः ॥५२॥
यस्य पूजामध्यमन्त्रवक्ष्यमाणमनुध्वनिः ।
स स्वर्गमोक्षलक्ष्म्याश्च विवाहपटहध्वनिः ॥५३॥
अभिषेकार्थरुद्रादिमहामन्त्रोच्चरध्वनिः[1] ।
मोक्षसाम्राज्याभिषेके देवतादुन्दुभिध्वनिः ॥५४॥
वस्त्रभूषणमन्त्रोक्तध्वनिः केदारपूजने ।
गणैः सम्पूज्य देवाग्रप्रापणे डिण्डिमध्वनिः ॥५५॥
गन्धपुष्पोक्तमन्त्राणां ध्वनिः केदारपूजने ।
शिवप्रसादसाम्राज्यप्राप्तौ ढक्कामहाध्वनिः ॥५६॥
यस्य केदारपूजायां नामसाहस्रसुध्वनिः ।
स[2] सर्वलोकाक्रमणे पुण्याहोक्तानकध्वनिः ॥५७॥

और मधुपर्क के मन्त्रों की जो ध्वनि होती है, उसे अपने-अपने लोक में चढ़ाई होने के भय से देवताओं की कलहध्वनि समझो। (५२) जो पूजा के बीच में पढ़े जानेवाले मन्त्रों की ध्वनि होती है, उसे स्वर्ग-लक्ष्मी, मोक्षलक्ष्मी दोनों से विवाह होते समय के ढोल की ध्वनि समझो। (५३) अभिषेक के लिये रुद्रादि महामन्त्र के उच्चारण की जो ध्वनि होती है, उसे मोक्षराज्य पर अभिषेक के समय की देवताओं की दुन्दुभि की ध्वनि समझो। (५४) केदार के पूजन में जो वस्त्राभूषण-समर्पण के मन्त्रों की ध्वनि है, उसे गणों से पूजित होकर देवदेव के सामने लाये जानेवाली डुग्गी की ध्वनि समझना चाहिये। (५५) केदार के पूजन में गन्ध पुष्प चढ़ाने के मन्त्रों की ध्वनि को शिव के प्रसादरूपी साम्राज्य के पाने के समय की डमरूवाली महाध्वनि समझना चाहिये। (५६) जो केदारपूजा में शिवसहस्रनाम के पाठ की ध्वनि है, उसे सब लोकों पर चढ़ाई करने के लिए डंका की ध्वनि समझना

१ ख. ··· मन्त्रोक्तसुध्वनिः। २ ख. स सर्वलोकाक्रमे पुण्यसुखहोत्तानकध्वनिः।

यस्य केदारपूजायां धूपदीपमनुध्वनिः ।
[1]सर्वदेवाभिमुख्योत्थमाङ्गल्यमुरजध्वनिः ॥५८॥
यस्य केदारपूजायां नैवेद्योक्तमनुध्वनिः ।
मोक्षलक्ष्मीपरिणये [2]विलसत्काहलध्वनिः ॥५९॥
ताम्बूलफलमन्त्रोक्तध्वनिः केदारपूजने ।
सर्वदेवप्रदत्तोपहारकाल[3]नतिध्वनिः ॥६०॥
पूजने यस्य केदारे नीराजनमनुध्वनिः ।
मोक्षलक्ष्मीरहरहः[4] प्राप्तिभेरीमहाध्वनिः ॥६१॥
यस्य केदारसविधे पुराणपठनध्वनिः ।
वक्तृवाचयितृश्रोतृमोक्षलक्ष्म्याः पदध्वनिः[5] ॥६२॥

चाहिये । (५७) जिसके केदारपूजा में धूपदीप के मन्त्र की ध्वनि होती है, उसे सब देवों के सामने से उठी हुई मृदङ्ग की मङ्गल ध्वनि समझना चाहिये । (५८) जिसकी केदारपूजा में नैवेद्य के मन्त्र की ध्वनि होती है, उसे मोक्षलक्ष्मी के व्याहने के समय की ढोल की ध्वनि समझना चाहिये । (५९) ताम्बूल, पूगीफल के मन्त्र की ध्वनि जो केदारपूजन में होती है, उसे सब देवों के उपहार देने के समय की नमस्कार की ध्वनि जानना चाहिये । (६०) जिसके केदारपूजन में नीराजन मन्त्र की ध्वनि होती है, उसके लिये उसे मोक्षलक्ष्मी की सदा प्राप्ति की ध्वनि मानना चाहिये । (६१) केदारजी में जो पुराण पठन की ध्वनि उठे, उसे बाँचनवाले, बँचवानेवाले और सुननेवाले के पास मोक्ष-लक्ष्मी के आने में पैर रखने की ध्वनि समझना चाहिये । (६२) जिसकी केदार के निकट पुष्पाञ्जलि के मन्त्र की ध्वनि होती है,

१ ग. सर्वदेवाभिमोक्षोत्थ० । २ ग. विघ्नसत् । ३ ग. ० ताल ० । ४ ग. मोक्ष-लक्ष्मीस्त्वहरह । ५ इतः श्लोकात् परं ख. पुस्तके—

'यस्य केदारानिकटे मन्त्रपुष्पमनुध्वनिः ।
मुक्तिकन्या सह पुरः क्रमणे चानकध्वनिः ॥' अधिकमस्ति ।

मन्त्रपुष्पार्पणे देवप्रणामोक्तिमनुध्वनिः ।
केदारे यस्य ब्रह्मादिसम्माननिविडध्वनिः ॥६३॥
प्रदक्षिणनमस्कारध्वनिः केदारसंसदि ।
शिवधाम्नि महावीथीसञ्चारे तूर्यसुध्वनिः ॥६४॥
आतिथ्यं ग्रासमात्रं वा दातुमाह्वानसुध्वनिः ।
केदारपरितो यस्य कैलासे स्वागतध्वनिः ॥६५॥
दातुमन्नं च केदारभूमौ[1] यस्त्वाह्वयध्वनिः[2] ।
स्वर्गलक्ष्मीमोक्षलक्ष्म्योर्युद्धाहंपूर्विकाध्वनिः ॥६६॥
यस्य केदारसदने श्रीकार्य्यादिकृतिध्वनिः ।
सोऽनेककोटिब्रह्माण्डव्याप्तकीर्त्यानकध्वनिः ॥६७॥
यस्य केदारनिकटे स्तोत्रमन्त्रोच्चरध्वनिः[3] ।
स कैलासविहारार्थं निःसरत्पटहध्वनिः ॥६८॥

उसे केदारजी के पास उसके ब्रह्मादिक से सम्मान पाने की महाध्वनि समझना चाहिये । (६३) केदार की सभा में प्रदक्षिण नमस्कार की ध्वनि को उसके शिवधाम की गलियों में जाने के समय की तुरही की ध्वनि समझना चाहिये । (६४) केदारजी के चारों ओर की भूमि में एक ग्रास आतिथ्य देने के लिये बुलाने की जो ध्वनि होती है, उसे कैलास में उसके स्वागत की ध्वनि जानना चाहिये (६५) केदार क्षेत्र में अन्न देने के लिये बुलाने की जो ध्वनि है, उसे स्वर्ग-लक्ष्मी और मोक्ष-लक्ष्मी की लड़ाई में 'मैं पहिले' 'मैं पहिले' की ध्वनि समझना चाहिये । (६६) जिसकी केदार मन्दिर में बढोतरी के कार्य्य करने की ध्वनि होती हैं, उसे अनेक कोटि ब्रह्माण्ड में व्याप्त कीर्त्ति के डंके की ध्वनि समझना चाहिये । (६७) जिसकी केदारजी के निकट स्तोत्र-मन्त्र के उच्चारण की ध्वनि होती है, उसे उसके कैलास के विहार के लिये

१ ग. केदारे भूमौ । २ ग. पुस्तकीयोऽयं पाठः, आ० पु०—'स्वाहूय ध्वनिः' इति । ३ ग. ••• मन्त्रवर ध्वनिः ।

यस्य केदारचरणे शरणागतवाग्ध्वनिः ।
तस्याग्रे रुद्रकन्यानां लास्यवीणाघनध्वनिः[1] ॥६६॥
यस्य केदारलिङ्गाग्रे चापराधक्षमाध्वनिः ।
तस्य पादानतौ देवसंघट्टमुकुटध्वनिः ॥७०॥
किं मुने ! बहुनोक्तेन काश्यां केदारसेवनम् ।
येन प्राप्तं स विश्वेशतनुरेव न संशयः ॥७१॥
केदारपरितो लिङ्गान्यमितानि वसन्ति[2] हि ।
तानि सर्वाणि देवैश्च दानवैर्दैत्यपन्नगैः ॥७२॥
राक्षसैरसुरैर्भूपैर्मुनिभिश्चाप्सरोवरैः ।
स्थापितानि [3]स्वयं भूतिभुक्तिमुक्तिप्रदानि च ॥७३॥
पूर्वे श्रीकरकण्ठाख्यं सागरेण प्रतिष्ठितम् ।
तत्पूर्वे च मयूराख्यं [4]वारणाख्यं ततः परम् ॥७४॥

बाहर निकलने के समय की वाजे की ध्वनि जानना चाहिये। (६८) जिसकी केदारजी के चरण में 'शरणागत' की ध्वनि होती है, उसके आगे रुद्रकन्या के नाच और वीणा की घन ध्वनि होती है। (६९) जिसकी केदारलिङ्ग के सामने अपराध क्षमापन की ध्वनि होती है, उसके नमस्कार के लिये देव-समूह के मुकुटों के टकराने की ध्वनि होती है। (७०) हे मुनिजी ! बहुत क्या कहें ? जिसे काशी में केदार-पूजन का सौभाग्य प्राप्त हुआ, वह विश्वेश्वर का शरीर हो जाता है— इसमें संशय नहीं है। (७१) केदारजी के चारों ओर अगणित लिङ्ग हैं। वे सब देव, दानव, दैत्य, नागर, (७२) राक्षस, असुर, राजा, मुनि और अप्सराओं के स्थापित किये हुए हैं, और स्वयम् ऐश्वर्य्य, भुक्ति और मुक्ति को देनेवाले हैं। (७३) केदारजी के पूर्व में श्रीकरकण्ठ नामक लिङ्ग का समुद्र ने स्थापन किया था, उसके पूर्व में मयूर नामक

१ ग. ······ स्वरध्वनिः । २ ग. च सन्ति । ३ ख. स्वयम्भूनि तानि मुक्ति ······ । ४ ग. वारुणाख्यं ।

ततः परं च सिंहाख्यमजाख्यं च ततः परम् ।
ततः परं च मायेशं षड् लिङ्गानि क्रमात् पुरः ॥७५॥
लुप्तानि गाङ्गपयसि कानि कानि स्थितान्यपि ।
त्रयः कश्यपदायादाः शूराद्या दानवाः पुरा ॥७६॥
साक्षात्स्कन्धमधिक्षिप्य युद्धभूमौ लयं गताः ।
स्कन्दप्रसादेन पुनः शूरोऽभूद्द्विविधात्मना ॥७७॥
शिखिकालज्ञानिभिदा तस्य वाहध्वजावभूत् ।
तारको वारणो भूत्वा महाशास्तृप्रसादतः[1] ॥७८॥
तस्यैव वाहतामाप पूर्वोपास्तिप्रभावतः ।
सिंहास्योऽपि परादेव्याः प्रसादाद्वाहतामियात् ॥७९॥
पञ्चाननः परादेव्याः पूर्वोपास्तिप्रभावतः ।
तेषां भगिन्यजा सैका मायाख्या तान् प्रसूत या ॥८०॥

लिङ्ग, उसके बाद वारण नामक लिङ्ग है, (७४) उसके बाद सिंह नामक लिङ्ग है, उसके बाद जाख्य, उसके बाद मायेश ये छः लिङ्ग क्रम से पूर्व में हैं। (७५) कोई तो गङ्गा के जल में लुप्त हो गये और कोई मौजूद भी हैं। कश्यप के तीन लड़के शूरादिक दानव पहिले हुए थे। (७६) वे स्वामी कार्तिकेय से लड़कर युद्ध-भूमि में मारे गये। फिर वह शूर स्कन्ध के प्रसाद से दो रूप होकर (७७) शिखी और कालज्ञानी नाम से उनका वाहन और ध्वजा हो गया। तारक हाथी होकर महाशास्ता के प्रसाद से (७८) पूर्व जन्म की उपासना द्वारा उन्हीं का वाहन हो गया। सिंहास्य भी पराशक्ति के प्रसाद से वाहन हुआ। (७९) उसने पूर्व जन्म में बड़ी उपासना की थी, अतः देवी ने उसे अपना सिंह बना लिया। इन सबकी अजा नाम की एक बहन और माया नामक माता, जिससे वे उत्पन्न हुए, थी। (८०) वे सब शङ्कर से बैर करके स्कन्ध के अपराधी हुए। उस दोष की शान्ति के लिये स्कन्ध ने उन

१ ग. महाशाखिप्रसादतः ।

एते ह्यधिचिप्य देवं जाताः स्कन्दापराधिनः ।
तद्दोषशान्त्यै स्कन्देन ह्युपदिष्टाः पृथक् पृथक् ॥८१॥
विमुक्ता अपि तद्दोषशान्त्यै काश्यां गुहाज्ञया ।
प्राचीनतीर्थे संस्नानात् केदारं सम्यगच्र्च्य च ॥८२॥
लिङ्गान्यपि स्वस्वनाम्ना स्थाप्य शुद्धा ययुर्गुहम्[1] ।
माता पुत्री शिवाभक्त्या प्रापतुस्तां शिवाज्ञया ॥८३॥
त्रयः पुत्राः स्वस्वपूर्वोपास्त्याप्ताः स्वेष्टदेवताः ।
तस्मादित्यादिलिङ्गानि परितः सन्त्यनेकशः ॥८४॥
अन्यैश्च मानवैः स्त्रीभिश्चातुर्वर्ण्यैरपि द्विज ! ।
संस्थापितानि लिङ्गानि तेषां[2] मुक्तिप्रदानि च ॥८५॥
गौर्या संस्थापितं लिङ्गं गौरीतीर्थतटोऽस्ति वै ।
तत्रैव लक्ष्मीलिङ्गं च व्यासलिङ्गं च भार्गवम् ॥८६॥

सबको अलग अलग उपदेश दिया । (८१) विमुक्त होने पर भी उस दोष की शान्ति के लिये स्कन्ध की आज्ञा से वे लोग काशी गये । प्राचीन मणिकर्णिका में स्नान करके विधिवत् केदारजी का पूजन किया और अपने २ नाम का लिङ्ग स्थापन किया, इस प्रकार शुद्ध होकर स्वामी कार्तिकेयजी के पास गये । माँ बेटी ने भी देवी की भक्ति करके शिवजी की आज्ञा से उसको प्राप्त किया । (८३) तीन २ पुत्र दोनों को पूर्वोपासना के प्रभाव से प्राप्त हुए, और उन्हें उनके इष्ट देवता की भी प्राप्ति हुई । इसलिये इस प्रकार से बहुत से लिङ्ग चारों ओर विद्यमान हैं । (८४) और भी बहुत से लिङ्ग चारों वर्ण के पुरुषों और स्त्रियों से स्थापित किये गये हैं । जिनसे उन लोगों की मुक्ति हुई । (८५) गौरीजी का स्थापित किया हुआ लिङ्ग गौरी-तीर्थ के किनारे पर है, वहीं पर लक्ष्मी-स्थापित, व्यास-स्थापित और भार्गव-स्थापित लिङ्ग हैं । (८६) सनत्कुमार का स्थापित लिङ्ग भी यहीं पूर्व की ओर है, और गङ्गा,

१ ग. गृहम् । २ ग. तानि ।

सनत्कुमारलिङ्गं च स्थापितं प्राङ् मयात्र वै ।
गङ्गातपनजावाणीस्थापितं त्रिनदीश्वरम् ॥८७॥
इत्यादीनि पूर्वभागे लिङ्गान्ययुतसंख्यया ।
गङ्गायां कानि लिङ्गानि कानि सन्ति तटे भुवि ॥८८॥
दक्षिणेऽपि तथा लिङ्गान्यमितानि च सन्ति वै ।
चित्रकेतुश्चित्ररथः चित्राङ्गदविचित्रकाः ॥८९॥
सीतालक्ष्मणशत्रुघ्नवायुभूभरतादयः ।
[1]वानराश्चाच्छभल्लूका गोलाङ्गूलास्तथाऽपरे ॥९०॥
रामश्चैव महातेजास्तथान्ये नृपसत्तमाः[2] ।
आस्थापयन् स्वस्वनाम्ना वैमानरचनादिभिः ॥९१॥
तथैव पश्चिमे भागे लिङ्गानि स्थापितानि हि ।
वैप्रचितेश्वरं लिङ्गं कालकेयेश्वरं तथा ॥९२॥
निवातकवचेशं च तथा वैरोचनेश्वरम् ।
वल्मीकेशतिलाभाण्डसंज्ञं वाचालकेश्वरम् ॥९३॥

यमुना और सरस्वती का स्थापित लिङ्ग त्रिनदीश्वर नामवाला भी यहीं है। (८७) इस प्रकार से दस हजार लिङ्ग पूर्व की ओर हैं। कितने तो गङ्गा में हैं और कितने किनारे पर सूखे में हैं। (८८) दक्षिण में भी असंख्यात लिङ्ग हैं। चित्रकेतु, चित्ररथ, चित्राङ्गद, विचित्रक (८९) सीता, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, हनुमान, भरतादिक, वानर, भालू, लंगूर आदि के स्थापित लिङ्ग हैं। (९०) महातेजस्वी रामचन्द्र, तथा अन्यान्य राजाओं ने अपने अपने नाम से विमान की रचना करके लिङ्ग स्थापन किये हैं। (९१) उसी भाँति पश्चिम भाग में वैप्रचित्तेश्वर, कालकेयेश्वर, (९२) निवातकवचेश्वर, वैरोचनेश्वर, वल्मीकेश्वर, तिलभाण्डेश्वर तथा बालकेश्वर आदि लिङ्ग स्थापित हैं। (९३) कुण्डेश्वर, कुठारेश्वर, पारिभद्रेश्वर, शुम्भेश्वर,

१ ग. वानराश्चापि भल्लूकाः । २ ग. मुनिसन्तमाः ।

कुण्डेश्वरं कुठारेशं पारिभद्रेश्वरं तथा।
शुम्भेशं च निशुम्भेशं कालीशं प्रमथेश्वरम् ॥९४॥
इत्याद्यनेकलिङ्गानि स्थाप्य याताः शिवान्तिकम्।
उत्तरेऽपि तथा लिङ्गान्यनेकानि वसन्ति हि ॥९५॥
इन्द्रद्युम्नेश्वरोऽधीशो निषधेशो गणेश्वरः।
क्षेमेशो बालखिल्येशो नारदेशः सखीश्वरः ॥९६॥
अक्रूरेशः कबन्धेशः पाण्ड्येशः क्षालनेश्वरः।
तथा दशाश्वमेधेशः कुलेशः कुण्डलीश्वरः ॥९७॥
इत्याद्याः परमेशस्य स्वरूपा लिङ्गमूर्त्तयः।
परितः सन्ति विप्रेन्द्र! श्रीमत्केदारभूतले ॥९८॥
कालेन कानि नष्टानि भग्नानि शिथिलान्यपि।
भूमौ कानि विलीनानि प्रकाशन्त्यपि कानिचित्[1] ॥९९॥
एतेषान्नामधेयस्य श्रवणं च विमुक्तिदम्।
विश्वेश एव केदारः केदारो विश्वनायकः ॥
सन्देहो नहि[2] कर्त्तव्यः केदारेऽधिकतां ददौ ॥१००॥

निशुम्भेश्वर, कालीश्वर, प्रमथेश्वर (९४) इत्यादि लिङ्गों का स्थापन करके वे लोग शिवधाम को गये। उत्तर की ओर भी अनेक लिङ्ग हैं—(९५) इन्द्रद्युमेश्वर, अधीश्वर, निषधेश्वर, गणेश्वर, क्षेमेश्वर, बालखिल्येश्वर, नारदेश्वर, सखीश्वर (९६) अक्रूरेश्वर, कबन्धेश्वर, पाण्ड्येश्वर, क्षालनेश्वर, दशाश्वमेधेश्वर, कुलेश्वर, कुण्डलीश्वर, (९७) इत्यादि परमेश्वर के स्वरूप लिङ्ग मूर्तियाँ, हे ब्राह्मण! केदार क्षेत्र में विराजमान हैं। (९८) कुछ तो समय पाकर नष्ट हो गईं, कुछ टूट गईं, कुछ हलचल हो गईं, कुछ पृथ्वी में लीन हो गईं और कुछ प्रकाशित भी हैं। (९९) इनके नाम सुनने से भी मुक्ति होती है, विश्वेश्वर ही केदार हैं और केदार ही विश्वेश्वर हैं—इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये। उन्होंने

१ ग. कानि च। २ ग. नात्र।

एवं केदारनाथो विलसति च मुदा काशिकाभूमिभागे
सर्वेषां मुक्तिदायी निरभिमतमनः¹कामिनां योगभाजाम् ।
येषां कामोऽस्ति चित्ते² तदभिमतसुखान्यर्पयित्वा स्वलोके
³तृप्तान् कृत्वा ततस्तान् जनिमृतिरहितान् स्वे महिम्न्यादधाति॥१०१॥
श्रवणे मतिरस्ति यस्य चित्ते
सुरहस्यस्य शिवेन भाषितस्य ।
स शिवस्य गणस्तु पार्श्ववर्त्ती
नहि तत्रास्ति हि संशयो मुनीन्द्राः ॥१०२॥

इति श्रीकाशीमूलरहस्ये ब्रह्मवैवर्त्ते खिले काशीकेदारमाहात्म्ये
द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥

केदार में अधिकता दे रक्खी है । (१००) इस प्रकार काशी भूमि के एक भाग पर केदारनाथ आनन्द से विराजमान हैं । कामी, अकामी, और योगी सबको मुक्ति देनेवाले हैं । जिनके चित्त में काम है, उसको अपने लोक में अभिमत सुख देकर तृप्त करते हैं, तब उसे जनन-मरण से रहित करके अपनी महिमा में लीन कर लेते हैं । (१०१) इस शिव-भाषित रहस्य को सुनने में जिसकी मति होती है, वह शिव का पार्श्व-वर्ती गण है, हे मुनीन्द्रों ! इसमें संशय नहीं है । (१०२)

यह ब्रह्मवैवर्त के खिलग्रन्थ काशीमूलरहस्यान्तर्गत काशी-
केदारमाहात्म्य का बाईसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

१ ग. निरभिमतमतः । २ ख. चित्तेष्वखिलमतिसुखान्यर्पयित्वा । ३ ग. नृन् कृत्वा वै ।

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः ।

ऋषय ऊचुः—

सूत ! पाराशर्यशिष्य ! सर्वज्ञस्ते गुरुः खलु ।
सनत्कुमारो मुनिराट् कथं जातः प्रजापतेः ॥ १ ॥
सर्वज्ञत्वं कथं प्राप्तो [1]नित्यपञ्चाब्दबालताम् ।
ज्ञातं चेद्वद तद् वृत्तं त्वया यदि गुरोर्मुखात् ॥ २ ॥
इति पृष्टस्तदा सूतो मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ।
तदा प्राह पुरावृत्तं श्रुतं व्यासाद् महागुरोः ॥ ३ ॥

विधि तोष्यौ करि तप शिवहिं, भइ नभ गिरा गभीर ।
सृष्टि हेतु माँग्यौ तिनहिं, जे तदीय मतिधीर ॥ १ ॥
गणपति वीर भद्र अरु, नन्दिकेश गुह चार ।
सनक सनन्दन सनातन, सनत लयो अवतार ॥ २ ॥
बढ़ी न सृष्टि मानसी, तप कीन्हे सौ वार ।
सृष्टि मैथुनी से उग्यो, भरि पूरो संसार ॥ ३ ॥
ये सुभद्र अरु भद्र जिमि, जय अरु विजय उदार ।
पायो शाप कुमारतें, जग जनम्यौ त्रयवार ॥ ४ ॥

ऋषि लोग बोले—हे व्यासजी के शिष्य सूतजी ! आपके गुरु निःसन्देह सर्वज्ञ हैं, आप बतलाइये कि मुनीश्वर सनत्कुमारजी ब्रह्मदेव से कैसे उत्पन्न हुए, (१) वे किस भाँति सर्वज्ञ हुए और सदाके लिये पाँच वर्ष का बालकपन उन्हें कैसे मिला ? यदि आपने गुरुमुख से सुना हो तो कहिये । (२) जब तत्त्वदर्शी मुनियों ने ऐसा प्रश्न किया तब गुरु के मुख से जो पुरानी कथाएँ सुन रक्खी थीं, उन्हें सूतजी कहने लगे । (३) सूतजी बोले—हे मुनिवृन्द ! आप सब लोग सुनें, मैं आप लोगों से कहता हूँ । पहिले किसी समय में यही बात

---

१ ग. नित्यं पञ्चाब्दबालकः ।

सूत उवाच—

शृणुध्वं मुनयः सर्वे वदामि भवतामहम् ।
इदमेव[1] पुराऽपृच्छदनवद्या स्वनायकम् ॥ ४ ॥
वामदेवोत्पत्तिमपि नाथशर्माऽऽह तां कथाम् ।

नाथशर्मोवाच—

पुरा कदाचित्कल्पान्ते पुनर्ब्रह्माऽभवद् यदा ॥ ५ ॥
सृष्टिप्रसाराय विधिः शिवमाप्रार्थयत्तदा ।
वर्षाणामयुतं ब्रह्मा एकाग्रमनसाऽतपत् ॥ ६ ॥
तदा प्रसन्नो भगवान् परमात्मा परः शिवः ।
प्राह गम्भीरया वाचा वरं ब्रूहीति शङ्करः ॥ ७ ॥
तदा प्राह विधिः शम्भुं सृष्टिवृद्ध्यै[2] गजत्रये ।
भगवन् ! त्वत्प्रसादेन त्वदीयैः लोकविस्तरम्[3] ॥ ८ ॥
यथा भवेत्तथा सम्यगाज्ञापय निजान् गणान्[4] ।
[5]येऽप्युद्भूय जगत् सर्वं प्रजया पूरयन्तु ते ॥ ९ ॥

अनवद्या ने अपने स्वामी से पूछी थी (४) और उसी ने अपने पति से वामदेवजी की भी उत्पत्ति पूछी थी। तब नाथशर्मा ने उसे यह कथा सुनाई। नाथशर्मा बोले—पहिले किसी कल्पान्त में जब फिर से ब्रह्मा हुए, (५) तो उन्होंने सृष्टि के प्रसार के लिये शिवजी से प्रार्थना की। दस हजार वर्ष तक ब्रह्माजी ने एकाग्र मन होकर तप किया। (६) तब भगवान् परमात्मा पर-शिव शङ्करजी प्रसन्न होकर गम्भीर वाणी से बोले—हे ब्रह्मन्! वर माँगो। (७) ब्रह्मदेव ने शम्भु से कहा—हे भगवन्! तीनों लोकों में सृष्टि को बढ़ाने के लिये, आपकी कृपा से आपके भक्तों द्वारा जिस भाँति लोग वृद्धि को प्राप्त हों, वैसा वर मुझे दीजिये। वे लोग उत्पन्न होकर इन लोकों को

१ ग. इमामेव। २ ग. सृष्टिवृद्धौ। ३ ग. लोकविस्तरः। ४ ग. पुस्तकीयोऽयं पाठः, आ०पु०—'वरान्, इति। ५ ग. मय्युद्भूय।

एवं विधिं प्रार्थयन्तं ज्ञात्वोत्कर्षं शिवात्मनाम् ।
ते समर्थाश्च नित्याश्च कल्पाः कृत्येष्वितीच्छया ॥१०॥
यदि ते पुत्रतां यान्ति तैः सर्वं [1]साधये ह्यहम् ।
तदा प्राह विधिं शम्भुर्जानेऽभीष्टं तु दुर्लभम् ॥११॥
तथापि ते प्रार्थनया प्रेषयिष्यामि मामकान् ।
[2]त्वयि तान् जातमात्रेण संबोध्य स्वकृतिं कुरु ॥१२॥
इत्युक्त्वा शङ्करः स्वीयानाहूयेदमभाषत ।
विघ्नेशं वीरभद्रं च नन्दिकेशं कुमारकम् ॥१३॥
महाकालं च पञ्चैतान् प्राह शम्भुर्विधेः पुरः ।
युष्मानात्मसुतव्याजात् प्रार्थयत्येष सृष्टये ॥१४॥
यदीच्छा भवतामेवं विस्तारयत वै जगत् ।
तदा प्राहुः शिवं ते वै श्रीमदाज्ञा गरीयसी ॥१५॥

प्रजाओं से भर दें। (९) वे लोग समर्थ हैं, नित्य हैं और सब कुछ कर सकते हैं। उन शिवरूपियों की ऐसी महिमा जानकर ब्रह्मदेव ने प्रार्थना की। (१०) यदि वे मेरे पुत्र हो जायँगे, तो मैं सब कुछ साधन कर लूँगा, तब शिवजी ने ब्रह्मा से कहा कि यद्यपि तुम्हारा अभीष्ट अत्यन्त दुर्लभ है, यह मैं जानता हूँ। (११) फिर भी तुम्हारी प्रार्थना से मैं अपने भक्तों को तुम्हारे पास भेजूंगा। उनके उत्पन्न होते ही तुम उनको संबोधन करके अपना काम कहना। (१२) ऐसा कहकर शङ्करजी ने विघ्नेश, वीरभद्र, नन्दिकेश, कुमार (१३) और महाकाल, इन पाँचों अपने जनों को बुलाकर ब्रह्माजी के सामने इनसे कहा कि तुम लोगों को पुत्र के व्याज से ये चाहते हैं। (१४) यदि तुम लोगों की भी ऐसी ही इच्छा हो, तो जगत् का विस्तार करो। तब उन लोगों ने शिवजी से कहा—आपकी आज्ञा बलवती है। (१५) हम लोग व्याज से पुत्र होंगे, सृष्टि हो, चाहे न हो। तदनन्तर ब्रह्मा से बोले—हे ब्रह्मन्! जब

१ ग. साधयामि वै। २ ग. त्वमेतान्।

भवामो व्याजतः पुत्राः सृष्टिर्भवतु वा न वा ।
'यदा त्वं स्मरसि ब्रह्मन् ! तदा पुत्रा बभूविम ॥१६॥
इति ते शम्भुना सार्द्धं तिरोधानं गताः क्षणात् ।
तदा ब्रह्मा तुष्टमनाः सृष्टिवृद्धिर्भवेदिति ॥१७॥
स्वलोकं प्राप्य सृष्ट्यर्थं सस्मार शिववल्लभान् ।
स्मृतिमात्रेण मनसा गणेशः सनकाख्यया ॥१८॥
बभूव वीरभद्रोऽपि सनन्दनसमाख्यया ।
नाम्ना सनातन इति नन्दिकेशस्ततस्त्वभूत् ॥१९॥
सनत्कुमाराभिधया कुमारः समजायत ।
सनत्सुजाताभिधानो महाकालोऽप्यभूत्ततः ॥२०॥
एवं पञ्चापि ते देवाः शिवात्मानः शिवाज्ञया ।
ब्रह्मणः मानसाः पुत्राः संजाताः पञ्चहायनाः ॥२१॥
शिवपादाब्जसंलग्नचित्ता नेतरबुद्धयः ।
विरक्ताः सर्वभावेषु नित्यतृप्ता द्विजोत्तमाः ॥२२॥

तुम स्मरण करोगे, तब हम लोग तुम्हारे पुत्र होंगे। (१६) ऐसा कहकर वे लोग उसी समय अन्तर्धान हो गये। तब तो ब्रह्मदेव सृष्टि की वृद्धि होगी यह सोचकर (१७) तुष्ट हो गये। अपने लोक में जाकर उन्होंने शिवजी के प्यारों का स्मरण किया। स्मरण करने से ही गणेशजी सनक नाम से उनके मन से उत्पन्न हुए, (१८) वीरभद्र जी सनन्दन नाम से उत्पन्न हुए, नन्दिकेश सनातन नाम से पैदा हुए, (१९) स्वामी कार्त्तिकेय सनत्कुमार नाम से आविर्भूत हुए, और महाकाल सनत्सुजात नाम से हुए। (२०) इस प्रकार से ये पाँचों शिवरूपी देवता, शिवजी की आज्ञा से ब्रह्मा के पाँच वर्ष की अवस्थावाले से पुत्र हुए। (२१) शिव के चरण-कमल में सदा चित्त लगाए हुए ये लोग दूसरी बात को अपनी बुद्धि में स्थान भी नहीं देते थे। सब भावों से

१ ग. यदाऽस्मान् स्मरत ब्रह्मा''' । २ ग. शम्भुनाऽऽदिष्टाः ।

तानाह धाता हे पुत्राः ! पुत्रपौत्रविवृद्धितः ।
सृजध्वं बहुधा सृष्टिं देवतिर्यङ्नरात्मिकाम् ॥२३॥
इति ब्रह्मवचः श्रुत्वा तूष्णीं [1]याताः शिवं स्मरन् ।
बद्धोऽयं कामतपसा परमेश्वरमायया ॥२४॥
किमनेन (?) हि संवादादस्माकं तु शिवात्मनाम् ।
गतास्ते स्वेच्छया तूष्णीं मूका इव जडा इव ॥२५॥
तान् विलोक्य तदा ब्रह्मा नैते सृष्ट्युन्मुखा इति ।
पुनस्तपश्चचाराऽऽशु सृष्ट्यर्थं शरदां शतम् ॥२६॥
[2]पुनश्च सृष्ट्या मानस्या न वृद्धिं प्राप वै जगत् ।
एवं पुनर्वारशतं न प्रवृद्धं यदा जगत् ॥२७॥
तदा मैथुनया (?) सृष्ट्या पूरयामास वै जगत् ।
ते चैते ह्यपरा रुद्राः सनकाद्या महत्तराः ॥२८॥

विरक्त वे ब्राह्मणोत्तम नित्य तृप्त रहते थे। (२२) ब्रह्मदेव ने उनसे कहा— हे पुत्रो ! पुत्र-पौत्र क्रम से देव, पशु, मनुष्य आदि रूप से तुम लोग बहुत प्रकार की सृष्टि करो। (२३) ब्रह्मदेव की ऐसी बात सुनकर वे लोग शिवजी का स्मरण करते हुए चुपके चले गये कि यह तो परमेश्वर की आज्ञा से काम-तप से बँधे हुए हैं। (२४) हम लोग तो शिव रूप हैं, हम लोगों को इस संवाद से क्या ? ऐसा सोचकर वे लोग अपनी इच्छा के अनुसार मूक और जड़ की भाँति विचरने लगे। (२५) ब्रह्माजी ने देखा कि ये लोग तो सृष्टि न करेंगे, तो फिर उन्होंने सृष्टि के लिये तप करना प्रारम्भ किया, और सौ बरस तक तप करते रहे। (२६) इसके बाद फिर सृष्टि प्रारम्भ की, पर मानसी सृष्टि से प्रजा नहीं बढ़ी। इस प्रकार सैकड़ों वार प्रयत्न किया परन्तु जगत् की वृद्धि नहीं हुई। (२७) तब ब्रह्मा ने मैथुनी-सृष्टि से जगत् को भर दिया। ये सब (मैथुन सृष्टि से उत्पन्न हुए) संसारी हुए, और सनक आदि रुद्रगण

१ ग. जाता अचिन्तयन् । २ ग. मानसीसृष्टिभिरेवं…।

[1]तुरीयोऽयं तेषु योगी स्कन्दांशो ब्रह्मवित्तमः ।
सनत्कुमारनामायं कुमारो ह्यपरः कृती ॥२९॥
[2]न ज्ञातं त्रिषु लोकेषु किञ्चिदप्यस्ति चाऽमुना ।
शिव एव स्वरूपेण वैराग्यं ब्रह्मनिष्ठताम् ॥३०॥
लोके दर्शयितुं प्राप स्वात्मभूतैः कुयोगिनाम् ।
नित्यं पञ्चाब्दवयसो ब्रह्मनिष्ठा मुनीश्वराः ॥३१॥
यत्रेच्छा तत्र गच्छन्ति स्वर्गमर्त्यरसातले ।
ब्रह्मलोके विष्णुलोके रुद्रलोकेऽन्यभूमिषु ॥३२॥
[3]अनिवार्यगतिस्तेषां न कुत्रापि निवार्यते ।
येषां शापेन [4]माभर्त्तुर्द्वारपालौ क्षितौ जनिम् ॥३३॥
प्राप्य [5]शम्भोः पदं यातौ जयश्च विजयः पुरा ।
तादृशास्ते महात्मानः सनकाद्याः शिवात्मकाः ॥३४॥

महान् थे । इनमें से भी ये चौथे योगी स्वामी कार्तिकेय के अंश सनत्कुमारजी विशेष ब्रह्मवेत्ता थे । ये पुण्यात्मा दूसरे स्वामी कार्त्तिक ही थे । (२९) तीनों लोकों में ऐसा कुछ भी न था, जो इन्हें ज्ञात न हो । अपने रूप से मानो साक्षात् शिवजी ही (३०) लोक में कुयोगियों को वैराग्य और ब्रह्मनिष्ठता दिखलाने के लिये इन रूपों को प्राप्त हुए थे । ये ब्रह्मनिष्ठ मुनीश्वर नित्य पांच बरस के बने हुए (३१) स्वर्ग, मर्त्य और रसातल में जहाँ इच्छा होती थी वहाँ विचरते थे । चाहे ब्रह्मलोक में, चाहे विष्णुलोक में, चाहे रुद्रलोक में, चाहे दूसरी भूमिकाओं में, (३२) कहीं भी इनकी गति नहीं रुकती थी और न कहीं इनका रोक था । जिनके शाप से विष्णु के दोनों द्वारपालों का, जिनका नाम जय-विजय था, संसार में जन्म हुआ, पीछे से उनको शङ्कर के पद की प्राप्ति हुई, शिवस्वरूप ये सनकादि ऐसे महात्मा हैं । (३४) ये लोक

---

१ ग. तुरीयो यस्तेषु । २ ग. नाज्ञातं । ३ ग. अनिवार्या । ४ ग. प्रापतुर्द्वा… । ५ ग शम्भुपदं ।

लोकसंरक्षणार्थाय चरन्ति स्वेच्छया द्विजाः ।
येषां दर्शनमात्रेण ब्रह्माद्याः प्रणमन्ति तान् ॥३५॥
विलासाः परमेशस्य बहुरूपाः मुनीश्वराः ।

अनघोवाच—

भगवन् ! मे प्राणनाथ ! शिवज्ञानैकसागर ! ।
महाविष्णोर्द्वारपालौ शिवपार्श्वे गताविति ॥३६॥
'यदाज्ञापयसि स्वामिन् ! तत्र मे संशयो महान् ।
चक्रपाणेर्द्वारपालौ शापाद् भूमौ जनिं गतौ ॥३७॥
शापान्ते विष्णुमुत्सृज्य कथं शम्भोः पदं गतौ ।
इति पृष्टस्तदा पत्न्या' नाथशर्माह तां कथाम् ॥३८॥

नाथशर्मोवाच—

शृणु भद्रे ! प्रवक्ष्यामि रहस्यं परमात्मनः ।
पुरा विष्णुस्तपस्तप्त्वा वरं प्राप महेश्वरात् ॥३९॥

के संरक्षण के लिये अपने मन से विचरण किया करते हैं । देखते ही ब्रह्मादि उनको प्रणाम करते हैं । (३५) हे मुनीश्वरो ! परमेश्वर का विलास अनेक रूपों में हुआ करता है । अनवद्या ने कहा—हे भगवन् ! हे शिव-ज्ञान के सागर ! प्राणनाथ ! आप जो कहते हैं कि द्वारपाल तो थे महाविष्णु के और प्राप्त हुए शिव-पद को, इसमें मुझे बड़ा भारी संशय है । चक्रपाणि के द्वारपाल का शाप से पृथ्वी में जन्म लेना (३७) और शाप के अन्त में विष्णु को छोड़कर शम्भु के पद को प्राप्त होना कैसे संभव है ? जब उनकी पत्नी ने ऐसा पूछा तब नाथशर्मा ने यह कथा कही । नाथशर्मा बोले—हे भद्रे ! मैं परमात्मा का रहस्य कहता हूँ, ध्यान देकर सुनो । पूर्वकाल में विष्णु भगवान् ने तपस्या करके शिवजी से वर माँगा (३९) कि हे स्वामिन् ! आपके पास रहनेवाले गण मेरी

१ ग. यथा । २ ग. पश्चात् ।

स्वामिन् ! तव समीपस्था गणा रक्षन्तु मामिति ।
शिवमप्रार्थयच्छार्ङ्गी तदा देवो दयानिधिः ॥४०॥
सुभद्रभद्रनामानौ स्वगणौ प्राह चाह्वयन् ।
युवां हरेर्द्वारभागे स्थित्वा 'विष्णोः प्रशासनात्[1] ॥४१॥
जित्वा शत्रून् महाविष्णोर्विजयं दास्यथः सदा ।
इति शम्भुवचः श्रुत्वा तौ प्रणम्योचतुः पुनः ॥४२॥
'भगवन् ! पादसेवा नौ[2] कदा वद पुनर्भवेत्[3] ।
दुर्लङ्घ्या श्रीमदाज्ञा वां वियोग[4] न सहावहे ॥४३॥
उभयं दुर्घटं प्राप्तमावाभ्यां किञ्च कुमर्वहे[5] ।
इत्येवंवादिनौ भक्तौ प्राह कारुणिकोत्तमः ॥४४॥
भवतोश्च मदंशेन कुमारमुनिना पुनः ।
शापव्याजेन मत्पार्श्वं प्राप्स्यथश्चाचिराद् युवाम् ॥४५॥

रक्षा करें। जब शार्ङ्ग धारण करनेवाले विष्णु ने ऐसा कहा, तब दया-निधि देव ने (४०) अपने सुभद्र और भद्र नामक दो गणों को बुलाकर आज्ञा दी कि तुम लोग विष्णु के द्वार पर उनके शासन में रहो और सदा उनके शत्रुओं को जीतकर उनकी विजय करो। शङ्कर भगवान् की ऐसी वाणी सुनकर उन दोनों ने प्रणाम करके कहा (४२) कि हे भगवन्! आपके चरणसेवा का सौभाग्य हम लोगों को फिर कब प्राप्त होगा ? बतलाइये। आपकी आज्ञा उल्लङ्घित नहीं की जा सकती, पर आपका वियोग भी नहीं सहा जाता। (४३) दोनों अड़चनें आ पड़ी हैं, अब हम लोग क्या करें ? भक्तों का ऐसा वचन सुनकर परम कारुणिक शङ्कर भगवान् ने कहा (४४) कि तुम लोगों को मेरे अंश कुमार मुनि शाप देंगे, उस व्याज से तुम मेरे पास आ जाओगे। (४५)

१ ग. विष्णुप्रशासनात्। २ क. भगवत्पादसेवा। ३ ग. त। ४ ग. पुस्तकायाऽयं पाठः, अा० पु०—'वियोगः,। ५ ग. पुस्तकीयोऽयं पाठः, आ० पु०—'किमकुर्वहे, इति।

स्थित्वांशेन हरेर्द्वारि तस्य कल्पावधि क्षणात् ।
गमयित्वा पुनर्मां वै प्राप्स्यथस्तेन मां पुनः ॥४६॥
यस्य यस्याहमददां[1] वरं मद्गणसाह्वतः[2] ।
तत्र तत्रांशभागेन तिष्ठन्ति मम वल्लभाः ॥४७॥
ब्रह्मणाप्यर्थितः पूर्वं सृष्ट्यर्थं गणसाह्वताम्[3] ।
हेरम्बभद्रनन्दीशमहाकालकुमारकान् ॥४८॥
आदिशन् तेऽपि मत्पार्श्वे तिष्ठन्त्यंशबहुत्वतः ।
एकांशेन द्विजा भूत्वा ब्रह्मिष्ठाः सञ्चरन्ति हि ॥४९॥
अन्येऽपि बहुला रुद्रा वृक्षभूम्यर्णवादिषु ।
[4]प्रदेशेष्वन्नपवनवर्षनाथा इति प्रथाः ॥५०॥
चरन्त्यंशेन जगति मत्पार्श्वेऽपि वसन्ति हि ।
मद्भक्तशापव्याजेन भवेज्जन्मत्रयं युवाम् ॥५१॥

जब तक विष्णु का कल्प है, तब तक एक अंश से उन्हीं के द्वार पर रहो। फिर तुम उनके साथ मुझको ही प्राप्त होओगे। (४६) जिस किसी को मैंने अपने गणों द्वारा सहायता देने का वर दिया है, वहाँ वहाँ मेरे प्यारे गण अंशभाग से ही रहते हैं। (४७) ब्रह्माजी ने भी पहिले सृष्टि के लिये गणों की सहायता माँगी थी, तब मैंने गणेश, वीरभद्र, नन्दिकेश्वर, महाकाल और कुमार को आज्ञा दे दी। (४८) पर वे भी अधिक अंश से मेरे ही पास हैं, और एक अंश से ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण होकर विचरते हैं। (४९) और भी बहुत से रुद्र, वृक्ष, भूमि, समुद्र आदि प्रदेशों में तथा अन्न, जल और वर्षा के ईश होकर विचरते हैं, यही प्रथा है। (५१) एक अंश से जगत् में विचरते हैं और शेष अंश से मेरे पास रहते हैं। मेरे भक्त के शाप के बहाने तुम दोनों के तीन जन्म होंगे। उन जन्मों में अनन्य भक्ति से मेरी ही पूजा करके दूसरे जन्म में

१ ख. ...०मददं, ग. ...०मवदे। २ ग. मद्गणमात्मभुः। ३ ग. गणामिप्स्यता। ४ ग. प्रदेशेष्वनुपवने वर्षेष्व इति प्रथा।

तेषु जन्मसु मामेव सम्पूज्यानन्यभक्तितः[1] ।
द्वितीये जन्मनि [2]पुनर्मामेव प्राप्स्यथः[3] पुनः ॥५२॥
एकांशेन क्षितौ जन्म तृतीयं प्राप्य विष्णुना ।
शापान्ते च युवां पश्चात् समीपं मे नयिष्यथः[4] ॥५३॥
अंशमात्रेण तत्पार्श्वे स्थित्वा तत्कल्पकावधि ।
तेन साकं मम सदः प्राप्स्यथोऽन्यो भवेद्धरिः ॥५४॥
एवं हरिपदे[5] सर्वं भविष्यति पदे पदे ।
तथैव [6]विधिधामापि बहु चाग्रे[7] भविष्यति ॥५५॥
मदाज्ञयैव लोकेषु विष्णुब्रह्महरादिषु ।
आधिपत्यं तदैश्वर्यं मदंशमिति[8] जानथाः ॥५६॥
अनुशिष्यैवमीशस्तौ गणौ भद्रसुभद्रकौ ।
प्रेषयामास विष्ण्वग्रे द्वारपौ च बभूवतुः ॥५७॥

फिर मुझको ही प्राप्त होगे। (५२) एकांश से तीसरा जन्म तुम्हारा विष्णु के साथ होगा, और शाप के अन्त में तुम दोनों को अपने पास ले जायँगे। (५३) एक अंशमात्र से उनके कल्प की अवधि तक तुमको उनके पास रहना पड़ेगा। तब तुम उनके साथ मेरी सभा में आओगे और दूसरे विष्णु नियत होंगे। (५४) इस भाँति विष्णुपद पर बराबर सब लोग नियत होते जायँगे। इसी प्रकार से ब्रह्म-पद पर भी आगे बहुत से होंगे। (५५) मेरी आज्ञा से ही विष्णु, ब्रह्म तथा रुद्रादि का लोकों में आधिपत्य और ऐश्वर्य्य है। उन लोगों को मेरे अंश ही समझो। (५६) इस प्रकार अपने दोनों गण भद्र और सुभद्र को शिवजी ने विष्णु के पास भेज दिया और वे जाकर द्वारपाल हुए। (५७) असुर, दैत्य और दानव जो विष्णु से युद्ध करना

१ ग. सम्पूज्यानम्य भक्तितः। २ ग. युवां। ३ ख. पुस्तकीयोऽयं पाठः, आ. पु.—'मामेवापत्स्यथः' इति। ४ ग. नयिष्यति। ५ ग. हरिपदं। ६ ग. विधिर्धाता। ७ ग. बहुरग्रे। ८ ग.…०मित्यजानथाः।

असुरा दैत्यदनुजा विष्णुं[1] ये संगरार्थिनः ।
[2]अनायासेन तौ जित्वा जयं विष्णोः प्रदास्यतः ॥५८॥
जयश्च विजयश्चेति ददौ नाम तयोर्हरिः ।
कदावयोः पुनः सेवा [3]भवेच्छम्भोरिति स्मरन् (?) ॥५९॥
सर्वांशेन विभोः पार्श्वे वसेवानन्दनिर्भरौ ।
एवं कतिपये काले गते च सनकादयः ॥६०॥
[4]चरन्तो लोकमखिलं क्रमाल्लोकं हरेर्ययुः ।
तत्पूर्वं च महाविष्णुर्लक्ष्म्या साकं स्थितो रहः ॥६१॥
महिमानं महेशस्य वदन् लक्ष्मीं महाद्भुतम् ।
द्वारपावाह भगवानागच्छेत्कोऽपि मत्सदः ॥६२॥
प्रवेशयेथा मामुक्त्वा सहसा न विशेदिति ।
तस्मिन् काले समायाता ह्यवार्याः सनकादयः ॥६३॥

चाहते थे, उनको वे दोनों बिना परिश्रम ही जीतकर विष्णु की विजय कराते थे। (५८) तब विष्णु ने उन दोनों का नाम जय और विजय रक्खा। वे सदा यही चिन्तन करते रहते थे कि कब फिर हम दोनों कों शिवजी को सेवा का सौभाग्य प्राप्त होगा ? (५९) कब पूर्ण अंश से आनन्द निर्भर होकर शिवजी के पास रहेंगे ? इस भाँति कुछ समय बीतने पर सनकादिक महर्षि (६०) सम्पूर्ण लोकों में विचरते विचरते क्रम से विष्णुलोक में आ पहुँचे। उसके पहिले से ही विष्णु भगवान् एकान्त में लक्ष्मी के साथ बैठे हुए। (६१) महेश्वर की अद्भुत महिमा लक्ष्मीजी को सुना रहे थे। दोनों द्वारपालों से भगवान् ने पहिले ही कह रक्खा था कि जो कोई मेरी सभा में आवे, (६२) उसे अकस्मात् न घुस आने देना। पहिले मुझे समाचार देकर तब आने देना। उसी काल में अनिवार्य्य सनकादि आ पड़े! (६३) अपने

१ ग. विष्णोर्ये। २ ख. ग. पुस्तकीयोऽयं पाठः, आ० पु०—'सानायासेन' इति। ३ ग. भवेदिति मुहुःस्मृती। ४ ग. संचरन्तो लोकमिमं।

द्वारे ¹तिरोवेत्रहस्तौ दृष्ट्वा ते तौ वचोऽब्रुवन् ।
कौ युवां मार्गरोद्धारौ दैत्यौ वा राक्षसौ नरौ ॥६४॥
मादृशां प्रतिरोद्धारौ कुधियौ नाऽत्र संशयः ।
लोके सर्वसमो विष्णुर्विरक्तास्तादृशा वयम् ॥६५॥
विष्णोः पार्श्वे युवां वस्तुं न योग्यौ निर्घृणौ ध्रुवम् ।
एवं वादिषु विप्रेषु द्वास्थावत्यन्तकम्पितौ ॥६६॥
प्राप्तो हि नौ महाशापो मुनीनामपराधतः ।
इत्येवं चिन्त्यमाने तु द्वारपालद्वये तदा ॥६७॥
अहो कष्टमिति² ज्ञात्वा बहिरागाद्धरिर्मुनीन् ।
पूजयित्वा यथान्यायं कुशलप्रश्नपूर्वकम् ॥६८॥
लक्ष्मीसमेतो भगवान् प्राशंसच्छिवयोगिनः ।
यूयं दयालवः प्राज्ञाः शिवज्ञानैकसागराः ॥६९॥

हाथ के बेंत को द्वार पर आड़ाए हुए द्वारपालों को देखकर उनसे बोले—तुम लोग रास्ता रोकनेवाले कौन हो ? तुम लोग राक्षस हो, दैत्य हो अथवा मनुष्य ? (६४) तुम हम सरीखे लोगों का रास्ता रोकते हो, अतएव तुम्हारी मति दुष्ट है—इस में तो सन्देह नहीं है। सम्पूर्ण लोक में विष्णु सबके लिये समान हैं, और हम लोग ऐसे विरक्त हैं। हमारे प्रति उनकी दया होने में क्या सन्देह है ? (६५) तुम दोनों निर्दय हो, विष्णु के पास रहने के योग्य नहीं हो यह बात ध्रुव है। ब्राह्मणों के ऐसा कहने पर दोनों द्वारपाल काँप उठे (६६) कि मुनियों के अपराध से हम लोगों को बड़ा भारी शाप लगा। जब दोनों द्वारपाल इस प्रकार की चिन्ता करने लगे, (६७) तब तो उन पर कष्ट आया जानकर हरि बाहर निकल पड़े और कुशल प्रश्न पूछकर मुनियों की पूजा की। (६८) लक्ष्मी के साथ भगवान् ने शिवयोगियों की प्रशंसा की कि आप लोग दयालु

१ ग. स्थितौ । २ ग. कष्टमिदं ।

क्षमावन्तः सर्वसमाः सत्यं हि भवतां वचः ।
कोऽन्यथाकर्तुमीशोऽत्र भवद्वाचं सुरेष्वपि ॥७०॥
यूयं शिवध्यानधूतमायाजालपरम्पराः ।
एवं स्तुवति लक्ष्मीशे द्वास्थावागत्य नेमतुः ॥७१॥
तौ दृष्ट्वा खिन्नमनसौ मुनयः स्ववचोऽस्मरन् ।
आज्ञा बलीयसी शम्भोर्मादृशामपि वाक्कटुः[1] ॥७२॥
निःसृता द्वास्थविषये शिवेच्छा नान्यथा तथा ।
तस्माद् जन्मत्रयं दैत्यरक्षोमानुषमेतयोः ॥७३॥
भविष्यति हि नो वाक्यात् कृपया तेषु जन्मसु ।
पुत्रव्याजेनाहमेतौ उद्धरामि शिवाज्ञया ॥७४॥
सहकारी भव भवानेतयोरुद्धृतिं प्रति ।
विष्णुमेवं संवदति सनके प्राह वै रमा ॥७५॥

हैं, पंडित हैं, शिव ज्ञान के समुद्र हैं और (६९) क्षमावान् हैं। आपके लिये सब बराबर हैं। आपकी वाणी सत्य है। किसकी सामर्थ्य है कि आप लोगों के वचन को अन्यथा कर सके? औरों की कौन कहे? यह सामर्थ्य देवताओं में भी नहीं है। (७०) आपने शिवजी के ध्यान से मायाजाल की परम्परा को नष्ट कर दिया है। लक्ष्मीपति के इस प्रकार स्तुति करते समय द्वारपालों ने भी आकर नमस्कार किया। (७१) उनको दुखी देखकर मुनियों ने अपने वचन का स्मरण किया। शम्भु की आज्ञा बलवती है कि हम ऐसे लोगों के मुख से भी कटु बात (७२) इन द्वारपालों के विषय में निकल पड़ी। यह शिवजी की इच्छा है, दूसरी बात नहीं है। इसलिये इनके तीन जन्म क्रम से दैत्य, राक्षस, और मनुष्य योनि में हमारे वचन के प्रभाव से होंगे। (७३) उन जन्मों में शिवजी की आज्ञा से कृपा करके हम इनके पुत्र के व्याज से इनका उद्धार करेंगे। (७४) हे विष्णो! आप

१ ग. वाक्कथा।

'अवशा परमेशाज्ञावशादुद्धृतये' तयोः ।
अहं द्वितीये व्याजेन जन्मनि प्रविलोभ्य च ॥७६॥
एतौ समुद्धरिष्यामि शिवाविष्टेन विष्णुना ।
ततः प्राह महाविष्णुस्तृतीयेऽहं च जन्मनि ॥७७॥
स्वयमेवोद्धरिष्यामि चाज्ञयैतौ महेशितुः ।
अयं सनत्सुजातोऽपि दर्शनं मेऽदिशेद्भुवि ॥७८॥
आत्मोपदेशान्नृपतिं तदा वैचित्रवीर्यकम् ।
तारितुं भुवमायातं' वदे चोद्धृतिमेतयोः ॥७६॥
इत्येवं तौ समाधाय द्वास्थौ याता महर्षयः ।
तौ जातौ प्रथमं जन्म हिरण्यद्वयनामकौ ॥८०॥
एकः कश्यपुसंज्ञश्च द्वितीयश्चाक्षनामकः ।
कशिपोः पुत्रभावेन प्रह्लादः सनकस्त्वभूत् ॥८१॥

भी इनके उद्धार में मेरे सहकारी हों। सनक के इस प्रकार विष्णु से कहने पर लक्ष्मी वोलीं—(७५) मैं परमेश्वर की आज्ञा के वश में पड़कर इन दोनों के उद्धार के लिये लाचार हूँ, परन्तु इनके दूसरे जन्म में इनको लुभाकर (७६) शिवाविष्ट विष्णु द्वारा इनका उद्धार करूँगी। तब महाविष्णु ने कहा कि इनके तीसरे जन्म में (७७) महेश की आज्ञा से मैं स्वयम् इनका उद्धार करूँगा। ये सनत्सुजात भी पृथ्वी पर मुझे उस समय अवश्य दर्शन दें। (७८) जब कि राजा धृतराष्ट्र को आत्मज्ञान उपदेश करके तारने के लिये पृथ्वी पर पादार्पण करें। इन दोनों का तब उद्धार होगा। (७९) इस प्रकार दोनों द्वारपालों का समाधान करके महर्षि लोग चले गये। वे दोनों पहिले जन्म में हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु हुए (८०) हिरण्यकशिपु के पुत्रभाव को प्राप्त होकर सनक महर्षि प्रह्लाद हुए। (८१) उसके उद्धार में असमर्थ होकर विष्णु ने शङ्कर भगवान् को जनाया कि आपका भक्त मेरे क़ाबू का नहीं है,

१ ग. अवश्यं। २ ग.⋯वशादुद्धृतमेतयोः। ३ ग. भुवमायान्तं।

तमुद्धर्त्तुमशक्तः[1] सन् हरिः शम्भुं व्यजिज्ञपत् ।
मया न साध्यस्ते भक्तस्त्वं सर्वांशेन मां विश ॥८२॥
तावुद्धर महाभाग इति सम्प्रार्थितो हरः ।
इति सर्वांशतः सिंहनराकारेण शङ्करः ॥८३॥
व्याजीकृत्य महाविष्णुं कशिपुं स समुद्धरत्[2] ।
तथैव क्रोडरूपेण व्याजीकृत्य हरिं हरः ॥८४॥
अक्षाख्यमुद्धरच्छम्भुर्हिरण्यपदपूर्वकम् ।
[3]एवं सनकपुत्रत्वात् पुत्रहिंसनहेतुतः ॥८५॥
प्रथमं जन्म निस्तीर्णं द्वास्थयोः शिवभक्तितः ।
अथ द्वितीये सम्प्राप्ते जन्मनि श्रीसहायतः ॥८६॥
विष्णुः शिवं समाराध्य कुम्भोद्भूतोपदेशतः ।
रुद्राविष्टशरीरः[4] सन् पौलस्त्यौ राक्षसौ च तौ ॥८७॥
समुद्धरत्तदा[5] तौ हि प्राप्तौ शम्भोः पदं क्षणात् ।
रावणः कुम्भकर्णश्च गणौ भूत्वाखिलांशतः ॥८८॥

आप सम्पूर्ण अंश से मुझमें प्रवेश कीजिये (८२) और हे महाभाग ! उसका उद्धार कीजिये । ऐसी प्रार्थना सुनकर नृसिंह रूप से शङ्कर जी ने (८३) महाविष्णु के व्याज से हिरण्यकशिपु का उद्धार किया । इसी प्रकार से वाराहरूप से शंकर ने महाविष्णु के बहाने से (८४) हिरण्याक्ष का भी उद्धार किया । इस भांति महर्षि सनक पुत्र हुये, और उसने उन्हें मारना चाहा । (८५) शिव भक्ति से दोनों द्वारपालों का प्रथम जन्म में तो इस भांति निस्तार हुआ । फिर दूसरा जन्म होने से विष्णु ने लक्ष्मी की सहायता ली (८६) और अगस्त्यजी के उपदेश से शङ्कर की आराधना की । जब उनके शरीर में रुद्र का आवेश हुआ, (८७) तब उन्हों ने पुलस्त्यवंशी रावण और कुम्भकर्ण दोनों राक्षसा का उद्धार

१ ग. ··· प्रसक्तः । २ ग. सुसमुद्धरन् । ३ ग. इति । ४ ग. ··· शरीरश्च । ५ ग. समुद्धरन् ।

सुभद्रभद्रौ जायेतां रावणाख्योऽप्यभूद्गणः ।
एकांशेन पुनर्विष्णुस्तावुद्धार्य निजान्तिके ॥८९॥
तृतीयाज्जन्मतो द्वास्थावद्याप्यंशेन तिष्ठतः ।
एवं शिवगणो[1] देवि! पौलस्त्यो मूलतः प्रिये! ॥९०॥
सनकाद्याः शिवगणास्त्वेवं शम्भुपरायणाः ।
शिवादन्यं न किंचिच्चानेककोट्यण्डभूमिषु[2] ॥९१॥
शिवां प्राह शिवो गुह्यं प्रोक्तं[3] मां कुक्कुटध्वजः ।
इदं रहस्यं परमं योग्यासीत्यवदं तव ॥९२॥
नाभक्ताय प्रदातव्यं शिवे! संसृतितारकम् ।
शिवज्ञानैकसारं तत् शिवभक्तिप्रदं नृणाम् ॥९३॥
शिवात्मनां च महिमा विचित्रं शृणु मत्प्रिये! ।
शिवयोगबलात्स्वैरं बहुरूपा वसन्ति ते[4] ॥९४॥

किया। तब वे पूर्णांश से शिवगण होकर क्षणभर में शिवलोक को प्राप्त हुए। (८८) सुभद्र-भद्र हो गये। रावण भी गण हो गया। विष्णु ने तीसरे जन्म द्वारा उनका उद्धार करके एक अंश से उनको अपने पास रक्खा। (८९) वे दोनों एक अंश में अब भी द्वारपाल हैं। इस प्रकार हे प्रिये! रावण असल में शिवगण ही था। (९०) सनकादिक शिवगण इस भाँति शम्भु परायण हैं कि अनेककोटि ब्रह्माण्ड में शिव से अन्य वे किसी को जानते ही नहीं। (९१) शिवजी ने यह रहस्य पार्वती से कहा और मुझसे स्कन्दजी ने कहा। तू इस रहस्य के योग्य है, इससे मैंने तुझसे कहा। (९२) हे शिवे! यह संसारतारण-उपाय अभक्त को न देना चाहिये। यह शिव-ज्ञान का एकमात्र सार है और शिवजी की भक्ति देनेवाला है। (९३) हे प्रिये! सुनो, शिव रूपी महात्माओं की महिमा विचित्र है। शिवजी योग के बल से अनेक रूपों में स्वच्छन्दचारी रहा करते हैं। (९४)

१ ग. शिष्यगणो। २ ग. ···कोट्यन्तभूमिषु। ३ ग. प्राप्तं। ४ ग. हि।

[1]पश्यतो रावणत्वं च प्राप्य शम्भोः प्रियो गणः ।
सुभद्रभद्रनामानावपि पूर्ववदास्थितौ ॥९५॥
विष्णोर्द्वास्थौ पुनरपि चित्रा तेषां गतिः प्रिये ! ।
सनकाद्या अपि पुनः शिवांशा ब्रह्मसूनवः ॥९६॥
हिरण्यस्यापि कशिपोः पुत्रोऽभूत् सनकः पुनः ।
इत्यनेकविधा लीला विचित्रा शिवयोगिनाम् ॥९७॥
सनत्कुमारोत्पत्तिस्तु प्रोक्ता त्वं[2] हृदि धारय ।
वामदेवोत्पत्तिमपि वदामि शृणु मत्प्रिये ! ॥९८॥
इति निजदयितां रहस्यमाद्यं
परमशिवस्य जगाद नाथशर्मा ।
शृणुत मुनिवराः परं यदाह
तदपि वदामि च वामदेवमूलम् ॥९९॥
य इदं शृणुयाद् महारहस्यं
शिवकथितं परमं शुभं शिवायै ।

रावणत्व को प्राप्त होने पर भी देखते-देखते सुभद्र-भद्र नामवाले दोनों शङ्कर के प्रिय गण हो गये (९५) और फिर भी दोनों विष्णु के द्वारपाल हैं। हे प्रिये ! उनकी गति विचित्र है। सनकादि महर्षिगण ब्रह्मा के पुत्र होने पर भी शिवजी के अंश हैं। (९६) और फिर सनक हिरण्यकशिपु के बेटे भी हो गये। इस प्रकार शिवयोगियों की लीला विचित्र है। (९७) सनत्कुमार की उत्पत्ति मैंने कही, उसे हृदय में धारण करो। वामदेव की भी उत्पत्ति मैं कहता हूँ, हे प्रिये ! उसे तू सुन। (९८) इस प्रकार अपनी स्त्री से परमशिव का आदि रहस्य नाथशर्म्मा ने कहा और इसके वाद वामदेवजी की उत्पति कही। हे मुनीन्द्रो ! मैं भी उसे आप लागों से कहता हूँ, सुनिये। (९९) जो इस परमशुभ महारहस्य को, जिसे शिवजी ने शिवा से कहा है, सुनता है, वह

१ ग. पश्य मोः ! । २ ग. तां ।

स लभेच्छिवधाम भुक्तभोगः
पुनरावृत्ति विवर्जितं महत्तत् ॥१००॥

इति श्रीकाशीमूलरहस्ये ब्रह्मवैवर्त्ते खिले काशी-
केदारमाहात्म्ये त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः ।

ऋषय ऊचुः—

बादरायणसच्छिष्य ! सूत ! ज्ञानामृतोदधे ! ।
नाथशर्मा स्वजायायै वामदेवसमुद्भवम् ॥ १ ॥
कथं प्राह वदाऽस्माकं येनेदं लोकतारकम् ।
पृष्टं रहस्यं शिवयोः प्रसृतं भुवनत्रये ॥ २ ॥
तादृशस्य महर्षेस्त्वमुत्पत्तिं शिवयोगिनः[1] ।
इति पृष्टस्तदा सूतो मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ ३ ॥

भोगों को भोगकर शिव-धाम को प्राप्त होता है, जो कि पुनरावृत्ति से वर्जित है, और महान् हैं । (१००)

यह ब्रह्मवैवर्त के खिलग्रन्थ काशीमूलरहस्यान्तर्गत केदार-महात्स्य
का तेईसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

सो०—उमहिं ब्रह्म-उपदेश, दयो शम्भु एकान्त करि ।
सुन्यौ कपोत अशेष, वामदेव भो शाप वस ॥

ऋषि लोग बोले—हे बादरायण के श्रेष्ठ शिष्य । सूतजी ! आप ज्ञानामृत के महोदधि हैं । आप हम लोगों से कहिये कि नाथशर्मा ने अपने स्त्री से वामदेव की उत्पति के विषय में क्या कहा ? (१) शिव-पार्वती का रहस्य लोकतारक है और हम लोग इसलिये पूछ रहे हैं कि यह तीनों लोक में फैल जाय । (२) ऐसे शिवयोगी महर्षि की

१ ग. देवयोगिनः।

प्राह तान् विस्मयकथां रहस्यां जनतारिणीम् ।

सूत उवाच—

शृणुध्वं मुनयः[1] सर्वे वामदेवोद्भवां कथाम् ॥ ४ ॥
पूर्वं कैलासशिखरे शुद्धान्तोपवने शिवौ ।
विहरन्तौ बहुऋतून् ब्रह्मानन्दैकसागरौ ॥ ५ ॥
विहृत्य चिरकालं तौ एकान्ते तस्थतुस्तदा ।
देवी प्राह महादेवं स्वामिन् ! मच्चित्तसंस्थितम्[2] ॥ ६ ॥
तव स्वरूपं कीदृक् तन्मनोवाचामगोचरम् ।
श्रुतेः शिरांस्यपि पुनस्त्वामाहुर्नेति नेति च ॥ ७ ॥
तत्तत्त्वं[3] मां बोधयस्व येनाहं त्वत्समाऽभवम् ।
इदानीं देहभागार्धा स्वरूपस्येशितुस्तव ॥ ८ ॥

उत्पत्ति पूछने पर सूतजी ने तत्वदर्शी मुनियों से (३) जनों को तारने-वाली रहस्य की विस्मयपूर्ण कथा कही ।

सूतजी बोले—हे मुनिवृन्द ! आप लोग सब वामदेव की उत्पत्ति की कथा सुनें । (४) पहिले किसी समय कैलास के शिखर पर, शुद्धान्त (अन्तःपुर) के उपवन में ब्रह्मानन्द के समुद्र शिव-पार्वती ने बहुत ऋतुओं तक विहार किया । (५) बहुत दिनों तक विहार के बाद दोनों व्यक्ति एकान्त में बैठे । तब देवी ने महादेवजी से कहा—हे स्वामिन् ! मेरे चित्त में बैठा हुआ (६) मनवाणी से अतीत आपका रूप कैसा है ? वेदान्तों ने भी आपका नेति नेति करके निरूपण किया है, (७) उस तत्त्व को आप मुझसे कहिये, जिससे मैं आपके समान हो जाऊँ । इस काल में हे ईश ! मैं आपके स्वरूप देह की अर्धभागिनी हूँ । (८) मैंने ही आपकी सहायता से यह रूप कल्पित किया है । आपके सान्निध्य के विना मुझमें जगत् की रचना की

---

१ क. ऋषयः । २ ग. मच्चित्तसंस्थित ! । ३ ग. पुस्तके—'तत्तत्वं मां बोधय' इति श्लोको नास्ति ।

मयैव कल्पितं रूपमिदं ते त्वत्सहायतः ।
त्वत्सान्निध्यं विना शक्तिर्मम नास्ति जगत्कृतौ ॥ ९ ॥
त्वत्सत्तयाहं चैतन्यामूलप्रकृतिरप्यहम् ।
तव सत्तात्मकं [1]बोधं यथा मे स्यात्तथा वद ॥१०॥
इति शम्भुः पराशक्त्या पृष्टः प्राह स तां पुनः ।
शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि मद्बोधो ह्यतिदुर्लभः[2] ॥११॥
मदात्मबोधकालेऽत्र कोऽप्यन्यो नैव तिष्ठतु[3] ।
पशुपक्षिभृङ्गदंशा अप्येतच्छृणुयुर्यदि ॥१२॥
ज्ञानं तेषां भवेत् सद्यः [4]स्वात्मन्यत्रेति हि ध्रुवम् ।
तेन ज्ञानेन माया ते नश्यत्येव भ्रमात्मिका ॥१३॥
तदा त्वां कोऽपि मच्छक्तिं मन्यते नैव सर्वथा ।
तस्मात्त्वत्कार्यसिद्ध्यर्थं विविक्तं प्रार्थ्यते मया ॥१४॥

शक्ति नहीं है। (९) आपकी सत्ता से मैं चैतन्य हूँ और मूल प्रकृति हूँ। अतः आपका सत्तात्मक ज्ञान जिस भाँति मुझे हो जाय, वैसा कीजिये (१०) पराशक्ति के इस प्रकार पूछने पर शिवजी ने उनसे कहा—हे देवि ! मैं कहता हूँ, सुनो। मेरा ज्ञान अत्यन्त दुर्लभ है। तुम मेरी शक्ति हो, इसलिये शीघ्र ही सीधे-सीधे जान जाओगी। (११) जब मैं अपने आत्मा का ज्ञान बतलाने लगूँगा, उस समय यहाँ कोई न रहे। पशु, पक्षी, भृङ्ग, दंश आदि यदि कोई भी इसे सुन लेगा (१२) तो तुरन्त उसको निश्चय अपनी आत्मा का ज्ञान हो जायगा। उस ज्ञान से तुम्हारी भ्रमात्मिका शक्ति का नाश हो जायगा। (१३) इसलिये तुम्हें कोई-कोई सर्वथा मेरी शक्ति भी नहीं मानते। इस लिये तुम्हारे कार्य्य की सिद्धि के लिये मैं एकान्त चाहता हूँ। (१४) ऐसी शम्भु की वाणी सुनकर देवी ने शुद्धान्त के उद्यान में रहनेवाले

१ ग. सत्तात्मको बोधः। २ ग. ह्यतिदुर्लभः। ३ ग. तिष्ठति। ४ ग. स्वात्मन्यन्वेति।

इति शम्भुवचः श्रुत्वा [1]शुद्धान्तोद्यानसंस्थितान् ।
जीवानुत्सारयामास कृमिकीटादिकानपि ॥१५॥
उत्सार्य सर्वान् जन्तून् सा देवमाप्रार्थयत्पुनः ।
स्वामिन्! दयां कुरु विभो! स्वस्वरूपमुपादिश ॥१६॥
विविक्ते विजने शम्भो! स्वात्मोद्याने सुसंविदम् ।
तदा दयालुर्गिरिशो बिल्वमूले न्यषीदत ॥१७॥
दक्षिणामूर्तिरूपेण धृतचिन्मुद्रपाणिना ।
स्वात्मज्ञानं महादेव्यै संबोधयितुमारभत् ॥१८॥
तदा तद्बिल्ववृक्षस्य कोटरे दूरगह्वरे ।
रुग्णः पारावतो लीनो निर्गन्तुं नाशकद्भिया ॥१९॥
गम्भीरकोटरान्तस्थोऽप्यशृणोदात्मसंविदम् ।
देव्यै समुपदिष्टं तत् संसारोदधितारकम् ॥२०॥
स्वात्मन्यभावसद्भावतत्त्वब्रह्मात्मनिर्णयम् ।
[2]तत्त्वमस्यादिवाक्यार्थसारं चाऽखण्डचेतनम् ॥२१॥

सब जीवों को वहाँ से हटा दिया। यहाँ तक कि कृमि कीटादि भी नहीं रहने पाये। (१५) सब जन्तुओं को निकालकर फिर देवी ने शिवजी से प्रार्थना की कि हे स्वामिन्! हे विभो! दया करके अपने स्वरूप का आदेश दीजिये। (१६) एकान्त निर्जन अपने उद्यान में संवित् (ज्ञान) का उपदेश कीजिये। तब दयालु शिवजी बेल के पेड़ के नीचे बैठ गये और (१७) ज्ञान-मुद्रा धारण करके दक्षिणामूर्ति रूप से अपने आत्मज्ञान का देवी को उपदेश करने लगे। (१८) उस समय बेल के पेड़ के खोखले के एक-दम भीतर एक रोगी कबूतर छिपा पड़ा था, वह डर से बाहर न निकल सका। (१९) गहिरे खोखले में से भी उसने वह ज्ञान सुना, जो संसारसमुद्र से तारनेवाला आत्मज्ञान देवी से भगवान् कह रहे थे। (२०) अपनी आत्मा में अभाव

१ ग. शुद्धान्तध्यानसंस्थितान्। २ ग. तत्त्वमस्यादिवाक्यार्थसच्चिदानन्दनिर्भरम्।

[1]नेति नेतीत्युपनिषद्बोधशीर्षं निरञ्जनम् ।
स्वात्मैकवेद्यं स्वानुभवबोधमात्रात्मचिद्घनम् ॥२२॥
अनाद्यनन्ताखण्डैकसच्चिदानन्दनिर्भरम् ।
शिवं शान्तं तुरीयानां तुरीयातीतमद्वयम् ॥२३॥
कारणं जगतां माया मिथ्या वैचित्र्यसद्मनाम् ।
स्वतो भान्तं स्वतः सत्यं स्वतः सिद्धं स्वतः स्थितम् ॥२४॥
[2]श्रुत्यनुग्राहिताशेषानुमानैकानुमानितम् ।
स्वानन्यं स्वप्रतिष्ठानं भावाभावविवर्जितम् ॥२५॥
एतादृक् स्वात्मविज्ञानं देवो देव्यै ह्युपादिशत् ।
तत्क्षणं च वरा शक्तिः स्वात्मानन्या बभूव ह ॥२६॥
[3]महागुरूपदेशेन विस्मृता देहभावना ।
स्वानन्यभावज्ञानेन शिवं वान्यं न चाविदत् ॥२७॥

से लेकर सद्भाव तक का तत्त्व, ब्रह्म आत्मा का निर्णय, 'तत्त्वमसि' आदि महावाक्यों का सार अखण्ड चैतन्य, (२१) नेति नेति यह उपनिषद् के श्रेष्ठ ज्ञान का निरूपण, निरञ्जन, केवल अपने से ही जानने योग्य, स्वानुभवमात्र चिद्घन आत्मा, (२२) अनादि, अनन्त, अखण्ड, सच्चिदानन्दघन, शान्त, शिव, अद्वैत तुरीयों के तुरीयातीत, (२३) विचित्रता के भण्डार जगत की कारण स्वरूप मिथ्या माया, स्वयम्प्रकाश, स्वयंसत्य, स्वतःसिद्ध, स्वतःस्थित, (२४) श्रुति से अनुगृहीत, सम्पूर्ण अनुमानों से अनुमानित, जिससे अन्य कोई नहीं, स्वाश्रयभावाभाव से वर्जित (२५) इस प्रकार के आत्मविज्ञान का देव ने देवी को उपदेश दिया; और उसी क्षण वह श्रेष्ठ शक्ति आत्मा से अनन्य हो गई। (२६) महागुरु के उपदेश से देवी की देहभावना विस्मृत हो गई। उसने अपने अनन्य भाव के ज्ञान से शिव को या अन्य किसी को न जाना। (२७)

१ ग. पुस्तके—'नेति नेती०…', श्लोकार्धं नास्ति। २ ग. श्रुत्यनुग्राहिताशेषानुमानैकानुमानिकम्। ३ ग. तेन।

देहसङ्घातमखिलं भावनावर्जितं जड़म् ।
न्यपतद्वासनाशून्यं देवी पूर्णात्मतामियात् ॥२८॥
पारावतः कोटरस्थो दृष्ट्वा श्रुत्वाऽऽत्मसंविदम् ।
सद्गुरोः सुमहिम्ना च गतदेहात्मवासनः ॥२९॥
अखण्डैकात्मतामाप जीवन्नेव स तत्क्षणम् ।
देहसङ्गं तु विस्मृत्य उर्ध्वस्थतरुकोटरात् ॥३०॥
पपात तस्य देहोऽपि तरुमूले जडात्मकः ।
दृष्ट्वा द्विजं महादेवः किमेतदिति विस्मितः ॥३१॥
ज्ञात्वा ज्ञानदृशा सर्वं महादेवो दयानिधिः ।
आत्मज्ञानात् [1]स्वात्मभूतदेव्या देहं स्पृशन्गुरुः ॥३२॥
लोकलीलाविनोदार्थं स्वशक्त्या [2]साभवत्पुनः ।
सा देवी पुनरुत्थाय दृष्ट्वा पक्षितनुं भुवि ॥३३॥
किमेतदिति पप्रच्छ चित्रं देवस्य वैभवम् ।
[3]त्वमेवैतद्धि जानीथाः सर्वात्मास्त्युपदेशतः ॥३४॥

सम्पूर्ण देहसंघात, भावना-वर्जित, जड़ तथा वासनाशून्य होकर गिर गया और देवी पूर्णात्मता को प्राप्त हुई। (२८) सद्गुरु की महिमा से आत्मज्ञान को सुनकर खोखले के कबूतर की देहात्म-वासना मिट गई। (२९) वह जीते-जी उसी क्षण अखण्ड एकात्मता को प्राप्त हुआ। देह-संघात को भूलकर ऊपर के पेड़ के खोखले से (३०) उसका जडात्मक देह पेड़ के नीचे गिर पड़ा। उसे देखकर महादेव-जी विस्मित हुए कि यह क्या है ! (३१) ज्ञान-दृष्टि से सब कुछ जान-कर दयानिधि महागुरु महादेवजी ने आत्मज्ञान से स्वात्मभूत देवी के देह को छू दिया। (३२) लोकलीला-विनोद के लिये अपनी शक्ति से वे फिर हो गई। देवी फिर उठ बैठीं, देखा कि पक्षी का शरीर पृथ्वी में गिरा हुआ है। (३३) पूछा कि यह क्या है ? देव की महिमा विचित्र

१ ग. स्वात्मभूतं। २ ग. सोऽभवत्। ३ क. ग. त्वमेवैतद्विजानीथाः।

तदा देवी ज्ञानदृशा द्विजज्ञानाप्तिकारणम् ।
ज्ञात्वा देवं तदा प्राह जीवयैनं द्विजं त्विति ॥३५॥
मदाज्ञालङ्घकस्त्वेष लीय[1] वृक्षाग्रकोटरे ।
तस्मादस्य भवेज्जन्म द्विजस्य द्विजकुक्षितः ॥३६॥
एवं वदन्त्यां देवेश्यां द्विजे शक्तिमदाच्छिवः ।
ततो द्विजः समुत्थाय प्रणम्य गुरुदम्पती ॥३७॥
ज्ञात्वा देवीशापवचः प्रहसन् प्राह तौ द्विजः ।
जन्मान्यनेककोटीनि भवन्तु मम सद्गुरो ! ॥३८॥
का हानिर्मे गुरुवरौ[2] स्वात्मभूताखिलात्मनः ।
द्विजत्वं क्षत्रियत्वं वा [3]तथान्याखिलसृष्टिषु ॥३९॥
त्रिमूर्तिर्वाऽथवा मेऽस्तु नाहं तद्भेदमूर्त्तिमान् ।
स्वयमेव स्वतो भामि स्वात्मानन्दगुरोर्बलात् ॥४०॥

है। शिवजी ने कहा कि तुम ही इसे जानो, उपदेश से तुम सर्वात्मा हो गई हो। (३४) तब देवी ने ज्ञानदृष्टि से पक्षी के ज्ञान का कारण जानकर, देव से कहा कि इस पक्षी को जिला दो। (३५) इसने पेड़ के खोखले में छिपकर मेरी आज्ञा का उल्लंघन किया, अतः इस पक्षी का ब्राह्मणयोनि में जन्म हो। (३६) देवी के ऐसा कहने पर शिवजी ने पक्षी को शक्ति दी, तब पक्षी ने उठकर गुरु दंपती को प्रणाम किया (३७) और देवी के शाप की बात जानकर पक्षी हँसता हुआ बोला—हे सद्गुरो ! मेरे अनन्त कोटि जन्म हों, (३८) इसमें मेरी हानि क्या है ? यह अखिल आत्मा मेरा ही आत्मभूत है। ब्राह्मण जाति, क्षत्रिय जाति अथवा शेष सब सृष्टियों में (३९) होऊँ, अथवा त्रिमूर्ति होऊँ, परन्तु मैं इन भेदों से मूर्तिमान् न हो जाऊँगा। मैं गुरु के बल से स्वयम् ही स्वतः प्रकाशमान हूँ और स्वात्मानन्द हूँ—(४०) ऐसा कहते हुए उसे देखकर शङ्कर-पार्वती ने बड़ा आश्चर्य्य माना, और कहा कि इसका ज्ञान पक गया

१ ख. तिर्यक्, ग. लीनो। २ ख. गुरुवशात्। ३ ग. तथात्माखिलसृष्टिषु।

इति वादिनमेवं तं[1] दृष्ट्वा चित्रौ शिवाशिवौ ।
परिपक्वोऽभवदयं[2] लोकलीलां करोत्विति ॥४१॥
शृणु द्विज ! ब्रह्मनिष्ठद्विजो भव मदाज्ञया ।
लोकलीलां कुरुष्वान्ते मामेवाप्स्यसि नान्यथा ॥४२॥
देवीवचःपालनाय द्विजव्याजात् समुद्भवः ।
वामया सह देवोऽहमादिशं ब्रह्म ते यतः[3] ॥४३॥
नाम्ना त्वं वामदेवाख्यो भव लोकेषु विश्रुतः ।
न ते गर्भभयं भूयाद् मन्मायापि न ते वरेत् ॥४४॥
[4]गर्भेष्वात्मज्ञानवांस्त्वं भव मत्प्रापणावधि ।
लब्धमप्यात्मविज्ञानमद्विजत्वान्न सिद्ध्यति ॥४५॥
द्विजत्वमुपनिषदामर्थज्ञानाय कारणम् ।
तस्मादेकं विप्रजन्म प्राप्य मामाप्स्यसि ध्रुवम् ॥४६॥

है। अब यह लोकलीला करे, (४१) हे ब्रह्मनिष्ठ पत्नी ! तू मेरी आज्ञा से ब्राह्मण हो, और लोकलीला कर, अन्त में तू मुझे प्राप्त होगा इसमें अन्तर न पड़ेगा। (४२) देवी के वचनपालन के लिये ब्राह्मण के मिस से जन्म ले, वामा के साथ मैंने (देव ने) तुम्हें ब्रह्मोपदेश दिया है। (४३) इसलिये तुम्हारा नाम वामदेव संसार में प्रसिद्ध हो। फिर, तुम्हें गर्भ-भय न हो, और मेरी माया भी तुम्हें स्पर्श न करे। (४४) गर्भ में ही तुम ज्ञानवान् होओ और वह ज्ञान तुम्हें हमारी प्राप्ति तक बना रहे। आत्मज्ञान प्राप्त होने पर भी विना ब्राह्मण हुए सिद्ध नहीं होता, (४५) क्योंकि उपनिषद् के अर्थ-ज्ञान का कारण ब्राह्मणत्व है, इसलिये एक जन्म ब्राह्मण का पाकर तुम मुझे निश्चय प्राप्त होओगे। (४६) इस प्रकार

१ ग. पुस्तकीयोऽयं पाठः, आ० पु०—'ते, इति । २ ख. परिपक्वोदयफलं ।
३ ग. सतः । ४ ख. ग. गर्भेऽप्यात्मज्ञानवान् ।

इत्याज्ञां शिरसा धृत्वा गुरोः कारुणिकस्य सः ।
पारावतो विप्रतनुर्वामदेवाभिधोऽभवत् ॥४७॥
गर्भ एवाप्तविज्ञान ऋषिर्ज्ञानविदांवरः ।
ब्रह्मनिष्ठः शिवज्ञानी प्रख्यातो भूसुरेष्सुः सः ॥४८॥
अनवद्ये ! वामदेवसमुत्पत्तिरियं प्रिये ! ।
लोकोपकृतये विप्रः सञ्चरत्यात्मवित्तमः ॥४९॥
शिवैकचित्तः सततमन्यत् सर्वं परित्यजन् ।

सूत उवाच—

शृणुत मुनिवरेन्द्रा नाथशर्मा स्वजायां
स्वयमकथयदेवं स्कन्ददेवोपदिष्टः ।
परमशिवरहस्यं प्राक्तनं यः शृणोति
प्रसभमखिलपापान्यर्दयन् याति शम्भुम् ॥५०॥
भवबन्धविमुक्तिदं विचित्रं
परमेशस्य रहस्यमम्बिकायै ।

की कारुणिक गुरु की आज्ञा शिरोधार्य्य करके, वह कबूतर ब्राह्मण का शरीर पाकर वामदेव नाम से प्रसिद्ध हुआ। (४७) ज्ञानियों में श्रेष्ठ इस ऋषि ने गर्भ में ही विज्ञान प्राप्त किया, और ब्रह्मनिष्ठ शिवज्ञानी रूप से ब्राह्मणों में प्रसिद्ध हुआ। (४८) हे प्रिये! अनवद्ये! यह वामदेव की उत्पत्ति मैंने कही। वे आत्मज्ञानियों में श्रेष्ठ लोकोपकार के लिये विचरण किया करते हैं। (४९) सदाशिव में चित्त लगाये रहते हैं, और शेष सब छोड़ रक्खे हैं। सूतजी बोले—हे मुनीन्द्रो! सुनो, इस भाँति नाथशर्मा ने अपनी स्त्री से स्कन्द का कहा हुआ परमशिव का यह प्राचीन रहस्य स्वयं वर्णन किया। इसे जो श्रवण करता है, वह सब पापों का नाश करके शिवजी को प्राप्त होता है। (५०) यह भवबन्धन से विमुक्ति देनेवाला

इति वादिनमेवं तं[1] दृष्ट्वा चित्रौ शिवाशिवौ ।
परिपक्वोऽभवदयं[2] लोकलीलां करोत्विति ॥४१॥
शृणु द्विज ! ब्रह्मनिष्ठद्विजो भव मदाज्ञया ।
लोकलीलां कुरुष्वान्ते मामेवाप्स्यसि नान्यथा ॥४२॥
देवीवचःपालनाय द्विजव्याजात् समुद्भवः ।
वामया सह देवोऽहमादिशं ब्रह्म ते यतः[3] ॥४३॥
नाम्ना त्वं वामदेवाख्यो भव लोकेषु विश्रुतः ।
न ते गर्भभयं भूयाद् मन्मायापि न ते वरेत् ॥४४॥
[4]गर्भेष्वात्मज्ञानवांस्त्वं भव मत्प्रापणावधि ।
लब्धमप्यात्मविज्ञानमद्विजत्वान्न सिद्धयति ॥४५॥
द्विजत्वमुपनिषदामर्थज्ञानाय कारणम् ।
तस्मादेकं विप्रजन्म प्राप्य मामाप्स्यसि ध्रुवम् ॥४६॥

है । अब यह लोकलीला करे, (४१) हे ब्रह्मनिष्ठ पक्षी ! तू मेरी आज्ञा से ब्राह्मण हो, और लोकलीला कर, अन्त में तू मुझे प्राप्त होगा इसमें अन्तर न पड़ेगा । (४२) देवी के वचनपालन के लिये ब्राह्मण के मिस से जन्म ले, वामा के साथ मैंने (देव ने) तुम्हें ब्रह्मोपदेश दिया है । (४३) इसलिये तुम्हारा नाम वामदेव संसार में प्रसिद्ध हो । फिर, तुम्हें गर्भ-भय न हो, और मेरी माया भी तुम्हें स्पर्श न करे । (४४) गर्भ में ही तुम ज्ञानवान् होओ और वह ज्ञान तुम्हें हमारी प्राप्ति तक बना रहे । आत्मज्ञान प्राप्त होने पर भी विना ब्राह्मण हुए सिद्ध नहीं होता, (४५) क्योंकि उपनिषद् के अर्थ-ज्ञान का कारण ब्राह्मणत्व है, इसलिये एक जन्म ब्राह्मण का पाकर तुम मुझे निश्चय प्राप्त होओगे । (४६) इस प्रकार

१ ग. पुस्तकीयोऽयं पाठः, आ० पु०—'ते, इति । २ ख. परिपक्वोदयफलं ।
३ ग. सतः । ४ ख. ग. गर्भेऽप्यात्मज्ञानवान् ।

इत्याज्ञां शिरसा धृत्वा गुरोः कारुणिकस्य सः ।
पारावतो विप्रतनुर्वामदेवाभिधोऽभवत् ॥४७॥
गर्भ एवाप्तविज्ञान ऋषिर्ज्ञानविदांवरः ।
ब्रह्मनिष्ठः शिवज्ञानी प्रख्यातो भूसुरेष्वसुः सः ॥४८॥
अनवद्ये ! वामदेवसमुत्पत्तिरियं प्रिये ! ।
लोकोपकृतये विप्रः सञ्चरत्यात्मवित्तमः ॥४६॥
शिवैकचित्तः सततमन्यत् सर्वं परित्यजन् ।

सूत उवाच—

भृणुत मुनिवरेन्द्रा नाथशर्मा स्वजायां
स्वयमकथयदेवं स्कन्ददेवोपदिष्टः ।
परमशिवरहस्यं प्राक्तनं यः भृणोति
प्रसभमखिलपापान्यर्दयन् याति शम्भुम् ॥५०॥
भवबन्धविमुक्तिदं विचित्रं
परमेशस्य रहस्यमम्बिकायै ।

की कारुणिक गुरु की आज्ञा शिरोधार्य्य करके, वह कबूतर ब्राह्मण का शरीर पाकर वामदेव नाम से प्रसिद्ध हुआ। (४७) ज्ञानियों में श्रेष्ठ इस ऋषि ने गर्भ में ही विज्ञान प्राप्त किया, और ब्रह्मनिष्ठ शिवज्ञानी रूप से ब्राह्मणों में प्रसिद्ध हुआ। (४८) हे प्रिये ! अनवद्ये ! यह वामदेव की उत्पत्ति मैंने कही। वे आत्मज्ञानियों में श्रेष्ठ लोकोपकार के लिये विचरण किया करते हैं। (४९) सदाशिव में चित्त लगाये रहते हैं, और शेष सब छोड़ रक्खे हैं। सूतजी बोले—हे मुनीन्द्रो ! सुनो, इस भाँति नाथशर्मा ने अपनी स्त्री से स्कन्द का कहा हुआ परमशिव का यह प्राचीन रहस्य स्वयं वर्णन किया। इसे जो श्रवण करता है, वह सब पापों का नाश करके शिवजी को प्राप्त होता है। (५०) यह भवबन्धन से विमुक्ति देनेवाला

उपदिष्टं सकृदप्युमेशभक्त्या
शृणुयाद् यः स विमुक्त एव सत्यम् ॥५१॥

इति श्रीकाशीमूलरहस्ये ब्रह्मवैवर्त्ते खिले काशीकेदार-
माहात्म्ये चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

पञ्चविंशोऽध्यायः ।

ऋषय ऊचुः—

शिवज्ञानरसानन्दकन्दभूतमहामते ! ।
सूताऽस्माकं वद विभो ! राज्ञश्चन्द्रवतो जनिम् ॥ १ ॥

शिवजी का विचित्र रहस्य है । इसे साक्षात् शिवजी ने अम्बिका से कहा था, जो इसे भक्ति से सुनता है, वह अवश्य मुक्त हो जाता है । (५१)

यह ब्रह्मवैवर्त के खिल भाग काशीमूलरहस्य के अन्तर्गत
केदारमाहात्म्य का चौबीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥

पशुपतीश नेपाल में, ज्योतिर्लिङ्ग प्रधान ।
शिवशर्मा पूजत सदा, विधि तें परम सुजान ॥
भील दास ताको रह्यौ, सेवत कपट विहाय ।
परुष कह्यौ इक वार सो, क्षमा कीन्ह ऋषिराय ॥
द्विज-सेवा फल नृप भयो, भील नाम शशिवान ।
द्विजवर गर्ग महर्षि भे, शिवतप ज्ञान निधान ॥
निज पूरब सेवा सुमिरि, नृपहिं दयो बहु ज्ञान ।
मुक्ति विघ्न के नाश हित, भेज्यौ जहँ हिमवान ॥

ऋषि लोग बोले—हे महाबुद्धिमान् सूतजी ! आप शिव ज्ञान-रसानन्द के कन्द हैं. आप हम लोगों से राजा चन्द्रवान् की उत्पत्ति का वर्णन कीजिये । (१) वह चन्द्रवान् कौन था, जिसने ऐसे दो

कश्चासौ चन्द्रवान्नाम येन पृष्टौ मुनीश्वरौ ।
वामदेवकुमारौ सद्रहस्यस्य प्रकाशकौ ॥ २ ॥
तत्प्रश्नव्याजतः शम्भोर्दिव्यवागभवन्मुने[1] ! ।
तया वाचा कुमारोऽपि रहस्यं † [2]सम्प्रकाशयत् ॥ ३ ॥
काशी विनिन्द्यापि नृपो लिङ्गान्यपि महेशितुः ।
ज्ञानवानिति गर्वेण दुर्विदग्धोऽपि मौढ्यतः ॥ ४ ॥
पुनः शिवप्रसादस्य योग्योऽभूत् केन हेतुना ।
शिवाज्ञया कुमारोऽपि रहस्यं † [3]श्रावयच्च तम् ॥ ५ ॥
तादृशस्यापि नृपतेर्गर्विष्ठस्य वदस्व नः ।
इति पृष्टस्तदा सूतो मुनिभिः शिवयोगिभिः ॥ ६ ॥
सूतः प्राह पुनर्विप्रान् जनिं चन्द्रवतः क्रमात् ।

[4]सूत उवाच—

शृणुध्वं मुनयः सर्वे नाथशर्माप्यमुं कथाम् ॥ ७ ॥

मुनीश्वरों से पूछा, जो कि सद्रहस्य के प्रकाशक थे और वामदेव तथा कुमार नाम से जगत् में विख्यात थे। (२) उसके प्रश्न के बहाने शङ्कर की दिव्य आकाशवाणी हुई और उसी वाणी के प्रमाण से कुमार ने दिव्य-रहस्य को प्रकाशित किया। (३) राजा ने ज्ञानी होने के अभिमान से तथा कच्चे ज्ञान और मूढ़ता से काशी की निन्दा की और शिवजी की मूर्तियों की भी निन्दा कर डाली। (४) फिर भी वह शिवजी के प्रसाद का पात्र कैसे हुआ ? ऐसे अभिमानी राजा को भी शिवजी की आज्ञा से कुमार ने रहस्य कैसे सुनाया ? (५) यह बात आप हम लोगों को बतलाइये। जब शिव-योगी मुनियों ने सूतजी से इस भाँति पूछा, तब सूत ने चन्द्रवान् की उत्पत्ति ब्राह्मणों को सुनाई। सूतजी ने कहा—हे मुनिलोग ! आप श्रवण करें, जो कथा

१. ग. मुनेः। २ ग. तं जगाद ह। ३ ग. प्रावदच्च। ४ ख. ग. पुस्तकीयोऽयं पाठः, आ० पु०—नास्ति। † अडभाव आर्षः।

स्वपत्न्यै प्राह युष्मभ्यं तां वदामि शुभावहाम् ।
पुरा हिमाचलप्रान्ते नेपालभुवि भूसुराः ॥ ८ ॥
शिवं पशुपतीशाख्यं षट्कालं पर्य्यसेवयन् ।
कश्चिच्छिवात्मविज्ञानी शिवशर्माभिधो द्विजः ॥ ९ ॥
भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गस्त्रिपुण्ड्राङ्कितमस्तकः ।
रुद्राक्षहारमुकुटकेयूरकरकङ्कणः ॥१०॥
पञ्चाक्षरीजपपरो रुद्राध्यायजपी सदा ।
शिवलिङ्गार्चनपरस्त्रिकालं नियमेन सः ॥११॥
श्रीमत्पशुपतीशानसेवानियमतत्परः ।
कुटुम्बी नित्यनैमित्यकर्मश्रद्धापरायणः ॥१२॥
एवंभूतस्य विप्रस्य गृहकर्माणि साधितुम् ।
कश्चिद्भिल्लो 'वनचरो क्षुत्क्षामो दासतामगात् ॥१३॥

नाथशर्मा ने भी अपनी स्त्री से कही थी, (७) उसी शुभावह कथा को मैं आप लोगों से कहता हूँ। पूर्वकाल में हिमाचल के प्रान्त में नेपाल के कुछ ब्राह्मण (८) पशुपतिनाथ महादेव की छवों कालों में पूजा किया करते थे। उनमें से एक शिवशर्मा नामक ब्राह्मण शिवात्मविज्ञानी था। (९) वह सब अङ्गों में विभूत रमाये, मस्तक पर त्रिपुंड्र लगाये, रूद्राक्ष का हार, मुकुट, केयूर और कङ्कण पहिने रहता था। (१०) सदा शिव-पञ्चाक्षरी और रूद्री का पाठ किया करता था। तीनों काल नियम से शिवलिङ्गार्चन करता था। (११) श्रीमत्पशुपतिनाथ महादेव की सेवा के नियम में तत्पर रहता था। वह ब्राह्मण कुटुम्बी भी था, नित्य नैमित्तिक कर्म और श्राद्ध में परायण रहता था। (१२) ऐसे ब्राह्मण के घर का काम करने के लिये, एक जंगली भील, जो कि भूख से दुर्बल हो रहा था, नौकर हो गया। (१३) उस ब्राह्मण की आज्ञा शिरोधार्य्य करके वह भील उसके घर का सब काम निष्कपट भाव से

१ ग. 'वनचारः'।

तस्याज्ञां शिरसा धृत्वा विप्रस्य स तु भिल्लकः ।
गृहकर्म्माणि सर्वाणि करोति कुहकं विना ॥१४॥
कदाचित्तमधिक्षिप्य विप्रं कार्यान्तरेषु सः ।
वदत्युद्धतवद्विप्रं क्षमी विप्रो न किं वदेत् ॥१५॥
एवं स्थिते तदा विप्रे कालात् पशुपतीश्वरः ।
[1]विप्रप्रसादसुमुखो नभोवाण्यावदद्द्विजम् ॥१६॥
त्वयि प्रसन्नोऽहं विप्र ! षट्कालं सेवया तव ।
मद्भक्त्या द्विजयोग्येन श्रौतस्मार्तोक्तकर्मणा[2] ॥१७॥
मम ज्ञानं तव भवेदपरोक्षमसंशयम् ।
इतः परे जन्मनि तेन[3] ज्ञानेनाप्स्यसे च माम् ॥१८॥
इति [4]वाचं द्विजः श्रुत्वा [5]शिवोक्तमिति निश्चयन् ।
विरक्तः शिवभक्ताग्र्यस्तपसा कायशोषणम् ॥१९॥

करता था। (१४) किसी समय दूसरे कामों में उसने ब्राह्मण की निन्दाकर उसे उद्दण्डतापूर्वक जवाब दिया। परन्तु क्षमावान् ब्राह्मण ने कुछ न कहा। (१५) उस ब्राह्मण के इस भाँति रहने से समय आने पर पशुपतीश्वर महादेवजी ने ब्राह्मण के ऊपर प्रसन्न होकर आकाशवाणी द्वारा उससे कहा—(१६) हे ब्राह्मण ! तेरे तीनों कालों की सेवा, अपनी भक्ति, ब्राह्मण के योग्य श्रौत-स्मार्त कर्म से मैं तेरे ऊपर प्रसन्न हूँ। (१७) तुझे मेरा अपरोक्ष ज्ञान अवश्य हो। इसके बाद के जन्म में तू मुझे उसी ज्ञान के द्वारा प्राप्त करेगा। (१८) ब्राह्मण ने ऐसी वाणी सुनकर यह निश्चय किया कि यह शिवजी ने कहा है। इसलिए वह शिवभक्तों का सरदार विरक्त हो गया और तप से शरीर सुखाने लगा। (१९) अन्त में अनशन करके उसने शरीर छोड़ दिया। वही दूसरे जन्म में

---

१ ग. विप्रं। २ ग. पुस्तकीयोऽयं पाठः, आ० पु०—'श्रौतस्मार्त्तोक्तिकर्मणा, इति। ३ ख. तद्, ग. तद् ज्ञानेनाऽस्य सेवनाम्। ४ ग. पुस्तकीयोऽयं पाठः, आ० पु०—'वाच्यम्, इति। ५ ग. शिवोक्तां निश्चिकाय सः।

प्रायोपवेशव्याजेन त्यक्तदेहोऽभवद् द्विजः ।
स एवान्यभवे ख्यातो गर्गो नाम महामुनिः ॥२०॥
गार्गीनाम्नी तस्य पत्नी यामाहुर्ब्रह्मवादिनीम् ।
यैवोपनिषदां मध्ये प्रतिपाद्या मुनीश्वरैः ॥२१॥
यया कृते पूर्वपक्षे याज्ञवल्क्यादयोऽपि ताम् ।
ब्रह्मवित्स्वपि विख्याताः[1] समाधास्यन्तः कृच्छ्रतः ॥२२॥
तस्याः पतिः [2]पूर्वभवे गर्गोऽभूदुत्तरे भवे ।
ब्रह्मनिष्ठः शिवज्ञानी प्रख्यातो ब्रह्मवादिषु ॥२३॥
यो भिल्लस्तस्य [3]शुश्रूषां चकार प्राग्भवे चिरम् ।
सेवाबलात् शिवमुनेर्नृपोऽभूदन्यजन्मनि ॥२४॥
चन्द्रवान्नाम धर्मज्ञः पार्वतीयो [4]हिमाचले ।
प्रतापवान् कीर्त्तिमांश्च ब्रह्मण्योऽनेकयज्ञकृत् ॥२५॥
तस्य धर्ममतिं ज्ञात्वा त्रिकालज्ञानवान् मुनिः ।
पूर्वजन्मनि भिल्लं तं स्वात्मसेवाफलाद् नृपम् ॥२६॥

प्रख्यात गर्ग ऋषि हुआ। (२०) और जिस गार्गी को ब्रह्मवादिनी कहते हैं, वह उन्हीं की पत्नी थी, जिनका कि उपनिषदों के बीच में मुनीश्वरों द्वारा प्रतिपादन किया गया है। (२१) जिनके पूर्वपक्ष करने पर ब्रह्मवेत्ताओं में विख्यात याज्ञवल्क्यादि ने बड़े कष्ट से समाधान कर।पाया। (२२) उसके पूर्व-जन्म में गर्ग पति रहे और उत्तर-जन्म में ब्रह्मवादियों में प्रख्यात ब्रह्मनिष्ठ शिवज्ञानी। (२३) जिस भिल्ल ने उनकी सेवा पूर्व-जन्म में बहुत काल तक की थी। सेवाबल से वही दूसरे जन्म में राजा हुआ। (२४) उसका नाम पड़ा चन्द्रवान्। हिमालय के पहाड़ी प्रदेश में उसका राज्य था। वह धर्मज्ञ, प्रतापवान्, कीर्तिमान् एवं ब्रह्मण्य था। उसने अनेक यज्ञ किये थे। (२५) उसकी धर्मगति देखकर तीनों

---

१ ग. पुस्तकीयोऽयं पाठः, आ० पु०—'विख्यातां'। २ ग. पूर्वभागे। ३ ग. शुश्रषाः। ४ ग. हिमालये।

ज्ञात्वा गर्गो महायोगी तमुद्धर्त्तुमगान्नृपम् ।
राजानमात्मविज्ञानमुपादिक्षत् क्रमेण सः ॥२७॥
'तेनाप्तज्ञानविभवः प्राप्तवैराग्यवान्नृपः ।
गुरुं प्राह नृपो विप्रं गर्गं ब्रह्मविदां वरम् ॥२८॥
स्वामिन्! राज्यं सुते स्थाप्य तपः ²कुर्वेति† मे मतिः।
उद्भूता तपसे स्थानं ममादिश महागुरो! ॥२९॥
इति पृष्टस्तदा राज्ञा प्राह गर्गो नृपं तदा ।
केदारं गच्छ तपसे तत्र सिद्धिर्भवेत्तव ॥३०॥
उपाधिरस्ति कश्चित्ते सिद्ध्यै पूर्वभवे कृतः ।
न भवेत् स यदि तव ³कृतार्थोऽद्यैव नान्यथा ॥३१॥
तदा प्राह नृपो विप्रमुपाधिः को गुरो! वद ।
केनोपायेन मा भूयादुपाधिस्तं च मे वद ॥३२॥

कालों को जाननेवाले मुनि ने जान लिया कि यह पूर्व जन्म का वही भील है, जिसने मेरी बड़ी सेवा की थी। मेरी सेवा से ही यह राजा हो गया है। (२६) सो इसका उद्धार करना चाहिये। ऐसा सोचकर महायोगी गर्ग उसके पास गये। उन्होंने क्रम से राजा को आत्मज्ञान का उपदेश किया। (२७) उससे राजा को आत्मज्ञान की महिमा मालूम हुई और वैराग्य हो गया। तब ब्रह्मज्ञादियों में श्रेष्ठ अपने गुरु गर्ग ब्राह्मण से राजा ने कहा कि (२८) हे स्वामिन्! मेरी यह इच्छा होती है कि लड़के को राज्य देकर तप करूँ, हे महागुरो! मुझे तप के लिये स्थान बतलाइये। (२९) जब राजा ने इस प्रकार पूछा, तब गर्गजी ने राजा से कहा कि तुम तप के लिये केदारजी जाओ, वहीं तुम्हें सिद्धि प्राप्त होगी। (३०) तुम्हारी सिद्धि में तुम्हारे पूर्वजन्म की थोड़ी सी करणी से उपाधि है। यदि वह न होती तो तुम आज ही कृतार्थ हो जाते, यह मैं ठीक कहता हूँ। (३१) तब राजा

१ ग. तेन चात्मज्ञानभवं वैराग्यं प्राप्य चन्द्रवान्। २ ग. तपःकर्म्मणि।
३ क. कृतार्थोऽद्यैव। † 'कुर्वे इति' इति स्थिते, यलोपे सन्धिरार्षः।

इति पृष्टस्तदा प्राह [1]भूयो गर्गः [2]शिवास्तधीः ।
शृणु राजन् ! पूर्वभवे भिल्लस्त्वं विप्रसेवकः ॥३३॥
सेवापरोऽपि मौर्ख्यात् त्वं तं कदाचिदतिक्रमेः ।
क्षमावान् शिवयोगी स न त्वां किमपि चोक्तवान् ॥३४॥
तस्य सेवाफलं [3]राज्यभोगः प्राप्तस्त्वयाधुना ।
तदधिक्षेपणफलं ज्ञानविघ्नाय तिष्ठति ॥३५॥
तस्मान्मया सद्गुरुणा[4] प्राप्तज्ञानोऽपि सन् भवान् ।
भवसि त्वं सान्तरायः [5]ज्ञानसिद्धौ विभासि मे ॥३६॥
इति तद्वचनं श्रुत्वा सद्गुरोर्वचनं नृपः ।
प्रणिपत्य पदद्वन्द्वे रक्ष मां कृपया विभो ! ॥३७॥
त्वं त्रिकालज्ञाननिधिर्येनाहं तारितोऽभवम् ।
तथा मेऽनुग्रहः कार्यो भवच्चरणसेविनः ॥३८॥

ने ब्राह्मण से कहा—हे गुरुदेव ! वह उपाधि कौन-सी है ? उसे मुझे बतलाइये । (३२) उसके ऐसा पूछने पर शिव में ही चित्त लगानेवाले गर्गजी बोले—हे राजन् ! सुन, तुम पूर्वजन्म के ब्राह्मण-सेवक भील हो । (३३) सेवा में लगे रहने पर भी तुमने किसी दिन उस ब्राह्मण का अपमान कर दिया और वह ब्राह्मण क्षमाशील शिव-योगी था, उसने तुमसे कुछ भी न कहा । (३४) उसकी सेवा का फल-स्वरूप तुम्हें इस समय राज्य-भोग मिला है और उससे झगड़ा करने का फल ज्ञान में विघ्न करने के लिये बैठा हुआ है । (३५) इसलिये मेरे ऐसे सद्गुरु से ज्ञान पानेपर भी तुम्हारे ज्ञान की सिद्धि में विघ्न होगा ऐसा मुझे मालूम होता है । (३६) इस प्रकार का वचन सद्गुरु से सुनकर, राजा उनके दोनों चरणों पर गिर गया और कहने लगा कि हे विभो ! कृपा करके मेरी रक्षा कीजिये । (३७) आप त्रिकाल-

१ ग. भूयं । २ ग. शिवाप्तधीः । ३ ग. राज्यभोगं प्राप्तं त्वयाधुना । ४ ख. ······ सद्गुरुणा । ५ ख. ज्ञानसिद्धेरभासि. ग. ज्ञानसिद्ध्यौ······ ।

तदा दयालुः कृपया नृपमाह महागुरुः ।
ध्यात्वा 'परं शिवं चित्ते कृतार्थस्त्वं भवेति तम् ॥३६॥
शिव एव करोतु त्वां कृतागसमपीश्वरे ।
मत्प्रीत्यै मे प्रभुर्नाथः प्रपञ्चानामिति द्विज ! ॥४०॥
उक्त्वा हस्तेन संस्पृश्य तपसे प्रैषयद् गुरुः ।
स राजा चन्द्रवान्नाम यस्यार्थं शिववागभूत् ॥४१॥
कुमारमुनये मूलरहस्याख्यानहेतुकी ।
प्राप्तापराधोऽपि नृपः कृतार्थोऽभूच्छिवाज्ञया ॥४२॥
एषा देवि ! नृपोत्पत्तिरनवद्ये ! पुराविदः ।
वदन्ति, शिखिवाहोऽपि तथा मां समुपादिशत् ॥४३॥
पश्य देवि ! न कुर्वन्ति किं किं शिवजना भुवि ।
क्व वराको भिल्लतनुः क्व राज्यश्रीश्च तादृशी ॥४४॥

ज्ञान के निधि हैं, आप मेरे ऊपर ऐसा अनुग्रह कीजिये, जिससे मेरा उद्धार हो, क्योंकि मैं आपके चरणों का सेवक हूँ। (३८) तब दयालु महागुरु ने शिव का मन में ध्यान करके राजा से कहा—जाओ, तुम कृतार्थ होओगे। (३९) तुमने ईश्वर का अपराध किया है। फिर भी मेरे नाथ प्रभु शिवजी तुम्हारा कल्याण करें, और तुम्हारे लिए प्रपञ्चों की इति कर दें। (४०) ऐसा कहकर ब्राह्मण ने उसके ऊपर अपना हाथ फेरा और उसे तप के लिये भेज दिया। वही राजा चन्द्रवान् था, जिसके लिये आकाशवाणी हुई। (४१) इसी कारण कुमार मुनि ने उन्हें मूलरहस्य उपाख्यान सुनाया। अपराधी होने पर भी वह राजा शिवजी की आज्ञा से कृतार्थ हुआ। (४२) हे देवि ! अनवद्ये ! पुराणों को जाननेवाले राजा की उत्पत्ति का इस प्रकार से वर्णन करते हैं और स्कन्द ने भी मुझसे ऐसा ही वर्णन किया था। (४३) हे देवि ! देखो, शिवभक्त लोग संसार में क्या क्या नहीं करते ? कहाँ वह विचारा

१ ग. परशिवं ।

येन प्राप्तः 'पुनर्मुक्त्यै कीदृशः सदनुग्रहः।
तस्माच्च शिवभक्तानां महिमा केन वर्ण्यते ॥४५॥
अकर्तुं कर्तुमपि चाऽन्यथाकर्तुमपीश्वराः[2]।
शिवभक्तांस्तत्प्रभावं जानाति शिव एव हि ॥४६॥
नापराधः शिवजने प्रकर्त्तव्यः कदाचन।
पश्य राज्ञश्चन्द्रवतः सेवाफलमपीदृशम् ॥४७॥
अपराधफलं तद्वदवशेनापि चागमत्।
तथापि शिवयोगीन्द्रानुग्रहेणैव तारितः[3] ॥४८॥
अकृत्वा सेवनं शम्भुभक्ते व्यर्थकृतागसाम्।
का गतिर्नैव जानामि सैव[4] जानाति शासकः ॥४९॥
इत्याह [5]महिलां विप्राः! नाथशर्मा शिवप्रियः।
राज्ञश्चन्द्रवतो जन्म तद्दुर्बुद्धिं च सद्गतिम् ॥५०॥

भील और कहाँ वैसी राज्यश्री? (४४) और फिर भी अनुग्रह ऐसा कि उसी से उसे मोक्ष भी मिल गया। अतः शिवभक्तों की महिमा का कौन वर्णन कर सकता है? (४५) वे लोग करने, न करने, अन्यथा करने में समर्थ हैं। अपने भक्तों को और उनके प्रभाव को शिवजी ही जानते हैं। (४६) शिवभक्तों का कभी अपराध न करना चाहिये। देखो, राजा चन्द्रवान् सेवा का फल भी ऐसा था (४७) और उसी भांति अपराध का फल भी ऐसा हुआ कि लाचार हो गये! फिर भी शिव-योगीन्द्र के अनुग्रह से ही उद्धार हुआ। (४८) जिसने शिव-भक्त की सेवा तो कभी न की और व्यर्थ उनका अपराध किया, उनकी क्या गति होगी? मैं नहीं जानता, वही सबके शासक शिव ही जानते हैं। (४९) हे ब्राह्मणो! इस प्रकार शिव-प्रिय नाथशर्मा ने अपनी स्त्री से राजा चन्द्रवान् की उत्पत्ति, दुर्बुद्धि और सद्गति का वर्णन किया। (५०) इस

१ ग. पुनर्मुक्तः। २ ख. ······ मपीश्वरः। ३ ख. वारितः। ४ ग. स हि। ५ ख. महिषीं।

इत्थं ह्यद्भुतशम्भुभक्तिमहिमासारं रहस्यं परं
यो नित्यं पठते तथा शिवजनान् संश्रावयत्यादरात् ।
श्रोतारः पठिता च[1] शम्भुकृपया ह्याजन्मपापं क्षणाद्-
निर्धूयाखिलभुक्तभोगविभवाश्चान्ते शिवं यान्ति ते ॥५१॥
शृणुत मुनिवरेन्द्राः पापतूलानलाख्यं
परमशिवरहस्यं [2]नास्तिके नैव बोध्यम् ।
परमशिवरहस्यं यः शृणोतीशभक्त्या
सकृदपि खलु सत्यं स प्रयातीशधाम ॥५२॥

इति श्रीकाशीमूलरहस्ये ब्रह्मवैवर्त्ते खिले काशीकेदार-
माहात्म्ये पञ्चविंशोऽध्यायः ॥२५॥

प्रकार अद्भुत शम्भु-भक्ति-महिमा का सार यह परम रहस्य है, जो इसे नित्य पढ़ता है या शिवभक्तों को सादर सुनाता है। वह पढ़नेवाला और वे सुननेवाले जन्मभर के पापों को क्षणभर में नष्ट करके अखिल भोग के विभवों को प्राप्त होते हैं और अन्त में उन्हें शिवपद मिलता है। (५१) हे मुनीन्द्रो! सुनो यह परम शिवरहस्य पापरूपी रुई के लिये अग्नि है। इसे नास्तिकों को नहीं सुनाना चाहिये। इस परम-शिव-रहस्य को एक बार भी जो ईश की भक्ति के साथ सुनता है, वह निश्चय ईशधाम को प्राप्त होता है।

यह श्री ब्रह्मवैवर्त के खिलभाग काशीमूलरहस्यान्तर्गत केदार-
माहात्म्य का पचीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥

---

१ ग. पठिताश्च । २ ग. नास्तिके नैव वार्च्यम् ।

षड्विंशोऽध्यायः ।

[१]ऋषय ऊचुः—

सूत ! सत्यवतीपुत्रप्रेमास्पद ! महामते ! ।
त्वन्मुखाम्भोजनिष्पन्दमकरन्दरसायनम् ॥ १ ॥
श्रवणाञ्जलिना पीत्वा तृप्तिं नोपलभामहे ।
नाथशर्मा शिवपदाम्भोरुहासक्तषट्पदः ॥ २ ॥

नोड हंस युग को रह्यौ, वट मँह मानस तीर ।
तेहि तर थाप्यौ यक्षपति, लिङ्ग खचित मणि हीर ॥
नाल खाइ गेरत कमल, लिङ्ग उपरि दोउ हंस ।
एहि विधि पूजत ज्ञान बिनु, हंस चन्द्र अवतंस ॥
देखि शिवा पूछेउ शिवहिं, जिनको पूरब पुन्य ।
कह्यौ रह्यौ शिव भक्त इक, धर्म गुप्त अघशून्य ॥
मल्लिकार्जुन शिव भ्रमर, शक्ति पूजि दल फूल ।
निज पालित मृग युगल पर, डारत है अनुकूल ॥
खोजि थके ऋषि भाजि ते, पैठे विन्ध्य अरण्य ।
तिन हित चित चिन्तित भये, कोमल चित ऋषि धन्य ॥
काल पाइ दोउ जाइ भे, दम्पति विप्र कुवृत्त ।
चोर जानि अपराध छमि, शिव ज्ञानी मृदुचित्त ॥
राख्यौ निजगृह तासु धन, लै दोउ गये पराइ ।
पै द्विज करुणा दुहुन पै, कीन्ही शम्भु मनाइ ॥

ऋषि लोग बोले—हे सूतजी ! आप सत्यवती के पुत्र व्यासजी के प्रेमपात्र हैं । आपके मुख-कमल के मकरन्द रसायन को (१) श्रवणपुट से पान कर हम लोगों को तृप्ति नहीं होती । नाथशर्मा तो शिवजी के चरण-कमलों का प्रेमी भौंरा था, (२) और उसकी पत्नी अनवद्या भी शिवजी के चरण-कमलों की भौंरी थी । ये दोनों

१ क. ग. मुनयः ।

अनवद्या चास्य पत्नी शिवपादाब्जषट्पदी ।
कथं जातौ दम्पती तौ शिवयोः प्रियवल्लभौ ॥ ३ ॥
केन पुण्यप्रभावेण शिवैकहृदयौ सदा ।
कौ तौ पूर्वभवे पुण्यौ तपो वा कीदृशं तयोः ॥ ४ ॥
अनवद्यानाथशर्मनामानौ केन हेतुना ।
वदाऽस्माकं यथापूर्वं सम्भवं शिवयोगिनोः[1] ॥ ५ ॥
इति पृष्टस्तदा सूतः प्राह तान् सत्कथां तयोः ।

सूत उवाच—

शृणुध्वं मुनयः सर्वे दम्पत्योः पूर्विकां कथाम् ॥ ६ ॥
मयाप्येवं पुरा पृष्टः [2]सर्वज्ञो मद्गुरुः पुरा ।
तदा मामाह भगवान् रहस्यं बादरायणः ॥ ७ ॥

प्राणी शङ्कर-पार्वती के भक्त थे, इनकी उत्पत्ति कैसे हुई ? (३) किस पुण्य के प्रभाव से इनका मन केवल शिवजी में ही लगा रहता था। उनके पूर्वजन्म का पुण्य कैसा था अथवा उन्होंने कौन-सा तप किया था ? (४) जिस कारण उनका नाम—अनवद्या और नाथशर्मा पड़ा। पहिले आपने जिस भाँति अन्य अनेक कथाओं का वर्णन किया है, उसी भाँति इन शिवयोगिओं की उत्पत्ति का भी वर्णन कीजिये। (५) ऐसा पूछने पर सूतजी ने उन लोगों से उन दोनों का जन्म-वृत्तान्त कहना प्रारम्भ कर दिया। सूतजी बोले—हे मुनि लोग! आप दोनों प्राणियों के पूर्व जन्म की कथा सुनिये। मैंने भी पहिले अपने सर्वज्ञ गुरुजी से ऐसा ही पूछा था। (६) तब भगवान् बादरायण ने मुझे यह रहस्य बतलाया कि (७) पूर्वकाल में मानस सरोवर में एक जोड़ा हंसों का रहता था। (७) उन दोनों में बड़ा प्रेम था और वे आनन्द से विचरा करते थे।

१ ग. शिवयोगिनः । २ ग. सर्वज्ञः सद्गुरुः ।

हंसयोर्दम्पती पूर्वं मानसाख्ये सरोवरे।
स्थितौ परस्परं प्रेम्णा विहरन्तौ निरन्तरम् ॥ ८ ॥
सौवर्णकमलानां तौ नालभक्षणतत्परौ।
प्रातःसङ्गवमध्याह्नापराह्णे सायमप्यमू ॥ ९ ॥
रात्रौ [1]यामानन्तरं च षट्कालं नालभक्षकौ।
सरोवरतटे गाढच्छायो न्यग्रोधपादपः ॥१०॥
तस्योपरि तयोर्नीडस्थानं ताभ्यां विनिर्मितम्।
तत्र स्थित्वा निशायां तौ सरस्यहनि चेरतुः ॥११॥
कुबेरस्तत्र वै नित्यं विहर्तुं याति साबलः।
चिरं विहृत्य संस्नाय वटमूले समाश्वसन्[2]।
भस्मोद्धृत्य त्रिपुण्ड्राङ्कः[3] शिवं तत्र समर्चयन्[4] ॥१२॥
पश्चाद् याति स्वनगरीमलकां स्त्रीगणैः सह।
तेन नित्यं [5]स्वपूजार्थं लिङ्गं संस्थापितं पुरा ॥१३॥

वे दोनों सुवर्ण-कमल की नाल (८) सबेरे, दिन चढे, दोपहर, तीसरे पहर और सन्ध्या को खाया करते थे। एक पहर रात वीत जाने पर वे फिर मृणाल भक्षण करते थे। इस प्रकार वे छः वार भोजन किया करते थे। (९) सरोवर के तट पर एक सघन छायावाला वट का वृक्ष था, उसी के ऊपर उन दोनों नें घोसला बना रक्खा था। (१०) उसमें वे दोनों रात को रहते और दिन को सरोवर में विचरण करते थे। वहाँ कुबेरजी भी स्त्रियों को साथ लेकर नित्य विहार के लिये आते थे। (११) वहुत देर विहार करने के बाद स्नान करके वट के नीचे विश्राम करते और भस्म त्रिपुंड्र धारण करके वहाँ शिवजी की पूजा किया करते थे। (१२) पूजा करने के बाद स्त्रियों के साथ अपनी नगरी अलकापुरी को चले जाते थे। उन्होंने नित्य की पूजा के लिये उस वट के

१ ग. यामान्तरं तौ। २ ग. समाश्रयत्। ३ ग. ··· त्रिपुण्ड्राक्तः। ४ ग. समर्चयत। ५ ग. हि पूजार्थं।

वटमूले पारदेन निर्मितं रत्नभूषितं ।
विहारार्थं यदा याति तदा सम्पूज्य गच्छति ॥१४॥
हंसयुग्मं प्रतिदिनं स्वभक्षार्थं सरोवरात् ।
नालयुक्तं समुत्पाट्य [1]चञ्चुना हाटपङ्कजम् ॥१५॥
वृक्षोपरि स्वके नीडे स्थित्वा नालं विमोच्य च ।
सन्त्यज्य नालान् पुष्पाणि [2]संभक्ष्य द्विजदम्पती ॥१६॥
सुखं विहरतां स्वैरं तटे सरसि नित्यशः ।
हंसाभ्यां सम्प्रयुक्तानि हेमपद्मानि नित्यशः ॥१७॥
षट्कालं लिङ्गशिरसि पद्मानि प्रपतन्ति च[3] ।
काले काले विभोः पूजा घटिता ह्यवशात्तयोः ॥१८॥
[4]पुष्पपातानन्तरं तौ [5]नालं नित्यं बभक्षतुः ।
तेन ताभ्यां पूजनस्य प्राप्तश्च नियमोऽप्युत ॥१९॥

नीचे (१३) रत्न भूषित पारे का लिङ्ग स्थापित कर रक्खा था। जब विहार के लिये जाते थे, तब उसकी पूजा करके लौट आते थे। (१४) दोनों हंस नित्य ही सरोवर से अपने खाने के लिये नालयुक्त स्वर्ण-कमल ले जाते (१५) और अपने घोसले में बैठकर दोनों प्राणी अपनी चोंच से नाल काट-काट कर खाते और फूल नीचे गिरा देते थे। (१६) वे स्वतन्त्र होकर सुखपूर्वक नित्य सरोवर के तट पर विहार करते थे। जिन स्वर्ण-कमलों को दोनों हंस नित्य नीचे गिराते थे, (१७) वे बराबर छवों कालों में उस लिङ्ग के ऊपर गिरते थे। इस भाँति छवों कालों में उन दोनों द्वारा विना जाने लिङ्ग की पूजा हो जाती थी। (१८) फूलों को गिराने के बाद ही वे दोनों नाल-भक्षण किया करते थे। इस भाँति उन दोनों से पूजा का नियम भी बन गया था (१९) कि पहिले शम्भु का पूजन करना, और उसके बाद भोजन करना। इससे लिङ्ग के

१ ख. चञ्च्वा हाटकपङ्कजम्, ग. चञ्चुना स्वर्णपङ्कजम्। २ ग. खादन्तौ। ३ ग. हि। ४ ग. पुष्पपातानन्दरतौ। ५ ग. नालान्।

प्रथमं पूजनं शम्भोः पश्चाद्भोजनमित्यपि ।
एवं लिङ्गोपरि सदा[1] पुष्पाणि विलसन्ति हि ॥२०॥
एवं कतिपये काले गते तत्र सरस्तटे ।
पार्वतीपरमेशानौ स्वारूढवरवाहनौ ॥२१॥
विहारार्थं सरस्तीरे स्वागतौ गणसंवृतौ ।
चिरं विहारं तौ कृत्वा वटमूलमुपागतौ ॥२२॥
तत्र लिङ्गोपरि तदा पुष्पवृष्टिरभूद्दिवः ।
किमेतदिति भूतेशं पप्रच्छ नगराट्सुता ॥२३॥
केनासौ हेमकमलवृष्टिः सम्पात्यते दिवः ।
न दृश्यते कोऽपि विभो ! विविक्तेऽत्र सरस्तटे ॥२४॥
नभस्यपि न कोऽप्यत्र दृश्यते देवयानवान् ।
पुष्पाणि सम्यक् सञ्छिद्य[2] विनालानि शिवोपरि॥२५॥
सौवर्णानि पतन्त्यत्र लिङ्गोपरि पृथक् पृथक् ।
नाम्ना सहस्रेण यथा चैकैकं[3] नामपूर्वकम् ॥२६॥

ऊपर सदा फूल बने ही रहते थे। (२०) इस प्रकार कुछ काल बीतने पर पार्वती-परमेश्वर अपने वाहन पर सवार होकर (२१) गणों से घिरे हुए विहार के लिये उस सरोवर के तट पर आये । जब दोनों बहुत देर तक विहार करके वट के नीचे आए, (२२) तब लिङ्ग के ऊपर आकाश से पुष्प की वर्षा हुई । पार्वती ने शङ्करजी से पूछा—यह क्या बात है ? यह कमल की वृष्टि ऊपर से कौन कर रहा है ? इस एकान्त सरोवर के तीर पर कोई दिखाई भी नहीं पड़ता । (२४) आकाश में किसी देवता का विमान भी नहीं है । सुनहले फूलों को भली भांति तोड़कर, नाल रहित करके शिव-लिङ्ग के ऊपर (२५) एक-एक करके कौन गिरा रहा है ? मानो एक २ नाम लेकर सहस्र नाम से (२६) पूजा

१ ग. तदा । २ ख. संभिद्य । ३ ग. चैकनामपूर्वकम् ।

अर्चनं क्रियते केनाऽप्यपूर्वं दृश्यते तथा ।
इति पृष्टस्तदा शम्भुः प्रहसन् प्राह पार्वतीम् ॥२७॥
शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि विचित्रा प्राणिनां गतिः ।
तस्याः 'पृच्छा न कर्त्तव्या कर्म्म तस्याश्च कारणम् ॥२८॥
सत्कर्म्मण्यपि वा देवि ! दुष्कर्म्मण्यपि संसृतिः ।
भोगयित्वा कर्म्मफलं किञ्चिच्छेषात् पुनर्जनिः ॥२९॥
प्राप्यते प्राणिभिर्देवि ! चक्रभ्रमणवत्पुनः ।
एवं लोके बहुविधः प्राणिनां कर्म्मसञ्चयः ॥३०॥
पश्य न्यग्रोधवृक्षाग्रे नीडं पत्रसमुच्चये ।
किमस्तीति महालिङ्गे पुष्पवृष्टेश्च कारणम् ॥३१॥
तदा देवी समुन्नम्य तद्वृक्षाग्रमपश्यत ।
नीडान्तर्गहनात् पुष्पपातं दृष्ट्वाऽऽह शङ्करम् ॥३२॥
स्वामिन्नतिशयोऽस्त्यत्र नीडान्तर्हंसयुग्मकम् ।
पुष्पाणि पातयत्यत्र सौवर्णानि शिवोपरि ॥३३॥

कर रहा हो। यह अपूर्व बात दिखलाई पड़ रही है। ऐसा पूछने पर हँसते हुए शिवजी ने पार्वती से कहा—(२७) हे देवि ! सुनो, प्राणियों की गति विचित्र है। उसके लिये पूछ-ताछ नहीं करना चाहिये, उसका कारण कर्म है। (२८) हे देवि ! सत्कर्म या दुष्कर्म दोनों से ही संसार है। कर्मफल भोगने के वाद थोड़ा-सा शेष रह जाने से फिर जन्म होता है। (२९) हे देवि ! इसी प्रकार से प्राणियों के जन्म-मरण का चक्र चला करता है। लोक में प्राणियों का वह कर्म संचय बहुत प्रकार का है। (३०) देखो, वट के पेड़ के अग्रभाग में घने पत्तों के बीच में जो घोसला है, उसमें क्या है? वही महालिङ्ग पर पुष्प-वृष्टि का कारण है। (३१) तब देवी ने झुककर वृक्ष के अग्रभाग को देखा, और घोसले के भीतर से पुष्प-वृष्टि को देखकर शङ्करजी से कहा—(३२) हे स्वामिन् !

१ ग. पत्रनीडसमुच्चये ।

पश्य नाथाण्डजेष्वेषा[1] भक्तिः शम्भोः सुदुर्लभा ।
ज्ञात्वा भक्तिं पातयति मौढ्याद्वात्र[2] यदृच्छया ॥३४॥
वद शम्भो! प्राणनाथ! ज्ञातुं मे कौतुकं महत् ।
यदि भक्त्या ज्ञानपूर्वमर्चयेत् ते पदं व्रजेत् ॥३५॥
स्वभावमौढ्यादपि चेद्धेतुरग्रेऽस्य सद्गतेः ।
अथवा पूर्वसत्कर्म्मप्रभावाद्धटते किमु ॥३६॥
येन केनापि भावेन तव पूजा सुदुर्लभा ।
यस्य कस्यापि वा जन्तोस्तारिणी नाऽत्र संशयः ॥३७॥
तस्मादस्यास्ति मे ज्ञातुमिच्छा पक्षियुगस्य वै ।
केन पुण्येन ते पूजा केन पापेन पक्षिता ॥३८॥
तव लीला विचित्रा हि वद मे कारणं स्फुटम् ।
एवं ब्रुवन्तीं तां देवीं प्राह मन्दस्मितो हरः ॥३९॥

यहाँ एक बात है, घोसले में एक हंस की जोड़ी है, वही सुनहरे फूल शिवलिङ्ग पर गिरा रही है। (३३) हे नाथ! देखो, चिड़ियों में ऐसी अन्य दुर्लभ शङ्कर-भक्ति है। हे शम्भो! कहो, ये जानकर भक्ति से गिरा रहे है या विना जाने गिरा रहे हैं? अथवा घटना-चक्र के अनुसार उनसे ऐसा हो रहा है। हे प्राणनाथ! मुझे बड़ा कौतुक है, यदि भक्ति से ज्ञानपूर्वक ऐसा करते हैं, तो आपके पद को प्राप्त होंगे। (३५) मूढता के स्वभाव से भी यदि ऐसा होता है, तो भी आगे चलकर इनकी सद्गति अवश्य होगी। या ऐसा तो नहीं है कि पूर्वजन्म के सत्कर्म के प्रभाव से इनसे ऐसा बन पड़ रहा है? (३६) जिस किसी भाव से हो, तुम्हारी पूजा तो अति दुर्लभ है। वह किसी भी जन्तु को तार सकती है। इसमें संशय नहीं है। इसलिये इन चिड़ियों की जोड़ी की व्यवस्था जानने की मुझे इच्छा है कि ये किस पुण्य से आपकी पूजा कर रहे हैं, और किस पाप से ये पक्षी हुए हैं। (३८) आपकी

१ ख. नाथाण्डजेऽप्येषा। २ ख. मौढ्याद् योऽत्र।

शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि हंसयोः पूर्विकां कथाम् ।
मम पूजाप्रभावेण चाग्रेऽपि गतिरेतयोः ॥४०॥
पुरा श्रीपर्वते पुण्ये मल्लिकार्जुनवासिते ।
[1]भ्रमराम्बाख्यया देव्या विहृते शूलपाणिना ॥४१॥
तत्रावसच्छिवज्ञानी धर्म्मगुप्ताभिधो मुनिः ।
त्रिकालं सेवयन् शम्भुं मल्लिकार्जुननायकम्[2] ॥४२॥
[3]भ्रमराम्बां महादेवीं भक्तसर्वार्थदायिनीम् ।
धर्म्मगुप्तस्य विप्रर्षेराश्रमे मृगपोतकः ॥४३॥
वनाद् भ्रष्टः स्वयूथात् स[4] प्राप विप्राश्रमं भिया ।
तं दृष्ट्वा विप्रवर्य्योऽपि दयालुः [5]संप्रसन्नधीः ॥४४॥
स्वबालवत्तं पुपोष दिव्योदकतृणाङ्कुरैः ।
एवं कतिपये जाते दिवसे हरिणार्भकः ॥४५॥

लीला विचित्र है। मुझे स्पष्ट कारण बतलाइये। देवी के ऐसा कहने पर शङ्करजी ने मुसकुराकर कहा—(३९) हे देवि! दोनों हंसों के पूर्वजन्म की कथा सुनो। मेरी पूजा के प्रभाव से इनकी पहिले कैसी गति हुई थी ? (४०) पहिले किसी समय में मल्लिकार्जुन के निवास स्थान श्रीपर्वत में, जहाँ पर भ्रमराम्बा देवी के साथ शूलपाणि ने विहार किया था, (४१) धर्मगुप्त नाम शिवज्ञानी वसते थे। वे तीनों काल में मल्लिकार्जुननाथ शङ्कर की सेवा किया करते थे। (४२) वहीं भ्रमराम्बा महादेवी की, जो भक्तों के सब अर्थों को देनेवाली हैं, पूजा किया करते थे। एक हिरन का बच्चा (४३) अपने गोल से बिछुड़कर डरा हुआ वन से ब्रह्मर्षि धर्मगुप्त के आश्रम में आ गया। उसे देखकर परम दयालु प्रसन्नचित्त ब्राह्मण (४४) दिव्य जल और तृण के अंकुरों से बच्चे की भांति उसे पालने लगे। इस

१ ग. भ्रामरीरूपया। २ ग. ··· नामकम्। ३ ग. भ्रामरीं च। ४ ग. सम्प्राप। ५ ग. सुप्रसन्नधीः।

यत्र गच्छति[1] स विप्रो मृगशावोऽनुगच्छति ।
महालिङ्गस्य सेवार्थं यदा गच्छति स द्विजः ॥४६॥
त्रिकालं सोऽपि तं पश्चात् प्रयाति[2] शिवसन्निधिम् ।
शिवप्रसादभस्मापि[3] पुष्पं देव्याः प्रसादजम् ॥४७॥
मृगशावस्यापि विप्रः प्रेम्णा निक्षिपते तनौ ।
एवं स्थिते मृगीं काश्चित् सहायामानयद् मृगः ॥४८॥
तया साकं द्विजस्याग्रे खेलन् तिष्ठति नित्यशः ।
एवं कतिदिने जाते मृग्या सार्कं स एणकः ॥४६॥
स्वभावमूढस्तिर्यक्त्वाद्धावन् वनमुपाविशत् ।
मृगैः साकं महारण्ये खेलंस्तत्रैव संस्थितः ॥५०॥
तदा प्रेम्णा धर्म्मगुप्तस्तस्याऽदर्शनतस्त्वरन् ।
वनं सर्वं विचित्यासौ[4] न प्राप मृगयुग्मकम् ॥५१॥

भांति कुछ काल बीतने पर वह हिरन का बच्चा (४५) ऐसा परच गया कि जहाँ-जहाँ वे ब्राह्मण जाते, वह भी पीछे लगा रहता था। जब वह ब्राह्मण महालिङ्ग की पूजा के लिये जाते थे, तो (४६) वह भी तीनों काल नित्य उनके पीछे-पीछे शङ्कर के पास जाया करता था। शिवजी का प्रसाद भस्म और देवीजी का प्रसाद फूल (४७) ब्राह्मण देवता प्रेम से उस हिरन के बच्चे के ऊपर फेंक दिया करते थे। ऐसा नित्य ही हुआ करता था। एक दिन वह मृग एक मृगी को अपनी सहचरी बना लाया, (४८) और उसके साथ ब्राह्मण के सामने नित्य खेला करता था। इस भांति कुछ दिन बीतने पर वह मृग उस मृगी के साथ, (४९) पशु तो था ही, दौड़ता हुआ बन में चला गया, और मृगों के साथ उसी बन में खेलता हुआ कहीं रह गया। (५०) धर्मगुप्त को उससे प्रेम था। जब उन्होंने उसे नहीं देखा, तो ढूँढ़ने चले। तमाम बन ढूँढ डाला, पर

१ ग. गच्छत्येष, ग. गच्छति वै। २ ख. ग. संयाति। ३ ग. ... भस्मादि ...। ४ ग. पुस्तकीयोऽयं पाठः, आ० पु०—विचित्वा स।

अतीव चिन्तासंयुक्तो मृगयुग्मं गतं क्वचित् ।
केन वा भक्षितं युग्मं मम चित्तप्रसत्तिदम्[1] ॥५२॥
जलपाने ह्रदे नष्टमथवा तटिनीजले ।
वेगेन घृष्टं खातं[2] वा व्याघ्रसिंहगजादिभिः ॥५३॥
अहो मया दुष्टधिया पालितं तन्न रक्षितम् ।
घातदोषो ममायातः[3] पालनं व्यर्थतामगात्[4] ॥५४॥
एवं विक्षेपचित्तः सन् [5]स्वविवेकेन सान्त्वितः ।
मृगयुग्मं कालपाकाद् मृतं तच्चान्यजन्मनि ॥५५॥
अज्ञानतः शिवमुनेः क्लेशदं यदभूत् पुरा ।
तेन पापेन विन्ध्यादौ किरातमिथुनं त्वभूत् ॥५६॥
शिवप्रसादात्तद्[6]भस्मस्पर्शाद् देव्याःप्रसादजात् ।
मुनेः प्रीतिकरौ तत्र स्यातां यदि मृगीमृगौ ॥५७॥

वे दोनों मृग न मिले । (५१) अब तो उन्हें बड़ी चिन्ता हुई कि वे दोनों क्या हुए ? उनसे मेरा चित्त प्रसन्न होता था । सो कोई उन्हें खा तो नहीं गया ? (५२) या पानी पीने के समय किसी तालाब या नदी में गिरकर डूब तो नहीं गये, या नदी के वेग में बह तो नहीं गये, या बाघ, सिंह, हाथी आदि ने उन्हें मार तो नहीं डाला ? (५३) अरे ! मैं दुर्बुद्धि हूँ । मैंने उनका पालन तो किया, पर रक्षा न कर सका । उनका पालन व्यर्थ गया । उलटा उनकी हत्या का दोष मुझे लगा । (५४) इस प्रकार उनके चित्त में विक्षेप हुआ, पर उन्होंने अपने विवेक से उसे ठीक कर लिया । काल पाकर वे हिरन मर गये । दूसरे जन्म में (५५) अज्ञानपूर्वक शिवमुनि को क्लेश पहुँचाने के अपराध से विन्ध्य पर्वत में जाकर किरात-किरातनी हुए । (५६) शिवजी के प्रसाद भस्म के स्पर्श तथा देवी के प्रसाद से यदि वे दोनों मृग-मृगी

१ ख. चित्तप्रसाददम् । २ ग. भुक्तं । ३ ग. मयायातः । ४ ग. पुस्तकीयोऽयं पाठः, आ० पु०—व्यर्थतामभूत् । ५ ग. स विवेकेन । ६ ख. ... सद्भस्म ... ।

तदैव धर्म्मगुप्तस्य मम भक्तस्य सङ्गतः ।
कृतार्थौ मत्पदं यातां तेन साकं न संशयः ॥५८॥
तस्यान्तरायस्तत्पूर्वजन्मकर्म्मविपाकतः ।
प्राप्तस्तयोस्तदा देवि ! वक्ष्ये तदपि वै शृणु ॥५९॥
पूर्वजन्मनि तौ देवि ! प्रभासे विप्रदम्पती ।
दुर्वृत्तौ चौर्यवृत्त्या तौ स्वकुक्षिभरणे स्थितौ ॥६०॥
शम्भुविज्ञानवान्नाम शिवज्ञानी द्विजोत्तमः ।
चौर्ये दृष्टौ प्रबद्धौ तौ परिमोच्य घृणानिधिः ॥६१॥
स्वगृहे स्थापयामास विप्र इत्यभिमानतः ।
अन्नवस्त्रादिभिस्तोष्यास्थापयद् गृहकर्म्मणि ॥६२॥
किंचित् कालं तेन सह स्थित्वा सर्वं विदन् गृहे ।
तत्प्रसादं च सम्पाद्य पश्चात् कुहकमाचरन् ॥६३॥

मुनिजी को प्रसन्न रखते, (५७) तो मेरे भक्त धर्मगुप्त के साथ ही कृतार्थ होकर मेरे पद को प्राप्त होते इसमें सन्देह नहीं है। (५८) परन्तु पूर्वजन्म के जिस कर्म के फल से, मेरे पद की प्राप्ति में उन्हें विघ्न उपस्थित हो गया उसे भी बतलाता हूँ, सुनो। (५९) हे देवि ! पूर्वजन्म में ये प्रभासक्षेत्र में ब्राह्मणब्राह्मणी थे। दोनों के दोनों दुष्ट चोरी करके अपना पेट पालते थे। (६०) शम्भुविज्ञानवान् नामक एक योगी बड़े शिवज्ञानी और श्रेष्ठ ब्राह्मण थे, उन्होंने इन्हें चोर समझकर बाँध लेने पर भी कृपानिधान होने के कारण छोड़ दिया। (६१) उन्हें ब्राह्मण समझकर घर में रख लिया, अन्न-वस्त्र से सन्तुष्ट करके घर के कामों में लगा दिया। (६२) उन दोनों ने कुछ दिनों तक उनके साथ रहकर घर का सब भेद जान लिया और उनकी प्रसन्नता भी प्राप्त की, परन्तु पीछे कपट किया। (६३) उनका द्रव्य, भूषण वस्त्रादि सब लेकर रात को तुरन्त वन में चले गये,

१ ग. मे ।

द्रव्यं भूषणवस्त्रादि सर्वं हृत्वा त्वरन्निशि ।
गतावरण्ये तत्रस्थचौरैः सर्वं हृतं निशि ॥६४॥
पुनरन्यत्र भिक्षित्वा भ्रमेतां देशदेशके ।
शम्भुविज्ञानवान् योगी संस्मरन् कुधियं तयोः ॥६५॥
दयालुर्नैव चुक्रोध दयया परमार्थधीः ।
मिथ्याभूतं द्रव्यजातं भ्रामकं क्षणभङ्गुरम्[1] ॥६६॥
गतं चेदपि का हानिः स्थितं चेदपि काऽस्ति मुत् ।
तयोरज्ञानताशान्त्यै प्रार्थयामास मां द्विजः ॥६७॥
स्वामिन्नज्ञावात्महनौ [2]मुच्येतां वा कथं त्विमौ ।
मत्सङ्गं प्राप्य तु पुनर्न विनष्टौ तथा कुरु ॥६८॥
मत्सेवां कांचिदपि तौ भक्त्या ह्यकुरुतां खलु ।
तस्याः फलं दापय त्वं माऽपराधस्य दापय ॥६९॥

परन्तु वन के चोरों ने उनसे सब कुछ छीन लिया। (६४) फिर, वे भीख मांगते २ देश २ मारे फिरे। शुम्भुविज्ञानवान् योगी ने उनकी कुचाल का स्मरण करके (६५) दया से क्रोध भी नहीं किया, क्योंकि वे दयालु थे और उनकी बुद्धि परमार्थ में लग रही थी। उन्होंने सोच लिया कि यह द्रव्यादि सब मिथ्या, भ्रम में डालनेवाला एवं क्षणभङ्गुर है। (६६) यह चला ही गया तो मेरी क्या हानि हुई, और यदि रह जाता तो भी कौन-सी प्रसन्नता थी ? तब उन दोनों के अज्ञान की शान्ति के लिये ब्राह्मण ने मेरी प्रार्थना की (६७) कि हे स्वामिन् ! वे दोनों अज्ञानी और आत्म-घाती हैं, उन दोनों को मोक्ष की प्राप्ति कैसे होगी ? उन्हें फिर मेरा संग हो। हे प्रभो ! वे जैसे नष्ट न हों ऐसा करो। (६८) कुछ-न-कुछ तो मेरी सेवा उन दोनों ने भक्ति के साथ अवश्य की है। उसी का फल उन्हें मिले और मेरे अपराध का न मिले। (६९) योगी ने मेरी इस भाँति प्रार्थना करके उन दोनों को प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया। लोक

---

१ ग. क्षणभङ्गुरे। २ ख. मुच्यते मां।

इति मां प्रार्थ्य योगीन्द्रस्तावाशिषं ददौ मुदा ।
एवं महानुभावा हि सन्ति लोकेऽपि मत्पराः ॥७०॥
आगांसि पृष्ठतः कृत्वा तुष्यन्ति स्वल्पसेवया ।
ततः परं दम्पती तौ कालेन मृत्युमापतुः ॥७१॥
कल्पायुतैरपि तयोर्नोद्धारः कर्म्मदृष्टितः ।
तथापि मद्भक्तवाक्यपालनायाहमेतयोः ॥७२॥
दत्वा द्वित्रिजनिं पश्चाद् मम ज्ञानप्रदानतः[1] ।
उद्धरिष्यामीति पुनर्जन्म दत्तं मृगात्मना ॥७३॥
मृगत्वेऽपि पुरा कर्म्मपाकशेषेण सन्मुनेः ।
अज्ञानाद्धर्म्मगुप्तस्य दुःखं दत्त्वा गतौ वने ॥७४॥
तत्प्रार्थनात् किरातौ च पक्षिजन्म तदागसः ।
तस्यापराधदोषेण पक्षित्वं प्रापतुः पुनः ॥७५॥
तावेव दम्पती चेमौ हंसौ जातौ सरस्तटे ।
मद्भक्ताशीर्बलेनैतौ प्रापतुर्मम पूजनम् ॥७६॥

में ऐसे महानुभाव मेरे भक्त हैं, (७०) जो अपराधों को भूलकर थोड़ी-सी सेवा से ही प्रसन्न हो जाते हैं। इसके बाद वे दोनों प्राणी समय पाकर पञ्चत्व को प्राप्त हुए। (७१) कर्म की दृष्टि से उनका उद्धार तो दश हजार कल्प में भी होना कठिन था। तथापि अपने भक्त की बात रखने के लिये उन दोनों को दो-तीन जन्म देकर (७२) उसके बाद अपना ज्ञान देकर उद्धार करने की इच्छा से उन दोनों को मैंने मृग का जन्म दिया। (७३) मृग होने पर भी पूर्व-कर्म के पाक के शेष रह जाने से अज्ञानपूर्वक वे दोनों धर्मगुप्त मुनि को दुख देकर वन में भाग गये। (७४) मुनिजी की प्रार्थना से उन दोनों को किरात का जन्म और उनके अपराध से पक्षी का जन्म मिला। उसी पाप से उन्हें फिर भी पक्षी का जन्म मिला। (७५) वे ही दोनों प्राणी इस सरोवर के तट पर हंस

१ ग. ज्ञानप्रसादतः।

अज्ञानादपि मत्पूजा श्रेयोऽग्रे संविधास्यति ।
षट्कालं भक्तनियमस्त्वेतयोरस्ति भामिनि ! ॥७७॥
तत्काले पद्मनालान्यादाय [1]सुसमानि तौ ।
स्थित्वा स्वनीडे पद्मानि छित्वा पादेन चञ्चुना ॥७८॥
न्यपातयेतां भूमौ तौ तानि लिङ्गे पतन्ति च ।
एवमज्ञातपुण्यस्य सन्दर्भो मज्जनाशिषा ॥७९॥
घटितस्त्वेतयोर्देवि ! तस्मात् सेव्या हि मज्जनाः ।
मत्सेवयापि यन्न स्याद् मद्भक्तैस्तद्भवेद् ध्रुवम् ॥८०॥
पश्यैतयोर्गतिः कुत्र पापयोः कल्पकोटिभिः ।
तादृशावपि मद्भक्तकृपया तारितौ क्षणात् ॥८१॥
अग्रे जन्मनि चैतौ हि प्राप्नुयातां हि मां शिवे ! ।
इत्येवं हंसयोर्वृत्तं श्रुत्वा देवी क्रमाच्छिवात् ॥८२॥

हुए हैं, और मेरे भक्त के आशीर्वाद के बल इनको मेरा पूजन सुलभ हो रहा है। (७६) अज्ञान से भी मेरी पूजा होने से इनका आगे चलकर कल्याण ही होगा। हे भामिनि ! छवों काल भोजन करने का इनका नियम है। (७७) भोजन के समय सुन्दर कमल के नाल ले आते हैं, और दोनों अपने घोसले में बैठकर चोंच और पैर के द्वारा कमल के फूल तोड़कर नीचे गिराते हैं। (७८) वे ही लिङ्ग पर गिर रहे हैं। इस भाँति मेरे भक्त के आशीर्वाद से (७९) विना जाने ही इनसे पुण्य हो रहा है, अतः मेरे भक्तों की सेवा करनी चाहिये। जो बात मेरी सेवा से नहीं होती, सो भी निश्चय करके मेरे भक्त की सेवा से हो जाती है। (८०) देखो न, इन पापियों की तो कोटि कल्प में भी गति नहीं थी। ऐसे लोग भी मेरे भक्त की कृपा से एक क्षण में तर जाते हैं। (८१) हे शिवे ! अगले जन्म में ये मुझे पावेंगे। इस प्रकार जब देवी ने दोनों हँसों का वृत्तान्त क्रम से शिवजी का कहा हुआ सुना, (८२) तब आश्चर्य्य में

१ ख. ससुमानितौ, ग. सुसमाहितौ ।

आश्चर्यचित्ता देवेशभक्तानां वैभवं स्तुवत्[1] ।
स्वामिन्! त्वद्भक्तवर्या ये त्वद्रूपा एव ते ध्रुवम् ॥८३॥
अव्याजकरुणापुञ्जमूर्त्तयोऽज्ञानभञ्जकाः ।
कदाचिदुपकारेण तुष्यन्ते केन वापि ते ॥८४॥
[2]शतमप्यपकाराणां न स्मरन्त्यात्मवत्तया ।
पश्य-कीदृग्विधो भक्तः शम्भुविज्ञानवान् कृती ॥८५॥
बद्धौ चौरौ मोचयित्वा स्वगृहे रक्षिताविमौ ।
तस्यापि कृत्वा कौटिल्यं सर्वस्वं चोर्य निर्गतौ ॥८६॥
तथापि तस्य नायातः क्रोधो जातदयेन हि ।
स्वल्पां कृतां कदाचित्तां सेवामेव हृदा स्मरन् ॥८७॥
मत्सेवकौ दुर्गतेर्हि न [3]भूयास्तां तु भाजने ।
इति चित्ते दयां कृत्वा त्वां सम्प्रार्थ्य तयोः कृते ॥८८॥

आकर देवेश के भक्तों की महिमा की सराहना करने लगीं। और बोलीं—हे स्वामिन्! जो आपके श्रेष्ठ भक्त हैं, वे आपके ही रूप हैं, इसमें सन्देह नहीं है। (८३) वे विना कारण ही करुणा करनेवाले और अज्ञान का नाश करनेवाले हैं। जो कदाचित् कोई भी उपकार बन पड़े, तो उससे सन्तुष्ट हो जाते हैं (८४) और आत्मज्ञानी होने से सौ अपकार भी भूल जाते हैं। देखो तो पुण्यात्मा शम्भुविज्ञानवान् कैसे भक्त थे? (८५) बँधे हुए चोरों को छुड़ाकर वे अपने घर में लाये और उनकी रक्षा की। ऐसे पुरुष से भी कुटिलता करके वे सर्वस्व चुराकर भाग गये, (८६) तथापि उनको क्रोध न आकर दया ही आई। थोड़ी-सी जो उन्होंने कभी सेवा की थी, उसी का मन में स्मरण करते रहे (८७) कि ये मेरे दोनों सेवक दुर्गति के भाजन न हों। ऐसी दया उनके चित में थी, अतः उनके लिये तुम्हारी प्रार्थना की, (८८) और प्रेम से योगिराज ने हार्दिक अनुग्रह किया। उस अनुग्रह के पुण्य से दोनों मृग

१ ग. प्रति। २ ग. स्वयमप्यकाराणां। ३ ग. भूयातां।

अनुग्रहमदात् प्रेम्णा मनःपूर्वेण योगिराट् ।
तदनुग्रहपुण्येन धर्म्मगुप्तं मृगौ पुनः ॥८९॥
प्राप्य तस्य[1] प्रसादेन श्रीशैलेशप्रसादितौ ।
धर्म्मगुप्तोऽप्येतयोर्वै शिवज्ञानी दयां व्यधात् ॥९०॥
अज्ञानात् क्लेशदौ जातौ तस्यापि सहवासतः ।
तदज्ञातक्लेशदानफलं पक्षित्वकारणम् ॥९१॥
तथापि भक्तवरयोरनुग्रहबलादिमौ[2] ।
तिर्यञ्चावपि ते पूजा ह्येताभ्यां त्वञ्जसालभत् ॥९२॥
अनया पूजया चाग्रे करस्थस्त्वदनुग्रहः[3] ।
तस्माद् मद्भक्तसेवा हि स्वल्पापि सुमहाफला ॥९३॥
ज्ञात्वा ये वै प्रकुर्वन्ति धन्यास्ते एव नेतरे ।
त्वयापि न भवेद् यत्तत् तैः साध्यं त्वत्प्रसादतः ॥९४॥
भवान् सर्वहृदिस्थोऽपि भक्तचित्ते विशिष्यते ।
संसृतेर्नोद्धृतिर्येषां न तान् जानन्ति ते ध्रुवम् ॥९५॥

होकर फिर धर्मगुप्त से मिले (८९) और उनके प्रसाद से उन दोनों पर श्रीशैलेश की कृपा हुई। शिवज्ञानी धर्मगुप्त ने भी उन दोनों पर दया की। (९०) पर उनका साथ पड़ने पर भी ये दोनों अज्ञान से उनके लिये दुखदायी हुए। उसी अज्ञानपूर्वक क्लेश देने से वे दोनों पक्षी हुए, (९१) तथापि भक्त और उनके अनुग्रह के बल से इन दोनों ने पशु होने पर भी सीधे-सीधे आपकी पूजा का सौभाग्य प्राप्त किया। (९२) इस पूजा से आपका अनुग्रह इनके लिये सुलभ हो गया, अतः आपके भक्त की थोड़ी पूजा भी बहुत बड़ा फल प्रदान करती है। (९३) ऐसा जानकर जो उनकी पूजा करते हैं, वे ही धन्य हैं, अन्य लोग धन्य नहीं हैं। जो काम आपसे भी नहीं होता, वह भी उनकी कृपा से साध्य हो जाता है। (९४) आप सबके हृदयों में स्थित रहने पर भी भक्त के

१ ग. तेन। २ ग. ··· वशादिमौ। ३ ग. तदनुग्रहः।

इति देवं च तद्भक्तान् प्रशंसन्ती पुनः शिवा[1] ।
प्रणम्य पादकमले प्राह बद्धपुटाञ्जलिः ॥९६॥
स्वामिन्नेतद्धंसयुग्ममग्रे किं भविता[2] वद ।
त्वत्पूजयानया सम्यक् सुप्रयत्नप्रलब्धया ॥९७॥
एतत्तिर्यग्जन्म मुक्त्वा कौ भवेतामिमौ वद ।
त्वां वा कथं समाप्स्येतां (?) शिवयोगिप्रसादतः ॥९८॥
इदमेवानयोर्जन्म विद्यते वान्यदप्यहो ।
विद्यते चेदग्रजन्म वद तत्कीदृशं विभो ! ॥९९॥
शिवयोगिवचः सत्यं कथं त्यक्तुं समीहसे ।
अहो त्वद्भक्तमहिमा केन वा वर्णितुं क्षमः ॥१००॥
ब्रह्मविष्णवीन्द्रमहिमाप्युच्छिनत्त्यसकृद् दृशा[3] ।
गिरिर्दासायते सद्यः समुद्रश्चुलुकायते ॥१०१॥

हृदयों में विशेष रूप से रहते हैं। जिनको ये लोग नहीं जानते निश्चय करके उनका उद्धार संसार से है ही नहीं। (९५) इस प्रकार शिवा ने बार-बार देव-देव तथा उनके भक्तों की सराहना की, और चरणों पर गिर, हाथ जोड़कर बोली—(९६) हे स्वामिन् ! यह कहिये, इन दोनों हंसों की जोड़ी आगे चलकर क्या होगी ? यह जो आपकी पूजा क सौभाग्य इनको बिना प्रयत्न मिल रहा है, (९७) उससे ये तिर्यग् योनि को छोड़कर क्या होंगे ? सो कहिये शिवयोगी की कृपा से आपको कैसे प्राप्त होंगे ? (९८) इन दोनों की इसी जन्म तक समाप्ति होगी या और भी जन्म होंगे और यदि आगे चलकर और भी जन्म हो, तो कहिये कि वह कैसा होगा ? (९९) शिवयोगी का वचन तो झूठा हो नहीं सकता। भला, आपके भक्त की महिमा का कौन वर्णन कर सकता है ? (१००) वे ब्रह्म, विष्णु और इन्द्र की महिमा को भी अपनी दृष्टि से बार-बार नष्ट

१ ग. पुनः । २ ख. किमभवतां । ३ ग. पुस्तकीयोऽयं पाठः, आ० पु०— 'प्युच्छिद्य त्यसदृग्दृशा' इति, ख. प्युच्छिद्य त्वसदृग्दृशा ।

मृतप्रायायते [1]कालः कैलासः कन्दुकायते ।
कण्ठलोहायते चक्रं हरेः सर्वारिहन्त्र्यपि ॥१०२॥
चन्द्रसूर्यावपि स्वल्पखद्योतकणिकायते (?) ।
त्रिमूर्त्तीनामपि तनुः षाण्मासशिशुकायते ॥१०३॥
तृणायते जगत् सर्वं तृणं वज्रायते क्षणात् ।
तस्मात्ते भक्तमहिमा केन वा वर्णितुं क्षमः ॥१०४॥
न चान्यैः प्राकृतैर्वेद्यस्त्वद्भक्तिरसवर्जितैः ।
एवं देवी महेशं शिवजनमहिमासारमुक्त्वार्यचित्ता
शम्भुं पप्रच्छ हंसद्वयगतिमपि तज्जन्म भाव्यं च पश्चात् ।
देवोऽपि श्रीमहेशीमवददतिशयं हंसयोर्भावि जन्म
श्रीशम्भोर्ध्यानयोगात् स्वपदवितरणां स्वात्मना भक्तिदार्ढ्यात्।१०५

कर देते हैं पर्वत उनके दास हो जाते हैं, समुद्र चिल्लू भर हो जाता है, (१०१) काल मरा-सा हो जाता है, कैलास गेंद-सा हो जाता है, विष्णु का चक्र सब शत्रु का हनन करनेवाला होने पर भी कण्ठ का आभूषण हो जाता है। (१०२) चन्द्रसूर्य्य भी जुगनू से छोटे हो जाते हैं और त्रिमूर्त्ति की भी देह छः मास के बच्चे की-सी हो जाती है। (१०३) सम्पूर्ण संसार तृण-सा हो जाता है और क्षण में तृण वज्र हो जाता है। इसलिये अपने भक्त की महिमा आप ही जानते हो, और दूसरा कोई संसारी, जो भक्तिरस से वर्जित है, (१०४) उसे नहीं जान सकता। इस प्रकार देवी ने महेश से शिवभक्तों की महिमा का सरल स्वभाव से वर्णन करके शिवजी से उन दोनों की गति और उनको अगले जन्म क्या होना है यह सब बातें पूछीं। शिवजी ने भी श्रीपार्वती से उन हंसों का भावी जन्म कहा और श्रीशम्भु के ध्यान योग से तथा अपनी भक्ति की दृढ़ता से स्वपद वितरण करने का कथन किया। (१०५) सकल जन के पापों का नाश करनेवाला यह सद्रहस्य पार्वती

[1] ग. मृतः प्राणायते कालं ।

सकलजनमहाघध्वंसकं सद्रहस्यं
गिरिशगिरिसुतासद्भक्तिदं ज्ञानदं च।
जगदुपकृतिसारं यः शृणोतीशभक्त्या
स लभति शिवधाम क्षाल्य पापौघपङ्कम् ॥१०६॥

इति श्रीकाशीमूलरहस्ये ब्रह्मवैवर्त्ते खिले काशीकेदारमाहात्म्ये
षड्विंशोऽध्यायः ॥२६॥

सप्तविंशोऽध्यायः ।

[1]ऋषय ऊचुः—
पाराशर्यमहायोगिशिष्य ! सूत ! गुणाकर ! ।
[2]पृच्छन्तीमम्बिकां देवो हंसयोः सद्गतिं प्रति ॥ १ ॥

शङ्कर की भक्ति तथा ज्ञान देनेवाला है, और जगत् के उपकार का सार है। इसे जो शिवजी की भक्ति के साथ सुनता है, वह पापसमूह के कीचड़ को धोकर शिवधाम को प्राप्त होता है ॥१०६॥

यह ब्रह्मवैवर्त का खिलग्रन्थकाशीमूलरहस्य के अन्तर्गत काशी-
केदारमाहात्म्य का छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥

काल पाइ दोऊ भये, अब यह दम्पति हँस।
पावहिंगे द्विज देह पुनि, पूजि चन्द्र-अवतंस ॥
अनवद्या अरु नाथ द्विज, धर्म धुरीण उदार।
तालवनेश्वर की कृपा, गुरु मिलि गये कुमार ॥
अखिल तीर्थ करि काशिका, आइ पूजि केदार।
पावहिंगे सायुज्यगति, सुनहु कथा सुखसार ॥

ऋषि लोग बोले—हे व्यास महायोगी के शिष्य सूतजी ! आप गुणों की खानि हैं। आप बतलाइये कि जब अम्बिका ने दोनों हँसों की सद्गति की बात पूछी, (१) तब सर्वेश देव ने संसार से छुड़ाने-

१. मुनयः। २ ग. शृण्वन्तीमम्बिकां।

किमाह पश्चात् सर्वेशस्तयोः संसृतिमोचकम् ।
शिवेन स्वात्मपदवी कथं दत्ताऽन्यजन्मनि ॥ २ ॥
तत्सर्वं विस्तरेणास्मान् वद सद्गुरुवाग्रसम् ।
यद्रहस्यकथासारश्रवणाद् भवनीरधेः ॥ ३ ॥
तरामस्त्वत्प्रसादेन कथाश्रवणसेतुना ।
इति पृष्टस्तदा प्राह सूतो ब्रह्मविदां वरान् ॥ ४ ॥

सूत उवाच—

शृणुध्वं मुनयः सर्वेऽनवद्यानाथशर्म्मणोः ।
शिवभक्त्या शिवात्मत्वं प्राप्तयोः शिवयोगिनोः ॥ ५ ॥
[1]देव्याः प्रश्नानन्तरं स देवः प्राह यथा च ताम् ।
शृणु देवीति तां दृष्ट्वा सुदृष्ट्या प्रीतमानसः ॥ ६ ॥
इमावग्रे[2] भवे देवि ! भवेतां द्विजदम्पती ।
अवद्यरहिताभक्तिस्त्वयि मय्यपि चैतयोः ॥ ७ ॥

वाली कौन-सी बात कही, शिवजी ने अपनी पदवी उनको अन्य जन्म में कैसे दी ? (२) यह सब विस्तार से हम लोगों को सुनाइये, क्योंकि वह सद्गुरु की वाणी का रस है। उस रहस्य कथा के सार को सुनकर संसार-सागर के (३) पार आपकी कृपा से कथा-श्रवण रूपी सेतु द्वारा उतर जाँय। ऐसा पूछने पर सूतजी ने उन श्रेष्ठ ब्रह्मवेत्ताओं से कहा। (४) सूतजी बोले—हे मुनि लोग ! शिवयोगी अनवद्या और नाथशर्मा को जिस भाँति शिव-भक्ति से शिवात्मत्व की प्राप्ति हुई, सो सब आप लोग सुनें। (५) देवी के पूछने पर देवदेव ने प्रीतिपूर्वक सुदृष्टि से देवी को देखकर हे देवि ! सुनो ऐसा सम्बोधन कर कहा—(६) हे देवि ! आगे चलकर ये लोग ब्राह्मण-ब्राह्मणी होंगे और इन दोनों की तुम और हममें निर्दोष भक्ति होगी (७) ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ लोग इस ब्राह्मण को सुखशर्मा

१ ग. देव्यां । २ ग. इमावग्रभवे ।

सुखं शर्मेति लोकेषु वदन्ति ब्रह्मवित्तमाः ।
मद्ज्ञानान्दशर्मेदं सुखानां नाथतामियात् ॥ ८ ॥
तादृशं शर्म चैतस्य प्राप्नोति मदनुग्रहात् ।
तेनायं नाथशर्मेति नाम्ना ख्यातो भविष्यति ॥ ९ ॥
अवद्यहीनया भक्त्या त्वयि मय्यपि शुद्धया ।
[1]रूपेणावद्यहीनत्वाद् अनवद्या भवेदियम् ॥१०॥
तेन नाम्ना त्वियमिति ख्याता लोके यशस्विनी ।
[2]भवेत्त्वत्करुणापात्रमेवमेतौ भविष्यतः ॥११॥
एवमेतौ भवेतां हि स्त्रीपुमांसौ सुदम्पती ।
ब्राह्मण्यं प्राप्य मद्भक्त्या त्वद्भक्त्या चानवद्यया ॥१२॥
अनवद्यानाथशर्मनामानौ ब्रह्मवित्तमौ ।
मत्क्षेत्राणि च सर्वाणि यावन्ति पृथिवीतले ॥१३॥
तानि सर्वाणि संसेव्य तत्तद्वैभवसत्कथाः ।
मत्प्रसादात् कुमारेण श्रुत्वा ज्ञात्वात्मतारणम् ॥१४॥

पुकारेंगे । मेरे ज्ञानानन्द का सुख सब सुखों का नाथ है, (८) वह सुख इसे मेरे अनुग्रह से प्राप्त होगा । इससे यह नाथशर्मा के नाम से प्रसिद्ध होंगे । इनकी निर्दोष शुद्ध भक्ति तुम और हममें होगी । निर्दोष रूपवाली होने के कारण इस स्त्री का नाम अनवद्या होगा । (१०) और यह यशश्विनी लोक में इसी नाम से प्रसिद्ध होगी । (११) इस प्रकार ये दोनों स्त्री-पुरुष दम्पति होंगे । हमारी और तुम्हारी निर्दोष भक्ति से इनका ब्राह्मण योनि में जन्म होगा । (१२) ये बड़े भारी ब्रह्मवेत्ता होंगे और इनका नाम अनवद्या और नाथशर्मा होगा । पृथ्वी में जितने मेरे क्षेत्र हैं, (१३) उन सबका यह सेवन करेंगे और मेरी कृपा से स्वामी कार्तिकेय इनको उन तीर्थों का माहात्म्य सुनावेंगे और इनके तरने का उपाय बतलावेंगे । (१४) इससे ये लोग त्रिकालज्ञ हो जायँगे, और

१ ख. रूप चावद्यहीनत्वात, ग. रूपेऽप्यवद्यहीनत्वात् । २ ग. भवत्तत्करुणा…।

त्रिकालज्ञानिनौ भूत्वा मयि [1]सन्यस्तचेतसौ ।
अहंग्रहोपासनया [2]विस्मृतस्वात्मभावनौ ॥१५॥
नाहं देहादिसङ्घातो शिवोऽहमिति दार्ढ्यतः ।
हतप्राक्कर्मसंसर्गौ तथैवागामिकर्मिणौ ॥१६॥
प्रारब्धदेहमपि तौ विस्मृत्यानन्दनिर्भरौ ।
मयि वा त्वयि वा देवि ! स्वात्मन्यपि जगत्स्वपि ॥१७॥
[3]अभेदभावनासिद्धदृढनित्यसमाधिनौ[4] ।
भविष्यतस्तदाहं च त्वं [5]चावामेतयोर्हृदि ॥१८॥
निवसावः सदा तेन त्वं चाहं च भविष्यतः ।
मद्रूपं चैव त्वद्रूपमेतयोः सम्भविष्यतः ॥१९॥
उमा नाम्ना चानवद्या नाथशर्मा महेश्वरः ।
कैलासे सर्वगणपैः सेव्यमानौ भविष्यतः ॥२०॥

अपनी बुद्धि को मेरे अर्पण कर देंगे। अहंग्रहोपासना से इनको अपनी भावना नहीं रह जायगी। (१५) 'मैं देहादिक समूह नहीं हूँ' 'मैं शिव हूँ' यह भावना दृढ़ हो जायगी, अतः इनके अतीत और अनागत कर्म नष्ट हो जायँगे। (१६) आनन्दनिर्भर होकर ये प्रारब्ध देह को भी भूल जायँगे। हे देवि ! मुझमें, तुममें, अपनेमें और जगत् में (१७) अभेद भावना इनको होगी और सदा इनकी दृढ़ समाधि बनी रहेगी। तब उन दोनों का हृदय हम दोनों का हृदय हो जायगा, और उसमें हम और तुम सदा निवास करेंगे। (१८) उसी कारण ये दोनों हम और तुम होंगे, इनमें और हममें कोई अन्तर न रह जायगा—मेरा और तुम्हारा रूप इन दोनों का हो जायगा। (१९) उमा नाम से अनवद्या और नाथशर्मा महेश्वर होकर कैलास में सब गणों से सेवित होंगे। (२०) भक्त को प्रमोद देनेवाले हम और तुम इन दोनों के चित्त में विलीन हो, भक्त को वैभव देकर

---

१ ग. सन्यस्थ। २ ग. विस्मृतौ त्वात्मभाविनौ। ३ ख. वासना। ४ ख. समाधिना ५ ग. त्वञ्चावामनयोर्हृदि।

त्वश्चाहश्चैतयोश्चित्ते विलीनौ भक्तमोदिनौ ।
पश्याव: स्वात्मविभवं भक्तयोर्दत्तवैभवौ[1] ॥२१॥
अनेकब्रह्मकल्पान्ते विष्णोः कल्पः प्रवर्त्तते ।
अनेकविष्णुकल्पान्ते रुद्रकल्पः प्रवर्त्तते ॥२२॥
तदावयोर्मनो गन्तुं महाकैलासमिच्छति ।
अभेदोपासनायाश्च फलमप्येतयोस्तदा ॥२३॥
उमामहेशात्मभोगं[2] कल्पभुक्तं[3] भविष्यति ।
महाकैलाससदनं गच्छावस्त्वेतयोः सह ॥२४॥
एनौ भक्तौ नित्यमुक्तौ कृत्वा तत्र शिवान्तिके ।
[4]स्वयं शिवे लिप्य पुनरेष्यावः कल्पितुं जगत् ॥२५॥
आवयोः क्षणिका लीला नित्या चैव खलु प्रिये! ।
तथापि भक्ततुष्ट्यर्थं कर्त्तव्या दीर्घकालिका ॥२६॥
एवमेतौ मत्स्वरूपौ त्वद्भक्त्या सम्भविष्यतः ।
भक्ताज्ञाकारिणावावां भक्ततुष्ट्यावयोर्हि मुत् ॥२७॥

अपनी महिमा देखेंगे । (२१) ब्रह्मा के अनेक कल्प बीतने पर विष्णु का कल्प होता है, और अनेक विष्णुकल्प बीतने पर रुद्रकल्प होता है । (२२) तब हम दोनों की महाकैलास जाने की इच्छा होती है । अभेदोपासना का फल भी इनको मिलना चाहिये । (२३) अतः उमामहेशात्मक भोग कल्प तक भोगेंगे । तत्पश्चात् इनके साथ हम दोनों महाकैलास जायँगे । (२४) इन दोनों भक्तों को शिवजी के निकट नित्य मुक्त करके, स्वयम् शिवमें लीन हो जावेंगे और फिर हम लोग जगत् की कल्पना के लिये आवेंगे । (२५) हम लोगों की क्षणिका लीला भी है, और हे प्रिये ! नित्या लीला भी है, तथापि भक्त की तुष्टि के लिये दीर्घ कालिका लीला करनी चाहिये । (२६) इस प्रकार से ये दोनों तुम्हारी भक्ति से

१ ग. दत्तवैभवे । २ ग. ··· भोगो । ३ ग. कल्पभुक्तो । ४ ग. शिवे विलीय च पुनरेष्याव: कल्पितं जगत् ।

भक्तदुःखादावयोर्हि देवि! दुःखं न संशयः।
कथं कुर्वे वृथा देवि! शम्भुविज्ञानवद्वचः ॥२८॥
मद्भक्तशेखरो योगी शम्भुविज्ञानवान् द्विजः।
मां प्रार्थ्याशीरेतयोर्हि दत्ता[1] तेन विमुक्तिदा ॥२९॥
तस्य प्रसादादेतावप्यहं भावनया च नौ।
उपास्येतां निष्कलङ्कौ तेनेमौ मत्पदार्हकौ ॥३०॥
इत्युक्तं हंसयोर्वृत्तं श्रुत्वा देवी परात्मना।
आश्चर्यहृदया जाता भक्तवात्सल्यभूषिता ॥३१॥
नमस्कृत्य महादेवं हंसौ पूर्णकटाक्षतः।
अनुगृह्य महादेवी शिवेन सह तत्क्षणम् ॥३२॥
उभौ शाङ्करमारुह्य ययतुर्गणसंस्तुतौ।
श्रीमत्कैलासभवनं ब्रह्माद्यैरपि दुर्लभम् ॥३३॥

मेरे स्वरूप हो जायँगे। हम लोग तो भक्त के आज्ञाकारी हैं और भक्त की तुष्टि से ही हम लोगों को खुशी होती है। (२७) हे देवि! भक्त के दुःख से हम लोगों को दुःख होता है इसमें संशय नहीं है। हे देवि! मैं शम्भुविज्ञानवान् के वचन कैसे हटा दूँ? (२८) शम्भुविज्ञानवान् ब्राह्मण मेरे भक्तों का मुकुट था और उसने मेरी प्रार्थना करके इन दोनों को मुक्ति देनेवाला आशीर्वाद दिया। (२९) उसी के प्रसाद से ही ये दोनों 'अहंभाव' से हम दोनों की दोषरहित उपासना करेंगे। उससे ये दोनों मेरे पद के योग्य होंगे। (३०) परात्मा शिवजी से दोनों हँसों का वृत्तान्त सुनकर, भक्तवात्सल्य से भूषित होकर देवी आश्चर्य्य में आ गईं। (३१) तब देवी ने महादेवजी को नमस्कार किया। हँसों को अच्छी तरह कृपा दृष्टि से देखा। फिर तुरन्त शिव-पार्वती (३२) दोनों बैल पर सवार हो गणों से संस्तुत होकर ब्रह्मादि से न प्राप्त होने योग्य श्री-कैलास-भवन को गये। (३३) काल पाकर वे दोनों हँस वेदशास्त्रार्थसम्पन्न

१ ग. दत्त्वा।

ततः कालेन तौ हंसौ जातौ विप्रगृहे पृथक् ।
वेदशास्त्रार्थसम्पन्नकुलयोर्योगिनोर्गृहे ॥३४॥
शिवाज्ञया विवाहोऽपि योगिनोः सुतयोः पुनः ।
बभूव काले तौ पश्चाच्छिवपूजाप्रभावतः ॥३५॥
अनवद्यानाथशर्मनामानौ लोकविश्रुतौ ।
बभूवतुः शिवस्थानान्यनेकानि प्रचेरतुः ॥३६॥
काशीकेदारनेपालगोकर्णभुवनेश्वरम् ।
श्रीपर्वतत्र्यम्बकेशविरूपाक्षगिरीश्वरम् ॥३७॥
श्रीकालहस्तिश्रीकाञ्चीशोणाद्र्यन्धकभञ्जनम् ।
गोपर्वतेशनवनीतेश[1]वृद्धगिरीश्वरम् ॥३८॥
श्रीमच्चिदम्बरसभां ब्रह्मेशं वैद्यनायकम् ।
[2]छायावनश्वेतवनामृतकुम्भं त्रयीवनम् ॥३९॥
[3]वल्मीकश्रीवाञ्छमध्यार्जुनमायूरनायकम् ।
[4]पम्पापुरी वातपुरी सेतुनाथं[5] बलेश्वरम् ॥४०॥

ब्राह्मण कुल में योगियों के घर में अलग अलग उत्पन्न हुए। (३४) शिव की आज्ञा से योगियों के बेटा बेटी का विवाह भी समय पाकर हो गया। तत्पश्चात् शिवपूजा के प्रभाव से (३५) अनवद्या और नाथशर्मा के नाम से उनकी कीर्ति लोक में फैली, और उन दोनों ने अनेकों शिव-क्षेत्रों की यात्रा की। (३६) काशीकेदार, नेपाल, गोकर्ण, भुवनेश्वर, श्रीपर्वत, त्र्यम्बकेश, विरूपाक्ष, गिरीश्वर (३७) श्रीकाल, हस्तीश्वर, श्रीकाञ्ची, शोणाद्रीश्वर, अन्धकासुरसूदनेश्वर, गो पर्वतेश, नवनीतेश, वृद्ध गिरीश्वर, श्रीमच्चिदम्बर सभा, ब्रह्मेश, वैद्यनाथ, छायावन, श्वेतवन, अमृत कुम्भ, त्रयींवन, (३९) बाल्मीक, श्रीवांछ, मध्यार्जुन, मायू-

१ ग. नवनीलेश। २ ग. छायावनं। ३ ग. वाल्मीकश्रीमल्लिकाख्यार्जुन-मायूरनायकम्। ४ ख. पुस्तके—'पम्पापुरी०···' इति पादद्वयं नास्ति। ५ ग. सेतुनाथवनेश्वरम्।

[1]नन्दीशं शालिवाटीशं श्रीमद्धालास्यनायकम् ।
[2]श्रीकण्ठमातृभूतेशं जम्ब्वीशं बृहदीश्वरम् ॥४१॥
[3]श्रीमत्पञ्चनन्दकुम्भकोणं च वटकाननम् ।
हिमाचले विन्ध्यगिरौ सह्ये मलयपर्वते ॥४२॥
श्रीमद्गङ्गातटद्वन्द्वे [4]यमुनायास्तटद्वये ।
नर्मदायास्तटयुगे गोदावर्यास्तटद्वये ॥४३॥
[5]कृष्णवेणीतटद्वन्द्वे क्षीरनद्यास्तटद्वये ।
पिनाकिनी तटद्वन्द्वे तथा हस्तिपुरीषु च ॥४४॥
हिमसेतोर्मध्यसंस्थशिवक्षेत्राणि कृत्स्नशः[6] ।
सुसेव्य पश्चात् कावेरीतीरमापतुरञ्जसा ॥४५॥
[7]मरुद्वधातटद्वन्द्वशिवक्षेत्राणि सर्वशः ।
[8]सञ्चरंश्च शनैरेतौ ययतुस्तालकाननम् ॥४६॥

रनाथ, पम्पापुरी, वातपुरी, सेतुनाथ, वलेश्वर (४०) नन्दीश, शालिवाटी, श्रीमद्धालास्यनाथ, श्रीकण्ठ मातृभूतेश, जम्ब्वीश, बृहदीश्वर (४१) श्रीमत्पञ्चनन्द, कुम्भकोण, वटकानन, हिमाचल, विन्ध्यगिरि, सह्य और मलय पर्वतों में (४२) गंगा जी के दोनों किनारों में यमुना के दोनों तटों में, नर्मदा और गोदावरी के दोनों किनारे, कृष्णबेणी तथा क्षीरनदी के दोनों किनारे, पिनाकिनी के दोनों किनारे हस्ति पुरी ये (४४) संक्षेपतः हिमालय और सेतुबन्ध के बीच अखिल शिवक्षेत्रों की सेवा करके कावेरी के तीर में सीधे चले आये। (४५) फिर मरुद्वधा के दोनों किनारों के सब शिवक्षेत्रों में होते हुए धीरे धीरे तालकानन में पहुँचे। वहाँ रात्रि में तालवनेश्वर महादेव की सेवा करके वहीं टिक

१ ख. पुस्तक—'नन्दीशम्...' इति श्लोकार्द्धं नास्ति। २ ग. श्रीकण्ठमातृभूतेशजम्ब्वीशबृहदीश्वरम्। ३ ग. श्रीमत्पञ्चनदं। ४ ख. क्षीरनद्यास्तटद्वये। ५ ख. पुस्तके—'कृष्णवेणी०' इति पादद्वयं नास्ति। ६ ग. सर्वशः। ७ ग. मरुत्यास्तु तटद्वन्द्वे। ८ ग. सञ्चरन्तौ।

तत्र रात्रौ स्थित देवं सेव्य तालवनेश्वरम् ।
यस्यारुणा जटा पिङ्गा भक्तरक्षणहेतवे ॥४७॥
तत्र स्थित्वा शिवं ध्यायन्[1] स्वात्मोद्धारं समीहतुः ।
तदा तयोः स्वप्नगतस्तेजोऽरुणजटाधरः ॥४८॥
प्राह गम्भीरया वाचा सुप्रेम्णा द्विजदम्पती ।
शृणुतां मद्भक्तवर्य्यौ युवयोर्ज्ञानदं वदे ॥४९॥
स्वामी ममापि प्रणवज्ञानवक्तास्ति वै गिरौ ।
इतश्च नैर्ऋते भागे कावेर्युत्तररोधसि ॥५०॥
गच्छेतां तत्र युवयोः शिवज्ञानं मदाज्ञया ।
स्वामी दास्यति निर्द्वन्द्वं येन मद्भावमाप्स्यथः ॥५१॥
इत्युक्त्वाऽन्तर्धाद् देव्या देवोऽरुणजटः पुमान् ।
बुध्वा[2] तत्क्षणमाश्चर्य्यचित्तौ देवप्रसादितौ ॥५२॥

गये, जिसकी लाल और पीली जटा भक्तों की रक्षा के लिये हैं। (४७) वहाँ ठहरकर शिवजी का ध्यान करते हुए उन दोनों ने अपना उद्धार चाहा, तब उन दोनों के सम्मुख स्वप्न में आकर लाल पीली जटावाले ने (४८) गम्भीर और प्रेमभरी वाणी में ब्राह्मण-ब्राह्मणी से कहा—हे मेरे भक्तो ! तुम लोगों को ज्ञानोपदेष्टा बतलाता हूँ, सुनो, (४९) इस पर्वत पर स्वामी कार्तिकेय मेरे और प्रणवज्ञान के भी वक्ता हैं, यहाँ से नैर्ऋतिकोण पर कावेरी के उत्तर किनारे की ओर (५०) तुम दोनों जाओ, वहाँ मेरी आज्ञा से कुमार स्वामी तुम दोनों को निर्द्वन्द्व शिव-ज्ञान प्रदान करेंगे, जिससे तुम दोनों मेरे भाव को प्राप्त होगे। (५१) ऐसा कहकर देवी और लाल जटावाले देव अन्तर्धान हो गये। उसी समय उन दोनों की नींद खुल गई और देव की कृपा देखकर उन के चित्त में बड़ा आश्चर्य्य हुआ। (५२) प्रातःकाल दोनों ने महातीर्थ में स्नान करके सर्वाङ्ग में भस्म रमाया, मस्तक में त्रिपुण्ड्र लगाया, गले में

१ ग. ध्यात्वा । २ ख. बुद्ध्या ।

प्रातः स्नात्वा महातीर्थे भस्मोद्धूलितविग्रहौ ।
त्रिपुण्ड्रविलसत्फालौ रुद्राक्षानेककण्ठितौ ॥५३॥
पञ्चाक्षरं हृदि [1]ध्यायन् † रुद्राध्यायजपादृतौ ।
शिवयोः सन्निधिं गत्वा [2]सम्प्रणम्य स्तुवन् हृदा ॥५४॥
युवयोराज्ञया देवौ गच्छावः स्वामिसन्निधिम् ।
यथावयोरुपदिशेत्तव ज्ञानं [3]गुरुः स्तुतः ॥५५॥
तथैवानुग्रहं देहि येनावां त्वां लभावहे[4] ।
इति नत्वा प्रार्थ्य [5]देवं देवीं च ययतुर्बहिः ॥५६॥
[6]प्रदक्षिणं समावर्त्य प्रार्थयन्तौ शिवौ हृदा ।
[7]अपि प्रहीनस्य समस्तलक्षणैः
क्रियाविहीनस्य निकृष्टजन्मतः ।
प्रदक्षिणीकृत्य शशाङ्कशेखरं
प्रयास्यतः कस्य न सिद्धिरग्रतः ॥५७॥

रुद्राक्ष की माला धारण की । (५३) हृदय में पञ्चाक्षर का ध्यान करते हुए, रुद्राध्याय का जप आदर के साथ किया । फिर शिव-पार्वती के पास जाकर प्रणाम और मानसी स्तुति की । (५४) हे देव ! आप दोनों की आज्ञा से हम लोग स्वामी (कार्तिकेय) के निकट जाते हैं । जिस भांति स्तुति से प्रसन्न होकर गुरु आपके ज्ञान का उपदेश करें । (५५) वैसा ही अनुग्रह कीजिये, जिसमें हम दोनों आपको पावें । इस प्रकार देव-देवी को प्रणाम-पूर्वक प्रार्थना करके वे दोनों बाहर गये । (५६) और प्रदक्षिणा करके शिव-पार्वती की हृदय से प्रार्थना करने लगे कि जो सब लक्षणों से हीन हो और निकृष्ट जन्म होने से क्रियाविहीन भी हो, वह भी यदि चन्द्रशेखर की प्रदक्षिणा करे, तो उसके आगे-आगे सिद्धियाँ क्यों न चलें ? (५७) इस

१ ग. ध्यात्वा । २ ग. स्तुवन्तौ सम्प्रणेमतुः । ३ ग. गुरो ! स्तुतः । ४ ख. लभामहे । ५ ख. तौ तु । ६ ग. पुस्तके—'प्रदक्षिणं…', श्लोकार्द्धं नास्ति । ७ ग. 'अपि प्रहीनस्य'…इत्यप्यर्द्धं नास्ति । † इह सर्वत्र—अडभावो द्विवचनार्थे प्रायो बहुवचनञ्चार्षे ।

इत्येवं परिनिश्चितेन मनसा स्कन्दं हृदा संस्मरन् †
तौ सर्वानपि पौर्विकान् शिवजनान् संसिद्धिभाजोऽनमन् ।
आचार्यं कलशोद्भवादिसुधियां मोक्षैकभाजां सताम्
सम्प्रार्थ्यात्मसमुद्धराय ययतुः श्रीस्वामिशैलं च तौ ॥५८॥
शैलं तौ परितः प्रदक्षिणतया गत्वा गुहाग्रे करौ
बध्वा कोकनदद्युतिप्रतिभटौ सन्नम्य पादौ मुदा ।
स्वामिन्! ते चरणागतौ सकरुणं दृष्ट्वा च दीक्षां दद
स्वाधीनावनुशाधि नौ गुरुपदं चित्ते सदा कुर्वहे ॥५९॥
एवं ताभ्यामशेषप्रणतजनसमुत्तारकस्तारकारिः
भक्तिप्रह्वानताभ्यां परमशिवसुतः प्रार्थितः प्रेमदृष्ट्या ।
तौ सुग्राह्याखिलेशः परशिवमहिम्नः सद्रहस्यं समग्रं
चित्ते सम्यग्युवाभ्यां प्रतिफलतु शिवाज्ञावशादित्यवोचत् ॥६०॥

प्रकार दृढ़ निश्चयवाले मन में स्कन्द का स्मरण करते हुए उन दोनों ने अपने से पूर्व के सिद्धि-भाजन शिवभक्तों को नमस्कार किया। बुद्धिमान् मोक्ष के पात्र अगस्त्यादि आचार्य्यों की प्रार्थना करके श्रीस्वामीशैल की ओर दोनों ने यात्रा की। (५८) पर्वत की चारों ओर से प्रदक्षिणा करते हुए वे स्कन्दजी के सामने गये, और कमल की द्युति को लजानेवाले दोनों हाथों को जोड़कर प्रसन्नता से नमस्कार किया। और कहा— हे स्वामिन्! हम दोनों आपके चरणों में आये हैं, आप हम लोगों को करुणा की दृष्टि से देखकर दीक्षा दीजिये, हम लोग आपके अधीन हैं, हमें शिक्षा दीजिये, हम लोगों के चित्त में गुरुचरण सदा बसें। (५९) इस भाँति उनकी भक्ति की पुकार पर अशेष प्रणतजनों को तारनेवाले और तारकासुर को मारनेवाले शिवजी के पुत्र ने प्रार्थित होकर प्रेमदृष्टि से उन दोनों पर अनुग्रह किया, और बोले—शिवजी की आज्ञा से तुम

१ ग. स्मरन्तौ हृदा। २ ग. संसिद्धिभाजस्तदा। ३ ग. आश्चर्य्यं। ४ ग. मोक्षैकभाजः सतः। ५ ख. तरौ। ६ सकरुणया दृष्ट्या च। † इहापि।

एवं तद्वाक्यमात्रक्षणमखिलशिवज्ञानमानन्दबोधं
प्राप्यैतौ नित्यतृप्तौ गुरुचरणयुगं सम्यगानम्य भक्त्या ।
देहप्राणादिसंघाखिलमपि मनसा मद्गुरोरर्पयित्वा
स्वेच्छासञ्चारसाधारणपरमपि तौ सद्गुरोः प्राप्य यातौ ॥६१॥
आचार्याज्ञां प्रगृह्याखिलपरमशिवक्षेत्रजातानि द्रष्टुं
यान्तौ तावाह देवः शृणुतमपरमित्याह वाक्यं कुमारः ।
'पूर्वं जातो[1] युवाभ्यां परमशिवमुनेश्चापराधः[2] सदोषः
काशीकेदारतीर्थार्चनमनुभजथास्ततपरं वां शिवाप्तिः ॥६२॥
इत्याज्ञां स्वामिमूर्त्तेर्हृदयसरसिजे सन्निधाय प्रकृष्टां
देवक्षेत्रोक्तपुण्यान्यखिलवरकथाः संवदन्तौ मिथस्तौ ।
तत्तत्क्षेत्रेषु वासं कतिपयदिवसान् लभ्य तत्तत्कथाभिः
पुण्याभिर्नीय कालं चरममुपगतौ काशीकेदारभूमिम् ॥६३॥

दोनों के चित्त में परशिव-महिमा का सद्रहस्य पूरी तरह से भासित हो उठे । (६०) उनके इतना कहने से ही उसी क्षण उन दोनों को अखिल शिवज्ञान और आनन्दबोध प्राप्त हो गया, और उन्होंने नित्य तृप्त होकर गुरूजी के दोनों चरणों में भक्तिपूर्वक प्रणाम किया । देह, प्राण आदि समूह को मन से सद्गुरू को अर्पण कर दिया और इच्छापूर्वक विचरण करने का साधारण वर सद्गुरु से प्राप्त करके वे दोनों चल दिये । (६१) आचर्य्य की आज्ञा ग्रहण करके परम शिव के अखिल क्षेत्रों की यात्रा करने के लिए वे दोनों चल पड़े । तब स्कन्दजी ने कहा कि एक बात और सुनो, पहिले तुम दोनों से परम शिवयोगी का अपराध बन पड़ा है, इससे तुम लोग सदोष हो, अतः तुम दोनों काशी-केदार तीर्थ का सेवन करो, तब शिवजी की प्राप्ति होगी । (६२) स्वामी की मूर्ति की ऐसी प्रकृष्ट आज्ञा हृदय में धारण करके, वे दोनों देवक्षेत्र का पुण्य और सब कथाएँ आपस में कहते, सुनते उन

१ ख. पूर्णं, ग. प्राच्यां जातौ । २ ख. चापराधो न दोषः।

विश्वेशादीनि सर्वाण्यखिलदिविषदां मूर्तिसङ्घानि[1] लिङ्गा-
न्योङ्कारादीनि तीर्थान्यविकलफलदज्ञानवाप्यादिकानि ।
पञ्चक्रोशस्थलिङ्गान्यपि च दिविषदः सेव्य भक्त्या प्रपूज्य
प्राप्तौ केदारलिङ्गं परशिवपदं तीर्थमप्यादरात् तौ ॥६४॥
तत्राद्ये तीर्थवर्ये नियमितविधिवत् स्नाय सर्वापराधं
प्राग्जन्मन्यात्मदोषं मुनिजनकुहकं त्यज्य शम्भोः प्रसादात् ।
गैर्वाणीं दिव्यदीक्षां गुरुवदनसरोजोपदिष्टां यथावत्
संसाध्य श्रीमहेशे विनिहितहृदयौ स्थाणुवत्तौ समस्ताम् ॥६५॥

तैलधारावदच्छिन्नभावनातुष्टमानसौ ।
शिवाशिवौ दिव्यदेहौ स्वकौ दत्वा तयोर्मुदा ॥६६॥
त्याजयित्वा प्राक्तनौ च देहौ काशीभुवि क्षणात् ।
स्वांशेन तस्मिन्नाविश्य तयोर्देहे शिवाशिवौ ॥६७॥

क्षेत्रों में कुछ दिनों तक ठहरते और उनके माहात्म्य के वर्णन में अपना समय व्यतीत करते-करते अन्त में काशी केदार क्षेत्र पहुँच गये। (६३) विश्वेश्वरादि देवताओं की सब मूर्तियों की, ओंकारादि लिङ्गों की, सम्यक् फल देनेवाले ज्ञानवापी आदि तीर्थों की, पञ्चक्रोश के लिङ्ग और देवताओं की सेवा पूजा करके परम शिव-पद को देनेवाले केदार-लिङ्ग तथा केदार-तीर्थ में आदर के साथ आये। (६४) वहाँ पर पहिले-पहल नियमपूर्वक विधि से स्नान करके, पूर्वजन्म के सब दोषों एवं मुनिजन के अपराध से विनिर्मुक्त हुए और शम्भु के प्रसाद से जो निर्वाण देनेवाली दिव्य दीक्षा गुरुजी के मुखकमल से उपदिष्ट हुई थी, उसका विधिवत् साधन किया और श्रीमहेश में चित्त लगाकर ठूंठे पेड़ की भांति अचल हो गये। (६५) तैलधारा की भांति निरन्तर भावना से तुष्ट होकर शिव-पार्वती ने प्रसन्नतापूर्वक उन दोनों को अपना दिव्य देह दिया। (६६) उनकी पुरानी देह काशी भूमि में छूट गई। शिव-पार्वती ने

१ ख. मूर्तिसंख्यानि ।

तौ यथा स्वात्मपदवीं लभेतां गतसंशयौ ।
तथाऽकरोद् महादेवो रुद्रकल्पावधीश्वरौ ॥६८॥
पार्वतीपरमेशानौ जातौ तत्क्षणमेव तौ ।
अहंग्रहोपासनया ह्यनवद्या शिवाशिवौ ॥६९॥
तथैव नाथशर्माऽपि शिवोऽभूच्छिवशासनात् ।
अद्यापि रुद्रपदवी ताभ्यामेवानुभूयते ।
कल्पान्ते मुक्तिरनयोः स्वात्मभूताखिलात्मिका ॥७०॥
एवं केदारकृपया काश्यां मुक्तौ च दम्पती ।
[1]अपारा शिवयोर्लीला भक्तचित्तप्रसादिनी ॥७१॥
शृणुत मुनिवरेन्द्राः सद्गुरुर्मामवोचत्
परमशिवरहस्यं प्राक्तनं वेदसारम् ।
तदखिलमपि [2]वोऽहं नाथशर्मानवद्या-
गतिमपि जनतारां प्रोक्तवान् ध्वस्तपापाम् ॥७२॥

अपने एक अंश से उन दोनों के देहों में प्रवेश किया। (६७) जिसमें वे दोनों संशय-रहित होकर अपनी पदवी को प्राप्त हों। रुद्र कल्प तक के लिये महादेवजी ने ऐसी व्यवस्था कर दी (६८) और वे उसी क्षण ईश्वर-ईश्वरी अर्थात् महादेव-पार्वती हो गये। अहंग्रहोपासना से अनवद्या पार्वती हो गई, (६९) और उसी भाँति शिवजी की आज्ञा से नाथशर्मा शिव हो गये। अभी तक वे दोनों शिवपदवी का अनुभव कर रहे हैं, कल्पान्त में उनकी मुक्ति होगी, जिसमें अखिलरूप अपना ही रूप हो जाता है। (७०) इस प्रकार केदारजी की कृपा से काशी में दोनों प्राणी मुक्त हो गये। भक्त के चित्तों को अह्लाद देनेवाली महादेव-पार्वती की लोला अपार है। (७१) हे मुनि लोगों ! सुनो, सद्गुरु ने मुझे वेद का सार यह प्राचीन रहस्य बतलाया। यह सब पापों का नाश करनेवाली, लोगों को तारनेवाली नाथशर्मा और अनवद्या की गति मैंने आप लोगों से कह सुनाई। (७२)

---

१ ग. अपरा। २ ख. सोऽहं।

धन्याः यूयं कृतार्थाः परमशिवकथासारभूतं भवद्भिः
पीतं कर्णाञ्जलिभ्यो[1] हृदयभुवि विशालालवालप्रविष्टम्[2] ।
तेन[3] ज्ञानाङ्कुराणां प्रभवमपि भवेन्मायिकावृष्टिजातं
दुर्भिक्षं द्राग्विनश्येत् फलमपि लभते श्रीशिवज्ञानपक्वम्[4] ॥७३॥
धन्योऽहं युष्मदीयप्रबलतरमहाप्रश्नतः सम्प्रयाते
वक्तुं चेच्छापि तेनामृतरसघटिकासद्रहस्यस्य[5] शम्भोः ।
यच्छ्रुत्वा न प्रयान्ति प्रचुरतरमहादुःखसंसारवार्धिं
लोकास्त्रैलोक्यपूज्यं वयमनिशमुमाकान्तपादं भजामः ॥७४॥

मुनय ऊचुः—
श्रुतं त्वत्तः सर्वं [6]परशिवकथासारमखिलं
क्वचिद्भिन्नप्रस्थानवदभिधास्त्वं शिवकथाः ।
तदास्माकं भ्रान्तिः किमिति भवतः पुण्यकथने
कथा पौर्वापर्यं न लगति भिदेति प्रभवति ॥७५॥

आप लोग धन्य हैं, आप लोग कृतार्थ हैं, जो आप लोगों ने परशिवकथा के सारभूत का रहस्य श्रवणपुट से पान किया और यह आप लो गों के हृदय रूपी कियारी में प्रवेश कर गया। इससे ज्ञानाङ्कुर उग जाता है, माया अवृष्टि से उत्पन्न हुआ दुर्भिक्ष नष्ट हो जाता है, और पके फल की भांति शिवज्ञान की भी प्राप्ति होती है। (७३) मैं भी धन्य हूँ, जो मुझे आप लोगों के इतने बड़े प्रश्न पर बोलने की इच्छा हुई, और यह शम्भु के सद्रहस्य का अमृतरसमय घड़ा तैयार हुआ, जिसे सुनकर लोग अब बड़े भारी दुःखमय संसार-सागर में न पड़ेंगे। अतः हम लोग त्रैलोक्य-पूज्य उमाकान्त के चरण-कमलों का भजन करते हैं। (७४) मुनियों ने कहा—आपसे हम लोगों ने अमृतरूपी परशिव कथासार सब सुना। कहीं कहीं तो आप नये प्रस्थान की भांति शिव-कथा कह गये, आपके

१ ग. कर्णाञ्जलिभ्यां। २ ग. विशालाऽऽलवालं प्राविष्टम्। ३ ख. एतद् ४ ग. शिवज्ञानरूपम्। ५ ग. सदसमुद्रस्य। ६ ग. परमशिव०...।

क्वचित्क्षेत्रे भेदः क्वचिदपि च भक्तोद्धृतिविधौ
क्वचिद्राजोत्पत्तौ क्वचिदपि च विश्रामरजनौ ।
क्वचित्तीर्थोत्पत्तौ क्वचिदपि विधेः सृष्टिविषये
कथं पौर्वापर्यं नियममभिजानीम दृढतः ॥७६॥
पुराणानां वक्ता त्वमसि निखिलानां खलु सुधीः
प्रभेदः केनासौ वद किमभवद्भिन्नपथतः ।
जगत् सर्वं सत्यं निखिलमितिहासोक्तकथनं
पुराणानि प्राञ्चि ह्यपि तदुदिताश्चापि सुकथाः ॥७७॥
भिन्नभिन्नकथिताः क्वचित् क्वचित्
प्रोद्भवप्रलयभक्तसत्कथाः ।
क्षेत्रतीर्थदानवरदानभेदतो
नोद्ध्याऽऽशु हृदि संशयं विभो ! ॥७८॥

उस कथन में हम लोगों को भ्रम होना, पूर्वापर का सम्बन्ध न लगना, भेद मालूम होना, कौन-सी बड़ी बात है ? (७५) कहीं क्षेत्र में भेद है, कहीं भक्त के उद्धार की विधि में भेद है, कहीं राजा की उत्पत्ति में, कहीं ब्रह्मा की सृष्टि के विषय में भेद है । तब हम लोग पूर्वापर का भेद दृढ़ रूप से कैसे जान सकें ? (७६) हे विद्वन् ! आप ही अखिल पुराणों के वक्ता हैं, उसमें भेद कैसे हुआ और भिन्न पथ कैसे हुए ? सम्पूर्ण इतिहासों का कथन है कि यह सब जगत् सत्य है । प्राचीन पुराण भी ऐसा ही कहते हैं, लेकिन कहीं २ उनमें भी कथाएँ भिन्न २ रूप से कही गई हैं । (७७) सृष्टि और प्रलय को कथाएँ भी क्षेत्र, तीर्थ और वरदान के भेद से भिन्न २ रूप से कही गई हैं, सो हे विभो ! इस संशय को हृदय से दूर कीजिये । सूतजी बोले—प्रत्येक कल्प में शिवजी की अमितदिव्य लीला और क्षणिक की भांति जो जो विचित्र लीलाएँ हुई है । वे सब सुनने में सुखदायक हैं, और फिर दूसरे कल्प में ब्रह्मा से लेकर स्थावर तक अपने किये हुए पुण्य कर्म के परिपाक से भिन्न होते हैं, अतः पुराण की कथाएँ अलग की भांति

सूत उवाच—

कल्पे कल्पे शिवस्य त्तणिकवदमिता दिव्यलीला विचित्रा
या याः पूर्वं बभुवुः श्रवणसुखकरास्ताः पुनस्त्वन्यकल्पे ।
[1]ब्रह्माद्याः स्थावरान्ताः [2]स्वकृतसुकृतसत्कर्म्मपाकेन भिन्नाः
[3]पौराण्यस्ताः कथाश्च पृथगिव [4]प्रतिभान्त्यर्थतस्तास्त्वभिन्नाः॥७९॥
सर्वं सत्यं च शास्त्रं विविधकृतिभिदा भेदितश्चापि शम्भो-
स्तात्पर्य्यं चैकरूपं विमलसुमतिभिर्ग्राह्यमाद्यन्तदृष्ट्या ।
यावद्भेदेन [5]जातोऽप्यतुलितमहिमा चैकरूपा[6] प्रणेतु-
स्तत्सारं ग्राह्यमीशे विनिहितमतिभिः प्राह चैवं गुरुर्माम् ॥८०॥
निःसंशयं जानत विप्रवर्याः! सर्वं कथासारविचित्रजातम् ।
भक्तिप्रबोधं शिवधामदायि शृण्वन्ति ये ते [7]शिवमेव यान्ति ॥८१॥

इति काशीमूलरहस्ये ब्रह्मवैवर्त्ते खिले काशीकेदारमाहात्म्ये
सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥

मालूम पड़ती हैं, पर वस्तुतः उनमें भेद नहीं है। (७९) मेरे गुरुजी ने ऐसा कहा है कि सब शास्त्र सत्य हैं, अनेक कर्त्ताओं के भेद से भिन्न होने पर भी शिवजी का तात्पर्य्य सबमें एक रूप है, बुद्धिमान् को चाहिये उसे आदि से अन्त तक समझकर ग्रहण करे जितने भेद हैं, उनसे रचयिता की एकरूपा अतुलित महिमा द्योतित होती है, वही सार ईश्वर पर प्रेम करनेवालों द्वारा ग्रहण करने योग्य है। (८०) हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो! इस बात में संशय न रक्खो कि इन सब विचित्र कथाओं का तात्पर्य्य यह है कि शिवधाम को देनेवाली भक्ति जाग उठे और जो इसे सुनें, वे शिव को प्राप्त हों। (८१)

यह श्रीब्रह्मवैवर्त्त के खिलग्रन्थ काशी मूलरहस्यान्तर्गत काशी केदार-
महात्म्य का सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥

१ ग. ब्रह्मादिस्थावरान्ताः । २ ग. स्वकृतपरिलसत्कर्म्म ··· । ३ ग. पौराणीस्ताः । ४ ग. परिभान्त्यर्थतः । ५ ग. जातेऽप्या० । ६ ग. वैकरूपा । ७ ग. तेऽचिरमेव ।

अथाष्टाविंशोऽध्यायः

[1]ऋषय ऊचुः—

सूत ! शम्भोः ज्ञानसारनिधे ! त्वन्मुखपङ्कजात् ।
श्रुतमस्माभिरीशस्य रहस्यं लोकतारकम् ॥ १ ॥
श्रीमत्केदारनाथस्य भक्तवश्यस्य शूलिनः ।
प्राचीनमणिकर्ण्याश्च [2]प्रभावं गुप्तमद्भुतम् ॥ २ ॥
[3]श्रीमद्विश्वाधिनाथस्य मणिकर्ण्याश्च वैभवम् ।
नित्ययात्राविधानस्य ढुण्ढ्यादीनाञ्च वैभवम् ॥ ३ ॥
ओङ्कारादिमहालिङ्गमूर्त्तीनां दिव्यवैभवम् ।
ज्ञानवाप्यादितीर्थानां प्रभावातिशयं परम् ॥ ४ ॥
पञ्चक्रोशस्थलिङ्गानां गणानां च महेशितुः ।
[4]प्रभावमद्भुतं शम्भोर्भक्तानां शिवयोगिनाम् ॥ ५ ॥

दो०—सूत संग ऋषि गन गये, काशी कह्यौ बखान ।
सूत यथा तहँ तनु तजे, होत मुक्ति निर्वान ॥

ऋषि लोग बोले—हे शिवजी के ज्ञानसार के समुद्र सूतजी ! आपके मुख-कमल से हम लोगों ने ईश्वर का लोकतारक रहस्य सुना । (१) भक्तवश्य शूली केदारनाथ और प्राचीन मणिकर्णिका का गुप्त अद्भुत प्रभाव, (२) श्रीविश्वनाथ और मणिकर्णिका की महिमा, नित्य यात्रा का विधान, ढुण्ढिराजादि का वैभव, (३) ओङ्कारादि महा लिङ्गमूर्तियों का दिव्य वैभव, ज्ञानवापी आदि तीर्थों का अतिशय प्रभाव, (४) पञ्चक्रोश के लिङ्गों, महेश के गणों, शङ्कर के भक्तों तथा शिवयोगियों का अद्भुत प्रभाव, (५) शिवापराध से भ्रष्ट कल्पान्त पाप भोगनेवालों का भी शिवजी के प्रसाद से सर्वथा

---

१ ख. ग. मुनयः । २ ग. वैभवं । ३ ग. श्रीमद्विश्वाधिनाथस्य भक्तवश्यस्य शूलिनः । प्राचीनमणिकर्ण्याश्च वैभवं गुप्तमद्भुतम् ॥ ४ ग. माहात्म्यमद्भुतं ।

शिवापराधभ्रष्टानां [1]कल्पान्तं पापभोगिनाम् ।
शिवप्रसादतः [2]प्राप्तरहस्यं सर्वतारकम् ॥ ६ ॥
शिवापराधो दुर्नोद्यः श्रुता तस्यापि निष्कृतिः ।
तस्मात् केदारनाथस्य कृपा लोकविलक्षणा ॥ ७ ॥
धन्या वयं यतः शम्भो रहस्यं श्रावितं त्वया ।
कतिवारं वयं [3]काशीं यात्रायै भक्तितो गताः ॥ ८ ॥
अद्भुतं न श्रुतं त्वेवं केदारेशस्य वैभवम् ।
प्राचीनस्यापि तीर्थस्य रहस्यं शिवभाषितम् ॥ ९ ॥
तस्मादिदानीं गच्छामस्त्वया साकं महामते ! ।
दर्शयाऽस्मान् तीर्थवरं केदारेशं घृणानिधिम् ॥१०॥
स्नात्वा केदारमभ्यर्च्य कृतार्थाश्च भवामहे ।
त्वमेकतारकोऽस्माकं रहस्यं श्रावितं यतः ॥११॥
इति सर्वे मुनिगणा नैमिषारण्यवासिनः ।
शौनकाद्या महाभागाः शिवज्ञानैकसागराः ॥१२॥

तारण करनेवाला सद्रहस्य (६) और न मिटनेवाले शिवापराधों की निष्कृति आदि यह सब हम लोग सुन चुके, यह श्रीमत्-केदारनाथ की ही लोकविलक्षण कृपा है । (७) हम लोग धन्य हैं, जिनको आपने शिवजी का रहस्य सुनाया । हम लोगों ने कितनी वार भक्ति के साथ यात्रा की, (८) परन्तु ऐसी अद्भुत केदारजी की महिमा न सुनी और न प्राचीन तीर्थ का शिव-भाषित रहस्य सुना । (९) इसलिये हे महामते ! अब हम लोग आप-के साथ चलेंगे । हम लोगों को श्रेष्ठ तीर्थ और कृपानिधि केदारजी का दर्शन कराइये । (१०) स्नान करके और केदारजी का दर्शन करके हम लोग कृतार्थ होंगे । आप ही हम लोगों को तारनेवाले हैं, क्योंकि आप ही ने हम लोगों को रहस्य सुनाया । (११) ऐसा कहकर सब

१ ग. कल्पान्ते । २ ग. प्राप्तं । ३ ग. काशीयात्रायै ।

सूतेन सार्कं सहसा काशीमुद्दिश्य निर्गताः ।
केदारेशं विश्वनाथं मणिकर्णीद्वयं तथा ॥१३॥
भक्त्या हृदि स्मरन्तस्ते प्राप्ताः काशीं मनोजवाः ।
स्नात्वा च मणिकर्ण्यां ते विश्वनाथं समर्च्य च ॥१४॥
ओङ्कारादीनि लिङ्गानि ढुण्ढ्यादींश्च समर्च्य च ।
ज्ञानवाप्यादितीर्थानि स्नात्वा सम्यग्विधानतः ॥१५॥
पञ्चक्रोशं परिक्रम्य प्राप्ताः केदारसन्निधिम् ।
प्राचीनमणिकर्ण्यां ते पूज्य 'सस्नुर्यथाविधि ॥१६॥
श्रीमत्केदारनाथं च सम्पूज्य विधिवद् द्विजाः ।
आनन्दवारिधौ मग्नाः सूतेन सह भूसुराः ॥१७॥
श्रीमत्केदारसविधे न्यसीदन् सूतसंयुताः ।
सत्कथालापसुमुखाः सूतमूचुर्मुनीश्वराः ॥१८॥
अद्य धन्या वयं सूत ! फलितं नस्तपःफलम् ।
त्वयोक्तस्य रहस्यस्य सारमेतद् द्वयं भुवि ॥१९॥

नैमिषारण्यवासी मुनिगण, और शिवज्ञान के सागर शौनकादि महाभाग (१२) सूत के साथ ही तुरन्त काशी-यात्रा के लिये निकल पड़े । केदारनाथ, विश्वनाथ, और दोनों मणिकर्णिकाओं का (१३) स्मरण करते हुए मन की भाँति तीव्र वेग से काशी पहुँचे। मणिकर्णिका में स्नान करके विश्वनाथ की पूजा की । (१४) ओङ्कारादि लिङ्ग तथा ढुण्ढिराज आदि की पूजा करके, ज्ञानवापी आदि तीर्थों में विधिपूर्वक स्नान किया। (१५) तब पञ्चक्रोश-प्रदक्षिणा करके केदारजी के पास पहुँचे, और प्राचीन मणिकर्णिका की पूजा करके सविध स्नान किया। (१६) तत्पश्चात् विधिवत् श्रीमत्केदारनाथ की पूजा की, और सूतजी के सहित आनन्द समुद्र में निमग्न होकर (१७) केदारजी के सन्निकट बैठ गये । तदनन्तर सत्कथालाप के लिये प्रसन्न होकर सूतजी से बोले—(१८) हे सूतजी !

१ ग. शम्भुं ।

प्राचीनतीर्थं केदारलिङ्गं चातीव दुर्लभम् ।
अस्मद्दृग्गोचरे जाते तीर्थलिङ्गे च पुण्यतः ॥२०॥
तस्मात् काशीक्षितौ प्राप्तेरिदं नः सुमहत्फलम् ।
यत्र नास्ति महाक्षेत्रे भैरवीयातनापि हि ॥२१॥
स्थास्यामोऽत्रैव निर्मुक्ता यावज्जीवं शिवान्तिके ।
इति निश्चित्य ते सर्वे मुनयः सूतमब्रुवन् ॥२२॥
काचिद् विवक्षा नः सूत ! विद्यते तामुदाहर ।
श्रुत्वा तद्वदनाम्भोजाद् भवाम हृतसंशयाः ॥२३॥
धर्मप्रदानि स्थानानि [1]सन्ति लोके बहूनि च ।
[2]अर्थप्रदानि स्थानानि सन्ति शम्भोर्बहूनि च ॥२४॥
कामप्रदानि स्थानानि तथैवान्यानि सन्ति च ।
मोक्षप्रदानि स्थानानि तथैवेशस्य सन्ति वै ॥२५॥

आज हम लोग धन्य हैं, हम लोगों का तप सफल हो गया, आपके कहे हुए रहस्य के इस पृथ्वी पर दो ही सार हैं—(१९) एक तो प्राचीन तीर्थ और दूसरा अतीव दुर्लभ केदार लिङ्ग। सो पुण्य के प्रभाव से इन दोनों का दर्शन हम लोगों को मिला। (२०) काशी क्षेत्र में आने का यही बड़ा भारी फल है। जिस क्षेत्र में कि भैरवी यातना भी नहीं है। (२१) अब हम लोग यहीं जीवन्मुक्त होकर शिवजी के सन्निकट बसेंगे। ऐसा निश्चय करके सब मुनियों ने सूतजी से कहा (२२) कि हम लोगों को कुछ पूछने की इच्छा है, सो बतलाइये, आपके मुखकमल से उस बात को सुनकर हम लोग संशय रहित हो जाँय। (२३) इस लोक में धर्म देनेवाले बहुत से स्थान हैं, और अर्थ देनेवाले भी बहुत से शिव क्षेत्र हैं (२४) एवम् कामद क्षेत्र भी शिवजी के कम नहीं हैं, मोक्षप्रद स्थान भी उसी भाँति शिवजी के अनेक हैं (२५) धर्मार्थ काम मोक्ष चारों फल के देनेवाले तीर्थ भी हैं। इस प्रकार के परमेश्वर शम्भु के एक

१ ग. तथैवान्यानि २ ग. पुस्तके 'अर्थप्रदानि'...इति श्लोको नास्ति।

धर्म्मार्थकाममोक्षाणां युगपत्सम्प्रदान्यपि ।
एवं शम्भोः परेशस्य तत्तत्फलकराणि च ॥२६॥
काश्यादिपुण्यक्षेत्राणि सन्ति लोकेष्टसिद्धये ।
तीर्थान्यपि तथा लोकवाञ्छासत्फलदानि च ॥२७॥
[1]पुष्कराद्यानि लोकेषु वापीकूपसरांस्यपि ।
तथैव नद्यः पुण्योदा गङ्गाद्या लोकविश्रुताः ॥२८॥
पापक्षयकराश्चापि चतुर्वर्गफलप्रदाः ।
तथैव शिवलिङ्गानि सन्ति स्वायम्भुवानि च ॥२९॥
दर्शनात् पूजनाच्चापि चतुर्वर्गप्रदानि हि ।
काशीविश्वेश्वरादीनि सन्ति दिव्यानि भूतले ॥३०॥
मूर्त्तयोऽपि तथा दिव्याः पुण्यक्षेत्रगताः पराः ।
विघ्नेशदुर्गाविष्ण्वादिबहुभेदविभेदिताः ॥३१॥
पापक्षयकराश्चापि चतुर्वर्गफलप्रदाः ।
यासां च दर्शनाद् ध्यानाद् वन्दनात् पूजनादपि ॥३२॥

तथा अनेक फल देनेवाले तीर्थ हैं। (२६) काशी आदि पुण्यक्षेत्र लोगों की इष्टसिद्धि के लिये हैं। अच्छे वाञ्छित फल देनेवाले तीर्थ (२७) पुष्करादिक हैं। और भी लोक में वापी, कूप, सर, पुण्यतोया गंगादिक नदियां लोकप्रसिद्ध हैं। (२८) ये पापक्षय करनेवाले तथा चारों फल देनेवाले हैं। उसी भाँति शङ्कर के स्वयम्भू लिङ्ग ऐसे हैं (२९) कि जिनके दर्शन और पूजन से चारों फलों की प्राप्ति होती है। और काशी विश्वेश्वरादि के दिव्य लिङ्ग भी ऐसे ही हैं। (३०) पुण्य क्षेत्र की दिव्य मूर्तियां, जिनमें गणेश, दुर्गा, विष्णु आदि बहुत भेद हैं, (३१) पाप का क्षय करनेवाली और चारों फलों को देनेवाली हैं, जिनके दर्शन, ध्यान, वन्दन तथा पूजन से (३२) मनोवाञ्छा पूरी होती है,

१ ग. पुष्करादीनि ।

लब्धवाञ्छा भवन्त्येव जना मुक्ता अपि क्वचित् ।
'एवं लोके शास्त्रदृष्टतीर्थक्षेत्रैश्च दैवतैः ॥३३॥
वाञ्छितान्यपि सिद्ध्यन्ति मुक्ता अपि क्वचित् क्वचित् ।
अस्तु वाञ्छाप्रदातृत्वं मुक्तिः सा कीदृशी वद ॥३४॥
अविद्यावासनाजालपाशबद्धा ह्यनादयः ।
जीवास्तादृग्विधा मुक्ताः स्वात्मज्ञानं विना कथम् ॥३५॥
अनेकजन्मसुकृतपरिपाकवशाद् नृणाम् ।
वेदान्तश्रवणे श्रद्धा भवतीति श्रुतेर्वचः ॥३६॥
श्रवणाद् मनने श्रद्धा तन्निदिध्यासने ततः ।
आत्मा वारे तु द्रष्टव्यः श्रोतव्यः श्रद्धया पुनः ॥३७॥
मन्तव्यश्च निदिध्यासितव्य इत्याह वै श्रुतिः ।
तदर्थबोधकः शम्भुरेव नान्यो हि वै गुरुः ॥३८॥

और कुछ लोग मुक्त भी हो जाते हैं। इस प्रकार शास्त्र में कहे गये तीर्थ, क्षेत्र और देवताओं से (३३) वाञ्छित सिद्धि भी होती है, और कहीं-कहीं मुक्ति भी होती है। सो वाञ्छासिद्धि तो चाहे हो जाय, पर मुक्ति कैसे होती है ? सो कहिये, क्योंकि (३४) अनादि जीव अविद्यावासना जाल के पाश में बँधे हुए हैं, वे स्वात्मज्ञान के विना कैसे मुक्त होंगे ? (३५) अनेकों जन्म के पुण्य परिपाक के वश से मनुष्यों को वेदान्त सुनने की श्रद्धा होती है, ऐसा वेद का वचन है। (३६) सुनने से मनन करने में श्रद्धा होती है, और उससे निदिध्यासन में श्रद्धा होती है। अरे ! आत्मा को देखना चाहिये सुनना चाहिये, और फिर श्रद्धा से (३७) मनन करना चाहिये, निदिध्यासन करना चाहिये, यह वेद का वचन है। इस अर्थ का बोध करानेवाले शिवजी ही हैं, और दूसरा कोई गुरु नहीं है। (३८) उनमें अनन्य दृढ़ भक्ति करने से काल पाकर आगामी

१ ख. पुस्तके—'एवं लोके' इति श्लोको नास्ति। २ ग. ज्ञानं विना कथम्। ३ ग. निदिध्यासनात्ततः।

तस्मिन् भक्त्या च दृढयानन्यया कालपाकतः ।
आगामिसंचितौ नाश्य कर्मभोगौ गुरोर्बलात् ॥३९॥
प्रारब्धमात्रशिष्टः सन् वसेदिति गुरोर्वचः ।
यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ ॥४०॥
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते इति श्रुतिः ।
समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः ॥४१॥
तुल्यमानावमानश्च धीरस्तुल्यारिमित्रकः ।
वृत्त्याऽऽजगरया तिष्ठन् यावत् प्रारब्धसंक्षयः ॥४२॥
प्रारब्धक्षय[1]तत्कालमात्रेण परिलीयते ।
न चोत्क्रमणं न गमनं [2]जीवोऽहमिति भावना ॥४३॥
तादृग्जीवस्यैव मुक्तिर्नान्यस्येत्यवदच्छ्रुतिः ।
एतादृग्योग्यता कुत्र प्राणिनां प्राकृतात्मनाम् ॥४४॥

और सञ्चित कर्मभोग गुरु के बल से नष्ट होते हैं। (३९) केवल प्रारब्धमात्र शेष रह जाता है, यह गुरु का वचन है। जिसकी देव में परा भक्ति होती है, और जैसी देव में भक्ति है, वैसी ही गुरु में होती है, (४०) उसी को ये कहे हुए अर्थ प्रकाशित होते हैं, ऐसा वेद का वचन है। जिसे सुख-दुःख समान हैं, जो अपनी आत्मा में स्थित है, जिसे ढेला, पत्थर, सोना समान है, (४१) मान और अपमान भी तुल्य हैं, और जिस धीर के लिये शत्रु-मित्र समान हैं, और जब तक प्रारब्धक्षय न हो तब तक अजगर की वृत्ति धारण किये जो बैठा रहता है, (४२) वह प्रारब्धक्षय होते ही लीन हो जाता है। न उसका प्राण निकलता है, न वह कहीं जाता है, न उसे यह भावना है कि 'मैं जीव हूँ, (४३) ऐसे ही जीवों की मुक्ति है, अन्य की नहीं होती, ऐसा श्रुति कहती है। साधारण लोगों को इतनी योग्यता कहाँ से आ जायगी? (४४) तब उनकी मुक्ति कैसे होगी? क्या मुक्ति का कोई

१ ग. ...क्षयमात्रेण तत्कालं परिलीयते। २ ग. शिवो०।

मुक्तिर्वा कीदृशी तेषां मुक्तेर्भेदोऽस्ति वा पृथक् ।
एतत्संशयनिर्नोदं कुरु सूत ! महामते ! ॥४५॥
इति पृष्टस्तदा सूतो भूसुरैर्ब्रह्मवादिभिः ।
तदा कारुणिकं शम्भुं गुरुं ध्यात्वाऽऽह तान् पुनः ॥४६॥
शृणुध्वं मुनयः सर्वे सत्यं वक्ष्ये गुरोर्वचः ।
युष्मत्प्रश्नसमाधानवक्ता विश्वेश एव हि ॥४७॥
तथापि [1]मद्गुरुवाक्यमुपदिष्टमहं वदे ।
समर्थः परमेशानः स्वयमेवाखिले हृदि ॥४८॥
प्रविश्य लीलां तन्वानः स्वशक्त्याखिलहृद्गतः ।
स्वात्मभूतस्य जीवस्य स्वशक्त्याभेदितस्य च ॥४९॥
स्वशक्त्यैव पुनः स्वस्मिन् मेलितुं का विलम्बना ।
अकर्त्तुमन्यथाकर्त्तुं कर्त्तुं चापि प्रभुः शिवः ॥५०॥

पृथक् भेद है ? उस संशय का समाधान हे महाबुद्धिमान् सूतजी ! आप कीजिये । (४५) जब ब्रह्मवादी ब्राह्मणों ने ऐसा पूछा, तब सूतजी ने परम कारुणिक शम्भु तथा गुरूजी का ध्यान करके उनसे कहा—(४६) हे मुनि लोगो ! मैं ठीक २ गुरूजी का वचन कहता हूँ, आप लोग सुनें । यद्यपि आप लोगों के प्रश्न का समाधान करने के लिए पूर्ण समर्थ विश्वेश्वर ही हैं, (४७) तथापि मेरे गुरूजी ने जो मुझे उपदेश दिया है, उसे मैं कहता हूँ । परमेश्वर समर्थ हैं, स्वयम् ही सबके हृदय में (४८) प्रवेश करके लीला रचते हैं, अपनी शक्ति से स्वात्मभूत जीवों के हृदय में ठहरे हुए हैं और अपनी शक्ति से उनका भेद कर रक्खा है । (४९) उनको अपनी शक्ति से ही अपने में इस प्रपञ्च को मिला लेने में क्या देर है ? करने, नहीं करने और अन्यथा करने में शिवजी समर्थ हैं । (५०) जीव उन्हीं का रूप है, उसमें स्वात्मज्ञान निरन्तर है ही, केवल अपनी शक्ति विद्या से भेदज्ञान-मात्र का निका-

१ ग. मद्गुरोर्वाक्यं ।

अस्त्येव स्वात्मके जीवे स्वात्मज्ञानं निरन्तरम् ।
स्वशक्त्या विद्यया भेदज्ञानमात्रनिरासनम् ॥५१॥
तत्तस्य च कियत्कार्यं स्वाभाविकमितीर्यते ।
परिपूर्णः परानन्दः सर्वत्रास्ति न संशयः ॥५२॥
यत्र यत्राह भगवान् मुक्तिस्थानेषु तारणम् ।
तत्र देवस्य लीलेयं नामरूपविमोचनी ॥५३॥
तदन्यत्र स्वका लीला नामरूपा भवत्विति ।
भोगार्थमिति चाप्यन्ये लीलार्थमिति चापरे ॥५४॥
एष देवस्य महिमा जगज्जीवात्मकः[1] स्वकः ।
तस्मादत्र च सन्देहो न कर्त्तव्यः कदाचन ॥५५॥
अनेककोटिजीवानां राशिभेदेन भेदिता ।
लीला देवस्य मुनयस्तेषु वै जीवकोटिषु ॥५६॥
[2]शिवप्रसादसत्क्षेत्रतीर्थेषु कति सन्ति वै ।
पञ्चाशत्कोटिविस्तीर्णयोजना भूः प्रमाणिता ॥५७॥

लना (५१) उसके लिये कौन-सी बड़ी बात है। परिपूर्ण परानन्द तो सर्वत्र ही है, इसमें तो संशय नहीं है। (५२) जिन २ मुक्ति-स्थानों में भगवान् ने तारण कहा है, वहाँ देवदेव की नाम रूप का हरण करनेवाली लीला है। (५३) दूसरी जगहों में उनकी नामरूपा लीला है, उसे कोई भोगार्थ कहते हैं, कोई लीलार्थ मानते हैं। (५४) यह देव की जगत् जीवात्मिका अपनी महिमा है, इसलिये यहाँ कभी भी सन्देह न करना चाहिये। (५५) जीवों का अनेक कोटि भेद तो राशिभेद से है। हे मुनि लोग! उन जीवकोटि में देव की लीला होती है। (५६) शिवजी का प्रसाद जिन क्षेत्रों में है, वे गिनती में कै हैं? पचास करोड़ योजन पृथ्वी का विस्तार है। (५७) पाताल से लेकर ब्रह्मलोक के

१ ग. पुस्तकीयोऽयं पाठः, आ० पु०—'जीवात्मिका स्वका। २ ग. शिवप्र-सादात्

आपातालब्रह्मलोक[1]मध्येऽपि[2] प्राणिनां कुलम् ।
भूमावपि समस्तायां प्राणिनां पूरणं सदा ॥५८॥
तादृशे बहुविस्तारे कियद्देवप्रसादजम् ।
भूप्रदेशस्थलं विप्रास्तस्मिन् वा कति जीवकाः ॥५९॥
मुच्यन्ते कर्म्मवशतः प्रसादात् परमात्मनः ।
तत्रापि तारतम्योऽस्ति मुक्तेर्भेदः पृथक् पृथक् ॥६०॥
पापमुक्तिर्मुक्तिरिति ख्याता केषु स्थलेषु चित्[2] ।
अथवा केषुचित् ख्याता सालोक्या मुक्तिरुत्तमा ॥६१॥
केषुचिच्चैव सामीप्या सारूप्या केषुचित् स्मृता ।
नियम्यत्वं नियन्तृत्वं यावज्जीवेशयोः स्थितम् ॥६२॥
तावन्मुक्तिर्न सायुज्या इति वेदान्तनिर्णयः ।
स्वर्गादिलोकसालोक्यसारूप्याद्याश्च मुक्तयः ॥६३॥

बीच में प्राणी भरे हुए हैं। सभी भूमियाँ प्राणियों से सदा पूर्ण हैं। (५८) ऐसे बड़े विस्तारवाले भू प्रदेश में, हे ब्राह्मणो ! देव के प्रसादवाले स्थल ही कितने हैं और उनमें कितने जीव हैं ? (५९) वे कर्म के वश देव की कृपा से मुक्त होते हैं, फिर भी मुक्ति के भेद का अलग-अलग तारतम्य है। (६०) किसी किसी स्थल में तो पापमुक्ति ही मुक्ति कही गई है, और कहीं कहीं सालोक्य मुक्ति उत्तम मुक्ति कही गई है। (६१) कहीं सामीप्य और कहीं सारूप्य मुक्ति भी मुक्ति कही गई है। परन्तु जब तक ईश और जीव की स्थिति है और नियन्तृ-नियम्य-भाव बना है, (६२) तब तक सायुज्य मुक्ति नहीं होती, यह वेदान्त ने निर्णय कर दिया है। स्वर्गादि लोक, सालोक्य और सारूप्य यह सब मुक्तियाँ ही हैं। (६३) इनमें से कोई तो आवागमन देनेवाली हैं और किसी में आवागमन नहीं होता। इस प्रकार के बहुत से मुक्ति-

१ ग...ब्रह्मलोकं। २ ग. च।

पुनरावृत्तिदाः काश्चित् काश्चिन्नावृत्तिदा अपि ।
इत्यादयो मुक्तिभेदा मुक्तिस्थानेषु सन्ति वै ॥६४॥
एतेषु मुक्तिस्थानेषु तारतम्याच्च मुक्तयः ।
शिवप्रसादो येष्वस्ति तेषां वृत्तिः पुनर्नहि ॥६५॥
अथवाऽप्यस्ति चेत्सापि काशीप्राप्तिकरा[1] ध्रुवम् ।
काशीप्राप्त्यैवाभवेत् सा नो चेत्तत्रैव च क्रमात् ॥६६॥
[2]हाऊ (?) गायन् स्वेच्छया ते शिवे ब्रह्मणि मोदिताः ।
सालोक्यसामीप्यभाजः सारूप्या अपि ते क्रमात् ॥६७॥
समुत्तिष्ठन्ते च कामास्तेषां सङ्कल्पमात्रतः ।
चिरकालं तथा भुक्त्वा कामान् सङ्कल्पमात्रजान् ॥६८॥
क्रमेण तेषु वैराग्यं प्राप्य कामेषु[3] ते नराः ।
सर्वं तुच्छमिति ज्ञात्वा परे[4] ब्रह्मणि संल्लयन् ॥६९॥
स्वयमात्मानुसन्धानात् सायुज्यां मुक्तिमाप्नुयुः ।
तादृशी मुक्तिरत्रैव काश्यां सद्यो न संशयः ॥७०॥

भेद मुक्ति-स्थानों में हैं। (६४) इन मुक्ति-स्थानों में मुक्ति का तारतम्य है, जिन पर शिवजी की कृपा है, उनका फिर लौटना नहीं होता। (६५) यदि हो भी तो निश्चय करके वह काशी की प्राप्ति करा देता है। काशीप्राप्ति से मुक्ति होती है, यदि तत्काल मुक्ति न भी हो, तो क्रममुक्ति तो अवश्य होती है। (६६) वे लोग आनन्द से 'हाऊ' (सामवेद के स्तौम) का गान करते हुए शिव ब्रह्म में मग्न रहते हैं। उन लोगों को क्रम से सालोक्य, सामीप्य मुक्ति भी प्राप्त होती है। (६७) उन लोगों के संकल्पमात्र से भोग उपस्थित हो जाते हैं। वहुत दिनों तक संकल्पमात्र कामों को भोगते-भोगते काम से वैराग्य हो जाता है और (६९) स्वयम् आत्मानुसन्धान करके

१ ग. काशीप्राप्तिकरी । २ ग. गायन्तस्ते शम्भुनाम । ३ ग. कालेषु ते तराम् ।
४ ग. संलीना ब्रह्मणि परे ।

यथा स्थानविशेषेषु विविधा मुक्तिरीरिता ।
न तादृशी मुक्तिरत्र काश्यां मुक्तिर्विलक्षणा ॥७१॥
यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम् ।
यस्मिन् याति लयं सर्वं तदेवात्रस्थजन्तवः ॥७२॥
तदात्मका भवन्त्येते इति वेदानुशासनम् ।
काश्यां कृताघजीवानामुक्ता भैरवयातना ॥७३॥
सापि क्षणाय ते शम्भोस्तारकादेशहेतुतः ।
प्राणेषूत्क्रममाणेषु जन्तोरत्र सदाशिवः ॥७४॥
व्याचष्टे तारकमिति श्रुतिराह सनातनी ।
कोऽन्यथाकर्त्तुमीशस्तां भोगस्यावसरः कुतः ॥७५॥
पश्यत ब्राह्मणाः! शम्भोः प्रसादोऽत्रास्ति कीदृशः ।
अवश्यमनुभोक्तव्या भैरवी यातना यदि ॥७६॥

सायुज्य मुक्ति को प्राप्त करते हैं। वह मुक्ति काशी में सद्यः होती है, इसमें सन्देह नहीं है। (७०) जिस प्रकार स्थानविशेषों में अनेक प्रकार की मुक्तियां कही गई हैं। वैसी मुक्ति काशी में नहीं होती। यहाँ की मुक्ति विलक्षण है। (७१) जहाँ से सब भूतों की प्रवृत्ति है, जिससे यह सब बना हुआ है और जिसमें यह सब लय होता है, वही यहाँ के जीव हो जाते हैं। (७२) यहाँ के जीव तदात्मक हो जाते हैं, ऐसा वेद का अनुशासन है। काशी में पाप करनेवाले जीवों को भैरवी यातना भुगतनी पड़ती है। (७३) सो भी शिवजी के तारकोपदेश से क्षण रूप हो जाती है। यहाँ पर जन्तुओं के प्राण निकलने के समय सदाशिवजी (७४) तारक मन्त्र का उपदेश करते हैं, ऐसा सनातनी श्रति ने कहा है। उसे अन्यथा कौन कर सकता है? भोग के लिये अवसर कहाँ रह जाता है? (७५) देखिये, यहाँ परब्रह्म शिवजी की कैसी कृपा है। यदि भैरवी यातना अवश्य ही भोगनी है, (७६) तो वह प्राणोत्क्रमण के क्षण में ही परमेश्वर की माया से भोगी जाती हुई

सापि तत्क्षण एवात्र जन्तोरुत्क्रमकालगा ।
प्रदृश्यते [1]भुक्तवत् सा मायया परमेशितुः ॥७७॥
क्षणं युगायते जन्तोः युगमर्धक्षणायते ।
परमेशमायया सापि लोकभीतिप्रदायिनी ॥७८॥
धर्मलोपो यथा न [2]स्यादस्मत्क्षेत्रवलाज्जने ।
तथा शिवानुग्रहात् सा [3]यातनेति भयप्रदा ॥७९॥
साऽस्तु वा माऽस्तु वा काश्यां केदारे नास्ति संशयः।
आज्ञा वलवती शम्भोः प्रत्यक्षा शास्त्रचोदिता ॥८०॥
तस्माच्छिवक्षेत्रजातं कियद् ब्रह्माण्डमण्डले ।
अतिस्वल्पादतिस्वल्पं समुद्रे परमाणुवत् ॥८१॥
तत्रस्थजीवा मुक्ताश्चेत्[4] सृष्टौ का हानिरीशतुः ।
ब्रह्मज्ञानेनैव मुक्तिर्नान्यथेति श्रुतेर्वचः ॥८२॥

की भाँति प्रतीत होती है । (७७) जन्तु का क्षण युग के समान हो जाता है और युग आधे क्षण के बराबर हो जाता है । ऐसी परमेश्वर की माया लोक को भय देनेवाली है । (७८) मेरे क्षेत्र के बल से लोगों में धर्मलोप न हो जाय । इसलिये वह शिवानुग्रहरूपी यातना भय देनेवाली होती है । (७९) वह यातना चाहे काशी में हो अथवा न हो परन्तु केदार क्षेत्र के विषय में सन्देह नहीं है, क्योंकि शास्त्र में कही गई शङ्कर की प्रत्यक्ष आज्ञा बलवती है । (८०) अतः शिवक्षेत्र का परिमाण ब्रह्माण्ड मण्डल में है ही कितना ? थोड़े से भी अत्यन्त थोड़ा है, समुद्र में परमाणु के बराबर है । (८१) वहाँ के जीव यदि मुक्त हो जायँ तो ईश्वर की सृष्टि को क्या हानि पहुँचेगी ? क्योंकि ब्रह्मज्ञान से ही मुक्ति होती है, और किसी प्रकार नहीं हो सकती, ऐसा वेद कहता है । (८२) उसके सत्य होने में सन्देह नहीं है । वैसा ज्ञान शिवजी की

१ ग. भक्तवर्यः । २ ग. स्यादस्मात् क्षेत्रवलाज्जने । ३. ख. यातना न । ४ ग. स्युः ।

सत्यमेव न सन्देहस्तादृग् ज्ञानं शिवाज्ञया ।
तत्र क्षेत्रे [1]सम्भवत्येव प्राणिनामुत्क्रमणे ध्रुवम् ॥८३॥
शिवात्मब्रह्मविज्ञानान्मुक्तिर्युष्मत्सुसम्मता[2] ।
तथैवाऽस्मद्गुरुरपि क्षेत्रेषु श्रुतिसम्मताम् ॥८४॥
ज्ञानप्राप्तिं प्राह शम्भोः प्रसादाच्छास्त्रसम्मताम्[3] ।
ब्रह्मज्ञानावाप्तिरपि मृतिरप्युत्तमस्थले ॥८५॥
विना शिवप्रसादेन कथं लभ्येत जीविभिः ।
तस्मादत्र तु सन्देहो नैव कार्यो भवादृशैः ॥८६॥
काशी मुक्तिप्रदा सत्या केदारे सा विशेषतः ।
केदार इति नामापि वक्तॄणां श्रेयसाम्पदम् ॥८७॥
तस्मिन्नामनि सूक्ष्मार्थो [4]ह्यस्ति शृणुत भूसुराः ! ।
हेतुना येन तन्नाम्नि प्रभावो लोकतारकः ॥८८॥
केदारनाम जगति सस्योत्पादनभूमिषु ।
प्रसिद्धं तत्कथं त्वत्र शिवक्षेत्रोपपादितम् ॥८९॥

आज्ञा से उस क्षेत्र में प्राणियों को प्राण निकलने के समय अवश्य हो जाता है। (८३) शिवात्मक ब्रह्मविज्ञान से मुक्ति होना आपके भी सम्मत है, उसी प्रकार से मेरे गुरूजी ने वेदसम्मत, (८४) शास्त्रसम्मत ज्ञान-प्राप्ति शङ्करजी के प्रसाद से कही है। ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति और उत्तम स्थल की मृत्यु (८५) बिना शिवजी के प्रसाद के जीव कैसे पा सकता है, इसलिये आप ऐसे लोगों को इस स्थान में शङ्का न करनी चाहिये। (८६) यह सत्य है कि काशी मोक्षदा है और केदारक्षेत्र में विशेष रूप से है। 'केदार' यह नाम भी लेनेवालों के लिये कल्याण देनेवाला है। (८७) उस नाम में भी सूक्ष्म अर्थ हैं, सो हे ब्राह्मणों ! सुनो और इसी कारण इस नाम में लोकतारक प्रभाव है। (८८) केदारनाम

१ ग. सम्भवेदेवं २ ग.···युष्मासु संमता। ३ ग. शास्त्रसम्मतां। ४ ग. ह्यास्ते।

इत्येवं मद्गुरुः पूर्वं मया पृष्टो दयानिधिः ।
तदा मामाह भगवान् व्यासस्तदपि वो वदे ॥९०॥
धन्या यूयं यतः शम्भोः सन्निधौ [1]मामपृच्छत ।
परमेशस्य कृपया विचित्रार्थाः स्फुरन्ति मे ।
गुरोः प्रसादो बलवान् प्रसङ्गाद् मां[2] सुबोध्यति ॥९१॥
एवं योगीन्द्रवर्य्यैर्मधुररसयुतैः पुण्यसंल्लापवाग्भिः
सम्पृष्टः शम्भुभक्तैस्तदुचितभगवत्सत्कथाभिश्च सूतः ।
उक्तिप्रत्युक्तिसारप्रचुरमधुरया सत्यवाचा स तेषा-
मानन्दाब्धिं [3]प्रदृश्य प्रचुरशिवकथासारपूर्णः स्तुतस्तैः ॥९२॥
[4]सत्सङ्गः किन्न कुर्याज्जगति जनिमतां धर्मकामार्थमोक्षान्
सन्दास्यत्यञ्जसाऽन्यत् किमिह बहुतरं सत्तपो वाऽथ पुण्यम्

संसार में खेत के लिये प्रसिद्ध है, सो नाम शिवक्षेत्र के लिये कैसे उपयुक्त हुआ ? (८९) यह बात मैंने पहिले अपने गुरुजी से पूछी थी । तब दयानिधि भगवान् व्यास ने जो मुझसे कहा, सो भी मैं आप लोगों को सुनाता हूँ। (९०) आप लोग धन्य हैं कि शिवजी के सन्निकट मुझसे प्रश्न कर रहे हैं, और मुझे परमेश्वर की कृपा से विचित्र अर्थ स्फुरित हो रहे हैं । (९१) गुरूजी का प्रसाद ऐसा बलवान् है कि प्रसंग के द्वारा मुझे ज्ञान दे रहा है । इस प्रकार योगियों में श्रेष्ठ शम्भुभक्तों ने मीठी रसीली पुण्यमयी वाणी से प्रश्न किया, और शिवकथा-सार से पूर्ण सूतजी ने, उन लोगों से स्तुत होकर, उत्तर प्रत्युत्तर की सारवाली मीठी सच्ची वाणी द्वारा उन लोगों को आनन्द का समुद्र दिखला दिया। (९२) जिन लोगों ने संसार में जन्म लिया है, उनका कौन कौन-सा लाभ सत्संग से नहीं होता, सत्संग लोगों को बहुत तप और पुण्य की कौन कहें, धर्मार्थ, काम, मोक्ष बड़े सुभीते से दे देता है । आप लोगों के सत्संग से काशीकेदारक्षेत्र में मेरा मनोरथ सफल हुआ कि प्रत्यक्ष

१ ग. नाम पृच्छथ । २ ग. बोधयत्यपि । ३ ग. प्रदिश्य । ४ ग. सत्संग ।

युष्मत्सत्सङ्गतो[1] मे फलितमभिमतं काशिकेदारभूमौ
शम्भोः प्रत्यक्षदिव्यामृतरसवचनं मद्गुरोर्वाक्यरूपम् ॥९३॥

इति श्रीकाशीमूलरहस्ये ब्रह्मवैवर्त्ते खिले काशीकेदार-
माहात्म्ये अष्टाविंशोऽध्यायः ॥२५॥

अथैकोनत्रिंशोऽध्यायः ।

ऋषय ऊचुः—

सूत ! शैवरहस्यज्ञ ! शिवज्ञानैकसागर ![2] ।
त्वया श्रुतं श्रीकेदाररहस्यं जनतारकम् ॥ १ ॥
केदारेश इति ख्यातिः शिवस्य परमात्मनः ।
हेतुना केन सम्प्राप्ता आनुपूर्वी च सा कथम् ॥ २ ॥
तद्रहस्यं वदाऽस्माकं श्रोतुमिच्छावतां च नः ।
इति पृष्टस्तदा सूतः प्राह तान् गुह्यमद्भुतम् ॥ ३ ॥

दिव्य अमृत रसमयी वाणी जो गुरूजी ने मुझसे कही थी, सो आप लोगों को सुनाने से फलवती हुई । (९३)

यह ब्रह्मवैवर्त के खिलग्रन्थ काशीमूलरहस्यके अन्तर्गत काशीकेदार-
महात्म्य का अट्ठाईसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

तिय सँग हिम गिरि तप कियो, लह्यौ सुभग बरदान ॥
अर्थ शब्द केदार को, कीन्ह्यौ सूत बखान ॥

ऋषि लोग बोले—हे शिवजी के रहस्य को जाननेवाले शिव-ज्ञान के सागर सूतजी ! आपसे हम लोगों ने लोकतारक श्रीकेदारजी का रहस्य सुना । (१) शिव परमात्मा का केदार नाम किस कारण पड़ा, यह सब रहस्य आदि से हम लोग सुनना चाहते

१ ग. सत्संगमो । २ ख. सर्वरहस्यज्ञ ! ।

सूत उवाच—

शृणुध्वं मुनयः सर्वे रहस्यं परमेशितुः ।
वामदेवाय कथितं कुमारेणार्षिणा पुरा ॥ ४ ॥
तदेव चानवद्यायै कथितं नाथशर्म्मणा ।
पुरा शम्भुं समाराध्य हिमवान् गिरिनायकः ॥ ५ ॥
तपश्चचार सस्त्रीकः शरदामयुतं दृढम् ।
मेर्वादिगिरिवर्य्येषु स्वाधिक्यं प्रार्थयन् यशः ॥ ६ ॥
न भवेन्मे नगाधिक्यं सर्वेशप्रार्थनां विना ।
अहं जडः कथं शम्भुः प्रसीदेत् स इति प्रभुः ॥ ७ ॥
असम्पाद्य महेशस्य प्रसादं न तपस्त्यजे ।
इति निश्चिन्त्य च दृढं वायुभक्षस्तपोऽचरत् ॥ ८ ॥
अयुताब्दं गते त्वेनं भक्तरक्षो महेश्वरः ।
प्रसन्नः प्राह कृपया हिमवन्तश्च सावलम् ॥ ९ ॥

हैं, आप बतलाइये । ऐसा पूछने पर सूतजी ने उन लोगों से अद्भुत रहस्य कहा । (३) सूतजी बोले—हे मुनि लोग ! आप सब कोई परमेश्वर का रहस्य सुनिये, पहिले इसे सनत्कुमार ऋषि ने वामदेव मुनि से कहा था (४) और अनवद्या से नाथशर्मा ने कहा था । पहिले किसी समय में पर्वतों के राजा हिमवान् ने दस हजार वर्ष तक स्त्री के सहित शङ्करजी की प्रसन्नता के लिये दृढ़ तप किया था । (५) उनकी कामना थी कि मेरा यश मेरु आदिक श्रेष्ठ पर्वतों से बढ़ जाय । (६) विना शङ्कर की आराधना किये मैं पर्वतों का राजा नहीं हो सकता । मैं जड़ हूँ, मुझपर वह प्रभु शम्भु कैसे कृपा करेंगे ? (७) परन्तु विना शङ्कर की कृपा प्राप्त किये मैं तप न छोड़ूँगा, ऐसा दृढ़ निश्चय करके वायु भक्षण करके तप करने लगे । (८) इस प्रकार बीस हजार वर्ष बीतने पर भक्तों की रक्षा करनेवाले महादेवजी ने प्रसन्न होकर सस्त्रीक हिमालय से कहा—(९) हे पर्वतराज ! स्त्री के सहित वर माँग, तुम लोगों के तप से मैं

वरं ब्रूहि नगाधीश ! स्वाभीष्टं भार्यया सह ।
दास्यामि तेऽभिलषितं तपसा तोषितोऽस्म्यहम् ॥१०॥
इति शम्भुवचः श्रुत्वा सस्त्रीको हर्षगद्गदः ।
हिमवान् सम्प्रणम्येशं [1]स्तुत्या संस्तोतुमारभत् ॥११॥
जय जय जगदाधार ! प्रणताभीष्टद ! भक्तसर्वस्व ! ।
जय जय करुणासिन्धो ! त्रिगुणातीत ! सगुण ! सर्वज्ञ[2] ! ॥१२॥
आपदि किं भजनीयं नमनीयं च चरणयुगलमीशस्य ।
तन्नमनं किं कुरुते श्रीशादीनपि किङ्करीकुरुते ॥१३॥
मूर्त्तिर्वाचामुपनिषदामादृतस्तु चन्द्रमा मौलौ[3] ।
मच्चेतोवरसद्मनि [4]विहरतु साम्बः स सर्वज्ञः ॥१४॥

सन्तुष्ट हूँ, जो चाहोगे वह मैं तुम्हें दूँगा । (१०) शङ्करजी की ऐसी वाणी सुनकर स्त्री के सहित हिमवान् हर्ष से गद्गद हो गये, और प्रणाम करके निम्नलिखित स्तोत्र से स्तुति करने लगे । (११) हे जगदाधार ! प्रणत जन को अभीष्ट देनेवाले ! भक्तसर्वस्व ! आपकी जय हो, जय हो । हे करुणासिन्धो, त्रिगुणातीत, सगुण, सर्वज्ञ ! आपकी जय हो, जय हो । (१२) आपत्ति के समय किसका भजन करना चाहिये ? ईश्वर के दोनों चरणों को नमस्कार करना चाहिये । उससे क्या होता है ? विष्णु आदि भी आज्ञाकारी हो जाते हैं । (१३) उपनिषदों की मूर्त्ति चन्द्रमा जिनके मस्तक में आदृत है, वे सर्वज्ञ शङ्कर मेरे चेतनरूपी अच्छे मन्दिर में अम्बिका के साथ विहार करें । (१४) सत्य, ज्ञान, अनन्त ब्रह्म को, जो बुद्धिरूपी गुहा में छिपा हुआ तथा उस परमाकाश में सब कुछ रक्खा हुआ, जो जानता है, वह उसके साथ सब कामों को भोगता है । इसलिये उस आत्मा से आकाश, वायु, तेज, जल तथा अन्न की सृष्टि होती है, और उसी चिद्घन में फिर सब लय हो जाते हैं, (१५) वही सत्य, ब्रह्म, शिव है और

१ ग. नत्वा । २ ग. स्वगुण । ३ ग. मौलौ । ४ ख. विरहतस्याम्बः ।

सत्यं ज्ञानमनन्तं [1]ब्रह्म गुहानिहितमिति यो वेद
परमे व्योमनि सर्वान् सो[2]ऽश्नुते तेन सह सर्वकामान्।
तस्मादेतस्मादात्मन आकाशवायुतेजोवन्नादिः[3]
सृष्टिः सर्वा पुनरपि संस्थितिलयमायाति चिद्घनान्दे ॥१५॥
तत्सत्यं ब्रह्म शिवं त्रिगुणविलासं[4]च मत्पुरतः
धन्योऽहं पुण्यविपाकः प्रतिफलितो मेऽद्य पूर्वकः।
मेने कृत बहुपुण्यां मेने खामानमाशु चरणयुगे दीनाऽ-
वनतदत्तवर्ये सानन्दं योगिहृद्गते शम्भोः ॥१६॥
हर! मृड! चन्द्रचूड! शिव शङ्कर! भर्ग! भव! स्मर!
भूतनाथ! विषमेक्षण! विश्वपते!
पुरहर! कालकाल! पुरतोभव संस्तुवतामिति
च भणो[5] प्रणम्रजनकारुणिकस्य धुरि[6] ॥१७॥

त्रिगुण विलासरूप से मेरे सामने हैं। अतः मैं धन्य हूँ। मैं मानता हूँ कि मेरा पूर्व जन्म में किया हुआ पुण्य आज उदय हो गया। हे शिवयोगी के हृदय में निवास करनेवाले, दीनों की रक्षा में चतुर! तुम्हारे चरणों में मैं प्रणत हुआ, अतः मैं मानता हू कि मेरा बड़ा पुण्य है। (१६) हे हर, मृडचन्द्रचूड़, शिव, शङ्कर, भर्ग, भव, स्मर, हर, भूतनाथ, त्रिनयन, विश्वपति, पुरहर, कालकाल, प्रणतों पर करुणा करनेवालों में शिरोमणि! अपने सामने स्तुति करनेवालों के सम्मुख होइये यह मैं कहता हूँ। (१७) अपनी धर्मपत्नी के सहित हिमालय ने इस प्रकार से स्तुति की और साष्टाङ्ग प्रणाम किया, परमेश्वर के दर्शन से उन्हें जो प्रसन्नता हुई, वही सब अभीष्टों को देनेवाली थी, और उसी से उनका हृदय उमग उठा, लगे देहदशा भूल कर नाचने, (१८) और तब पर्वतराज ने परमेश्वर से यह वर माँगा—हे देव!

१ ग. नास्ति। २ ग. सोऽश्नुते। ३ ग. तेजोवादिः। ४ ग.…विनाशं।
५ ग. भव। ६ ग. भूरि।

इत्येवं निजधर्मदारसहितस्त्यक्त्वा तुषाराचलः
साष्टाङ्गं प्रणिपत्य सा मुदपि तत्स्वान्तःसमुद्रेश्रिता[1]।
सानन्दं परिनर्त्तयद्धि वशतस्तं देहभानं विना
सस्त्रीकं परमेशदर्शनभवाभीष्टार्थदात्री[3] तदा ॥१८॥
देवेशं वरदं प्रसन्नमगराडित्थं[4] वरं प्रार्थयत्[5]
देव! त्वत्करुणाकटाक्षविसृतेः पात्रं च जातोऽस्म्यहम्।
सर्वज्ञस्त्वमशेषजीवहृदयावासस्त्वमेवाशयं[6]
मच्चेतोगतमाशु पूरय विभो! जानन् वरं देहि मे ॥१९॥
एवं वादिनि भूधराधिपवरे शम्भुः कृपासागरः
प्रोवाचाखिलजीवसन्ततिमनोभावस्य वेत्ता प्रभुः।
जानेऽहं तव हृद्गतं नगपते! श्रेष्ठं नगानां यथा
त्वां जानीयुरिमे ममापि च भवान् पूज्यस्तथा कारये ॥२०॥

मैं आपके करुणाकटाक्ष का पात्र हुआ, आप सर्वज्ञ हैं, आप सम्पूर्ण प्राणियों के हृदय में निवास करते हैं, हे विभो! आप मेरे अन्तःकरण के आशय को जानते हैं। उसे शीघ्र पूरा कीजिये, यही वर मैं माँगता हूँ। (१९) जब हिमालय ने इस प्रकार कहा तो कृपा के समुद्र शिवजी, जो कि अखिल जीवों के मनोगत भाव को जाननेवाले हैं, बोले—हे पर्वतों के राजा! मैं तुम्हारे मनोरथ को जानता हूँ। तुम सब पर्वतों में श्रेष्ठ हो, यह बात सब लोग जान लें, और तुम मेरे भी पूज्य हो जाओ, मैं तुम्हें अवश्य ऐसा कर दूँगा। (२०) मेरे पूज्य तो मेरे भक्त ही हैं, और दूसरा कोई नहीं है, और तुम उन भक्तों में श्रेष्ठ हो, इसलिये मैं तुम्हारे शिखर पर 'बदरी' नामक उत्तम आश्रम में बसूंगा, और काल पाकर जगन्माता पराशक्ति की जन्मभूमि भी तुम्हारे कलेवर में ही होगी। अपने पूर्व पिता के छोड़ने की इच्छा के व्याज

१ ग. समुद्रोचिता। २ ग. नर्त्तयन् हि विवशतस्त्वं। ३ ग.…दाता। ४ ग. प्रसन्नमगराट् हिमवान्। ५ ग. चार्थयत्। ६ ख. जीवहृदयं।

मत्पूज्यो मम भक्त एव न परस्त्वं भक्तिभाजां वरः
तस्मात्ते शिखरे वसामि बदरीनामोत्तमे स्वाश्रमे ।
कालेन त्वयि जन्मभूरिति जगन्माता परा शक्त्यपि[1]
व्याजेन प्रतियास्यति स्वपितरं पौर्वं[2] जिहासेच्छया ॥२१॥
तां पुत्रीं परिभाव्य लोकजननीं तुष्टिं परां यास्यथः
सर्वैर्देवगणैर्द्विजैर्गिरिवरैः पूज्यौ युवां दम्पती ॥
देव्याः पाणिपरामृशेन[3] च मयाऽप्यत्यन्तपूज्यौ युवाम् ।
जायेथा द्रुहिणस्य कल्पविगमे मुक्तौ च मां यास्यथः ॥२२॥
इत्येवं परमेश्वरो नगवरं दत्वा वरं तद्गिरौ
स्वावासं च चकार तत्र बदरीनामाश्रमे ह्यादरात् ।
तल्लिङ्गं मधुसूदनो नरवपुर्नारायणाख्यं वपुः
द्वेधाऽभूत् सुरपूजितं प्रतिदिनं सम्पूज्य तस्थौ गिरौ ॥२३॥

से वह तुम्हें प्राप्त होगी, (२१) सो लोकजननी को तुम पुत्री मान कर परा तुष्टि को प्राप्त होगे । सब देवता, ब्राह्मण और पर्वत तुम्हारी पूजा करेंगे, और देवी के व्याह कर लेने से तो तुम दोनों मेरे अत्यन्त पूज्य हो जाओगे, और ब्रह्मा के कल्प पूरा होने पर मुक्त होकर मेरे द को प्राप्त होगे । (२२) ऐसा वर पर्वतराज को देकर परमेश्वर ने उसी पर्वत पर बदरिकाश्रम में आदर के साथ निवास किया । तब मधुसूदन विष्णु ने नर और नारायण रूप से दो शरीर धारण करके उस लिङ्ग का प्रतिदिन भली भाँति पूजा करते हुए उसी पर्वत पर निवास किया । (२३) उस लिङ्ग के दर्शन से जन्मवालों का शरीर तुरन्त छूट जाता था और उसी क्षण योगिवृन्द को दुर्लभ मोक्ष उस पर्वत पर सुलभ हो गया था । जब लोगों को उसकी विशेष निर्मल महिमा का पता लगा तो असंख्यात लोग वहाँ पहुँचने लगे । लोगों में प्रसिद्ध हो गया कि यहाँ से शिवजी का धाम मिलता

१ ग. परा देव्यपि । २ ग. पूर्वस्य हानेच्छया । ३ ग. पाणिपरिग्रहेण च ।

तल्लिङ्गस्य च दर्शनाज्जनिमतां सद्यस्तनुत्यागतः
मोक्षस्तत्क्षणमेव योगिविनुतः प्राप्तो यदा भूधरे ।
लोकास्तन्महिमाविशेषममलं श्रुत्वा ह्यनन्ता गताः ।
शम्भोर्धामप्रदा[1] जनैश्च विदिता साऽभूच्च मोक्षाकरा ॥२४॥
मोक्षानन्दनिरन्तरा निविडसत्सस्याङ्कुराणामयम्[2]
[3]केदारः परमेश्वरावसथभूः प्रालेयशैलोपरि ।
धर्म्मार्थाखिलकाममोक्षसुमहासस्यानि सूते फलं
केदारेऽत्र गिराविति प्रथितसत्कीर्त्या स्तुता भूर्जनैः ॥२५॥
तदाप्रभृति केदारमिति ख्यातं हिमाचले ।
धर्मार्थकाममोक्षाख्यफलसस्याङ्कुराकरम् ॥२६॥
क्षेत्रं केदारमिति तत्प्रथितं परमेशितुः ।
बहवस्तत्र योगीन्द्रा मुक्तिं प्रापुः [4]शिवं भजन् ॥२७॥
अद्यापि मुक्तिदं क्षेत्रं महाप्रस्थानसंज्ञकम् ।
तन्मार्गगतजन्तूनामपुनर्भवमुक्तिदम् ॥२८॥

है, (२४) अतः वह भूमि मोक्ष की खानि हो गई, निरन्तर मोक्षानन्दमयी बन गई। यह अच्छे धान के अङ्कुरों से भरा हुआ केदार (खेत) परमेश्वर का निवासस्थान प्रालेय पर्वत के ऊपर था, और इस बड़ी भारी खेती में धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष रूपी फल इस पहाड़ी खेत (केदार) में लगते हैं, ऐसी कीर्ति लोगों में फैल गई और यह पृथ्वी लोगों से पूजित हुई। (२५) तभी से हिमाचल में 'केदार' की प्रसिद्धि हुई कि यह धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष चारों फल की खेती के अंकुरों की खानि है। (२६) यह परमेश्वर का केदारक्षेत्र जगद्विख्यात हुआ। वहाँ बहुत से योगीन्द्रों ने शिवजी की सेवा करके मुक्ति पाई। (२७) अब भी वह मुक्ति देनेवाला क्षेत्र महाप्रस्थान के नाम से कहा जाता है। उस मार्ग से जानेवाले जन्तुओं को आवागमन से रहित मुक्ति प्रदान करता है। (२८)

१ ग. तदा २ ग. सत्सस्याकुराणामियम् । ३ ग. केदारे । ४ ग. शिवार्चया ।

महाकैलाससदने यदा ब्रह्मागतः पुरा ।
'दहरस्थमहालिङ्गान् मुक्तान् दृष्ट्वा समागतः ॥२९॥
केदारदर्शनाकाङ्क्षी न ददर्श शिवं पुनः ।
पश्चाद्धावन् महिषवृन्दे देव दे' यदाऽलभत् ॥३०॥
तदाप्रभृति प्रत्यक्षदर्शनं लिङ्गरूपिणः ।
न प्राप्तं च जनैस्तस्मात् सद्यो मुक्तिर्गता तदा ॥३१॥
ये के च तत्र मनुजास्त्यक्तदेहाश्च मत्क्षितौ ।
ते यान्तु मत्पदं नान्ये तीर्थरेतोदपानतः ॥३२॥
एवं शम्भुर्वरं दत्वा काश्यामाविर्बभौ हरः ।
केदारलिङ्गरूपस्य जनानां दर्शनं ददौ ॥३३॥
धर्म्मार्थकाममोक्षाणां काश्यां केदारभूमिका ।
सस्यवृद्धिकरी जाता विश्वेशनगरीबलात् ॥३४॥
काशी सर्वप्राणिनां वै मोक्षदापि शिवाज्ञया ।
तत्र केदारभूः श्रेष्ठा यतो हिंसा न भैरवी ॥३५॥

महाकैलास सदन में जब ब्रह्मा पूर्व काल में गये थे, तो ऐसे मुक्तों को देख आये, जिनके हृदयकमल में महालिङ्ग विराजमान था। (२९) उन्हें केदारजी के दर्शन की आकांक्षा हुई, पर शिवजी को न देख पाया, तब पीछे दौड़ते २ भैंसों में देवदेव को पाया। (३०) तब से लोगों का प्रत्यक्ष लिङ्ग का दर्शन मिलना बन्द हो गया, और तभी से सद्यः मुक्ति भी बन्द हो गई। (३१) जो कोई मनुष्य मेरे क्षेत्र में शरीर छोड़ें, वे रेतोदतीर्थ के जलपान से मेरे धाम को प्राप्त हों, और नहीं। (३२) इस प्रकार वरदान देकर शङ्कर जी काशी में प्रकट हुए, केदार-लिङ्ग रूप का मनुष्यों को दर्शन दिया (३३) विश्वेश्वर की नगरी के बल से काशी की केदारभूमि धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष रूपी खेती की उपजाने वाली हुई। (३४) शिवजी की आज्ञा से काशी सब प्राणियों को मोक्ष देनेवाली है, उसमें

१ ग. रहस्यं तन्मयान्।

एवं चतुर्वर्गसस्यप्रदा केदारभूमिका ।
हिमाचलस्थात् केदारात् काशीकेदार उत्तमः ॥३६॥
यस्मात् साक्षाल्लिङ्गमूर्त्तिः काश्यामाविर्बभूव ह ।
हित्वा हिमाद्रिकेदारं [1]विश्वेशकरुणाबलात् ॥३७॥
तस्माद् मोक्षाख्यसस्यस्य केदार इति वै प्रथा ।
एवं केदारनामाभूत् क्षेत्रं काश्यां तथा गिरौ ॥३८॥
[2]हिमागकेदारमोक्षः महाप्रस्थानयानतः ।
काशीकेदारमुक्तिस्तु ह्यनायासेन सिद्ध्यति ॥३९॥
महाप्रस्थानगमनं दुर्घटं भुवि देहिनाम् ।
तुषारशैथिल्यभग्नसन्ध्यस्थिस्नायुचर्मणाम् ॥४०॥
महाहिंसां प्राप्य तत्र नृणां मुक्तिर्महापथे ।
काश्यां केदारभूमौ तु न तथा देहयातना ॥४१॥

भी केदारक्षेत्र श्रेष्ठ है, जहाँ पर भैरवी यातना नहीं होती । (३५) इस प्रकार चारों फल की खेती उपजानेवाली केदारभूमिका है, हिमालय के केदार से भी काशी-केदार उत्तम है, (३६) क्योंकि साक्षात् लिङ्गमूर्ति हिमालय केदार को छोड़कर विश्वेश्वर के करुणाबल से काशी में प्रगट हुई । (३७) इसलिये 'मोक्ष की खेती का यह केदार अर्थात् खेत है' ऐसा ही सब लोग कहने लगे । इस प्रकार काशी-क्षेत्र तथा हिमालय में केदार नाम पड़ा । (३८) हिमालय में महाप्रस्थान यात्रा करने से केदार मोक्षप्रद हैं, और काशी-केदार में मुक्ति अनायास ही सिद्ध हो जाती है । (३९) पृथ्वी में देहधारी के लिये महाप्रस्थान यात्रा दुर्लभ है । पाला की सरदी से जोड़, हड्डी, नस, चमड़ा सब फूल जाते हैं । (४०) बड़ी भारी पीड़ा पाकर तब महापथ में मुक्ति मिलती है, और काशी-केदारभूमि में वैसी देहयातना नहीं है । (४१) अनायास देहत्याग-मात्र से ही मोक्ष होता है । उपदेश देकर महादेवजी एक क्षण में

१ ग. विश्वेशः । २ ग. हिमाद्रि'''।

अनायासेनैव देहत्यागमात्रेण तारकम् ।
उपदिश्य महादेवः करोति स्वात्मवत् क्षणात् ॥४२॥
श्रीकालभैरवाद्यास्तु काशीस्था देवतागणाः ।
तूष्णीं पश्यन्ति मुक्तं तं जीवं चित्रार्पिता इव ॥४३॥
रहस्यं विश्वनाथस्य को जानातीति संस्तुवन्[1] ।
पञ्चाशत्कोटिविस्तीर्णभूमौ काशी विलक्षणा ॥४४॥
पञ्चक्रोशात्मिका सर्वलोकानां मोक्षदा ध्रुवम् ।
तथाप्यत्र विमुक्तानामस्मदाज्ञावशा[2] गतिः ॥४५॥
भैरवाज्ञां विना देवो न युनक्त्यात्मधाम हि ।
केदारान्तर्गृहेऽस्माकं नैवाज्ञा सम्प्रवर्त्तते ॥४६॥
तस्यां काश्यामपि तरां पृथक्केदारमण्डलम् ।
धन्या येऽत्र मृता जीवास्त्वस्मद्भ्यो बलवत्तराः ॥४७॥
शिवप्रसादो बलवान् [3]केन शक्यो निवारितुम् ।
यावद्रहस्यं नाजानन् जनाः केदारभूगताः[4] ॥४८॥

अपना रूप बना लेते हैं। (४२) श्रीकालभैरवादि काशी के देवता चित्रपट में लिखे हुए की भाँति उस जीव को चुपके से देखा करते हैं। (४३) और स्तुति करते हैं कि विश्वनाथ का रहस्य कौन जान सकता है। पचास करोड़ योजन विस्तीर्ण पृथ्वी में काशी विलक्षण है। (४४) वह पञ्चक्रोश के भीतर सब लोगों को निश्चयपूर्वक मोक्ष देती है, फिर भी इसमें मुक्त होनेवालों की गति हम लोगों के वश में है। (४५) विना भैरव की आज्ञा, महादेव अपना धाम नहीं देते, परन्तु केदार-जी के अन्तर्गृह के भीतर हम लोगों की आज्ञा नहीं चलती। (४६) इस-लिये काशी में भी भली भाँति केदारमण्डल पृथक् है, इसमें मरने-वाले जीव धन्य हैं, वे हम लोगों से भी बढ़कर हैं। (४७) शिवजी की कृपा बलवती है, उसे कौन टार सकता है। जब तक लोग केदारक्षेत्र

१ ग. विस्मृताः। २ ग.…वशाद्। ३ ग. तान्न शक्यो। ४ ग. भूगतम्।

[1]तावदेवात्रास्मदाज्ञा काश्यां भाति गरीयसी ।
शिवाज्ञाऽपि तथैवास्ति श्रद्धा लोके न जायते ॥४९॥
यस्मिन् मेऽनुग्रहः पूर्णस्तस्यैवात्र मृतिर्भवेत् ।
तस्मात्काशीभूविशेषे वैलक्षण्यमिहास्ति हि ॥५०॥
इति सन्तुष्टहृदया मोदन्ते भैरवादयः ।
एवं वै मुक्तिसस्यस्य केदारं श्रुतिनिश्चितम् ॥५१॥
रहस्यं परमं गोप्यमिति ब्रह्मविदो विदुः ।
एवं केदारनाम्नो वै प्रवेत्ता शम्भुरेव हि[2] ॥५२॥
अन्येन केन वा वेत्तुं शक्यते शिवहृद्गतम् ।
एका गौरी विजानाति [3]तद्भक्त्याऽनन्यया ध्रुवम् ॥५३॥
सनत्कुमारेण बुद्धं प्रसादादेव शूलिनः ।
केदारेति वचः सर्वैरुच्यते लोकविश्रुतम् ॥

की महिमा नहीं जानते, (४८) तभी तक यहाँ हम लोगों की आज्ञा बलवती मालूम होती है। शिवजी की भी ऐसी ही आज्ञा है कि अन्य लोगों को श्रद्धा ही नहीं होती, (४९) जिसके ऊपर मेरा पूर्ण अनुग्रह है, वही यहाँ मरता है, इसलिये काशी की भूमि में बड़ी विलक्षणता है। (५०) ऐसा समझकर, सन्तुष्टहृदय होकर भैरवादि आनन्द करते हैं। इस प्रकार मुक्ति की खेती का केदार (खेत) वेदों से निश्चित है। (५१) यह रहस्य परमगोप्य है, इसे ब्रह्मवेत्ता लोग जानते हैं। इस प्रकार केदार नाम के मर्मज्ञ शङ्करजी ही हैं, (५२) दूसरा कोई शङ्कर के हृदय की बात कैसे समझ सकता है। उनकी अनन्य भक्ति से केवल गौरी इसे जानती हैं। (५३) उन्हीं शूल धारण करनेवाले के प्रसाद से सनत्कुमार ने भी इसे जान पाया है। लोकविश्रुत होने से 'केदार' ऐसा शब्द तो सभी बोल देते हैं। परन्तु उसका परम रहस्य पृथ्वी पर लोग नहीं जानते। (५४) इस प्रकार केदारनाथ पहिले-पहल हिमालय के

१ ग. तावदेवास्मदाज्ञा च। २ ग. वै। ३ ग. तद्भक्ता नान्यया।

परमं तद्रहस्यन्तु न जानन्ति जना भुवि ॥५४॥
एवं केदारनाथो हिमगिरिशिखरे पूर्वमाविर्बभूव
पश्चादन्तर्धिमाप स्वयमनुपमया लीलया कालपाकात् ।
श्रीमद्विश्वेशभूमौ पुनरपि दययाविर्बभौ काशिकायां
भक्तानुद्धर्त्तुमिष्टान् जगदुपकृतये लिङ्गरूपी महेशः ॥५५॥
साक्षाद्विश्वेश एव प्रणमदभयदः काशिकेदारनाम्ना
काश्यां सर्वत्र दत्ता कुमतिभयकरी भैरवी यातनाख्या ।
केदारे सा निरस्ता क्वचिदपि जनता भैरवी काशीभूमौ
भूयास्तुर्निर्भया [१]मद्गुरुतरकृपया तेन दत्ताभयाऽभूत् ॥५६॥
केदारेश इति विश्वेश्वर इति न भिदा मानसे कार्यमेवं
शास्ता[२]काशीकृताघाखिलजननिकरान् स्वाज्ञया कः प्रशस्तम्[३] ।
तस्यैव प्रीतिपात्रं [४]क्षितितलमभवत् काशिकेदारभागं[५]
तस्याज्ञा केन लङ्घ्या [६]जनसुकृतवशा एवमास्ते विचित्रा ॥५७॥

शिखर पर प्रकट हुए, पश्चात् स्वयं ही काल पाकर अनुपम लीला द्वारा अन्तर्धान हो गये। श्रीमद्विश्वेश्वर की भूमि काशी में फिर दया से अपने इष्ट भक्तों के उद्धार के लिये एवं जगत् के उपकार के लिये भक्तवत्सल महादेव लिङ्गरूप से प्रादुर्भूत हुए। (५५) प्रणत को अभय देनेवाले साक्षात् विश्वेश्वर ने ही केदार नाम से दुर्मतियों को भय देने-वाली भैरवी यातना काशी में सर्वत्र नियत कर रक्खी है। केदारक्षेत्र में वह भी नहीं होती। भैरवी काशी भूमि में मेरी बड़ी कृपा से कुछ लोग तो निर्भय हो जायँ, इसलिये यहाँ अभय दे रक्खा है। (५६) केदार और विश्वेश्वर में मन से कोई भेद न रखना चाहिये। काशी में जिनसे पाप हो पड़ा है, उन लोगों के लिये यह आज्ञा है, और नहीं

१ ग. यद्गुरुतरकृपया तेन दत्ताभयास्ताः। २ ग. काशीकृताघान् खलु··· । ३ क. प्रशास्ता, ग. प्रशस्तः। ४ ग. क्षितितल अभवत्। ५ ग. काशीकेदारभागः। ६ ग.······वशादेवमास्ते ।

श्रुत्वा मुनीन्द्राः परमाद्भुतं त-
च्छम्भो रहस्यं पुलकाक्तदेहाः ।
शिवप्रसादस्य विचित्रलीलां
हृदा स्मरन्तो विवशा बभूवुः ॥५८॥

इति श्रीकाशीमूलरहस्ये ब्रह्मवैवर्त्ते खिले काशी-
केदारमाहात्म्ये एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥२९॥

अथ त्रिंशोऽध्यायः ।

[1]ऋषय ऊचुः—

सूत ! शम्भुरहस्यज्ञ ! शिवज्ञानैकसागर ! ।
रमां जेतुं पुरा शम्भुर्देवीमकथयत् कथाः ॥ १ ॥

तो अपनी आज्ञा से कौन शासन कर सकता है ? उसी शङ्कर की पृथ्वीमण्डल भर में काशी-केदारभूमि प्यारी है । मनुष्यों के सुकृत से उनकी ऐसी विचित्र आज्ञा हुई, उसे कौन लंघन कर सकता है ? (५७) शङ्कर भगवान् के इस परम अद्भुत रहस्य को सुनकर मुनीन्द्रों के शरीर में पुलकावली छा गई । शिवजी की कृपा की लीला विचित्र है, ऐसा हृदय में स्मरण करते-करते उनके सर्वाङ्ग शिथिल हो गये । (५८)

यह ब्रह्मवैवर्त्त के खिलग्रन्थ काशीरहस्य के अन्तर्गत काशीकेदार-
माहात्म्य का उनतीसवां अध्याय समाप्त हुआ ॥

दोहा—काशी रहति त्रिशूल पर, जात प्रलय कैलास ।
सूत कही सो सब कथा, पुनि संक्षेप प्रकाश ॥ १ ॥
कीन्ह कथा जो शिवा कहि, लयो रमा को जीति ।
प्रकट विश्व केदार को, महिमा अविचल कीति ॥ २ ॥

ऋषियों ने कहा—हे सूतजी ! आप शिवजी के रहस्य के जानकार और शिवज्ञान के सागर हैं । सो रमा को जीतने के लिये

१ क. ग. श्रीमुनयः ।

शतशः पू[१]कल्पीयाः 'कीदृश्यस्ताः कथाः पराः ।
भवान् यदि विजानाति तासु काश्चिद्वदाऽद्य नः ॥ २ ॥
रहस्यातिरहस्यास्ताः शिवैकविदिताः खलु ।
यासां सारं विदन्नर्थं नैगमेयो गणाग्रणीः ॥ ३ ॥
भूमौ क्षेमकविर्भूत्वा समस्तग्रन्थसारकृत् ।
यद्ग्रन्थलोपकरणे व्यासोऽप्यासीत् प्रयत्नवान् ॥ ४ ॥
तादृक्कथासारसुधासीकरैर्नो निषेचय[२] ।
इति पृष्टस्तदा सूतः प्राह तान् ब्रह्मवादिनः ॥ ५ ॥

[३]सूत उवाच —

शृणुध्वं मुनयः सर्वे तत्कथासारसंग्रहम् ।
श्रुतं गुरोः प्रसादेन किंचिन्मे विदितं वदे ॥ ६ ॥
कल्पे कल्पे सृष्टिभेदाः कथाश्चित्राः शिवोदिताः ।
[४]शिवक्षेत्रेषु बहुषु संसेव्य परमेश्वरम् ॥ ७ ॥

शङ्कर भगवान् ने पूर्व के शत कल्पों की कथाएँ जो देवी से कही थीं, (१) वे कथाएँ कैसी हैं ? यदि आप उनमें से कुछ जानते हों तो हम लोगों को भी सुनाइये । (२) वे कथाएँ रहस्यों की भी रहस्य हैं, क्योंकि उन्हें केवल शिवजी ही जानते थे, जिनके सारार्थ को जानने-वाले गणों में श्रेष्ठ नैगमेय ने (३) पृथ्वी पर क्षेम कवि होकर सब ग्रन्थों का ऐसा अच्छा सार बनाया कि उसके लोप करने में व्यास-जी को प्रयत्न करना पड़ा । (४) ऐसे कथासारामृत के छींटे से हम लोगों को सींचिये । ऐसा पूछने पर सूतजी ने उन ब्रह्मवादियों से कहा । सूतजी बोले—हे मुनि लोग ! उन कथाओं का सार संक्षेप में सुनो । जो मैंने गुरूजी की कृपा से थोड़ा बहुत जान पाया है, उसे कहता हूँ । (६) प्रत्येक कल्प की सृष्टियों में भेद होता है, अतः

१ ग. कीदृश्यस्ताः । २ ग. निषवय । ३ ख. पुस्तकीयोऽयं पाठः, आ० पु० —नास्ति । ४ ग. पुस्तकीयोऽयं पाठः,—आ० पु० शिवे क्षेत्रेषु ।

जीवा ब्रह्मादयो जातास्तथा देवाङ्गना अपि ।
तेषां तासां कथा वक्तुं कः शक्तः [1]श्रुतिविस्तराः ॥ ६ ॥
तथापि काशीमात्रस्य काश्चित् [2]स्वल्पाः श्रुता मया ।
तासु सङ्क्षेपतो वक्ष्ये बुध्यस्व शिववैभवम् ॥१०॥
देव्यै प्राह महादेवः कल्पभेदेन वै पुरा ।
शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि लीला मे [3]प्रतिकल्पिका ॥१०॥
सर्वक्षेत्रेषु भूपृष्ठे काशीक्षेत्रं च मे वपुः ।
त्रिशूलकण्टकाग्रे मे सदा तिष्ठति निर्भयम् ॥११॥
प्रलये चोर्ध्वमुन्नम्य महाकैलासमेष्यति ।
पुनः [4]सृष्टौ भुवं प्राप्य जनोद्धाराय तिष्ठति ॥१२॥
[5]भूमिष्ठमिव भात्येतदज्ञदृष्ट्याऽमृतादिवत् ।
मत्स्वरूपं ज्ञानदृशां भाति सत्यं वदे प्रिये ! ॥१३॥

शिवजी से कही गई कथाएँ भी विचित्र हैं। अनेक शिव-क्षेत्रों में परमेश्वर की सेवा करके (७) कितने जीव ब्रह्मादि हो गये, कितने देवाङ्गना हो गये। उनकी बड़ी बड़ी कथाएँ कौन कह सकता है ? (८) फिर भी केवल काशी की थोड़ी-सी कथा मैंने सुनी है। उन्हीं को मैं संक्षेप में कहता हूँ, उनसे आप शिवजी की महिमा जान लीजिये। (९) देवी से महादेव ने कल्पभेद का आश्रयण करके पहिले कहा था—हे देवि ! मैं अपने प्रतिकल्प की लीला कहता हूँ, (१०) पृथ्वी के सर्व क्षेत्रों में काशी क्षेत्र मेरा ही शरीर है, काशी मेरे त्रिशूल के फल के अग्रभाग में सदा निर्भय ठहरी हुई है। (११) प्रलय काल में ऊपर उठकर यह महाकैलास में चली जाती है, फिर सृष्टि काल में पृथ्वी पर आकर लोगों के उद्धार के लिये ठहर जाती है। (१२) यह पृथ्वी पर ठहरी हुई की भाँति मालूम होती है, परन्तु ज्ञानदृष्टि से यह अमृ-

१ ग. स्वतिविस्तराः । २ ग. कल्पाः । ३ ग. प्रतिकाल्पिका। ४ ग. सृष्टां ।
५ ख. भूमिस्थामिव ।

तत्र मल्लिङ्गरूपाणां महिमानं वदे शृणु ।
विश्वेशोंकारकेदाराद्यादिभेदवतां शिवे ! ॥१४॥
पूर्वं दशार्णदेशस्थः [1]कक्षीवान्नाम वै द्विजः ।
सपुत्रः काशिकामागाद् यात्रायै श्रद्धया युतः ॥१५॥
उवास वत्सरं काश्यां केदारसविधे द्विजः ।
भार्याद्वयेन संयुक्तो नित्यं केदारमर्चयन् ॥१६॥
सोमवारव्रतपरः दृढं नियममास्थितः ।
स्नात्वा सोमदिने सम्यग् गौरीतीर्थे विधानतः ॥१७॥
धृतभस्मत्रिपुण्ड्रः श्रीरुद्राक्षालङ्कृतः सुधीः ।
शिवं सम्पूज्य विधिवद्रात्रौ पश्चात् कृताशनः ॥१८॥
हविरन्नफलक्षीरयथासम्भववस्तुभिः ।
शिवनैवेद्यपूर्वैः स [2]सस्त्रीपुत्रोपहारयन् (?) ॥१९॥

तादि की भाँति है । हे प्रिये ! मैं सत्य कहता हूँ, मेरा स्वरूप ज्ञानदृष्टि-वाले ही देख सकते हैं । (१३) वहाँ के अपने लिङ्ग रूपों की महिमा मैं कहता हूँ, तुम सुनो । विश्वेश्वर, ओंकारेश्वर, केदारेश्वर आदि भेद करके उनका वैभव कहता हूँ । (१४) पहिले दशार्ण देश में एक कक्षी-वान् नामक ब्राह्मण रहता था । वह श्रद्धा से युक्त होकर यात्रा के लिये अपने पुत्र को साथ लेकर आया । (१५) एक साल तक वह विधि के साथ केदार क्षेत्र में रहा । अपनी दोनों स्त्रियों के साथ नित्य केदार-जी की पूजा करता था । (१६) सोमवार के व्रत का उसने दृढ़ नियमकर रक्खा था । उस दिन वह विद्वान् विधान से गौरीतीर्थ में स्नान करता, (१७) भस्म त्रिपुंड्र धारण करता और रुद्राक्ष के आभूषण पहनता था । शिवजी की पूजा करके पीछे रात्रि में भोजन करता था ।(१८) हविष्य अन्न, फल और दूध आदि वस्तुओं को पहिले शिवजी को निवेदन करके तब स्त्री-पुत्र के साथ आप भोजन

१ ग. काक्षीवान्नाम । २ ग. सस्त्रीपुत्र उपाहरन् ।

उषित्वा वत्सरं पश्चात् स्वदेशं गतवान् पुनः ।
कालेन निधनं [1]यातः केदारेशप्रसादतः ॥२०॥
कश्यपोऽभूद्ब्रह्मसुतस्तद्भार्ये [2]चादितिर्दितिः ।
पुत्रस्तुराषाडभवत् केदारेशप्रसादतः ॥२१॥
शिवज्ञानं प्राप्य सर्वे भोगान्ते मां [3]समापिरे ।
शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि देशे कोसलसंज्ञके ॥२२॥
सुदासो नाम राजाऽभूत् सभार्यः ससुतः कृती ।
यवीयसि सुते राज्यं निक्षिप्यागात् स काशिकाम् ॥२३॥
पुत्रभार्यायुतो वर्षं [4]केदारसविधेऽवसत् ।
प्रदोषे पक्षपक्षे स स्नात्वा गौरीसरोवरे ॥२४॥
भस्मत्रिपुण्ड्ररुद्राक्षधारी केदारमर्चयन् ।
विप्राननेकान् संभोज्य पश्चादश्नाति वै स्वयम् ॥२५॥

करता था। (१९) एक साल रहकर फिर अपने देश चला गया। समय पाकर उसकी मृत्यु हुई, और केदारेश्वर की कृपा से वह ब्रह्मदेव का पुत्र कश्यप हुआ और उसकी दोनों स्त्रियाँ दिति और अदिति हुईं। केदारेश्वर की कृपा से उनका बेटा इन्द्र हुआ। (२१) अन्त में वे शिवज्ञान प्राप्त करके भुक्तभोग होकर मेरे पद को प्राप्त हुए। हे देवि ! मैं कहता हूँ सुनो। कोसल देश में (२२) एक सुदास नामक राजा हुआ, वह, उसकी स्त्री और उसके बच्चे सब धर्मात्मा थे। छोटे लड़के को राज्यभार देकर वह काशी चला आया, (२३) और स्त्रीपुत्र के साथ केदार क्षेत्र में बसा। प्रतिपक्ष प्रदोष के दिन वह गौरी कुण्ड में स्नान कर और (२४) भस्म त्रिपुण्ड्र रुद्राक्ष धारण करके केदारेश्वर की पूजा करता था और बहुत से ब्राह्मण खिलाकर पश्चात् आप भोजन करता था। (२५) एक

१ ग. जातः। २ ग. चादितिर्दिती। ३ ख. समाययुः। ४ ग. पुस्तकीयोऽयं पाठ., आ. पु.—'केदारे सविधे' इति।

केदारे वत्सरं स्थित्वा स्वराज्यं प्राप वै पुनः ।
कालेन निधनं प्राप्य केदारेशप्रसादतः ॥२६॥
स्वायम्भुवो मनुर्जातः शतरूपा च तत्प्रिया ।
सुतो विवस्वानभवत् केदारेशप्रसादतः ॥२७॥
शिवज्ञानं क्रमात् प्राप्य भोगान्ते मा[1] समाययुः ।
शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि पाण्ड्यदेशे स्थितो वणिक् ॥२८॥
सुधनो नाम धनवान् शिवधर्म्मपरायणः ।
पुत्रभार्यायुतः काशीं यात्रायै सुसमागतः ॥२९॥
कृत्वा यात्रां यथावत् स केदारसविधे वसन्[2] ।
उवासाब्दद्वयं तत्र केदारेशं सुसेवयन्[3] ॥३०॥
गौरीतीर्थे प्रतिदिनं स्नात्वा केदारमर्चयन् ।
शिवरात्रौ महाभक्तिस्तस्य शम्भोः समर्चने ॥३१॥

साल केदार क्षेत्र में रहकर अपनी राजधानी को चला गया । समय पाकर उसकी मृत्यु हुई और केदारेश्वर की कृपा से (२६) वह स्वायम्भू मनु हुआ और उसकी स्त्री शतरूपा हुई, उसका पुत्र सूर्य्य हुआ । (२७) क्रम से शिव-ज्ञान उसे प्राप्त हुआ और केदारेश्वर की कृपा से उसे मेरा पद मिला । हे देवि ! मैं कहता हूँ सुनो, पाण्डय देश में एक व्यापारी था (२८) उसका नाम सुधन था । वह धनी और शिव-धर्म में परायण रहता था । वह स्त्री-पुत्र के साथ काशी-यात्रा के लिये आया । (२९) यथाविधि यात्रा करके केदार-क्षेत्र में टिका; और केदारेश्वर की सेवा करता हुआ दो बरस तक ठहर गया । (३०) नित्य गौरीकुण्ड में स्नान करके केदारेश्वर का पूजन करता था । शिवरात्रि को शङ्कर के पूजन में उसे महा भक्ति थी, (३१) दो बरस वहाँ रहने से दोनों शिवरात्रियों में उसने गौरी-तीर्थ में स्नान

१ ग. मां । २ ग. ऽवसत् । ३ ग. समर्चयत् ।

अब्दद्वयागते तत्र शिवरात्रिद्वयेऽपि सः ।
स्नात्वा गौरीतीर्थे वरे[1] भस्मरुद्राक्षभूषितः ॥३२॥
रात्रौ च जाग्रत् सम्पूज्य शम्भुं यामचतुष्टये ।
परेद्युः ब्राह्मणान् भोज्य भक्त्या केदारसन्निधौ ॥३३॥
पश्चात् स्वयं कृताहारः पुत्रभार्यासुसंयुतः ।
शिवं प्रसाद्य स्वं[2] देशं गतवान् सुधनो वणिक् ॥३४॥
कालेन निधनं प्राप्य केदारेशप्रसादतः ।
जातो हिमांशुस्तत्पत्नी रोहिणी तत्सुतो बुधः ॥३५॥
मज्ज्ञानं प्राप्य भोगान्ते मामेवापुः प्रिये ! शृणु ।
अन्यच्छृणु महादेवि ! मम केदारवैभवम् ॥३६॥
काश्मीरविषये कश्चिच्छूद्रः श्रीदासनामकः ।
तस्यासन् पञ्चतनयाः सप्रेमाश्च परस्परम्[3] ॥३७॥

करके भस्म रुद्राक्ष धारण किया (३२) और रात्रि भर जागरण करके चारों पहरों में उसने शङ्कर की पूजा की । और दूसरे दिन केदारजी के निकट उसने ब्राह्मण जिमाए, (३३) उसके पीछे उसने पुत्र स्त्री के साथ भोजन किया, और शिवजी को प्रसन्न कर के वह सुधन व्यापारी अपने देश को चला गया । (३४) समय पाकर उसका शरीरावसान हुआ और वह केदारजी के प्रसाद से चन्द्रमा हुआ, उसकी स्त्री रोहिणी और पुत्र बुध हुआ । हे प्रिये ! अन्त में भोग की समाप्ति होने पर (३५) उसे मेरा ज्ञान प्राप्त हुआ और हे प्रिये ! वह मेरे पद को प्राप्त हुआ । हे महादेवि ! मैं केदार हूँ, मेरी और महिमा सुनो, (३६) काश्मीर देश में श्रीदास नामक एक शूद्र था, उसके पाँच बेटे थे और उनमें आपस में प्रेम भी था । (३७) श्रीदास और उसकी स्त्री काल पाकर मर गये और वे पाँचों पुत्र माँ बाप के

१ ग. '०तीर्थवरे' इति । २ ग० स्वदेशं० । ३ ग. परम्परम् ।

श्रीदासो भार्यया सार्कं कालेन निधनं गतः ।
अनाथाः पञ्चपुत्रास्ते [1]मातापितृवियोगतः ॥३८॥
तारितुं पितरौ काशीमागताः सास्थिकास्तयोः ।
प्रक्षिप्यास्थीनि काश्यां ते कृत्वा यात्रां विधानतः ॥३९॥
केदारसविधं प्राप्य संस्थितास्तत्र वत्सरम् ।
गौरीतीर्थे प्रतिदिनं स्नात्वा केदारमर्च्य च ॥४०॥
किंचिद् भिक्षादिकं भक्त्या दत्वा तत्रावसंस्तदा ।
एवं स्थिते प्रदोषास्तु मन्दवारयुतास्त्रयः ॥४१॥
[2]तस्मिन्नब्दे समायातास्तेषु शम्भुं समर्च्य ते ।
रात्रौ केदारनाथाग्रे जाग्रद्भस्माक्षधारिणः ॥४२॥
सम्पूज्य शक्त्याप्यतिथिं पश्चात्तेऽपि कृताशनाः ।
गताः परं स्वदेशं ते कालेन निधनं गताः ॥४३॥

न होने से अनाथ हो गये। (३८) माँ बाप को तारने के लिये वे सब उन दोनों के फूल (हड्डी) लेकर काशी आये। फूल को उन सब ने गङ्गा में सिराया और विधिपूर्वक यात्रा की। (३९) केदार क्षेत्र में जाकर विधिपूर्वक एक साल रह गये। प्रतिदिन गौरी-तीर्थ में स्नान करके केदारजी की पूजा करते थे। (४०) भक्तिपूर्वक कुछ भिक्षादिक भी दे देते थे। इसी भाँति वहाँ वसे रहे। इस प्रकार उनके ठहरने के समय तीन शनि प्रदोष (४१) एक साल में पड़े। उन प्रदोषों में उन लोगों ने शम्भु की पूजा की और भस्म रूद्राक्ष धारण करके केदारेश्वर के सामने रात्रि जागरण किया (४२) और यथाशक्ति अतिथि की पूजा करके पीछे से स्वयम् भोजन किया। फिर अपने देश चले गये, और समय पाकर मर गये। (४३) अब केदारेश्वर की कृपा से उनकी क्या गति हुई? हे प्रिये! उसे सुनो, वे पाँचों क्रम से (१) यमराज, शनैश्चर, सावर्णि

१ ग. मातृपितृ० । २ ग. तस्मिन् मन्दे ।

केदारेशप्रसादेन गतिस्तेषां शृणु प्रिये ! ।
परेतराट् शनिश्चैव मनुः सावर्णिरश्विनौ ॥४४॥
अभूवन् पञ्च ते श्रीमत्केदारेशप्रसादतः ।
क्रमेणाप्य च मज्ज्ञानं भोगान्ते मां समागताः ॥४५॥
भूयः शृणु महादेवि ! [1]मरुदेशे शमीपुरे ।
अन्त्यजो दुर्घटो नाम तत्रासीद्धर्म्मवर्जितः ॥४६॥
सांयात्रिकैः म्लेच्छसङ्घैः सहायातः स काशिकाम् ।
सांयात्रिका वस्तुजातं विक्रीय च गताः पुनः ॥४७॥
तैर्न यातो दुर्घटस्तु नितरां रोगपीडितः ।
श्रीमत्केदारभूमौ स षण्मासं संस्थितो बहिः ॥४८॥
मासे मासे कृष्णपक्षचतुर्दश्यां [2]शिवान्तिकम् ।
रात्रौ जनाः समागत्य केदारं पूज्य यान्ति वै ॥४९॥
बहिर्द्वारि स्थितो रुग्णो [3]याचितुं तांश्च जागरन् ।
शुभं करोतु केदारो युष्माकमिति [4]याचयन् ॥५०॥

मनु और अश्विनीकुमार (४४) श्रीमान् केदारेश्वर के प्रसाद से हुए। और मेरा ज्ञान पाकर भोग का अन्त होने पर मेरे पद को प्राप्त हुए। (४५) हे महादेवि ! और भी सुनो। मारवाड़ के शमीपुर में एक दुर्घट नामक चाण्डाल था। वह बड़ा पापी था। (४६) म्लेच्छ सौदागरों के साथ वह काशी आया। सौदागर तो अपना सौदा बेच-कर लौट गये। (४७) पर दुर्घट ऐसा रोगी हो गया था कि उनके साथ जा न सका। श्रीमान् केदारजी के क्षेत्र में छः महीने बाहर रहा। (४८) हर महीने कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी को रात्रि के समय शिवजी की पूजा की भीड़ होती थी। (४९) वह रोगी फाटक के बाहर बैठकर रात भर भीख माँगता था, और बराबर सबसे कहता था कि केदार बाबा तुम्हारा भला करें। (५०) इस भाँति भीख माँगने में उसे छः शिवरात्रियों

१ ख. कुरुदेशे। २ ख. शिवान्तिके। ३ ग. जागर्त्ति तांश्च याचितुं। ४ ग. संवदन्।

यच्चाव्याजाज्जागरितास्तेन षट्शिवरात्रयः ।
नामोच्चारोऽपि [1]षण्मासशिवरात्रिषु याचतः ॥५१॥
तस्य [2]सङ्घटितो दैवाज्जागरोप्यन्त्यजन्मनः ।
दृष्ट्वा जनं समायाचन् मध्ये मध्ये च निद्रितः ॥५२॥
यावज्जागरणं तस्य नाभूत्तस्य[3] तथापि सः ।
केदारेशदयापात्रमभूत्तस्य गतिं शृणु ॥५३॥
[4]षाण्मासान्निरुजः पश्चात् स्वदेशं प्राप्य कालतः ।
मृतिं प्राप ततः सोऽभूद्राह्वाख्यः सिंहिकासुतः ॥५४॥
देवैः सहामृतं पीत्वा द्विधाभूतोऽपि दानवः ।
नवग्रहपदं प्राप श्रीकेदारप्रसादतः ॥५५॥
प्राप्य क्रमेण मज्ज्ञानं भोगान्ते मां समागतः ।
शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि भूयः केदारवैभवम् ॥५६॥

में रात्रि जागरण का मौका मिला, और छवों शिवरात्रियों में भीख माँगते हुए उसने नामोच्चारण भी किया। (५१) दैवात् उस चाण्डाल से रात्रि जागरण बन पड़ा। जब भीड़ आती थी, तब माँगता था, और बीच बीच में सो भी जाया करता था। (५२) यद्यपि पूरा जागरण उससे नहीं बन पड़ा, फिर भी वह केदारेश्वर की दया का पात्र हो गया। अब उसकी गति सुनो। (५३) छः महीने में वह नीरोग होकर अपने देश लौट गया और काल पाकर काल के वश हुआ। वही दुर्घट सिंहिका का बेटा राहु हुआ। (५४) देवों के साथ उसने अमृत पान किया और दो टुकड़े होने पर भी श्रीकेदारेश्वर की कृपा से नवग्रह का पद प्राप्त किया। क्रम से उसे मेरा ज्ञान हुआ और भोग के अन्त में मेरे पद की प्राप्ति हुई। हे देवि ! सुनो, मैं और भी केदारेश्वर की महिमा कहता हूँ। कर्णाटक देश में कलावती नाम की एक ब्राह्मणी

१ ख. षट्संख्य०, ग. षण्मासान्। २ ग. संघटितो। ३ ग. तेन। ४ ग. षण्मासान्।

कर्णाटदेशजा विप्रपत्नी नाम्ना कलावती ।
[1]अङ्गदेशोद्भवा राजपत्नी नाम्ना विलासिनी ॥५७॥
[2]घुर्जरी [3]सुमती नाम्ना स्थित्वा वैश्याङ्गना सती ।
विदर्भदेशजा नाम्ना पुण्याकायस्थभामिनी ॥५८॥
स्वस्वदेशाच्चतस्रोऽपि विधवाः काशिकां ययुः ।
अपुत्रास्ता ह्यनाथाश्च काशीं प्राप्य यथाविधि ॥५९॥
कृत्वा यात्रादिकं सर्वं विप्रान् पूज्य स्वशक्तितः ।
केदारमागता [4]नन्तुं चतस्रोऽपि पृथक् पृथक् ॥६०॥
[5]तासामेवात्र केदारे सम्बभूव समागमः ।
का त्वं का त्वमिति प्रश्नपूर्वं सल्लापसङ्गतः ॥६१॥
स्वस्वदुःखं तदोचुस्ताः स्ववैधव्यानपत्यताम् ।
वयमत्रैव संस्थित्वा केदारेशं निषेविम ॥६२॥

थी, अङ्ग देश में विलासनी नामकी रानी थी, (५७) घुर्जर देश में सुमती नाम की एक वैश्या थी और वैदर्भ देश में पुण्या नाम की एक कायस्थ की स्त्री थी। (५८) ये चारों विधवाएँ अपने २ देश से काशी आईं। ये पतिपुत्रविहीना विधिपूर्वक काशी आईं। (५९) यथाविधि यात्रादि तथा अपनी शक्ति के अनुसार ब्राह्मणों की पूजा करके, ये चारों अलग अलग केदारेश्वर का दर्शन करने गईं। (६०) उन सब की केदारेश्वर में भेंट हुई, एक ने दूसरे का परिचय पूछा और बात चीत हुई। (६१) उन सब ने एक दूसरे से अपना अपना विधवापन, वन्ध्यापन आदि दुःख कहा और यह निश्चय किया कि हम लोग यहीं ठहर कर तब तक केदारेश्वरकी सेवा करेंगी, (६२) जब तक कि पास का पैसा खतम न हो जाय। यहाँ ठहर कर शङ्कर की पूजा और ब्राह्मण अतिथि तथा

१ ग. अङ्गदेशभवा। २ ग. गुर्जरी। ३ ग. सुमतिर्नाम्ना स्थिता। ४ ग. तास्तु। ५ ख. तासामेकत्र। ग. स्थित्वा।

स्वं स्वं धनं व्ययीकृत्य यावद्वित्तव्ययावधि ।
अत्र स्थित्वा शिवं पूज्य द्विजानतिथिभिक्षुकान् ॥६३॥
सत्कुर्वन्त्यो यथाशक्ति पश्चाद् याम स्वमालयम् ।
इति निश्चित्य तास्तत्र स्थिताः केदारपार्श्वतः ॥६४॥
पतिं हृदि ध्यायमाना[1]श्वेष्टदेववदादरात् ।
गौरीतीर्थे प्रतिदिनं स्नात्वा केदारमर्च्य च ॥६५॥
नियतं द्वादशाब्दं ता धर्म्मबुद्ध्याऽवसन्[2] शिवे ।
सोमवारे प्रदोषे च शिवरात्रिषु सादरम् ॥६६॥
अन्येषु व्रतमुख्येषु सर्वेष्वभ्यर्च्य शङ्करम् ।
उपोषणपरा भक्त्या विप्रान् भोज्य तथाऽतिथीन् ॥६७॥
पश्चादश्नन्ति तास्त्वेवं कायक्लेशयुताः स्थिताः ।
किंचिच्छिष्टधनाः स्वस्वदेशं प्रापुर्यथा पुरा ॥६८॥
केदारे द्वादशसमा नीत्वा पश्चात् स्वसद्मसु ।
कालेन निधनं प्राप्ताः शृणु तासां गतिं प्रिये ! ॥६९॥

भिक्षुकों का (६३) यथाशक्ति सत्कार करेंगी और तब अपने घर लौट जाँयगी । ऐसा निश्चय करके वे केदारजी के समीप ठहर गईं और इष्टदेव की भाँति पति का ध्यान आदर से हृदय में करती रहीं । प्रतिदिन उन लोगों ने गौरी-तीर्थ में स्नान करके केदारेश्वर का पूजन किया (६५) हे शिवे ! वे सब बारह वर्ष तक धर्म बुद्धि से बसीं । सोमवार, प्रदोष और शिवरात्रि (६६) तथा अन्य व्रतों में वे आदर के साथ शङ्कर का पूजन करती थीं । उपवास के बाद भक्तिपूर्वक ब्राह्मण जिमाती थीं, अतिथियों को भोजन देती थीं (६७) और तत्पश्चात् आप भोजन करती थीं । इस प्रकार शरीर को कष्ट देती हुईं ठहरीं । जब पास का पैसा समाप्त हो गया, तब अपने २ देश को चली गईं । (६८) इस प्रकार बारह

१ ग. स्वेष्ट० । २ ग. वसन्ति च ।

केदारस्था[१] यदा ता वै अन्नपूर्णां मम प्रियाम् ।
नित्यं सम्पूजयन्ति स्म गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ॥७०॥
भौमवारे भृगोर्वारे नवरात्र्यां विशेषतः ।
उपोष्य प्रार्थयन्त्यः[२] स्म त्वत्पदं देहि नो इति ॥७१॥
तासां प्रार्थनया देवी केदारेशं प्रसाद्य च ।
अदापयत् पदं यद्यत्तच्छृणुष्व वरानने ! ॥७२॥
कलावती विप्रपत्नी जाता त्वं पूर्वकल्पके ।
विलासिनी राजपत्नी[३] रमाऽभूत् पूर्वकल्पके ॥७३॥
[४]सुमती घुर्जरी वैश्या वाण्यभूत् पूर्वकल्पके ।
पुण्याख्यापि च वैदर्भी कायस्थाभूच्छची पुरा ॥७४॥
एवं केदारकृपया [५]अन्नपूर्णाप्रसादतः ।
कल्पभोगानन्तरं ता मम ज्ञानात् त्वया सह ॥७५॥

वर्ष केदारक्षेत्रमें रहकर, अपने घर जाकर मरीं । हे प्रिये ! उन सब की गति सुनो, (६९) जब वे केदारजी में रहीं तब मेरी प्रिया अन्नपूर्णा का उन्होंने गन्धाक्षत पुष्प से नित्य पूजन किया (७०) और मङ्गलवार, शुक्रवार तथा नवरात्रि में तो और भी विशेष पूजा की और उपवास करके प्रार्थना की कि हम लोगों को अपना पद दो। (७१) उन लोगों की प्रार्थना से गौरी ने शिवजी को प्रसन्न किया और जो जो पद दिलाया सो हे वरानने ! तुम सब सुनो (७२) तुम पूर्व कल्प में कलावती ब्राह्मणी रही, रमा विलासिनी रानी रहीं, (७३) सरस्वती पूर्व कल्प की वही घुर्जरी सुमती नामकी वैश्या हैं, और इन्द्राणी पूर्व कल्प की कायस्थ की स्त्री वैदर्भी हैं। (७४) एक कल्प के भोग के बाद मेरे ज्ञान की प्राप्ति से वे तुम्हारे साथ (७५) केदारेश्वर की कृपा से

१ ग. श्लोकोऽयम्—'भौमवारे' इतः परं पठितः । २ ग. प्रार्थयन्ति स्म तत्पदं । ३ ग. श्रीरभूत् । ४ ग. सुमतिर्गुर्जरी । ५ ग. ह्यन्नपूर्णाप्रसादतः ।

प्रापुर्मदन्तिकं देवि ! केदारेशप्रसादतः ।
भूयः शृणु महादेवि ! केदारेशस्य वैभवम् ॥७६॥
काश्यां स्थितः पुरा विप्रो धर्मशर्माभिधः कृती ।
विरक्तो ब्रह्मचारी च वेदाध्ययनतत्परः ॥७७॥
यात्रार्थमागतः काशीं कृत्वा यात्रां यथाविधि ।
केदारं प्राप्य न्यवसदब्दद्वयमतन्द्रितः ॥७८॥
स्नात्वा गौरीमहातीर्थे नित्यं केदारमर्चयन् ।
कुर्वन् माधुकरीं वृत्तिमार्द्रायामरुणोदये ॥७९॥
समर्चयन् महालिङ्गे केदारे मासि मासि सः ।
सूर्ये धनुषि चार्द्रायां विशेषान्मां च पूजयन् ॥८०॥
कालं निनाय मद्भक्त्या चार्द्रायां मां समर्चयत् ।
स्वामिन् ! त्वत्पूजया[१] देहि तव ज्ञानमकल्मषम् ॥८१॥
इति प्रार्थ्य गतः काञ्चीं मार्गे स निधनं गतः ।
केदारेशस्य कृपया सोऽभूदत्रेः सुतः पुनः ॥८२॥

मेरे सान्निध्य को प्राप्त हुई । हे देवि ! केदारेश्वर का और भी वैभव सुनो, (७६) काञ्चीपुरी में पहिले एक धर्मशर्मा नामक पुण्यात्मा ब्राह्मण रहता था । वह विरक्त ब्रह्मचारी था और वेद पढ़ने में लगा रहता था । (७७) यथाविधि यात्रा करके वह काशी आया; और केदारजी में पहुँचकर तीन बरस सावधानी से बसा । (७८) गौरीतीर्थ में स्नान करके नित्य केदार की पूजा करता था, माधुकरी माँगकर खा लेता था । आर्द्रा नक्षत्र में अरुणोदय के समय हर महीने में महालिङ्ग की पूजा करता था और धनुर्मास की आर्द्रा में मेरी विशेष पूजा करता था । (८०) मेरी भक्ति में अपना समय व्यतीत करता हुआ आर्द्रा में पूजा कर प्रार्थना करता था कि हे स्वामिन् ! अपनी पूजा से प्रसन्न होकर मुझे अपना कल्मषरहित ज्ञान दीजिये । (८१) ऐसी प्रार्थना

१ ग. त्वत्पूजनं ।

दुर्वासाख्यो मम तनुर्महानन्दैकनिर्भरः[1] ।
कल्पान्ते मामगाद् देवि ! केदारेशप्रसादतः ॥८३॥
अनसूया चात्रिपत्नी केदारेशस्य सन्निधौ ।
त्वामन्नपूर्णां सम्पूज्य त्रिमूर्तीनां प्रसूरभूत् ॥८४॥
भूयः शृणु प्रवक्ष्यामि पूर्वं श्रीपर्वते द्विजः ।
स्त्रिया सार्कं धृतिर्नाम पूजयन् मल्लिकार्जुनम् ॥८५॥
स्थितः कदाचिद् यात्रार्थं सभार्य्यः काशिकामगात् ।
कृतयात्रः काशिपुर्यां भक्तियुक्तो यथाविधि ॥८६॥
केदारं प्राप्य पश्चात् स न्यवसद् वत्सरांश्च षट् ।
तत्र षण्मुखमाराध्य षट् समा नियमेन सः ॥८७॥
कृतिकायां मासि मासि शुक्लषष्ठीषु चादरात् ।
कार्त्तिके कृतिकायां स विशेषेण समर्चयन् ॥८८॥

करके वह काञ्ची को चला, पर रास्ते में ही मर गया। केदारेश की कृपा से अन्य जन्म वह अत्रि का बेटा हुआ। (८२) उसका नाम दुर्वासा पड़ा। वह मेरे ही शरीर और मेरे ही आनन्द में मग्न रहता था। कल्पान्त में केदारेश्वर की कृपा से मेरे पद को प्राप्त हुआ। (८३) अत्रिजी की पत्नी अनुसूया ने केदारेश्वर के सन्निकट अन्नपूर्णा रूपी तुम्हारी पूजा की और तीनों मूर्त्तियों की माता हो गई। (८४) मैं और भी कहता हूँ सुनो—पहिले श्रीपर्वत में एक धृति नामक ब्राह्मण रहता था, वह अपनी स्त्री के साथ मल्लिकार्जुन की पूजा किया करता था। (८५) किसी समय वह स्त्री के साथ यात्रा के लिये काशी आया और उसने भक्तिपूर्वक यथाविधि काशीपुरी की यात्रा की। (८६) केदारक्षेत्र में आकर छः बरस रह गया, और नियम से छः बरस तक उसने षण्मुख स्वामी कार्तिकेय की आराधना की। (८७) हर महीने की कृतिका और शुक्लषष्ठी को आदर के साथ तथा कार्त्तिक की

१ ग. सदानन्दैकनिर्भरः ।

चम्पाषष्ठ्यां स्कन्दषष्ठ्यां स्कन्दमर्च्य विशेषतः ।
कृत्तिकासु च षष्ठीषु समुपोष्य समर्च्य च ॥८९॥
स्नात्वा नित्यं गौरीतीर्थे केदारेशं समर्चयन् ।
अन्नपूर्णायुतं देवं पत्न्या सम्पूजयन् द्विजः ॥९०॥
यथाशक्त्यतिथीन्[1] विप्रान् भिक्षुकान् तर्पयन् स्थितः ।
षड्वत्सरात् परं यातो भूप्रदक्षिणकामतः[2] ॥९१॥
मध्येमार्गं मृतः कालाद् दग्धा तेनैव सा सती ।
केदारेशप्रसादेन जातोऽगस्त्यो महामुनिः ॥९२॥
लोपामुद्राभिधा पत्नी जाता तस्यैव सा सती ।
स्कन्दादवाप्य मद्ज्ञानं नित्यतृप्तौ च दम्पती ॥९३॥
जगत्प्रख्यातयशसौ कल्पान्ते मामवापतुः ।
शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि विन्ध्यारण्ये किरातकः ॥९४॥

कृत्तिका में विशेष रूप से पूजन करता था। (८८) चम्पाषष्ठी और स्कन्दषष्ठी को भी विशेष पूजा करता था, और कृत्तिका तथा षष्ठी में उपवास पूर्वक पूजन करता था । (८९) उसने नित्य गौरीतीर्थ में स्नान करके केदारेश्वर की पूजा करने का नियम कर रक्खा था। सपत्नीक अन्न पूर्णा के सहित देव की पूजा किया करता था। (९०) यथाशक्ति अतिथि, ब्राह्मण और भिक्षुओं को भी तृप्त करता था। छः वर्ष के बाद वह पृथ्वी-प्रदक्षिणा की कामना से निकला। (९१) पर रास्ते में ही उसका देहान्त हो गया। उसकी स्त्री भी उसी के साथ जलकर मर गई। केदारेश्वर की कृपा से वह अगस्त्य नामक महामुनि हुआ और उसकी स्त्री लोपामुद्रा हुई। उन दोनों को स्कन्द से मेरे ज्ञान की प्राप्ति हुई, और वे दोनों प्राणी नित्य तृप्त हो गये। जगत् में उनकी बड़ी ख्याति हुई, और कल्पान्त में वे दोनों मुझे प्राप्त हुए। हे देवि ! मैं कहता हूँ, सुनो; विन्ध्य के वन में दुर्नय नामक एक

१ ग.......तीर्थे विप्रान् । २ ग. भूः प्रदक्षिणकामतः ।

दुर्नयाख्यो महापापी पान्थान्[1] बाधन् स्थितः पुरा ।
कश्चित् कार्पटिकं हन्तुमुद्युक्तः शस्त्रधृक् खलः[2] ॥९५॥
तदा भीत्या[3] कार्पटिको ढुण्ढि केदारनायकम् ।
उच्चैश्चुक्रोश त्राहीति तेन तस्तम्भ तस्करः ॥९६॥
स्तब्धहस्तो यदा व्याधः विप्रं प्राह नमस्य[4] च ।
स्वामिन्! करः[5] सायुधो मे स्तब्धस्तं नमनीकुरु[6] ॥९७॥
[7]त्वदिष्टदैवं संस्मृत्य क्षमासारा हि साधवः ।
इत्येवं प्रार्थयन्तं तं स्मृत्वा देवौ पुनर्द्विजः ॥९८॥
स्ववशीकृतवान् हस्तं किरातस्य यथा पुरा ।
तदा किरातस्तं नत्वा [8]त्वद्दैवं मामुपादिश ॥९९॥

महापापी किरात रहता था। (९५) वह पथिकों को लूटता फिरता था। एक दिन किसी कार्पटिक (काँवरवाले) को मारने के लिये उस खल ने हथियार उठाया, तब वह ऊँचे स्वर से चिल्लाया—'हे ढुण्ढि! हे केदारेश्वर! मेरी रक्षा करो', सो उस किरात का हाथ स्तम्भित हो गया। (९६) हाथ के जकड़ जाने से उस व्याध ने ब्राह्मण को नमस्कार करके कहा कि हे स्वामिन्! मेरा हाथ तो हथियार के साथ स्तब्ध हो गया है, उसे आप सीधा कर दीजिये। (९७) साधुओं का सार क्षमा है, सो आप अपने इष्ट देव का स्मरण करके मेरा हाथ ठीक कीजिये। उसकी ऐसी प्रार्थना सुनकर फिर ब्राह्मण ने दोनों देवताओं को नमस्कार करके (९८) किरात का हाथ पहिले की भाँति उसके काबू में कर दिया, तब तो किरात ने उसे प्रणाम करके प्रार्थना की कि आप मुझे अपना इष्ट देव बतलाइये। (९९) जिसमें मैं भी उनका स्मरण करके धन्य हो जाऊँ। तब ब्राह्मण ने व्याध से कहा कि तू काशी केदार के

१ ग. धावन्। २ ग. स्वतः। ३ ग. भयात्। ४ ग. प्रणम्य च। ५ ग. करस्यायुधो। ६. ग. शामयेऽधुना। ७ ग. त्वमिष्टदेवं। ८. ग तद्दैवं।

येनाहमपि संस्मृत्वा[1] प्राह धन्योऽभवं त्विति[2] ।
विप्रः प्राह तदा व्याधं काश्यां केदारसन्निधौ ॥१००॥
गत्वा त्वं पूजय विभुं शिवं विघ्नेशपूर्वकम् ।
तत्प्रसादात् कृतार्थस्त्वं भवेत्युक्त्वा गतो द्विजः ॥१०१॥
व्याधः काशीं समागत्य कृत्वा यात्रां विधानतः ।
केदारेशस्य सविधे स्थितः [3]संवत्सरं भजन् ॥१०२॥
गौरीकुण्डे [4]दिनं स्नात्वा केदारेशं समर्च्य च ।
मासि मासि चतुर्थ्यां स [5]विघ्नेशं सम्प्रपूजयन् ॥१०३॥
महाचतुर्थ्यां विघ्नेशं विशेषेण समर्च्य च ।
उपोष्य जागरन्रात्रौ विप्रान् भोज्य ततः परम् ॥१०४॥
स्वयं भुक्त्वा शिवं नत्वा गन्तुमप्रार्थयच्छिवम् ।
तदाहाकाशवाणीं तं गच्छ श्रेयो भवेदिति ॥१०५॥
तच्छ्रुत्वात्यन्तसन्तुष्टः स्वदेशं प्राप शीघ्रतः ।
कालेन निधनं यातो वेनो[6] राजा बभूव सः ॥१०६॥

के निकट जाकर (१००) वहाँ पहिले गणेश की पूजा करके विभु शङ्करजी की पूजा कर। उनके प्रसाद से तू कृतार्थ होगा, ऐसा कहकर ब्राह्मण चला गया। (१०१) व्याध काशी आया और विधान से यात्रा करके उसने केदारजी का एक साल तक विधिपूर्वक भजन किया। नित्य गौरीकुण्ड में स्नान करके केदारेश्वर की पूजा करता था, और हर महीने चौथ के दिन विघ्नेश्वर को पूजता था। (१०३) महाचतुर्थी को तो गणेशजी की विशेष पूजा करता था। उपवास करके रात्रि में जागरण कर ब्राह्मण जिमाता था (१०४) और उसके बाद आप भोजन करता था। फिर शिवजी को नमस्कार करके उनसे जाने के लिये प्रार्थना की। तब उसके लिए आकाशवाणी हुई 'जा तेरा भला होगा'। यह सुनकर वह

१ ग. संस्मृत्य। २ ग. भवाम्यहो। ३ ग. संवत्सरावधि। ४ ग. स्नानपूर्वं सम्पूजयन्। ५ जाग्रद्रात्रौ ग. स भोजयित्वा ततोद्विजान्। ६ ग. वेनराजो बभूव सः।

पृथुर्वेनस्य तनयः सार्वभौमोऽतिकीर्त्तिमान् ।
सर्वविघ्नेशसारं स 'श्रुत्वान्तेऽभूद् दिवस्पतिः ॥१०७॥
तत्र प्राप्य शिवज्ञानं भोगान्ते मामुपाययौ ।
शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि पुनः केदारवैभवम् ॥१०८॥
'कलिङ्गविषये भिल्लास्त्रय आसन् सुदुर्धियः ।
पूर्वपुण्यवशात् काशीं प्राप्य ते काशिकाभुवि ॥१०९॥
'केदारेशं दण्डपाणिं माधवं कालभैरवम् ।
भृगोर्वारे मन्दवारे भौमे सम्पूज्य भक्तितः ॥११०॥
विश्वावसुर्नारदश्च तुम्बरुश्चाभवन् दिवि ।
तत्र भुक्त्वा कल्पभोगं क्रमाद् मज्ज्ञानयोगतः ॥१११॥
मामेवापुर्मां[४] प्रगायन् केदारेशप्रभावतः ।
कल्पे कल्पे च काश्यां वै [५]केचिद्विश्वेशपूजकाः ॥११२॥

बड़ा सन्तुष्ट हुआ और शीघ्रता से अपने देश में पहुँचा । समय पाकर जब वह मरा तो वेणु (वेन) राजा हुआ, (१०६) जिसके पुत्र पृथु सार्वभौम राजा हुए और उनकी बड़ी कीर्ति हुई । विघ्नेश्वर का पूरा २ सार सुनकर अन्त में वह इन्द्र हुआ । (१०७) वहाँ शिवज्ञान पाकर भोग का अन्त होने पर मेरे पद को प्राप्त हुआ । हे देवि ! मैं फिर केदारजी की महिमा कहता हूँ, सुनो; कलिङ्ग देश में तीन भील बड़े दुष्ट थे । पूर्वपुण्य के प्रभाव से वे काशी आये । (१०९) और यहाँ श्रीकेदारजी में शुक्र, शनैश्चर और मङ्गल के दिन दण्डपाणि, माधव और कालभैरव को भक्तिपूर्वक पूजकर, स्वर्ग में विश्वावसु, नारद और तुम्बुरु हुए । वहाँ एक कल्प तक भोगों का भोग करके क्रम से उन्हें मेरा ज्ञान हुआ (१११) और मेरा गान करते-करते केदारेश के प्रभाव से मुझे पा गये । प्रत्येक कल्प में कितने विश्वेश्वर की पूजा करनेवाले (११२) और कितने ओंकारादि लिङ्गों की पृथक्

१ ख. ग. पुस्तकीयोऽयं पाठः, आ० पु०—श्चुत्वा । २ ख. पुस्तके—'कलिंगविषये, श्लोकोऽयं नास्ति । ३ ग. केदारेशं । ४ ग. मत्स्तुवतः । ५ ख. केदारेश्वरपूजकाः ।

केचिदोङ्कारादिलिङ्गान्यभ्यर्च्य च पृथक् पृथक् ।
देशान्तरमृताः पश्चाद् देवत्वं प्राप्य कालतः ॥११३॥
मद्ज्ञानं प्राप्य भोगान्ते मामेवापुर्ध्रुवं प्रिये ! ।
ऋषयो मनवः साध्या विश्वेदेवा मरुद्गणाः ॥११४॥
आदित्या वसवो रुद्रा दिक्पालाश्च सयोषितः ।
पाताललोकनिलया गन्धर्वा यक्षकिन्नराः ॥११५॥
नागकन्याश्चाप्सरसो [1]महर्जनतपःसदः (?) ।
ब्रह्मविष्णुमहेशानां लोकगाः ख्यातभूनृपाः ॥११६॥
कल्पे कल्पे प्रभेदेन काश्यां मल्लिङ्गपूजकाः ।
देशान्तरमृता एव विद्धि त्वं देवयोनयः ॥११७॥
अन्यत्रापि मम क्षेत्रे पूज्य देवत्वमापिरे ।
[2]कथाविस्तारतो वक्ष्ये यदि कल्पशतैरपि ॥११८॥

पृथक् पूजा करके काशी से दूसरे देश में जाकर मरे। फिर भी उनको देवत्व मिला और काल पाकर (११३) मेरा ज्ञान हुआ। तब भोग का अन्त होने पर हे प्रिये! उन्होंने मुझे पा लिया। ऋषि, मनु, साध्य, विश्वेदेव, मरुद्गण (११४) आदित्य, वसु, रुद्र, दिक्पाल और उनकी स्त्रियाँ, पाताललोक में रहनेवाले, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर (११५) नाग-कन्या, अप्सरा, महः, जन और तपोलोक के निवासी, ब्रह्मा, विष्णु, और महेश्वर का लोक प्राप्त करनेवाले प्रख्यात राजा लोग (११६) जितने हैं, कल्प कल्प के भेद से काशी में मेरे लिङ्ग की उन्होंने पूजा की है, और अन्यत्र जाकर मरे हैं। जान रक्खो कि वे ही देवयोनि को प्राप्त किये हुए हैं। (११७) मेरे दूसरे क्षेत्रों में भी मेरी पूजा करके लोगों ने देवत्व पाया है। यह कथाविस्तार यदि सौ कल्प भी कहा जाय, (११८) तो भी पूरा नहीं पड़ सकता। मेरी लीला ऐसी ही विचित्र

१ ग. महोजनस्तपः सदः । २ ग. कथाविस्तरतो ।

न पूयन्ते विचित्रास्ता मम लीला विनोदजाः ।
लक्ष्मीजयार्थं ते वक्ष्ये शतमष्टोत्तरं पृथक् ॥११९॥
अज्ञाता रमया सर्वास्ताभिस्त्वं जय वै रमाम् ।
इत्युक्त्वा भगवान् [1]शम्भुर्गौरीमप्रेषयत्तदा ॥१२०॥
कदापि नाकर्णितास्ताः श्रुत्वा तूष्णीमभूद्रमा ।
[2]देवी रमां तदा जित्वा शिवमाप हसन्मुदा ॥१२१॥
काशीकेदारनाथस्य महिमा केन वर्ण्यते ।
तथैवोङ्कारविश्वेशमुखानां लिङ्गवर्ष्मणाम् ॥१२२॥
महिमानं विजानाति स एव परमेश्वरः ।
इत्याह मां पुरा श्रीमान् मद्गुरुर्बादरायणः ॥१२३॥
शृणुत मुनिवरेन्द्राः ! सत्कथासारभूतं
परमशिवरहस्यं केन वक्तुं क्षमं तत् ।

और आनन्दमयी है । लक्ष्मी के जप के लिये मैं तुमसे १०८ कथाएँ अलग २ कहूँगा। (११९) रमा उनमें से एक नहीं जानती, उन्हीं के द्वारा तुम रमा को जीत लो । ऐसा ही कहकर भगवान् शम्भु ने उस समय उमा को भेज दिया था । (१२०) रमा ने उन्हें कभी सुना ही न था इससे चुप रह गईं । तब देवी रमा को जीतकर हँसती हुई शिवजी के पास आई । (१२१) काशी-केदारनाथ की महिमा का वर्णन कौन कर सकता है ? उसी प्रकार ओंकारेश्वर, विश्वेश्वरादि लिङ्गों की (१२२) महिमा भी वही परमेश्वर जानते हैं । यह बात पहिले मुझसे मेरे गुरु श्रीमान् बादरायण ने कही थी । (१२३) हे मुनियों में श्रेष्ठ ! सुनो यह अच्छी अच्छी कथाओं का सारभूत परम शिवरहस्य कोई कह नहीं सकता, मेरे गुरुजी दिव्यज्ञानी हैं और शम्भु की भक्ति

१ ख. गौरीमुत्प्रेषयत्तदा । २ ग. तदा जित्वा रमां देवी शिवमाप हसन्त्यहो ।

मम गुरुरपि दिव्यज्ञानवान् शम्भुभक्त्या
निखिलविदपि किंचित् मामवोचत् कृपालुः ॥१२४॥
तदिह भवदनुज्ञाप्रेरितोऽहं यतस्तत्
प्रकटमवदमीशं [1]प्राणनाथाविवादम् ।
तदिह शिवरहस्यं नैव वाच्यं कुधीषु
प्रवरमुनिगणेन्द्रा यूयमेवात्र धन्याः ॥१२५॥
काश्यां विश्वेशसद्मन्यथ विविधमहालिङ्ग[2]सद्मस्वनेके-
ष्वोङ्कारादिष्वसंख्या द्विजनृपवणिजः शूद्रचाण्डालभिल्लाः ।
शम्भुं देवीं गणेशं गुहमखिलगणान् नन्दिभृङ्गीशमुख्यान्
तत्तत्पुण्ये दिने तत्प्रचुरसविधया देवमुख्या बभुवुः ॥१२६॥
एवं चान्येष्वपीशप्रचुरमहिमवत्क्षेत्रवर्येषु जीवाः
सम्पूज्य श्रीमहेशं ससुतगणवधूभक्तमाद्यं सुभक्त्या ।
देवत्वं भूपतित्वं सकलभुवनविख्यातकीर्त्या मुनित्वं
सिन्धुत्वं [3]सन्नदीत्वं तरुवरगिरितामप्यवापुर्मुनीन्द्राः ॥१२७॥

से सब कुछ जानते हैं, तो भी उन कृपालु ने मुझसे थोड़ा-सा ही कहा । (१२४) उसे मैंने आप लोगों की आज्ञा से प्रकाशित कर दिया । यह प्राणप्रिया का विवाद शङ्करजी का रहस्य है, उसे दुर्बुद्धियों से कभी न कहना चाहिये । हे श्रेष्ठ मुनिगणों के मुख्य ! यहाँ पर आप ही लोग धन्य हैं । (१२५) काशीविश्वेश्वर के मन्दिर में, विविध महालिङ्गों के मन्दिर में, ओङ्कारेश्वरादि में, शङ्कर, देवी, गणेश, स्वामी कार्तिकेय, और नन्दी भृङ्गी आदि सम्पूर्ण गणों की पुण्य दिनों में विशेष पूजा करके असंख्य ब्राह्मण, राजन्य, वैश्य, शूद्र, चाण्डाल और भिल्ल विधि के अनुसार पूजन कर देवताओं में मुख्य हो गये । (१२६) इसी प्रकार और भी महादेव की महा महिमावाले क्षेत्रों में श्रीशिवजी को स्त्री, पुत्र, गण और भक्तादि के सहित प्रेमपूर्वक भली भाँति पूजा

१ ग. प्राणनाथादिवादम् । २ ग. सद्मन्यनेके...... । ३ ग. स्वर्णदीत्वं ।

कल्पे कल्पे च लीलां विदधति गिरिशे स्वांशतो व्याप्य लोकं
भिन्नं भिन्नं चरित्रं प्रतिफलति तथाप्येकरूपं पुरावत् ।
सर्वं शम्भोरचिन्त्यं विविधकृतिविदो देवतिर्यङ्नराद्यं
तद्भक्त्याऽनन्ययैव श्रुतमिह तु भवेत् प्राणिनां पूर्वपुण्यैः ॥१२८॥
यच्छ्रुत्वा न प्रयाति प्रबलविषयदुर्वासनापूतिपूर्णं
संसाराब्धिं तदेतत्परमशिवमहासद्रहस्यं न चान्यत् ।
नष्टोऽपि भ्रष्टचर्योऽप्यतितरविषयासक्तचित्तोऽपि विप्राः
श्रुत्वैतत्सद्रहस्यं तरति हि कृपया किं पुनः शम्भुभक्ताः ॥१२९॥

इति श्रीकाशीमूलरहस्ये ब्रह्मवैवर्त्ते खिले काशीकेदारमाहात्म्ये त्रिंशोध्यायः ॥३०॥

कर लोगों ने देवत्व, राज्य, सकलभुवनविख्यात कीर्ति, मुनित्व, सिन्धुत्व, सन्नदीत्व श्रेष्ठ तरुत्व, तथा गिरित्व प्राप्त किया है। (१२७) अपने एक अंश से लोकों में व्याप्त होकर प्रत्येक कल्प में शिवजी लीला किया करते हैं। उनका भिन्न भिन्न चरित्र भासता है, फिर भी पहिले की भाँति आप एक रूप ही बने रहते हैं। देव पशु तथा मनुष्यादि के विविध कर्मों को जाननेवाले शम्भु की सब बात ही विचित्र है, सो उन्हीं की अनन्य भक्ति द्वारा उनकी कथाओं को सुनने का अवसर तभी प्राप्त होता है, जब प्राणियों के पूर्व जन्म के पुण्य उदय होते हैं। (१२८) जिसको सुनने से मनुष्य, प्रबल विषय की अपवित्र वासनाओं से पूर्ण संसार समुद्र को नहीं प्राप्त होता, वही यह परमशिव का उत्तम महारहस्य है, दूसरा कोई नहीं है। हे ब्राह्मणो ! इस रहस्य के सुनने से नष्ट-भ्रष्ट चरित्र, अति विषयासक्त चित्त मनुष्य भी शिवजी की कृपा से तर जाता है, फिर शम्भुभक्त के लिये कहना ही क्या है। (१२९)

यह श्रीब्रह्मवैवर्त का खिलग्रन्थ काशीमूलरहस्य के अन्तर्गत काशी-केदारमाहात्म्य का तीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥

अथैकत्रिंशोऽध्यायः

मुनय ऊचुः—

सूत ! सर्वज्ञ ! सद्बुद्धे ! [1]देव्या वैवाहमुद्भवम् ।
परात् परः कथं देव्याः परिणीतः परः शिवः ॥ १ ॥
तां वा कथं [2]परिणयत् परमात्मा सदाशिवः ।
तत्कल्याणं वद विभो ! येन धन्यो हिमाचलः ॥ २ ॥
स्थावरोऽपि जडोऽप्यस्य प्राप्ता सर्वाद्रिपूज्यता ।
शिवयोः सम्प्रसादेन कृतार्थोऽप्यभवन्नगः ॥ ३ ॥
इति पृष्टस्तदा सूतः प्राह तान् ब्रह्मवित्तमान् ।

[3]सूत उवाच—

शृणुध्वं मुनयः सर्वे सर्वकल्याणकारकम् ॥ ४ ॥

दोहा—दक्ष यज्ञ जिमि देह तजि, जनमी हिमि गिरि गेह ।
उमा व्याह शिव सन भयो, वरन्यौ सहित सनेह ॥

मुनि लोग बोले—हे सर्वज्ञ सूतजी ! देवी के विवाह की कथा कहिये कि परात्पर शिवजी से देवी ने कैसे व्याह किया (१) और परमात्मा सदाशिव ने उनका पाणिग्रहण कैसे किया ? यह कल्याणी कथा आप हमसे कहिये, जिसके द्वारा हिमाचल धन्य हो गये । (२) स्थावर और जड़ होने पर भी सब पर्वतों से पूजित हुए, और शिव पार्वती की कृपा से पर्वतराज कृतार्थ हो गये । (३) ऐसा पूछे जाने पर सूतजी ने उन ब्रह्मवेत्ताओं से कहा । सूतजी बोले—हे मुनि लोग ! मैं सब कल्याण कारक बात कहता हूँ, आप लोग सुनें, (४) शिव पार्वती के कल्याण की कथा सब सिद्धियों को देनेवाली है ।

---

१ ग. वद देव्या विवाहकम् । २ ग. पर्य्यणयत् । ३ ख. ग. पुस्तकीयोऽयं पाठः, आ० पु०—नास्ति ।

ययोः कल्याणवृत्तान्तं[1] श्रवणात् सर्वसिद्धिदम् ।
सर्वस्य जगतः सृष्ट्यै परा शक्तिः शिवाज्ञया ॥ ५ ॥
बहुरूपाऽभवद् दक्षं व्याजीकृत्य पितृत्वतः ।
शिवांशजातान् सृष्ट्यर्थं कश्यपादीन् दिवौकसः ॥ ६ ॥
स्वीकृत्य भर्तृव्याजेन तया ततमिदं जगत् ।
देवतिर्यङ्मनुष्यादिसृष्ट्याऽऽपूर्य्य जगत्त्रयम् ॥ ७ ॥
शम्भूपासनया प्राप्तवरं विधिमतोषयत् ।
व्याप्य स्वांशेन त्रैलोक्यं पुंभेदव्याप्तशङ्करम् ॥ ८ ॥
अतोषयन् महादेवी लीलोन्मुखमधीश्वरम् ।
स्वयं रुद्रात्मनात्मानं कैलासाख्ये गिरौ स्थितम् ॥ ९ ॥
स्वयं शक्तिः सती नामभेदात्तमवृणोत्पतिम् ।
सतीनाम्नो व्याजभूतं दक्षं कृत्वा पितृत्वतः ॥१०॥

शिवजी की आज्ञा से सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि के लिये पराशक्ति (५) दक्ष को पिता के मिस से स्वीकार करके बहुरूपा हो गई। कश्यपादि देवता शिवजी के अंश से सृष्टि के लिये उत्पन्न हुए, उनको भर्त्ता के व्याज से स्वीकार किया, और उन्हीं परा शक्ति द्वारा यह जगत् व्याप्त है। देव, पशु, मनुष्यादि की सृष्टि के पहले भी तीनों लोक उन्हीं से व्याप्त था। (७) इस प्रकार पराशक्ति ने ब्रह्माजी को, जिन्हों ने पहिले ही उपासना करके शिवजी से वर पा लिया था, सन्तुष्ट किया। अपने अंश से त्रैलोक्य में व्याप्त होकर महादेवी ने पुरुषभेद से तीनों लोकों में व्याप्त शङ्कर को, (८) जो अधीश्वर होकर लीला करना चाहते थे, सन्तुष्ट किया। शिवजी स्वयम् रुद्र रूप से कैलास नामक पर्वत पर रहे। (९) स्वयम् शक्ति ने सती रूप से उनका पति रूप से वरण किया। सती नाम से दक्ष को पिता के व्याज से स्वीकार करके (१०) नित्य विलासिनी जगदम्बा ने परमात्मा ईशान

१ ग......वृत्तान्तश्रवणं ।

परमात्मानमीशानं प्राप नित्यविलासिनी ।
ईशश्वशुरभावात् स दक्षो देवानधिक्षिपत् ॥११॥
ब्रह्मादीनप्यकिंचित्करानकारयदुद्धतः ।
अयं [1]शिवश्वशुरेत्यक्षमन्तस्य गर्वताम् ॥१२॥
देवाः सर्वे शिवं चित्ते ध्यात्वा किंचिन्न चोचिरे ।
तदा [2]परशिवो ज्ञात्वा गर्वमस्यातिवेलितम् ॥१३॥
स्वमायया दुस्तरया श्वशुरं तममोहयत् ।
[3]देवा अपि तदा चिन्त्य गर्वभङ्गस्य कारणम् ॥१४॥
शिवं विनाऽस्य गर्वस्य भङ्गकर्त्ता नहीति ते ।
दुर्बोधनास्य कर्त्तव्या यथा देवे पराध्यति ॥१५॥
अयं तथा वयं कुर्म इति ते[4] तद्वशाभवन् ।
तदाज्ञाकारिणो भूत्वा यागमेकं समारभन् ॥१६॥

को प्राप्त किया। ईश के श्वशुर होने से दक्ष देवताओं का तिरस्कार करने लगे। (११) उस उद्धत ने ब्रह्मादि को भी कुछ नहीं गिना। भाई! ये शिवजी के श्वशुर हैं, यह समझ कर देवता लोग उनके अभिमान को सह जाते थे। (१२) देवता लोग शिवजी का चित्त में ध्यान करके चुप रह जाते थे। तब परशिवजी ने यह जानकर कि इसका अभिमान बहुत बढ़ गया है। (१३) अपनी दुस्तर माया से श्वशुर को मोहित कर दिया। देवताओं ने भी उनके अभिमान भङ्ग के लिये चिन्ता की। (१४) उन्होंने निश्चय किया कि विना शिव के दूसरा कोई इसका अभिमान भङ्ग नहीं कर सकता, इसलिये इसको ऐसा समझाना चाहिये कि यह शिव का अपराध कर बैठे। (१५) अब हम लोग ऐसा ही करें यह विचार करके वे लोग उनके वश में हो गये। उनके आज्ञाकारी बनकर उनसे एक यज्ञ आरम्भ कराया। (१६) यज्ञ आरम्भ कराकर

१ ग. शिवश्वशुर इत्यक्षिपन्। २ ग. परः शिवो। ३ ग. देवास्तदा चिन्त्यमानाः। ४ ग. तद्वशगाः पुनः।

आरभ्य यागं तं प्राहुः कौटिल्येन दिवौकसः ।
शृणु दक्ष ! समर्थस्त्वं वयं तव वशानुगाः ॥१७॥
जामातरं विना रुद्रं तव सर्वेऽपि साधकाः ।
इत्युक्तमात्रे सङ्क्रुद्धो दक्षो मायाविमोहितः ॥१८॥
देवैः सार्द्धं जगामाशु शिवसद्मनि मन्त्रितुम् ।
[1]देवाः सर्वे शिवपदे नत्वा दूरं न्यसीदयन् ॥१९॥
[2]श्वशुर्यगर्वतो दक्षस्त्वनम्याग्रे न्यषीदत ।
सर्वदेवैः सहैवैनं कुशलं पृष्टवान् शिवः ॥२०॥
तदायं क्रोधताम्राक्षः शिवमायाविमोहितः ।
मामप्ययं [3]सर्वसाधारणं सत्कृतवानिति ॥२१॥
श्वशुरं पूजनीयं [4]मामनम्यापि शठः शिवः ।
केन गर्वेण देवेषु गणनाऽस्य दुरात्मनः ॥२२॥

देवताओं ने उनसे कुटिलता के साथ कहा कि दक्षजी ! सुनिये आप समर्थ हैं, और हम लोग तो आप के वश में हैं, अनुचर हैं। (१७) देखिये हम सभी आपके साधक हैं, एक आपके जामाता रुद्र कुछ भी हाथ नहीं बँटाते। ऐसा कहते ही माया से मोहित दक्ष को क्रोध आ ही तो गया। (१८) तुरन्त देवताओं के साथ शिवजी के घर सलाह करने के लिये उठ खड़े हुए। देवता लोग तो शिवजी के चरणों में नमस्कार करके दूर बैठ गये (१९) और श्वशुर होने के कारण गर्वित होकर दक्ष विना प्रणाम किये ही आगे जा बैठे, सब देवताओं के साथ इनसे भी शिवजी ने कुशल पूछी। (२०) तब तो इनकी आंखें क्रोध से लाल हो गईं शिव की माया से मोहित होकर इन्होंने यह सोचा कि इन्होंने सबके ऐसा ही मेरा भी सत्कार किया। (२१) मैं श्वशुर हूँ, पूजनीय हूँ, इस शठ शङ्कर ने मुझे प्रणाम भी नहीं किया। इस दुष्ट की

१ ग. नत्वा दूरं न्यषीदन्त देवाः शिवपदे तदा। २ ग. श्वशुरो गर्वितो दक्षो न नत्वाग्रे न्यषीदत। ३ ग. सर्वसाधारणसत्कारवानिति ४ ग. मामवजज्ञे।

कृतं 'सर्वं निन्द्यमस्य मूर्खा जानन्ति शङ्करम् ।
इत्यादिनिन्दितैर्वाक्यैर्विनिन्द्य परमेश्वरम् ॥२३॥
गतः सभां परित्यज्य कोपेन स्वालयं क्षणात् ।
ज्ञात्वेङ्गितं देवगणा विनाशोऽस्यागतस्त्विति ॥२४॥
शम्भोर्भ्रूसंज्ञया सर्वे तेनैव सह निययुः ।
यागं समारभत् पश्चाद् दक्षो देवगणैः सह ॥२५॥
नाकारयच्छिवं गौरीं यागपूर्णफलप्रदौ ।
श्रुतिवेद्यं हविर्यागमपि नादात् परात्मनः ॥२६॥
तदा शिवाज्ञामुल्लङ्घ्य वर्त्तन्तं पितृशब्दितम् ।
नाङ्गीकरोमीति शिवा पितृव्याजेन सर्वथा ॥२७॥
इति 'चिन्त्यागता शम्भोराज्ञामपि परित्यजन् ।
दक्षस्य यज्ञवाटं तं स्वबन्धुपरिपूरितम् ॥२८॥

देवताओं में गिनती किस कारण से होती है। (२२) इसके सब कर्म ही निन्दित हैं, मूर्ख इसे शङ्कर जानते हैं। इस प्रकारके निन्दित वाक्य भी परमेश्वर को कहे (२३) और उसी क्षण सभा छोड़कर अपने घर चल दिये। देवता लोग इशारा समझ गये कि इनका नाश तो उपस्थित हो गया। (२४) शङ्करजी का रुख पाकर उन्हीं के साथ उठ खड़े हुए। इसके बाद दक्ष ने देवताओं के साथ यज्ञ में हाथ लगा दिया (२५) और यज्ञ के पूर्ण फल देनेवाले सती-परमेश्वर को नहीं बुलाया, और वेदविहित हविभाग भी परमेश्वर को नहीं दिया। (२६) तब शङ्कर की आज्ञा उल्लंघन करके चलनेवाले पिता नाम धारी व्यक्ति को पिता करके मैं सर्वथा नहीं अङ्गीकार करूंगी (२७) ऐसा सोंचकर शिवा शङ्कर की भी आज्ञा न मानकर दक्ष के यज्ञ में गई जो कि बन्धुओं से परिपूरित था। (२८) वहां सती दक्ष से बोली कि जिस देह के तुम पिता हो, उसे मैं छोड़ती हूँ, तुमको धिक्कार है, एसा कहकर

१ ग. सर्वं। २ ग. चिन्तान्विता शम्भोराज्ञां त्यक्त्वा गता सती।

त्वत्पितृत्वव्याजदेहं 'परित्यजेति तं वदन् ।
अग्नावन्तर्दधे देवी धिक् त्वां दक्षेति जल्पती[2] ॥२९॥
तस्मिन् काले च हिमवान् जायया तपसि स्थितः ।
शिवं शिवां समुद्दिश्य स्वोद्धारायातिभक्तितः ॥३०॥
तयोराविर्बभौ देवी पुत्रीत्वेनाखिलेष्टदा ।
नारदाच्छ्रुतवृत्तान्तः शिवो देव्यास्तिरोभवम् ॥३१॥
अशिक्षयद् वीरभद्राद् दक्षं देवानपि क्षणात् ।
ततो देवी बाललीलाविनोदात्तावतर्पयत् ॥३२॥
गिरिदम्पत्यपि तदा पूर्णानन्दौ बभूवतुः ।
ततो देवी शिवप्राप्त्यै ह्यचरद् दुश्चरं तपः ॥३३॥
देवोऽपि तां बहुविधं लीलार्थमपरीक्षयत् ।
दृढचिन्तां स्वात्मशक्तिं ज्ञात्वा देवो घृणानिधिः ॥३४॥

अग्नि में अन्तर्धान हो गईं (२९) उस समय हिमाचल सस्त्रीक भक्ति के साथ शिव-शिवा के उद्देश्य से अपने उद्धार के लिये तप कर रहे थे। (३०) उन्हीं दोनों के यहाँ अखिल अभीष्ट देनेवाली देवी पुत्री होकर प्रकट हुईं। शङ्करजी ने नारद से शिवा के अन्तर्धान का वृत्तान्त सुना (३१) और वीरभद्र द्वारा दक्ष तथा देवताओं को दण्ड दिया। तत्पश्चात् देवी ने बाललीला, विनोद से उन दोनों को तृप्त किया। (३२) दोनों हिमालय दम्पती को पूर्णानन्द हुआ। इसके बाद देवी ने शिव-प्राप्ति के लिये कठिन तप किया। देव ने भी उनकी लीला के लिये बहुत सी परीक्षाएँ लीं। कृपानिधि देव ने उनको अपनी शक्ति तथा उनके दृढ़ व्रत को जानकर (३४) फिर विवाह की विधि से उनका पाणि-ग्रहण करना चाहा। तब देवी और देव ने

१ ग. परित्यक्ष्ये विनिश्चितम्। २ ग. पुस्तकीयोऽयं पाठः, आ० पु०— 'संविदन्' इति।

पुनर्विवाहविधिना तां ग्रहीतुममन्यत ।
देवीदेवौ रहः कृत्वा प्रथमं दृढसंविदम् ॥३५॥
अचोदयत्तदा देवीं वदेति पितरौ मुदा ।
तदा देवी तपस्त्यक्त्वा पित्रोर्वृत्तान्तमावदत् ॥३६॥
जामातरं शिवं श्रुत्वा स्वानन्दाब्धौ ममज्जतुः ।
अद्यानेकजनीनां[1] नौ परिपक्वं फलं ध्रुवम् ॥३७॥
यतः परात्मनः पूर्णदयापात्रौ बभूविव ।
देव्या विवाहसन्नाहः कृतस्ताभ्यां महाद्भुतः ॥३८॥
देवेन [2]पूर्वसन्दिष्टैर्मौहूर्तिकवरैर्द्विजैः ।
जीवकाव्यवसिष्ठात्रिभृगुकुत्सादिभिर्वरैः ॥३९॥
कन्यावरीतुकामानां[3] सम्प्रदायानुरोधतः ।
वरयित्वा कन्यकां प्राक् कन्यापित्रोश्च सम्मतम् ॥४०॥
मौहूर्तिकं [4]दिनमपि जानन् तत्पुत्रिकामगात् ।
तदा त्वष्टारमाज्ञाप्य सामग्रीसिद्धिमातनोत्[5] ॥४१॥

एकान्त में दृढ़ निश्चय किया । (३५) देव ने प्रसन्नता के साथ देवी की प्रेरणा की कि अपने माता पिता से कहो । देवी ने तदनुसार तप छोड़कर माता पिता से यह वृत्तान्त कह सुनाया । शिवजी को जामाता सुनकर दोनों आनन्द समुद्र में मग्न हो गये । उन्होंने सोचा कि आज हमारे अनेक जन्मों का पुण्य-फल निश्चय परिपक्व हुआ । (३७) क्योंकि हम-लोग परमात्मा की पूर्ण दया के पात्र हुए । उन दोनों ने देवी के विवाह की बड़ी अद्भुत तैयारी की । (३८) देव ने पहिले ज्योतिषी ब्राह्मण, बृहस्पति, शुक्र, वसिष्ठ, अत्रि, भृगु, कुत्स आदि के द्वारा कन्यावरण करनेवालों के नियम के अनुसार पहिले कन्या का वरण कराया, और फिर कन्या के पिता की रुचि के अनुकूल विवाह का मुहूर्त (४०) जानकर हिमालय

१ ग. जनीनानां । २ ग. पूर्वं । ३ ग. वरीतुं । ४ ग. दिनमथो जानन् तत्पुत्रिकामुखात् । ५ ग. सिद्धिमाचरन् ।

हिमवद्गृहमागत्य विश्वकर्म्मा शिवाज्ञया ।
मनसा कल्पयामास तत्क्षणं तदनूपमम् ॥४२॥
[1]मण्डपगृहवेद्यादिविचित्रवसतेश्चयम् ।
प्रत्युप्तनवरत्नानां कान्त्या सौवर्णराजतम् ॥४३॥
[2]रत्नक्लृप्तकुथास्तीर्णं सोपधानं पदे पदे ।
मुक्तामणिवितानैश्च तोरणैः सन्ततं ततम् ॥४४॥
चिन्तामणिः कामधेनुः कल्पवृक्षाः समाययुः ।
षड्रसान्नस्य संसृष्टौ कामधेनुः स्वयं स्थिता ॥४५॥
[3]वस्त्रगन्धसुमोत्पादे कल्पवृक्षाः स्वयं स्थिताः ।
रत्नभूषणनिर्माणे स्वयं चिन्तामणिः स्थितः ॥४६॥
[4]गीतवादित्रकौशल्ये नारदाद्याः स्वयं स्थिताः ।
आगतानां च सत्कारे लोकपालाः स्वयं स्थिताः ॥४७॥

की कन्या के दर्शनार्थ गये। विश्वकर्मा को सामग्री की सिद्धि के लिये नियोजित किया। (४१) शिवजी की आज्ञा से विश्वकर्मा हिमाचल के घर आये, और उसी क्षण मन से निरुपम (४२) मण्डप, गृह, वेदी और शिविरों की कल्पना की। जो कि सोने और चाँदी के बने और नवरत्नों से जड़े हुए थे। (४३) रत्न के बने हुए कुश जहाँ फैले थे, और तमाम गद्दे बिछे थे, मोती और रत्न की झालरें लगी थीं, सर्वत्र पताकाएँ फहरा रहीं थीं। (४४) चिन्तामणि, कल्पवृक्ष और कामधेनु भी वहाँ पहुँच गए। छवों रसों से युक्त भोजन की सृष्टि के लिये स्वयम् कामधेनु खड़ी हो गई। (४५) वस्त्र, गन्ध और फूल के उपजाने के लिये कल्पवृक्ष जा अड़े, रत्नभूषण के निर्माण के लिये स्वयम् चिन्तामणि उपस्थित थे। (४६) गाने बजाने के काम पर स्वयम् नारदादिक आगये। आये गये हुओं के सत्कार के लिये लोक-

१ ग. मण्डपं। २ ग. रत्नकल्पकुथास्तीर्णं सामधानं०......। ३ ग. वस्त्रगन्धसमुत्पादे। ४ ग. पुस्तके—'गीतवादि०; इत्यर्द्धं नास्ति।

[1]समग्रद्रष्टा ब्रह्माऽभूत् हरिः सर्वविचारकः ।
एवं विधानं संस्थाप्य सर्वे याताः शिवान्तिकम् ॥४८॥
आनेतुं परमेशानं सब्रह्मऋषयोऽमराः ।
चरणौ ते नमस्कृत्य प्रार्थ्य देवं समानयन् ॥४९॥
[2]अचिन्त्यं शाङ्कुरारूढं सगणं देवसंस्तुतम् ।
अप्सरोयक्षगन्धर्वकिन्नरैः सेवितं पुरः ॥५०॥
एवं क्रमाद् द्वारदेशे शाङ्कुरादवरुह्य सः ।
[3]दुग्धक्षालितपादाब्जरत्ननीराजितः शनैः ॥५१॥
श्वश्र्वा दत्तफलो हस्ते [4]स्वस्तिवाग्भिर्गृहं विशत् ।
तत्पूर्वमेव श्रीगौरी सर्वाभरणभूषिता ॥५२॥
कल्याणपीठे संविष्टा नवरत्नवरोन्नते ।
धृत्वा करौ ब्रह्मविष्ण्वोर्गतोऽन्तर्वेदिमण्डपे ॥५३॥

पास खड़े थे। (४७) सब बातों की देखभाल का काम ब्रह्मा ने अपने ऊपर लिया। सब बातों के विचार का भार विष्णु पर रक्खा गया। इस प्रकार की व्यवस्था करके सब लोग शिवजी के पास आये। (४८) परमेश्वर के ले आने के लिये ब्रह्मा, ऋषि तथा देवगणों ने जाकर चरणों में प्रणाम किया और प्रार्थना करके देव को ले आये। (४९) अचिन्त्य भगवान् बैल पर सवार हुए और गणों के साथ, देवताओं की स्तुति सुनते और अप्सरा, यक्ष, गन्धर्व और किन्नरों से सेवित होकर चले। (५०) इस प्रकार द्वार पर आकर बैल से नीचे उतरे। दूध से पैर धोये गये, रत्न से नीराजन आरती उतारी गई। (५१) सास के दिये हुए फल हाथ में लिये, स्वस्तिवाचन होता हुआ घर में गये। इसके पहिले ही गौरी सब भूषणों से भूषित होकर (५२) नवरत्न के उन्नत पीठ पर विराजमान थीं। शिवजी ब्रह्मा और

१ ग. समग्रद्रष्टौ। २ ग. अचिन्त्ये। ३ ग. पादाब्जो। ४ ग. स्वस्तिवाग्भी गृहेऽविशत्।

निवेशितो रत्नपीठे श्वशुरेण स्त्रिया सह।
पौरोहित्ये विधिरभूत् शुभकर्म्माण्यकारयत् ॥५४॥
उत्कृष्टवाद्यनिनदैर्ध्वनिभिः जयशब्दजैः।
विप्राणां स्वस्तिवचनैस्तुमुले रत्नसंसदि ॥५५॥
जग्राह कन्यकां हस्ते श्वश्रूश्वशुरयोः करात्।
तयोश्चित्तेन सार्कं स धारापूर्वं जगत् प्रभुः ॥५६॥
कृतकृत्यावभूतां तौ दत्वा कन्यां महाप्रभोः।
[1]अग्निकार्य्यं लाजहोमप्रक्रमाश्माधिरोहणम् ॥५७॥
सर्वं यथावत् सम्पाद्य [2]ऽयरुचद्भगवान् सदः।
पुष्पवृष्टिर्महत्यासीद् देवदुन्दुभिनिस्वनैः ॥५८॥
जगुर्गन्धर्वराजानो ननृतुश्चाऽप्सरोवराः।
पुण्या वाता ववुस्तत्र सर्वेषां हृदयंगमाः ॥५९॥

विष्णु का हाथ पकड़ कर अन्तर्वेदी के मण्डप में आये (५३) श्वशुर ने स्त्री के साथ उन्हें रत्नपीठ पर बिठलाया। ब्रह्माजी ने पुरोहित होकर सब काम कराया। (५४) अच्छे बाजों के शब्द, जयशब्द तथा ब्राह्मणों के स्वस्तिवाचन की ध्वनि होने पर रत्न मण्डप में शिवजी ने सास श्वसुर के हाथ से कन्यादान लिया। जलधारा के साथ साथ जगत्प्रभु ने उन दोनों के चित्तों को भी अपना लिया। (५६) महाप्रभु को कन्या देकर दोनों कृतकृत्य हो गये। अग्निकार्य्य, लाजाहोम, भाँवरी, अश्मारोहण (५७) आदि का सम्पादन करके मण्डप में भगवान् अधिक शोभित हुए। बड़ी भारी पुष्पवृष्टि हुई, देवताओं ने डंके बजाये। (५८) गन्धर्वराजों ने गाना और श्रेष्ठ अप्सराओं ने नाचना आरम्भ किया। ऐसा पुण्य वायु बहा कि उसने सबके हृदय को प्रफुल्लित कर दिया। (५९) उस महोत्सव में देव ने ब्राह्मणों को यथा विधि भोजन कराया, और विष्णु आदि देवों का यथेष्ट पूजन

१ ग. अग्निकार्यंलाज०......। २ ग. रुरुचे भगवान् मुदा।

तादृङ्महोत्सवे देवो [1]भोज्य विप्रान् यथाविधि ।
[2]यथाकामं च सम्पूज्य देवान् विष्णुमुखानपि ॥६०॥
दत्वाऽभयं श्वशुरयोर्देव्या साकं परात्परः ।
गणैर्देवैर्द्विजैः [3]स्थानमारूढवृषभो ययौ ॥६१॥
सुरादीनां च कलहं विज्ञाप्य त्रिदशा अपि ।
शिवेन समनुज्ञाता हृष्टाः स्वस्थानमाययुः ॥६२॥
एवं भगवतो लीला विवाहाख्या जगत्पतेः ।
अचिन्त्यस्याप्यलीलस्य भक्तानुग्रहकारिणः ॥६३॥
एवं शम्भुर्हिमगिरेः प्रसादं कृतवान् पुरा ।
[4]अपत्येच्छोस्तथा सम्यक् स्वोत्कर्षेच्छोर्वरप्रदः ॥६४॥
अभ्रातृकापरिणयो न युक्त इति शङ्करः ।
पुत्रमैनाकनामानमदाच्छ्वशुरयोः शिवः ॥६५॥
यः पक्षघातभीत्या श्रीदेव्या भ्राता शिवाज्ञया ।
अद्याप्यास्ते जलनिधौ शिवाज्ञप्ते सुखं मुदा ॥६६॥

किया (६०) ससुर सास को अभय देकर, परात्पर भगवान् गण, देवता और ब्राह्मणों को साथ लेकर देवी के साथ वृषभ पर सवार होकर चले। (६१) सुरासुरों का झगड़ा भगवान् को जनाकर देवता लोग भी शिवजी की आज्ञा पाकर हँसी खुशी अपने-अपने घर गये। (६२) लीलारहित, अचिन्त्य, भक्तों पर अनुग्रह करनेवाले जगत्पति भगवान् की विवाहकी लीला इस प्रकार हुई। (६३) इस भाँति शम्भु ने पूर्वकाल में हिमाचल पर कृपा की थी। उन्हें सन्तान की तथा अपने उत्कर्ष की इच्छा थी। अतः उन्हें वरदान दिया था। (६४) जिस कन्या को भाई न हो उससे विवाह करना प्रशस्त नहीं है, इसलिये सास ससुर को मैनाक नामक पुत्र भी दिया। (६५) वह श्रीदेवीजी का भाई पक्ष कटने के भय से

१ ग. भोजयामास वै द्विजान्। २ ग. यथाकालं च। ३ ग. निज०। ४ ख. ग. अपत्येच्छुस्तथा।

स एव केदारनाथः कलापञ्चदशात्मना ।
काश्यां लिङ्गाकृतिरभूत् कलैकात्मा हिमाचले ॥६७॥
श्रीविश्वनाथः केदारे काश्यां केदारनामतः ।
[1]सद्यस्तारयते लोकान् भैरवीं यातनां विना ॥६८॥
[2]श्रद्धध्वं ब्रह्मविच्छ्रेष्ठाः सत्यं मम गुरोर्वचः ।
य इमं शृणुतेऽध्यायं विवाहोत्सवमीशयोः ॥६९॥
स सर्वमङ्गलानां वै पात्रं शम्भोः प्रसादभाक्[3] ।
यं यं कामं समुद्दिश्य पठते श्रयते क्षिप्रं ॥७०॥
[4]तं तं कामं करगतं तस्य सिद्ध्यति नान्यथा ।
इति श्रुत्वा मुनिवराः सानन्दहृदयास्तराम् ।
तुष्टुवुः श्रुतिमूर्धस्थैः [5]श्रुतिभिः परमेश्वरम् ॥७१॥

आज तक शिवजी की आज्ञा से समुद्र में आनन्दपूर्वक रहता है। (६६) वही केदारनाथ पन्द्रह कलाओं से काशी में लिङ्ग रूप से बसते हैं, और एक कला से हिमालय में रहते हैं। (६७) श्रीविश्वनाथ काशीकेदार-क्षेत्र में केदार नाम से बिना भैरवी यातना के लोगों को तुरन्त तार देते हैं। (६८) हे ब्रह्मवादियों में श्रेष्ठ! आप लोग श्रद्धा करें, मेरे गुरुजी का वचन अन्यथा नहीं है। जो इस शिव-पार्वती के विवाहोत्सव के अध्याय को सुनता है, (६९) वह सब मङ्गलों का पात्र और शङ्कर के प्रसाद का भाजन होता है। जिस इच्छा के लिये इसे पढ़े और सुने (७०) उसकी वे सब इच्छाएँ करगत की भाँति सिद्ध होती हैं, अन्यथा नहीं होता। ऐसा सुनकर मुनि लोग अत्यन्त आनन्दित होकर वेदान्त की स्तुति से परमेश्वर की प्रशंसा करने लगे। (७१) हे भगवन्! आप अन्न के पति हैं, आप दिशाओं के पति हैं, हमारे ऐसे पशुओं के पति हैं, चोरों के पति हैं, जगत् के समस्त क्षेत्र और औषधियों के पति हैं, अच्छे

१ ख. सत्यसारायते। २ ख. शृणुध्वं। ३ ग. प्रसादतः। ४ ग. स स कामः करगतस्तस्य। ५ ग. संस्तवैः।

अन्नानां पतये दिशां च पतये मातृकपशूनां पुनः
स्तेनानां पतये समस्तजगतां क्षेत्रौषधीनां सताम् ।
वृक्षाणां पतये शिवे च कुधियां दुस्तस्कराणां पुनः
पुष्टानां पतये दिनाधिपतये सर्वात्मने ते नमः ॥७२॥
अस्मानुद्धर देवदेव ! भवतः पादं शरण्यं नतान् ।
सर्वाभीष्टदमप्रमेयभगवद्धामप्रदं चान्ततः ।
नैवान्यं वरयाम ते पदयुगात् केदारनाथ ! प्रभो !
मोक्षैकप्रथितप्रभावविभवा केदारभूस्ते प्रभो ! ॥७३॥
[1]मोक्षैकप्रभवात्ततं तव विभो ! वासाय नो[2] दापय
स्तुत्याऽनया च सन्तुष्टः परमात्मा सनातनः ।
[3]ससूतान्योगिनः साक्षादभवद् वृषसंस्थितः ॥७४॥
उमया गणपैर्देवैः सुताभ्यां च समावृतः
[4]प्राह प्रसन्नया वाचा मुनीन् संहर्षयन् वचः ॥७५॥

लोगों के पति हैं, वृक्षों के पति हैं, दुष्ट बुद्धिवाले दुष्ट तस्करों के पति हैं, पुष्ट लोगों के पति हैं, दिन के पति हैं, हे नाथ ! आप सर्वात्मा हैं, आपको अनन्तवार नमस्कार है। (७२) हे देवदेव ! हम लोगों का उद्धार करो, हम लोग आपके चरणों की शरण में हैं, आपको नमस्कार करते हैं। हे सब अभीष्टों को देनेवाले ! हे अप्रमेय ! अन्त में आप अपना धाम भी देते हैं। हम आपके चरणों से अतिरिक्त कुछ नहीं माँगते सिवा इस केदारक्षेत्र के जिसका प्रसिद्ध प्रभाव और महिमा केवल मोक्ष है। (७३) इस मोक्ष की जन्मभूमि को हम लोगों के निरन्तर वास करने के लिये दो। इस स्तुति से सनातन परमात्मा सन्तुष्ट हुए और बैल पर चढ़े हुए सूतजी के साथ ऋषियों को दर्शन दिया। (७४) शिवजी उमा, गणेश्वर, देवगण तथा दोनों पुत्रों से घिरे हुए थे। प्रसन्न होकर

१ ग. पुस्तके—'मोक्षैकं०...', इत्यर्द्धं नास्ति। २ ख. ना। ३ ग. स सूतयोगिनां। ४ ख. पुस्तके—'प्राह प्रसन्नया...', इति श्लोकार्द्धं नास्ति।

'भक्ताः ! शृणुध्वं मुनयस्तुष्टोऽहं स्तुतिभिर्हि वः ।
ददामि वो वरं देवदुर्लभं योगिनामपि ॥७६॥
दत्तो मोक्षस्तु भवतां 'पुनरावृत्तिवर्जितः ।
यस्माच्छ्रुतं मे रहस्यं भवद्भिर्जनतारकम् ॥७७॥
सन्तिष्ठतात्र वा मा वा यत्र कुत्रापि तिष्ठत ।
देहान्ते यात मामेव गेहाद्गेहान्तरं यथा ॥७७॥
श्रोतॄणां मद्रहस्यस्य फलमेतन्न संशयः ।
इत्युक्त्वान्तर्धाच्छम्भुर्लिङ्गे सपरिवारकः ॥७६॥
कोटिसूर्यप्रतीकाशं दृष्ट्वा शम्भुं मुनीश्वराः ।
सूतेन साकं सानन्दहृदया विवशा भवन्³ ॥८०॥
⁴सभाज्य सूतस्तानाह कृतार्था यूयमेव हि ।
युष्मत्सत्सङ्गतश्चाहमपि धन्यो न संशयः ॥८१॥

मुनियों को हर्षित करनेवाली वाणी से बोले—(७५) हे भक्त मुनि लोग ! सुनो, तुम लोगों की स्तुति से मैं प्रसन्न हूँ, तुम लोगों को मैं देवदुर्लभ और योगियों से भी दुर्लभ वर देता हूँ। (७६) मैंने तुम लोगों को आवागमन से रहित मोक्षपद दिया, क्योंकि तुम लोगों ने मेरा जन-तारक रहस्य सुना। (७७) चाहे यहाँ रहो, चाहे मत रहो, चाहे कहीं रहो, देहान्त होने पर तुम मुझे इस भाँति प्राप्त होगे। जैसे घर से कोई बाहर जाता है, (७८) मेरे रहस्य को सुननेवाले को यही फल मिलता है। ऐसा कहकर शङ्कर भगवान् परिवारके के सहित लिङ्ग में अन्तर्धान हो गये। (७९) कोटि सूर्य्य के समान प्रकाशमान शङ्कर भगवान् का दर्शन करके सूत के सहित मुनिगण सानन्द चित्त होकर मग्न हो गये। (८०) सूतजी ने उन लोगों से कहा कि आप लोग तो कृतार्थ हैं ही, आप लोगों के साथ से मैं भी धन्य हो गया इसमें सन्देह नहीं है। (८१) हे मुनीन्द्रो ! सुनो, यह परमशिव रहस्य वेदसार का भी अतिसार है,

१ ग. भक्त्या। २ ग. पुनरावृत्तिवर्जितम्। ३ ग. पुनः। ४ ग. सभायसूत।

शृणुत मुनिवरेन्द्रा वेदसारातिसारं
परमशिवरहस्यं काशिकामूलसारम् ।
शिववदनसरोजान्निःसृतं यः पिबेत् स
जननमरणदुःखं नैव चाप्नोति सत्यम् ॥८२॥
निधिं सत्पुण्यानां निखिलजगदानन्दनिलयं
निराधारं मायाखिलगुणसदाधारमनिशम् ।
शिवं शान्तं नित्यं त्वनुवदति दिव्ये मधुमये
रहस्ये तत्पुंसामकृतसुकृतां लभ्यति कथम् ॥८३॥
कृतं पुण्यं यैस्तैश्चिरममितकोटीजनिभवं
महेशांघ्र्यब्जाराधनविमलभाग्यौघजनितम् ।
प्रवक्तुं श्रोतुं वा विदितमुपलब्धुं क्षममिदं
रहस्यं श्रीशम्भोर्नहि कुमतिभिः प्राकृतजनैः ॥८४॥

और काशी का तो मूल सार है। यह साक्षात् शङ्कर के मुखकमल से निकला हुआ है, इसे जो पीता है सो जन्म मरण के कष्ट से छूट कर सत्य (ब्रह्म) को प्राप्त होता है। (८२) जो सत्पुण्यों के निधि हैं, सम्पूर्ण जगत् के आनन्द भवन हैं, जो स्वयम् निराधार होकर भी माया गुणों के नित्याधार सत् हैं, जो नित्य, शान्त और शिव हैं, उनके दिव्य मधुमय रहस्य का अनुवाद, जिन्होंने पुण्य नहीं किया है, उन्हें कैसे मिलेगा ? (८३) जिन्होंने करोड़ों जन्म में पुण्य सञ्चय किया है, जिनको महेश्वर के चरणकमलों की आराधना का विमल सौभाग्य प्राप्त हुआ है, वही श्रीशम्भु के रहस्य को कहने, सुनने, जानने, जनाने में समर्थ हो सकते हैं, दुष्ट बुद्धिवाले साधारण लोग नहीं हो सकते। (८४) आप लोग पुण्यवान् हैं, मैं भी आपका अनुचर वैसा ही हूँ, शिवज्ञान का आधार श्रीशम्भु का शुभकर रहस्य आप लोगों ने सुना और मैंने सुनाया। मैं आप से सत्य कहता हूँ, यह दोनों बातें अहोभाग्य

१ ग. शिवपरमरहस्यं । २ ग. लभ्यमनु किम् ।

भवन्तः सत्पुण्यास्त्वहमपि तथा युष्मदनुगः
शिवज्ञानाधारं श्रुतमपि भवद्भिः शुभकरम् ।
रहस्यं श्रीशम्भोस्तदिह भवतां श्रावितमपि
प्रवक्ष्ये सत्यं वस्तदुभयमहो ! देवघटितम् ॥८५॥

न चेन्मे गुर्वग्रे गमनमथ तद्वागमृत सत्-
कथासारं जाने कथमहमथात्रागममतिः ।
भवेच्छ्रद्धद्ध्व श्रीशिवगुरुकृपा पूर्वघटिता
रहस्यप्राकट्ये निखिलजनतोत्तारणविधौ[1] ॥८६॥

यो नित्यं परमेश्वरस्य चरितं केदारलिङ्गाग्रतः
सम्यक्श्लोकमथार्धपादमपि वा भक्त्या पठेच्छ्रावयेत् ।
श्रोता पाठयिता तथा च पठिता सर्वेऽपि भुक्त्वा चिरं
भोगानिष्टतमान् प्रयान्ति चरमे काले शिवं शाश्वतम् ॥८७॥

मासे श्रावणिके शिवप्रियकरे माघेऽथवा कार्त्तिके
शाखे शिवमोदके तिदिनं त्वध्यायमेकं पठन् ।

से बन पड़ीं । (८५) नहीं तो मेरा गुरुजी के आगे जाना, उनके वागमृत कथासार का जानना, फिर यहाँ आने की बुद्धि, ये सब घटनाएँ कैसे हुई ? आप लोग विश्वास मानिये, निखिल जन के निस्तार के लिये शिवगुरु की कृपा पहिले से ही हुई है । (८६) जो नित्य परमेश्वर का चरित्र केदारलिंग के सामने पूरा, चाहे एक श्लोक अथवा आधा या एक पाद भक्ति से पढ़ता या सुनाता है, वह श्रोता, वक्ता वा पढ़ानेवाला बहुत दिनों तक इष्टतम भोगों का भोगकर अन्त काल में शाश्वत शिव को प्राप्त होता है । (८७) शिव के प्रिय सावन महीने में, माघ में, कार्त्तिक में अथवा शिवजी को प्रसन्न करनेवाले वैशाख में जो प्रतिदिन केदारजी के सामने एक अध्याय पढ़ता है, या शिवप्रियकर अतुल सत्य, श्रीशम्भुरहस्यसार भक्तजनों को सुनाता है, वह

१ ग. जनतोद्धारण० ।

यः केदारपुरः शिवप्रियकरं भक्तान् जनान् श्रावयेत्
श्रीमच्छम्भुरहस्यसारमतुलं सत्यं स शम्भुप्रियः ॥८८॥
श्रोतारोऽपि शिवैकलग्नमनसा श्रुत्वा समग्रं मुदा
वक्तारं परमेश्वरात्मकधिया सम्पूज्य विप्रं धनैः।
वस्त्रैर्भूषणहस्तिवाजिसदनैस्तुष्टं प्रकुर्वन्ति चेत्
शक्त्या तान् परमेश्वरस्स्वहृदये नित्यं स्मरन् तारयेत् ॥८९॥
श्रुत्वा केदारसारं परमशिवमहासद्रहस्यं शिवोक्तं
शैवान् धर्म्मान् पुराणान्यपि[1]शिवकथया सेतिहासानि भक्त्या।
सम्यक् श्रुत्वा च पुण्यं भवति हि जनतायास्तु यत्तत्प्रपुण्यं
संलभ्येदत्र सौख्यं त्वतुलमिह तथान्तेऽपि शम्भोः पदाब्जम् ॥९०॥
शृणुत मुनिवरेन्द्रा यद्वदाम्यद्य सत्यं
सकलकलुषहारि श्रीमदेतद्रहस्यं।
श्रवणरतिमनीषा यस्य जायेत तस्य
ध्रुवमशुभमशेषं ध्वस्तमित्यत्र मन्ये ॥९१॥

भगवान् शम्भु का प्रिय होता है। (८८) श्रोता केवल शिवजी में मन लगाकर सब सुने, और वक्ता की परमेश्वर की बुद्धि से पूजा करे और यदि शक्ति हो तो वक्ता को वस्त्र, भूषण, हाथी, घोड़ा और मकान देकर सन्तुष्ट करे, तो उसे परमेश्वर सदा हृदय से स्मरण रखते हुए अन्त में तार देते हैं। (८९) पर शिवजी का महासद्रहस्य यह केदारसार है, इसे शिवजी ने कहा है, जो भक्ति के साथ इसे तथा शिव धर्म पुराणों की शिवकथा को इतिहास के साथ पूरा पूरा सुनता है, उसको सम्पूर्ण जनता का जो कुछ पुण्य है सो सब होता है। (९०) यहाँ अतुल सुख पाता है, और अन्त में शङ्कर के चरण कमलों में प्राप्त होता है। हे मुनीन्द्रो! जो सत्य मैं आज कहता हूँ, उसे सुनो, यह परम रहस्य सब पापों का हरण करनेवाला है, जिसे इसको सुनने की बुद्धि उत्पन्न हुई,

१ ग वदति मुहुः सेतिहासानि भक्त्या।

एवं श्रुत्वा मुनीन्द्राः सकलमपि शिवज्ञानसारं रहस्यं
सूतं सम्पूज्य गन्धप्रसववसनसद्रत्नहेमाद्यसंख्यैः ।
वक्तारं चादितीर्थं तदुपगतसुरान् काशिकां विश्वनाथं
[1]काशीस्थान् देवसङ्घानपि विमलमणेः संयुतां कर्णिकाख्याम् ॥९२॥
पञ्चक्रोशस्थदेवानपि बहुतरान् तीर्थसङ्घान् सगङ्गान्
सम्यक् सम्पूज्य पश्चाच्छरणमुपययुः काशिकेदारनाथम् ।
नत्वा सम्यक् सम्पूज्य प्रकटदिवि गिरा तस्य दिव्याज्ञया ते
स्वेच्छासञ्चारशीला हृदि विधृतशिवा नित्यमुक्ता विजह्रुः ॥९३॥

इति श्रीकाशीमूलरहस्ये ब्रह्मवैवर्त्ते खिले काशीकेदारमाहात्म्ये,
एकत्रिंशोऽध्यायः ॥३१॥

॥ इति ॥

(९१) उसका सम्पूर्ण अशुभ नष्ट हो गया—यह मेरी धारणा है। इस प्रकार से मुनियों ने सम्पूर्ण शिवज्ञानसाररहस्य सुना, और सूतजी की सुगन्धित वसन और असंख्य रत्न और सुवर्ण से पूजा की क्योंकि वक्ता ही आदि तीर्थ है, और तब उनसे जाने हुए देवता काशी-विश्वनाथ (९२) काशी के देवता, मणिकर्णिका, पञ्चक्रोश के देवता, बहुत से तीर्थ और गङ्गाजी की भली प्रकार पूजा की। (९३) तत्पश्चात् काशी-केदारनाथ के शरण गये। उनको नमस्कार करके सम्यक् प्रकार से पूजा की; तब आकाशवाणी हुई और उस वाणी की दिव्य आज्ञा से (९४) शिवजी को हृदय में धारण कर, वे लोग अपनी इच्छानुसार गतिवाले हो नित्य मुक्त होकर विचरे। (९५)

यह ब्रह्मवैवर्त के खिलग्रन्थ काशीमूलरहस्य के अन्तर्गत काशीकेदारमाहात्म्य का इकतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

॥ हरिः ॐ तत्सत् । शुभं भूयात् ॥

---

१ ख. [illegible] नास्ति ।

अच्युतग्रन्थमालातः प्रकाशितानां पुस्तकानां सूचीपत्रम् ।

(क) विभागे

१. भगवन्नामकौमुदी—श्रीलक्ष्मीधरविरचिता श्रीमदनन्तदेवनिर्मितप्रकाशटीका-सहिता, आचार्यवरगोस्वामिदामोदरलालशास्त्रिभिः सम्पादिता । मू०—आ० १०

२. भक्तिरसायनम्—श्रीमधुसूदनसरस्वतीविरचितम् । प्रथमोल्लासे मूलकृद्र-चितया टीकया, शेषद्वयोल्लासे आचार्यवरगोस्वामिदामोदरलालशास्त्रि-विरचितया प्रेमप्रपया टीकया सहितम् । मू०—आ० १२

३. शुल्वसूत्रम्—श्रीमहर्षिकात्यायनप्रणीतम् । वेदाचार्य्यश्रीविद्याधरशर्म्मविर-चितया सरलया वृत्त्या सहितम् । तैरेव सम्पादितम् । मू०—आ० ४

४. कात्यायनश्रौतसूत्रम्—श्रीमहर्षिकात्यायनप्रणीतम् । वेदाचार्यश्रीविद्याधर-शर्म्मविरचितया सरलया वृत्त्या समेतम् । तैरेव सम्पादितम् । मू०-रु० ६

५. प्रत्यक्तत्त्वचिन्तामणिः—(प्रथमो भागः) श्रीसदानन्दविद्वद्भिरचितः ग्रन्थकृद्रचितया स्वोपज्ञस्वप्रभाख्यटीकया सहितः, साहित्याचार्य-श्रीकृष्णपन्तशास्त्रिणा सम्पादितः । मू०—रु० २

६. भक्तिरसामृतसिन्धुः—श्रीरूपगोस्वामिविरचितः । श्रीजीवगोस्वामिकृतदुर्ग-मसङ्गमनीटीकोपेतः, आचार्यवरगोस्वामिश्रीदामोदरलालशास्त्रिभिः सम्पादितः । मू०—रु० ३

७. प्रत्यक्तत्त्वचिन्तामणिः—(द्वितीयो भागः) श्रीसदानन्दविद्वद्भिरचितः ग्रन्थकृद्रचितया स्वोपज्ञप्रभाख्यव्याख्यया सहितः, साहित्याचार्य श्रीकृष्णपन्तशास्त्रिणा सम्पादितः । मू०—रु० २ आ० ४

८. तिथ्यर्कः—श्रीदिवाकरविरचितः, साहित्याचार्यश्रीकृष्णपन्तशास्त्रिणा सम्पादितः । मू०—रु० १ आ० ८

(ख) विभागे

१. खण्डनखण्डखाद्यम्—श्रीहर्षप्रणीतम् । पण्डितप्रवरश्रीचण्डीप्रसादसुकुल-विरचितभाषानुवादेन सहितम् । मू०—रु० २ आ० १२

२. काशीकेदारमाहात्म्यम्—साहित्यरञ्जनश्रीविजयानन्दत्रिपाठिविरचितभाषा-नुवादेन सहितम्, साहित्याचार्यश्रीकृष्णपन्तशास्त्रिणा सम्पादितम् । मू०—रु० २ आ० ८

प्राप्तिस्थानम्—अच्युतग्रन्थमालाकार्यालय, काशी ।